संक्षिप्त

कांग्रेस का इतिहास

डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या

१९५८

सत्साहित्य-प्रकाशन

संक्षिप्त

कांग्रेस का इतिहास

(१८८५ से १९४७ तक)

डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या

१९५८

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक

मार्तण्ड उपाध्याय

मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

पहली बार : १९५८

मूल्य

छः रुपये

मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय

प्रयाग

प्रकाशकीय

कई वर्ष पहले 'मंडल' ने डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'कांग्रेस का इतिहास' प्रकाशित की थी। वह तीन जिल्दों में है और प्रत्येक जिल्द का मूल्य दस रुपया है। यद्यपि वह अपने विषय की एक ही पुस्तक है और कांग्रेस तथा आजादी के लिए किये गए संघर्ष की वह विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करती है, फिर भी वह आकार में इतनी बड़ी है और उसका मूल्य इतना अधिक है कि सामान्य स्थिति के पाठक उसे सहज ही नहीं खरीद सकते।

इसलिए बहुत दिनों से विचार हो रहा था कि इस विशाल पुस्तक का संक्षिप्त संस्करण निकाला जाय। फलतः कुछ विवरणों को कम करके, पुस्तक का आकार घटाकर, उसे एक जिल्द में प्रकाशित किया जा रहा है। अब इसका रूप ऐसा और मूल्य इतना हो गया है कि सीमित साधनोंवाले व्यक्ति भी इसे खरीदकर लाभ उठा सकते हैं। पाठक यह न समझें कि संक्षिप्त करने में कुछ विशेष घटनाएँ छूट गई होंगी। नहीं, ऐसी बात नहीं है। विवरण कम हुए हैं, पर महत्व की घटनाएँ न छूटें, ऐसी सावधानी बराबर रक्खी गई है।

पुस्तक की भाषा में भी यत्र-तत्र थोड़ा बहुत सुधार कर दिया गया है। इसलिए वह पहले की अपेक्षा अब अधिक प्रवाहपूर्ण बन गई है।

अपने देश को समझने के लिए कांग्रेस तथा उसके काम की विस्तृत जानकारी आवश्यक है और इस दृष्टि से इस इतिहास का पहले से भी अधिक महत्व है।

पुस्तक का संक्षिप्तीकरण श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ ने किया है। वे बड़े अनुभवी व्यक्ति हैं और उन्होंने बड़े परिश्रम से ग्रंथ को अच्छी तरह पढ़कर तथा कांग्रेस के क्रमिक विकास को समझकर इस जिम्मेदारी-भरे काम को किया है। हम गौड़ जी तथा अन्य बंधुओं के, जिन्होंने इस कार्य में सहायता दी है, आभारी हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पहला संस्करण हाथोंहाथ निकल जायगा और हमें शीघ्र ही नया संस्करण करना होगा। शिक्षा-संस्थाओं में इस पुस्तक का उपयोग

पाठ्य पुस्तक के रूप में किया जा सकता है, और कोई भी ऐसी शिक्षा-संस्था नहीं रहनी चाहिए, जिसमें इसकी प्रति न हो। कम प्रतियाँ छापी गई हैं, इसलिए अपनी आवश्यकता की प्रति या प्रतियाँ जल्दी ही प्राप्त कर लें।

पाठकों को स्मरण होगा कि पहले तीनों जिल्दों का मूल्य ३०) था। अब केवल ५) रुपया है।

हम यह भी आशा करते हैं कि अन्य भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद होगा।

—मंत्री

प्रस्तावना

पहले संस्करण से

: १ :

कांग्रेस का इतिहास मुख्यतः मानवीय इतिहास है। मानव दो श्रेणियों में विभाजित किये जाते हैं। कुछ तो अपने तजरबे से जानकारी हासिल करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो दूसरों के अनुभव से लाभ उठाते हैं। निस्सन्देह इस दूसरे प्रकार के लोग अधिक बुद्धिमान होते हैं और उन्हें मिसाल या चेतावनी के तौर पर सम-सामयिक या चालू जमाने का इतिहास पढ़ने की आवश्यकता होती है। भावी राष्ट्रीयता के लिए समय-समय पर उसकी सफलताओं का लिपिबद्ध होना आवश्यक है जिससे भावी नेता बदले हुए ज़माने में और परिवर्तित स्थिति के अनुसार अपना रास्ता तय कर सकें।

ठीक ही कहा गया है कि 'एशिया दुनिया का केन्द्र है।' भौगोलिक दृष्टि से यूरोप उसकी शाखा है, अफ्रीका उप-महाद्वीप है और आस्ट्रेलिया उसका टापू। एशिया एक पुराना महाद्वीप है।

१९ वीं सदी की शुरूआत का जमाना ऐसा था जब उपेक्षित भूखण्डों का साबक़ा दुनिया की बड़ी-बड़ी कौमों से पड़ा। इस सम्बन्ध से एशिया का पुनर्स्थापन हो गया और वह अपने आदर्शों की छाप बाहरी दुनिया पर डालने लगा। टैगोर और गांधी एशिया के बौद्धिक प्रसार की मिसालें हैं। सिकन्दर महान् का पूर्व और पश्चिम को मिलाने का स्वप्न पुनर्जीवित हो रहा है। एशिया का समन्वय-कारी आदर्श एक ऐसे विकास की ओर ले जा रहा है, जो मुक्ति की दिशा में है। एशिया महाखण्ड अपने भविष्य में विश्वास रखता है और उसका यह भी विश्वास है कि वह संसार को एक सन्देश देगा। उसमें आत्म-चेतनता जग रही है, जो चंगेज खां की वह यादगार ताजी कर देती है जिसने सबसे पहले एशिया की एकता का आन्दोलन चलाया था। उन भावनाओं को जापान में समुचित उर्वर भूमि मिली। पर सारा एशिया इस बात को महसूस करता है कि कनफ्यूशियस के शब्दों में हम अभी तक अव्यवस्थित हालत में जी रहे हैं, हम उस शांति की मंजिल से दूर हैं, जिससे 'कुछ स्थिरता' मिलती है और वह 'अन्तिम शांति की अवस्था' तो अभी हमारी दृष्टि में नहीं आई है।'[1]

---

१. एशिया और अमेरिका, जून १९४४, पृष्ठ २७५।

दुनिया अब जुदा-जुदा कौमों का समूह नहीं है। राष्ट्रीयता को व्यापक अर्थ में अन्तर्राष्ट्रीयता के सिद्धांत में बदल देने पर भी उसे उस दूर तक पहुंचानेवाले परिवर्तनों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त रूप में नहीं मिलता, जिसे दूसरे विश्व-व्यापी महायुद्ध ने इसके स्वरूप में ला दिया है। उसी की बदौलत हिन्दुस्तान के साथ एक स्वतंत्र अलग टुकड़े के रूप में बर्ताव नहीं हुआ। इसी कारण दुनिया मि० विन्स्टन चर्चिल के इस झांसे से परितुष्ट नहीं हुई कि हिन्दुस्तान का मामला तो इंग्लैण्ड का अपना है और अटलांटिक का समझौता ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत देशों पर लागू नहीं होगा। हिन्दुस्तान अब ब्रिटिश-भवन का महत्वपूर्ण भाग नहीं रहा। यह बात अब आम तौर पर स्वीकार कर ली गई है कि हिन्दुस्तान संसार के धर्मों का सन्धि-स्थल और विश्व-संस्कृति का एक संस्थल है, पर साथ ही यह देश संसार के ध्यान में ध्रुव-तारा बन गया है, और संसार की दिलचस्पी का केन्द्र हो गया है। जिस प्रकार भूमण्डल के उस गोलार्द्ध में अमेरिका है, उसी तरह इस गोलार्द्ध में यह अटलांटिक और प्रशांत महासागर का सन्धि-स्थल है। कन्याकुमारी जाकर आप पवित्र 'केप' के छोर पर खड़े होकर समुद्र की ओर मुंह कीजिए। आपके दाहिने हाथ अरब सागर होगा जो 'केप आव गुडहोप' (अर्थात् अफ्रीका के दक्षिणी छोर पर स्थित आशा अंतरीप) पर जाकर अटलांटिक महासागर से मिलता है, और आपके बायें हाथ की ओर बंगाल की खाड़ी होगी, जो प्रशांत महासागर से जा मिलती है। इस तरह हिन्दुस्तान पूर्व और पश्चिम के मिलने का स्थान है, प्रशांत-स्थित राष्ट्रों की आजादी की कुंजी है और अटलांटिक-स्थित राष्ट्रों की मनमानी पर एक नियंत्रण है। हिन्दुस्तान उस चीन के लिए मुख्य द्वार है, जिसकी स्वतंत्रता टापू के राष्ट्र जापान द्वारा खतरे में पड़ गई थी और उसने वहाँ के ४५ करोड़ निवासियों की आज़ादी को संकट में डालने की कोशिश की थी, पर अब खुद विजेता के गर्वीले चरणों पर गिरा पड़ा है। जापानी साम्राज्यवाद के भयंकर रोग की एक दवा आज़ाद चीन है। पर गुलाम हिन्दुस्तान आधे-गुलाम चीन के लिए नहीं लड़ सकता था या यूरोप को गुलाम नहीं बना सकता था। ऐसी अवस्था में हिन्दुस्तान की आज़ादी नई सामाजिक व्यवस्था का बुनियादी तथ्य कायम करेगी और इस देश के चालू सामूहिक संघर्ष का ध्येय ऐसे ही आज़ाद हिन्दुस्तान की स्थापना करना है। इस लड़ाई में अगर हिन्दुस्तान निष्क्रिय दर्शक की तरह बैठा यह देखता रहता कि यहाँ दूसरे स्वतन्त्र देशों को गुलाम बनाने के वास्ते परि-चालित युद्ध में भाग लेने के लिए भाड़े के टट्टू भर्ती किए जा रहे हैं और भारत की अपनी ही आज़ादी-जैसी वर्तमान समस्या की उपेक्षा की जा रही है, तो इसका मतलब भावी विश्व-संकट को निमंत्रण देना होता, क्योंकि बिना आज़ादी हासिल किये हुए हिन्दुस्तान पर लालच-भरी निगाह रखनेवाले नव-शक्ति-संयुक्त पड़ोसी या पड़ोसी के पड़ोसी की लार टपकती। उस समय भारत की अभिनव राजनीति,

संसार की आर्थिक परिस्थिति और विविध नैतिक पहलुओं के बाहरी दबाव के कारण कांग्रेस ने एक योजना की कल्पना की और १९४२ में सामूहिक अवज्ञा आरम्भ करने का निश्चय किया। इन पृष्ठों में उस संघर्ष के विभिन्न रूपों और उसके परिणामों का वर्णन है जो बम्बई में ८ अगस्त १९४२ में किये गए फैसले को अमल में लाने के लिए किया गया था। 'भारत छोड़ो' का नारा इस ऐतिहासिक प्रस्ताव का मूल-बिन्दु था जिसके चारों ओर उसी के अनुसरण में आन्दोलन चलता था। जल्द ही यह लड़ाई का नारा बन गया जिसमें स्त्री-पुरुष और बच्चे सभी समा गये; शहर, कस्बे और गांव सभी जुट गये; पदाधिकारी से किसान तक सभी सम्मिलित हो गये; व्यापारी और कारखानेदार, परिगणित जातियाँ और आदिम निवासी सभी इस भावना के भंवर में, हंगामा और क्रांति की लहर में आ गये। अलग-अलग ज़माने में विभिन्न शताब्दियों में जुदे-जुदे राष्ट्र ऐसे ही प्रभावों में बहते रहे हैं। किसी समय अमेरिका की बारी थी, कभी फ़्रांस की, किसी दशाब्द में यूनान की तो कभी जर्मनी की। इन सभी विद्रोहों के कार्य-कारण का तात्विक मूल एक ही था। सरकारों की शरीर-रचना, शासन की अवयव-क्रिया और राजनैतिक जमातों का रोगाणु निदान सभी ज़माने में और सभी मुल्कों में हुआ है।

: २ :

अक्सर दुनिया में जो लड़ाइयाँ हुई हैं उनमें शस्त्रास्त्रों और साज-सरंजामों की उत्कृष्टता को ही सबसे ऊंचा महत्व प्राप्त हुआ है। एक इतिहासकार ने कहा है कि मैसोडोनिया के भालों की बदौलत यूनान की संस्कृति एशिया में पहुँची है और स्पेन की तलवार ने रोम को इस योग्य बनाया था कि वह आजकल की दुनिया को अपनी परम्परा प्रदान कर सका है। इसी तरह १९४४ में जर्मनी के 'उड़ाने-वाले बमों' द्वारा लड़ाई का पलड़ा ही पलट जानेवाला था, पर वह व्यर्थ हो गया। तो भी तथ्य यह है कि यूरोप के युद्ध-कौशल के अतिरिक्त युद्ध में काम देने वाली और और शक्तियाँ भी होती हैं जिनका वर्णन बेकन ने इस प्रकार किया है—"शारीरिक बल और मानव-मस्तिष्क का फ़ौलाद, चतुरता, साहस, धृष्टता, दृढ़ निश्चय, स्वभाव और श्रम।" इस बात के बावजूद कि बेकन एक दार्शनिक और वैज्ञानिक था, वह सामान्य बुद्धि के स्तर से अधिक ऊँचा नहीं उठ सका और जहाँ वह उठा वहाँ वह साहस से बढ़कर और गुणों की कल्पना नहीं कर सका। हिन्दुस्तान में हमने सामान्य स्तर से ऊपर उठकर सत्य और अहिंसा के लिए कष्ट-सहन करते हुए लड़ाई जारी रखी है, और इस तरह हम सत्याग्रह की जिस ऊँचाई पर पहुँचे हैं, उससे निस्सन्देह इतिहास का रूप बदल गया है, और शक्ति और अधिकार, सच और झूठ, हिंसा और अहिंसा तथा पशु-बल एवं आत्म-बल के संघर्ष में विजय की

सम्भावना भी परिवर्तित हो गई है। जिस युद्ध को संसार का दूसरा महायुद्ध कहा जाता है उसका श्रीगणेश किसी ऊँचे सिद्धांत को लेकर नहीं हुआ था और अटलांटिक का समझौता—जो एक साल बाद हुआ था, टीका-टिप्पणी के बाद भी हिन्दुस्तान और जर्मनी के लिए एक जैसा किसी पर भी लागू न होनेवाला होगा। उससे बीसवीं सदी के आरम्भिक चालीस वर्षों के युद्ध-नायकों का असली रूप प्रकट हो गया। और उस पर भी तुर्रा यह कि यह युद्ध एक सर्वग्राही युद्ध बन गया, जिसने खुले रूप में एकाधिकार के द्वारा और मनमाने ढंग से—आयोजित रूप में जनता की सैनिक भर्ती करके युद्ध-संचालन किया और आज़ादी तथा प्रजातन्त्र की सभी ऊँची बातें हवा, भाप और सुन्दर वाक्यालंकार की तरह उड़ गईं। जब कष्ट-ग्रस्तों के दावों पर अपनी नीति की दृष्टि से विचार करने का अवसर आया और चर्चिल की 'अपने पर दृढ़ रहने' की अस्पष्ट बात को कार्यान्वित करने का मौका आया तो ब्रिटेन और हिन्दुस्तान के नामधारी राजद्रोहियों को दण्ड देने, अपने पसन्द की सन्धि करने, निर्वाचन स्थगित करने और समाचारपत्रों तथा पत्र-व्यवहार तक पर कठोर निरीक्षण—सेंसर रखने की नीति बरती गई। यदि युद्ध का यही उद्देश्य था और उसे जीतने के लिए यही ढंग थे, तो हिन्दुस्तान को इस बात के लिए बदनाम नहीं किया जा सकता कि उसने पोलैण्ड, चेकोस्लवाकिया, यूनान और फिनलैण्ड को आज़ाद कराने के उत्तम कार्य में उत्साह और उत्तेजना क्यों नहीं प्रदर्शित की। केवल ब्रिटेन साम्राज्यवादी और अनुदार नहीं है, बल्कि रूस ने भी वह वैदेशिक नीति ग्रहण करली जो ज़ारशाही के शासन के लिए अधिक उपयुक्त होती और सीधे निकोलस द्वितीय-द्वारा परिचालित होने पर अधिक उपयुक्त प्रतीत होती। पोलैण्ड का उद्धार करने के लिए जो युद्ध संचालित किया गया था उसका नतीजा यह हुआ कि उसके टुकड़े हो गये और उसे रूस की निर्दयता-पूर्ण इच्छा पर छोड़ दिया गया और उन्होंने मामले को वहीं तक नहीं रखा। रूस ने बसराबिया और बुकोविना, फिनलैण्ड और लटविया तथा इस्टोनिया और लिथुआनिया तक पर आक्रमण किया और डार्डेनिल्स के द्वारा मेडिटरेनियन या मृतक सागर पर भी कब्जा जमाने की मांग की। डार्डेनिल्स पर रूस का हाथ होने का मतलब था फ़ारस की मौत। इस युद्ध में हिन्दुस्तान को, बिना उससे पूछे या जांचे ही ग्रस्त कर लिया गया। यह वह युद्ध था जिसने अपने साथ ब्रिटेन के लिए 'भारत-छोड़ो' का नारा लगाया और जिसके लिए हिन्दुस्तान को भारी दण्ड भोगना पड़ा—सैकड़ों को बेंत लगाये गये, हज़ार से अधिक को गोली से उड़ा दिया गया, कितने ही हज़ारों को जेल में ठूंस दिया गया और करीब दो करोड़ के सामूहिक जुर्माने वसूल किये गये।

यद्यपि इतिहास का विकास सारे संसार में सामान्य सिद्धांतों पर होता है, विशिष्ट राष्ट्रों, देशों और राज्यों के विकास का मार्ग उनकी अपनी विलक्षण स्थिति

में होता है। खासकर हिन्दुस्तान में इन स्थितियों का जन्म और विकास विचित्र रूप में हुआ है। एक ऐसे विस्तृत देश का, जो लम्बाई-चौड़ाई में महाद्वीप के समान और जमीन और आकृति में विभिन्न है, लगभग दो सदी तक पराधीन रहना एक ऐसी बात है जिसका उदाहरण आधुनिक इतिहास में नहीं मिल सकता। इसके लिए हमें संसार के इतिहास में बहुत पीछे तक मुड़ना पड़ेगा जब ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में रोम ने एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना की थी जिसका विस्तार पश्चिम में ब्रिटेन से पूर्व में मिस्र तक था और जो लगभग चार सदियों तक कायम रहा था। किन्तु इस पराधीनता के उदाहरण में एक जगह सादृश्य समाप्त हो जाता है। जब मुक्ति की प्रक्रिया आरम्भ होती है तो हिन्दुस्तान में यह पराधीनता एक ऐसा नितांत विरोधी रूप धारण कर लेती है जैसा संसार के इतिहास में कहीं भी देखने में नहीं आता। हिन्दुस्तान में गत चौथाई सदी से घटनाओं ने जो रूप धारण किया है वह संसार में अद्वितीय है और सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों का प्रयोग--जिसे संक्षेप में 'सत्याग्रह' कहते हैं--ऐसा है जिसकी बहुत-सी मंजिलें और दर्जे हैं जिनके द्वारा राष्ट्रीय क्षोभ--असहयोग से करबन्दी तक सविनय अवज्ञा-आंदोलन के विभिन्न रूपों द्वारा प्रकाशित किया गया है और युद्ध-काल में हिन्दुस्तान की यह अस्पृहणीय--अप्रत्याशितता--स्थिति बना दी गई है। कांग्रेस की हमेशा यह राय थी कि युद्ध-प्रयत्न में हिन्दुस्तान का भाग लेना इस बात पर निर्भर करना चाहिये कि वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में उसमें जुटना अपना कर्त्तव्य समझे। इस तरह की मांग लगातार की गई, पर वह फिजूल साबित हुई। संघर्ष का कारण स्पष्ट था। सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के लिए वातावरण तैयार था, जो देश के लड़ने और साहसपूर्वक लड़ने के लिए एकमात्र मार्ग था। जिस प्रकार स्वशासन की योग्यता की कसौटी यह है कि जनता को स्वशासन प्रदान कर दिया जाय, उसी प्रकार संघर्ष के लिए योग्यता की कसौटी यह है कि देश को संघर्ष करने दिया जाय। क्या इंग्लैण्ड १ अगस्त १९१७ या ३ सितम्बर १९३९ को लड़ाई के लिए तैयार था? जनता जब युद्ध में लग जाती है तो उसे सीख लेती है। हिंसा और अहिंसा दोनों ही प्रकार की लड़ाइयों में यह बात सच है। सवाल सिर्फ उसकी माप-तोल का रह जाता है कि वह व्यक्तिगत हो या सामूहिक। पहले की परीक्षा हो चुकी है और 'क्रिप्स-मिशन' के समय उसका आंशिक परिणाम भी देखने में आया है। दूसरे ने सारी दुनिया को प्रबल वेग से हिला दिया, जिसके फलस्वरूप मार्च १९४६ में हिन्दुस्तान में ब्रिटेन से 'मन्त्रि-मण्डल मिशन' आया।

: ३ :

इस ऐतिहासिक काल का वर्णन इस पुस्तक में संक्षिप्त रूप में किया गया है। कांग्रेस करीब ३३ महीने जेल में रही और न केवल बिना किसी प्रकार की हानि

में पड़े, बल्कि इज्ज़त के साथ बाहर आई। फिर भी इस थोड़े से अन्तकाल में कितनी ही घटनाएँ गुज़र चुकीं। हम एक ऐसे ज़माने में रहते हैं जब सदियों की तरक्की सघन होकर दशाब्दियों में और दशाब्दियों की बरसों में आ जाती है। कांग्रेस की गिरफ्तारी से व्यापक हलचल फैल गई। पुरानी और नई दोनों ही दुनिया के लोगों ने पूछा कि क्या हिन्दुस्तान को लड़ाई में घसीटने के पहले उससे पूछ लिया गया था, और यह कि क्या ब्रिटिश-सरकार हिन्दुस्तान की जनता के बारे में जैसी होने का दावा करती है वैसी सचमुच है; और अगर ऐसा है तो फिर हिन्दुस्तानियों ने लड़ाई में भाग लेने के विरुद्ध इतना शोर क्यों मचाया? यह प्रश्न भी हुआ कि अगर मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों ही ने युद्ध की कोशिशों में मदद नहीं की, तो क्या जो रँगरूट फौज में भर्ती हुए हैं वे साम्राज्य के भक्त के रूप में आये हैं या इसे खेल समझ कर इसमें साहसी पुरुषों की तरह शामिल हो गये हैं? अथवा वे लड़ाई के कठिन दिनों में गुज़ारे के लिए पेशेवर सैनिक सिपाही के रूप में भर्ती हुए हैं। एक शब्द में, आज़ादी के लिए हिन्दुस्तान का मामला इस प्रकार व्यापक रूप में विज्ञापित हुआ कि दूसरा महायुद्ध शुरू होने के पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था। ब्रिटेन में जो लोग युद्ध-क्षेत्र में जाने से रह गये थे उनकी आवाज़ अभी तक क्षीण तो थी, पर उसमें समानता और न्याय की पुट थी, इसलिए उसमें काफ़ी ज़ोर था। वह युद्ध की घोर ध्वनि और धूलि में भी सुनाई पड़ी। धीरे-धीरे यह लड़ाई सर्वग्राही और सर्वशोषक बन गई।

अमेरिका में लोग तीन हिस्सों में बँट गये थे—एक तो राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के साथ यह विचार रखते थे कि हिन्दुस्तान ब्रिटेन का निजी मामला है, और एक दूसरा छोटा दल इस विचार का था कि हिन्दुस्तान की आज़ादी जैसी विशाल समस्या पर लड़ाई के दिनों में विचार नहीं हो सकता, उसे लड़ाई खतम होने तक रुकना चाहिए। तीसरा और सबसे बड़ा दल जनता के उन सीधे-सादे लोगों का था जो चाहते थे कि हिन्दुस्तान को इसी वक्त आज़ादी मिल जानी चाहिए।

जब हिन्दुस्तान ने अमेरिका और चीनी राष्ट्रों से अपील की तो वह इस बात को जानता था कि ब्रिटेन यह दावा करेगा कि हिन्दुस्तान तो उसका घरेलू मामला है और अन्य राष्ट्रों का हिन्दुस्तान या ब्रिटेन के किसी भी उपनिवेश या अधीनस्थ देश से कोई सम्बन्ध नहीं है। तो भी हिन्दुस्तान और कांग्रेस इस बात से अवगत थे कि ब्रिटेन सभ्य-राष्ट्रों के नक्षत्रमण्डल से अलग कोई चीज नहीं है और वह अन्य राष्ट्रों के साथ घनिष्ट रूप में अन्तर्सम्बन्धित है। हिन्दुस्तान अपनी शक्ति और कमजोरी दोनों को जानता है और वह केवल मानवता के नाम पर बाहरी देशों का हस्तक्षेप मात्र नहीं चाहता। ऐसा होने पर भी तथ्य यह है कि यदि किसी व्यक्ति के साथ उसके ही देश में बुरा बर्ताव होता है, तो अन्तर्राष्ट्रीय कानून उसका बचाव किसी तरह नहीं कर सकता। तो भी किसी भी देश का अपने देशवासियों

या उसके किसी हिस्से के प्रति दुर्व्यवहार कभी-कभी इतना घोर होता है (जैसा कि बेलजियन कांगो के मूल निवासियों के साथ हुआ है या टर्की-साम्राज्य-द्वारा आर्मेनियन ईसाइयों के प्रति किया गया) कि ऐसी हालत में दुनिया का लोकमत उससे प्रज्वलित हो उठता है। सामान्य मानवता की भावना दूसरे राष्ट्रों को प्रेरित करती है कि वह ऐसे अत्याचारों का विरोध करें।

इसलिए अगर हिन्दुस्तान दमन का हाथ रोकने में सफल नहीं हुआ तो उसके शारीरिक कष्टसहन और त्याग उस पूर्ण नैतिक समर्थन-द्वारा अपनी क्षतिपूर्ति कर चुके जो संघर्ष में उसने औरों से प्राप्त किया है, क्योंकि सत्य और अहिंसा के ऊँचे मापदण्ड की दृष्टि से देखते हुए उसका आज़ादी का ध्येय ऐसा ऊँचा है कि वह हिमालय की ऊँचाई से बजता हुआ प्रतिध्वनित होता है, और काबुल के सघन देश में होते हुए मक्का मुअज़्ज़न, मदीना मुनव्वर, फिलस्तीन के सीनाई पर्वत और एशिया माइनर के पामीर तक उसकी आवाज़ पहुँचती है। यही नहीं, आल्प्स के द्वारा वह पच्छिम की ओर और एपीनाइन, पाइरेनीस और एलबियन की चाल की श्रृंगमाला तक जा पहुँचती है। इसी प्रकार उसकी गूंज काकेशिया और यूराल तक भी पहुँचती है और कितने ही दुर्लंघ्य पहाड़ियों को पार करती हुई नई दुनिया में पहुंच जाती है। हिन्दुस्तान अच्छी तरह जानता है और पहले से जानता आया है कि उसके उद्देश्य की सफलता उसके हाथों में है और 'देशी तलवार' और देशी हाथों-द्वारा' ही उसका उद्धार होगा; पर उसने बायरन का युद्ध-कृपाण गांधीजी की शांति-पूर्ण सहारे की लाठी से बदल लिया है। हिन्दुस्तान ने युद्ध के लिए नये शस्त्र का प्रयोग कर इतिहास बनाने की कोशिश की है और खून के प्यासे योद्धाओं के रक्त-मांस प्रदर्शन को बदलकर उसे ऊँचाई पर पहुँचा दिया है, जहाँ मानवीय विवेक दैवी आत्मा बन जाता है। बीसवीं सदी ने एक नया ही ध्येय प्राप्त कर लिया और पा लिया है, एक नया झण्डा और नया नेता और इन पृष्ठों में भारत की आज़ादी के पवित्र ध्येय के प्रति संसार की प्रतिक्रिया का वर्णन किया गया है। उसकी आज़ादी के राष्ट्रध्वज के परिवर्तन और स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए भारत के राष्ट्रव्यापी संघर्ष का नेतृत्व करने वाले महात्मा गांधी के महान् उपदेश और उनकी योजना का भी इसमें समावेश है।

——राजेन्द्र प्रसाद

लेखक की ओर से

मुझे हर्ष है कि 'कांग्रेस का इतिहास' का यह संक्षिप्त संस्करण पाठकों के हाथों में पहुंच रहा है। बड़ा संस्करण हिन्दी में तीन भागों में प्रकाशित हुआ था। वह बहुत वृहद था और उसका मूल्य भी इतना था कि सामान्य पाठक उसे नहीं खरीद सकते थे। इस संस्करण में विस्तार कम कर दिया गया है, लेकिन उसकी प्रमुख घटनाओं को ज्यों-का-त्यों रक्खा है। आकार घट जाने से मूल्य में भी काफी कमी हो गई है। मुझे आशा है कि अब अधिक-से-अधिक पाठक इससे लाभ उठा सकेंगे।

पाठक जानते हैं कि कोई उद्देश्य निश्चित करके मैंने इस पुस्तक की तैयारी का भार नहीं उठाया था। १९३५ की ग्रीष्म-ऋतु में बेकारी के समय कलम-घिसाई करते-करते यह ग्रंथ अपने-आप तैयार हो गया। बात यह हुई कि कांग्रेस के मंत्री महोदय ने किसी दूसरे मामले में मुझसे यों ही एक बात पूछी। उसी सिलसिले में मंत्री महोदय द्वारा कांग्रेस के अध्यक्ष को, जो उस समय राष्ट्रपति कहलाते थे, इस छोटी-सी कृति की सूचना मिल गई। उन्होंने यह मामला कार्य-समिति में पेश कर दिया, और कार्य-समिति ने कृपा-पूर्वक कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर इस पुस्तक के प्रकाशन का भार उठा लिया।

१९४२ से १९४५ तक जेल की जिन्दगी में मुझे काफी फुरसत मिली, जिससे मैं यह लम्बा इतिहास लिख सका। अवकाश मिलना लिखने की दृष्टि से सुविधा की बात होती है, पर चालू जमाने का इतिहास लिखना कोई सुविधाजनक बात नहीं होती। सबसे पहली बात तो इसमें अनुपात समझने की होती है। जो ऐतिहासिक वर्णन किसी जमाने में काफी महत्व के होते हैं,वे भी यकायक अपनी अहमियत और विश्वस्तता खो बैठते हैं। इसीलिए जो इतिहासकार अपने लिखे हुए को छाती से लगाये रहता है, वह अपनी इतिहासकारिता का उपहास कराता है। इस सचाई को ध्यान में रखते हुए जितनी सामग्री वृहद ग्रंथ में प्रकाशित हुई उससे दुगनी बड़ी कठोरता से और कुछ खेद के साथ अस्वीकार कर देनी पड़ी, यहाँ तक कि पोथी भारी न होने देने के लिए अनेक महत्वपूर्ण विवरण छोड़ देने पड़े। भिन्न-भिन्न अधिवेशनों के निश्चय क्रमशः उद्धृत नहीं किये गए। लेकिन फिर भी पुस्तक आशातीत रूप में बड़ी हो गई। पुस्तक में दोष भी बहुत रह गये। फिर भी मैं जो कुछ कर सकता था, उसे मैंने किया। कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष ने पुस्तक को

दो बार पढ़ा। इस प्रकार उन्हें पुनरावलोकन और संशोधन-कार्य में बड़ा परिश्रम करना पड़ा। कांग्रेस के तत्कालीन प्रधान मंत्री आचार्य कृपलानी ने भी इस पर विशेष परिश्रम किया। इन तथा अन्य मित्रों को, जिन्होंने इस जिम्मेदारी के काम में मेरी मदद की, मैं धन्यवाद देता हूँ। लिखना आसान है—जिस तरह भवन-निर्माण सरल है, पर उसे साफ-सुथरे रूप में पेश करने में बड़े ध्यान और शक्ति की जरूरत होती है।

इस पुस्तक में सन १९४७ के बाद की घटनाओं का समावेश नहीं किया गया है। सन् ४७ में देश स्वतंत्र हो गया। तब से देश के शासन की बागडोर एक पार्टी के हाथ में आ गई। स्वभावतः यह पार्टी कांग्रेस थी। इसका परिणाम यह हुआ कि अब देश का दैनिक शासन और कांग्रेस की दैनिक गति-विधियाँ न केवल एकाकार हो गई हैं, अपितु वह एक-दूसरे से संबद्ध एवं अन्योन्याश्रित भी हो गई हैं। इसलिए स्वाधीनता के आगमन के बाद से इतिहास की शृंखला को जारी रखने का दायित्व उन लोगों पर है, जो शासन-संचालन से निकट संबंध रखते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि इस कार्य में वे कांग्रेस के उन नेताओं का भी सहयोग प्राप्त करें, जिन्होंने मौजूदा इतिहास को सर्वांगीण रूप से प्रभावित किया है।

१५ अगस्त १९४७ एक तरह से गंगा और यमुना के संगम का प्रतीक है, जिसके बाद दोनों नदियाँ मिलकर बहती हैं। इस तिथि के बाद देश के विभिन्न क्षेत्रों में जो काम हुआ है, उसे सब जानते हैं।

मुझे आशा है कि इस संक्षिप्त संस्करण का उसी प्रकार स्वागत होगा, जिस प्रकार बड़े संस्करण का हुआ था।

—बी० पट्टाभि सीतारमाय्या

हैदराबाद
२२ अप्रैल, १९५८

विषय-सूची

संक्षिप्त

कांग्रेस का इतिहास

संक्षिप्त संस्करण

कांग्रेस का इतिहास

: १ :

कांग्रेस का जन्म : १८८५

कांग्रेस का इतिहास हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई का इतिहास है। कई सदियों से भारतीय राष्ट्र विदेशियों का गुलाम बना हुआ था। उन दिनों वह जिस गुलामी में फंसा हुआ था उसका आरम्भ भारतवर्ष में एक व्यापारी कम्पनी के पदार्पण करने के साथ हुआ था और उस गुलामी से देश को मुक्त करने के लिए पिछले ५० वर्षों में कांग्रेस ने पूर्ण प्रयत्न किया था।

१८५७ से पहले की स्थिति

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापारिक और राजनैतिक दौरदौरा भारत में कोई सौ वर्षों तक रहा। इसी बीच उसने भारत के बड़े-बड़े भागों पर अपना कब्जा कर लिया और व्यापारी की जगह वह एक राज-शक्ति बन गई। १७७२ के बाद ब्रिटिश पार्लमेण्ट समय-समय पर उसके कामों की जांच-पड़ताल करने लगी और उसको नया अधिकार-पत्र दिया जाने लगा। नया अधिकार-पत्र देने के पहले जब-जब जांच-पड़ताल की गई, तब-तब उसके फलस्वरूप दूरगामी परिणाम लानेवाले कुछ-न-कुछ सिद्धान्तों का निरूपण तो अवश्य किया जाता था, परन्तु वे सिर्फ कागज पर ही लिखे रह जाते थे। कई बार यह नीति निश्चित की गई कि कम्पनी के एजेण्ट अपने-अपने इलाकों की सीमा बढ़ाने की कोशिश न करें, परन्तु हर बार कोई-न-कोई ऐसा मौका निकाल लिया जाता था जिससे इस आदेश का पालन न होता था और उनके इलाके की सीमा बढ़ती ही चली जाती थी। इस प्रकार उन्होंने अपने छल-कपट से अटूट धन-सम्पत्ति प्राप्त कर ली थी, जिसने आगे चलकर उनके लिए एक बड़ी पूंजी का काम दिया और जिसके बल पर इंग्लैण्ड स्टीम-एंजिन चलाने तथा १९ वीं सदी में दुनिया में अपना औद्योगिक प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हो सका।

१७७४ में रेग्युलेटिंग एक्ट पास हुआ और कम्पनी के कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स (संचालक-सभा) के ऊपर बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल (नियामक मण्डल) और कौंसिल सहित एक गवर्नर जनरल की नियुक्ति हुई। तब गोया ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने पहले-पहल भारतीय क्षेत्रों के शासन की कुछ जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। धीरे-धीरे यह नियन्त्रण बढ़ता गया और १७८५ में एक दूसरा कानून पास हुआ। १७९३, १८१३, १८३३ और १८५३ में जांच करने के बाद नये चार्ट दिए गये। १८३३ में एक नया कानून बनाया गया। इस कानून के द्वारा कम्पनी का भारत में व्यापार करने का अधिकार उठा दिया गया और इसके बाद से वह एक पूरी शासक-सत्ता के रूप में सामने आ गई।

इसी समय भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रवेश करने या न करने के विषय में एक चर्चा उठ खड़ी हुई। भारतीयों में राजा राममोहन राय और अंग्रेजों में मेकाले अंग्रेजी शिक्षा देने के जबर्दस्त समर्थक थे। अन्त में भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य के स्थान पर अंग्रेजी भाषा के पक्ष में निर्णय हुआ और उस शिक्षा-पद्धति की नींव पड़ी जो भारत में आजतक प्रचलित है।

उन दिनों अंग्रेजों-द्वारा चलाये समाचार-पत्रों के अतिरिक्त देशी समाचार-पत्र न थे। इनमें भी बाज-बाज पत्रकारों को देश-निकाला तक भुगतना पड़ा था। गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेण्टिंक की नीति समाचार-पत्रों के प्रति नरम थी। उनके उत्तराधिकारी सर चार्ल्स मेटकॉफ ने भी समाचार-पत्रों पर से पाबन्दियां उठा ली थीं। फिर, १८५७ के पश्चात् लॉर्ड लिटन के वाइसराय होने तक समाचार-पत्र इसी खतरे में रहे।

१८३३ और ५३ के बीच पंजाब और सिंध जीत लिए गये। लॉर्ड डलहौजी की नीति ने कम्पनी का इलाका बहुत बढ़ा दिया। लॉर्ड डलहौजी ने कई लावारिस राजाओं की रियासतें भी जब्त कर लीं। इसके सिवा आर्थिक शोषण भी जारी था, जिससे लोग कंगाल होते जा रहे थे। यह बात लोगों को चुभ रही थी और वे मन-ही-मन कुढ़ रहे थे। नतीजा यह हुआ कि १८५७ में उन्होंने विदेशी शासन के जुए को फेंक देने का आखिरी सशस्त्र प्रयत्न किया। इससे यह प्रतीत होता है कि यह आन्दोलन १७५७ के पलासी-युद्ध के बाद सौ वर्षों तक भारत में जो कुछ घटनाएं घटती रहीं, उनके परिणाम का द्योतक था। यही नहीं, बल्कि वह प्रत्येक देश और जाति के मानव-हृदय की इस प्राकृतिक अभिलाषा को भी सूचित करता था कि हम अपने ही लोगों-द्वारा शासित हों, दूसरों-द्वारा हर्गिज नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि आन्दोलन बेकार गया, परन्तु उसके साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी तिरोहित हो गई और भारत सरकार का शासन-सूत्र सीधा ब्रिटिश पार्लमेंट के हाथों में आगया। इस अवसर पर महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा प्रकाशित

की, जिससे शांति और विश्वास का वातावरण पैदा हुआ और लोग यह समझने लग गये कि भारत में अंग्रेजी राज्य ईश्वर की एक देन है।

अशान्ति और मि० ह्यूम की चिन्ता

ब्रिटिश पार्लमेंट के हाथ में शासन-सूत्र चले जाने के बाद भी भारत-सरकार की गति-विधि पहले ही की तरह जारी रही। १८३३ के कानून के अनुसार, भारत-वासी उन तमाम जगहों पर लेने के योग्य करार दिए गये जिनके लिए वे उपयुक्त समझे जाते थे। १८५३ में, जब चार्टर विचाराधीन था, पार्लमेंट में यह बात खुले आम कही जाती थी कि १८३३ के कानून ने यद्यपि भारतवासियों को नौकरियां देने का रास्ता खोल दिया है, फिर भी उनको अभी तक वे जगहें नहीं दी गई हैं जो इस कानून के पहले उन्हें दी जा सकती थीं। जब १८५३ में सिविल सर्विस के लिए प्रतिस्पर्द्धी परीक्षा जारी की गई थी तब इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया था कि इससे भारतीयों के रास्ते में बड़ी रुकावटें पेश आएंगी; क्योंकि उनके लिए इंग्लैंड जाकर अंग्रेज लड़कों के साथ अंग्रेजी भाषा और साहित्य की परीक्षाओं में बाजी मार ले जाना असंभव होगा और वह भी उन नौकरियों के लिए जो आम तौर पर बहुत दुर्लभ थीं। परन्तु इस बाधा के रहते हुए भी कुछ भारतीय समुद्र पार गये और उन्होंने सफलता प्राप्त की। इसी बीच लॉर्ड सेल्सबरी ने परीक्षा में बैठने की उम्र कम कर दी। इससे भारतीयों को लेने के देने पड़ गये। क्योंकि उधर वह अंग्रेजों की सहायता से भारत और इंग्लैंड के साथ-साथ परीक्षा ली जाने की पुकार मचा रहे थे, इधर लॉर्ड लिटन ने देशी-भाषा के समाचार-पत्रों का मुंह बन्द कर दिया था। उन्होंने एक शस्त्र-कानून भी पास किया था, जिसके अनुसार न केवल भारतीयों के हथियार रखने के अधिकार छीन लिये गए थे, बल्कि भारतीयों और अंग्रेजों के बीच एक और जहरीला भेद-भाव पैदा कर दिया था। इन राजनीतिक चालों के साथ-साथ अकालों का भी दौर-दौरा था। अनाज की कमी तो नहीं थी, परन्तु उसे खरीदने के साधन बहुत कम थे। इन अकालों से देश में हजारों-लाखों आदमी काल के ग्रास हो गये थे। इसके अलावा अफगान युद्ध हुआ, जिसमें बहुत व्यय उठाना पड़ा। किसान भी पीड़ित थे। उनकी गहरी शिकायतें थीं। परन्तु उनकी सुनवाई नहीं होती थी। सन् १८८० के आरंभ तक देश की दशा का वर्णन करते हुए सर लॉर्ड विलियम वेडरबर्न कहते हैं कि नौकर-शाही ने केवल नई सुविधाओं के रोकने में ही अपनी तरफ से कोर-कसर नहीं रखी, बल्कि जब-जब मौका मिला पिछले विशेषाधिकार भी छीन लिए गये; जैसे प्रेस की स्वाधीनता, सभाएँ करने का अधिकार, म्युनिस्पल-स्वराज्य और विश्वविद्यालयों की स्वतन्त्रता। वह लिखते हैं—"एक तो ये अशुभ और प्रतिगामी कानून, दूसरे रूस-जैसा पुलिस का दमन। इससे लॉर्ड लिटन के समय में भारत

में कोई क्रान्तिकारी विस्फोट होने ही वाला था कि मि० ह्यूम को ठीक मौके पर सूझी और उन्होंने इस काम में हाथ डाला।"

मि० ह्यूम के पास राजनैतिक अशान्ति का अकाटय प्रमाण था। उनके हाथ ऐसी रिपोर्टों की ७ जिल्दें लगी थीं, जिनमें भिन्न-भिन्न जिलों के अन्दर बगावत के भाव फैलने का वर्णन था। ये रिपोर्टें जिला, तहसील और सब-डिवीजन के अनुसार तैयार की गई थीं और शहर, कस्बे और गांव भी उनमें शामिल थे। इसका यह अर्थ नहीं कि कोई सुसंगठित विद्रोह जल्दी होनेवाला था, बल्कि यह कि लोगों में निराशा छाई हुई थी, वे कुछ-न-कुछ कर गुजरना चाहते थे।

कांग्रेस का जन्म

उक्त परिस्थियों पर विचार करने के पश्चात् ह्यूम साहब ने इस अशान्ति को प्रकट करने का एक सरल उपाय ढूंढ़ निकाला। उनके दिमाग में यह ख्याल आया कि भारतीयों की एक राष्ट्रीय सभा कायम की जाय। इस विचार से उन्होंने १ मार्च १८८३ ई० को कलकत्ता-विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों के नाम एक ऐसा पत्र लिखा, जो अत्यन्त मार्मिक था। उसमें उन्होंने ५० ऐसे आदमियों की मांग की जो भले, सच्चे, निःस्वार्थ, आत्म-संयमी तथा नैतिक साहस रखनेवाले और दूसरों का हित करने की तीव्र भावना रखनेवाले हों। उनका अनुमान था कि यदि सिर्फ ५० भले और सच्चे आदमी संस्थापक के रूप में मिल जायं तो सभा स्थापित हो सकती है और आगे का काम आसान हो सकता है। इन लोगों के आदर्श के संबंध में उनका विचार था कि सभा का विधान जनसत्तात्मक हो, सभा के लोग व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से परे हों और उनका यह सिद्धान्त हो, कि जो सबसे बड़ा हो वही सेवक हो। अपने पत्र में उन्होंने गोल-मोल बातें नहीं कीं; बल्कि साफ शब्दों में कह दिया कि यदि आप अपना सुख-चैन नहीं छोड़ सकते तो कम-से-कम फिलहाल हमारी प्रगति की सारी आशा व्यर्थ है और यह कहना होगा कि भारत सचमुच वर्तमान सरकार से बेहतर शासन न तो चाहता है और न उसके योग्य ही है। इस स्मरणीय पत्र का अन्तिम भाग इस प्रकार था:—

"जो मनुष्य होते हैं वे जानते हैं कि काम कैसे करना चाहिये, इसलिए अब से आप इस बात की शिकायत न कीजिएगा कि बड़े-बड़े ओहदों पर आपकी बनिस्बत अंग्रेजों को क्यों तरजीह दी जाती है; क्योंकि आप में वह सार्वजनिक सेवा का भाव नहीं है; वह उच्च प्रकार की परोपकार-भावना नहीं है, जो सार्वजनिक हित के सामने व्यक्तिगत ऐशोआराम को छोटा बना देती है; वह देशभक्ति का भाव नहीं है जिसने अंग्रेजों को वैसा बना दिया है जैसे कि वे आज हैं। और मैं कहूंगा कि वे ठीक ही आपकी जगह तरजीह पाते हैं और उनका लाजिमी तौर पर आपका शासक बन जाना भी ठीक है; बल्कि वे आगे भी आपके अफसर बने

रहेंगे, और आपके कन्धों पर रक्खा यह जुआ तबतक दुखदायी होगा जबतक कि आप इस चिर-सत्य को अनुभव नहीं कर लेते और इसके अनुसार चलने की तैयारी नहीं कर लेते कि आत्म-बलिदान और निःस्वार्थ सेवा ही सुख और स्वातन्त्र्य के अचूक पथ-प्रदर्शक हैं।"

पूर्व-प्रयत्न और संस्थाएँ

कांग्रेस के जन्म से संबंध रखनेवाली ब्योरेवार बातों का वर्णन करने के पहले यदि हम कांग्रेस-काल के पहले के उन संस्थाओं का नाम-स्मरण कर लें तो अनुचित नहीं होगा, जिनके क्रिया-कलाप ने एक तरह से देश में सार्वजनिक जीवन की बुनियाद डाली है। सबसे पहले बंगाल के **ब्रिटिश इण्डियन एसोशियेशन** का नाम आता है। १८५१ में उसकी स्थापना की गई थी और यह वह संस्था थी जिसके नाम की छाया में डा० राजेन्द्रलाल मित्र और रामगोपाल घोष जैसे व्यक्ति बीसों साल तक काम करते रहे थे। यह एसोशियेशन खुद भी कोई पचास साल तक देश में एक सजीव शक्ति बना रहा। इसके पश्चात् बम्बई में सार्वजनिक कार्य की संस्था **बाम्बे एसोशियेशन** थी। बंगाल के एसोशियेशन के मुकाबिले में उसने थोड़े समय तक ही जोर-शोर से कार्य किया। उसके नेता सर मंगलदास नाथूभाई और श्री नौरोजी फरूंदजी थे। दादा भाई नौरोजी और जगन्नाथ शंकर शेठ ने उसकी स्थापना की थी; परन्तु बाद में **ईस्ट इण्डिया एसोशियेशन** ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया था। मद्रास में सार्वजनिक सेवा की वास्तविक शुरुआत **हिन्दू** के द्वारा हुई, जिसके संस्थापकों में एम० वीर राघवाचार्य, माननीय रंगैया नायडू, जी० सुब्रह्मण्य ऐयर और एन० सुब्बाराव पन्तुलु जैसे गण्य-मान पुरुष थे। महाराष्ट्र में पूना की सार्वजनिक सभा का जन्म प्रायः उसी समय हुआ जब कि **हिन्दू** का हुआ था और उसके द्वारा रायबहादुर नुकलर और श्री चिपलूणकर जैसे प्रसिद्ध पुरुष सार्वजनिक कार्य करते थे।

बंगाल में, १८७६ में **इण्डियन एसोशियेशन** की स्थापना हुई, जिसके जीवन-प्राण सुरेन्द्र नाथ बनर्जी थे और जिसके पहले मंत्री थे आनन्दमोहन बसु। यह ध्यान में रखना होगा कि इस कांग्रेस-पूर्व-काल में भी यद्यपि सार्वजनिक जीवन सुसंगठित नहीं हो पाया था तथापि उसका असर अधिकारियों पर होने लगा था। समाचार-पत्र उस जीवन का एक प्रभावशाली अंग था। १८५७ में लगभग ४७५ समाचार-पत्र थे, जिनमें से अधिकांश प्रान्तीय भाषाओं में निकलते थे। इन्हीं दिनों देश के सुदैव से सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सिविल सर्विस से मुक्त होकर उत्तरी भारत के पंजाब और उत्तर प्रदेश में राजनैतिक यात्रा की। वह १८७७ के प्रसिद्ध दिल्ली-दरबार में भी सम्मिलित हुए थे और वहां देश के राजा-महाराजाओं और अग्रगण्य लोगों से मिले थे। यह माना जाता है कि उसी

दरबार में देश के राजा-महाराजाओं और गण्य-मान्य लोगों को एक जगह एकत्र देखकर ही पहले-पहल सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के मन में यह प्रेरणा उठी थी कि एक देश-व्यापी राजनैतिक संगठन बनाया जाय। १८७८ में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बम्बई और मद्रास प्रान्त की यात्रा की जिसका उद्देश्य यह था कि लॉर्ड सेल्सबरी ने सिविल सर्विस की परीक्षा की उम्र घटाकर जो १९ साल कर दी थी, उसके खिलाफ लोकमत जाग्रत किया जाय और इस विषय पर कामन-सभा में पेश करने के लिए सारे देश की तरफ से एक मेमोरियल तैयार किया जाय।

इसी समय लार्ड लिटन के प्रतिगामी शासन का बीजारोपण हुआ। उनके जमाने में (१८७८) वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट बना, अफगान-युद्ध हुआ, बड़ा खर्चीला दरबार किया गया और १८७७ में ही कपास-आयात-कर उठा दिया गया। लार्ड लिटन के बाद लार्ड रिपन का समय आया। उन्होंने अफगानिस्तान के अमीर के साथ सुलह की, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट को रद्द किया, स्थानीय स्वराज्य का आरंभ किया और इलबर्ट बिल उपस्थित करके एक नये युग का श्रीगणेश किया। यह आखिरी बिल भारत सरकार के तत्कालीन लॉ मेम्बर मि० इलबर्ट ने १८८३ में उपस्थित किया था। इसका उद्देश्य यह था कि हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेटों पर से वह रुकावट उठा ली जाय जिसके द्वारा वे यूरोपियन और अमेरिकन अपराधियों के मुकदमे फैसल नहीं कर सकते थे। इस पर गोरे लोग इतने बिगड़े कि कुछ लोगों ने तो गवर्नमेंट हाउस के मंत्रियों को मिलाकर वाइसराय को जहाज-द्वारा इंग्लैंड भेजने की एक साजिश ही कर डाली। नतीजा यह हुआ कि असली बिल उसी साल करीब-करीब हटा लिया गया और उसकी जगह यह सिद्धान्त भर मान लिया गया कि सिर्फ जिला-मजिस्ट्रेट और दौरा जज को ही ऐसा अधिकार रहेगा। इस बिल के संबंध में गोरे लोगों को जो सफलता मिल गई उससे भारतीय जाग उठे। उन्होंने शीघ्र ही इस बिल के विरोध का आन्तरिक हेतु पहचान लिया। गोरे यह मनवाना चाहते थे कि भारत पर गोरी जातियों का प्रभुत्व है और वह सदा रहेगा। उनके इस विचार ने भारत के तत्कालीन देश-सेवकों को संगठन के महत्व का पाठ पढ़ाया और उन्होंने तुरन्त ही १८८३ में कलकत्ता के अलबर्ट-हाल में एक राजनैतिक परिषद् की आयोजना की, जिसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनन्दमोहन वसु दोनों उपस्थित थे। इस सभा में सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने अपने भाषण में खासतौर पर इस बात का जिक्र किया कि किस तरह दिल्ली दरबार ने उनके सामने एक राजनैतिक संस्था, जो भारत के हित-साधन में तत्पर रहे, बनाने का नमूना पेश किया था। इसके दूसरे ही वर्ष कलकत्ते में अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् हुई जिससे अखिल भारतीय कांग्रेस स्थापित करने की प्रेरणा मिली। १८८१ में **मद्रास-महाजन सभा** की स्थापना हुई और मद्रास में प्रांतीय परिषद् का अधिवेशन हुआ। पश्चिमी भारत में ३१ जनवरी, १८८५

को महता, तैलंग और तैयबजी की मशहूर मण्डली ने मिलकर **बाम्बे प्रेसीडेंसी एसोसियेशन** कायम किया।

पूर्वोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष मन-ही-मन किसी अखिल-भारतीय संगठन की आवश्यकता का अनुभव कर रहा था। यह तो अभी तक एक रहस्य ही है कि अखिल-भारतीय कांग्रेस की कल्पना वास्तव में किसके मस्तिष्क से निकली? १८७७ के दरबार या कलकत्ते की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी के अतिरिक्त **थियोसोफिकल कनवेन्शन** का भी नाम इस विषय में लिया जाता है जो दिसम्बर १८८४ में मद्रास में हुआ था। वहां १७ आदमियों की एक खानगी सभा हुई जिसमें यह बात सोची गई। मि० एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम ने सिविल सर्विस से अवसर प्राप्त करने के बाद जो **इण्डियन यूनियन** कायम की थी, वह भी कांग्रेस के जन्म का एक निमित्त बतलाई जाती है। जो भी हो, मि० ए० ओ० ह्यूम ने इसमें सबसे पहले कदम बढ़ाया और २३ मार्च १८८५ में इसके सम्बन्ध में पहला नोटिस जारी किया, जिसमें बताया गया कि अगले दिसम्बर में, पूना में इण्डियन नेशनल यूनियन का पहला अधिवेशन किया जायगा। इस तरह अब तक जो एक अस्पष्ट कल्पना वातावरण में पंख फटफटा रही थी और जो उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, सभी जगह के विचारशील भारतवासियों के विचारों को गति दे रही थी उसने अब एक निश्चित रूप धारण कर लिया और वह एक व्यावहारिक कार्यक्रम के रूप में देश के सामने आ गया।

कांग्रेस का प्रारंभिक लक्ष्य

कांग्रेस के जन्म के कारणों में केवल उक्त राजनैतिक शक्तियाँ और राजनैतिक गुलामी का भाव ही नहीं था। इसमें कोई शक नहीं कि कांग्रेस का एक राजनैतिक उद्देश्य था, परन्तु साथ ही वह राष्ट्रीय पुनरुत्थान के आन्दोलन का प्रतिपादन करनेवाली संस्था भी थी। कांग्रेस के जन्म से पहले, ५० या इससे भी ज्यादा वर्षों से, भारत में राष्ट्रीय नवयौवन का खमीर उठ रहा था। सच पूछिए तो राष्ट्रीय जीवन राजा राममोहन राय के समय से विविध रूपों में परिपक्व हो रहा था। राजा राममोहन राय को हम एक तरह से भारत की राष्ट्रीयता का पैगम्बर और आधुनिक भारत का पिता कह सकते हैं। उनका जन्म १७७६ में हुआ और मृत्यु ब्रिस्टल में १८३३ में हुई। भारत के दो बड़े सुधारों के साथ उनका नाम जुड़ा है—एक तो सती या सहगमन-प्रथा का मिटाया जाना और दूसरा भारत में पश्चिमी-शिक्षा का प्रचार। लार्ड विलियम बेण्टिक ने, १८३५ में पश्चिमी शिक्षा-प्रचार के पक्ष में जो निर्णय कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स की सिफारिश के खिलाफ दिया था उसका बहुत बड़ा कारण यह था कि राजा राममोहन राय खुद पश्चिमी शिक्षा के अनुरागी और पक्षपाती थे। अपने जीवन के अन्तिम

समय में वह इंग्लैंड गये थे। उनमें स्वाधीनता-प्रेम इतना प्रबल था कि जब वह 'केप ऑफ गुड होप' पहुँचे तब उन्होंने फ्रांसीसी जहाज पर जाने का आग्रह किया जिस पर स्वाधीनता का झण्डा फहरा रहा था। वह चाहते थे कि उस झण्डे का अभिवादन करें और ज्यों ही उन्हें उस झंडे के दर्शन हुए, उनके मुंह से झंडे की जय-ध्वनि निकल पड़ी। यद्यपि वह इंग्लैण्ड में मुख्यतः मुगल-सम्राट् के राज-दूत बन कर लन्दन में उनका काम करने गये थे, तो भी उन्होंने कामन-सभा की समिति के सामने भारतवासियों के कुछ जरूरी कष्ट भी पेश किये थे। १८३२ में जब चार्टर एक्ट पार्लमेंट में पेश था तब उन्होंने यह प्रण किया था कि यदि यह बिल पास न हुआ तो मैं ब्रिटिश प्रदेश में रहना छोड़ दूंगा और अमरीका जाकर बस जाऊंगा। अपने समय में ही उन्होंने अखबारों पर और छापेखानों पर हुआ बहुत बुरा दमन देख लिया था और सुप्रीम कोर्ट में इसका घोर विरोध किया था। उन्होंने दो वकील अपनी ओर से उसमें खड़े किए थे और जब वहां उन्हें कामयाबी नहीं हुई तब उन्होंने इंग्लैण्ड के बादशाह के नाम एक सार्वजनिक दरखास्त भेजी थी। इसमें शक नहीं उस समय उससे भी कुछ मतलब न निकला, लेकिन जो बीज वह बो चुके थे उसका फल १८३५ में निकला, जब सर० चार्ल्स मेट्कॉफ ने हिन्दुस्तानी पत्रों को आजाद कर दिया।

प्रथम राष्ट्रीय क्रान्ति के बाद १८५८ में, विश्वविद्यालय कायम हुए और १८६१ से १८६३ तक हाईकोर्ट और कौंसिलें भारत में बनाई गईं। इसके कुछ पहले ही विधवा-विवाह कानून बना था। यह समाज-सुधार की दिशा में एक कदम था। इसके बाद १८६० से १८७० तक पश्चिमी शिक्षा और साहित्य का सम्पर्क बढ़ता गया। पश्चिमी कानून-संस्थाएँ और पार्लमेंटरी तरीके दाखिल हुए जिससे कानून और कौंसिलों के क्षेत्र में एक नये युग का जन्म हुआ। राजा राममोहन राय के समय में धार्मिक सुधार के जो बीज बोये गये थे वे थोड़े ही समय में अपनी शाखा-प्रशाखाएँ फैलाने लगे। उनके बाद केशवचन्द्र सेन पर उनके काम की जिम्मेदारी आ पड़ी। उन्होंने दूर-दूर तक ब्रह्म-समाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया और उसके मतों पर नवीन प्रकाश डाला। उन्होंने मद्यपान-निषेध के आन्दोलन को हाथ में लिया। १८७२ के 'ब्रह्म मैरेज एक्ट-३' को पास कराने में उनका बहुत हाथ था। इस कानून के द्वारा बाल-विवाह मिट गया, बहु-विवाह को अपराध करार दिया गया और विधवा-विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह की छूट मिल गई। परन्तु कुछ ही समय में ब्रह्म समाज में मत-भेद फैल गया। इसका मुख्य कारण था केशवचन्द्र सेन की कन्या का बाल्यावस्था में कूचविहार के महाराज के साथ विवाह! इसपर उनके साथियों ने बहुत विरोध किया, जिसका फल यह हुआ कि आनन्दमोहन वसु के नेतृत्व में 'साधारण ब्रह्म समाज' के नाम से ब्रह्म-समाज की एक नई शाखा बन गई।

यहां यह याद रखना चाहिए कि यही आनन्दमोहन वसु आगे चलकर १६६८ में कांग्रेस के सभापति हुए थे।

बंगाल के ब्रह्म-समाज का प्रभाव सारे भारत पर पड़ा। पूना में प्रार्थना-समाज के नाम से महादेव गोविन्द रानडे के नेतृत्व में यह आन्दोलन शुरू हुआ। यही रानडे समाज-सुधार आन्दोलन के जनक थे, जो वर्षों तक कांग्रेस का एक अंग बनकर चलता रहा। इस सुधार-आन्दोलन में भूतकाल के प्रति एक प्रकार की श्रद्धा और प्राचीन परम्पराओं और विषयों के प्रति बगावत के भाव भरे हुए थे और इसका कारण था पश्चिमी संस्थाओं का जादू एवं उनके साथ चिपकी हुई राजनैतिक प्रतिष्ठा। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में उत्तर-पश्चिम में आर्य-समाज और मद्रास में थियोसोफिकल आन्दोलनों ने अपने धर्म, आदर्श और संस्कृति से दूर ले जानेवाली पश्चिमी-शिक्षा-द्वारा उत्पन्न प्रभाव को दबा दिया। यों तो ये दोनों आन्दोलन उत्कट रूप में राष्ट्रीय थे, फिर भी आर्य-समाज में देशभक्ति के भाव बहुत प्रबल थे। आर्य-समाज वेदों की अपौरुषेयता और वैदिक-संस्कृति की श्रेष्ठता का जबरदस्त हामी होते हुए भी उदार सामाजिक सुधार का विरोधी न था। इस प्रकार राष्ट्र में एक तेजस्वी मनुष्यत्व का विकास हुआ, जो हमारी पूर्व परम्परा और आधुनिक वातावरण दोनों के श्रेष्ठत्व का सामंजस्य था। जिस तरह ब्रह्म-समाज ने बहुदेववाद, मूर्ति-पूजा और बहु-विवाह के विरुद्ध लड़ाई लड़ी, उसी तरह आर्य-समाज ने भी हिन्दू-समाज की कुछ प्रचलित बुराइयों और हिन्दुओं के धार्मिक अन्धविश्वासों से लड़ाई ठानी। यहां भी, जैसा कि भय था, आर्य-समाज में दो दल खड़े हुए—एक गुरुकुल-पन्थी और दूसरा कालेज-पन्थी। गुरुकुल-पन्थी ब्रह्मचर्य और धार्मिक सेवा के वैदिक आदर्शों को मानते थे; और कालेज-पंथी आधुनिक ढंग की शिक्षा-संस्थाओं-द्वारा एक हद तक पश्चिमी सभ्यता का संचार करके समाज में नवजीवन डालना चाहते थे। एक के प्रवर्त्तक थे अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी, और दूसरे के थे देश-वीर लाला लाजपतराय। थियोसोफिकल आन्दोलन में यद्यपि विश्वव्यापी सहानुभूति और अध्ययन की विशेषता थी तो भी पूर्वीय संस्कृति में जो कुछ महान् और गौरव-मय है उसके आविष्करण और पुनरुज्जीवन पर उसमें खास जोर दिया जाता था। इसी प्रबल भावना को लेकर श्रीमती बेसेण्ट ने भारत के पुण्यधाम काशी में एक कालेज शुरू किया। इस तरह थियोसोफिकल प्रवृत्तियों के द्वारा एक ओर जहां विश्वबन्धुत्व की भावना बढ़ने लगी वहां दूसरी ओर पश्चिम के बुद्धिवाद की श्रेष्ठता का दौर-दौरा कम हुआ और उसकी जगह संस्कृति का एक नया केन्द्र स्थापित हुआ जहां फिर से इस प्राचीन भूमि में पश्चिमी देशों के विद्वज्जन खिच-खिच कर आने लगे।

राष्ट्रीय पुनरुत्थान का अंतिम रूप जो कांग्रेस की स्थापना के पहले भारतवर्ष में दिखाई दिया, वह है बंगाल के श्री रामकृष्ण परमहंस का युग। स्वामी

विवेकानन्द उनके पट्ट-शिष्य थे, जिन्होंने उनके उपदेशों का प्रचार पूर्व और पश्चिम दोनों जगह किया। रामकृष्ण-मिशन न तो कोरे योग-साधकों की और न केवल भौतिक-वादियों की संस्था है, बल्कि एक ऐसा आध्यात्मिक आदर्श रखनेवाली संस्था है जो लोक-संग्रह या समाज-सेवा के महान् कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं करती। उसने संसार के विभिन्न राष्ट्रों के सामने उपस्थित सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों को सुलझाने के लिए कुंजी का भी काम दिया है। ये तमाम हलचलें, सच पूछिये तो भारत की राष्ट्रीयता के इस धागे में लगे भिन्न-भिन्न सूतों के समान हैं। भारत का यह कर्त्तव्य था कि इनमें एकसा सामंजस्य पैदा करे जिससे पूर्व-दूषित विचार और अन्ध-विश्वास दूर होकर प्राचीन वेदान्त-मत की संशुद्धि हो, वह नवीन तेज से लहलहा उठे और नवीन युग के राष्ट्र-धर्म से उसका मेल बैठ सके। कांग्रेस का जन्म इसी महान् कार्य की पूर्त्ति के लिए हुआ था।

भारत और इंग्लैण्ड में प्रचार

उक्त परिस्थितियों में ही कांग्रेस की स्थापना हुई। आरंभ में मि० ह्यूम का यह विचार था कि कलकत्ते के इण्डियन एसोसियेशन, बम्बई के प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन और मद्रास की महाजन-सभा जैसी प्रांतीय संस्थाएँ राजनैतिक प्रश्नों को हाथ में लें और आल इण्डिया नेशनल यूनियन बहुत-कुछ सामाजिक प्रश्नों में ही हाथ डाले। उन्होंने लार्ड डफरिन से इस विषय में सलाह ली, जो कि हाल ही में वाइसराय बनकर आये थे। वह १८५८ में लार्ड डफरिन से शिमला में मिले और उनसे सभापति होने की प्रार्थना की। लार्ड डफरिन ने उनकी बातों को ध्यान से सुना। उन्होंने मि० ह्यूम से कहा कि मेरी समझ में यह तजवीज, उपयोगी न होगी; क्योंकि इस देश में ऐसा कोई सार्वजनिक मण्डल नहीं है जो इंग्लैण्ड की तरह यहां सरकार के विरोध का काम करे। इसलिए ऐसी दशा में यह अच्छा होगा और इसमें शासक और शासित दोनों का हित है कि यहां के राजनीतिज्ञ प्रति वर्ष अपना सम्मेलन किया करें और सरकार को बताया करें कि शासन में क्या-क्या त्रुटियां हैं और उसमें क्या-क्या सुधार किये जायं। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे सम्मेलन का सभापति स्थानीय गवर्नर न होना चाहिए, क्योंकि उसके सामने सम्भव है, लोग अपने सही विचार प्रकट न करें। मि० ह्यूम को लार्ड डफरिन की यह दलील जंची और जब उन्होंने कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और दूसरी जगहों के राजनीतिज्ञों के सामने उसे रक्खा तब उन्होंने भी लार्ड डफरिन की सलाह को एक स्वर से पसन्द कर लिया तथा उसके अनुसार कार्रवाई भी शुरू कर दी। लार्ड डफरिन ने मि० ह्यूम से यह शर्त करा ली थी कि जबतक मैं इस देश में हूँ तबतक इस सलाह के बारे में मेरा नाम कहीं न लिया जाय। मि० ह्यूम ने इसका पूरी तरह पालन भी किया।

मार्च १८८५ में यह तय हुआ कि बड़े दिनों की छुट्टियों में देश के सब भागों के प्रतिनिधियों की एक सभा की जाय। पूना इसके लिए सबसे उपयुक्त जगह समझी गयी। इस बैठक के लिए एक गश्ती पत्र जारी किया गया जिसमें कहा गया कि २५ से ३१ दिसम्बर, १८८५ तक पूना में इण्डिन नेशनल यूनियन की एक परिषद् की जायगी। इसमें बंगाल, बम्बई और मद्रास प्रदेशों के अंगरेजीदां प्रतिनिधि, अर्थात् राजनीतिज्ञ सम्मिलित होंगे। इस परिषद के प्रत्यक्ष उद्देश्य होंगे : (१) राष्ट्र की प्रगति के कार्य में जी-जान से लगे हुए लोंगो का एक-दूसरे से परिचय हो जाना और (२) इस वर्ष कौन-कौन से राजनैतिक कार्य अङ्गीकार किये जायं इसकी चर्चा करके निर्णय करना। अप्रत्यक्ष-रूप से यह परिषद् एक देशी पार्लमेंट का बीज-रूप बनेगी और यदि इसका कार्य सुचारु-रूप से चलता रहा तो थोड़े ही दिनों में इस आक्षेप का मुंहतोड़ जवाब होगा कि हिन्दुस्तान प्रतिनिधि-शासन-संस्थाओं के बिल्कुल अयोग्य है।

इस तरह अपने को वाइसराय के आशीर्वाद से सुरक्षित करके ह्यूम साहब इङ्गलैण्ड पहुंचे और उन्होंने वहां लार्ड रिपन, लार्ड डलहौजी, सर जेम्स कअर्ड, जॉन ब्राइट, मि० रीड, मि० स्लेग और दूसरे प्रसिद्ध पुरुषों से विचार-विनिमय किया। उनकी सलाह से उन्होंने वहां एक संगठन किया जो आगे चलकर इंग्लैण्ड में इण्डियन पार्लमेंटरी कमेटी के रूप में परिणत हो गया। इसका उद्देश्य था पार्लमेण्ट के उम्मीदवारों से यह प्रतिज्ञा करवाना कि वे भारत के मामलों में दिलचस्पी लेंगे। उन्होंने वहां एक इण्डियन टेलीग्राफ यूनियन भी बनाई। इसका उद्देश्य था इंग्लैण्ड के प्रधान-प्रधान प्रान्तीय पत्रों को महत्वपूर्ण विषयों पर तार भेजने के लिए धन संग्रह करना।

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन : १८८५

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन का अत्यन्त रोचक वर्णन श्रीमती बेसेण्ट ने अपनी 'हाऊ इण्डिया रॉट फॉर फ्रीडम' नामक पुस्तक में किया है। वह लिखती हैं :—"लेकिन पहला अधिवेशन पूना में नहीं हुआ, क्योंकि बड़े दिन के पहले ही वहां हैजा शुरू हो गया और यह ठीक समझा गया कि परिषद्, जिसे अब कांग्रेस कहते हैं, बम्बई में की जाय। गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज और छात्रालय के व्यवस्थापकों ने अपने विशाल भवन कांग्रेस के हवाले कर दिये और २७ दिसम्बर की सुबह तक भारतीय राष्ट्र के प्रतिनिधियों का स्वागत करने की पूरी तैयारी हो गई। २८ दिसम्बर, १८८५ को दिन के १२ बजे गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज के भवन में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ। पहली आवाज सुनाई पड़ी ह्यूम साहब की, माननीय एस० सुब्रह्मण्य ऐयर की और माननीय काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग की। ह्यूम साहब ने श्री उमेश बनर्जी के सभापतित्व

का प्रस्ताव उपस्थित किया और शेष दोनों सज्जनों ने उसका समर्थन और अनुमोदन किया। वह एक अत्यन्त गम्भीर और ऐतिहासिक क्षण था, जिसमें मातृभूमि-द्वारा सम्मानित अनेक व्यक्तियों में से एक व्यक्ति ने प्रथम राष्ट्रीय महासभा के अध्यक्ष का स्थान ग्रहण किया था। कांग्रेस की गुरुता की ओर प्रतिनिधियों का ध्यान दिलाते हुए अध्यक्ष महोदय ने कांग्रेस का उद्देश्य इस तरह बतलाया :—

(क) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश-हित के लिए लगन से काम करनेवालों की आपस में घनिष्ठता और मित्रता बढ़ाना।

(ख) समस्त देश-प्रेमियों के हृदय से प्रत्यक्ष मैत्री-व्यवहार द्वारा वंश, धर्म और प्रान्त सम्बन्धी सम्पूर्ण पूर्व-दूषित संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की समस्त भावनाओं का पोषण और परिवर्धन करना।

(ग) महत्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह चर्चा होने के बाद परिपक्व सम्मतियां प्राप्त हों उनका प्रामाणिक संग्रह करना।

(घ) उन तरीकों और दिशाओं का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देशहित के कार्य करें।

इस प्रथम अधिवेशन में नौ प्रस्ताव पास हुए, जिनके द्वारा भारत की मांगों के बनने की शुरूआत हुई। पहले प्रस्ताव-द्वारा भारत के शासन-कार्य की जांच के लिए एक रायल-कमीशन बैठाने की मांग की गई। दूसरे के द्वारा इण्डिया कौन्सिल को तोड़ देने की राय दी गई। तीसरे प्रस्ताव-द्वारा धारा-सभा की त्रुटियां दिखाई गईं, जिनमें अबतक नामजद सदस्य थे और उनके बजाय चुने हुए रखने की, प्रश्न पूछने का अधिकार देने की, उत्तर प्रदेश और पंजाब में कौंसिल कायम की जाने की और कामन-सभा में स्थायी समिति कायम करने की मांग की गई—इस आशय से कि कौंसिलों में बहुमत से जो विरोध हों उनपर उसमें विचार किया जाय। चौथे प्रस्ताव द्वारा यह प्रार्थना की गई कि आई० सी० एस० की परीक्षा इंग्लैण्ड और भारत में एकसाथ हो और परीक्षार्थियों की उम्र बढ़ा दी जाय। पांचवां और छठा फौजी खर्च से सम्बन्ध रखता था और सातवें में अपर बर्मा को मिला लेने तथा भारत में उसे सम्मिलित कर लेने की तजवीज का विरोध किया गया था। आठवें प्रस्ताव द्वारा यह आदेश दिया गया कि ये प्रस्ताव राजनैतिक सभाओं को भेज दिये जायं। तदनुसार सारे देश में तमाम राजनैतिक मण्डलों और सार्वजनिक सभाओं द्वारा उनपर चर्चा की गई और कुछ मामूली संशोधन के बाद वे बड़े उत्साह से पास किये गये। अंतिम प्रस्ताव में अगले अधिवेशन का स्थान कलकत्ता तय हुआ और ता० २८ दिसम्बर नियत हुई।

कांग्रेस का दावा

जिस प्रकार एक बड़ी नदी का मूल एक छोटे-से सोते में होता है उसी प्रकार महान् संस्थाओं का आरंभ भी बहुत मामूली होता है। जीवन की शुरुआत में वे बड़ी तेजी से दौड़ती हैं, परन्तु ज्यों-ज्यों वे व्यापक होती जाती हैं, त्यों-त्यों उनकी गति मन्द किन्तु स्थिर होती जाती है। ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ती हैं, त्यों-त्यों उनमें सहायक नदियां मिलती जाती हैं और वे उसको अधिकाधिक सम्पन्न बनाती जाती हैं। यही उदाहरण हमारी कांग्रेस के विकास पर भी लागू होता है। उसे अपना रास्ता बड़ी-बड़ी बाधाओं से तय करना था, इसलिए आरम्भ में उसने अपने सामने छोटे-छोटे आदर्श रक्खे; परन्तु ज्यों ही उसे समस्त भारतवासियों के हार्दिक प्रेम का सहारा मिला, उसने अपना मार्ग विस्तृत कर दिया और अपने उदर में देश की अनेक सामाजिक-नैतिक हलचलों का भी समावेश कर लिया। प्रारम्भिक अवस्थाओं में उसके कार्यों में एक किस्म की हिचकिचाहट और शंकाएँ-कुशंकायें दिखाई देती थीं, परन्तु जैसे-जैसे वह बालिग होती गई, वैसे-वैसे उसे अपने बल और क्षमता का ज्ञान होता गया और उसकी दृष्टि व्यापक बनती गई। अनुनय-विनय की नीति को छोड़कर उसने आत्मतेज और आत्मावलम्बन की नीति ग्रहण की। इधर लोक-मत को शिक्षित करने के लिए जोर-शोर से प्रचार-कार्य होने लगे, जिससे देशव्यापी संगठन बन गया—यहां तक कि सीधे हमले तक का कार्य-क्रम बनाना पड़ा। शिकायतों और अपने दुःख-दर्दों को दूर कराने के उद्देश्य से शुरुआत करके कांग्रेस देश की एक ऐसी मान्य संस्था के रूप में परिणत हो गई जो बड़े स्वाभिमान के साथ अपनी मांग भी पेश करने लगी। शीघ्र ही वह भारतवासियों की तमाम राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की एक जबरदस्त और सत्तापूर्ण प्रतिपादक बन गई। उसका दरवाजा सब श्रेणियों और सब जातियों के लोगों के लिए खोल दिया गया। यद्यपि आरंभ में वह उन प्रश्नों को हाथ में लेती हुई संकोच करती थी जो सामाजिक कहे जाते थे, तथापि उचित समय आते ही उसने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया कि जीवन अलग-अलग टुकड़ों में बंटा हुआ है और इस प्राचीन परम्परागत विचार के आगे जाकर, जो जीवन के प्रश्नों को सामाजिक और राजनैतिक सीमाओं में बांध देता है, उसने एक ऐसा सर्वव्यापी आदर्श अपने सामने प्रस्तुत किया, जिसमें कि सारा जीवन, यहां से वहाँ तक, एक और अविभाज्य है। इस तरह कांग्रेस एक ऐसी राजनैतिक संस्था हो गई जिसमें न ब्रिटिश-भारत और देशी-राज्यों का भेद था, न एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त का। उसमें न उच्चवर्ग और जनता का भेद था, न शहर और गांव का; न गरीब-अमीर का भेद था, न किसान-मजदूर और जातपांत तथा मजहबों का। गांधीजी ने दूसरी गोलमेज परिषद् के समय फेडरल स्ट्रक्चर समिति के सामने जो जबर्दस्त वक्तृता

दी थी उसमें उन्होंने कांग्रेस के बारे में ऐसा ही दावा किया था। उन्होंने कहा था :—

"यदि मैं गलती नहीं करता हूँ तो कांग्रेस भारतवर्ष की सबसे बड़ी संस्था है। उसकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की है, और इस अर्से में वह बिना किसी रुकावट के बराबर अपने वार्षिक अधिवेशन करती रही है। सच्चे अर्थों में वह राष्ट्रीय है। वह किसी खास जाति, वर्ग या किसी विशेष हित की प्रतिनिधि नहीं है। वह सर्वमान्य भारतीय हितों और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए यह बताना सबसे बड़ी खुशी की बात है कि उसकी उपज आरम्भ में एक अंग्रेज मस्तिष्क में हुई। एलेन ओक्टेवियन ह्यूम को कांग्रेस के पिता के रूप में हम जानते हैं। दो महान पारसियों—फिरोजशाह मेहता और दादाभाई नौरोजी—ने जिन्हें सारा भारत 'वृद्ध पितामह' कहने में प्रसन्नता का अनुभव करता है, उसका पोषण किया है। आरम्भ से ही कांग्रेस में मुसलमान, ईसाई, गोरे आदि शामिल थे; बल्कि मुझे यों कहना चाहिये कि उसमें सब धर्म, सम्प्रदाय और हितों का थोड़ी-बहुत पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता है। मैं जानता हूं कि कभी-कभी वह अपने इस दावे को कायम रखने में असफल भी हुई है; किन्तु मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि आप कांग्रेस का इतिहास देखें तो आपको मालूम होगा कि असफल होने की अपेक्षा वह सफल ही अधिक हुई है और प्रगति के साथ सफल हुई है। सबस अधिक कांग्रेस मूलरूप में अपने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक ७,००,००० गांवों में बिखरे हुए करोड़ों मूक, अर्द्ध-नग्न और भूखे प्राणियों की प्रतिनिधि है; यह बात गौण है कि वे लोग ब्रिटिश भारत के नाम से पुकारे जानेवाले प्रदेश के हैं अथवा देशी राज्यों के। इसलिए कांग्रेस के मत से प्रत्येक हित जो रक्षा के योग्य है, इन लाखों मूक-प्राणियों के हित का साधन होना चाहिए। हां, आप समय-समय पर इन विभिन्न हितों में प्रत्यक्ष विरोध देखते हैं। परन्तु यदि वस्तुतः कोई वास्तविक विरोध हो तो कांग्रेस की ओर से बिना किसी संकोच के यह बता देना चाहता हूं कि इन लाखों मूक-प्राणियों के हित के लिए कांग्रेस प्रत्येक हित का बलिदान कर देगी। इसलिए वह आवश्यक-रूप से किसानों की संस्था है और वह अधिकाधिक उनकी बनती जा रही है। आपको, और कदाचित इस समिति के भारतीय सदस्यों को भी, यह जान कर आश्चर्य होगा कि कांग्रेस ने आज 'अखिल भारतीय चरखा संघ' नामक अपनी संस्था द्वारा करीब दो हजार गांवों की लगभग ५० हजार स्त्रियों को रोजगार में लगा रखा है, और इनमें सम्भवतः ५० प्रतिशत मुसलमान स्त्रियाँ हैं। इनमें हजारों अछूत कहानेवाली जातियों की भी हैं। इस तरह हम इस रचनात्मक कार्य के रूप में इन गांवों में प्रवेश कर चुके हैं और ७,००,००० गांवों में से प्रत्येक गांव में, प्रवेश करने का यत्न किया जा रहा है। यह काम यद्यपि मनुष्य की शक्ति के बाहर का है, फिर

भी यदि मनुष्य के प्रयत्न से हो सकता है, तो आप कांग्रेस को इन सब गांवों में फैली हुई और उन्हें चरखे का सन्देश सुनाती हुई देखेंगे।"

: २ :

कांग्रेस के हितैषी और कर्णधार

कांग्रेस का क्रम-बद्ध इतिहास प्रस्तुत करने के पहले हम यहाँ कुछ ऐसे देशी और विदेशी व्यक्तियों की चर्चा करना उपयुक्त समझते हैं जिन्होंने समय-समय पर कांग्रेस की सहायता की है। सबसे पहले अंग्रेज हितैषियों को लीजिए:--

अंग्रेज-हितैषी

जॉन ब्राइट और फॉसेट साहब--ह्यूम साहब से पहले पार्लमेण्ट के कई सदस्य भारतीय प्रश्नों में दिलचस्पी लेने लगे थे। पिछली शताब्दी के पचास से सत्तर वर्ष के बीच जॉन ब्राइट साहब ने भारत का खूब पक्ष-समर्थन किया था। उन्होंने १८४७ में पार्लमेण्ट में प्रवेश किया। उस समय से १८८० तक इस देश के भाग्य में बहुत उतार-चढ़ाव आये, पर ब्राइट साहब का भारत-प्रेम बराबर बना रहा। उनके बाद फॉसेट साहब की बारी आई। वह १८६५ में पार्लमेण्ट के सदस्य हुए और १८६८ में ही उन्होंने प्रस्ताव किया कि भारत की बड़ी-बड़ी नौकरियों की परीक्षा केवल विलायत में न होकर भारत और इंग्लैंड दोनों में साथ-साथ हो। १८७५ में इंग्लैण्ड में भारतवर्ष के खर्च से तुर्की के सुलतान के लिए लॉर्ड सेल्सबरी ने जो नाच करवाया था उसकी फॉसेट साहब ने निन्दा की थी। उन्हीं के विरोध से अबीसीनिया की लड़ाई का सारा खर्च भारत के मत्थे न मढ़ा जाकर आधा इंग्लैण्ड पर पड़ा। ड्यूक ऑफ एडिनबरा ने भारतीय नरेशों को जो उपहार दिये थे उनका मूल्य भारतीय कोष से दिये जाने का भी उन्होंने विरोध किया था। इसी प्रकार ब्रिटिश-युवराज की भारत-यात्रा के खर्च के ४,५०,०००) के भार से भी उन्होंने हमारे देश को बचाया था। लॉर्ड लिटन ने कपड़े का आयात-कर बन्द कर दिया, दिल्ली में दरबार किया और अफ-गान-युद्ध मोल ले लिया। इन करतूतों का भी फॉसेट साहब ने विरोध किया था। कृतज्ञ भारत ने भी इन उपकारों का बदला उन्हें तुरन्त दिया। १८७२ में कलकत्ते की जनता ने उन्हें मान-पत्र दिया और जब १८७४ में फॉसेट साहब पार्लमेण्ट के चुनाव में हार गये तब आगामी चुनाव के लिए सहायतार्थ उन्हें १०,०००) से अधिक की थैली भेंट की थी।

ह्यूम साहब---ह्यूम साहब ने पार्लमेण्ट की भारत-समिति और कांग्रेस के संगठन में जो भाग लिया उसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। परन्तु इस स्कॉचमैन ने साठ वर्ष से भी अधिक सरकारी और गैर-सरकारी हैसियत से भारत की भलाई के लिए जो परिश्रम किया उसका हाल जरा विस्तार से जानना हमारा कर्तव्य है। वह भारत की सिविल सर्विस में अनेक पदों पर रह चुके थे। जब वह जिला-मजिस्ट्रेट थे तब उन्होंने साधारण जनता में शिक्षा-प्रसार, पुलिस-सुधार, मदिरा-निषेध, देशी-भाषाओं के समाचार-पत्रों की उन्नति, बाल-अपराधियों के सुधार एवं अन्य घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिश्रम किया था। उन्हें यदि किसी बात में रस था तो गांव और खेती में। उन्हें किसी बात की चिन्ता थी तो जनता की। उन्होंने घोषित किया था कि सरकार तलवार के जोर से अपनी सत्ता भले ही कायम कर ले, किन्तु स्वतन्त्र और सभ्य सरकार की पायदारी और स्थायित्व तो इसी में है कि प्रजा के ज्ञान की वृद्धि की जाय और उसमें सरकार की अच्छाइयों की कदर करने की नैतिक और बौद्धिक योग्यता पैदा की जाय। इस रुख का उत्तर सरकार ने २८ जनवरी, १८५९ के अपने एक गश्ती-पत्र में ह्यूम साहब को दिया। इस पत्र में कहा गया था कि शिक्षा-प्रसार के लिए भारतीयों से काम न लिया जाय और कलेक्टर साहब लोगों को पाठशालाओं में अपने बालकों को भेजने की या पाठशालाओं की सहायता करने की प्रेरणा न करें। ह्यूम साहब ने इसका जिस प्रकार विरोध किया वह भी मार्के की बात थी। ह्यूम साहब का दूसरा प्रिय विषय था पुलिस का सुधार। उनकी योजना यह थी कि पुलिस और न्याय-विभाग को बिलकुल अलग-अलग कर दिया जाय। आबकारी के बारे में भी उनके उग्र विचार थे। १८५९ के अन्त में ह्यूम साहब की सहायता से "पीपुल्स-फ्रेण्ड" (लोक-मित्र) नामक भारतीय पत्र निकाला गया। इसकी छः सौ प्रतियां उत्तर प्रदेश की सरकार खरीदती थी। वाइसराय ने भी इस पत्र को पसन्द किया था। इसका अनुवाद कराकर भारत-मन्त्री द्वारा महारानी विक्टोरिया के पास भेजा जाता था। १८६३ में ही ह्यूम साहब ने जोर दिया कि बाल-अपराधियों के सुधार-गृह बनाये जायं। चुङ्गी की अफसरी में उन्होंने मुख्य कार्य यह किया कि चुङ्गी की लम्बी-चौड़ी रुकावटों को धीरे-धीरे दूर करवा दिया। १८७९ में ह्यूम साहब ने कृषि-सुधार की एक योजना तैयार की। लॉर्ड मेयो की उसके प्रति सहानुभूति भी थी, परन्तु वह योजना यों ही गई। मुकदमेबाजी के बारे में उनकी राय यह थी कि देहाती इलाकों में किसानों को महाजनों की गुलामी में जकड़ने की सीधी जिम्मेदारी दीवानी अदालतों पर है। उन्होंने सिफारिश की कि ग्रामवासियों के कर्ज के मुकदमे जल्दी-से-जल्दी और जहां-के-तहां निपटाने चाहिए, उनका अन्तिम निर्णय चुने हुए ईमानदार और समझदार भारतीयों-द्वारा होना चाहिए, उन्हें न्यायाधीश बनाकर गांव-गांव भेजना चाहिए और वे लोग सब प्रकार के लेनदेन के मुकदमे गांव

के बड़े-बूढ़ों की सहायता से तय कर दिया करें। १८७९ में इसी ढंग की एक योजना दक्षिण की कष्ट-पीड़ित प्रजा की भलाई के लिए बनाई गई थी, परन्तु बम्बई-सरकार ने उसे अस्वीकार कर दिया।

१८७० से १८७९ तक ह्यूम साहब भारत-सरकार के मन्त्री रहे; परन्तु उन्हें वहां से इसी अपराध पर निकाल दिया गया कि वह बहुत ज्यादा ईमानदार और स्वतन्त्र प्रकृति के थे। इसकी भारतीय समाचार-पत्रों ने एक स्वर से निन्दा की, परन्तु कुछ सुनवाई नहीं हुई। लॉर्ड लिटन ने ह्यूम साहब को लैफ्टिनेण्ट गवर्नर बनाने का प्रस्ताव किया। ह्यूम साहब को यह स्वीकार न हुआ। दूसरा प्रस्ताव यह था कि उन्हें होम-मेम्बर (गृह-सचिव) बना दिया जाय। यह बात इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री लॉर्ड सेल्सबरी को पसन्द नहीं आई। ह्यूम साहब ने १८८२ में नौकरी से अवकाश प्राप्त किया। उन्होंने लगभग तीन लाख रुपया पक्षियों के अजायब-घर पर और लगभग ६० हजार रुपया 'भारत के शिकारी पक्षी' नामक ग्रंथ की तैयारी में खर्च किया था।

सर विलियम वेडरबर्न—सर विलिर्नयम वेडरबर्न की सेवाएँ तो इतनी प्रख्यात हैं कि उनका वर्णन करने की भी जरूरत नहीं है। ब्रिटिश कांग्रेस-कमेटी को चलाने में वर्षों तक उन्हीं का मुख्य हाथ रहा। कांग्रेस इसके लिए दस हजार से पचास हजार तक वार्षिक खर्च करती थी। वेडरबर्न साहब बम्बई में १८७९ में, और इलाहाबाद में १९१० में, इस प्रकार राष्ट्रीय महासभा के दो अधिवेशनों के सभापति हुए। जार्ज यूल साहब इलाहाबाद के १८८८ वाले कांग्रेस के चौथे अधिवेशन के सभापति हुए। इसके बाद तो हर साल पार्लमेंट के सदस्य भारत-यात्रा करने और कांग्रेस के अधिवेशनों पर उपस्थित रहने लगे।

रैमजे मैक्डॉनल्ड और चार्ल्स ब्रैडला—रैमजे मैक्डॉनल्ड साहब १९११ में कांग्रेस अधिवेशन का सभापति-पद भी सुशोभित करते, परन्तु उनकी पत्नी का देहांत हो जाने से उन्हें वापस लौट जाना पड़ा। केअर हार्डी, होलफोर्ज, नाइट, मैक्स्टन, कर्नल वैजवुड, बेनस्पूर, चार्ल्स रॉबर्टस्टन और पैथिक लारेंस आदि कामन-सभा के कुछ अन्य सदस्य भी भारतवर्ष में आकर और कांग्रेस अधिवेशनों में उपस्थित रहकर भारत की समस्याओं का अध्ययन कर गये। परन्तु १८८९ ई० में चार्ल्स ब्रैडला साहब का जो स्वागत किया गया वह शान-शौकत में तो राजाओं से कम नहीं था। ब्रैडला साहब ने १८८९ में कौंसिलों के सुधार के लिए एक कानून का मसविदा (बिल) बनाया और उसे लोकमत-संग्रह के लिए प्रचारित किया। इस मसविदे में कांग्रेस के तत्कालीन विचारों का समावेश था। कांग्रेस ने भी ब्रैडला साहब की इच्छानुसार सूचनाएं पेश कीं जिनसे भारतीय जनता का गम्भीर मत प्रदर्शित होता था। आगे चलकर यह मसविदा वापस ले लिया गया, परन्तु पार्लमेंट में ब्रैडला साहब की स्थिति

इतनी मजबूत थी कि लॉर्ड क्रॉस का पहला मसविदा भी ब्रैडला साहब के विरोध के कारण वापस लेना पड़ा। उनका दूसरा मसविदा भी तब मंजूर हुआ जब उसमें प्रस्तावित सुधारों की पहली किश्त के साथ, अप्रत्यक्ष ही सही, कौंसिलों में निर्वाचन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया।

ग्लैडस्टन और लार्ड नॉर्थब्रुक--विलियम राबर्ट ग्लैडस्टन का नाम भी कम प्रेम के साथ नहीं लिया जा सकता। भारत में ग्लैडस्टन साहब बड़े लोकप्रिय हो गये थे। इसका असली कारण था उनकी कांग्रेस-आन्दोलन के साथ प्रत्यक्ष सहमति। उन्होंने १८८८ में कहा था--"इस महान राष्ट्र की उठती हुई आकांक्षाओं के प्रति तिरस्कार या उपेक्षा का व्यवहार करने से हमारा काम नहीं चलेगा।" लगातार कई वर्ष तक ग्लैडस्टन साहब की वर्षगांठ पर कांग्रेस की ओर से बधाई के प्रस्ताव होते रहे। उनकी ८२वीं जयंती को कांग्रेस ने विधिपूर्वक मनाया। लॉर्ड नॉर्थब्रुक के प्रति भी कांग्रेस ने १८९३ के अपने नवें अधिवेशन में कृतज्ञता प्रकट की। उन्होंने पार्लमेंट में इस बात पर जोर दिया था कि भारत के खजाने से 'होम चार्जेज' के नाम पर जो विशाल-धन-राशि खींची जाती है उसकी मात्रा कम की जाय।

लार्ड स्टैनले, जनरलबूथ और हेनरी काटन--ऐसे ही हितैषियों में एक थे एल्डले के लार्ड स्टैनले। उन्होंने अपने जीवन का उत्तम भाग भारत में ही व्यतीत किया था और भारत के अभ्युत्थान के लिए परिश्रम किया था। १८९४ में उन्होंने भारत-मंत्री की कौंसिल के उठा दिये जाने का प्रस्ताव पेश करते हुए कहा था--"यदि भारत-मंत्री पर कौंसिल का नियन्त्रण रहे तो भारत-मंत्री का पद उठा दो। यदि कौंसिल पर भारत-मन्त्री का नियन्त्रण रहे तो कौंसिल को मिटा दो। यह द्विविध-शासन व्यर्थ है, भयावह है, अपव्यय है और बाधक है।" उन्होंने भारत-मन्त्री और उसकी कौंसिल की व्यापारिक अयोग्यता के प्रमाण भी दिये थे। जनरल बूथ भी हमारे हितैषी थे। उन्होंने १८९१ की नागपुर कांग्रेस में एक योजना भेजी थी कि हजारों निर्धन और अपंग लोगों को देश की बंजर भूमि पर किस प्रकार बसाया जा सकता है। उन्हें तार द्वारा उचित उत्तर दिया गया था। यहाँ सर हेनरी कॉटन और उनकी अमर सेवाओं का उल्लेख किये बिना भी नहीं रहा जा सकता। कॉटन-परिवार का भारतवर्ष से पुराना संबंध था। ज्यों ही आसाम के इन चीफ कमिश्नर साहब ने पेंशन ली त्योंही कांग्रेस ने अपने १९०४ वाले बम्बई के अधिवेशन का सभापति-पद ग्रहण करने के लिए उन्हें आमन्त्रित किया। उन्होंने पहले-पहल भारत के संयुक्त राज्य की कल्पना की थी।

भारतीय कर्णधार

दादा भाई नौरोजी--कांग्रेस के बड़े-बूढ़ों की सूची में सबसे पहला नाम दादा

भाई नौरोजी का आता है, जो कांग्रेस के आरंभ से अपने जीवन-पर्यन्त कांग्रेस की सेवा करते रहे। १८८६, १८९३ और १९०६ में तीन बार वह कांग्रेस के सभापति हुए और बराबर कांग्रेस के साथ रहते हुए इंगलैंड और हिन्दुस्तान में उन्होंने कांग्रेस के झंडे को ऊँचा रखा। ब्रिटिश-राज्य की न्याय-परायणता में दादा भाई का बहुत विश्वास था और वह अन्त तक कायम रहा। १९०६ में दादाभाई कलकत्ते के अधिवेशन के सभापति हुए। उस समय भारत मानो एक खौलते हुए कढ़ाव में था। १६ अक्टूबर, १९०५ को जो वंग-भंग किया गया था, उससे देश भर में एक नई लहर पैदा हो गई थी। कांग्रेस के सारे वायु-मण्डल में उस समय बहिष्कार की भावना छाई हुई थी। बाबू विपिनचन्द्रपाल ने बहिष्कार शब्द को और भी व्यापक-रूप दिया और सरकार से सब तरह का संबंध विच्छेद करने के लिए कहा। प्रस्ताव का प्रत्यक्ष रूप स्वदेशी था, जिसका अर्थ भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने जुदा-जुदा किया। मालवीयजी ने उसका अर्थ देशी उद्योग-धंधों का संरक्षण किया; लोकमान्य तिलक ने मध्य-श्रेणी के व्यक्तियों-द्वारा इस्तेमाल किये जानेवाले विदेशी कपड़े के दुःखद दृश्य का अन्त करने के लिए राष्ट्रों की ओर से किये जाने वाले दृढ़ निश्चय, बलिदान और स्वावलम्बन को स्वदेशी कहा; लालाजी ने इसका अर्थ देश की पूंजी को बचाना और सुरक्षित रखना बतलाया और स्वयं दादाभाई के लिए यह आर्थिक और शिक्षा-संबंधी सुधार तथा शिक्षा-प्रचार की पुकार थी; क्योंकि शिक्षा-प्रचार के ही कारण लोगों में स्वराज्य की भूख पैदा हुई थी। इस अस्सी वर्ष के बूढ़े ने ६,००० मील दूर इंग्लैंड से यहां आकर स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के साथ स्वराज्य की एक नई पुकार और पैदा करदी। यह देखकर 'इंगलिशमैन' उन पर उबल पड़ा। इस प्रकार दादाभाई के सभापतित्व में होनेवाला कलकत्ता-अधिवेशन अत्यन्त सफल रहा।

आनन्द चार्लू—१८८५ में बम्बई में होनेवाले कांग्रेस के पहले अधिवेशन में जी० सुब्रह्मण्य ऐयर और श्री आनन्द चार्लू, काशीनाथ तैलंग और दादाभाई नौरोजी, नरेन्द्रनाथ सेन और उमेशचन्द्र बनर्जी, एस० सुब्रह्मण्य ऐयर और रंगैया नायडू, फिरोजशाह मेहता और डी० एस० ह्वाइट आदि प्रमुख व्यक्तियों ने अपने-अपने भाषणों में उन शक्तियों का परिचय दे दिया था जो भारतीय राजनीति में जोर पकड़ रही थीं। कालान्तर में उन्हीं से भारत का नरम-दल बना। आनन्द चार्लू ने, जो बाद में १८९१ की नागपुर-कांग्रेस के सभापति हुए थे, अपनी विशेष वक्तृत्व शक्ति के साथ कांग्रेस में प्रवेश किया। नागपुर में हुए ७ वें अधिवेशन (१८९१) का उन्होंने सभापतित्व किया, जिसमें उन्होंने सभापति-पद से बड़ा जोरदार भाषण दिया। दक्षिण भारत के राजनैतिक गगन में लगभग बीस वर्ष तक वह एक चमकती हुई ज्योति रहे। यद्यपि उनके अनुयायियों का न तो कोई दल था और न वह किसी राजनैतिक मत के प्रवर्तक थे,

फिर भी अपनी विशिष्ट तीखी वक्तृत्व-शक्ति के साथ उनका एक विशेष व्यक्तित्व था।

दीनशा एदलजी वाचा—वाचा महोदय का खास विषय कौन-सा था, यह कहना कठिन है; क्योंकि प्रायः सभी विषयों में उनका एक-समान अबाध प्रवेश था। उनके उज्ज्वल गुण तो पहले ही अधिवेशन में झलकने लगे थे, जबकि उन्होंने सैनिक परिस्थिति का योग्यतापूर्वक विस्तृत सिंहावलोकन किया था। दूसरे अधिवेशन में उन्होंने भारतवासियों की गरीबी को लिया और भारत से हर साल ब्रिटेन को जानेवाले उस खराज की ओर सर्व-साधारण का ध्यान आकृष्ट किया जिससे ब्रिटेन तो समृद्ध हो रहा था, पर भारत कंगाल बनता चला जा रहा था। बम्बई में होनेवाले कांग्रेस के पांचवें अधिवेशन में उन्होंने आबकारी नीति को लिया और बताया कि कामन-सभा ने एक प्रस्ताव-द्वारा सर्व-साधारण की इच्छानुसार आबकारी-नीति में सुधार करने का आदेश भारत-सरकार को दिया था, लेकिन उसके नौ महीने बाद भी सरकार ने कुछ भी नहीं किया। छठी कांग्रेस में उन्होंने फिर इस ओर ध्यान दिया और इसके साथ ही नमक-कर का प्रश्न भी उठाया था। इलाहाबाद में होनेवाली कांग्रेस के ९ वें अधिवेशन में उन्होंने चांदी के सिक्के ढालना बन्द करने के विरुद्ध प्रस्ताव पेश किया। वह इतने चतुर थे कि अब से बहुत पहले, १८८५ में ही उन्होंने लंकाशायर का प्रश्न उठाया। १८९४ में उन्होंने फिर भारतीय मिलों के (सूती) माल पर उत्पत्ति-कर लगाने का और १८९७ में उन्होंने अमरावती में होने वाले अधिवेशन में, सरकार की सरहदी नीति का विरोध किया। कांग्रेस के १५ वें अधिवेशन में भी उन्होंने मुद्रा-नीति पर अपना हमला जारी रखा और भारत में सुवर्ण-मान जारी करने की निन्दा की। १९०१में होनेवाले कलकत्ता-अधिवशन में राष्ट्र ने उनको कांग्रेस का सभापति बनाने के लिए आमन्त्रित किया। १८९६ से १९१३ तक वह कांग्रेस के संयुक्त प्रधान-मंत्री रहे। इसके बाद उसके काम-काज में गौण-रूप से योग देते रहे। सर्वतो-मुखी प्रतिभा, घटनाओं का जबरदस्त ज्ञान और सैनिक समस्या जैसे दुरूह विषयों एवं सर्व-साधारण की गरीबी जैसी अस्पष्ट और विस्तृत समस्याओं की भलीभांति जानकारी में उनकी जोड़ के उस समय थोड़े ही आदमी थे।

गोपालकृष्ण गोखले—गोखले पहले-पहल १८८९ में कांग्रेस में तिलक के साथ आये। नमक-कर पर हमला करते हुए उन्होंने बहुतेरे तथ्य के आंकड़े पेश किये। उन्होंने बताया कि कैसे एक पैसे की नमक की टोकरी की कीमत पांच आने हो जाती है। फिर भी उनमें कड़ी-से-कड़ी बात को बहुत ही मधुर भाषा में कहने का बड़ा गुण था। अपनी आलोचना में गोखले यद्यपि मधुर और मंजुल थे तथापि वह कहते थे बात खरी, गोलमाल बातें करना उन्हें पसन्द नहीं था। १९०५ में बनारस-कांग्रेस के सभापति की हैसियत से उन्होंने राजनैतिक शस्त्र के रूप में बहिष्कार

का समर्थन किया था और कहा था कि इसका इस्तेमाल तभी करना चाहिए जब कोई चारा न रह गया हो और जबकि प्रबल लोक-भावनाएँ इसके अनुकूल हों। गोखले सामनेवाले के साथ बड़ी शिष्टता दिखाया करते थे, परन्तु इससे उनकी भाषा की स्पष्टता और उनके आक्रमण का जोर कम नहीं हो जाता था। १९०५ और १९०६ दो साल तक गोखले भारत के प्रतिनिधि बनाकर इंग्लैण्ड भेजे गये थे। जनता और सरकार दोनों के बीच उनकी स्थिति विषम रहती थी। इधर लोग उनकी नरमी की निन्दा करते थे, उधर सरकार उनकी उग्रता को बुरा बताती थी। इसका मुख्य कारण यह था कि वह दोनों में मध्यस्थ बनकर रहते थे। वह जनता की आकांक्षाएँ वाइसराय तक पहुँचाते थे और सरकार की कठिनाइयां कांग्रेस तक।

गोखले का बहुत बड़ा रचनात्मक काम है भारत-सेवक-समिति। यह ऐसे राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की एक संस्था है, जिन्होंने नाम-मात्र के वेतन पर मातृ-भूमि की सेवा करने का प्रण लिया। उनके बाद श्रीमती ऐनी बेसेण्ट ने 'भारत के पुत्र' नाम की संस्था खड़ी की। इसके बाद गांधीजी के आश्रमवासियों का नम्बर आता है। १९१६ में गांधीजी ने अहमदाबाद में सत्याग्रह-आश्रम खोला और इसके बाद १९२० से उसी नमूने पर दूसरे कई आश्रम खोले गये। ये सब आश्रम जीवन की कठोरता और साधना में 'भारत-सेवक-समिति' और 'भारत के पुत्र' से कहीं बढ़े-चढ़े थे।

सूरत के झगड़े के बाद गोखले ने कांग्रेस के कार्य का प्रमुख भाग लिया। वह दक्षिण अफ्रीका भी गये और वहां उन्होंने गांधीजी के सत्याग्रह-संग्राम में उनकी अपूर्व सहायता की। १९०९ की कांग्रेस में उन्होंने सत्याग्रह-धर्म की बड़ी प्रशंसा की और उसके तत्त्व को बड़ी खूबी के साथ समझाया। इसके बाद उनकी प्रवृत्तियां मुख्यतः बड़ी कौंसिलों के अखाड़े के प्रति ही रहीं। १९१४ में जब कांग्रेस के दोनों दलों को मिलाने की कोशिश की गई तब पहले तो उन्होंने इसे पसन्द किया परन्तु बाद को अपना विचार बदल दिया। इस तरह उत्कृष्ट देश-भक्ति, देश के लिए कठोर परिश्रम, महान् स्वार्थत्याग और देश-सेवामय जीवन व्यतीत करते हुए गोखले १९ फरवरी १९१५ को इस लोक से प्रयाण कर गये।

जी० सुब्रह्मण्य ऐयर—कांग्रेस के सर्व प्रथम अधिवेशन में सबसे पहला प्रस्ताव पेश करनेवाले 'हिन्दू' के सम्पादक श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐयर थे। उनका प्रस्ताव था, कि भारतीय शासन की प्रस्तावित जांच एक ऐसे शाही कमीशन द्वारा होनी चाहिए जिसमें भारतीयों का भी काफी प्रतिनिधित्व रहे। इसके पश्चात् मद्रास में होनेवाली १०वीं कांग्रेस तक हम सुब्रह्मण्य ऐयर के बारे में कुछ नहीं सुनते। पर मद्रास-कांग्रेस में भारतीय राजस्व के प्रश्न पर वह बोले और तत्सम्बन्धी जांच करने की आवश्यकता बतलाई। इस अधिवेशन में दिलचस्पी का दूसरा विषय था

—देशी-राज्यों में अखबारों की स्वतन्त्रता का अपहरण, जिसका सुब्रह्मण्य ने कसकर विरोध किया। १२ वें अधिवेशन में उन्होंने प्रतिस्पर्धी-परीक्षाएँ इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान में एक साथ ली जाने की आवाज उठाई और साथ ही लगान के मियादी बन्दोबस्त का प्रश्न भी हाथ में लिया। अगले साल अमरावती-कांग्रेस में उन्होंने सरकार की सरहदी-नीति का विरोध किया। १८९८ में जब तीसरी बार मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तब श्री सुब्रह्मण्य ऐयर ने सरहदी-नीति का प्रश्न फिर से उठाया और उसको निन्दा की तथा युद्ध-नीति का भी घोर विरोध किया। श्री सुब्रह्मण्य का प्रिय विषय था भारत की आर्थिक स्थिति। लाहौर में होनेवाले १६वें अधिवेशन में उन्होंने बार-बार पड़नेवाले अकालों को रोकने के उपाय मालूम करके उन पर अमल करने के अभिप्राय से भारतीयों की आर्थिक अवस्था की पूरी और स्वतन्त्र जांच कराने के लिए कहा। साथ ही सरकारी नौकरियों के प्रश्न पर भी विचार किया, जिसमें हिन्दुस्तानियों को उनसे महरूम रखने की शिकायत की। १७वें अधिवेशन में जनता की दुर्दशा और गरीबी पर ध्यान दिया। उनका ज्ञान जितना गम्भीर था उतना ही विशाल उनका दृष्टि-कोण था। अहमदाबाद में होनेवाले १८वें अधिवेशन में एक बार उन्होंने सर्व-साधारण की गरीबी पर प्रकाश डाला। अपने लेखों की बदौलत उन्हें जेलखाने की हवा खानी पड़ी, जहां से बीमार हो जाने पर ही उन्हें रिहाई मिली।

बदरुद्दीन तैयबजी—बदरुद्दीन तैयबजी एक पक्के कांग्रेसी थे, जो बढ़ते-बढ़ते कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन के सभापति हुए थे। सभापति-पद से दिए हुए अपने भाषण में उन्होंने कांग्रेस के प्रतिनिधि-रूप पर जोर दिया। बाद में वह बम्बई-हाईकोर्ट के जज हो गये। १९०४ में सरकारी जगहों पर हिन्दुस्तानियों की नियुक्ति-सम्बन्धी प्रस्ताव की बहस में उन्होंने भाग लिया था। १९०६ के प्रारम्भ में उनका स्वर्गवास हो गया। कांग्रेस के पहले अधिवेशन का सभापतित्व उमेशचन्द्र बनर्जी ने किया था, दूसरे के सभापति पारसी दादाभाई नौरोजी हुए थे। इसके बाद तीसरे अधिवेशन का सभापति तैयबजी को बनाना अत्यन्त उचित था, क्योंकि वह मुसलमान थे।

उमेशचन्द्र बनर्जी—यदि प्रामाणिक रूप से जानना हो कि कांग्रेस का प्रारम्भिक उद्देश्य क्या था, तो उसके प्रथम अधिवेशन के सभापति उमेशचन्द्र बनर्जी के भाषण की ही ओर निगाह दौड़ानी पड़ेगी। उसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से उसका वर्णन किया है। इलाहाबाद के आठवें अधिवेशन में वह दुबारा कांग्रेस के सभापति हुए थे। यह याद रहे कि १८९१ में सहवास-बिल के सम्बन्ध में बहुत आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था और लोकमान्य तिलक ने उसका विरोध किया था। उमेशचन्द्र बनर्जी ने अपने इलाहाबाद वाले भाषण में वे कारण बताये थे जिनसे कांग्रेस ने अपने को सामाजिक प्रश्न से अलहदा रक्खा था।

लोकमान्य तिलक---लोकमान्य तिलक भारत के बिना ताज के बादशाह थे। शिवाजी महाराज की स्मृति को फिर से ताजा करने का श्रेय उन्हीं को है। इस सिलसिले में १४ सितम्बर १८९७ को कुछ पद्य तथा अपना भाषण छापने के अपराध में उन्हें १८ महीने की कड़ी कैद की सजा दी गई थी, पर वह ६ सितम्बर १९९८ को ही छोड़ दिए गये। १८९६ से ही वह कांग्रेस के समर्थक थे। १८९९ में जब वह लॉर्ड सेण्डर्स्ट की निन्दा का प्रस्ताव पेश करना चाहते थे तब एक विरोध का तूफान खड़ा हो गया था। उनकी नीति उग्र थी। सूरत में कांग्रेस के दो टुकड़ों का हो जाना उस समय बड़ी चर्चा का विषय हो गया था। लोकमान्य तिलक उसमें सबसे बड़े अपराधी गिने जाते थे और कहा जाता था कि उन्होंने २५ वर्ष की जमी-जमाई कांग्रेस को मिट्टी में मिला दिया। दोनों तरफ के लोग अपने-अपने पक्ष की बातें कहते थे। वास्तव में इस प्रकार के मतभेद की नींव कलकत्ते में ही पड़ चुकी थी। लेकिन दादाभाई नौरोजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण किसी तरह वह हट-सा गया था। वही १९०७ में जाकर प्रबल हो गया। गरम दल के लोग चाहते थे कि लोकमान्य तिलक सभापति हों; परन्तु नरम दल के लोग इसके विरोधी थे। उन्होंने अपने विधान के अनुसार डॉ० रासबिहारी घोष को चुन लिया। इसपर गरम दलवालों ने लाला लाजपतराय का नाम पेश किया, परन्तु लाला लाजपतराय ने इन्कार कर दिया।

कांग्रेस २७ दिसम्बर को २।। बजे आरंभ हुई। १६०० से ऊपर प्रतिनिधि मौजूद थे। जब स्वागताध्यक्ष अपना काम खतम कर चुके तब स्वागत-समिति के नियमानुसार मनोनीत सभापति डॉ० रासबिहारी घोष का नाम उपस्थित किया गया। इस पर गुलगपाड़ा मचा और कार्रवाई दूसरे दिन के लिए मुल्तवी करनी पड़ी। नये सिरे से फिर निपटारे की कोशिश की गई; मगर कोई फल नहीं निकला। २८ को फिर कांग्रेस शुरू हुई। जब सभापति का जुलूस निकल रहा था, तब लोकमान्य तिलक ने एक चिट श्री मालवीयजी के पास भेजी, जिसमें लिखा था---"जब सभापति के चुनाव के प्रस्तावों का समर्थन हो चुके तब मैं प्रतिनिधियों से कुछ कहना चाहता हूँ।" लेकिन अधिवेशन आरंभ होने पर लोकमान्य की चिट पर, याद दिहानी के बाद भी, ध्यान नहीं दिया गया। तब लोकमान्य तिलक बोलने के अपने अधिकार का पालन करने के लिए मंच की ओर बढ़े। स्वागताध्यक्ष और डॉ० घोष दोनों ने तिलक को बोलने की इजाजत नहीं दी। बस क्या था, गुलगपाड़ा और गोलमाल शुरू हुआ। इतने ही में प्रतिनिधियों में से किसी ने एक जूता उठाकर फेंका, जो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को छूता हुआ सर फिरोजशाह मेहता को लगा। तब मानों एक लड़ाई शुरू हो गई ---कुर्सियां फेंकी गईं और डण्डे चलने लगे, जिससे कांग्रेस उस दिन के लिए खतम हो गई। अब नरम दल के नेता जमा हुए और

उन्होंने 'कनवेन्शन' बनाया और ऐसा विधान तैयार किया जिससे गरम दल के लोग आ ही न सकें।

लोकमान्य तिलक राष्ट्र-धर्म के जबरदस्त उपासक थे। अपने समय की मर्यादा को वह जानते थे। उस पुराने युग में एक वही थे जिन्हें लगातार जेलों में तथा अन्यत्र कष्ट-ही-कष्ट भोगना पड़ा था। १९०८ में जब जज ने उनको सजा दी और उनके बारे में खरी-खोटी बातें कहकर पूछा कि आपको कुछ कहना है, तब उन्होंने उसका जो उत्तर दिया वह सदा याद रखने और प्रत्येक घर में स्वर्णाक्षरों में लिखकर रखने योग्य है। "जूरी के इस फैसले के बावजूद मैं कहता हूँ कि मैं निरपराध हूँ। संसार में ऐसी बड़ी शक्तियां भी हैं जो सारे जगत का व्यवहार चलाती हैं और सम्भव है ईश्वरीय इच्छा यही हो कि जो कार्य मुझे प्रिय है वह मेरे आजाद रहने की अपेक्षा मेरे कष्ट-सहन से अधिक फूले-फले।" ऐसी ही तेजस्विता उन्होंने १८९७ में दिखाई थी जब कि उन पर राजद्रोहात्मक लेखों के लिए मुकदमा चल रहा था और उनसे सिर्फ यह कहा गया कि वे अदालत में कह दें कि ये लेख मेरे लिखे नहीं हैं, परन्तु उन्होंने कतई इन्कार कर दिया। उन्होंने बड़ी शान्ति और अनासक्ति के साथ इन सजाओं को भुगता और जेल में बैठे-बैठे बड़े भव्य-ग्रन्थों की रचना की। यदि उन्हें जेल न मिली होती तो 'आर्क-टिक होम ऑफ दी वेदाज़' और 'गीता-रहस्य' की रचना न हो पाती।

जब १८९६ में गांधीजी पूना गये तब वह लोकमान्य से मिले और उनकी सलाह के मुताबिक गोखले से भी। गांधीजी पर दोनों की जैसी छाप पड़ी वह याद रखने लायक है। तिलक उन्हें हिमालय की तरह महान् उच्च, परन्तु अगम्य दिखाई पड़े, लेकिन गोखले गंगा की पवित्र धारा की तरह जिसमें वह आसानी से गोता लगा सकते थे। तिलक और गोखले दोनों महाराष्ट्रीय थे, दोनों ब्राह्मण थे, दोनों चितपावन थे, दोनों प्रथम श्रेणी के देश-भक्त थे, दोनों ने अपने-अपने जीवन में भारी त्याग किया था, परन्तु दोनों की प्रकृति एक-दूसरे से भिन्न थी। यदि हम स्थूल भाषा का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि गोखले 'नरम' थे और तिलक 'गरम'। गोखले चाहते थे कि मौजूदा विधान में सुधार कर दिया जाय, परन्तु तिलक उसे बनाना चाहते थे। गोखले को नौकरशाही के साथ काम करना पड़ता था, तो तिलक को नौकरशाही से भिड़ंत करनी पड़ती थी। गोखले कहते थे—जहां सम्भव हो सहयोग करो; जहां आवश्यक हो विरोध करो। तिलक का झुकाव अड़ंगा-नीति की ओर था। गोखले शासन और उसके सुधार की ओर मुख्य ध्यान देते थे, तिलक राष्ट्र और उसके निर्णय को सब से मुख्य समझते थे। गोखले का आदर्श था प्रेम और सेवा, तिलक का आदर्श था सेवा और कष्ट सहना। गोखले विदेशियों को जीतने का उपाय करते थे, तिलक उनको हटाना चाहते थे। गोखले दूसरे की सहायता पर आधार रखते थे, तिलक स्वावलम्बन पर। गोखले उच्च वर्ग और

बुद्धि-वादियों की तरफ देखते थे और तिलक सर्वसाधारण और करोड़ों की ओर। गोखले का अखाड़ा था कौंसिल-भवन, तिलक की अदालत थी गाँव की चौपाल। गोखले अंग्रेजी में लिखते थे, तिलक मराठी में। गोखले का उद्देश्य था स्वशासन, जिसके योग्य लोग अपने को अंग्रेजों की कसौटियों पर कसकर बनाएं; तिलक का उद्देश्य था 'स्वराज्य', जो कि प्रत्येक भारतवासी का जन्म-सिद्ध अधिकार है और जिसे वह विदेशियों की सहायता या बाधा की परवाह न करते हुए प्राप्त करना चाहते थे। ऐसा था उनका व्यक्तित्व जो १ अगस्त १६२० को उठ गया।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी—भारत के स्वर्गीय राजनीतिज्ञों के दरबार में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की आत्मा का एक प्रमुख स्थान है। कांग्रेस के साथ ४० साल से अधिक उनका सम्बन्ध रहा। भारत में कांग्रेस के मंच से उठी उनकी बुलन्द आवाज सभ्य संसार के दूर-दूर के कोने तक पहुंचती थी। भाषा-प्रभुत्व, रचना-नैपुण्य, कल्पना-प्रवणता, उच्च-भावुकता, वीरोचित-हुंकार, इन गुणों में उनकी वक्तृत्व-कला को पराजित करना कठिन था। उनके भाषणों का मसाला होता था अपनी राजभक्ति की दुहाई। उन्होंने इसे एक कला की सीमा तक पहुंचा दिया था। उन्होंने दो बार कांग्रेस के सभापति-पद को सुशोभित किया था—पहली बार १८६५ में पूना में और दूसरी बार १६०२ में अहमदाबाद में। कांग्रेस में प्रति वर्ष जो भिन्न-भिन्न विषयों पर विविध प्रस्ताव लाए जाते थे उनमें शायद ही कोई उनकी पहुंच के बाहर रहता हो। उनका आदर्श था ब्रिटिश-सम्बन्ध के प्रति अटल श्रद्धा रखकर काम करना। एक-दूसरे मौके पर उन्होंने कहा था—"अंग्रेजी सभ्यता संसार में सर्वोच्च है, इंग्लैण्ड और भारत की अखण्डता एकता का चिह्न है। यह सभ्यता भारत-वासियों के प्रति अपूर्व आशीर्वादों और प्रसादों से परिपूर्ण है और अंग्रेजों के सुनाम को अपूर्व ख्याति दिलानेवाली है।" उनके इन तमाम विश्वासों और मान्यताओं के रहते हुए भी लॉर्ड मिण्टो के वाइसराय-काल में बरीसाल में उन पर लाठी चलाई गई थी, किन्तु उन्हें आगे चलकर बंगाल का मंत्री बनना था, इसलिए बच गये।

मदनमोहन मालवीय—पं० मदनमोहन मालवीय का कांग्रेस-मंच पर सबसे पहली बार कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन में व्याख्यान हुआ था। तब से वह बराबर अथक उत्साह और लगन के साथ इस राष्ट्रीय संस्था की सेवा करते रहे; कभी तो एक विनम्र-सेवक के रूप में पीछे रहकर और कभी नेता के रूप में आगे आकर, कभी पूरे कर्त्ता-धर्ता बनकर, कभी कुछ थोड़ा-सा विरोध प्रदर्शित करनेवाले के रूप में प्रकट होकर, कभी असहयोग और सत्याग्रह-आन्दोलन के विरोधी होकर और कभी सत्याग्रही बनने के कारण सरकारी जेलों में जाकर। उन्होंने कांग्रेस की विविध रूपों में सेवा की थी।

सन् १६१८ के अप्रैल मास में, २७, २८ और २६ तारीख को वाइसराय ने गत महायुद्ध के सहायतार्थ जन, धन तथा अन्य सामग्री एकत्र करने के लिए

भारतीय नेताओं की जो सभा बुलाई थी उसमें मालवीयजी भी आमंत्रित किए गए थे। देश में जब असहयोग आन्दोलन चला तब मालवीयजी उससे तो दूर रहे, परन्तु कांग्रेस से नहीं। नरम दल वालों ने अपने जमाने में कांग्रेस को हर प्रकार चलाया, लेकिन जब उनका प्रभाव कम हुआ तब वह उससे अलग हो गये। श्रीमती बेसेण्ट ने कांग्रस पर एक बार अधिकार प्राप्त कर लिया था, पर बाद में उन्होंने भी, अपने से प्रबल दलवालों के हाथों में उसे सौंप दिया। लेकिन मालवीयजी तमाम उतार-चढ़ावों में प्रशंसा और बदनामी सहते एवं किसी की परवा न करते हुए सदैव कांग्रेस का पल्ला पकड़े रहे। मालवीयजी ही अकेले एक ऐसे व्यक्ति थे जिनमें इतना साहस था कि जिस बात को वह ठीक समझते थे उसमें चाहे कोई भी उनका साथ न दे, पर वे अकेले ही मैदान में खम ठोंककर डटे रहते थे। १९३० में जब सारे कांग्रेसी सदस्यों ने असेम्बली की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया था तब मालवीयजी वहीं डटे रहे। उन्हें ऐसा करने का अधिकार भी था, क्योंकि वह कांग्रेस के टिकट पर असेम्बली में नहीं गये थे। लेकिन इसके चार मास बाद ही दूसरा समय आया। मालवीयजी ने उस समय की आवश्यकता को देखकर असेम्बली की मेम्बरी से इस्तीफा दे दिया। सन् १९२१ में उन्होंने असहयोग-आन्दोलन का विरोध किया था, लेकिन १९३० में हमें वह पूरे सत्याग्रही दिखाई दिये। वह स्वयं एक संस्था थे। पहले-पहल सन् १९०९ में वह लाहौर-कांग्रेस के सभापति हुए थे। कांग्रेस के २४ वें अधिवेशन के सभापति चुने तो सर फिरोजशाह मेहता गये थे, परन्तु किन्हीं अज्ञात कारणों से उन्होंने अधिवेशन से केवल ६ दिन पूर्व इस मान को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। अतः उनके स्थान की पूर्ति मालवीयजी ने ही की थी। १० वर्ष बाद सन् १९१८ में कांग्रेस के दिल्ली वाले ३३ वें अधिवेशन के सभापतित्व के लिए राष्ट्र ने उनको फिर मनोनीत किया था। काशी-विश्व-विद्यालय तो उनकी कीर्ति का अमर स्तंभ ही है।

लाला लाजपतराय—कांग्रेस के पुराने पूज्य पुरुषों में लाला लाजपतराय का सार्वजनिक व्यक्तित्व भी महान था। वह जितने बड़े कांग्रेस-भक्त थे उतने ही बड़े परोपकारी और समाज-सुधारक भी थे। सन् १८८८ में होनेवाले इलाहाबाद कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में वह सबसे पहली बार सम्मिलित हुए थे। राजनैतिक क्षेत्र में उनकी लगातार दिलचस्पी और समाज-सेवा ने सारे देश में उनका सबसे ऊंचा स्थान बना दिया था। बनारस-कांग्रेस ने उन्हें एक प्रमुख वक्ता और राष्ट्र-वादी के रूप में प्रतिष्ठापित किया था। सन् १९०७ में उन्हें सरदार अजीतसिंह के साथ निर्वासन का दण्ड दिया गया था। सन् १९०७ की कांग्रेस के सभापति-पद के लिए राष्ट्रीय-विचार के लोगों ने उनका नाम पेश किया, परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। सन् १९०६ में गोखले के साथ वह भी शिष्ट-मण्डल में इंग्लैण्ड भेजे गये थे। बाद में खुफिया-पुलिस ने उन्हें इतना तंग किया कि उन्होंने विदेशों में ही

ठहरना ठीक समझा। प्रथम महायुद्ध के दिनों में तो वह अमरीका ही में रहे। कांग्रेस के सभापति बनने का लालजी का नम्बर जरा देर से आया। सन् १९२० के सितम्बर मास में कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ था। उस समय उनकी अवस्था ऐसी थी जैसे जल से बाहर मछली की होती है। असहयोग-आन्दोलन के जन्मदाता और समर्थकों से उनके विचार कभी नहीं मिले। इतना ही नहीं, अपने अन्तिम भाषण में तो उन्होंने यह भविष्यवाणी भी कर दी थी कि यह आन्दोलन चल नहीं सकेगा। वह वीर और युद्ध-प्रिय थे, मगर सत्याग्रही नहीं। उनके लिए सत्याग्रह या सविनय भंग का अर्थ कानून-भंग के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उनका समय बड़ी कठिनाइयों और संघर्षों में बीता। उनके अपने ही प्रान्त में नौजवानों का एक दल ऐसा था जो उनके खिलाफ था। कौंसिल में जाने पर उनका जौहर फिर से खिल उठा। लेकिन अफसोस कि पुलिस-अफसर की लाठी के कायरतापूर्ण वार ने अन्त में उनकी जीवन-यात्रा को घटा दिया और वह हमारे बीच से असमय में ही चले गये!

फिरोजशाह मेहता—सर फिरोजशाह मेहता उन व्यक्तियों में थे जिनका सम्पर्क कांग्रेस के साथ उसके आरम्भ से ही था। कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम के निर्माण में उनका बहुत प्रमुख भाग था। कलकत्ता में होनेवाले छठ अधिवेशन के वह सभापति थे। कई वर्ष तक वह कांग्रेस के पीछे एक वास्तविक शक्ति के रूप में थे। उन्होंने जो कुछ भी कार्य किया वह अधिकतर उन समितियों, शिष्ट मण्डलों और प्रतिनिधि-मण्डलों द्वारा ही किया जिनके वह सदस्य चुने गये थे। १९०७ में उन्होंने नरम-दल की ओर स सूरत-कांग्रेस के अवसर पर कांग्रेस-कार्य में कुछ क्रियात्मक भाग लिया था। इसके बाद वह दृष्टि से बिलकुल ही ओझल हो गये। लाहौर-कांग्रेस के २४वें अधिवेशन के जब वह सभापति चुने गये तब यकायक उन्होंने कांग्रस के सभापति का आसन ग्रहण करने से ५ दिन पहले इस्तीफा दे दिया। अतः उनके स्थान पर पं० मदनमोहन मालवीय कांग्रेस के सभापति चुने गये।

आनन्दमोहन वसु—आनन्दमोहन वसु एक प्रसिद्ध सामाजिक और धार्मिक सुधारक थे। ब्रह्म-समाज की प्रगति में उनका हाथ था। १८७६ में स्थापित कलकत्ता के इण्डियन-एसोशियेशन के वह सर्व-प्रथम मन्त्री और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के उत्साही सहकारी थे। कांग्रेस-आंदोलन के साथ १८९६ से पहले तक उनका कोई घनिष्ठ सम्बन्ध रहा या नहीं, यह तो ज्ञात नहीं होता, पर १८९६ के १२वें अधिवेशन में उन्होंने शिक्षा-विभाग की नौकरियों के पुनस्संघटन की योजना से होनेवाले नये अन्याय का विरोध किया था और कहा था कि यह योजना तो भारतीयों को शिक्षा विभाग के ऊंचे पदों से अलग रखने के लिए ही बनाई गई है। इसके बाद शीघ्र ही १८९८ के मद्रास-अधिवेशन में वह कांग्रेस के सभापति हुए। सभापति-पद से दिया हुआ उनका भाषण अकाट्य युक्तियों तथा प्रेम एवं राष्ट्र-सेवा के उपदेशों से परिपूर्ण था। उन्होंने पार्लमेण्ट में भारत के चुने हुए प्रतिनिधि रखे जाने की बात सुझाई

थी। यह देश का दुर्भाग्य था कि जब उसे उनकी सेवाओं की सब से अधिक आवश्यकता थी तब, १९०६ में, ईश्वर ने उनको हमसे छीन लिया।

चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य—सेलम के श्री चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य सब से पुराने कांग्रेसियों में से थे। कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में कांग्रेस का विधान बनाने के लिए जो समिति बनाई गई थी उसमें उनका नाम था। इसके बाद लखनऊ में होनेवाले १५वें अधिवेशन में और उसके अगले साल लाहौर में होनेवाले १६वें अधिवेशन में वह इण्डियन कांग्रेस समिति के सदस्य बनाये गये। २२वें अधिवेशन में उन्होंने दायमी बन्दोबस्त का प्रस्ताव पेश किया और इस विचार को गलत बताया कि भूमि-कर बतौर किराया है। इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि हिन्दुस्तान में जमीन पर राजा का अधिकार कभी भी नहीं रहा। ऋषि-मुनियों ने कहा है कि दुनिया उन्हीं की है जो उसमें पैदा हुए हैं; जमीन को जो जोतता-बोता है उसीकी वह सम्पत्ति होती है। राजा, जो उसकी रक्षा के लिए है, अपनी सेवाओं के बदले में किसानों से पैदावार का एक हिस्सा लेता है। यह विचार कि जमीन राजा की है, भारतीय नहीं बल्कि पश्चिमी है।

सूरत-काण्ड के बाद से, वस्तुतः वह कांग्रेस से अलग ही रहने लगे। नरम दल की कांग्रेस से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। लेकिन जब १९१६ में लखनऊ में किये गये संशोधन से गरम दलवालों के लिए कांग्रेस का दरवाजा खुल गया, तब वह फिर उसमें आ गये और १९१८ में होनेवाले विशेषाधिवेशन बम्बई तथा १९१९ में होनेवाले अमृतसर-अधिवेशन में उन्होंने क्रियात्मक-रूप से भाग लिया। अमृतसर अधिवेशन में उन्होंने जन-साधारण के मौलिक अधिकारों पर विस्तार से प्रकाश डाला। इसके बाद ही उन्हें नागपुर-अधिवेशन का सभापति चुना गया, जहां बड़ी योग्यता और कुशलता के साथ उन्होंने कार्य सम्पादित किया।

कालीचरण बनर्जी—कांग्रेसी हलचल के पहले पच्चीस वर्षों में आमतौर पर यह प्रथा थी कि जो आवश्यक प्रस्ताव एक साल से पुराने हो जाते थे वे सब एक बड़े प्रस्ताव में इकट्ठे कर दिये जाते थे और साल-दर-साल ऐसे व्यक्तियों को उसे पेश करने के लिए चुना जाता था जिनकी प्रतिभा उस संयुक्त या व्यापक प्रस्ताव के विभिन्न विषयों का भली-भांति स्पष्टीकरण कर सकती थी। १८८९ में ऐसा प्रस्ताव पेश करने के लिए कालीचरण बनर्जी चुने गये थे, जो एक भारतीय ईसाई थे। कई वर्षों तक उन्होंने कांग्रेस के काम-काज में बड़ी दिलचस्पी ली थी। १८९० में ब्रिटिश जनता के सामने कांग्रेस के विचार रखने के लिए जो शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड गया था उसके वह भी एक सदस्य बनाये गये थे। ९वीं कांग्रेस में उन्होंने न्याय और शासन-कार्य को एक-दूसरे से पृथक् करने का प्रस्ताव पेश किया था। समय की प्रगति के साथ जैसे-जैसे सर्वसाधारण में राजनैतिक जागृति बढ़ती गई, वैसे-वैसे उसकी स्वतंत्रता पर अधिकाधिक प्रतिबन्ध लगने लगे। सरकारी सहायता-प्राप्त

संस्थाओं के व्यवस्थापकों और अध्यापकों पर यह पाबन्दी लगा दी गई कि जब तक शिक्षा-विभाग के प्रधान अधिकारी की स्वीकृति न ले ली जाय तब तक वे न तो राजनैतिक हलचलों में कोई हिस्सा लें और न राजनैतिक सभाओं में ही उपस्थित हों। नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर किये गये इस प्रहार का, १५वीं कांग्रेस में श्री कालीचरण ने जोरों के साथ विरोध किया। दुःख की बात है कि वह अधिक दिनों तक जीवित न रह सके।

नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर—कांग्रेस के मन्त्रियों में हिन्दू के साथ एक मुसलमान को भी रखने की प्रथा १९१४ की मद्रास-कांग्रेस से शुरू हुई थी, जिसमें नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर और श्री एन० सुब्बाराव मंत्री चुन गये थे। लेकिन नवाब साहब तो इससे पहले, १९१३ की करांची-कांग्रेस में, सभापति-पद को भी सुशोभित कर चुके थे। वह पहले कांग्रेसी थे, इसके बाद मुसलमान। १९०३ में होनेवाली मद्रास-कांग्रेस के १९वें अधिवेशन के वह स्वागताध्यक्ष थे और १९०४ की कांग्रेस (२० वां अधिवेशन बम्बई) में कांग्रेस का विधान बनाने के लिए जो समिति बनी थी उसमें उन्हें भी रखा गया था। वह ऐसे देश-भक्त थे जिनमें मजहबी संकीर्णता बिलकुल नहीं थी। करांची-कांग्रेस के सभापति-पद से उन्होंने राष्ट्रीयता की बुलन्द आवाज उठाई थी और इस बात पर जोर दिया था कि भारत की भिन्न-भिन्न जातियों को अलग-अलग टुकड़ों में बटने के बजाय संयुक्त-रूप से आगे बढ़ना चाहिए।

दाजी आबाजी खरे—कांग्रेस के प्रारम्भिक वर्षों में दायमी बन्दोबस्त और जमीन के पट्टे की मियाद स्थिर कर देने का विषय कांग्रेस में जोरों के साथ उठता रहा। लाहौर में होनेवाले ९ वें अधिवेशन में श्री दाजी आबाजी खरे ने इस सम्बन्ध में प्रस्ताव पेश किया था। कांग्रेस का जो विधान उनके प्रस्ताव पर १९०६ में स्वीकृत हुआ था और जिसका बहुत-कुछ भाग १९०८ में बननेवाले विधान में भी मिला लिया गया था, उसके निमार्ण में उन्होंने बहुत भाग लिया था। १९०९ से १९१३ तक, श्री दीनशा वाचा के साथ वह कांग्रेस के मंत्री रहे और १९११ में उन्होंने भारतीय सूती माल पर लगाया गया वह उत्पत्ति-कर उठा लेने का प्रस्ताव पेश किया जिससे भारत के सूती वस्त्र-व्यवसाय के प्रसार में रुकावट पड़ती थी। १९१३ में जब मुस्लिम लीग ने भारत के लिए स्व-शासन के आदर्श को स्वीकार कर लिया तब श्री खरे ने उसके स्वागत-सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन किया और कहा था कि स्व-शासन हिन्दू-मुसलमानों के भाई-चारे से ही प्राप्त होगा।

सी० शंकरन नायर—सर सी० शंकरन् नायर अपने वक्त के एक समर्थ पुरुष थे। कांग्रेस की सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप कांग्रेस ने उन्हें बहुत जल्दी, १८९७ में, अमरावती-अधिवेशन का सभापति चुना था। बम्बई के चन्दावरकर और तैयबजी

की तरह शंकरन् नायर को भी पीछे मद्रास के हाईकोर्ट-बेंच का सदस्य बना लिया गया और वहां से १६१५ में वह भारत-सरकार की कार्यकारिणी में ले लिये गये। १६१६ में मार्शल लॉ लागू करने के प्रश्न पर इस्तीफा देने के कारण वह बहुत लोकप्रिय हो गये। लेकिन 'गांधी एण्ड अनार्की' नामक पुस्तक में गांधीजी पर उन्होंने निराधार आक्षेप किया। इसी पुस्तक के कारण पंजाब के लेफ्टिनैण्ट गवर्नर सर माइकेल ओड्वायर ने उन पर मुकदमा चलाया जिसके फलस्वरूप सर शंकरन् को मानहानि तथा खर्चे के लिए तीन लाख रुपये देने पड़े।

विपिनचन्द्र पाल—विपिन बाबू का कांग्रेस से सम्बन्ध बहुत पहले शुरू हुआ। वह प्रसिद्ध वक्ता थे। बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय-शिक्षा के नये सिद्धान्त का प्रचार करते हुए उन्होंने सारे देश में अपनी वक्तृत्व-शक्ति का सिक्का जमा दिया था। उन्होंने १६०७ में मद्रास में जो भाषण दिये थे, एडवोकेट-जनरल (सर) वी० भाष्यम आयंगर ने उन्हें भड़काने वाले—राजद्रोहपूर्ण नहीं—समझा था और वह मद्रास अहाते से निकाल दिये गये। लार्ड मिण्टो के समय में उन्हें एक बार देश-निकाला भी मिला था। एक दूसरे अवसर पर, जब 'वन्देमातरम्' के संपादक की हैसियत से श्री अरविन्द घोष पर मुकदमा चल रहा था, तब उन्होंने यह जानकर गवाही देने से इन्कार कर दिया था कि उनकी गवाही अरविन्द बाबू के बहुत खिलाफ पड़ेगी। इस कारण ६ मास की सख्त कैद की सजा उन्होंने बड़ी खुशी से भुगत ली। उन्होंने इंग्लैंड में 'हिन्दू रिव्यू' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमें 'बम के कारणों' पर विचार किया गया था। भारत लौटने के बाद उनपर मुकदमा चलाया गया, लेकिन उन्होंने माफी मांग ली। उनका आखिरी इतिहास राष्ट्रीय राजनीति में उनके उत्साह की निरन्तर घटती का इतिहास था। यह हमें स्वीकार करना होगा कि वह उन थोड़े से लोगों में थे, जिन्होंने अपने भाषणों और 'न्यू इण्डिया' तथा 'वन्देमातरम्' के लेखों-द्वारा उस समय के युवकों पर बहुत जादू कर दिया था।

मौ० मजहरुल हक—मौ० मजहरुल हक कांग्रेस के, शारीरिक और बौद्धिक दोनों दृष्टियों से, एक महारथी थे। वह पक्के राष्ट्रवादी थे और बिहार में कांग्रेस के भारी समर्थक थे। साम्प्रदायिकता से उन्हें चिढ़ थी। कांग्रेस के २५ वें अधिवेशन में जो इलाहाबाद में हुआ था, श्री जिन्ना ने साम्प्रदायिक-निर्वाचन के विरुद्ध प्रस्ताव पेश किया था, इस प्रस्ताव का उन्होंने समर्थन किया था। इस अवसर पर उन्होंने एक योग्यतापूर्ण भाषण दिया जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों को आपस में मिल जाने की प्रेरणा थी। यह याद रखने की बात है कि मिण्टो-मार्ले-शासन-सुधार उस समय अमल में आये ही थे, जिनमें पहले-पहल कौंसिलों के लिए साम्प्रदायिक-प्रतिनिधित्व की योजना का समावेश किया गया था। मुसलमान अपनी इस सफलता पर फूलकर कुप्पा हो रहे थे। मौ० मजहरुल हक ने उस समय

उनसे कहा था कि उन्हें जो सफलता मिली है दरअसल वह दोनों महान जातियों की सम्मिलित भलाई के लिए बड़ी घातक है। देश को जरूरत इस बात की है कि दोनों एक-दूसरे से अलग-अलग बन्द दायरों में न रहकर एक-दूसरे के साथ मिल-कर काम करें। १९१४ में जब कांग्रेस का शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड गया तब मौ० मजहरुल हक भी उसके सदस्य बनाये गये। इसके बाद उन्होंने कांग्रेसी मामलों में कोई क्रियात्मक रस नहीं लिया, लेकिन रहे अन्त समय तक वह पक्के राष्ट्रवादी। जीवन के आखिरी दिनों में उनका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर हुआ और शुद्ध राष्ट्रीयता में साधुता ने मिलकर सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दिया। वस्तुतः उनका आखिरी जीवन एक फकीर का जीवन था।

महादेव गोविन्द रानडे--महादेव गोविन्द रानडे, कांग्रेस में एक उच्च शिखर के समान थे। यदि बहुत बारीकी में उतरें तो उन्हें कांग्रेसी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह बम्बई सरकार के न्याय-विभाग के उच्चाधिकारी थे, लेकिन बरसों तक वह पीछे से कांग्रेस का सूत्र-संचालन करनेवाली शक्ति बने रहे। कांग्रेस आन्दोलन को उन्होंने स्फूर्ति प्रदान की थी। उनका ऊंचा कद, चेहरे का मूर्तिवत् बनाव और उनका अपना रंग-ढंग भिन्न-भिन्न अधिवेशनों में उन्हें स्पष्ट रूप से पहचानने में सहायक थे। अर्थशास्त्री और इतिहासज्ञ के रूप में वह स्मरणीय थे। 'महाराष्ट्र सत्ता का उत्थान' एवं 'भारतीय अर्थशास्त्र पर निबन्ध' के रूप में वह राष्ट्र को अपने पाण्डित्य एवं विद्वत्ता की विरासत छोड़ गये हैं। समाज-सुधार में उनकी खास तौर पर गति थी और वर्षों तक समाजसुधार-सम्मेलन, जो कांग्रेस की एक सहायक-संस्था के रूप में बना था, उनके पोष्य-पुत्र के समान रहे। १८९५ में, पूना अधिवेशन के समय, जब इस बात पर मतभेद पैदा हुआ कि कांग्रेस समाज-सुधार के मामलों और समाज-सुधार-सम्मेलन से सम्बन्ध रख सकती है या नहीं, तब जैसा कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बताया है, जस्टिस रानडे ने सहिष्णुता और बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से मामला सुलझा दिया था। प्लेग की महामारी के समय जस्टिस रानडे ने राष्ट्र की जो सेवा की उसका अनुमान नहीं किया जा सकता। इस प्रकार पन्द्रह वर्ष तक अथक रूप से समाज-सुधार और कांग्रेस का काम करते हुए, १९०१ में, अपनी ऐसी स्मृतियां छोड़कर रानडे हम से बिदा हो गये जो सदैव हमारी सहायता करती रहती हैं और जिनके कारण उनके प्रति सदा हमारी श्रद्धा बनी रहेगी।

रमेशचन्द्र दत्त--गत शताब्दी के अन्त में कांग्रेस की राजनीति में श्री रमेश-चन्द्र दत्त एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। वह अपने जीवन-क्रम में कमिश्नर के ऊंचे पद तक चढ़ चुके थे, फिर भी उन्होंने कांग्रेस का साथ दिया था। आई० सी० एस० के अफसर रहते हुए लम्बे अरसे तक उन्होंने सार्वजनिक प्रश्नों पर जो अमित अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था उसका लाभ उन्होंने कांग्रेस को पहुंचाया था। उनका कहना था कि भूमि पर भारी मालगुजारी और ब्रिटिश कारखानों की खुली प्रतिस्पर्धा

के कारण ग्रामीण धंधों का विनाश ही दुर्भिक्ष के कारण हैं। उन्होंने बहुत खेद प्रकट करते हुए कहा था कि जिस देश ने ३,००० साल पहले ग्राम-शासन (पंचायतों) का संगठन किया था आज उसी पर पुलिस, जिला अफसरों तथा जनता के बीच की घृणित-शृंखला द्वारा शासन हो रहा है। मालगुजारी, दुर्भिक्ष तथा अन्य आर्थिक प्रश्नों पर वह एक प्रमाण समझे जाते थे। १८९० में लखनऊ-कांग्रेस के अधिवेशन के वह सभापति बने थे।

एन० सुब्बाराव पन्तुलु—श्री एन० सुब्बाराव पन्तुलु भी कांग्रेस के भक्त थे। कांग्रेस से उनका सम्बन्ध उसके जन्म के साथ ही हो गया था। वह कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे और बोले भी थे। तब से वह कांग्रेस-मंच पर नमक-कर, न्याय और शासन कार्य, भारतीयों का कार्यकारिणी में लिया जाना, जूरी द्वारा मुकदमों का फैसला और वकीलों की स्थिति आदि विभिन्न प्रस्तावों को पेश करते, अनुमोदन और समर्थन करते हुए मशहूर हो गये थे। जब उनके समकालीन कांग्रेसियों को सरकारी खिताब या पद मिल रहे थे, तब उन्होंने उसे लेने की कभी परवाह नहीं की। दूसरी ओर उनके प्रान्त ने १८९८ में उन्हें कांग्रेस का स्वागताध्यक्ष चुना और १९१४, १५, १६ तथा १७ में कांग्रेस उन्हें प्रधानमन्त्री चुनती रही। उन्होंने अपने कार्य-काल में अपने खर्च पर हिन्दुस्तान का दौरा करने और कांग्रेसी मामलों में लोगों की दिलचस्पी बढ़ाने का एक आदर्श रखा था।

सच्चिानन्द सिंह—सच्चिदानन्द सिंह को सबसे पहले १८९९ की लखनऊ कांग्रेस में लोगों ने देखा। उसीमें उन्होंने न्याय और शासन-विभाग के पृथक्करण के प्रस्ताव पर भाषण भी दिया। लाहौर-अधिवेशन में भी इस प्रश्न पर वह बोले थे। १७ वें अधिवेशन में भी 'पुलिस-सुधार' पर वह बोले थे। २० वें अधिवेशन में उन्होंने इस बात का समर्थन किया था कि १९०५ में आम चुनाव होने से पहले इंगलैण्ड में एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाय। उसी अधिवेशन में उन्होंने दादाभाई नौरोजी, सर हेनरी कॉटन और मि० जोन जार्डिन को पार्लमेण्ट का सदस्य चुनने के अनुरोध का प्रस्ताव पेश किया था। १९०८ की पहली 'नरम' कांग्रेस में श्री सिंह क्रियाशील सदस्य के रूप में उपस्थित थे। कलकत्ता-कांग्रेस में श्री सिंह ने उत्तर प्रदेश के लिए एक गवर्नर और कार्यकारिणी की मांग पेश की। वह फिर मद्रास में १९१४ में शामिल हुए। इस कांग्रेस में उन्हें लन्दन में गये हुए कमीशन के सदस्य के नाते अच्छा काम करने पर धन्यवाद दिया गया था। इस शिष्ट-मण्डल में उनके अतिरिक्त सर्वश्री भूपेन्द्र वसु, जिन्ना, समर्थ, मजहरुल हक, माननीय शर्मा और लाला लाजपतराय थे।

कांग्रेस के उक्त कर्णधारों के अतिरिक्त काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग, पं० अयोध्यानाथ, मनमोहन घोष, लाल मोहन घोष, राजा रामपाल सिंह, मुंशी गंगा प्रसाद

वर्मा, रघुनाथ नृसिंह मुधोलकर, पी० केसव पिल्ले, अंबिकाचरण मजुमदार, भूपेन्द्रनाथ वसु, पं० विशन नारायण दर, लाला मुरलीधर आदि ने भी अपनी अमर सेवाओं-द्वारा उसे गौरवान्वित किया था। आगे आनेवाली पीढ़ी इन सेवकों के प्रति सदा ऋणी रहेगी।

: ३ :

कांग्रेस की प्रारंभिक नीति : १८८५-१९१५

कांग्रेस के प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन पर अलग-अलग विचार करने का हमारा इरादा नहीं है। एक-के-बाद-एक होनेवाले अधिवेशनों में जिन महत्वपूर्ण विषयों पर विचार होकर प्रस्ताव पास हुए उन्हें लेकर एक नजर यह देखना ही काफी होगा कि १८८५ से १९१५ तक कांग्रेस की नीति और उसके कार्यक्रम का रुख क्या रहा। इसके लिए प्रस्ताव के महत्वपूर्ण विषयों को भिन्न-भिन्न भागों में बांट कर क्रमशः विचार करना उत्तम होगा।

इण्डिया कौंसिल

कांग्रेस ने अपने प्रथम अधिवेशन में ही इस बात पर जोर दिया था कि भारत-मंत्री की कौंसिल (इण्डिया कौंसिल) तोड़ दी जाय। बाद के दो अधिवेशनों में भी उस प्रस्ताव को दोहराया गया। दसवें अधिवेशन में उसकी जगह भारत-मंत्री को परामर्श देने के लिए कामन-सभा की स्थायी समिति बनाने का प्रस्ताव पास किया गया और १९१३ में करांची-कांग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया उसमें तो उसने उन संशोधनों का भी उल्लेख कर दिया जिन्हें वह चाहती थी। इसके बाद के कुछ अधिवेशनों में संशोधित प्रस्ताव पेश हुए। इसका कारण यह नहीं था कि कौंसिल को तोड़ने की इच्छा उतनी प्रबल नहीं थी, बल्कि यह भावना कि जबकि इसके जल्दी तोड़े जाने की कोई संभावना नहीं है तब इसका कुछ संशोधन ही हो जाय। वह कौंसिल निरुपयोगी है, यह विश्वास तो बना ही रहा। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि १९१७ में शासन-सुधारों की जो योजना बनाई गई उसमें इसे तोड़ने के लिए कहा गया था।

वैधानिक परिवर्तन

आरंभ से ही कांग्रेस का रवैया ऐसा रहा है कि उस पर शायद ही

कोई 'गरम' या 'अविनयी' होने का आरोप लगा सके। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में जो कुछ मांगा गया वह यही कि "बड़ी और मौजूदा प्रांतीय कौंसिलों का सुधार और उनके आकार में वृद्धि होनी चाहिये। दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस ने कौंसिलों के सुधार की एक व्यापक योजना पेश की। इसमें कौंसिलों के आधे सदस्य निर्वाचित रखने के लिए कहा गया, पर अप्रत्यक्ष चुनाव का सिद्धांत मान लिया गया। कहा गया कि प्रांतीय कौंसिलों के सदस्यों का चुनाव तो म्युनिस्पल और लोकल बोर्डों, व्यापार-संघों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा हो और बड़ी कौंसिल का चुनाव प्रांतीय कौंसिलों-द्वारा हो। इतना ही नहीं; बल्कि सरकार को कौंसिलों के निर्णय अस्वीकृत करने का अधिकार देने की बात भी इसमें मान ली गई, बशर्ते कि प्रांतीय कौंसिलों की अपील भारत-सरकार से और बड़ी कौंसिल की अपील कामन सभा की स्थायी समिति से करने का अधिकार रहे। १८८७, १८८८ और १८८९ में भी यह प्रस्ताव दोहराया गया। १८९० में कांग्रेस ने 'इंडिया कौंसिल एक्ट' में संशोधन करने वाले श्री चार्ल्स ब्रैडला के उस बिल का समर्थन किया जो उन्होंने पार्लमेंट में पेश किया था और कांग्रेस की राय में जिससे काफी मात्रा में भारत के चाहे हुए सुधार मिलते थे। लेकिन यह बिल बाद में छोड़ दिया गया। १८९१ में कांग्रेस ने अपने इस निश्चय का समर्थन किया कि जब तक हमारे देश की कौंसिलों में हमारी जोरदार आवाज नहीं होगी और हमारे प्रतिनिधि भी निर्वाचित न होंगे तबतक भारत का शासन सुचारु-रूप से और न्यायपूर्वक कदापि नहीं चल सकता। १८९२ में सुधार संबंधी लार्ड क्रॉस का 'इंडियन कौंसिल एक्ट' पास हो गया। तब और बातों को छोड़कर भारत-सरकार के नियमों और प्रांतीय सरकारों द्वारा अपनाई हुई प्रथाओं पर, जिनमें बहुत सुधार की जरूरत थी, कांग्रेस ने अपना हमला शुरू किया।

यहां इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि १८९२ के सुधारों में कौंसिलों के प्रतिनिधि चुनने का कोई विधान नहीं था। म्युनिस्पल और लोकल बोर्ड आदि स्थानीय संस्थाओं और अन्य निर्वाचन-मण्डलों को कौंसिल के लिए चुनाव का जो कहने भर को अधिकार प्राप्त था वह सिर्फ नामजद करने के ही रूप में था। यही नहीं, बल्कि ऐसे नामजद व्यक्तियों को भी स्वीकार करना-न-करना सरकार पर ही निर्भर था, परन्तु असली तौर पर सरकार सदा उन्हें स्वीकार कर ही लिया करती थी।

१८९२ में कांग्रेस ने 'इण्डियन कौंसिल एक्ट' को राजभक्ति के भाव से तो स्वीकार किया, परन्तु साथ ही इस बात पर खेद भी प्रकट किया कि स्वतः उस एक्ट के द्वारा उन लोगों को कौंसिलों के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं दिया गया है। १८९३ में एक्ट को कार्य-रूप में परिणत करने की उदार-भावना के लिए सरकार को धन्यवाद दिया गया, परन्तु साथ ही यह भी बतलाया गया कि यदि वास्तविक रूप में उस पर अमल करना हो तो उसमें क्या-क्या परिवर्त्तन करने

आवश्यक हैं। साथ ही पंजाब में कौंसिल स्थापित करने की मांग की भी ताईद की गई। १८९४ और १८९७ में भी इन प्रार्थनाओं को दोहराया गया। १८९२ के संशोधन से १८९३ में कौंसिलों के गैरसरकारी सदस्यों को प्रश्न पूछने का अधिकार मिल गया था, इसलिए १८९७ में कांग्रेस ने प्रश्नकर्त्ताओं को प्रश्नों के आरंभ में प्रश्न पूछने का कारण बताने का अधिकार भी देने के लिए कहा गया ; लेकिन उन्हें वह प्राप्त नहीं हुआ।

इसके बाद १९०४ तक कांग्रेस ने इस विषय में कुछ नहीं किया। १९०४ में प्रत्येक प्रांत से दो सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव-द्वारा कामन-सभा में भेजने और भारतवर्ष में कौंसिलों का और विस्तार करने एवं आर्थिक मामलों में उन्हें भिन्न मत देने के अधिकार की भी मांग की गई। साथ ही भारत-मन्त्री की कौंसिल तथा भारत के प्रांतों की कार्यकारिणी सभा में भारतीयों की नियुक्ति पर भी जोर दिया गया। १९०५ में कांग्रेस ने शासन-सुधारों पर पुनः जोर दिया और १९०६ में राय जाहिर की कि ब्रिटिश उपनिवेशों में जो शासन-प्रणाली है वही भारतवर्ष में भी जारी की जाय। १९०८ में समय से पहले ही कांग्रेस ने भविष्य में होनेवाले शासन-सुधारों पर प्रसन्न होना शुरू कर दिया, लेकिन देश के भाग्य में तो निराशा ही बदी थी। प्रतिनिधित्व की बात तो एक ओर, वस्तु-स्थिति यह हुई कि १९०९ के शासन-कानून के अन्तर्गत जो नियम स्वीकृत हुए उनमें तो उतनी भी उदारता नहीं थी जितनी कि जॉन मार्ले ने इससे पहले अपने खरीते में प्रदर्शित की थी।

यहां यह भी जान लेना आवश्यक है कि मॉर्ले-मिण्टो के नाम पर दस साल तक जिन शासन-सुधारों का दौर-दौरा रहा, वे थे क्या ? इन सुधारों के अनुसार बनने वाली बड़ी (सुप्रीम) कौंसिल में ६० अतिरिक्त सदस्य थे, जिनमें से केवल २७ निर्वाचित प्रतिनिधि थे। शेष ३३ सदस्यों में से ज्यादा से ज्यादा २८ सरकारी अफसर थे, बाकी में ५ में से ३ गैर-सरकारी सदस्य विभिन्न उल्लिखित जातियों की ओर से गवर्नर-जनरल नामजद करता था और दो अन्य सदस्य भी उसी के द्वारा नामजद होते थे जो प्रदेश विशेष के बजाय स्वार्थ-विशेष के ही प्रतिनिधि होते थे। निर्वाचित सदस्यों में भी बहुत-कुछ विशेष निर्वाचन क्षेत्रों से चुने जाते थे, जैसे सात प्रांतों में जमीदार, पांच प्रांतों में मुसलमान, एक प्रान्त में (सिर्फ बारी-बारी से) मुसलमान जमीदार और दो व्यापार-संघ के प्रतिनिधि, इनके बाद जो स्थान बचते थे उनका चुनाव नौ प्रान्तीय कौंसिलों के गैर-सरकारी सदस्यों-द्वारा होता था।

मॉर्ले-मिण्टो शासन-सुधारों के अनुसार दो भारतवासी (आगे बढ़ाकर तीन कर दिये गये) १९०७ में इण्डिया-कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये गये; एक को १९०९ में गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा में स्थान मिला और एक-एक भारतवासी १९१० में मद्रास तथा बम्बई के गवर्नरों की कार्यकारिणियों में नियुक्त किया गया। इसी साल बंगाल में भी कार्यकारिणी बनाई गई और एक हिन्दुस्तानी

सदस्य उसमें भी रखा गया। बाद को वह प्रांत प्रेसीडेन्सी (अहाते) की श्रेणी में रखा गया और स-कौंसिल गवर्नर के मातहत हो गया। बिहार-उड़ीसा को मिलाकर १९१२ में स-कौंसिल लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के मातहत एक पृथक् प्रान्त बना दिया गया और एक भारतवासी वहां की कार्यकारिणी का सदस्य बनाया गया।

१९०९ में कांग्रेस ने शासन-सुधारों के सम्बन्ध में चार प्रस्ताव पास किये। पहले प्रस्ताव में मजहब के आधार पर अलग-अलग निर्वाचन रखने पर नापसन्दी जाहिर की गई, दूसरे प्रस्ताव-द्वारा उत्तर प्रदेश, पंजाब, पूर्वी बंगाल, आसाम और ब्रह्मदेश में लेफ्टिनेन्ट-गवर्नरों के सहायतार्थ कार्यकारिणियां बनाने की प्रार्थना की गई, तीसरे प्रस्ताव में पंजाब पर लागू किये जाने वाले शासन-सुधारों को असन्तोष-प्रद बताया गया और चौथे प्रस्ताव में मध्यप्रान्त और बरार में कौंसिल स्थापित न करने तथा मध्यप्रांत के जमींदारों और जिला तथा म्युनिसिपल बोर्डों की ओर से बड़ी कौंसिल के लिए चुने जानेवाले दो सदस्यों के निर्वाचन से बरार को महरूम रखने पर असन्तोष प्रकट किया गया। १९१० और १९११ में अमली तौर पर कांग्रेस ने शासन-सुधार-सम्बन्धी अपनी १९०९ की आपत्तियों एवं सूचनाओं का ही समर्थन किया और पृथक् निर्वाचन के सिद्धान्तों को म्युनिस्पल तथा जिला-बोर्डों पर भी लागू कर देने का विरोध किया।

१९१२ में कांग्रेस ने अपने पिछले प्रस्तावों में उल्लिखित कमियां दूर न की जाने पर निराशा प्रकट की और अन्य सुधारों के साथ यह भी प्रार्थना की कि बड़ी तथा समस्त प्रान्तीय कौंसिलों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रहे, प्रतिनिधियों द्वारा मत लेने की प्रथा उठा दी जाय, उन अपराधों (राजनैतिक) के लिए सत्ता पानेवालों को जिनमें नैतिक दोष न हो, चुने जाने के अयोग्य ठहराने की बाधा हटा दी जाय और अतिरिक्त प्रश्न पूछने का अधिकार कौंसिलों के सभी सदस्यों को दे दिया जाय। पंजाब में कार्यकारिणी की स्थापना और स्थानीय संस्थाओं के लिए भी पृथक् निर्वाचन लागू कर देने के प्रस्तावों की ताईद की गई। आश्चर्य की बात है कि कांग्रेस के शासन-सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव में एक टुकड़ा यह भी था कि 'जो व्यक्ति अंग्रेजी न जानता हो उसे सदस्यता के अयोग्य समझा जाय।'

१९१५ में बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। भारत-सरकार के सर्वप्रथम भारतीय लॉ-मेम्बर सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह इसके सभापति थे। इसमें एक प्रस्ताव द्वारा महासमिति को आदेश दिया गया कि शासन-सुधारों के सम्बन्ध में वह आल इण्डिया मुसलिम लीग की कमेटी से सलाह-मशविरा करे। इसके फलस्वरूप संयुक्त भारत की आकांक्षाओं की द्योतक एक सम्मिलित योजना बनाई गई और १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस ने उसपर स्वीकृति की मुहर लगा दी। इसके अनुसार कांग्रेस ने स्वराज्य की ओर एक निश्चित कदम बढ़ाने की मांग की और कहा कि भारतवर्ष

का दर्जा बढ़ाकर उसे पराधीन देश के बजाय साम्राज्य के स्व-शासित उपनिवेशों के समान भागीदार बना दिया जाय।

इस योजना को प्रस्ताव-द्वारा स्वीकार करके ही कांग्रेस सन्तुष्ट नहीं हो गई, बल्कि सर्व-साधारण को इसे समझाने एवं इसका प्रचार करने के लिए उसने अपनी एक कार्य-समिति भी बनाई। प्रधान मंत्रियों ने श्री० एस० वरदाचार्य जैसे प्रसिद्ध वकील के पास, इसे भेजा और इसपर से भारतीय शासन-विधान का एक ऐसा संशोधक-बिल तैयार करने के लिए कहा जिससे 'गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट' में कांग्रेस-लीग-योजना के अनुसार संशोधन हो जाय।

१९१७ की कलकत्ता-कांग्रेस में इस घोषणा पर कृतज्ञतापूर्वक सन्तोष प्रकट किया गया कि भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन स्थापित करना सरकार का उद्देश्य है, पर साथ ही इस बात पर जोर दिया गया कि स्वयं विधान में इसके लिए समय की कोई अवधि नियत कर दी जाय, जिसके अन्दर-अन्दर सम्पूर्ण रूप से यह प्राप्त हो जाय और शासन-सुधारों की पहली किश्त के रूप में सुधारों-सम्बन्धी कांग्रेस लीग-योजना को असली रूप दे दिया जाय।

मि० माण्टेगु नवम्बर १९१७ में भारत आये और माण्ट-फोर्ड-शासन-सुधार की रिपोर्ट जून १९१८ में प्रकाशित हो गई। सितम्बर १९१८ के बम्बई के विशेष अधिवशन में उसपर विचार हुआ। इसके सभापति श्री हसन इमाम थे। माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट में प्रस्तावित शासन-सुधारों की योजना के आगे, जिसका मुख्य भाग द्वैध-शासन था, कांग्रेस-लीग-योजना दब गई। नई (माण्ट-फोर्ड) योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय व्यवस्थापक-मण्डल में राज्यपरिषद् (कौंसिल आफ स्टेट) के नाम से एक परिषद् का आयोजन किया गया; गवर्नर जनरल के सहायतार्थ प्रांतों में बड़ी-बड़ी समितियां बनाई गईं और कौंसिलों-द्वारा समर्थन न पानेवाली बातों के लिए गवर्नरों को अधिक अधिकार दिये गये। बम्बई के विशेष अधिवेशन ने निश्चय किया कि राज्य-परिषद् न रखी जाय; किन्तु यदि राज्य परिषद् बनाई ही जाय तो भारतीय-सरकार के लिए भी प्रान्तों की तरह रक्षित और हस्तान्तरित विभागों की तजवीज की जाय, उसके कम-से-कम आधे सदस्य निर्वाचित हों और सर्टिफिकेट देने का नियम केवल रक्षित विषयों के लिए हो। साथ ही द्वैध-शासन स्वीकार किया गया और केन्द्र में द्वितीय परिषद् की भी इस शर्त पर स्वीकृति दी गई कि केन्द्र में भी द्वैध-शासन जारी कर दिया जाय, यद्यपि माण्ट-फोर्ड योजना में यह बात नहीं थी।

इस प्रकार सरकार ने जो-कुछ दिया उसे, अर्थात् राज्य-परिषद् को, बेकार कर दिया, क्योंकि केन्द्र में द्वैध-शासन की जो मांग की गई थी उसे उसने मंजूर नहीं किया। बम्बई के विशेषाधिवेशन ने माण्ट-फोर्ड (शासन-सुधारों के) प्रस्तावों को कुल मिलाकर निराशाजनक और असन्तोषप्रद बतलाया और पहले के दो

अधिवेशनों की मांगों की ताईद करते हुए उसने कानून के सामने सब प्रजा की समानता, स्वतन्त्रता, जानमाल की सुरक्षा और लिखने-बोलने तथा सभाओं में सम्मिलित होने की आजादी, शस्त्र रखने का अधिकार एवं शारीरिक सजा सब प्रजाजनों पर एक-समान लागू करने के मौलिक अधिकारों-सम्बन्धी एक धारा जोड़ी; फिर भी सच पूछिये तो उसमें मि० माण्टेगु की ही पूरी जीत हुई। १९१८ का दिल्ली-अधिवेशन पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में हुआ और उसने भी इन्हीं बातों की ताईद की, परन्तु उसने सब प्रातों के लिए द्वैध-शासन की नहीं, बल्कि पूर्ण उत्तरदायी शासन की मांग की। दिल्ली-अधिवेशन में केन्द्रीय शासन में द्वैध-शासन-प्रणाली जारी करने के लिए कहा गया, पर परराष्ट्र-विभाग और जल-थल-सेना के विषय रक्षित मानकर उससे पृथक् रखे गये। द्वितीय परिषद् के बारे में बम्बई के विशेष अधिवेशन का प्रस्ताव ही दोहराया गया और उसके आधे सदस्य निर्वाचित रखने के लिए कहा गया।

११ नवम्बर १९१८ को सुलह की घोषणा के साथ यूरोपीय महायुद्ध का खात्मा हुआ। इस सम्बन्ध में हुई राष्ट्रपति विलसन, प्रधान मन्त्री लायड जार्ज तथा अन्य ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की घोषणाओं को उद्धृत कर, आत्म-निर्णय के सिद्धांत को समस्त प्रगतिशील राष्ट्रों पर लागू करने की बात पर जोर देते हुए, कांग्रेस ने निश्चय किया कि भारत पर भी इसे लागू किया जाय और समस्त दमनकारी कानून रद्द कर दिये जायं, परन्तु इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

सरकारी नौकरियाँ

सरकारी नौकरियों में खासकर उच्च पदों पर, भारतीयों की नियुक्ति के प्रश्न को कांग्रेस ने विशेष महत्व दिया था। १८३३ में कानून-द्वारा भारतीयों को सब पदों पर नियुक्त करने की बात स्वीकार की गई थी और १८५३ में जब प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाओं का आरंभ हुआ तब कहा गया था कि उसमें भारतीयों के लिए बड़ी रुकावट है। लार्ड सेल्सबरी के शासन-काल में सिविल-सर्विस की प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाओं के उम्मीदवारों के उम्र में कमी की गई। इसे कांग्रेस ने उन कठिनाइयों में और भी वृद्धि करना समझा, जो कि इसके लिए पहले से भारतीयों के सामने उपस्थित थीं। भारतवासियों ने हमेशा यह मांग की कि ये परीक्षाएँ इंगलैंड और भारतवर्ष दोनों जगह साथ-साथ होनी चाहिये जिससे भारतीयों की कठिनाई दूर हो जाय। जून १८९३ में कामन-सभा ने दोनों देशों में साथ-साथ परीक्षाएँ होने के समर्थन में प्रस्ताव पास किया, जिसका कांग्रेस तथा देश भर ने स्वागत किया, परन्तु दूसरे ही साल सरकार ने घोषणा कर दी कि उस प्रस्ताव पर अमल नहीं किया जायगा। इससे सारा उत्साह नष्ट होकर गहरी निराशा छा गई। भारत की सरकारी नौकरियों के संबंध में नियुक्त शाही कमीशन के सामने भारतीयों की जो गवाहियां हुईं उनसे

यह बात स्पष्ट हो गई कि जबतक यह सुधार न हो जाय तब तक भारतीय मांगों के साथ कदापि न्याय नहीं हो सकता।

दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस की ओर से इस काम के लिए नियुक्त उप-समिति ने इस संबंध में विस्तृत व्यौरा तैयार किया और मांग की कि प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाएँ भारतवर्ष और इंगलैंड में साथ-साथ हों जिससे सम्राट के सब प्रजाजन बिना किसी भेद-भाव के उसमें भाग ले सकें तथा योग्यता के अनुसार नियुक्तियों की क्रमागत सूची तैयार की जाय। चौथे अधिवेशन तक जाकर कहीं इस आन्दोलन में थोड़ी सफलता मिली। सरकारी नौकरियों (पबलिक सर्विसेज) के कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में इस संबंध में जिन सुविधाओं की सिफारिश की उनकी कांग्रेस ने तारीफ की, परन्तु उन्हें अपर्याप्त बताया। इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेस के इच्छानुसार इण्डियन-सिविल-सर्विस की परीक्षा के लिए वय-मर्यादा १९ से २३ कर दी गई थी, लेकिन दूसरी तरह से कमीशन की सिफारिशों पर जारी की गई सरकारी आज्ञा से स्थिति और भी खराब हो गई थी। क्योंकि उससे भारतीय उच्चाधिकारियों के लिए दो ही उपाय रह गये थे—या तो जिस स्थिति में स्टेच्युटरी सर्विस के मातहत वे उस समय थे उसी में बने रहें, या प्रान्तीय सर्विस में सम्मिलित हो जायं, जिनके सदस्यों के लिए शासन के सब उच्च पदों पर ताला डाल दिया गया था। स्थिति उस समय यह थी कि प्रथम तो सर्व-भारतीय नौकरियों के लिए प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाएँ होती थीं, दूसरे स्टेच्युटरी सनदी नौकरियां थीं जिनकी $\frac{1}{6}$ नौकरियां १८६१ के कानून के अनुसार भारतीयों के लिए रक्षित थीं, तीसरे सनदी नौकरियां थीं जिनमें भारतीय ही भारतीय थे। १८९२ में कांग्रेस ने पब्लिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट पर किये गये भारत सरकार के प्रस्ताव पर असंतोष प्रकट किया और उसके बारे में कामन-सभा को एक प्रार्थना-पत्र भेजा। बात यह थी कि दूसरी श्रेणी की ९४१ नौकरियों में $\frac{1}{6}$ पद १५८ भारतीयों के लिए रखे गये थे, परन्तु पब्लिक-सर्विस-कमीशन ने कहा कि इनमें से १०८ पद उन्हें देने चाहिए। भारत-मंत्री ने उस 'चाहिए' शब्द को भी बदल कर 'दिये जा सकते हैं' कर दिया। इससे १५८ में से, जो १०८ पद सरकार के हाथ में थे उसमें से सिर्फ ९३ पद ही १८९२ में भारतीयों को दिये गये। इसके बाद तो स्थिति और भी खराब हो गई। भारत-सरकार के तत्संबंधी प्रस्ताव की भारत-मंत्री ने अपने ख़रीते-द्वारा पुष्टि कर दी। फलतः १८९४ में जाति-भेद के आधार पर भारतीयों के खिलाफ अयोग्यता की निश्चित मुहर लग गई, क्योंकि उस खरीते में यह स्पष्ट कर दिया गया कि सनदी नौकरियों (द्वितीय श्रेणी के उच्च पदों) में कम से कम इतने अंग्रेज अफसर तो रहने ही चाहिए। २ जून १८९३ को कामन-सभा ने इस आशय का जो प्रस्ताव पास किया था, कि भारतीय जनता के साथ न्याय करने के लिए दोनों देशों में साथ-साथ परीक्षाएँ होने का क्रम शीघ्र अमल में ले आना चाहिए, उसका इससे ख़ात्मा

हो गया। इस प्रकार जबकि भारतवर्ष 'इण्डियन सिविल, मेडिकल, पुलिस, इंजि-नियरिंग, टेलीग्राफ, फारेस्ट और एकाउण्ट्स सर्विसेज' (नौकरियों) में प्रवेश करने के लिए दोनों देश में साथ-साथ प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाएँ होने की सुविधा मांग रहा था, सरकार ने १८९५ में उनसे उलटा रुख अख्तियार किया। शिक्षा विभाग की ऊंची नौकरियों को दो भागों में बांट दिया गया—बड़ी अर्थात् आई० ई० अस० (सर्वभारतीय) और छोटी अर्थात् पी० ई० एस० (प्रान्तीय), बड़ी नौकरियों की नियुक्ति इंग्लैण्ड में और छोटी नौकरियों की नियुक्ति भारतवर्ष में होने का नियम रखा गया। १८८० से पहले ऐसा नहीं था। उस समय बंगाल में उच्चपदस्थ भारतीयों और अंग्रेजों को एक समान वेतन मिलता था। दोनों का प्रारंभिक वेतन ५०० रुपये होता था, पर १८८० में भारतवासियों का वेतन घटा कर ३३३) कर दिया गया और १८८९ में २५० रु० ही रह गया, यद्यपि भारत-वासी इंग्लैण्ड के विश्वविद्यालयों के ही ग्रेजुएट होते थे। भारतवासियों के लिये अधिक-से-अधिक वेतन १८९६ में ७०० रु० था, चाहे कितने ही समय की उनकी नौकरी क्यों न हो जाय, परन्तु अंग्रेजों को अपनी नौकरी के दस वर्ष पूरे होते ही १,००० रु० मिलने लगते थे। नयी योजना ने भारतवासियों को ऐसे कुछ कालेजों के प्रिन्सिपल होने से भी महरूम कर दिया जो अंग्रेजों की पढ़ाई के लिए रक्षित थे।

सैनिक समस्या

सैनिक समस्या पर भी कांग्रेस ने ध्यान दिया। अपने पहले अधिवेशन में ही कांग्रेस ने सैनिक खर्च की प्रस्तावित वृद्धि का विरोध किया। अगले वर्ष इस बिना पर भारतीयों को सैनिक स्वयंसेवक बनाने की प्रथा जारी करने पर जोर दिया गया, कि यूरोप की इस समय जो अस्त-व्यस्त हालत है उसमें यदि कोई खतरनाक वक्त आ जाय तो वे (ब्रिटेन की) सरकार के लिये बड़े सहायक सिद्ध होंगे। तीसरे साल भारत की राजभक्ति और १८५८ की घोषणा में महारानी विक्टोरिया-द्वारा दिये गये वचन के आधार पर सेना-विभाग की ऊँची नौकरियों का दरवाजा भारतवासियों के लिए भी खोलने का मतालबा किया गया। इसके लिए कांग्रेस ने देश में सैनिक कालेज की स्थापना करने के लिए कहा। चौथे और पांचवें अधिवेशनों में पहले के प्रस्तावों की पुष्टि की गई। छठे में कोई विचार नहीं हुआ, पर सातवें में इस पर चर्चा हुई और सरकार से आग्रह करते हुए यह मतालबा किया गया कि वह शस्त्र-विधान के नियमों में ऐसा संशोधन करे कि वे धर्म, जाति या वर्ण के भेद-भाव बगैर सब पर एक-समान लागू हों, साम्राज्य के जिस-जिस भाग में अधिक सैनिक प्रवृत्ति के लोग हों वहां-वहां अनिवार्य सैनिक-सेवा की पद्धति प्रचलित करके उनका संगठन किया जाय और भारत में सैनिक-विद्यालयों की स्थापना एवं सैनिक-स्वयंसेवकों की भर्त्ती की प्रथा आरम्भ की जाय। इन प्रार्थनाओं

और विरोधों के होते हुए भी सैनिक व्यय में उलटे असाधारण वृद्धि हुई। तब आठवें अधिवेशन में कांग्रस को यह मांग पेश करनी पड़ी कि इस व्यय का एक हिस्सा इंग्लैण्ड को भी बरदाश्त करना चाहिए। नवें अधिवेशन ने इस विषय के सामाजिक पहलू अर्थात् भारत की फौजी छावनियों में होनेवाली वेश्यावृत्ति एवं छूत की बीमारियों पर विचार किया और दसवें अधिवेशन ने उसी प्रस्ताव की फिर पुष्टि की। १८९४ में वेल्बी-कमीशन नियुक्त हुआ जो कि सैनिक व्यय को इंग्लैण्ड और भारतवर्ष के बीच विभक्त करने वाला था। ग्यारहवें और बारहवें अधिवेशनों में इस सम्बन्ध में कोई विचार नहीं हुआ, परन्तु सीमाप्रान्त में सरकार ने जो नीति ग्रहण की थी उसके फलस्वरूप तेरहवें अधिवेशन में इस पर विचार हुआ और सरकार से कहा गया कि इस व्यय में इंग्लैण्ड को भी हिस्सा बटाना चाहिए। चौदहवें अधिवेशन ने भी ऐसा ही निश्चय किया, परन्तु पन्द्रहवें अधिवेशन ने इसके एक नये पहलू को स्पर्श किया। सीमाप्रान्त की लड़ाई खत्म हो जाने पर सोलहवें अधिवेशन में कांग्रेस फिर सैनिक विद्यालय के प्रश्न पर जा पहुंची। इस अधिवेशन के साथ उन्नीसवीं सदी समाप्त हो गई। १९०१ में महारानी विक्टोरिया भी मरा गईं और राज-सिंहासन पर नये सम्राट् (किंग एडवर्ड सप्तम) का आगमन हुअ, परन्तु भारत के फौजी दुखड़े ज्यों-के-त्यों बने रहे। १९०२ के सत्रहवें अधिवेशन में कांग्रेस न, अपने पन्द्रहवें अधिवेशन के ही आधार पर, सैनिक व्यय को भारत और इंग्लैण्ड के बीच विभक्त करने की मांग रखी। अन्त में १८९४ के वेल्बी-कमीशन की रिपोर्ट के फलस्वरूप भारत को थोड़ी-बहुत छूट मिली। परन्तु ब्रिटिश सैनिकों की तनखाहों में ७,८६,००० पौंड सालाना बढ़ती करके उससे भी ज्यादा भारी नया बोझ भारत के सिर लाद दिया गया। अठारहवें अधिवेशन में इसका विरोध किया गया।

उन्नीसवें अधिवेशन में इस परिस्थिति पर व्यापक-दृष्टि से विचार किया गया। इस समय लार्ड कर्जन की तिब्बत पर चढ़ाई करने की उग्र नीति अमल में आ रही थी। १८५८ के कानून में भारतवर्ष का रुपया भारतवर्ष की कानूनी सीमा के बाहर विदेशी आक्रमण से रक्षा करने के सिवा दूसरे किसी काम में पार्लमेण्ट की स्वीकृति बगैर खर्च न करने का नियम था, परन्तु लार्ड कर्जन ने तिब्बत की चढ़ाई को 'राजनैतिक कार्य' बताकर उसकी भी उपेक्षा कर दी। बीसवें अधिवेशन में कांग्रेस ने लार्ड कर्जन की इस करतूत का विरोध किया। बनारस के अपने इक्कीसवें अधिवेशन में कांग्रेस ने इस बात का विरोध किया कि प्रचलित नीति में, जिसके द्वारा फौजी अधिकारियों पर गैर-फौजी अर्थात् मुल्की अधिकारियों का नियन्त्रण होता था, किसी प्रकार परिवर्तन किया जाय। साथ ही इस बात पर भी जोर दिया गया कि सेना पर मुल्की अधिकारियों का नियन्त्रण तभी पूरी तरह हो सकता है जब कर-दाताओं को उस नियन्त्रण पर असर डालने की स्थिति में रखा जाय। १९०६

में राष्ट्रीय नव-चेतना के समय भी साल-दर-साल सामने आनेवाले इस दुस्साध्य विषय को भुलाया नहीं गया।

१९०८ में कांग्रेस ने जोरों के साथ ३,००,००० पौण्ड के उस नये भार का विरोध किया जो रोमर-कमेटी की सिफारिश पर ब्रिटिश युद्ध-विभाग ने भारतीय कोष पर लाद दिया था। १९०९ और १९१० में साल-दर-साल बढ़ते जानेवाले सैनिक व्यय की आलोचना की गई। १९१२ और १९१३ के अधिवेशनों में सेना विभाग के उच्च पद भारतीयों को न देने के अन्याय की ओर पूर्ण ध्यान आकृष्ट किया गया। १९१४ में कांग्रेस ने अपनी इस मांग को फिर दोहराया कि सेना-विभाग की ऊंची नौकरियां भारतवासियों को भी दी जायं, सैनिक स्कूल खोले जायं और भारतीयों को सैनिक-स्वयंसेवक बनाया जाय। ड्यूक आफ कनाट ने इनमें पहली दो बातों का समर्थन किया। १९१७ में भारतवासियों पर से सेना की 'कमीशन्ड' जगहें मिलने की बाधा हटा ली गई और नौ भारतवासियों को ऐसी जगहें भी दी गईं। इससे उस अन्याय की आंशिक पूर्ति हुई। फलतः कलकत्ता में होनेवाली १९१७ की कांग्रेस ने इस विषय में अपना सन्तोष प्रकट किया और १६ से १८ वर्ष तक की उम्र के युवकों की 'केडेट कोर' प्रत्येक प्रान्त में संगठित करने पर जोर दिया।

कानून और न्याय

ब्रिटिश-भारत में कानूनी सुधार के लिए आन्दोलन राजा राममोहन राय के समय से आरंभ हुआ। उन्होंने अन्य विषयों के साथ इस विषय में जिन सुधारों का प्रतिपादन किया उनमें से एक यह भी था कि शासन और न्याय कार्यों को एक दूसरे से सर्वथा पृथक् किया जाय, लेकिन नतीजा कुछ भी नहीं हुआ। राजा राममोहन राय के बाद उत्साही कार्यकर्त्ताओं के एक दल ने जिसमें श्री दादाभाई नौरोजी सबसे प्रमुख थे, इस प्रश्न को हाथ में लिया। इसके लिए बंगाल, बम्बई तथा मद्रास में संघ बनाये गये, जिनमें बंगीय राष्ट्रीय-संघ खास तौर पर उल्लेखनीय था। शिक्षा-प्रचार के साथ-साथ इस आन्दोलन का प्रसार और जोर-शोर के साथ बढ़ा और १८८५ में कांग्रेस ने इस प्रश्न को अपने हाथ में ले लिया। दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस ने अपनी यह राय जाहिर की कि शासन और न्याय-कार्यों का शीघ्र एक-दूसरे से पृथक् होना आवश्यक है। तीसरे अधिवेशन में इसका प्रतिपादन करते हुए कहा गया कि ऐसा करने में खर्च बढ़ाना पड़ता हो तो भी इसमें देरी न की जाय। अगले साल यह विषय और जूरी-प्रथा का प्रश्न, दोनों एक-साथ कर दिये गये और प्रतीत होने लगा कि मूल प्रस्ताव में ही अब उसका भी प्रवेश हो जायगा, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। प्रति वर्ष कांग्रेस इस प्रस्ताव को दोहराती रही और १८९३ में तो यहां तक कह दिया गया कि न्याय और शासन-कार्यों का सम्मिश्रण भारत

के ब्रिटिश-शासन के लिए एक बड़ा कलंक है, जिससे देश भर के समस्त जाति और समाज वाले लोगों को बेहद तकलीफ उठानी पड़ती है। १८९४ में कांग्रेस ने दो भूतपूर्व भारत-मन्त्रियों (लार्ड किम्बरली तथा लॉर्ड क्रॉस) के जो मत उद्-धृत किय वे भी उसके समर्थक ही थे। और यह वस्तुतः बहुत महत्वपूर्ण बात है कि वे मत जिम्मेदार अधिकारियों के थे, किसी ऐरे-गैरे व्यक्ति के नहीं। लेकिन हुआ कुछ भी नहीं और आन्दोलन बराबर जारी रहा। मदनमोहन घोष ने इसमें खास तौर पर दिलचस्पी ली और इसे अपने अध्ययन का मुख्य विषय बनाया। १८९६ में उनकी मृत्यु होजाने पर, बारहवें अधिवेशन में, कांग्रेस ने उनकी मृत्यु पर शोक मनाते हुए इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि 'न्यायालयों को शासन-कार्य से अलग रखने के विचार का इंग्लैण्ड और भारतवर्ष की जनता ने समर्थन किया है। १८९९ में इस अत्यन्त आवश्यक सुधार को कार्यान्वित करने के लिए कई प्रसिद्ध अंग्रेज न्यायाधीश और सार्वजनिक सेवकों ने सपरिषद् भारत-मन्त्री को प्रार्थना-पत्र भेजा। इससे कांग्रेस को और बल मिला। १९०१ में, कांग्रेस ने देखा कि मामला आगे बढ़ गया है और भारत सरकार इस पर गौर कर रही है। परन्तु १९०८ तक कोई अमली तरक्की नहीं दिखाई दी; क्योंकि उसी साल कांग्रेस ने इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि बंगाल प्रान्त के लिए सरकार ने कुछ निश्चित रूप में इस बात को स्वीकार कर लिया है, लेकिन बारह महीने पूरे भी नहीं हो पाये थे कि कांग्रेस को अपनी निराशा का पता लग गया। इसके बाद लगातार दो अधिवेशनों में इसी निराशा का राग अलापा गया।

जूरी के अधिकार कम करने और न्याय तथा शासन-कार्य सम्मिलित रखने के पुराने घाव अभी हरे ही थे और उनमें सुधार होने के कोई आसार नज़र नहीं आ रहे थे, कि १८९७ में एक नया घाव और कर दिया गया। १८१८ का तीसरा रेग्युलेशन (बंगाल), १८१९ का दूसरा रेग्युलेशन (मद्रास) और १८२७ का पच्चीसवां रेग्युलेशन (बम्बई) ये तीन पुराने कानून प्रकाश में आये, जिनके मात-हत हर किसी को मुकदमा चलाये बगैर ही जलावतन किया जा सकता था। सर-दार नातू-बन्धुओं पर इस शस्त्र का प्रयोग किया गया, जो १८९७ के कांग्रेस अधि-वेशन होने के वक्त ५ महीने से अधिक समय से जेल में थे। कांग्रेस यह देखकर दंग रह गई, क्योंकि गिरफ्तारी से पहले उनको वैसा नोटिस भी नहीं दिया गया था जिसे इन रेग्युलेशनों के अन्तर्गत देना जरूरी था।

१८९७ का साल हर तरह प्रतिक्रिया का साल था। लोकमान्य तिलक को राजद्रोह के अपराध में ऐसे लेख प्रकाशित करने पर सजा दी गई जो खुद उनके लिखे हुए नहीं थे। पूना में ताजीरी पुलिस तैनात की गई और कानून की राजद्रोह (दफा १२४ ए) तथा खतरे की झूठी अफवाहें फैलाने-सम्बन्धी (दफा ५०५) धाराओं में ऐसा संशोधन किया गया जिससे वे और भी कठोर हो गईं। कांग्रेस ने

सर्वसाधारण के अधिकारों पर किये जाने वाले इस आक्रमण का विधिवत् विरोध किया।

दायमी बन्दोबस्त और अकाल

कांग्रेस ने सबसे पहले नहीं तो भी आरंभ में ही थोड़े-थोड़े समय के लिए होनेवाले जमीन के बन्दोबस्त पर भी ध्यान दिया। इलाहाबाद में होनेवाले कांग्रेस के चौथे अधिवेशन ने अपनी स्थायी समिति को यह काम सौंपा कि वह इस सम्बन्ध में विचार करके १८८९ के अधिवेशन में अपनी रिपोर्ट पेश करे। १८८९ में बाबू वैकुण्ठनाथ सेन ने इसका उल्लेख करते हुए बताया कि १८६० में दुर्भिक्ष के कारणों की जांच के लिए जो कमीशन नियुक्त हुआ था उसने दायमी बन्दोबस्त की सिफारिश की थी, जिसे भारत-मन्त्री ने भी १८६२ के अपने खरीते में मंजूर कर लिया था। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि कभी-कभी तो लगान में बढ़ाई हुई रकम गांव में पैदा होनेवाली फसल से भी बढ़ जाती है।

१८९२ में कांग्रेस ने लगान को निश्चित और स्थायी करने के लिए कहा, और कृषि-सम्बन्धी बैंकों की स्थापना के लिए प्रार्थना की। अगले साल भारत-मंत्री द्वारा दिये गये उन वचनों की पूर्ति करने के लिये कहा गया, जो उन्होंने अपने १८६२ और १८६५ के खरीतों में दायमी बन्दोबस्त के लिए दिये थे। १८९६ में कांग्रेस ने अपने रुख को और भी नरम किया और प्रार्थना की कि एक के बाद दूसरा बन्दोबस्त करने में कम-से-कम ६० साल की अवधि रखी जाय। १९०३ में कांग्रेस इससे भी आगे बढ़ी और 'लगान अधिक न लगाया जाय' इसके लिए कानूनी तथा अदालती रुकावटें लगाने के लिए कहा। १९०६ में कांग्रेस ने लॉर्ड कैनिंग और लार्ड रिपन की नीति से, जो उन्होंने क्रमशः १८६२ और १८८२ में लगान पर नियन्त्रण रखने के संबंध में प्रतिपादित की थी, १९०२ में एक प्रस्ताव-द्वारा घोषित लॉर्ड कर्जन की नीति की तुलना करके दोनों को परस्पर विरोधी बताया और इस विचार का विरोध किया कि भारतवर्ष में जमीन का लगान 'कर' नहीं बल्कि 'किराया' है। १९०८ में भी इसी तरह का एक प्रस्ताव पास हुआ। इसके बाद निराश होकर अपने आप कांग्रेस ने इस विषय को छोड़ दिया।

सिंचाई-कर के प्रश्न पर कांग्रेस ने केवल एक बार विचार किया और वह १८९४ में हुए मद्रास के अधिवेशन में, जिस साल कि एक हुक्म निकालकर आबपाशी का कर ४) से बढ़ाकर ५) प्रति एकड़ कर दिया गया था। इन दिनों लगातार जो दुर्भिक्ष हुए उनका आंशिक कारण इन करों और महसूलों की लगातार वृद्धि होते जाना ही था। १८९६ के दुर्भिक्ष की परिस्थिति के कारण कांग्रेस को सरकार की आर्थिक नीति का सिंहावलोकन करना पड़ा। सरकार से कहा गया कि वह अकाल-रक्षक-कोष बनाकर अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूर्ण करे। दायमी बन्दोबस्त

और कृषि-सम्बन्धी बैंकों तथा कला-कौशल सम्बन्धी स्कूलों की स्थापना को गरीबी दूर करने का असली उपाय बतलाया गया। इसके बाद ही एक अकाल-कमीशन बैठाया गया। इसी बीच अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए ब्रिटेन और अमरीका से आई हुई उदारतापूर्ण रकमों के लिए धन्यवाद प्रकट करते हुए कांग्रेस ने १,००० पौण्ड की रकम लन्दन के लार्ड मेयर के पास भेजने का निश्चय किया ताकि लन्दन के किसी प्रमुख स्थान में वह प्राप्त-सहायता के लिए भारतीयों की कृतज्ञता का सूचक एक स्मारक बना दें। यह १८९८ की बात है। लेकिन ऐसा करते हुए कांग्रेस ने उन असली उपायों की उपेक्षा नहीं की जिनका वह प्रतिपादन करती आ रही थी। १८९९ में एक बार फिर उसने सरकार पर जोर डाला कि सरकारी खर्च में कमी की जाय, स्थानीय और देशी उद्योग-धन्धों की उन्नति की जाय और जमीन का लगान तथा दूसरे करों में कमी की जाय। अगले साल सारे प्रश्न पर और भी व्यापक रूप से विचार किया गया और इस बात की मांग पेश की गई कि भारत-वासियों की आर्थिक अवस्था की जांच कराई जाय। इसके बाद के अधिवेशनों में हम इस विषय पर और कुछ नहीं पाते, जिसका कारण शायद यह है कि बाद के वर्षों में कांग्रेस का दृष्टिकोण पहले से काफी बदल गया था।

कानून जंगलात

जंगलात के कानूनों से हुए नुकसान को कांग्रेस ने अच्छी तरह नहीं समझा। उनका मुकाबला तो लगान और नमक के कर से ही हो सकता था, जिन्होंने लोगों पर असह्य बोझ डाल दिया था। १८९२-९३ में बड़ी नम्रता के साथ भारत-सरकार से प्रार्थना की गई कि जंगलात के कानूनों से जो कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं, खास-कर दक्षिण-भारत और पंजाब के पहाड़ी इलाकों में, उनकी जांच कराई जाय। पंजाब-सरकार ने इस सम्बन्ध में जो नियम बनाये वे इतने कठोर और अन्यायपूर्ण थे कि नवें अधिवेशन में पं० मेघनराम ने उन्हें अत्यन्त स्वेच्छाचारी और किसी भी सभ्य-सरकार के लिए कलंक-रूप बताया था। इनके अनुसार अगर कहीं आग लग जाती, फिर चाहे वह आकस्मिक हो या किसी दूसरे ने लगाई हो, तो उसके लिए वही व्यक्ति जिम्मेदार माना जाता जो उस जमीन का मालिक होता या उस समय उसपर काबिज होता, और उसके साथ उसी तरह का व्यवहार होता, मानों उसने जान-बूझकर कानून की परवाह न की हो। जिन पहाड़ी लोगों के लिए पहाड़ों पर पैदा होनेवाली घास या लकड़ी ही सब कुछ थी और जिसपर उनकी और उनके पशुओं की जिन्दगी का दारोमदार था, उनके लिए उसे लेने की मनाही कर दी गई। यहां तक कि जंगल में तापने के लिए वे आग भी नहीं जला सकते थे। इसके विरुद्ध हुए आन्दोलन के फलस्वरूप २० अक्तूबर १८९४ को भारत-सरकार ने नं० २२ एफ० का एक गश्ती प्रस्ताव प्रकाशित किया, जिसमें जङ्गलों के प्रबन्ध

में रैयतों की कृषि-सम्बन्धी आवश्यकता के सामने आर्थिक प्रश्नों को कम महत्व देने का सिद्धान्त स्वीकार किया गया था।

इस पर कांग्रेस ने अपने दसवें अधिवेशन में, आग्रह किया कि तीसरे और चौथे वर्ग के जंगलों में जलाने की लकड़ी, पशु चराने के अधिकार, पशुओं के खाने को चीजें, मकान और खेती के औजार बनाने के लिए सागौन और खाने की जङ्गली चीजें आदि, उचित प्रतिबन्धों के साथ, हर हालत में मुफ्त दी जायं और जंगलों की सीमायें इस तरह निश्चित की जायं जिससे किसानों को इस महकमे के कर्मचारियों से तंग हुए बिना अपने जातीय (सामूहिक) अधिकारों का उपभोग करने की छूट रहे। ग्यारहवें और चौदहवें अधिवेशनों में इस बात पर जोर दिया गया कि जंगलात के कानूनों का उद्देश्य जङ्गलों की आमदनी का जरिया बनाना नहीं, बल्कि किसानों और उनके पशुओं के लिए उन्हें रक्षित रखना है। साथ ही इस बात की शिकायत भी की गई कि भिन्न-भिन्न प्रांतीय सरकारों ने जो नियम बनाये हैं उनके अनुसार महकमे जङ्गलात के कामों से देहाती लोगों पर बुरा असर पड़ता है और वे उस महकमे के छोटे कर्मचारियों के दबाव और तकलीफ में पड़ जाते हैं। लेकिन १८९९ के बाद के अधिवेशनों में, जंगल-सम्बन्धी कोई प्रस्ताव पास नहीं हुआ। सिर्फ एक बड़ा प्रस्ताव बनाया जाता था जिसके एक अंश के रूप में इसका उल्लेख रहता था।

व्यापार और उद्योग

ब्रिटिश-शासन में भारतवासियों की जो-जो समस्याएँ थीं, उनके खास-खास पहलुओं को कांग्रेस के प्रारम्भिक राजनीतिज्ञों ने भली-भांति समझ तो लिया था; परन्तु ये समस्याएँ ऐसी थीं कि उनको हल करने का रास्ता उन्हें हमेशा दिखाई न पड़ता था। यह बात वे जान गये थे कि लंकाशायर के मुकाबले में भारतीय हित छोटे और गौण हैं; साथ ही यह बात भी उन्होंने बखूबी जान ली थी कि ग्रामीण दस्तकारियों और कला-कौशल को चाहे निश्चित रूप से नष्ट न किया जाता हो, मगर उनके प्रति लापरवाही जरूर की जाती है।

१८९४ में कांग्रेस ने ब्रिटिश-भारत में तैयार होनेवाले सूती माल पर कर लगाये जाने का विरोध किया और अपना यह निश्चित विश्वास प्रकट किया कि इस कर का निश्चय करते वक्त लंकाशायर के हितों के सामने भारतीय-हितों का बलिदान किया गया है। ग्यारहवें अधिवेशन में घोषणा की गई कि २० नवम्बर से नीचे के भारतीय सूती माल को कर से मुक्त रखने पर लंकाशायर वालों ने जो आपत्ति की है वह बे-बुनियादी है। १९०६ में, दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में, कलकत्ता-कांग्रेस का जो प्रसिद्ध अधिवेशन हुआ उसमें पं० मदनमोहन मालवीय ने इस रहस्य का उद्घाटन किया कि हमारे उद्योग-धन्धों के बारे में हमें सफलता क्यों नहीं

मिलती। उन्होंने कहा कि हमारे देश का कच्चा माल देश से बाहर चला जाता है और विदेशों से तैयार होकर उसका माल हमारे पास आता है। अगर हम स्वतन्त्र होते तो ऐसा न होने देते। उस हालत में हम भी उसी प्रकार अपने उद्योगों का संरक्षण करते, जिस प्रकार कि सब देश अपने उद्योगों की शैशवावस्था में करते हैं।

लो० तिलक ने इस बात पर अफसोस जाहिर किया कि विदेशी माल की सबसे ज्यादा खपत मध्य-श्रेणी वालों में ही है। उन्होंने कहा कि हमारे अन्दर स्वावलम्बन, दृढ़-निश्चय और त्याग की भावना होनी चाहिए। स्वदेशी की भावना उत्पन्न होने पर और १९०६ तथा इसके बाद के वर्षों में बहिष्कार-आन्दोलन से उसको प्रोत्साहन मिलने के फलस्वरूप भारतवर्ष का ध्यान भारतीय उद्योग-धन्धों के पुनर्जीवन की ओर खिच गया। गांव और उनके उद्योग-धन्धों एवं खेती की बरबादी की ओर भी भारतीय राजनीतिज्ञों का ध्यान गया। १८९८ में ही पं० मदनमोहन मालवीय ने यह प्रस्ताव रखा कि सरकार को देशी उद्योग-धन्धों एवं कला-कौशल की उन्नती करनी चाहिए। १८९१ की नागपुर-कांग्रेस में, उर्दू में भाषण करते हुए, ला० मुरलीधर ने इस सम्बन्ध में श्रोताओं से बड़ी जोरदार अपील की थी। कांग्रेस के नवें अधिवेशन में पण्डित मदनमोहन मालवीय ने पुनः अपना प्रभावशाली मत प्रकट किया। आगे चलकर सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर ने हाईकोर्ट की जजी से अवकाश ग्रहण करने के बाद १९१४ में गांवों के पुनर्जीवन और कर्जा-संस्थाओं की आवश्यकता पर बहुत जोर दिया। १८९९ में ला० लाजपतराय की प्रेरणा पर कांग्रेस ने आधा दिन शिक्षा एवं उद्योग-धंधों के विचार में लगाया और इसके लिए एक उपसमिति कायम की। इन सब कार्रवाइयों के फलस्वरूप औद्योगिक प्रदर्शनी की शुरुआत हुई, जो सबसे पहले कलकत्ता कांग्रेस के साथ १९०१ में हुई। इसके बाद क्रमशः इसमें उन्नति होती गई। उद्योग-धन्धों की ओर कांग्रेस का ध्यान १८९४ में भारतीय सूती माल पर कर लगाये जाने के कारण ही आकृष्ट हुआ। इसका उसी समय उसने विरोध किया, लेकिन स्वयं गवर्नर-जनरल-द्वारा उसका विरोध किये जाने पर भी वह उठाया नहीं गया। उसे उठाना तो दूर, उलटे लार्ड सेल्सबरी ने यह निर्देश किया कि भारतीय माल की प्रतिस्पर्द्धा से ब्रिटिश माल को बचाने के लिए उपाय किये जायं। लगान का यह हाल था कि एक छोटे से जिले में १८९१ में ६६ फीसदी बढ़ा, दूसरे में ९९ फी सदी और तीसरे में १९६ फी सदी हो गया और कुछ गांवों में तो ३०० से १५०० फी सदी तक बढ़ा, जबकि इसके साथ-साथ फौजी खर्च भी बेशुमार बढ़ता रहा।

उस समय जर्मनी में फी सैनिक १४५ रु०, फ्रांस में १८५ रु० और इंग्लैण्ड में २८५ रु० वार्षिक व्यय होता था, परन्तु हिन्दुस्तान में प्रत्येक अंग्रेज सैनिक पर ७७५ रु० सालाना खर्च किया जाता था; और यह उस हालत में जबकि फी

आदमी की औसत आमदनी इंग्लैण्ड में ४२ पौण्ड, फ्रांस में २३ पौण्ड और जर्मनी में १८ पौण्ड थी और हिन्दुस्तान में सिर्फ १ ही पौंड थी। ये अंक १८९१ के हैं।

अकालों के बारे में बार-बार प्रस्ताव पास हुए और मजदूरी के सिलसिले में सजा देने के कानून को उठा देने के लिए १८८७ में ही प्रस्ताव किया गया।

बहिष्कार और स्वराज्य

१९०६ के बाद जो नवीन जागृति और नया तेज देश में इस छोर से उस छोर तक फैल गया, उसका मूल-कारण वंग-भंग था। पुण्य-नगरी काशी में जब कांग्रेस का २१वां अधिवेशन १९०५ में हुआ तब उसमें वंग-भंग पर विधिवत् विरोध प्रदर्शित किया गया और कहा गया कि वह रद्द कर दिया जाय। कम-से-कम उसमें ऐसा संशोधन जरूर कर दिया जाय जिससे सारा बंगाली-समाज एक शासन में रह सके। परन्तु वंग-भंग आन्दोलन को दबाने के लिए जो दमनकारी उपाय काम में लाये गये उनके विषय में इस कांग्रेस में जो प्रस्ताव पास किया गया वह कुछ गोल-मोल था। १९०५ में जिस साहस का अभाव था वह १९०६ में आ गया। बंग-भंग पर एक प्रस्ताव करने के बाद कांग्रेस ने बहिष्कार-आन्दोलन का भी समर्थन किया। इसके बाद कांग्रेस ने कुछ नुकसान सहकर भी देशी उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने का प्रस्ताव पास किया। बस, गाड़ी यहीं रुक गई। दूसरे साल सूरत में कांग्रेस के दो टुकड़े हो गये और नरम-दल-वाली कांग्रेस ने तो आगे के सालों में बहिष्कार को कतई छोड़ दिया, सिर्फ स्वदेशी को कायम रखा और स्व-शासन-सम्बन्धी प्रस्ताव उतरते-उतरते सिर्फ मिण्टो-मॉर्ले सुधार-योजना के परीक्षण तक मर्यादित रह गया। १९१० में नये वाइसराय लॉर्ड हार्डिङ्ग आये। उसी वर्ष कांग्रेस ने उनसे राजनैतिक कैदियों को छोड़ने की अपील की। दूसरे साल फिर ऐसी अपील की गई। परन्तु १९१४ में जब मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तब उसने साहस करके सरकार से यह मतालबा किया, कि तारीख २५ अगस्त सन् १९११ के खरीते में प्रान्तीय पूर्णाधिकार के सम्बन्ध में जो वचन दिया गया है उसे वह पूरा करे और भारतवर्ष को संघ-साम्राज्य का एक अंग बनाने और उस हैसियत के सम्पूर्ण अधिकार देने के लिए जो कार्य आवश्यक हों वे सब किये जायं।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

संभवतः लोगों का अनुमान होगा कि यह साम्प्रदायिक या जातिगत प्रतिनिधित्व का प्रश्न आजकल ही खड़ा हो गया है, परन्तु ऐसा नहीं है। सर ऑकलैण्ड कॉलविन (१८८८) जब उत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर थे तब इसकी बुनियाद पड़ चुकी थी। उस समय यह दिखाने की कोशिश की गई थी कि मुसलमान कांग्रेस के विरोधी हैं। यहां तक कि ह्यूम साहब ने भी इसे महत्वपूर्ण

समझा और इसके विषय में एक लम्बा जवाब उन्होंने सर ऑकलैण्ड को भेजा। मुसलमानों पर भी इस विचार का तुरन्त प्रभाव पड़ा। कांग्रेस का चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में यूरोपियन लोगों का विरोध होते हुए भी हुआ। उसमें शेख रजाहुसेन खां ने धड़ल्ले के साथ कहा कि मुसलमान नहीं, बल्कि उनके मालिक, सरकारी हुक्काम, हैं, जो कांग्रेस के मुखालिफ हैं।

लॉर्ड मिण्टो के जमाने में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के विचार ने मूर्त-रूप धारण किया। मिण्टो की शासन-सुधार-योजना में मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन-संघ की तजवीज की गई थी, परन्तु साथ ही संयुक्त-निर्वाचन में भी राय देने का उनका हक ज्यों-का-त्यों कायम रखा गया था। इस संबंध में जो बड़ी अजीब बात थी वह यह कि भिन्न-भिन्न जातियों के लिए भिन्न-भिन्न मताधिकार रखा गया था। एक मुसलमान तीन हजार रुपये साल की आमदनी वाला जहां मतदाता हो सकता था वहां एक गैर-मुसलिम तीन लाख सालाना आमदनी वाला हो सकता था। मुसलमान ग्रेजुएट को मतदाता बनने के लिए इतना काफी था कि उसे ग्रेजुएट हुए तीन साल हो जायं; परन्तु गैर-मुस्लिम के लिए तीस साल हो जाना जरूरी था। जरा गौर तो कीजिए, एक तरफ तीन हजार रुपये और दूसरी तरफ तीन लाख रुपये! एक तरफ तीन साल और दूसरी तरफ तीस साल! १९१० में हालत बहुत नाजुक हो गई। सर डब्ल्यू० एम० वेडरबर्न कांग्रेस के सभापति हुए। उन्होंने यह चाहा था कि हिन्दू और मुसलमानों की एक परिषद् की जाय, जिससे इस जातिगत प्रश्न पर मेल हो जाय। उस समय म्युनिसिपैलिटियों और लोकल-बोर्डों में पृथक् निर्वाचन तरीके के जारी होने की बात चल रही थी। उत्तर प्रदेश में, जहां कि पृथक् निर्वाचन नहीं था, यह पाया गया कि संयुक्त निर्वाचन में मुसलमानों की संख्या कुल आबादी की $\frac{1}{3}$ होते हुए भी जिला-बोर्डों में मुसलमान १८९ और हिन्दू ४४५ चुने गये और म्युनिस्पैलिटियों में मुसलमान ३१० और हिन्दू ५६२। यहां तक कि सर जॉन ह्यूवेट जैसा प्रतिगामी उत्तर प्रदेश का लेफ्टिनेण्ट गवर्नर भी उस प्रान्त में दोनों जातियों के मेल-मिलाप में खलल डालने के पक्ष में नहीं था। एक 'बर्न' सरक्यूलर अवश्य निकला था जोकि स्थानीय संस्थाओं में जातिगत प्रतिनिधित्व के पक्ष में था। उसमें यह प्रतिपादित किया गया था कि मुसलमानों को पृथक् निर्वाचन के अलावा संयुक्त निर्वाचन में भी राय देने की सुविधा होनी चाहिए; क्योंकि इससे दोनों जातियों में अच्छे ताल्लुकात कायम रखने में मदद मिलेगी। इस पर १९११ में कलकत्ता-कांग्रेस के सभापति पं० बिशन नारायण दर ने कहा था कि मैं इतना ही कहूंगा कि हमारी एकता बढ़ाने की यह उत्कण्ठा हमारे भोलेपन से, बहुत भारी हुण्डी लिखवा लेना है।

परन्तु इसके थोड़े ही दिनों बाद दुनिया की हालतों में एक भारी परिवर्तन हो गया। बालकन-राज्य जो एक या दो सदी से यूरोप के मुर्गों के लड़ने का अखाड़ा बना

हुआ था, फिर एक बार नई लड़ाइयों का मैदान बन गया। तब १९१३ में नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर ने, जो करांची-कांग्रेस के सभापति थे, यूरोप में तुर्क-साम्राज्य की नींव उखाड़ने और ईरान के दम घोटने के प्रयत्नों की ओर ध्यान दिलाया। तुर्की साम्राज्य को लगे उस धक्के को जिस दुःख के साथ मुसलमानों ने महसूस किया उसी को उन्होंने वहां प्रदर्शित किया। अन्त में उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को अपनी मातृभूमि के लिए कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम करने पर बहुत जोर दिया। ऐसी परिस्थितियां थीं जिनमें १९१३ की करांची-कांग्रेस में हिन्दू और मुसलमानों ने अपने भेद-भाव मिटा दिये और मुस्लिम-लीग के इस विचार को, कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवासियों को स्वशासन दिया जाय, पसन्द किया और हिन्दू मुसलमानों के बीच मेल एवं सहयोग का भाव बढ़ाने वाले मुस्लिम लीग के कथन को पसन्द किया। कांग्रेस ने मुस्लिम-लीग द्वारा प्रदर्शित इस आशा का भी स्वागत किया कि भिन्न-भिन्न जातियों के नेता राष्ट्रीय हित के तमाम मसलों पर मिलकर एक साथ काम करने का रास्ता निकालने की हर तरह कोशिश करें और सच्चे दिल से हर जाति तथा तबके के लोगों से प्रार्थना की कि वे इस उद्देश्य की पूर्ति में हर तरह की सहायता करें।

उस समय कांग्रेसवालों के मनोभाव कैसे ऊंचे उठ रहे थे, इसका पता उन वक्ताओं के भाषणों की बढ़ी-चढ़ी भाषा से लगता है जो करांची में इस विषय के प्रस्ताव पर बोले थे। परन्तु इतना सब होने पर भी जातिगत प्रतिनिधित्व ज्यों-का-त्यों बना रहा। जातिगत प्रतिनिधित्व सम्बन्धी मिण्टो-मार्ले-योजना हिंदुस्तान के मत्थे जबरदस्ती मढ़ दी गई। लोगों से इस बारे में कोई सलाह-मशविरा नहीं लिया गया। इसलिए १९१६ में जब सुधारों के नये टुकड़े देने की तजवीज चली तब देश ने सोचा कि हिन्दू मुसलमानों का हृदय परस्पर मिल जाना चाहिए। इसके लिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के प्रतिनिधि (नवम्बर १९१६) कलकत्ते में इण्डियन एसोशियेशन के स्थान पर इस उद्देश्य से मिले कि १९१५ में कांग्रेस ने जो आदेश दिया था उसके अनुसार आपसी समझौते और रजामन्दी से प्रतिनिधित्व की योजना बनाई जाय। वातावरण भी इसके अनुकूल था। परन्तु कांग्रेस के हल्के में जो बड़े-बूढ़े लोग थे वे अपनी तरफ से कुछ करने में आगापीछा करते थे। फलतः यह काम युवकों पर आ पड़ा। शायद उम्र में सबसे छोटे लोगों ने, जो उस समय मौजूद थे, आगे क़दम बढ़ाया। लेकिन पृथक् जातिगत निर्वाचन अटल ही रहा।

प्रवासी भारतवासी

जहां भारत में भारतीयों की स्थिति काफी खराब थी, वहां दक्षिण-अफ्रीका स्थित भारतीयों की हालत बद से बदतर हो रही थी। अखिल भारतीय कांग्रेस के सामने पहले श्री मदनजीत ने दक्षिण का प्रश्न उपस्थित किया था। इसमें

सन्देह नहीं कि और भी अनेक ऐसे भारतीय मित्र थे जो समय-समय पर अफ्रीका जाते थे और वहां के पूरे समाचार यहां की जनता तक पहुँचाते थे, लेकिन श्री मदनजीत प्रति वर्ष इसी उद्देश्य से जाते थे। अपने नारंगी कपड़ों, ठिगने कद तथा लम्बी लाठी के कारण वह कांग्रेस में कभी छिपे न रह सकते थे। दक्षिण अफ्रीका-सम्बन्धी अयोग्यताओं का वस्तुतः पहला विरोध १८९४ में हुआ, जब कि अध्यक्ष ने इस आशय का प्रस्ताव पेश किया कि औपनिवेशिक-सरकार का वह बिल रद्द कर दिया जाय जिसमें भारतीयों को मताधिकार नहीं दिया गया था। इसके बाद हर कांग्रेस में दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न अधिकाधिक महत्व ग्रहण करता गया। १८९८ में भारतीयों ने अयोग्यता-सम्बन्धी तीन और कानून पास किये। उसी समय गांधीजी ने अपना प्रसिद्ध आन्दोलन शुरू किया। इसमें भी सबसे अधिक अफसोस की बात यह थी कि तत्कालीन वाइसराय लार्ड एलगिन ने इस कानून के पास होने पर सहमति दी थी और उस समय के भारत-मन्त्री लार्ड जार्ज हैमिल्टन हमें 'जंगलियों की जाति' कहकर संतुष्ट हुए थे। १९०० में भूतपूर्व बोअर-जनतन्त्र ब्रिटिश-उपनिवेश में मिला लिये गये थे। १६वें अधिवेशन (१९००) में इसका निर्देश करते हुए कहा गया था कि स्वतन्त्र बोअरों पर नियंत्रण करने में सरकार को जो कठिनाई होती थी वह दूर हो गई है, इसलिए अब नेटाल में प्रवेश-सम्बन्धी पाबन्दियां और डीलर्स लाइसैन्स-कानून उठा देने चाहिए। १९०१ की १७वीं कांग्रेस (कलकत्ता) में गांधीजी ने दक्षिण-अफ्रीका-प्रवासी लाखों भारतीयों की ओर से प्रार्थी के रूप में दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया था। १९०२ में भारत-मन्त्री से इस प्रश्न पर एक शिष्ट-मण्डल भी मिला, लेकिन कोई नतीजा न निकला। कांग्रेस ने १९०३ और १९०४ में अपने प्रस्तावों को दोहराया। ब्रिटिश-सरकार के जिम्मेदार हलकों में बोअर-युद्ध के जितने कारण घोषित किये गये थे, उनमें से एक यह भी था कि ब्रिटिश-सम्राट् की भारतीय प्रजा के साथ जनतन्त्र में दुर्व्यवहार किया जाता है और यह मांग की गई थी कि भारतीय प्रवासियों के साथ भी न्याय और समान व्यवहार किया जाय। कांग्रेस ने इस वक्तव्य की ओर भी सब का ध्यान आकृष्ट किया। लेकिन १९०५ में हालत और भी खराब हो गई। बोअर-शासन में जिन कानूनों का सख्ती से पालन नहीं होता था, उनका पालन ब्रिटिश-शासन में और भी सख्ती से होने लगा। कांग्रेस ने इसका भी तीव्र विरोध किया और शर्तबन्दी कुली-प्रथा तथा अन्य प्रतिबन्धक कानूनों को हटाने की मांग की। १९०८ में भी भारतीयों के कष्ट दूर नहीं हुए। इन दिनों दक्षिण-अफ्रीका के नये शासन-विधान की पूर्ति हो रही थी। कांग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि इसको बनाते हुए भारतीय-हितों की भी पूरी रक्षा की जाय। १९०८ की २३ वीं कांग्रेस (मद्रास) में श्री मुशीर हुसेन किदवई ने एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें उपनिवेशों में उच्च, कुलीन और प्रतिष्ठित भारतीयों तक के साथ

होनेवाले कठोर, अपमानजनक और क्रूर व्यवहार पर रोष प्रकट किया गया और यह चेतावनी दी गई कि इसके फल-स्वरूप ब्रिटिश-साम्राज्य के हितों को भारी हानि पहुंचेगी।

१९०९ से कांग्रेस ने यह अनुभव किया कि उसके सारे अनुरोध, विनय आदि का कोई परिणाम नहीं निकला। इस वर्ष की कांग्रेस में श्री गोखले ने प्रस्ताव पेश करते हुए अधिकारियों के विश्वासघात और गांधीजी के नेतृत्व में भारतीयों के लम्बे और शान्त-संग्राम का वर्णन किया। अब प्रभावकारी आन्दोलन का समय आ चुका था और निष्क्रिय प्रतिरोध (सत्याग्रह) का महान् संग्राम शुरू हुआ। इसके लिए १८,०००) का चन्दा भी जमा हो गया। इसके अलावा सर जमशेद जी ताता के दूसरे पुत्र श्री रतन ताता ने प्रवासी भारतीयों के कष्ट-निवारण के लिए २५,०००) दिया। कांग्रेस के आगामी अधिवेशन (इलाहाबाद १९१०) तक निष्क्रिय प्रतिरोध का संग्राम अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया था। कांग्रेस ने ट्रान्सवाल के उन सब भारतीयों के उत्कट देश-प्रेम, साहस और त्याग की प्रशंसा की, जो अपने देश के लिए वीरतापूर्वक कैद भोगते हुए, और अनेक कठिनाइयों के रहते हुए भी, अपने प्रारम्भिक नागरिक अधिकारों के लिए शान्तिपूर्वक और स्वार्थहीन लड़ाई लड़ रहे थे।

कांग्रेस का २७ वां अधिवेशन (१९११) अधिक आशामय वातावरण में सम्पन्न हुआ, इसमें रजिस्ट्रेशन और गिरमिट-सम्बन्धी एशिया-विरोधी कानूनों को रद कराने पर ट्रांसवाल के भारतीय समाज तथा गांधीजी को हार्दिक धन्यवाद दिया गया। अगले साल (१९१२) भी गिरमिट-कानून की अनेक धाराओं का विरोध करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका की यूनियन ने अपने वचनों को तोड़ दिया था। ब्रिटिश-सम्राट से कांग्रेस ने इस कानून को रद कर देने का अनुरोध भी किया। उन दिनों लॉर्ड हार्डिञ्ज वाइसराय थे। उन्होंने इस मामले में कड़ाई का रुख लिया और उन्हें अधिक बलशाली बनाने के लिए करांची-कांग्रेस ने १९१३ में शर्तबन्दी कुली-प्रथा को नष्ट करने का अपना प्रस्ताव दोहराया। इसके बाद शीघ्र ही यह प्रथा तोड़ दी गई। कांग्रेस ने दक्षिण अफ्रीका के आंशिक समझौते के लिए लॉर्ड हार्डिञ्ज के प्रति कृतज्ञता प्रकट की, यद्यपि १९१६ और १९१७ में इस प्रश्न पर फिर से विचार करना पड़ा। करांची-अधिवेशन में गांधीजी तथा उनके अनुयायियों के वीरतापूर्ण प्रयत्नों तथा भारत के आत्म-सम्मान की रक्षा और भारतीयों के कष्ट-निवारण की लड़ाई में किये गये अपूर्व आत्मत्याग की प्रशंसा में एक प्रस्ताव पास किया गया।

कनाडा की प्रिवी कौंसिल ने 'लगातार यात्रा-धारा' के नाम से प्रसिद्ध आज्ञा देकर भारतीयों के प्रवेश की मनाही कर दी थी। इस संबंध में भी करांची-कांग्रेस ने १९१३ के २८ वें अधिवेशन में इस आधार पर इसका विरोध किया। कनाडा

की इस धारा को तोड़ने के लिए बाबा गुरुदत्तसिंह नामक एक सिख सज्जन ने 'कोमागाटामारू' जहाज किराये पर लिया और हांगकांग या टोकियो बिना ठहराये ही उस जहाज पर ६०० सिखों को कनाडा ले गये। कोमागाटामारू जहाज के यात्रियों को कनाडा में उतरने नहीं दिया गया। इससे जहाज को भारत लौटना पड़ा। वापसी पर यात्रियों को बजबज से, जहां वे उतरे थे, सीधा पंजाब जाने की आज्ञा दी गई और दूसरी किसी जगह जाने की मनाही कर दी गई। यात्रियों ने सीधे पंजाब जाना पसन्द नहीं किया। उन्होंने कहा, पहले सरकार हमारी बात तो सुन ले; हमारे साथ इस हुक्म से अन्याय होता है और इसमें आर्थिक हानि भी बहुत होगी। सीधे पंजाब जाने के बजाय, उन्होंने गिरफ्तार हो जाना अधिक अच्छा समझा। फलस्वरूप दंगा हुआ, कुछ आदमी मारे गये, कुछ गिरफ्तार हुए, बाबा गुरुदत्तसिंह ७-८ साल तक गुम रहे और उड़ीसा, दक्षिण भारत, ग्वालियर, राजपूताना, काठियावाड़ और सिन्ध में १९१८ तक घूमते रहे। इसके बाद बम्बई जाकर महाल बन्दर में वल्दराज के नाम से एक जहाजी-कम्पनी के मैनेजर हो गये। अपने निर्वासिन-काल (नवम्बर १९२१) में वह गांधीजी से मिले। गांधीजीने उन्हें गिरफ्तार हो जाने की सलाह दी। बाबाजी ने इस परामर्श को कार्यान्वित किया और २८ फरवरी १९२२ को वह लाहौर-जेल से उस आर्डिनेन्स की अवधि समाप्त होने पर छोड़े गये जिसके अनुसार वह गिरफ्तार किये गये थे।

नमक-कर का विरोध

१९३० के नमक-सत्याग्रह के कारण, नमक-कर का प्रश्न भारतीय राजनीति में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो उठा था। जो लोग नमक-कर की उत्पत्ति और १८३६ के नमक-कमीशन की सिफारिशें जानते हैं उन्हें यह जान कर बहुत आश्चर्य होगा कि १८८८ में कांग्रेस ने इस कर का विरोध इस आधार पर नहीं किया कि यह कर अन्यायपूर्ण था और इसका उद्देश्य ब्रिटेन के जहाजी व्यवसाय और निर्यात व्यापार को बढ़ाना था; बल्कि इस आधार पर किया कि "नमक-कर में हाल ही में की गई वृद्धि से गरीब लोगों पर भार और भी बढ़ गया है; और इसके द्वारा सरकार ने शान्ति और सुख के समय में ही ऐसे कोष में से खर्च करना शुरू कर दिया है जो खास मौकों के लिए साम्राज्य की एक मात्र निधि है।" १८९० में कांग्रेस ने नमक-कर में की गई वृद्धि को वापस लेने की—न कि नमक-कर को हटाने की—मांग की। दूसरे अवसरों पर कांग्रेस ने केवल इसी प्रार्थना को दुहराया और एक बार १८६८ की दर को और दूसरी बार १८८८ की दर को कायम रखने की मांग की। १९०२ में इस प्रश्न पर अन्तिम बार विचार करते हुए कांग्रेस ने यह भी कहा कि इस समय जो बहुत-सी बीमारियां फैल रही हैं उनका एक खास कारण (नमक-

कर के कारण) नमक का कम इस्तेमाल किया जाना भी है। इसके बाद 'नमक' कांग्रेस से उठकर कौंसिलों में पहुंच गया और वहां श्री गोखले खास तौर पर इसमें दिलचस्पी लेते रहे।

शराब और वेश्यावृत्ति

नैतिक पवित्रता इतनी आवश्यक वस्तु है कि कांग्रेस उस पर ध्यान दिये बिना न रह सकी। शराब की बढ़ती हुई खपत को देखकर संयम और मद्य-निवारण की मांग की गई। मि० केन और स्मिथ ने कामन-सभा में इस प्रश्न को उपस्थित किया और १८८९ में इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव भी पास हुआ। कांग्रेस ने भी कामन-सभा वाले प्रस्ताव को कार्य-रूप में परिणत करने का अनुरोध किया। १८९० में कांग्रेस ने शराब पर आयात-कर की वृद्धि, हिन्दुस्तानी शराब पर कर लगाने, बङ्गाल-सरकार के ठेके पर शराब बनाने की पद्धति को दूर करने के निश्चय तथा मद्रास-सरकार द्वारा ७,००० शराब की दूकानें बन्द करने पर हर्ष प्रकट किया। इसके बाद दस साल तक कांग्रेस ने इस प्रश्न पर कोई विचार नहीं किया। १९०० में कांग्रेस ने सस्ती बिकने के परिणाम-स्वरूप शराब की बढ़ती हुई खपत को देखकर सरकार से प्रार्थना की कि वह अमेरिका के 'मेन लिकर लॉ' के समान कोई कानून बनाए और सर विलफीड लॉसन के 'परमिसिव बिल', या 'लोकल आप्शन एक्ट' के समान कोई बिल पेश करे और दवा के सिवा दूसरे कामों के लिए आनेवाली नशीली वस्तुओं पर अधिक कर लगाए।

राज्य-नियंत्रित वेश्या-वृत्ति का लोप समाज-सुधार से सम्बन्धित एक विषय था। यह सब जानते हैं कि सरकार अपने सैनिकों के लिए छावनियों तथा युद्ध-यात्राओं में स्त्रियों को एकत्र करती थी। जब ऐसी बातें पहले-पहल अमल में लाई गईं तब बहुत भीषण मालूम हुईं, लेकिन ज्यों-ज्यों उनका सहवास बढ़ने लगा त्यों-त्यों क्षोभ कम होता गया। कांग्रेस के चौथे अधिवेशन (१८८८) ने मि० यूल की अध्यक्षता में उन भारत-हितैषियों के साथ सहयोग की इच्छा प्रकट की, जो भारत में राज्य की ओर से बननेवाले कानूनों और नियमों को पूर्णतया रद कराने के लिए इंग्लैण्ड में कोशिश कर रहे थे। कैप्टेन बैनन ने अपने एक ओजस्वी भाषण में कहा था कि २,००० से अधिक भारतीय स्त्रियों को सरकार ने वेश्यावृत्ति के कुत्सित उद्देश्य से इकट्ठा किया था। इससे युवक सिपाही असंयत जीवन बिताने को प्रोत्साहित हुए थे। इलाहाबाद में होनेवाले आठवें अधिवेशन (१८९२) में एक बार फिर सरकार द्वारा नियमित अनैतिक कार्यों का विरोध किया गया था। अगले साल इण्डिया-आफिस-कमिटी के पार्लमेण्ट के सदस्यों ने छावनियों की वेश्यावृत्ति तथा छूत-रोगों-सम्बन्धी नियमों, आज्ञाओं और प्रथाओं के विषय में एक रिपोर्ट तैयार की। कांग्रेस

ने इन तरीकों और बुरी प्रथाओं को बन्द करने के लिए स्पष्ट कानून बनाने की मांग की।

स्त्रियां और दलित जातियां

मि० माण्टेगु की भारत-यात्रा के साथ ही नागरिक अधिकारों के सम्बन्ध में स्त्रियों का दावा भी देश के सामने आया। वस्तुतः यह बहुत आश्चर्यजनक है कि भारत में शीघ्र ही पुरुषों के समान स्त्रियों के अधिकार मान लिये गये। कलकत्ता-कांग्रेस ने १९१७ में यह सम्मति प्रकट की थी कि शिक्षा तथा स्थानीय सरकार से सम्बन्ध रखनेवाली निर्वाचित संस्थाओं में मत देने तथा उम्मीदवार खड़े होने की, स्त्रियों के लिए भी, वही शर्तें रखी जायं जो पुरुषों के लिए हैं। इसीसे मिलते-जुलते दलित जातियों के प्रश्न पर भी, इसी कांग्रेस ने एक उदार प्रस्ताव स्वीकार किया।

अन्य विषय

इस अवधि में कांग्रेस ने समय-समय पर और भी अनेक विषयों की ओर ध्यान दिया। शिक्षा के विविध पहलुओं—प्राथमिक, विद्यापीठ, पुरातत्व और कला-कौशल-सम्बन्धी शिक्षा में कांग्रेस ने बहुत दिलचस्पी ली। प्रान्तीय और केन्द्रीय राजस्व, चांदी-कर, आय-कर और विनिमय-दर के मुआवजे आदि आर्थिक विषयों पर भी कांग्रेस प्रायः ध्यान देती रही। स्थानीय स्वराज्य-संस्थाओं और विशेषतः मद्रास और कलकत्ता के कारपोरेशनों के सम्बन्ध में प्रतिगामी कानूनों से कांग्रेसी बहुत रुष्ट हुए। स्वास्थ्य और विशेषतः प्लेग और क्वारण्टीन तथा बेगार वगैरा पर भी कभी-कभी विचार हो जाता था। राज-भक्ति की शपथ भी कई बार ली गई। १९०१ में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु और १९१० में सम्राट् एडवर्ड की मृत्यु पर कांग्रेस को अपनी राजभक्ति फिर प्रकट करने का अवसर मिला। एडवर्ड और जार्ज पंचम के स्वागत-सम्बन्धी प्रस्ताव भी पास किये गये।

कांग्रेस का विधान

कांग्रेस के इन ५० सालों के जीवन में विधान-सम्बन्धी इतने क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं कि विधान का इतिहास भी बहुत रोचक हो गया है। यह सब जानते हैं कि कांग्रेस की स्थापना किसी जॉइण्ट स्टॉक कम्पनी की तरह 'आर्टिकल्स' या 'मेमोरेण्डम आफ एसोशियेशन' बनाकर या १८६० के २१ वें कानून के अनुसार 'रजिस्टर्ड सोसाइटी' की तरह पहले से ही नियमादि बनाकर नहीं हुई थी। इसकी शुरुआत तो कुछ प्रसिद्ध पुरुषों के सम्मेलनों से हुई थी। शुरू में १८८६ में कांग्रेस के संचालन के लिए एक विधान तथा नियम बनाने पर गम्भीरता से विचार हुआ।

एक प्रस्ताव-द्वारा नियम बनाने के लिए कमिटी तो बना दी गई, लेकिन विधान बनाने का काम पीछे के लिए छोड़ दिया गया। फिर भी पूरे साल भर कांग्रेस के काम को चलाने की आवश्यकता साफ-साफ अनुभव होने लगी। १८८९ में कांग्रेस के प्रतिनिधि इतनी बड़ी संख्या में आये कि कांग्रेस को प्रति दस लाख जन-संख्या के पीछे पांच प्रतिनिधियों की संख्या सीमित कर देनी पड़ी। भारत में कांग्रेस का एक सहायक-मंत्री नियुक्त हुआ और इंग्लैण्ड की समिति को भी एक वैतनिक मन्त्री दिया गया। इस पद पर पहले-पहल सुप्रसिद्ध मि० डब्ल्यू० डिग्बी सी० आई० ई० नियुक्त हुए।

कांग्रस के चौथे अधिवेशन (१८८८) में जब यह निश्चय किया गया कि जिस प्रस्ताव के उपस्थित किये जाने में हिन्दू या मुसलमान अपने सम्प्रदाय के नाम पर सर्वसम्मति से या लगभग सर्वसम्मति से आपत्ति करेंगे, वह विषय-समिति में विचार के लिए पेश नहीं किया जा सकेगा। यह याद रखना चाहिए कि यही नियम उस विधान में भी स्वीकृत हुआ, जो सूरत के झगड़े के बाद १९०८ में बनाया गया था; फर्क सिर्फ अनुपात का रहा, जो अब सर्वसम्मति के बजाय $\frac{3}{4}$ कर दिया गया। प्रतिनिधियों की संख्या घटाकर १००० कर देने का प्रस्ताव १८८९ में पास हुआ, लेकिन अमल में वह दूसरे वर्ष ही लाया गया।

इंग्लैण्ड में किये जानेवाले काम को कितना महत्वपूर्ण समझा जाता था, यह इसीसे मालूम होता है कि १८९२ में ६०,०००) की भारी रकम ब्रिटिश-समिति और कांग्रेस के पत्र 'इण्डिया' के खर्च के लिए पास की गई। १२ वें अधिवेशन (१८९६) में भी इतनी ही रकम पास की गई थी। १८९८ में कांग्रेस के विधान को बनाने का नया प्रयत्न किया गया। मद्रास-कांग्रेस ने विधान का एक मसविदा जगह-जगह भेजा और उस पर विचार करने तथा अगले अधिवेशन तक उसकी एक निश्चित योजना बनाने के लिए एक समिति भी बनाई। अगले साल (१८९९) लखनऊ में एक सम्पूर्ण विधान स्वीकृत हुआ। उस समय तथा १९०८, १९२० और १९२९ में कांग्रेस ने अपने जो-जो ध्येय निश्चित किये, उनकी तुलना बड़ी मनोरंजक होगी। लखनऊ में कांग्रेस का ध्येय इस प्रकार निश्चित हुआ: "वैध उपाय से भारतीय साम्राज्य के निवासियों के स्वार्थों और हितों को बढ़ाना अखिल-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ध्येय होगा।" लखनऊ-विधान के अनुसार कार्य-संचालन के लिए कांग्रेस द्वारा निश्चित ४५ सदस्यों की एक समिति बनाई गई। इन ४५ में से ४० सदस्य ऐसे चुने गए थे जिनकी विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियों ने सिफारिश की थी। समिति के एक अवैतनिक मन्त्री और एक वैतनिक सहायक मन्त्री रखे गये। साल के खर्च के लिए ५०००) स्वीकृत किए गये। इसमें से २५००) तो गत अधिवेशन की स्वागत-समिति पर और २५००) आगामी अधिवेशन की स्वागत समिति पर डाले गये।

स्थायी कांग्रेस कमिटियों की स्थापना तथा प्रान्तीय सम्मेलनों के आयोजन-द्वारा कांग्रेस का काम पूरे साल-भर चालू रखने की व्यवस्था की गई। अध्यक्ष का चुनाव तथा प्रस्तावों के मसविदे बनाने का काम इण्डियन कांग्रेस-समिति करती थी। सात ट्रस्टियों के नाम पर कांग्रेस के लिए एक स्थायी कोष भी स्थापित किया गया। प्रत्येक प्रान्त से एक-एक ट्रस्टी कांग्रेस नियुक्त करती थी। १९०० में ४५ सदस्यों वाली इण्डियन कांग्रेस समिति और बड़ी कर दी गई। पद की हैसियत से इतने व्यक्ति और सदस्य मान लिये गये—सभापति; मनोनीत सभापति, जिस दिन से नामजद किया जाय; पिछली कांग्रेसों के सभापति; कांग्रेस के मन्त्री और सहायक मन्त्री तथा स्वागत-समिति-द्वारा मनोनीत उसके अध्यक्ष और मन्त्री।

लन्दन में कार्य का संगठन १९०१ में शुरू किया गया। 'इण्डिया' पत्र को और सुचारु-रूप से चलाने के लिए उसकी ४००० कापियां बिकने का इस तरह प्रबन्ध किया गया कि प्रत्येक प्रान्त एक नियत संख्या में 'इंडिया' खरीदे। 'इण्डिया' और ब्रिटिश-समिति का खर्च पूरा करने के लिए १९०२ से प्रत्येक प्रतिनिधि से फीस के अलावा १०) और लेने का भी निश्चय किया गया। यह स्पष्ट है कि उन दिनों कांग्रेस भारत और इंगलैण्ड में अपने कार्य के लिए खर्च करने में कोताही नहीं करती थी। बम्बई के २० वें अधिवेशन (१९०४) में यह निश्चय किया गया कि पार्लमेण्ट के चुनाव से पहले इंगलैण्ड में एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाय और इस कार्य के लिए ३०,०००) इकट्ठे किये जायं। काशी में (१९०५) कांग्रेस के उद्देश्यों को पूरा करने और उसके प्रस्तावों के अनुसार कार्य करने के लिए १५ सदस्यों की एक स्थायी समिति बनाई गई। १९०६ में दादाभाई नौरोजी ने कांग्रेस का उद्देश्य एक शब्द में रख दिया—"हमारा सारा आशय केवल एक शब्द स्व-शासन या स्वराज्य में आ जाता है। इंगलैण्ड या उपनिवेशों में जो शासन-प्रणाली है, वही भारत में भी जारी की जाय" और इसके लिए अनेक सुधारों की मांग की गई।

कलकत्ता-कांग्रेस का वातावरण राष्ट्रीयता की भावना से लबालब था। इसलिए राष्ट्र को संगठित करने की दिशा में एक और कदम बढ़ाया गया और निश्चय किया गया कि प्रत्येक प्रान्त अपनी राजधानी में उस तरह प्रान्तीय कांग्रेस समिति का संगठन करे, जिस तरह कि प्रान्तीय सम्मेलन में निश्चय किया जाय। कांग्रेस के तमाम विषयों में प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी प्रान्त की ओर से कार्य करेगी और उसे प्रान्त में कांग्रेस का काम बराबर चलाते रहने के लिए जिला-संस्थाएँ संगठित करने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए। कांग्रेस के सभापति की निर्वाचन-प्रणाली भी बदल दी गई। प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी द्वारा मनोनीत व्यक्तियों में से स्वागत-समिति अपनी तीन-चौथाई राय से किसी को सभापति चुना करे, किन्तु यदि किसी व्यक्ति के लिए इतना बहुमत न मिले तो केन्द्रीय स्थायी समिति (४९ सदस्यों की बनाई गई नई समिति) इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय करे।

विषय-निर्वाचिनी-समिति के निर्णय का भी नया तरीका जारी किया गया। यह माना गया कि समिति के ८५ सदस्य प्रतिनिधि रहेंगे और उस प्रान्त के १० और प्रतिनिधि लिये जायंगे जिसमें कांग्रेस होगी। उस वर्ष के सभापति, स्वागत समिति के अध्यक्ष, पिछले अधिवेशनों के सभापति और स्वागत-समिति के अध्यक्ष, कांग्रेस के प्रधान मन्त्रीगण और कांग्रेस के उस वर्ष के स्थानीय मंत्री भी अपने पद के अधिकार से विषय-निर्वाचिनी समिति के सदस्य माने जायंगे।

कांग्रेस-विधान में जो नया परिवर्तन हुआ वह वस्तुतः युग प्रवर्तक था। सूरत के झगड़े के कारण जिन नेताओं ने इलाहाबाद में 'कन्वेंशन' खड़ा किया उन्होंने बहुत ही सख्त विधान बनाया। सबसे पहले यह घोषणा की गई कि बाकायदा निर्वाचित सभापति बदला नहीं जा सकेगा, क्योंकि सूरत में डा० रासबिहारी घोष के चुनाव पर ही बड़ा झगड़ा हुआ था। इसके बाद लोगों के विचार का वास्तविक विषय था, कांग्रेस का 'क्रीड' यानी ध्येय। सूरत-कांग्रेस के भङ्ग के एक दिन बाद २८ दिसम्बर (१९०७) को वैसे ही विचार रखनेवाले लोगों ने मिलकर यह प्रस्ताव पास किया—"कांग्रेस का उद्देश्य है ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्य स्वशासित राष्ट्रों में प्रचलित शासन-प्रणाली भारत के लोगों के लिए भी प्राप्त करना और उन राष्ट्रों के साथ बराबरी के नाते साम्राज्य के अधिकारों और जिम्मेदारियों में सम्मिलित होना"।

१९०८ के विधान के अनुसार महासमिति के विभिन्न प्रान्तों से सदस्य चुने गये, यह भी तय हुआ कि यथासम्भव कुल संख्या का ५ वां भाग मुसलमान सदस्य चुने जायं। इसके अलावा भारत में उपस्थित या भारत में रहनेवाले कांग्रेस के सभापति और प्रधान मंत्री भी महासमिति के सदस्य माने जायं। कांग्रेस का प्रधान मंत्री इसका भी प्रधान मंत्री समझा जाय। इसी तरह विषय-निर्वाचिनी समिति भी बहुत बढ़ गई। महासमिति के सभी सदस्य और कुछ निर्वाचित व्यक्ति उसके सदस्य माने गये। प्रत्येक प्रान्त से आये हुए प्रतिनिधि ही इनका चुनाव करते थे।

संयुक्त बङ्गाल-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने कांग्रेस के विधान में कुछ परिवर्तन सुझाये, जो इलाहाबाद (१९१०) में एक उप-समिति को सौंपे गये। १९११ के कलकत्ता-अधिवेशन में इस समिति की सिफारिशें स्वीकार कर ली गईं और अगले संशोधनों के लिए विधान महासमिति के सुपुर्द किया गया। इसके बाद ५ सालों तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ। १९१४ में जब यूरोप का महासमर छिड़ गया, तब श्रीमती एनी बेसेन्ट ने अपना महान राजनैतिक आन्दोलन अ० भा० होमरूल-लीग की छत्रछाया में आरम्भ किया। इसी समय लोकमान्य तिलक ने महाराष्ट्र में २३ अप्रैल १९१६ को एक पृथक् होमरूल-लीग स्थापित की। इसके बाद १९२० में कांग्रेस के विधान में परिवर्तन हुआ। कलकत्ता-कांग्रेस अपने विशेष अधिवेशन में असहयोग को

स्वीकार कर चुकी थी। नागपुर के अधिवेशन ने कांग्रेस के विधान में अनेक संशोधन किये। कांग्रेस का १९०८ वाला ध्येय 'समस्त शान्तिमय और उचित उपायों से भारतीयों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना' में बदल दिया गया। सम्पूर्ण कांग्रेस-कार्य नये सिरे से संगठित किया गया। भाषा-क्रम के आधार पर प्रान्तों का पुनर्विभाजन किया गया। आन्ध्र को पृथक् बनाने का प्रश्न १९१५ और १९१६ में उठाया गया था और १९१७ में सभापति डॉ० एनी बेसेण्ट तथा मद्रास के अनेक प्रतिनिधियों के तीव्र विरोध करने पर भी स्वीकार कर लिया गया। १९१७ में तो गांधीजी की भी यही सम्मति थी कि यह प्रश्न सुधारों तक स्थगित कर दिया जाय, परन्तु यह लोकमान्य तिलक की दूरदर्शिता थी जिससे आन्ध्र को पृथक् प्रान्त का रूप दे दिया गया। इसीके परिणाम-स्वरूप प्रत्येक प्रान्त के प्रतिनिधित्व पर विचार और संशोधन करके अपनी रिपोर्ट महासमिति में पेश करने के लिए एक और उपसमिति बनाई गई। इसके बाद ही सिंध ने भी अपने पृथक् प्रान्त बनाये जाने की मांग की। यह मांग भी स्वीकृत हो गई, लेकिन कर्नाटक और केरल की मांगों का तब फैसला हुआ, जब १९२० के नागपुर-अधिवेशन के बाद प्रान्तों का पुनर्विभाजन हुआ।

: ४ :

दमन-नीति और नई जागृति : १८८५-१९१५

पिछली सदी के अन्त के प्रारम्भिक पन्द्रह सालों के लड़ाई-झगड़ों में जो कांग्रेस नेता थे वे ज्यादातर वकील-बैरिस्टर और कुछ व्यापारी एवं डॉक्टर थे, जिनका सच्चे दिल से यह विश्वास था कि भारत सिर्फ इतना ही चाहता है कि अंग्रेजों और पार्लमेण्ट के सामने उसका पक्ष बहुत सुन्दर और नपी-तुली भाषा में रख दिया जाय। इस प्रयोजन के लिए उन्हें एक राजनैतिक संगठन की जरूरत थी और इसके लिए उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की थी। उसके द्वारा वे राष्ट्र के दुःखों और उच्च अकांक्षाओं को प्रदर्शित करते थे। उस युग की परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि अपने दुख-दर्द दूर करने के लिए हाकिमों के सामने सिवा दलील और प्रार्थना करने तथा नई रिआयतों और विशेषाधिकारों के लिए मामूली मांग करने के और कुछ नहीं हो सकता था। फिर यह मनोदशा आगे जाकर शीघ्र ही एक कला के रूप में परिणत हो गई। एक ओर कानून-प्रवीण-बुद्धि और दूसरी ओर कल्पना-शील और भावना-प्रधान वक्तृत्व-कला, दोनों ने उस काम को अपने ऊपर ले लिया जो भारतीय राजनीतिज्ञों के सामने थे। कांग्रेस के प्रस्तावों के समर्थन में जो

व्याख्यान होते थे और कांग्रेस के अध्यक्ष जो भाषण दिया करते थे उनमें दो बातें हुआ करती थीं—एक तो प्रभावकारी तथ्य और आंकड़े, दूसरे अकाटच्य दलीलें। उस समय जब भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में कोई पथ-प्रदर्शक नहीं था, उन लोगों ने जो रुख अख्तयार किया था उसके लिए हम उन्हें बुरा नहीं कह सकते। किसी भी आधुनिक इमारत की नींव में छः फोट नीचे जो ईंट, चूना और पत्थर गड़े हुए हैं क्या उन पर कोई दोष लगाया जा सकता है? क्योंकि वही तो हैं जिनके ऊपर भारी इमारत खड़ी हो सकी है। पहले उपनिवेशों के ढङ्ग का स्वशासन, फिर साम्राज्य के अन्तर्गत होमरूल, इसके बाद स्वराज्य और सबसे ऊपर जाकर पूर्ण स्वाधीनता की मंजिलें एक-के-बाद-एक बन सकी हैं। उन्हें अपनी स्पष्ट बात के समर्थन में अंग्रेजों के प्रमाण देने पड़ते थे। अपनी समझ और अपनी क्षमता के अनुसार, उन्होंने बहुत परिश्रम और भारी कुर्बानियां की थीं। आज अगर हमारा रास्ता साफ है तो यह सब हमारे उन्हीं पुरखाओं की बदौलत है जिन्होंने जंगल-झाड़ियों को साफ करने का कठिन काम किया है।

कांग्रेसियों के दिलों में कभी-कभी कुछ उत्तेजना और रोब के भाव आ गये हों, पर इसमें कोई शक नहीं कि १८८५ से १९०५ तक कांग्रेस की जो प्रगति हुई उसकी बुनियाद थी वैध-आन्दोलन के प्रति उनका दृढ़ और अंग्रेजों की न्याय-प्रियता पर अटल विश्वास। इसी भाव को लेकर १८९३ में स्वागताध्यक्ष सरदार दयालसिंह मजीठिया ने कांग्रेस के विषय में कहा था कि भारत में ब्रिटिश-शासन की कीर्ति का यह कलश है। आगे चलकर उन्होंने यह भी कहा कि हम उस विधान के मातहत सुख से रह रहे हैं जिसका विरुद है आजादी, और जिसका दावा है सहिष्णुता। कांग्रेस के चौथे अधिवेशन (इलाहाबाद १८८८) के प्रतिनिधि ने लार्ड रिपन का यह विचार उद्धृत किया था: "महारानी का घोषणा-पत्र कोई सुलहनामा नहीं है, न वह कोई राजनैतिक लेख ही है; बल्कि वह तो सरकार के सिद्धान्तों का घोषणा-पत्र है।" लार्ड सेल्सबरी के इस वचन पर कि "प्रतिनिधियों के द्वारा शासन की प्रथा पूर्वी लोगों की परम्परा के मुआफिक नहीं है," जोर के साथ नाराजगी प्रकट की गई थी और १८९० में सर फिरोजशाह मेहता ने तो यहां तक कह दिया था कि "मुझे इस बात का कोई अन्देशा नहीं है कि ब्रिटिश-राजनीतिज्ञ अन्त में जाकर हमारी पुकार पर अवश्य ध्यान देंगे।" बारहवें अधिवेशन (१८९६) के अध्यक्ष-पद से मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी ने तो और भी असंदिग्ध रूप में कहा था कि "अंग्रेजों से बढ़कर ज्यादा ईमानदार और मजबूत कौम इस सूरज के तले कहीं नहीं है।" और जब कि उस कौम ने हिन्दुस्तानियों के अनुनय-विनय और विरोध का जवाब उलटा दमन से दिया, तब भी मद्रास कांग्रेस (१८९८) के अध्यक्ष आनन्दमोहन वसु ने जोर देकर कहा था कि "शिक्षित-वर्ग इंगलैण्ड के दोस्त हैं, दुश्मन नहीं। इंगलैण्ड के सामने जो महान कार्य है उसमें वे उसके स्वाभाविक तथा आवश्यक

मित्र और सहायक हैं।" हमारे इन पूर्व-पुरुषों ने अंग्रेजों और इंग्लैण्ड के प्रति जो विश्वास रखा वह कभी-कभी दयाजनक और हेय मालूम होता है; परन्तु हमारा कर्तव्य तो यही है कि हम उनकी मर्यादाओं को समझें।

कांग्रेस के इतिहास में जो पहला जबरदस्त आन्दोलन हुआ वह पांच वर्षों (१९०६ से १९११) तक रहा। उसे उस समय ऐसे दमनकारी उपायों का सामना करना पड़ा जो जंगली समझे गये। हालांकि उसमें इधर-उधर मारकाट भी हो गई, मगर अन्त में उसमें पूरी सफलता मिली। आखिर १९११ में शाही घोषणा कर दी गई कि वंग-भंग रद कर दिया गया! किन्तु यह ब्रिटिश-सरकार की भारी प्रशंसा का विषय बन गया। इससे ब्रिटिश-न्याय के प्रति लोगों के मन में नया विश्वास पैदा हो गया और धुआंधार वक्तृताओं द्वारा कृतज्ञता-प्रकाश होने लगा। परन्तु इसी के साथ कांग्रेसियों ने उन दुःखदायी कानूनों की तरफ से अपना ध्यान नहीं हटाया, जो १९११ और उससे भी आगे तक जारी रहे। कांग्रेस के बड़े-बूढ़ों ने, अपनी सारी शक्ति शासन-विषयक सुधारों और दमनकारी कानूनों को हटवाने में लगाई, परन्तु इससे यह अन्दाज करना गलत होगा कि वे सिर्फ भारतीय-प्रश्न के अंशों का ही ख़याल करते थे, पूरे प्रश्न का नहीं। १८८६ के कलकत्ता-अधिवेशन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने स्व-शासन का समर्थन किया था। २० वें अधिवेशन के सभापति-पद से सर हेनरी काटन ने 'भारत के संयुक्त राज्य' अथवा 'भारत के स्वतन्त्र और पृथक् राज्यों के संघ' की कल्पना की थी। दादाभाई ने यूनाइटेड किंगडम या उपनिवेशों-जैसे स्व-शासन या स्वराज्य का जिक्र किया था।

सरकारी प्रलोभन

कांग्रेस के पहले पच्चीस सालों में जिनके ऊपर कांग्रेस की राजनीति का दारोमदार रहा, वे सरकार के दुश्मन नहीं थे। यह बात न केवल उन घोषणाओं से ही सिद्ध होती है जो समय-समय पर उनके द्वारा की जाती थीं, बल्कि स्वयं सरकार भी उनके साथ रिआयतें करके और हिन्दुस्तानियों को ऊंचे पद देकर यही सिद्ध करती थी। ऐसे उच्च पदों के लिए न्याय-विभाग का क्षेत्र ही स्वभावतः सबसे उपयुक्त था। मद्रास के सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर तो कांग्रेस के पहले ही अधिवेशन में सामने आये और श्री बी० कृष्णस्वामी ऐयर १९०८ में होनेवाली मद्रास की पहली कनवेंशन-कांग्रेस के एक मात्र कर्त्ता-धर्त्ता थे। वह बहुत कड़े विधान के मातहत हुई थी और इसके लिए तत्कालीन मद्रास गवर्नर ने अपना तम्बू देने की कृपा की थी। राष्ट्रवादियों और कांग्रेस का उल्लेख करते हुए यह कहनेवाले श्री कृष्णस्वामी ऐयर ही थे कि जो अंग सड़-गलकर बेकाम हो गये हैं उन्हें काट डालना चाहिए। सर शंकरन्

नायर अमरावती में हुए अधिवेशन (१८९७) के सभापति हुए थे। और तो और श्री रमेशन् (सर वेपा सिनो) १८९८ से कांग्रेसवादी ही थे। इसके बाद जिनका नम्बर आता है वे हैं (१) श्री टी० बी० शेषगिरि ऐयर, जो १९१० की कांग्रेस में सामने आये, और (२) श्री पी० आर० सुन्दरम् ऐयर जो १९०८ में श्री कृष्णस्वामी ऐयर के एक उत्साही सहकारी थे। ये छहों मद्रास हाईकोर्ट के जज बनाये गये और इनमें से दो कार्यकारिणी कौंसिल के सदस्य भी हो गये—एक मद्रास में और दूसरा दिल्ली में। इनमें से पहले (सर सुब्रह्मण्य) १९०९ में कांग्रेस के सभापति होनेवाले थे, परन्तु हाईकोर्ट के जज बना दिये जाने के कारण रह गये थे। श्रीमती बेसेण्ट द्वारा चलाये होमरूल-आन्दोलन के समय, १९१४ में, वह फिर कांग्रेस के क्षेत्र में आ गये। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी नाइटहुड (सर की उपाधि) का भी परित्याग कर दिया। उससे मि० माण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड दोनों ही उनसे नाराज हो गये। कहते हैं कि भूतपूर्व जज की हैसियत से जो पेन्शन उन्हें मिलती थी उसे बन्द कर देने की भी बात उस समय उठी थी, परन्तु बाद में कुछ सोच कर फिर ऐसा नहीं किया गया। और आगे चलें तो सर पी० एस० शिवस्वामी ऐयर और सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर भी कांग्रेसी थे, जो बाद में कार्यकारिणी के सदस्य बना दिये गये। यही हाल सर मुहम्मद हबीबुल्ला का हुआ; वह पहले मद्रास और फिर भारत-सरकार की कार्यकारिणी के सदस्य बनाये गये। मद्रास-सरकार के लॉ-मेम्बर होनेवाले सर एन० कृष्ण नैयर १९०४ की कांग्रेस में बोले थे, और उनके उत्तराधिकारी सर के० वी० रेड्डी तो १९१७ में जस्टिस-पार्टी का जन्म होने तक भी एक उत्साही एवं सुप्रसिद्ध कांग्रेसी थे। सर एम० रामचन्द्रराव बहुत समय तक कांग्रेस में रह चुके थे।

कलकत्ता में श्री ए० चौधरी जिन्होंने बंग-भंग के विरुद्ध होनेवाले आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया था, लगभग उसी समय वहां की हाईकोर्ट के जज बना दिये गये। १९०८ में जब लार्ड मिण्टो ने भारत-सरकार की लॉ-मेम्बरी के लिए व्यक्तियों का चुनाव किया तब दो नाम उनके सामने थे, एक तो श्री आशुतोष मुकर्जी का और दूसरा श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह का। सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह १८९६ की कलकत्ता-कांग्रेस में, देशी-नरेश को बिना मुकदमा चलाये निर्वासित कर देने के प्रश्न पर बोले थे। और, यह हम सब जानते हैं कि, अन्त में (लॉ-मेम्बरी के लिए) तरजीह कांग्रेसमैन को ही दी गई। इसी प्रकार १९२० में गवर्नर-जनरल की कार्य-कारिणी में जब जगह हुई तब भी लॉर्ड चेम्सफोर्ड (१९२०) ने तो महाराजा बर्दवान को रखना चाहा, पर मि० माण्टेगु ने बड़ी कौंसिल के किसी चुने हुए सदस्य को ही रखना ज्यादा पसन्द किया। मि० माण्टेगु ने श्री श्रीनिवास शास्त्री का नाम इसके लिए सुझाया, लेकिन चूंकि ऐन मौके पर उन्होंने साथ नहीं दिया था इसलिए चेम्सफोर्ड ने उन्हें रखना पसन्द नहीं किया और श्री बी० एन० शर्मा को रखा,

जो अमृतसर-काण्ड के समय भी सरकार के पृष्ठ-पोषक थे। बंगाल में कांग्रेस से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य जिन व्यक्तियों को ऊंचे सरकारी ओहदे मिले उनमें श्री एस० के० दास और सर प्रभासचन्द्र मित्र मुख्य हैं। इनमें श्री दास १९०५ की कांग्रेस-कार्यकारिणी में भारतीयों की नियुक्ति के प्रश्न पर बोले थे, बाद में भारत-सरकार के लॉ-मेम्बर हुए और मित्र महोदय बंगाल की कार्यकारिणी के सदस्य।

उत्तर प्रदेश में सर तेजबहादुर सप्रू-जैसे जबरदस्त व्यक्ति को भारत-सरकार का लॉ-मेम्बर बनाया गया। बिहार के सय्यद हसनइमाम १९१२ की कांग्रेस को पटना में आमंत्रित करने के बाद हाईकोर्ट के जज बन गये और श्री सच्चिदा-नन्दसिंह को बिहार की कार्यकारिणी का सदस्य बना दिया गया। यहां यह भी बतला देना चाहिए कि सरकारी पुरस्कार का रूप सदा बड़े सरकारी ओहदों का देना ही नहीं रहा। फिरोजशाह मेहता को १९०५ में 'सर' की उपाधि दी गई और वह भी लॉर्ड कर्जन-द्वारा जो बड़े प्रतिगामी वाइसराय थे। तात्पर्य यह कि सरकार को भी अगर योग्य भारतीयों की जरूरत हुई तो इसके लिए उसे भी कांग्रेसियों पर ही निगाह डालनी पड़ी और उनके राजनीतिक विचारों को उसने ऐसा नहीं समझा जो वह उन्हें सरकारी विश्वास एवं बड़ी-से-बड़ी जिम्मेदारी के ओहदों के लिए नाकाबिल मान लेती।

दमन-नीति का सूत्रपात

कांग्रेस का इतना महत्व स्वीकार करते हुए भी सरकार उसके प्रति सदैव सतर्क रहती थी और उसकी जड़ खोदने के लिए दमन नीति से काम लेती थी। जब-जब जनता में कोई आन्दोलन आरंभ होता था तब-तब जोरों का दमन किया जाता था और उसमें यह नीति रखी जाती थी कि जबतक लोग आन्दोलन करते-करते बिलकुल थक न जायं तबतक उनकी मांगों पर कोई ध्यान न दिया जाय। लॉर्ड लिटन का १८७० का प्रेस-ऐक्ट जो जल्द ही वापस ले लिया गया, सरकार की इस नीति की पूर्व सूचना थी। राष्ट्र के बढ़ते हुए आत्मचैतन्य का दूसरा उत्तर शस्त्र-विधान के रूप में मिला, जिसने राष्ट्र के दु:ख-रूपी फोड़े को और भी पका दिया। १८८६ में इन्कम टैक्स ऐक्ट बना। उसका भी तीव्र विरोध उसी समय किया गया। जैसे-जैसे कांग्रेस हर साल बढ़ती गई, सरकारी अधिकारी भी उसे सन्देह की दृष्टि से देखते गये। लॉर्ड डफरिन ने ह्यूम साहब को यह सलाह दी थी कि वह कांग्रेस का क्षेत्र केवल सामाजिक न रखकर राजनैतिक भी बनायें। किन्तु वही लॉर्ड डफरिन फिर कांग्रेस के शत्रु हो गये और उसे राजद्रोही कहने लगे। १८८६ में वाइ-सराय ने कलकत्ता में और १८८७ में मद्रास के गवर्नर ने कांग्रेस का स्वागत किया, परन्तु बाद में उत्तर प्रदेश के सर ऑकलैण्ड जैसे प्रान्तीय शासक उसके विरोधी हो गये। इन महाशय ने कांग्रेस को समाज-सुधार तक ही मर्यादित रहने की सलाह

दी। शायद उन्हें यह पता न था कि ह्यूम साहब ने भी आरंभ में यही सोचा था, परन्तु लॉर्ड डफरिन के कहने से ही उन्होंने इसे राजनैतिक संगठन का रूप दिया था। सर ऑकलैण्ड की सम्मति में यह आन्दोलन समय से पूर्व, और मद्रास के अधिवेशन से उग्र रूप धारण करने के कारण खतरनाक भी था। उन्होंने कहा कि कांग्रेस का सरकार की निन्दा करने का रवैया सर्व-साधारण में सरकार के प्रति घृणा पैदा करेगा और देश में राज-भक्त और देश-भक्त ऐसे दो भेद खड़े हो जायंगे। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि कांग्रेस भारतीय जनता की प्रतिनिधि बनने का जो दावा करती है, वह ठीक नहीं है। ह्यूम साहब ने इसका मुंहतोड़ जवाब दिया।

इलाहाबाद के चौथे अधिवेशन में कांग्रेस को अकथनीय कठिनाइयां का सामना करना पड़ा। उसे पण्डाल तक के लिए जमीन नहीं मिली। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने अपनी कांग्रेस-सम्बन्धी पुस्तक में एक ऐसे सज्जन का उदाहरण दिया है, जो अपने जिला-अफसर की इच्छा के विरुद्ध मद्रास (१८८७) के अधिवेशन में शामिल हुए थे और उनसे शान्ति-रक्षा के नाम पर २०,०००) की जमानत मांगी गई थी। हालत तेजी से खराब होती गई और १८९० में सरकार का विरोध बहुत बढ़ गया। बंगाल-सरकार ने सब मंत्रियों और सब विभागों के प्रमुख अफसरों के पास एक गश्ती-पत्र भेजा, जिसमें उन्हें यह हिदायत दी गई थी कि भारत-सरकार की आज्ञा के अनुसार ऐसी सभाओं में दर्शक-रूप में भी सरकारी अफसरों का जाना ठीक नहीं है और ऐसी सभाओं की कार्रवाई में भाग लने की भी मनाही की जाती है। इसी प्रकार २५ जून १८९१ को भारत-सरकार ने देशी रियासतों के प्रेसों पर अनेक पाबन्दियां लगाने के लिए एक गश्ती-पत्र जारी कया था।

१८९३ में कौंसिलें और बड़ी कर दी गई और जनता के थोड़े से प्रतिनिधि उनमें ले लिये गये। इस तरह लोक-प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ जाने पर सरकार ने आवश्यक समझा कि भारतवासियों को सरकारी नौकरियों में जो-कुछ विशेषाधिकार मिले हैं वे कम कर दिये जायं। पहले शिक्षा-विभाग में यह नियम बनाया गया था कि उसमें भारतीयों और यूरोपियनों के लेने में कोई भेद-भाव न रखा जाय; परन्तु उनकी योग्यता में जहां समानता कायम रखी गई वहां दरजे में विषमता ला दी गई! इसके बाद हिन्दुस्तानी कुछ जगहों पर लिये ही नहीं गये; उनका दरजा और वेतन भी कम कर दिया गया। होमचार्जेज का प्रवाह भी ३० सालों में ७० लाख पौण्ड से बढ़कर १३० लाख पौण्ड हो गया। २०वीं सदी के पहले पांच साल लॉर्ड कर्जन के दमनपूर्ण शासन के थे। कलकत्ता-कारपोरेशन के अधिकारों में कमी, सरकारी गुप्त-समितियों का कानून, विश्व-विद्यालयों को सरकारी नियन्त्रण में लाना जिससे शिक्षा महंगी हो गई, भारतीयों के चरित्र को 'असत्यमय' बताना, बारह सुधारों का बजट, तिब्बत-आक्रमण (जिसे पीछे से तिब्बत-मिशन का नाम दिया गया) और अन्त में वंग-विच्छेद---ये सब लॉर्ड

कर्जन के ऐसे कार्य थे, जिनसे राज-भक्त भारत की कमर टूट गई और सारे देश में एक नई जागृति पैदा हो गई।

बंग-भंग ने बंगाली भाषाभाषी जनता को उनकी इच्छाओं के विरुद्ध दो प्रांतों में बांट दिया था। इसके परिणाम-स्वरूप जहां जनता में एक व्यापक और जबरदस्त आन्दोलन उत्पन्न हुआ, वहां सरकार ने भी उग्रता से दमन शुरू कर दिया। जलूस, सभा तथा अन्य प्रदर्शन किये जाते थे, और उधर सरकार उन्हें रोक देती थी। हड़तालें होती थीं और विद्यार्थी तथा नागरिक एक-सी सजा पाते थे। शिक्षणालयों के नियम और भी सख्त कर दिये गये तथा विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेने से रोक दिया गया। पूर्वी बंगाल के लैफ्टिनैण्ट गवर्नर सर बैम्फील्ड फुलर ने बड़े-बड़े प्रतिष्ठित नागरिकों को बुलाकर रक्तपात की धमकी दी। इसके साथ ही पूर्वी बंगाल में गुरखा पलटन के आने की घोषणा भी की गई। यह सब तब हुआ, जब पण्डित मालवीयजी के कथनानुसार जनता में हिंसा की भावना का चिह्न तक नहीं पाया जाता था। ऐसी दशा में सरकार की दमन-नीति का उलटा प्रभाव पड़ता था। प्रत्येक प्रान्त ने बंगाल के प्रश्न के साथ अपनी समस्याओं को जोड़कर आन्दोलन को और भी अधिक गहरा रंग दे दिया था। 'कैनल कालोनाइजेशन बिल' ने पंजाब के सैनिक प्रदेश में एक नया उत्साह भर दिया था। इस संबंध में लाला लाजपतराय और सरदार अजितसिंह को देश-निकाले की सजा दी गई थी।

राजनैतिक सभाओं तथा प्रदर्शनों में विद्यार्थियों को सम्मिलित होने से रोकने के फल-स्वरूप स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार तथा राष्ट्रीय-शिक्षा का आन्दोलन शुरू हुआ। केवल पूर्वी बंगाल में २४ राष्ट्रीय हाई स्कूल खुल गये और भूतपूर्व जस्टिस सर गुरुदास बनर्जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार के लिए वंग जातीय विद्या-परिषद् की स्थापना की गई। बाबू विपिनचन्द्र पाल सम्पूर्ण देश में घूम-घूमकर राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय-शिक्षा और नव-चैतन्य का जोर-शोर से प्रचार करने लगे। १९०७ में आन्ध्र-देश में उनका दौरा बहुत ही शानदार और सफल रहा। राजमहेन्द्री के निवासियों ने उनके आने पर एक राष्ट्रीय हाई स्कूल खोलने का निश्चय किया। ट्रैनिंग कालेज के विद्यार्थियों ने उन्हें मानपत्र दिया। इस कारण कुछ विद्यार्थियों को सरकारी अधिकारियों ने कालेज से निकाल दिया। वे विद्यार्थी राष्ट्रीय-संग्राम के सिपाही हो गये। इस तरह सरकार की बेरोक दमन-नीति ने देशभक्तों और वीर सिपाहियों को पैदा किया।

१९०७ में राष्ट्र ने केवल प्रस्ताव पास करना छोड़कर स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय-शिक्षा के ठोस क्रियात्मक प्रस्तावों पर जोरों से अमल किया। जहां बंगाल, महाराष्ट्र, मध्यप्रान्त, पंजाब तथा आन्ध्र में राष्ट्रीय स्कूलों और विश्व-विद्यालयों का जन्म बड़े वेग से हो रहा था, वहां स्वदेशी का आन्दोलन सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गया। हाथ के कपड़े का उद्योग एक बार फिर पुनर्जीवित हो

गया। इस बार करघे में 'फटका शाल' भी इस्तेमाल किया गया। इस उद्योग को उत्तेजना देने के लिए विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार का आन्दोलन भी किया गया।

बंगाल से नौ नेता निर्वासित किए गये—कृष्णकुमार मित्र, पुलिनबिहारी दास, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, अश्वनीकुमार दत्त, मनोरंजन गुह, सुबोधचन्द्र मल्लिक, शचीन्द्रप्रसाद वसु, सतीशचन्द्र चटर्जी और भूपेशचन्द्र नाग। ये नेता बंगाल को और विशेषकर युवक बंगाल को संगठित कर रहे थे। पराक्रम और शौर्य उस समय आदर्श थे। दूसरी तरफ सर बैम्फील्ड फुलर के आदर्श 'गुरखा सेना' तथा 'यदि आवश्यक हो तो खून-खराबी' थे। १९०८ में स्थिति चरम-सीमा को पहुंच गई थी। अखबारों पर मुकदमे चलाना एक आम बात हो गई। 'युगान्तर', 'संध्या', 'वन्देमातरम्' नई जाग्रति के प्रचारक पत्र थे, वे सब बन्द कर दिये गये। 'संध्या' के सम्पादक देशभक्त ब्रह्मबांधव उपाध्याय अस्पताल में मर गये। अनेक कठिनाइयों और तीन मुकदमों से गुजरने के बाद श्री अरविन्द ब्रिटिश-भारत ही छोड़कर पांडेचरी चले गये और वहां आश्रम बनाकर रहने लगे।

३० अप्रैल १९०८ को मुजफ्फरपुर में दो स्त्रियों, श्रीमती और कुमारी कैनाडी, पर दो बम गिरे। ये बम स्थानीय जिला जज किंग्सफोर्ड को मारने के लिये बनाये गये थे। इस अपराध के लिए १८ वर्षीय युवक श्री खुदीराम बोस को फांसी की सजा मिली। उसकी तसवीरें सारे देश में घर-घर फैल गईं। स्वामी विवेकानन्द के भाई युवक भूपेन्द्रनाथ दत्त के सम्पादकत्व में निकलनेवाले 'युगान्तर' के कालमों में हिंसावाद का खुल्लम-खुल्ला प्रचार किया जाने लगा। जब उस युवक को लम्बी सजा मिली, तब उसकी बूढ़ी माता ने अपने पुत्र की इस देश-सेवा पर हर्ष प्रकट किया और बंगाल की ५०० स्त्रियां उसे बधाई देने उसके घर गईं। 'वन्देमातरम्' में राजविद्रोहात्मक लेखों के लिए श्री अरविन्द पर जो मुकदमा चलाया गया, वह भी इस संग्राम में अपवाद न था। महाराष्ट्र में १३ जुलाई १९०८ को लोकमान्य तिलक गिरफ्तार किये गये और उसी दिन आन्ध्र में श्री हरि सर्वोत्तमराव तथा दो अन्य सज्जन पकड़े गये। पांच दिनों की सुनवाई के बाद लोकमान्य तिलक को छः साल देश-निकाले की सजा मिली। १८९७ में छुटी हुई छः मास की कैद भी इसके साथ जोड़ दी गई। आन्ध्र के श्री हरिसर्वोत्तमराव को नौ महीने की सजा मिली। सरकार ने इतनी थोड़ी सजा के खिलाफ अपील की और हाईकोर्ट ने उनकी सजा बढ़ाकर तीन साल कर दी। राजद्रोह के लिए पांच साल सजा देना तो उन दिनों मामूली बात थी। इसके बाद जल्दी ही राजद्रोह देश से गायब हो गया। वास्तव में वह अन्दर-ही-अन्दर अपना काम करने लगा और उसकी जगह बम तथा पिस्तौल ने ले ली। १९०८ में राजद्रोही सभाबन्दी-कानून तथा 'प्रेस-एक्ट' नाम के दो कानून जनता के पूर्ण विरोध करने पर भी सरकार ने पास कर दिये और दो साल बाद क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेन्ट एक्ट भी बन गया। सभाबन्दी

बिल पर बहस करते हुए श्री गोखले ने सरकार को चेतावनी दी कि "युवक हाथ से निकले जा रहे हैं और यदि हम उन्हें वश में न रख सके तो हमें दोष मत देना।"

कभी-कभी इक्के-दुक्के राजनैतिक खून भी होने लगे जिनमें सब से साहस-पूर्ण खून १९०७ में लन्दन की एक सभा में सर कर्जन वाइली का हुआ। यह खून मदनलाल धिंगड़ा ने किया था, जिसे बाद में फांसी दी गई। अभियुक्त को बचाने की कोशिश करने वाले डॉ० लालकाका नामक एक पारसी सज्जन को भी फांसी की सजा दी गई। लाहौर (१९०९) में होनेवाले कांग्रेस के २४वें अधिवेशन में सभापति पं० मदनमोहन मालवीय ने इन घटनाओं तथा नासिक के कलक्टर मि० जैक्सन की हत्या पर दुःख प्रकट किया। लन्दन में रहनेवाले कुछ विद्यार्थी भी इसके समर्थक थे। मिण्टो-मॉर्ले सुधारों, अथवा भारत-सरकार और मद्रास एवं बम्बई की सरकारों की कौंसिल में भारतीयों के लेने से भी यह बढ़ा-चढ़ा वैमनस्य शान्त न हुआ। जब तक वंग-विच्छेद उठा न लिया जाय, तब तक शान्ति की कोई सम्भावना न थी। लेकिन ऐसा करने से नौकरशाही का रोब जाता था। तब वंग-भंग के कारण जो सांप-छछूंदर की-सी हालत हो गई थी उसमें से छूटने के लिए एक रास्ता ढूँढ़ा गया। जब लॉर्ड मिण्टो ने अपनी जगह लॉर्ड हार्डिङ्ग को दी और लॉर्ड मिडलटन की जगह लॉर्ड क्रू भारत-मंत्री बने, तब भारत में ब्रिटिश-नरेश जार्ज पंचम के राज्याभिषेक-महोत्सव का लाभ उठाकर वंग-भंग रद कर दिया गया और भारत की राजधानी कलकत्ते से उठाकर दिल्ली ले आये।

जब यह कहा जाता है कि वंग-भंग रद कर दिया गया, तब यह समझना चाहिए कि स्थिति यथापूर्व कर दी गई। पहले पश्चिमी बंगाल और आसाम-सहित पूर्वी बंगाल के रूप में वंग-भंग किया गया था। अब उसका रूप बदल दिया गया। पहले बिहार को पश्चिमी बंगाल में मिला लिया था, लेकिन अब उसे छोटा नागपुर और उड़ीसा के साथ मिलाकर एक प्रान्त बना दिया, अर्थात् आसाम के साथ पूर्वी और पश्चिमी बंगाल के दो प्रान्तों के बजाय अब तीन प्रान्त हो गये—बंगाल एक प्रान्त; बिहार छोटा नागपुर और उड़ीसा दूसरा प्रान्त और आसाम तीसरा प्रान्त। राज्याभिषेक के उत्सव में जिस एक अन्याय को दूर नहीं किया गया था, वह अब उड़ीसा को पृथक् प्रान्त स्वीकार करके दूर किया गया।

इन सब सफलताओं के बाद कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन (कलकत्ता, १९११) बहुत खुशी के साथ मनाया गया। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने, बंगाल को सारे भारत से मिलनेवाली मदद के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए यह उच्च आशा प्रकट की थी कि भारत भी स्वशासन-प्राप्त राष्ट्रों के स्वतन्त्र संघ-साम्राज्य का एक अभिन्न अंग बनेगा। लेकिन इन सब आशाओं और खुशियों में लोग राज-द्रोह, सभाबन्दी-कानून (१९०८), प्रेस-एक्ट (१९०८) और क्रिमिनल लॉ एमेण्ड-मेण्ट एक्ट (१९१०) को भूले नहीं थे। इन्हीं के द्वारा तो जनता की आजादी की

जड़ पर कुल्हाड़ा चलाया गया था। इन सबसे बढ़कर १८१८ का रेग्युलेशन ३ तथा अन्य प्रान्तों के रेगुलेशन अब तक मौजूद थे, जिनके अनुसार १६०६-८ के देश निकाले की सज़ा जगह-जगह दी गई थी। भारत में बननेवाले कपड़े पर 'उत्पत्ति-कर' भी अब तक मौजूद था। इनकी बदौलत जान-माल की स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता तथा उद्योग-धन्धों के हित खतरे में थे।

१६१२ में राजनैतिक खिचाव कुछ-कुछ कम हो गया था। लेकिन इसी वर्ष एक भारी दुर्घटना हो गई। लॉर्ड हार्डिङ्ग जब जलूस के साथ हाथी पर नई राजधानी दिल्ली में प्रवेश कर रहे थे, किसी ने उन पर बम फेंका और वह मरते-मरते बचे। इस घटना के बाद प्रेस का और कठोरता से नियन्त्रण होने लगा, जिससे प्रेस-एक्ट को रद करने की लगातार आवाज ने भी १६१३ में जोर पकड़ लिया। कांग्रेस कई सालों तक इसका विरोध करती रही। १६०८ का प्रेस-एक्ट सबसे अधिक खराब था, जिसे १६१० में स्थायी कानून वना दिया गया।

माण्टफोर्ड-सुधारों के बाद क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट को छोड़कर बाकी सब दमनकारी कानून रद कर दिये गये। बंग-भंग के रद किये जाने और अहिंसा-वाद के शान्त हो जाने के बाद भी प्रेस-एक्ट से लोगों को सख्त तकलीफें झेलनी पड़ती थीं। इधर राजनैतिक वातावरण में जो एक स्तब्धता और शान्ति आ गई थी, उसकी जगह १६१४-१८ के महासमर की हलचल ने ले ली और इस भीषण विश्व-क्रान्ति के प्रारम्भ में ही एक सन्तोष-जनक घटना हो गई। बंग-भंग के दिनों से ही मुसलमानों ने राष्ट्रीय आदर्शों से अलग रहकर नौकरशाही पर अपना विश्वास जमा रखा था। १६१३ में उन्होंने भी ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन के ध्येय को स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग ने अपने गत अधिवेशन में बड़े जोर के साथ यह विश्वास भी प्रकट कर दिया कि "देश का राजनैतिक भविष्य दो महान् जातियों (हिन्दू और मुसलमानों) के मेल, सहयोग और सहकार्य पर निर्भर है।" कांग्रेस ने १६१३ में मुस्लिम लीग के इस प्रस्ताव की बहुत तारीफ की।

जुलाई १६१४ में महासमर छिड़ गया और नवम्बर में जब जर्मनी फ्रांस का दरवाजा खटखटा रहा था, लार्ड हार्डिङ्ग ने भारतवर्ष से फौज बाहर भेज दी। इंग्लैण्ड बड़ी आफत में था। भारत में फौज इसलिए रखी गई थी कि वह इंग्लैण्ड के लिए भारत की हिफ़ाजत कर सके, लेकिन यदि इंग्लैण्ड खुद खतरे में हो, तब भारत में ठहरी हुई सेना से लाभ ही क्या? मार्सेल्स में एक दिन भी आराम किये बगैर भारतीय फौज फ्लांडर्स-रणक्षेत्र में, जहां अग्नि वर्षा हो रही थी, भेज दी गई। उस फौज ने मित्रराष्ट्रों को उस भारी विपत्ति से बचा दिया, जो उसके न पहुंचने पर १६१५ के फरवरी-मार्च में उनपर आ जाती। १६१४ की कांग्रस में स्वशासन की मांग फिर की गई। श्रीमती बेसेण्ट ने लॉर्ड पेण्टलैण्ड

के समय में होमरूल का महान् आन्दोलन उठाया। वही पुराना कार्यक्रम—स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा तथा होमरूल—पुनर्जीवित किया गया। उन्होंने मदनल्ली-स्थित अपनी थियोसोफिकल शिक्षण-संस्थाओं का सरकारी विश्व-विद्यालय से सम्बन्ध तोड़ दिया और अड्यार में एक राष्ट्रीय हाई स्कूल खोल दिया। सिन्ध तथा अन्य प्रान्तों में भी उन्होंने एक स्कूल खोला और राष्ट्रीय शिक्षा की उन्नति के लिए डॉ० अरण्डेल के सभापतित्व में एक शिक्षा-समिति संगठित की। श्री बी० पी० वाडिया और श्री सी० पी० रामस्वामी ऐयर ने होमरूल-लीग का जोरों से संगठन किया। दोनों पहले ही से कांग्रेस में काम करने लग गये थे। 'न्यू-इण्डिया' (दैनिक) के कालमों-द्वारा होमरूल-लीग का खूब प्रचार तथा कार्य होता था। विद्यार्थी भी आन्दोलन में बड़ी शक्ति बन गये थे, पर लॉर्ड पेण्टलैण्ड ने उन्हें राजनीति से अलग रहने का हुक्म निकाल दिया था। फलस्वरूप आन्दोलन के बाद दमन-नीति का दौर शुरू हुआ और श्रीमती बेसेण्ट तथा मि० अरण्डेल तथा वाडिया १६ जून १९१७ को उटकमण्ड में नजरबन्द कर दिये गये।

: ५ :

मत-भेद का अन्त : १९१५-१६

आत्म-विश्वास की झलक

सन् १९१५ से भारतीय राजनीति में एक नये युग का श्रीगणेश हुआ। इसका मुख्य कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ थीं। जापान ने रूस पर जो विजय प्राप्त की थी उससे, एशिया की जातियों में अपनी वीरता और क्षमता के कारण आत्मविश्वास की एक नवीन भावना जाग्रत हो गई थी। इसी प्रकार गत महायुद्ध के अवसर पर, १९१४ की कड़ाके की सर्दी में, फ्लैण्डर्स और फ्रांस के मैदानों में, जर्मन-सेनाओं के आक्रमणों का भारतीय फौजों ने जिस अद्भुत वीरता, धैर्य और सहनशीलता के साथ सफलतापूर्वक मुकाबला किया था उससे एशिया और यूरोपीय देशों पर भारतवासियों की खासी धाक बैठ गई थी। पश्चिमी देशों की दृष्टि में तो वे इतने ऊंचे उठ गये थे जितने अभी तक कभी नहीं थे। भारतीय फौजों द्वारा युद्ध में की गई सेवाओं के फलस्वरूप कुछ भारतवासियों के हृदय में तो पुरस्कार की और कुछ के हृदय में अपने अधिकारों की भावना जाग्रत हो गई थी। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पहले दल के लोगों में थे और श्रीमती बेसेण्ट दूसरे दल के लोगों में थीं।

नेतृत्व का अभाव

वैसे तो मि० ब्रैडला के समय से ही श्रीमती बेसेण्ट का सारा जीवन गरीबों और भारतवासियों की सेवा में ही व्यतीत हुआ था, लेकिन कांग्रेस में वह १९१४ में ही सम्मिलित हुईं। उन्होंने अपने साथ नये विचार, नई योग्यता, नवीन साधन, नया दृष्टिकोण और संगठन का एक बिलकुल ही नूतन ढंग लेकर कांग्रेस-क्षेत्र में पदार्पण किया। इस समय कांग्रेस में दो दल थ—एक नरम दल और दूसरा राष्ट्रीय दल। दोनों दलों में पर्याप्त मतभेद था। इसके साथ ही कांग्रेस का कोई मार्ग-प्रदर्शक भो नहीं था। इस कारण १९१५ के आरंभ में देश को वास्तविक अवस्था अच्छी नहीं थी। १९ फरवरी १९१५ को गोखले का स्वर्गवास हो चुका था। सर फिरोजशाह मेहता भी हमारी दृष्टि से ओझल हो चुके थे। दीनशा वाचा पर वृद्धा-वस्था-जन्य निर्बलताएँ अपना अधिकार जमाती चली जा रही थीं। लोकमान्य तिलक जून १९१४ में मण्डाले से लगभग अपनी पूरी सजा काट लेने के बाद रिहा हुए थे। श्रीनिवास शास्त्री ने, 'भारत-सेवक समिति' के प्रथम सदस्य होने के कारण, गोखले का स्थान तो अवश्य ले लिया था; लेकिन वह सदैव फिसड्डी ही रहे। पंडित मदनमोहन मालवीय की ऐसी स्थिति नहीं थी कि वह नरम मार्ग पर कांग्रेस का नेतृत्व करते। उनमें न वह शक्ति एवं मानसिक दृढ़ता ही थी जिससे वह अपने मार्ग पर अग्रसर होते। गांधीजी तो उस समय देश में आये ही थे। उन्होंने इस समय तक देश में सार्वजनिक जीवन का निश्चित ढंग पर श्रीगणेश भी नहीं किया था। वह अपने राजनैतिक गुरु गोखले की नसीहत के अनुसार चल रहे थे। वे इस समय चुपचाप देश की अवस्था का अध्ययन कर रहे थे; क्योंकि एक मुद्दत से वह बाहर विदेशों में रहे थे। लाला लाजपतराय अमरीका में देश-निकाले का जीवन व्यतीत कर रहे थे। सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह (बाद में लार्ड) जिन्होंने १९१५ की बम्बई की कांग्रेस का सभापतित्व किया था, इस समय नई धारा के साथ बिलकुल मेल नहीं खा रहे थे। इसलिए बम्बई-कांग्रेस के बाद उन्होंने देश की राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं ली। इस प्रकार देश का नेतृत्व प्रायः राष्ट्र के हाथ से निकल कर नौकरशाही के हाथों में जा रहा था। नरम दल-वालों के हाथ से शक्ति निकल चुकी थी। राष्ट्रीय दल अभी तक अपने को सम्हाल न पाया था। श्रीमती बेसेण्ट का १९१४ तथा १५ का दोनों दलों (नरम दल और राष्ट्रीय दल) को एक करने का उद्योग असफल हो चुका था। असफलता की इस कहानी का यहां संक्षेप में अवलोकन करना अनुचित न होगा।

समझौते का प्रयत्न

लोकमान्य तिलक जून १९१४ में जेल से छूट कर आये थे। वह राष्ट्रीय दल के नेता थे। आते ही उन्होंने अपने कार्य-क्रम में तीन बातों को स्थान दिया :

(१) कांग्रेस में मेल पैदा करना, (२) राष्ट्रीय दल का पुनःसंगठन करना और (३) एक दृढ़ तथा सुसंगठित विराट् होमरूल-आन्दोलन चलाना। इन तीनों बातों में से पहली के लिए लोकमान्य तथा राष्ट्रीय-दल के लोग यह चाहते थे कि कांग्रेस के प्रतिनिधियों के चुनाव का क्षेत्र विस्तृत कर दिया जाय। अबतक कांग्रेस के विधान के अनुसार कांग्रेस के प्रतिनिधियों के चुनाव का अधिकार केवल कुछ संस्थाओं को ही था। इस कार्य की सिद्धि के लिए श्रीमती बेसेण्ट और कांग्रेस के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री सुब्बाराव पन्तुलु दिसम्बर १९१४ के प्रथम सप्ताह में पूना गये। उन्होंने लोकमान्य तिलक, गोखले तथा अन्य नेताओं से परामर्श किया। एक संशोधन पर सब राजी हो गये। फिर श्री सुब्बाराव, सर फिरोजशाह से परामर्श करने के लिए बम्बई गये, परन्तु वह बिलकुल निराश होकर लौटे। फिर वह तिलक तथा गोखले से मिले। गोखले का यह विश्वास था कि लोकमान्य तिलक का कांग्रेस में पुनः प्रवेश कांग्रेस के पुराने झगड़े के लिए एक सिगनल का कार्य करेगा। इस-लिए उस संशोधन के प्रति अपने समर्थन को उन्होंने वापस ले लिया और इसके सम्बन्ध में उन्होंने श्रीमती बेसेण्ट की जबानी कहला दिया। उन्नीसवीं कांग्रेस के मनोनीत सभापति को एक खानगी पत्र में उन्होंने अपने विचार बदलने के कारणों का उल्लेख भी किया। कुछ ही समय में वह पत्र सारी जनता पर प्रकट हो गया। उसमें यह लिखा था कि तिलक ने खुल्लमखुल्ला अपने यह विचार प्रकट किये हैं कि वह 'सरकार का बहिष्कार करेंगे' और यदि वह कांग्रेस में घुस गये तो आयरलैंड वालों की भांति अड़ंगा-नीति का अवलम्बन करेंगे। इस सम्बन्ध में श्रीमती बेसेण्ट ने जब जांच-पड़ताल की तब तिलक ने इस बात का खंडन किया। इसपर उनसे क्षमा-याचना भी की गई। लेकिन फिर भी मेल-मिलाप की बात स्थगित ही रही। इसी बीच गोखले की मृत्यु हो गई।

१९१५ और १६ में तिलक ने अपने दल को संगठित करने के लिए घनघोर प्रयत्न किया। उनका विचार था कि एक सुदृढ़ दल के लिए (१) आकर्षक नेता, (२) एक विशेष लक्ष्य और (३) एक युद्ध-घोष जरूरी है। जोसेफ बप्टिस्टा के रूप में लोकमान्य को एक बहुत ही योग्य सहयोगी मिल गये। उन्हीं के सभा-पतित्व में पूना में राष्ट्रीय दल के लोगों की एक परिषद् हुई, जिसमें एक हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए। इस परिषद् में और बाद को जो नरम दलवालों का एक सम्मेलन हुआ उसमें जमीन-आसमान का अन्तर था। नरम-दल की परिषद में बहुत थोड़ी उपस्थिति थी और लॉर्ड विलिंगडन ने पधार कर उसकी शोभा बढ़ाई थी। पूना-परिषद् से लोगों को 'होमरूल' के रूप में एक 'युद्धघोष' मिल गया। अब लोकमान्य के पास एकमात्र कार्य यह रह गया था कि किस प्रकार भारत को उसके लक्ष्य तक ले जायं। उनकी इच्छा थी कि मजदूर-दल के नेताओं-द्वारा इस सम्बन्ध

में पार्लमेण्ट में एक बिल पेश कराया जाय और स्वयं अपनी सारी शक्तियों को एक विराट् आन्दोलन में केन्द्रीभूत कर दिया जाय।

१९१५ की कांग्रेस का अधिवशन बम्बई में होने जा रहा था। चूंकि मेल-मिलाप के सारे प्रयत्न विफल हो चुके थे, इसलिए यह कांग्रेस नरम दल वालों की ही थी। कांग्रेस के ऐन मौके पर, अर्थात् नवम्बर मास में, सर फिरोज-शाह मेहता का स्वर्गवास हो गया। सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह, जिनकी योग्यता और रुतबे की सर्वत्र धाक थी, इस कांग्रेस के सभापति चुने गये थे। वैसे कांग्रेस के साथ उनका सम्पर्क तो बहुत ही थोड़ा था, लेकिन उनके सभापतित्व से बंबई कांग्रेस को वह सारी प्रतिष्ठा अवश्य प्राप्त हुई जो सरकार के भूतपूर्व लॉ-मेम्बर के नाम के साथ जुड़ी रहती थी। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से उनका भाषण अत्यन्त प्रतिगामी था। उनके विचार से भारत के भविष्य के लिए एक ऐसे आदर्श की आवश्यकता थी जिससे एक ओर तो उठती हुई पीढ़ी की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हो और दूसरी ओर वे लोग भी उसे मंजूर कर लें जिनके हाथ में भारत का भाग्य सौंपा हुआ है। इसी विचार से वह ऐसी नीति की घोषणा चाहते थे।

लेकिन बम्बई की सन् १९१५ वाली कांग्रेस के प्रति जनता के उस अनुराग के चिह्न फिर से दिखाई पड़ने लगे जो सूरत-काण्ड के बाद विलीन हो गये थे। लखनऊ-कांग्रेस और उसके बाद तो जनता की दिलचस्पी इतनी बढ़ गई कि उसका प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगा। बम्बई की कांग्रेस में २२५९ प्रतिनिधि आये थे, और विभिन्न विषयों पर अनेक प्रस्ताव पास हुए थे। वे प्रस्ताव उन प्रस्तावों के सार मात्र थे जो कांग्रेस के जन्म से लेकर समय-समय पर कांग्रेस में पास होते रहे थे। १९१५ की एक बड़ी दिलचस्प घटना यह हुई कि गांधीजी विषय-समिति के सदस्य नहीं चुने जा सके। इसलिए सभापति ने उनको अपने अधिकार से इस समिति में नामजद किया। बम्बई-कांग्रेस की एक सफलता यह भी थी कि उसने कांग्रेस के विधान में ऐसा महत्वपूर्ण संशोधन कर दिया था, जिसके द्वारा राष्ट्रीय दल के लोग भी कांग्रेस के प्रतिनिधि चुने जा सकते थे; क्योंकि यह तय हो गया था कि उन संस्थाओं द्वारा बुलाई गई सार्वजनिक सभाएँ कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि चुन सकेंगी जिनकी स्थापना १९१५ से दो वर्ष पूर्व हो चुकी हो और जिनका उद्देश्य वैध-उपायों से ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य प्राप्त करना हो। लोकमान्य तिलक ने इसका हृदय से स्वागत किया। उन्होंने तुरन्त ही इस बात की सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी कि वह और उनका दल इस आंशिक रूप में खुले द्वार से कांग्रेस में प्रवेश करने को सहर्ष तैयार है।

दो होमरूल लीगों की स्थापना

सन् १९१६ का श्रीगणेश, पिछले वर्ष की अपेक्षा, कांग्रेस-कार्य के लिए और

भी शुभ हुआ। इधर देश बड़े-बड़े धक्कों के कारण और भी असहाय हो गया था, क्योंकि १९१५ में ही गोखले और मेहता जैसे महारथी स्वर्गारोहण कर चुके थे। लोकमान्य के लिए तो अभी तक कोई स्थान ही नहीं था; क्योंकि बम्बई में जो समझौता हुआ था उसके अनुसार उन्हें पूरे साल भर तक इन्तजार करना था। इसी के बाद वह कांग्रेस में आ सकते थे और उसे प्रभावित कर अपने ढंग से चला सकते थे। अतः उन्होंने अपने होमरूल-लीग के विचार को कार्य-रूप देने का निश्चय किया। इस नाजुक समय में वह अपनी शिक्षा-दीक्षा, योग्यता, सेवाओं और त्याग के कारण नेतृत्व करने के लिए पूर्णतः योग्य थे। उन्होंने कांग्रेस को एक शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड भेजने के लिए राजी करने की काफी कोशिश की, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। तब उन्होंने २३ अप्रैल १९१६ को अपनी होमरूल लीग की स्थापना की। इसके ६ मास बाद श्रीमती बेसेण्ट ने भी अपनी होमरूल-लीग खड़ी की। नौकरशाही तिलक के विरुद्ध थी। तिलक भी ६० वर्ष के हो चुके थे और वह प्रायः अस्वस्थ रहते थे। होमरूल-लीग की स्थापना तो उन्होंने कर ली थी, पर उसके संबंध में प्रचार करना उनके बस और बूते की बात नहीं थी।

श्रीमती बेसेंट की नीति

यह थी दशा १९१६ में भारत की, जिसकी पुकार पर कोई ध्यान नहीं देता था और जिसे अपने लिए एक नेता ढूंढ़ निकालने की आवश्यकता थी। ठीक ऐसे ही नाजुक समय में श्रीमती बेसेण्ट धार्मिक क्षेत्र से एकदम राजनैतिक क्षेत्र में कूद पड़ीं। थियोसोफी को छोड़कर उन्होने होमरूल को अपनाया। उन्होंने 'न्यू इण्डिया' नामक एक दैनिक और इसके बाद "कामन-वील" नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला। होमरूल की आवाज को लोक-प्रिय बनाने में उनका प्रथम स्थान था। इसके लिए उन्होंने एक छोर से दूसरे छोर तक एक तूफान मचा दिया। वैसे १९१५ में ही "होमरूल फार इण्डिया लीग" की स्थापना पर विचार-विनिमय हो चुका था, लेकिन उसी समय इसकी स्थापना नहीं की गई थी; क्योंकि सोचा यह गया था कि अगर स्वराज्य के कार्य को स्पष्ट रूप से उस वर्ष की कांग्रेस अपने हाथ में ले ले तो ठीक होगा।

बम्बई-कांग्रेस ने कांग्रेस और मुस्लिम-लीग के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन करने का जो आदेश दिया था वह यथा-विधि किया गया। उसका परिणाम हुआ भारतवर्ष की दो महान् जातियों में पूर्ण एकमत हो जाना। एक सम्मिलित समिति भी बनाई गई जिसके सुपुर्द यह कार्य किया गया कि वह एक योजना तैयार करे और साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य पाने के उद्देश्य को शीघ्र ही फलीभूत करने के लिए अन्य सारे आवश्यक प्रबन्ध करे। यह तय हुआ कि इस सम्मिलित समिति द्वारा तैयार किया गया स्वराज्य का मसविदा लखनऊ में (१९१६) कांग्रेस और

मुस्लिम-लीग दोनों मिलकर पास करें। इसी सम्बन्ध में २२, २३ और २४ अप्रैल १९१६ को, इलाहाबाद में, पं० मोतीलाल नेहरू के निवास-स्थान पर, महा-समिति की बैठक में खूब वाद-विवाद हुआ। महा-समिति की इस बैठक में जो प्रस्ताव कच्चे तौर पर पास हुए थे उन पर मुस्लिम-लीग की कौंसिल और महासमिति की सम्मिलित बैठक ने, जो अक्तूबर १९१६ को कलकत्ते में हुई थी, विचार किया गया और हिन्दू-मुस्लिम-एकता सम्बन्धी समझौता तय हो गया। केवल बंगाल और पंजाब के प्रतिनिधियों की संख्या की समस्या हल नहीं हुई। इसका अन्तिम निर्णय लखनऊ-अधिवेशन पर छोड़ दिया गया। सम्मिलित समिति ने कलकत्ते में जो प्रस्ताव पास किये थे, उन्हें लखनऊ कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया।

श्रीमती बेसेण्ट, कांग्रेस का कार्य जिस मन्द गति से चल रहा था, उससे सन्तुष्ट नहीं थीं। कांग्रेस की ब्रिटिश-समिति निस्सन्देह इंग्लैण्ड में अपना काम कर रही थी। लेकिन वह वस्तुतः एक प्रकार से, सिर्फ निगरानी रखती थी। श्रीमती बेसेण्ट एक तेजतर्रार और जीती-जागती संस्था चाहती थीं। इसलिए उन्होंने १९१४ की मद्रास-कांग्रेस के स्व-शासन-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार १२ जून १९१६ को लन्दन में एक सहायक-होमरूल-लीग की स्थापना की। भारतवर्ष में तो निश्चित रूप से, पहली सितम्बर १९१६ ई० को, मद्रास के गोखले-हाल में उनकी होमरूल लीग की स्थापना हो चुकी थी। इस संस्था ने १९१७ भर धड़ाके से श्रीमती बेसेण्ट-द्वारा निर्धारित प्रणाली पर काम किया। वह इस संस्था की तीन वर्ष के लिए अध्यक्षा चुनी गई थीं। लेकिन सबसे पहले होमरूल-लीग की स्थापना तो, जैसा कि पहले हम बता चुके हैं, २३ अप्रैल १९१६ को लोकमान्य तिलक ने की थी, जिसका प्रधान कार्यालय पूना में था। दोनों के नाम में गड़बड़ न हो इसलिए श्रीमती बेसेण्ट ने अपनी होमरूल-लीग का नाम १९१७ में 'ऑल इंडिया होम-रूल-लीग' रख दिया था।

मतभेद का अन्त, लखनऊ कांग्रेस : १९१६

लोकमान्य तिलक अपनी जनवरी की घोषणा के अनुसार १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस में सम्मिलित हुए। उन्हें बम्बई प्रांत से राष्ट्रीय विचार के लोगों की एक अच्छी खासी संख्या को लखनऊ के अधिवेशन के लिए प्रतिनिधि बनाने में पूर्ण सफलता मिली। कांग्रेस के तत्कालीन विधान के अनुसार ऐसा नियम था कि विषय समिति में प्रत्येक प्रांत के महासमिति के सदस्यों के अलावा उन्हीं की संख्या के बराबर के सदस्य प्रत्येक प्रांत से, अधिवेशन में सम्मिलित हुए प्रतिनिधियों द्वारा, चुने जायं। लोकमान्य ने नरम-दल वालों के सामने विषय-समिति के चुने जानेवाले सदस्यों के नामों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव रखा था वह उन लोगों ने जब स्वीकार नहीं किया तब उन्होंने बम्बई के प्रतिनिधियों से, जो सारे-के-सारे राष्ट्रीय विचार

के थे, केवल अपने दल के लोगों को ही चुनवाने का निश्चय किया। अधिवेशन में विषय-समिति के सदस्यों के लिए दो-दो नाम एक साथ पेश किये गये। अर्थात् एक नरम-दल वाले का तो दूसरा राष्ट्रीय-दल वाले का। परन्तु हर बार राष्ट्रीय दल का ही आदमी चुना गया। जब गांधीजी के नाम के मुकाबले में एक राष्ट्रीय-दल के आदमी का नाम रख दिया गया तब गांधीजी भी नहीं चुने जा सके। लेकिन लोकमान्य ने घोषणा कर दी कि गांधीजी चुन लिये गये।

लखनऊ की इस कांग्रेस के सभापति श्री अम्बिकाचरण मजुमदार चुने गये थे। यह कांग्रेस अपने ढंग की अद्वितीय थी। एक तो उसमें हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य हुआ, दूसरे स्वराज्य की योजना पेश हुई और कांग्रेस के दोनों दलों में, जोकि १९०७ से पृथक्-पृथक् थे, एका हो गया। वास्तव में यह दृश्य देखते बनता था। लोकमान्य तिलक और खापर्डे, रासबिहारी घोष और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, एक साथ एक ही स्थान पर बराबर बैठते थे। श्रीमती बेसेंट भी अपने दो सहयोगी अरण्डेल और वाडिया साहब के साथ, जिनके हाथों में होमरूल के झण्डे थे, वहीं बैठी थीं। मुसलमानों में से राजा महमूदाबाद, मजहरुल हक और जिन्ना साहब भी उपस्थित थे। गांधीजी और मिस्टर पोलक भी वहीं विराजमान थे। कांग्रेस-लीग योजना पर, जिसे कांग्रेस ने पास किया था, तुरन्त ही मुस्लिम-लीग ने भी अपनी मुहर लगा दी।

बम्बई-कांग्रेस की भांति लखनऊ-कांग्रेस में भी उपस्थिति अच्छी थी। २,३०१ प्रतिनिधियों के अतिरिक्त दर्शकों की एक अच्छी खासी भीड़ थी, जिनके मारे सारा पण्डाल खचाखच भर गया था। इसमें प्रायः वह सब प्रस्ताव पास हुए जिन्हें कांग्रेस अब तक हर साल पास करती चली आ रही थी। कांग्रेस ने दो प्रस्ताव और पास किये थे। एक तो उत्तरी बिहार के गोरे जमीदारों और वहां की रैयत के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में था, जिसमें इस बात की आवश्यकता पर जोर दिया गया था कि सरकार शीघ्र ही सरकारी तथा गैर-सरकारी कुछ सदस्यों की एक ऐसी सम्मिलित समिति नियुक्त करे जो बिहार के किसानों के कष्टों का पता लगाये। दूसरा विश्वविद्यालय-सम्बन्धी बिल था जो कि बड़ी कौंसिल में पेश किया जा चुका था। उत्तरी बिहार के गोरे जमीदार और वहां की रैयत के सम्बन्ध का प्रस्ताव बड़ा ही महत्वपूर्ण था; क्योंकि इसके बाद ही गांधीजी किसानों के असन्तोष के कारणों का पता लगाने बिहार गये थे, जिस पर आगे के अध्यायों में प्रकाश डाला जायगा।

कांग्रेस और लीग दोनों के एक समय में एक ही स्थान पर अधिवेशन करने की प्रथा का जो श्रीगणेश बम्बई में हुआ था वही लखनऊ में भी जारी रखा गया। लखनऊ के अधिवेशन में स्वशासन-प्रणाली के लिए जो प्रस्ताव पास हुआ था उसके बाद एक प्रस्ताव इस आशय का भी पास हुआ था कि सारे देश की कांग्रेस-कमिटियां

तथा अन्य संगठित संस्थाएँ और कमिटियां शीघ्र ही एक देशव्यापी प्रचार का कार्य शुरू कर दें। इस आदेश का देश ने आश्चर्यजनक उत्तर दिया। एक प्रांत ने दूसरे प्रांत से इस प्रचार-कार्य करने में प्रतिस्पर्द्धा की। मद्रास ने तो श्रीमती बेसेंट के नेतृत्व में इस कार्य में सबसे अधिक बाजी मारी।

कांग्रेस का लखनऊ-अधिवेशन सुगमता से समाप्त नहीं हो गया। १८९९ में जब कांग्रेस का इसी स्थान पर १५ वां अधिवेशन होने जा रहा था तब अकथनीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। लेकिन उस समय, तत्कालीन लेफ्टिनेंट-गवर्नर सर एन्थोनी मैक्डोनल्ड ने उन सबका अन्त कर दिया था। इसी तरह की एक घटना १९१६ में हुई थी। उत्तर-प्रदेशीय सरकार के मन्त्रि-मण्डल ने कांग्रेस की स्वागत-समिति को एक चेतावनी भेजी थी कि भाषणों में किसी प्रकार के राज-द्रोहात्मक भावों को न आने दिया जाय। कांग्रेस के मनोनीत सभापति के पास भी बंगाल-सरकार द्वारा उसी की एक नकल भेज दी गई थी। स्वागत-समिति ने इस अकारण तौहीन का मुंह-तोड़ उत्तर दिया और सभापति ने उस पत्र को कोई महत्व नहीं दिया। श्रीमती बेसेन्ट ठीक इन्हीं दिनों बरार और बम्बई की सरकारों से देश-निकाले की आज्ञा पा ही चुकी थीं। इसलिए स्वभावतः लखनऊ में भी कुछ ऐसी ही आशंकाएँ थीं। लेकिन सर जेम्स मेस्टन की बुद्धिमानी से इस तरह की कोई घटना नहीं घटी और इसलिए कोई पेंचीदगी पैदा नहीं हुई। इतना ही नहीं, अधिकारीवर्ग-सहित सर जैम्स मेस्टन अपनी धर्मपत्नी सहित कांग्रेस में भी पधारे थे। सभापति महोदय ने उनका जो स्वागत किया था, उसका सर जैम्स ने उपयुक्त उत्तर भी दिया था।

: ६ :

उत्तरदायी शासन की माँग : १९१७

होमरूल आन्दोलन

कांग्रेस के दो दलों के बीच पारस्परिक मत-भेद का अन्त तथा भारत की दो महान जातियों के बीच समझौता हो जाने से सन् १९१७ का वर्ष ठोस कार्यों के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ। १९१७ में जो राजनैतिक आन्दोलन चलाया गया था उसकी कल्पना स्पष्ट और भावना शुद्ध थी। १९१७ में सारे देश में बड़ी तेजी के साथ एक राष्ट्रीय-जागृति पैदा हो गई थी। होमरूल के लिए जो विराट् आन्दोलन इस वर्ष हुआ वह भी बहुत ही लोकप्रिय था। होमरूल की

आवाज देश के सुदूर कानों तक फैल गई थी और सर्वत्र होमरूल-लीगों की स्थापना हो गई थी। श्रीमती बेसेण्ट-द्वारा प्रेस की शक्ति में विशेष उन्नति हुई। परन्तु इसके साथ-साथ दमन-चक्र भी चला। श्रीमती बेसेण्ट से, जिनका 'न्यू इंडिया' नामक दैनिक और 'कामन-वील' नामक साप्ताहिक पत्र निकलता था, प्रेस और पत्र के लिए २०,०००) की जमानत मांगी गई और वह जब्त भी कर ली गई। एक ओर यह हो रहा था तो दूसरी ओर होमरूल का विचार, दावानल की तरह, सर्वत्र फैल रहा था। होमरूल-आन्दोलन की शक्ति, श्रीमती बेसेण्ट के १९१७ में कलकत्ता कांग्रेस के सभापति-पद से दिये गये भाषण के कारण, दसगुनी अधिक बढ़ गई थी। इस आन्दोलन की सफलता का एक बड़ा कारण यह था कि प्रारम्भ से ही भाषा के आधार पर प्रान्त बनाने के सिद्धान्तों को मान लिया गया था और उसी के अनुसार देश का प्रान्तीय-संगठन किया गया था। इस प्रकार इस रूप में वह कांग्रेस से भी आगे निकल गई थी और सच पूछिए तो कांग्रेस के लिए उसने पूर्व-सूचक का काम किया था।

१५ जून १९१७ को श्रीमती बेसेण्ट, अरण्डेल और वाडिया साहब को नजरबन्दी का हुक्म मिला। उनको ६ स्थान बताये गये थे जिनमें से एक को उन्हें अपने रहने के लिए पसन्द कर लेना था। उन्होंने कोयम्बटूर और उटकमण्ड को पसन्द किया। अपने तीन नेताओं की नजरबन्दी के कारण होमरूल-लीग और भी लोकप्रिय हो गई और श्री जिन्ना भी उसमें सम्मिलित हो गये। सरकारी हुक्म और खुफिया-पुलिस की निगरानी होने पर भी श्रीमती बेसेण्ट स्वतन्त्रता पूर्वक बराबर अपने पत्र 'न्यू-इंडिया' के लिए लेख लिखती रहीं। श्री पंढरीनाथ काशीनाथ तैलंग 'न्यू इण्डिया' के सम्पादक बनकर मद्रास पहुंच गये। देश में स्थिति बड़ी विकट हो गई। लेकिन इंग्लैण्ड में अधिकारी-वर्ग जरा भी झुकने को तैयार न था।

शाही युद्ध-परिषद्

भारतवर्ष में जब यह राजनैतिक तूफान उमड़ रहा था, लन्दन में एक शाही युद्ध-परिषद् हो रही थी, जिसमें सारे उपनिवेशों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए महाराज बीकानेर और सर सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह इंग्लैण्ड भेजे गये थे। इन लोगों ने वहाँ अपनी शान-बान और रङ्ग-ढङ्ग तथा शुद्ध उच्चारण से ऐसा रोब जमाया कि उनका वहाँ खूब ही स्वागत हुआ। भारतवर्ष इस समय होमरूल के सम्बन्ध में नजरबन्द हुए लोगों को छुड़ाने के लिए सत्याग्रह करने की योजना तैयार कर रहा था। जुलाई १९१७ में महासमिति और मुस्लिम लीग की कौंसिल की एक सम्मिलित बैठक बुलाई गई। इसमें सर विलियम वेडरबर्न की सलाह के अनुसार एक छोटा-सा शिष्टमंडल इंग्लैण्ड भेजने का निश्चय

हुआ। उसके सदस्य थे—सर्वश्री जिन्ना, शास्त्री (यदि वे न जायं तो सी० पी० रामस्वामी ऐयर), सप्रू और वजीर हसन। सत्याग्रह करने के प्रश्न पर यह तय हुआ कि प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटियों और मुस्लिम-लीग की कौंसिल से प्रार्थना की जाय कि वे सत्याग्रह पर सिद्धान्ततः राजनैतिक कार्य करने की दृष्टि से विचार करें, कि आया उनकी राय में सत्याग्रह करना उचित और उपयुक्त है या नहीं? इस विषय में उनकी जो राय हो उसे ६ सप्ताह के अन्दर कांग्रेस के प्रधान मन्त्री के पास भेज देने की बात भी प्रस्ताव में थी।

सत्याग्रह पर विचार

३० जुलाई को भारत-मंत्री, प्रधानमंत्री तथा सर विलियम वेडरबर्न के पास इस वक्तव्य का मुख्य भाग तार-द्वारा विलायत भेज दिया गया। इसी बीच सत्याग्रह करने के प्रस्ताव पर विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियों ने गम्भीरतापूर्वक अगस्त और सितम्बर के महीनों में विचार किया। बरार की राय में तो सत्याग्रह करना उचित था; पर बम्बई, बर्मा और बंजाब का कहना था कि अभी सत्याग्रह स्थगित रखा जाय, क्योंकि मि० माण्टेगु के भारत आने की संभावना है। उत्तर प्रदेश ने वर्तमान अवस्था में सत्याग्रह करना अनुपयुक्त बताया। बिहार न कहा कि होम रूल के नजरबन्दों—मौलाना अबुलकलाम आजाद तथा अली-भाइयों को मुक्त कराने के लिए एक तारीख नियत कर देना चाहिए। इस दी गई मियाद के बीच बिहार स्वयं स्थान-स्थान पर सभायें करके इस मांग का बल बढ़ाने को तैयार था। मद्रास-प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी ने १४ अगस्त १९१७ को सत्याग्रह का समर्थन किया। मद्रास-नगर में तो एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया गया। इस पर सबसे पहले सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर ने हस्ताक्षर किया। वह मद्रास हाईकोर्ट के पेंशनयाफ्ता जज, पुरान कांग्रेसी तथा आल इंडिया होमरूल-लीग के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपनी 'सर' की उपाधि को श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके सहयोगियों के नजरबन्द किये जाने के विरोध में त्याग दिया था। प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले दूसरे व्यक्ति 'हिन्दू' के सम्पादक श्री कस्तूरी रंगा आयंगर थे।

माण्टेगु की घोषणा

जिस समय भारतवर्ष में होम रूल-आन्दोलन बढ़ रहा था उस समय मि० चेम्बरलेन की जगह मि० माण्टेगु भारत-मंत्री हुए। उनके भारत-मंत्री होने से, भारतवर्ष ने अपनी एक बहुत बड़ी विजय समझी। लोगों की आशा के अनुसार मंत्री-पद का कार्य सम्हालने के कुछ ही समय बाद २० अगस्त को मंत्रि-मंडल की ओर से, उन्होंने एक घोषणा की, जिसमें ब्रिटिश नीति का अन्तिम ध्येय भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रणाली देना बताया गया। लोगों के प्रति अपने विश्वास-

भाव को प्रकट करने के लिए उन्होंने उस जातिगत प्रतिबन्ध को भारतीयों पर से हटा दिया जिसके कारण वे सेना में उच्च पद नहीं पा सकते थे। आगे चलकर उन्होंने यह भी घोषित किया कि वह भारत आयेंगे और वाइसराय से परामर्श करेंगे, एवं भारत को स्वराज्य की ओर बढ़ाने में जो समुदाय दिलचस्पी रखते होंगे उन सबसे भी बातें करेंगे। इस नई नीति के अनुसार श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके सहयोगी १६ सितम्बर को मुक्त कर दिये गये।

कांग्रेस का आवेदन-पत्र

६ अक्तूबर को इलाहाबाद में महासमिति और मुस्लिम-लीग की कौंसिल की एक सम्मिलित बैठक हुई। इस सम्मिलित बैठक ने सत्याग्रह करने की बात तय करने के स्थान पर वाइसराय तथा भारत-मंत्री के पास एक शिष्ट-मण्डल भेजने की बात तय की। इसके अतिरिक्त, इस शिष्ट-मण्डल के साथ कांग्रेस-लीग-योजना के समर्थन में एक युक्ति-संगत आवेदन-पत्र भी भेजने की बात तय हुई। इस कार्य के लिए १२ व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त की गई। श्री सी० वाई चिन्तामणि उसके मंत्री थे। इसका काम था एक आवदन-पत्र और एक अभिनन्दन-पत्र तैयार करना। शिष्ट-मण्डल आवेदन-पत्र के साथ लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० माण्टेगु से नवम्बर १९१७ में मिला। आवेदन-पत्र में कहा गया कि "भारत-सरकार की रजामन्दी से सम्राट्-सरकार-द्वारा जो अधिकार-पूर्ण घोषणा की गई है उसके लिए भारतवासी बड़े ही कृतज्ञ हैं; पर इसके साथ ही यदि उनके आवेदन-पत्र के अनुसार कार्रवाई की जाय तो उन्हें और भी अधिक सन्तोष होगा। गत दो वर्षों से एक ऐसी आवश्यकता पैदा हो गई है जिसके कारण यहां के निवासी इस बात पर बलपूर्वक जोर दे रहे हैं कि उनके देश को साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों की श्रेणी में रख दिया जाय। इस वर्ष के आरम्भ में जो शाही-युद्ध परिषद् हुई उसमें महाराज बीकानेर, सर जैम्स मेस्टन और सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह भारत की ओर से प्रतिनिधि बनाकर भेजे गये हैं। युद्ध के मंत्रि-मण्डल में भी इन लोगों को भारत-सरकार के प्रतिनिधि होकर सम्मिलित होने का अवसर दिया गया है। इससे हमें बहुत प्रसन्नता है और इसको हम आगे बढ़ाया हुआ कदम मानते हैं। हम लोग शाही-परिषद-द्वारा पास किये गये उस प्रस्ताव के मूल्य को भी नहीं भूल सकते हैं जिसके द्वारा शाही-युद्ध-परिषद् में भारत को आगे प्रतिनिधित्व देना तय हुआ है। हमारी प्रार्थना तो केवल यही है कि जबतक भारत-सरकार एक मातहत-सरकार है, तब-तक वह न प्रतिनिधि ही है और न जनता के प्रति उत्तरदायी ही। उपनिवेशों के साथ उसकी समानता भी नहीं मानी जा सकती, क्योंकि यह प्रतिनिधित्व भारत-सरकार को दिया गया है, न कि भारवासियों को। इसमें शक नहीं कि शाही-परिषद् के लिए उनकी ओर से सरकार जिनको चुनेगी वे अपनी शक्तिभर अपने देश के प्रति अपने

कर्त्तव्य का पालन अवश्य करेंगे; लेकिन उनके साथ वह प्रारम्भिक असुविधा अवश्य लगी रहेगी जो जनता के प्रति उत्तरदायी न होनेवाले के साथ होती है। यह उनके साथ वास्तव में एक भारी कठिनाई रहेगी। हमारी यह मांग नहीं है कि चुनाव सीधा जनता किया करे। यह भी नहीं कि बहुत अधिक मतदाताओं द्वारा हुआ करे। इतना काफी होगा, यदि बड़ी और प्रान्तीय कौंसिलों के चुने हुए सदस्यों को प्रतिनिधि या प्रतिनिधियों के चुनने का अधिकार दे दिया जाय। आशा है सरकार इसे स्वीकार कर लेगी।"

कांग्रेस का संगठन

इस बीच कांग्रेसवाले खामोश नहीं बैठे थे। वे कांग्रेस-लीग-योजना के लिए लोगों के हस्ताक्षर करा रहे थे, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। अपनी नजरबन्दी से छुटकारा पाने के बाद श्रीमती बेसेण्ट ने वाइसराय से कितनी ही बार मिलने के लिए समय मांगा, लेकिन उन्हें नहीं दिया गया। लॉर्ड चेम्सफार्ड श्रीमती बेसेण्ट को दूर ही रखना चाहते थे। मि० माण्टेगु ने भी उनके नेतृत्व के लिए कोई आदर-भाव प्रदर्शित नहीं किया। अपने छुटकारे के बाद ही उन्होंने सत्याग्रह से अपनी अलहदगी दिखलाई। इसका कारण आजतक अगम्य ही है।

१६१७ के अन्त के महीनों में भारत के राजनैतिक वातावरण में माण्टफोर्ड ही माण्टफोर्ड हो रहे थे। मि० माण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड का सर्वत्र दौरा हो रहा था। उनसे विभिन्न स्थानों पर शिष्ट-मण्डल मिलते थे। मि० माण्टेगु श्रीमती बेसेन्ट, लोकमान्य तिलक और गांधीजी जैसे व्यक्तियों से भी मिले और उनकी बातें सुनीं। उनकी भारत-यात्रा का उद्देश्य यह जान लेना था कि भावी-शासन में मंत्री, कार्यकारिणी के सदस्य और एडवोकेट जनरल कौन-कौन बनाने लायक हैं। वह उन आदमियों के सम्बन्ध में निश्चित होना चाहते थे जो उनकी योजना को कार्य-रूप में परिणत कर सकें। इस समय गांधीजी अपने कुछ चुने हुए सहयोगियों के साथ—जैसे राजेन्द्र बाबू, बृजकिशोर बाबू, गोरख बाबू, अनुग्रह बाबू और अध्यापक कृपलानी तथा भारत-सेवक-समिति के डा० देव को लेकर बिहार में निलहे गोरों के प्रति वहां के किसानों की जो शिकायतें थीं, उनकी जांच कर रहे थे। वह पूरे ६ मास तक आन्दोलन से कतई अलग रहे और अपने सब साथियों को भी अलग रखा। उन्होंने यह प्रस्ताव अवश्य रखा कि कांग्रेस-लीग योजना देश की भाषाओं में अनुवादित कर दी जाय; लोगों को उसे समझाया जाय और उसमें शासन-सुधारों की जो योजना है, उसके पक्ष में लोगों के हस्ताक्षर कराये जायं। इस प्रस्ताव को ज्योंही कार्य रूप में लाया गया त्योंही देश ने कांग्रेस की शासन-सुधार-योजना का स्वागत किया। यहां तक कि १६१७ के अंत तक दस लाख से ऊपर लोगों ने हस्ताक्षर कर दिये। यह देश-व्यापी संगठन, कांग्रेस की ओर से सम्भवतः पहला ही प्रयत्न था।

कलकत्ता-कांग्रेस : १९१७

इस वर्ष कांग्रेस कलकत्ते में होने वाली थी। कलकत्ता नरम-दल वालों का एक गढ़ था। उनमें और नये होमरूल वालों तथा राष्ट्रीय दल वालों में तीव्र मत-भेद था। राष्ट्रीय दल वालों तथा नये होमरूल वालों ने भी कलकत्ते को ही अपना सुदृढ़ गढ़ बना लिया था। पुराने दल के नेता थे राय बैकुण्ठ नाथ सेन, अम्बिका-चरण मजुमदार, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा भूपेन्द्रनाथ वसु। चित्तरंजनदास भी कांग्रेस-कार्य में दिलचस्पी लेने लगे थे। उन्होंने नये दल के साथ अपना भाग्य जोड़ लिया था जिसमें बी०के० लाहिड़ी, आई० वी० सेन और जितेन्द्रनाथ बनर्जी प्रमुख थे।

यद्यपि अधिकांश प्रान्तीय-कांग्रेस कमिटियों ने श्रीमती बेसेण्ट को आगामी कांग्रेस का अध्यक्ष बनाने की सिफारिश की थी, तो भी स्वागत-समिति में इस बात पर तीव्र मत-भेद था। तत्कालीन विधान के अनुसार उन दिनों प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियों के अधिकांश मत को ही मानना पड़ता था। स्वागत-समिति की ३० अगस्त १९१७ की बैठक तो इस विषय पर विकट मत-भेद और विरोध का एक दृश्य बन गई थी। अन्त में श्रीमती बेसेन्ट सभानेत्री चुन ली गईं।

श्रीमती बेसेण्ट का कांग्रेस के सभानेत्री-पद से दिया गया भाषण, भारत के स्वशासन पर, परिश्रमपूर्वक लिखा गया एक सुन्दर निबन्ध था। सेना और भारत की व्यापारिक समस्या पर विस्तार के साथ उसमें पूर्णतः प्रकाश डाला गया था। उसमें जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक-विद्यार्थियों के लिए बहुत-सी सामग्री थी। उन्होंने वस्तुतः १९१८ में पेश करने के लिए एक ऐसे बिल की मांग पेश की थी जिसके अनुसार भारत को ब्रिटिश उपनिवेशों के समान स्वराज्य दे दिया जाय, वह भी १९२३ तक, या अधिक-से-अधिक १९२८ तक। बीच के पांच या दस वर्ष अंग्रेजों के हाथों से भारतीय सरकार के हाथों में आने में लगें और अंग्रेजों से भारत का वही सम्बन्ध बना रहे जो अन्य उपनिवेशों के साथ है।

इस अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास हुए वे भी कुछ को छोड़कर पहले-के-से सांचे में ढले हुए ही थे। वृद्ध पितामह दादाभाई नौरोजी और कलकत्ते के ए० रसूल की मृत्यु पर शोक-प्रस्ताव और सम्राट् के प्रति भारत की राजभक्ति के प्रस्ताव पास होने के बाद मि० माण्टेगु के स्वागत का प्रस्ताव पास हुआ। मौलाना मुहम्मद-अली और शौकतअली को, जो कि अक्तूबर १९१४ से नजरबन्द थे, रिहा कर देने का भी प्रस्ताव पास हुआ। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा, भारतीयों को उचित सैनिक शिक्षा देने की आवश्यकता पर सदा की भांति जोर देते हुए इस विषय में उनके साथ न्याय किये जाने की मांग की। दूसरे प्रस्ताव-द्वारा १९१० के प्रेस-एक्ट द्वारा शासकों को बहुत विस्तृत और निरंकुश-सत्ता दिये जाने, आर्म्स-

एक्ट, उपनिवेशों में भारतीयों के साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार और उनकी असुविधाओं के प्रति अपने विरोध को दोहराया। उसने कुली प्रथा को पूर्ण रूप से उठा देने के लिए भी मांग पेश की। एक पार्लमेण्टरी कमीशन की नियुक्ति पर जोर दिया गया जो कि लिखने, व्याख्यान देने, सभा करने आदि की स्वतन्त्रता के दमन के लिए विशेष प्रकार के कानूनों तथा इसी प्रकार के कार्यों के दमन के लिए भारत-रक्षा-कानून के प्रयोग के सम्बन्ध में जांच करे। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा रौलट कमीशन की निन्दा की और बताया कि इस कमीशन का उद्देश्य दमन के लिए नये कानूनों की व्यवस्था करना था, लोगों का कष्ट दूर करना नहीं। मुख्य प्रस्ताव स्वराज्य के सम्बन्ध में था, जो इस प्रकार है:—

"सम्राट् के भारत-मन्त्री ने साम्राज्य-सरकार की ओर से यह घोषित किया है कि उसका उद्देश्य भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करना है—इस पर यह कांग्रेस कृतज्ञतापूर्वक सन्तोष प्रकट करती है।

"यह कांग्रेस इस बात की आवश्यकता पर जोर देती है कि भारतवर्ष में स्व-शासन की स्थापना का विधान करने वाला एक पार्लमेण्टरी कानून बने और उसमें बताये हुए समय तक पूरा स्वराज्य मिल जाय।

"इस कांग्रेस की यह दृढ़ राय है कि शासन-सुधार की कांग्रेस-लीग-योजना कानून-द्वारा सुधार की पहली किस्त के रूप में प्रारम्भ की जानी चाहिए।"

श्रीमती बेसेण्ट के सभापतित्व में, होमरूल-लीग और कांग्रेस एक-दूसरे के बहुत ही निकट आ गईं। यह कांग्रेस इसलिए भी स्मरणीय है कि इसमें पहली बार राष्ट्रीय झण्डे का सवाल बाजाब्ता उठाया गया। इस कार्य के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई जिसके सुपुर्द यह काम किया गया कि वह झण्डे का नमूना निश्चित करे। लेकिन इस कमिटी की बैठक कभी नहीं हुई। अन्त में होम-रूल का झण्डा ही कांग्रेस का झण्डा बन गया।

: ७ :

माण्टेगु-चेम्सफोर्ड-योजना : १९१८

महासमिति की बैठक

१९१७ की कांग्रेस के अधिवेशन के बाद तुरन्त ही ३० दिसम्बर को महा-समिति की पहली बैठक में, कांग्रेस के लिए स्थायी-कोष जमा करने के प्रश्न पर विचार किया गया, और प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियों से अनुरोध किया गया कि वे भारत में शिक्षा और इंग्लैण्ड में प्रचार-कार्य आरम्भ करने के लिए एक कार्य-समिति

बना दें। इसके बाद के महीने अनवरत रुप से कार्य करने में ही व्यतीत हुए।

महासमिति की दूसरी बैठक दिल्ली में १३ फरवरी १९१८ को हुई। उसमें वाइसराय के पास एक शिष्ट-मण्डल भेजने का प्रस्ताव पास हुआ जो उनसे जाकर यह प्रार्थना करे कि लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्र पाल के दिल्ली और पंजाब में प्रवेश करने पर जो प्रतिबन्ध लगाया गया है, उसे मंसूख कर दे। शिष्ट-मंडल वाइसराय से मिला, लेकिन निरर्थक। लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० माण्टेगु शासन-सुधारों सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट निकालने ही वाले थे। इसलिए महासमिति ने यह निश्चय किया कि रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही लखनऊ या इलाहाबाद में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया जाय। उसने इंग्लैण्ड को एक शिष्ट-मंडल भेजना भी तय किया।

३ मई १९१८ को महासमिति की तीसरी बैठक हुई। उसमें सीलोन (लंका) और जिब्राल्टर से दोनों होमरूल-लीग के शिष्ट-मण्डलों को, जो इंग्लैण्ड जा रहे थे, वापस लौटा देने पर सरकार का खूब विरोध किया गया। कमिटी ने इस बात पर जोर दिया कि यह अधिकारपूर्ण घोषणा कर दी जाय कि लड़ाई खतम होने पर भारत को उत्तरदायी-शासन दिया जायगा। इससे कम के लिए भारतीय नौजवान कभी युद्ध की सफलता के लिए काफी तादाद में आगे नहीं बढ़ेंगे।

माण्टेगु-चेम्सफोर्ड-योजना का प्रभाव

जून १९१८ में माण्टेगु-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई। साहित्यिक-दृष्टि से यह ऊंचे दरजे की चीज थी। यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा तैयार किये गये राजनैतिक लेखों के समान, भारत को स्वशासन देने के सम्बन्ध में एक निष्पक्ष बयान था। उसमें सुधारों के मार्गों की रुकावटों का बड़ी स्पष्टता के साथ वर्णन किया गया था और फिर भी जोर दिया गया था कि सुधार अवश्य मिलना चाहिए। रिपोर्ट के पक्ष में एक और भी बात थी। देश की दो महान् संस्थाओं ने मिलकर जिस योजना को तैयार किया था उसमें अपरिवर्तनीय कार्यकारिणी की तजवीज थी। परन्तु उसमें उत्तरदायी शासन की एक बड़ी ही आकर्षक योजना थी, जिसमें मन्त्रि-मंडल बदला जा सकता था। मंत्रिमण्डल की जिम्मेदारी सामूहिक थी और वह कौंसिल के मतों पर निर्भर करती थी। यह ठीक ब्रिटिश नमूने के स्वराज्य से मिलती हुई थी। भारतवर्ष के लोगों को और चाहिए ही क्या था? इसके अनुसार, भारतीयों की राय में, कौंसिलें भारतीय राजनीतिज्ञों के लिए तालीमगाह न रह कर सार्वजनिक न्यायालय हो जाती थीं, जहां कि मंत्रीगण को मतदाताओं के सामने अपनी स्थिति साफ करनी पड़ती और अपने साथी सदस्यों की राय पर उनका भाग्य अवलम्बित रहता। इसलिए कितने ही भारतीय इसके भुलावे में

आ गये और इसकी तारीफों के पुल बांधने लगे। पलड़ा कांग्रेस-योजना की ओर से माण्ट-फोर्ड-योजना की ओर झुक गया।

कांग्रेस का विशेष अधिवेशन

ऐसी स्थिति में इस बात पर भिन्न-भिन्न नेताओं में तेजी से चर्चा होने लगी कि इसके विषय में हमें क्या करना चाहिए। महासमिति ने कांग्रेस के विशेष अधिवेशन को बुलाने का जो निश्चय किया था उसके अनुसार उसका बुलाया जाना लाजिमी था। लेकिन यह बात अनुभव की जाने लगी कि लखनऊ और इलाहाबाद इसके लिए उपयुक्त स्थान न रहेंगे। अतः बम्बई में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करना तय हुआ और थोड़े ही समय में सारी तैयारी की गई। कांग्रेसवालों में रिपोर्ट के संबंध में तीव्र मतभेद था। वैसे कोई भी दल योजना से सन्तुष्ट नहीं था, लेकिन उनके आलोचना करने के ढंग में अन्तर अवश्य था। ऐसा जान पड़ता था कि एक दल तो, उसे बिलकुल अस्वीकार कर देने पर जोर देगा और दूसरा उसमें सुधार चाहेगा। कांग्रेस से कुछ ही दिन पूर्व ऐसा प्रयत्न किया गया था कि किसी जगह एक बार मिलें और दोनों दलों में समझौता हो जाय। लेकिन इसमें सफलता नहीं मिली।

कांग्रेस का अधिवेशन २९ अगस्त १९१८ को हुआ। श्री हसन इमाम सभापति थे। कांग्रेस में उपस्थिति खूब थी। उसमें ३,८४५ प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। श्री विट्ठलभाई पटेल स्वागत-समिति के सभापति थे। चार दिन के वादविवाद के पश्चात् कांग्रेस ने अपनी पुरानी योजना के आधारभूत सिद्धान्तों का ही समर्थन किया और इस बात की घोषणा कर दी कि भारतीय आकांक्षा साम्राज्य के अन्तर्गत स्व-शासन से कम में सन्तुष्ट नहीं हो सकती। मांटेगु-योजना की उसने विस्तार-पूर्वक आलोचना की। उसने यह घोषणा की कि भारत अवश्य ही उत्तरदायी शासन के योग्य है। मांटेगु-रिपोर्ट में इसके विरुद्ध जो बात कही गई थी उसका प्रतिवाद किया गया। कांग्रेस ने प्रान्तीय तथा केन्द्रीय, दोनों शासनों में एक-साथ ही सुधार जारी करने पर जोर दिया और इस बात से सहमति प्रकट की कि प्रान्त ही वह स्थान है जहां उत्तरदायी शासन के क्रमिक विकास के लिए पहले कार्य प्रारम्भ होना चाहिए और जब तक इस बात का अनुभव न हो जाय कि इन प्रान्तों की शासन-प्रणाली में जो परिवर्तन करने का विचार है उनका क्या असर होता है तब तक आवश्यक बातों में भारत-सरकार का अधिकार अक्षुण्ण रहे।

आगे चलकर प्रस्ताव में ऐसी बातें भी सुझाई गईं जिनका होना उत्तरदायी शासन की ओर बढ़ने के लिए पूर्णतया आवश्यक था—जैसे भारत-सरकार से सम्बन्धित बातों के लिए कांग्रेस ने यह इच्छा प्रकट की कि प्रान्तों के लिए जिस तरह स्वरक्षित और हस्तान्तरित विषय रखे जायं उसी तरह केन्द्रीय सरकार के लिए

भी रखे जायं। रक्षित विषय ये होंगे—वैदेशिक कार्य (उपनिवेशों का सम्बन्ध छोड़ कर) सेना, जल-सेना, भारतीय राजाओं के साथ सम्बन्ध और शेष सब विषय हस्तान्तरित रहेंगे। सुधारों के अनुसार बनाई गई कौंसिल का पहला कार्य-काल समाप्त होने पर हस्तान्तरित विषयों के सम्बन्ध में वाइसराय और कौंसिल का सम्बन्ध वैसा ही रहेगा जैसा कि स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों में है। हरेक कानून कौंसिल में बिल पेश करके ही बनाया जायगा, परन्तु यदि कौंसिल स्वरक्षित विषयों के सम्बन्ध में वह कानून पास न करे जिसे सरकार आवश्यक समझती हो तो गवर्नर जनरल रेग्युलेशनों-द्वारा उनका विधान कर सकेंगे। ये रेग्युलेशन एक वर्ष तक जारी रहेंगे और दुबारा फिर जारी किये जायंगे, सिवा उस हालत के जब कि कौंसिल के उपस्थित सदस्यों में कम-से-कम ४० प्रतिशत उसके पक्ष में मत देते हों। राज-परिषद् न रहेगी, किन्तु यदि वह बनाई ही जाय तो कम-से-कम उसके आधे सदस्य निर्वाचित हों, और 'सार्टिफिकेट' देने का नियम केवल स्वरक्षित विषयों के लिए हो। स्वरक्षित विषयों के अधिकार में जो कार्य-कारिणी के सदस्य हों उनमें कम-से-कम आधे (यदि उनकी संख्या १ से अधिक हो) भारतीय हों। बड़ी कौंसिल के सदस्यों की संख्या १५० कर देनी चाहिए और उनमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या ४/५ हो। बड़ी कौंसिल के सभापति और उपसभापति बड़ी कौंसिल-द्वारा ही चुने जाने चाहिए और उसे अपने कार्य-संचालन के लिए नियम बनाने का अधिकार रहे। कानून-द्वारा इस बात का विश्वास दिला दिया जाना चाहिए कि अधिक-से-अधिक १५ वर्षों के भीतर समस्त ब्रिटिश-भारत में पूर्ण-उत्तरदायी शासन स्थापित कर दिया जायगा।

जहां तक प्रान्तों से सम्बन्ध है, कांग्रेस ने तय किया कि (क) शासन-विभाग में ऐसा कोई सदस्य न रहना चाहिए जिसके जिम्मे कोई महकमा न हो, (ख) सुधार के अनुसार बनी कौंसिलों का पहला कार्य-काल समाप्त होने पर हस्तांतरित विषयों के सम्बन्ध में गवर्नर और मंत्रियों का वैसा ही सम्बन्ध रहे जैसा कि स्वराज्य प्राप्त उपनिवेशों में है, (ग) मन्त्रियों का दर्जा और उनका वेतन वही हो जो कार्यकारिणी के सदस्यों का हो तथा कार्यकारिणी के आधे सदस्य भारतीय हों और (घ) स्वरक्षित विषयों के लिए जो खर्च पड़ता है उसे छोड़ कर बजट कौंसिल के अधिकार में रहे और यदि नया कर लगाने की जरूरत पड़े तो वह सारी प्रान्तीय सरकार-द्वारा लगाया जाना चाहिए। यह मानते हुए भी कि लोग पूर्ण प्रान्तीय अधिकार पाने के योग्य हैं, यह कांग्रेस सुधार-योजना के पास होने में सुविधा करने के विचार से इस बात पर तैयार है कि सब प्रांतों में छः वर्षों के लिए कानून, पुलिस और न्याय के कार्य (जेल छोड़ कर) सरकार के हाथों में रहें, शासन और न्याय-कार्य तुरन्त अलग-अलग कर देना चाहिए। सभापति और उपसभापति कौंसिलों-द्वारा चुने जाने चाहिए। परन्तु कौंसिलों में निर्वाचित सदस्यों का औसत

$\frac{4}{5}$ रहे। कौंसिलें प्रांतीय अधिकार के प्रत्येक विषय पर—कानून, न्याय और पुलिस पर भी—कानून बना सकेंगी, किन्तु जहां सरकार को कानून, न्याय और पुलिस-सम्बन्धी बातों में कौंसिल के निर्णय से सन्तोष न हो वहां उन्हें भारत-सरकार के सामने पेश कर सकेंगी। भारत-सरकार उसे बड़ी कौंसिल के सामने पेश कर देगी और साधारण तरीका बर्ता जायगा। भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों का उत्तरदायित्व निर्वाचकों के प्रति बढ़ाया जाय और पार्लमेंट और भारत-मंत्री के अधिकार कम किये जायं। इण्डिया कौंसिल तोड़ दी जाय। भारत मंत्री को सहायता देने के लिए दो स्थायी सहायक-मन्त्री रहें, जिनमें से एक भारतीय हो।

जातिगत प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में कांग्रेस ने निश्चय किया कि छोटी और बड़ी कौंसिलों में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व वही रहना चाहिए जो कांग्रेस-लीग योजना में रखा गया है। स्त्रियां मताधिकार के अयोग्य न ठहराई जायं। आर्थिक मामलों में भारत-सरकार को पूरी स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। सेना में भारतीयों को कमीशन दिये जाने के संबंध में जो मांग पेश की गई थी उसे सरकार ने बिलकुल अपूर्ण रूप से स्वीकार किया था। इस पर कांग्रेस ने गहरी निराशा प्रकट की और यह राय दी कि भारतीयों को सेना में कम-से-कम २५ प्रतिशत कमीशण्ड जगहें देने की कार्रवाई होनी चाहिए और यह औसत धीरे-धीरे बढ़कर १५ साल में ५० फीसदी तक जाना चाहिए। कांग्रेस ने इंगलैंड में शिष्ट-मण्डल भेजना तय किया और सदस्यों के चुनाव के लिए एक कमिटी नियुक्त कर दी। इस तरह यह विशेष अधिवेशन ऐसे निर्णयों पर पहुंचा जिससे विभिन्न मतों में मेल हो गया तथा सारे देश के अधिकांश कांग्रेसियों ने पूर्णरूप से उनका समर्थन किया। उन्हीं दिनों मुस्लिम-लीग की भी बैठक हुई जिसके सभापति थे महमूदाबाद के राजा साहब। उसमें भी कांग्रेस से मिलता-जुलता ही प्रस्ताव पास हुआ।

दमन और गिरफ्तारियां

लेकिन भारत के दुःखों का अन्त नहीं हुआ। भारत-रक्षा-कानून, जो देश के किसी भी व्यक्ति को कुछ भी करने से रोक सकता था, या कुछ भी करने की आज्ञा दे सकता था, जोरों के साथ अपना काम कर रहा था। मौलाना अबुलकलाम आजाद तथा अली-भाइयों की नजरबन्दी हो चुकी थी। अमृतसर कांग्रेस के पहले अली-बन्धु कांग्रेसी नहीं थे। १६१६ में रिहा होते ही वे अमृतसर-कांग्रेस में पहुंचे थे। मुहम्मदअली "कामरेड" नाम के तेज और चरपरे साप्ताहिक का सम्पादन करते थे। उनके बड़े भाई शौकत अली "हमदर्द" के सम्पादक थे। यह उर्दू का दैनिक पत्र था। महायुद्ध के छिड़ते ही ब्रिटिश-सरकार की तरफ से लोगों को दिखाने के लिए बड़ी शान से एक घोषणा की गई, जिसमें यह कहा गया था कि युद्ध निर्बल राष्ट्रों की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है। मौलाना मुहम्मदअली

ने अपने पत्र में एक जोरदार लेख लिखा, जिसका नाम था "मिश्र को खाली कर दो।" मौलाना और अली-बन्धु उसी समय नजरबन्द कर दिये गये थे। वे इसी अवस्था में २५ दिसम्बर १९१९ तक रहे।

महायुद्ध के लिए धन एकत्र करने और सिपाही भरती करने का ढंग अत्यन्त अनुचित था। इनके कारण पंजाब और अन्य जगह आगे चलकर भयंकर स्थितियां पैदा हो गई थीं। देहात में तो "इंडेण्ट" की प्रथा प्रचलित थी, जिसके अनुसार स्थानीय अधिकारियों को यह बताना आवश्यक था कि उनके हलके से युद्ध के लिए कितना धन मिल सकता था और फिर उसी के अनुसार मातहत अधिकारी, अपनी बात को कायम रखने के लिए, "दबाव तथा समझाने" की नीति को काम में लाकर युद्ध के लिए जितना हो सकता था रुपया वसूल करते थे। इन उपायों से अन्त में ऐसी स्थिति पैदा हुई कि एक बार लोगों ने क्रोध में आकर एक तहसीलदार का बंगला घेर लिया और उसके बाल-बच्चों को छोड़कर उसे मय बंगले के जलाकर भस्म कर दिया।

लार्ड चेम्सफोर्ड के शासन-काल में, जहां तक राजनैतिक क्षेत्र से सम्बन्ध है, दमन-चक्र मुख्यत: प्रेस-ऐक्ट के रूप में बड़ी तेजी से चला था। भारत-रक्षा-कानून के अनुसार लार्ड विलिंगडन ने श्रीमती बेसेण्ट को बम्बई-अहाते में प्रवेश न करने की आज्ञा दे दी थी। बंगाल में नजरबन्द नवयुवकों की संख्या तीन हजार तक पहुंच गई थी। इसके बाद श्रीमती बेसेन्ट नजरबन्द हुईं। दूसरे वर्ष रौलट बिल तथा उसके साथ ही उसके विरुद्ध आन्दोलन दोनों ने पदार्पण किया।

यहां यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि इससे पहले वर्ष सरकार ने एक कमिटी नियुक्त की थी। सर सिडने रौलट उसके सभापति थे और कुमार स्वामी शास्त्री और प्रभासचन्द्र मित्र उसके सदस्य। इसका काम इस बात की जांच करके रिपोर्ट करना था कि भारत में किस प्रकार और किस हद तक क्रांतिकारी-आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले षड्यन्त्र फैले हुए हैं और उनका मुकाबिला करने में जो दिक्कतें पेश आती हैं उनकी भी छानबीन करके, यदि उसके लिए कोई कानून बनाने की जरुरत हो तो उसके लिए भी, वह सरकार को उचित सलाह दे। कमिटी ने जांच करके अपनी रिपोर्ट सरकार के पास भेज दी। रिपोर्ट में जिस कानून को बनाने की सलाह दी गई थी, वह बड़ी कौंसिल में पेश भी कर दिया गया। इससे सारे देश में एक तहलका मच गया। सब जगह विरोध-प्रदर्शन किया गया। कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के समय तक केवल रिपोर्ट ही प्रकाशित हो पाई थी। कांग्रेस ने रौलट-कमिटी की सिफारिशों की निन्दा की और कहा कि यदि उसे कार्य-रूप में लाया गया तो भारतीयों के मौलिक अधिकारों में हस्तक्षेप होगा और वह उचित लोकमत के बनने में बाधक बनेगा।

दिल्ली-कांग्रेस : १९१८

कांग्रेस का साधारण वार्षिक अधिवेशन आगामी दिसम्बर मास में दिल्ली में होनेवाला था। दिल्ली-अधिवेशन का सभापति प्रांतीय कांग्रेस-कमेटियों और स्वागत-समिति ने लोकमान्य तिलक को चुना था। लेकिन उन्हें वेलेन्टाइन चिरोल पर चलाये गये मुकद्दमे के सम्बन्ध में इंग्लैंड जाना था। अतः सभापति बनने में उन्होंने असमर्थता प्रकट की। इसपर पं० मदनमोहन मालवीय को सभापति बनाया गया। हकीम अजमल खां स्वागताध्यक्ष थे। ११ नवम्बर १९१८ की अस्थायी-सन्धि के बाद महायुद्ध का अन्त हो गया था। मित्र-राष्ट्रों को पूर्ण सफलता मिली थी और राष्ट्रपति विल्सन, लायड जार्ज तथा मित्र राष्ट्रों के अन्य राजनीतिज्ञों ने आत्म-निर्णय के सिद्धांतों की घोषणा कर दी थी। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि इन घोषणाणों को तथा आलोचनाओं को, जो माण्टफोर्ड-रिपोर्ट पर विशेष अधिवेशन के बाद हुई थीं, सामने रखकर कांग्रेस शासन-सुधार-योजना पर पुनः विचार करे।

कांग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा सम्राट् के प्रति राज-भक्ति प्रकट की और युद्ध के, जो कि संसार के सब लोगों की स्वाधीनता के लिए लड़ा गया था, सफलतापूर्वक समाप्त हो जाने पर बधाइयां दीं। दूसरे प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने स्वतन्त्रता, न्याय और आत्मनिर्णय के लिए मित्र-राष्ट्रों के सैनिकों की वीरता और खासकर भारतीय सेना की सफलताओं की प्रशंसा की। तीसरे-प्रस्ताव द्वारा इस बात की प्रार्थना की गई कि शान्ति-सम्मेलन और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट भारत को उन उन्नतिशील देशों में समझे जिनपर स्व-शासन का सिद्धान्त लागू होगा। इसके लिए जो तत्काल कार्रवाई करनी चाहिए वह यह बताई गई कि उन सारे कानूनों, आर्डिनेंसों और रेग्यूलेशनों को, जिनके कारण स्वतंत्रतापूर्वक राजनैतिक समस्याओं पर खुलकर वाद-विवाद नहीं किया जा सकता और जिनके द्वारा अधिकारियों को गिरफ्तार करने, रोकने, देश-निकाला देने, साधारण अदालतों में बिना मुकदमा चलाये ही सजा करने का अधिकार दे दिया गया है, तुरन्त ही उठा लिया जाय। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा यह भी मांग पेश की कि साम्राज्य-नीति के पुनर्निर्माण में पार्लमेन्ट शीघ्र ही भारत को एसा पूर्ण उत्तरदायी शासन देने का एक कानून पास करे जैसा कि उपनिवेशों में है। कांग्रेस ने यह भी इच्छा प्रकट की कि शान्ति-सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व भी चुने हुए व्यक्तियों द्वारा हो। इसके लिए लोकमान्य तिलक, गांधीजी और श्री हसनइमाम को प्रतिनिधि भी चुना गया।

शासन-सुधारों के लिए कांग्रेस ने उसी विशेष अधिवेशन वाले कांग्रेस-लीग योजना के प्रस्ताव को ही दोहराया। साथ ही यह बात भी कही गई कि भारतवर्ष स्वराज्य के योग्य है और शान्ति एवं देशरक्षा-सम्बन्धी सब अधिकार. कुछ अपवादों

को छोड़कर, भारत-सरकार को है। इसके सम्बन्ध में भी बम्बई के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए यह बात कही गई कि इससे शासन-सुधारों को सफलतापूर्वक व्याहवारिक रूप देने में बाधा पड़ेगी। कांग्रेस ने इस बात पर भी जोर दिया कि तुरन्त ही भारत-रक्षा कानून, प्रेस एक्ट, राज-द्रोह, सभाबन्दी-कानून, क्रिमिनल लॉ अमेण्डमेंट ऐक्ट, रेग्यूलेशन्स तथा इसी प्रकार के अन्य दमनकारी कानूनों को उठा लिया जाय और सारे नजरबन्दों तथा राजनैतिक कैदियों को मुक्त कर दिया जाय।

औद्योगिक कमीशन की रिपोर्ट पर भी विचार हुआ। उसकी सिफारिशों का और इस नीति का स्वागत करते हुए कि भविष्य में सरकार को इस देश की औद्योगिक उन्नति के लिए अधिक काम करना चाहिए, कांग्रेस ने आशा की कि इस सिद्धांत को कार्यान्वित करने में यह उद्देश्य सामने रखा जायगा कि भारतीय पूंजी और व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाय और विदेशों की लूट से भारत को बचाया जाय। एक और प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने सरकार से अली-बन्धुओं को मुक्त कर देने की प्रार्थना की गई। युद्ध के बन्द हो जाने और अभूतपूर्व आर्थिक संकट के कारण कांग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि युद्ध के कार्यों के लिए ४ करोड़ ५ लाख रुपया देने के भार से भारत को मुक्त कर दिया जाय। आयुर्वेद और यूनानी दवाइयों के सम्बन्ध में भी एक बड़ा ही मनोरंजक प्रस्ताव कांग्रेस ने पास किया। उसमें सरकार से सिफारिश की गई कि विदेशी चिकित्सा-प्रणाली के लिए जो सुविधायें प्राप्त हैं उन्हींकी व्यवस्था आयुर्वेदिक और यूनानी प्रणालियों के लिए भी कर दी जाय। इस प्रकार एक ओर जहां इस कांग्रेस ने बम्बई-कांग्रेस के प्रस्तावों को प्रायः दोहराया वहां कुछ आगे भी कदम बढ़ाया।

: ८ :

सत्याग्रह और पंजाब-हत्याकांड : १९१९

रौलट बिल का मन्तव्य

दिल्ली-कांग्रेस से देश में कोई शान्ति स्थापित नहीं हुई। १९१९ के फरवरी में रौलट-बिल ने देश को अपना दर्शन दिया। वे दो बिल थे। एक अस्थायी था जिसका उद्देश्य था भारत-रक्षा-कानून के समाप्त हो जाने से जो स्थिति पैदा होती उसका मुकाबला करना और वह भी युद्ध के समाप्त होने पर शान्ति स्थापित होने के ६ मास बाद। उसमें यह विधान था कि क्रान्तिकारियों के मुकदमे हाईकोर्ट के तीन जजों की अदालत में पेश हों और वे शीघ्र उनका फैसला कर दें एवं जिन स्थानों में क्रान्तिकारी अपराध बहुत हों वहां अपील भी न हो सके। इस कानून-द्वारा यह

अधिकार भी दे दिया गया था कि राज्य के विरुद्ध अपराध करने का जिस व्यक्ति पर संदेह हो उससे जमानत ले ली जाया करे तथा उसे किसी स्थान-विशेष में रहने और किसी खास काम को करने से रोका जा सके। किसी व्यक्ति को ऐसा हुक्म देने से पहले उसके विरुद्ध जो आरोप होंगे उनकी जांच एक जज और गैर-सरकारी आदमी किया करेगा। तोसरे प्रान्तोय सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया था कि वे किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जिस पर उचित रूप से यह संदेह हो कि वह कुछ ऐसे अपराध करने जा रहा है जिससे सार्वजनिक शान्ति भंग होने की आशंका हो, गिरफ्तार करके उल्लिखित स्थानों में बन्द कर दें और यह बता दें कि इन अवस्थाओं या स्थिति में रहना पड़ेगा। दूसरा बिल साधारण फौजदारी-कानून में एक स्थायी परिवर्तन चाहता था। किसी राजद्रोही सामग्री का प्रकाशन या वितरण करने के उद्देश्य से पास रखना ऐसा अपराध करार दे दिया गया था जिसमें जेल की सजा हो सकती थी। यदि कोई व्यक्ति सरकारी गवाह बनने को राजी हो तो उसकी रक्षा का भार अधिकारियों पर रखा गया था। उन अपराधों के लिए, जिनके लिए, सरकार की आज्ञा पहले से प्राप्त किये विना मुकदमा नहीं चल सकता था, जिला-मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार दिया गया था कि वे पुलिस-द्वारा उस मामले की प्रारम्भिक जांच करवा लें। किसी भी ऐसे आदमी से, जिसे राज्य के विरुद्ध कोई अपराध करने में सजा मिल चुको हो उसकी सजा के बाद दो वर्ष तक की नेकचलनी की जमानत ली जा सकती थी।

सत्याग्रह का सूत्रपात

रौलट-रिपोर्ट के बाद, ६ फरवरो १९१९ को, विलियम विन्सेण्ट ने बड़ी कौंसिल में, रौलट-बिलों को पेश किया। पहला बिल मार्च के तीसरे सप्ताह में पास हो गया और दूसरा वापस ले लिया गया। गांधीजी ने यह घोषणा की कि यदि रौलट-कमीशन की सिफारिशों को बिल का रूप दिया गया तो वह सत्याग्रह-युद्ध छेड़ देंगे। इसके लिए गांधीजी ने देश में सर्वत्र दौरा किया। उनका सब जगह धूमधाम से स्वागत हुआ। गांधीजी तो देश के लिए, अन्य नेताओं की अपेक्षा, अपरिचित व्यक्ति के समान थे। लेकिन फिर भी देश ने उनका और उनके कार्यक्रम का इतना स्वागत क्यों किया? सरकार इसका उत्तर अपनी १९१९ की रिपोर्ट में इस प्रकार देती है:—

"मि० गांधी अपनी निःस्वार्थ भावना और ऊँचे आदर्शों के कारण आम तौर पर टाल्स्टाय के अनुयायी समझे जाते हैं। भारतीयों के लिए दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जो लड़ाई लड़ी उसके कारण उन्हें यह सब मान-गौरव प्राप्त है जो पूर्वी देशों में एक तपस्वी और त्यागी-नेता को प्राप्त होता है। जबसे वह अहमदाबाद में रहने लगे हैं, तब से वह बराबर विभिन्न प्रकार को सामाजिक सेवा में लगे हुए हैं। दलितों

और पीड़ितों की सेवा के लिए तैयार रहने के कारण, वह अपने देशवासियों को और भी प्रिय हो गये हैं। बम्बई अहाते के क्या देहात और क्या नगर, सब जगह उनका अत्यधिक प्रभाव है और उनको सब पर धाक है। उन्हें लोग जिस आदर-भाव से देखते हैं उसके लिए 'पूजा' शब्द का प्रयोग करना अत्युक्ति नहीं कहा जा सकता। भौतिक-बल से उनका विश्वास आत्मबल में अधिक है। इसलिए गांधोजी का यह विश्वास हो गया है कि उन्हें इस शक्ति का प्रयोग सत्याग्रह के रूप में रौलट ऐक्ट के खिलाफ करना चाहिए, जिसे कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में सफलता पूर्वक आजमाया था।"

सरकार के इस रुख के बावजूद भी गांधीजी ने अपने निश्चय के अनुसार २४ फरवरी को सत्याग्रह करने की घोषणा कर दी। सरकार तथा बहुत-से भारतीय राजनीतिज्ञों ने इस घोषणा को बहुत चिंता की दृष्टि से देखा। बड़ी कौंसिल के कुछ नरम-दलवाले सदस्यों ने तो सार्वजनिक रूप से ऐसे कार्य के अनिष्ट परिणामों की ओर संकेत किया। श्रीमती बेसेन्ट ने तो, गांधीजी को अत्यन्त गंभीरतापूर्वक यह चेतावनी दी कि यदि उन्होंने कोई भी ऐसा आन्दोलन चलाया तो उससे ऐसी शक्तियां उभड़ उठेंगी जिनसे न जाने क्या-क्या भयंकर बुराइयां हो सकती हैं। यहां यह बात स्पष्ट रूप से बता देना चाहिए कि गांधीजी के रुख या घोषणा में कोई भी ऐसी बात नहीं थी जिससे कि उनके आन्दोलन का श्रीगणेश होने से पहले सरकार उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई कर सकती। सत्याग्रह तो आक्रमणकारी नहीं, रक्षात्मक पद्धति है। गांधीजी तो शुरू से ही पशुबल की निन्दा करते थे। उन्हें यह विश्वास था कि वे सविनय-भंग के रूप में सत्याग्रह करके सरकार को इस बात के लिए मजबूर कर देंगे कि वह रौलट-ऐक्ट का परित्याग कर दे। १८ मार्च को उन्होंने रौलट बिल के सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित कराया, जो इस प्रकार है :—

"सच्चे हृदय से मेरा यह मत है कि इंडियन क्रिमिनल ला अमेण्डमेंट बिल नं० १ और क्रिमिनल इमरजेंसी पावर बिल नं० २ अन्यायपूर्ण हैं और अन्याय और स्वाधीनता के सिद्धांतों के घातक हैं। उनसे व्यक्ति के उन मौलिक अधिकारों का हनन होता है जिन पर भारत को और स्वयं राज्य की रक्षा निर्भर है। अतः हम शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि इन बिलों को कानून का रूप दिया गया तो जबतक इन्हें वापस न ले लिया जायगा तब तक हम उन अन्य कानूनों को भी जिन्हें कि इसके बाद नियुक्त की जाने वाली कमिटी उचित समझेगी, मानने से नम्रता-पूर्वक इन्कार कर देंगे। हम इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि इस युद्ध में हम ईमानदारी के साथ सत्य का अनुसरण करेंगे और किसी के जान-माल को किसी तरह नुक़सान न पहुँचायेंगे।"

देश ने चारों तरफ से इस आन्दोलन का खूब साथ दिया। प्रारंभ में बंगाल खामोश रहा। दक्षिण ने उसमें आशातीत साथ दिया। गांधीजी ने उपवास के

साथ आन्दोलन का श्रीगणेश किया। ३० मार्च १९१९ का दिन हड़ताल के लिए नियत किया गया था। इस दिन लोगों से उपवास रखने, ईश्वर-प्रार्थना करने, प्रायश्चित्त करने तथा देश-भर में सार्वजनिक सभाएँ करने के लिए कहा गया था। बाद को यह तारीख बदल कर ६ अप्रैल नियत की गई, परन्तु इस परिवर्त्तन की सूचना ठीक समय पर दिल्ली नहीं पहुँची। इसलिए वहां ३० मार्च को ही जलूस निकला और हड़ताल हुई। गोली भी चली। इस दिन के जलूस का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्दजी कर रहे थे। उन्हें कुछ गोरे सिपाहियों ने गोली मारने को धमकी दी। इसपर उन्होंने अपनी छाती खोल दी और कहा—'लो, मारो गोली।' बस, गोरों की धमकी हवा में उड़ गई। लेकिन दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर कुछ झगड़ा हो गया, जिसमें गोली चली और ५ मरे तथा अनेक घायल हुए। ६ अप्रैल को देशव्यापी प्रदर्शन हुआ। सब लोग बड़े ही उत्तेजित थे। उस समय एक बात मार्के की दिखाई पड़ती थी और वह था हिन्दू-मुस्लिम-भ्रातृ-भाव। इस जोश-खरोश के जमाने में छोटी जातियों ने भी अपने मतभेद भुला दिये। वह भ्रातृ-भाव का एक अद्भुत दृश्य था। हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के हाथ से खुल्लम-खुल्ला पानी लेते-देते थे; जलूसों के झण्डों और नारों, दोनों से हिन्दू-मुसलमानों का मेल ही प्रकट होता था। एक जगह तो एक मसजिद के इमाम पर खड़े होकर हिन्दू नेताओं को बोलने भी दिया गया था। इस प्रकार के मेल का एक तात्कालिक कारण था। युद्ध के पश्चात् टर्की की अस्तव्यस्त अवस्था हो गई थी। इसपर मुसलमान स्वभावतः बहुत खिन्न थे। साथ ही खिलाफत के लिए जो खतरा था उससे तो उनमें और भी उत्तेजना फैली हुई थी। हिन्दुओं ने मुसलमानों की इन भावनाओं के साथ पूरी सहानुभूति प्रकट की। १९१९ के अप्रैल मास से भारतीय इतिहास का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

आन्दोलन की तीव्रता

भारतवर्ष के कष्ट-सहन और संघर्ष का दृश्य अब पंजाब में दिखाई देने लगा जो कि विदेशी उद्योग-धन्धे और व्यापारिक आक्रमण के लिए भारत का द्वार बना हुआ था। पंजाब सिक्खों तथा भारत की अन्य सैनिक जातियों का निवास-स्थान भी था। इसलिए पंजाब का निरंकुश शासक सर माइकेल ओडायर इस बात पर तुला हुआ था कि वह अपने प्रान्त में कांग्रेस-आन्दोलन की छूत की बीमारी को न फैलने दे। और वास्तव में कांग्रेस और उसमें इस बात पर रस्साकशी थी कि आया १९१९ में अमृतसर में होनेवाली कांग्रेस पंजाब में हो या नहीं। १० अप्रैल १९१९ के दिन प्रातःकाल ही अमृतसर के जिला-मजिस्ट्रेट ने डाक्टर किचलू और डाक्टर सत्यपाल को, जो कांग्रेस का संगठन कर रहे थे, अपने बंगले पर बुला भेजा और वहां से चुपचाप किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया। इस घटना से एक

सनसनी फैल गई। खबर फौरन ही दूर-दूर तक पहुंच गई। लोगों का एक झुण्ड जिला-मजिस्ट्रेट के यहां उनका पता पूछने के लिए चला, परन्तु उस चौराहे पर, जो शहर से सिविल-लाइन की ओर जाते हुए सिविल-लाइन और शहर के बीच में है, फौजी सिपाहियों ने भीड़ को रोक लिया। और, अब वह ईंटों के फेंकने की कहानी आती है, जो सरकार की मदद के लिए हर वक्त तैयार रहती है। भीड़ पर गोली चलाई गई, जिसके फल-स्वरूप एक या दो की मृत्यु के साथ-साथ अनेक लोग घायल हुए। लोगों की भीड़ अब शहर को वापस लौटी और मरे हुए और घायलों का शहर में होकर जलूस निकला। रास्ते में नेशनल-बैंक की इमारत में आग लगा दी गई और उसके यूरोपियन मैनेजर को मार डाला गया। स्वभावत: अधिकारी इन घटनाओं से आगबबूला हो गये। स्थानीय अधिकारियों ने अपने ही आप १० अप्रैल को शहर फौज के अधिकार में दे दिया।

गुजरानवाला और कसूर में बहुत अधिक खून-खराबी हुई। कसूर में तो १२ अप्रैल को भीड़ ने रेलवे-स्टेशन को बहुत नुक़सान पहुँचाया। गुजरानवाले में १४ अप्रैल को भीड़ ने एक ट्रेन को घेर लिया और उस पर पत्थर बरसाये। लाहौर में भी लूटमार हुई और गोली चली। कलकत्ते-जैसे सुदूर स्थान से भी बुरे समाचार प्राप्त हुए। पंजाब को दुर्घटनाओं की बात सुनकर तथा स्वामी श्रद्धानन्द और डा० सत्यपाल के बुलाने पर गांधीजी ८ अप्रैल को दिल्ली के लिए रवाना हुए। रास्ते में ही उन्हें हुक्म मिला कि पंजाब और दिल्ली के भीतर प्रवेश न करो। उन्होंने इस हुक्म को मानने से इन्कार कर दिया। इस पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और दिल्ली से कुछ दूर पलवल नामक स्टेशन से एक स्पेशल ट्रेन में उन्हें बिठा कर १० अप्रैल को बम्बई भेज दिया गया।

गांधीजी की गिरफ्तारी के समाचार से अहमदाबाद में कई उपद्रव हो गये, जिनमें कुछ अंग्रेज और कुछ हिन्दुस्तानी अफसर जान से मारे गये। १२ अप्रैल को वीरमगांव और नड़ियाद में भी कुछ उत्पात हुए। कलकत्ते में भी उपद्रव हुआ। वहां गोली चली जिससे ५ या ६ आदमी जान से मारे गये और १२ बुरी तरह घायल हुए। बम्बई पहुंचकर गांधीजी ने स्थिति को शान्त करने में मदद की और फिर वहां से वह अहमदाबाद गये। उनकी उपस्थिति ने शान्ति स्थापित करने में बहुत काम किया। इन उपद्रवों के कारण उन्होंने सत्याग्रह को स्थगित कर दिया और उसके सम्बन्ध में एक वक्तव्य निकाला।

एक ओर यह स्थिति थी, दूसरी ओर अमृतसर में दुर्घटनाएँ विकट रूप धारण करती जा रही थीं। यह स्मरण रखना चाहिए कि १३ अप्रैल तक फौजी-क़ानून जारी करने की कोई घोषणा नहीं की गई थी। वैसे सरकार यह बात स्वीकार करती है कि १० अप्रैल से ही व्यावहारिक रूप में फौजी-कानून जारी था। सच पूछिए तो लाहौर और अमृतसर में १५ अप्रैल को ही फौजी कानून जारी करने की

घोषणा की गई थी। इसके बाद ही पंजाब के दो-तीन जिलों में वह और जारी कर दिया गया था।

जलियांवाला-हत्याकांड

१३ अप्रैल को, अमृतसर में एक सार्वजनिक सभा करने की घोषणा की गई और जलियांवालाबाग में एक बड़ी भारी सभा हुई। यह खुला हुआ स्थान शहर के मध्य में है। शहर के मकान ही इसकी चहारदीवारी बनाये हुए हैं। इसका दरवाजा बहुत ही संकरा है, इतना कि एक गाड़ी उसमें होकर नहीं निकल सकती। बाग में जब बीस हजार आदमी इकट्ठे हो गये, जिनमें पुरुष, स्त्रियां और बच्चे भी थे, जनरल डायर ने उसमें प्रवेश किया। उसके पीछे सशस्त्र सौ हिन्दुस्तानी सिपाही और पचास गोरे सैनिक थे। जिस समय ये लोग घुसे उस समय हंसराज नाम का एक व्यक्ति व्याख्यान दे रहा था। इसी समय जनरल डायर ने घुसते ही गोली चलाने का हुक्म दे दिया। गोली तब तक चलती रही जब तक कि सारे कारतूस खतम नहीं हो गये। कुल सोलह सौ फैर किये गये थे। सरकार के स्वयं अपने बयान के मुताबिक चार सौ मरे और घायलों की संख्या एक और दो हजार के बीच थी। गोली हिन्दुस्तानी फौजों से चलवाई गई थी, जिनके पीछे गोरे सिपाहियों को लगा दिया गया था। ये सब-के-सब बाग में एक ऊंचे स्थान पर खड़े हुए थे। सबसे बड़ी दुःखद बात यह थी कि गोली चलाने के बाद मृतकों और उन लोगों को जो सख्त घायल हो गये थे, सारी रात वहीं पड़ा रहने दिया गया। वहां उन्हें रात भर न तो पानी ही पीने को मिला और न डाक्टरी या कोई अन्य सहायता ही मिली।

जनरल डायर के राज्य में कुछ ऐसी भी सजायें देखने को मिलीं जिनका स्वप्न में भी खयाल नहीं हो सकता था। उदाहरण के लिए अमृतसर में नलों में पानी बन्द कर दिया गया था, और बिजली का सिलसिला काट दिया गया था। सबके सामने बेंत लगाना आम तौर पर चालू था। लेकिन 'पेट के बल रेंगने के हुक्म' ने इन सब को मात कर दिया था। रेलवे-स्टेशनों पर तीसरे दर्जे का टिकट बेचने की मनाही कर दी गई थी। इससे लोगों का सफर करना आमतौर पर बन्द हो गया था। दो आदमियों से अधिक एक-साथ पटरियों पर नहीं चल सकते थे। साइकिलें सब-की-सब फौज ने अपने कब्जे में ले ली थीं। जिन लोगों ने अपनी दूकानें बन्द कर दी थीं उन्हें खोलने के लिए बाध्य किया गया था। न खोलनेवाले के लिए कठोर दण्ड की आज्ञा थी। किले के नीचे नंगा करके सबके सामने बेंत लगवाने के लिए एक चबूतरा बनवाया गया था और शहर के अनेक भागों में बेंत लगवाने के लिए टिकटियां लगवा दी गई थीं।

अमृतसर में खास अदालत द्वारा जिन मुकदमों का फैसला किया गया था,

उनके अनुसार संगीन जुर्मों के अभियोग में २९८ आदमियों पर मार्शल-ला-कमीशन के सामने मुकदमे चले। मुकदमा चलाने में कानून, सफाई तथा जाब्ते के साधारण नियमों के पालन करने का भी कोई ध्यान नहीं रक्खा गया। इनमें से २१८ आदमियों को सजायें दी गई। ५१ को फांसी की सजा; ४६ को आजन्म कालापानी, २ को १०-१० बरस की सजा, ७९ को ७-७ बरस की सजा, १० को ५-५ की, १३ को ३-३ की और ११ को बहुत थोड़ी मियाद की सजायें दी गई। इसमें वे मुकदमे शामिल नहीं हैं जिनका फैसला सरसरी में फौजी अफसरों ने किया था। इनकी संख्या ६० थी, जिनमें से ५० को सजा हुई थी, और १० आदमियों को मार्शल-ला के अनुसार मुल्की मजिस्ट्रेटों ने सजा दी थी।

हन्टर-कमिटी के सदस्य जस्टिस रैंकिन के प्रश्न के उत्तर में जनरल डायर ने जो उत्तर दिया था उसे भी हम यहां देते हैं:—

जस्टिस रैंकिन—जनरल, मुझे इस प्रकार प्रश्न करने के लिए जरा क्षमा कीजिए कि, आपने जो कुछ किया वह क्या एक प्रकार का भय-प्रदर्शन नहीं था?

जनरल डायर—नहीं, वह भय-प्रदर्शन नहीं था। वह एक भयानक कर्तव्य था, जिसका मुझे पालन करना पड़ा। मेरा खयाल है, वह एक दयापूर्ण कार्य था। मैंने सोचा कि मैं खूब अच्छी तरह गोली चलाऊं और इतने जोर के साथ चलाऊं कि मुझे या अन्य किसी को फिर कभी गोली न चलानी पड़े। मेरा खयाल है कि बिना गोली चलाये हुए भी मैं भीड़ को तितर-बितर कर सकता था। लेकिन लोग फिर वापस आ जाते, मेरी हंसी उड़ाते और मैं बेवकूफ बना होता।

उपर्युक्त बातें वे हैं जिन्हें हन्टर कमीशन के सामने १९२० के आरम्भ में जनरल डायर ने स्वयं स्वीकार किया था। अमृतसर की दुर्घटना के बाद, पंजाब से आने और जाने वाले लोगों पर इतनी कड़ी निगरानी थी कि दुर्घटना का विस्तार-पूर्वक समाचार कांग्रेस-कमिटी को भी जुलाई १९१९ से पहले नहीं ज्ञात हो सका और मालूम भी हुआ तो खुल्लमखुल्ला नहीं। कलकत्ते के लॉ-एसोसियेशन के भवन में जब कांग्रेस-कमिटी की बैठक हो रही थी, तब यह समाचार कानों-कान डरते-डरते कहा गया, फिर भी यह सावधानी रखी गई कि यह समाचार औरों से न कहा जाय। पंजाब की दुर्घटना अमृतसर तक ही सीमित न रही, बल्कि लाहौर, गुजरानवाला और कसूर आदि स्थानों को भी अत्याचार और वर्बरतापूर्ण कृत्यों का शिकार होना पड़ा।

सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, अन्य स्थानों की अपेक्षा, लाहौर में फौजी-कानून का बहुत जोर था। करफ्यू-आर्डर तो तुरन्त ही जारी कर दिया गया था। यदि कोई व्यक्ति शाम के ८ बजे के बाद बाहर निकलता तो वह गोली से मार दिया जा सकता था, बेंत लगाये जा सकते थे, जुर्माना हो सकता था, कैद हो सकती थी, या और कोई दण्ड दिया जा सकता था। जिनकी दुकानें बन्द थीं उन्हें खोलने की

आज्ञा दे दी गई थी। जो न खोले उसे या तो गोली से उड़ाया जा सकता था या उसकी दुकान खोलकर सारा सामान लोगों में मुफ्त बांट दिया जा सकता था। वकील तथा दलालों को यह आज्ञा दे दी गई थी कि वे शहर से बाहर कहीं न जायँ। जिनके मकानों की दीवारों पर फौजी कानून के नोटिस चिपकाये गये थे उन्हें यह हुक्म दे दिया गया था कि वे उनकी हिफाजत करें और यदि किसी ने उन्हें बिगाड़ दिया या फाड़ दिया तो वे सजा के मुस्तहक होंगे, हालांकि रात्रि के समय उन्हें बाहर रहने की इजाजत नहीं थी। भारतीयों की मोटर-साइकिलों तथा मोटरों को फौज में जमा कर देने का हुक्म जारी कर दिया गया था। इतना ही नहीं, अधिकारियों को वे इस्तेमाल के लिए दे दी गई थीं। तांगेवालों ने भी हड़ताल में भाग लिया था। इन लोगों को सबक सिखाने के लिए ३०० तांगे जमा कर लिये गये थे, और यह हुक्म दे दिया गया था कि वे नगर को घनी आबादी से बाहर, नियत समय और जगहों पर, अपनी हाजिरी दिया करें। १६ से २० वर्ष की उम्र के लड़कों तथा विद्यार्थियों पर विशेष रूप से कड़ी नजर थी। लाहौर जैसे शहर में, जहाँ कई कॉलेज हैं, विद्यार्थियों को दिन में चार बार हाजिरी देने का हुक्म था। जहाँ जहाँ हाजिरी ली जाती थी उनमें से एक हाजिरी का स्थान कॉलेज से ४ मील की दूरी पर था। अप्रैल मास की कड़ी धूप में, जोकि पंजाब में वर्ष का सबसे अधिक गर्म महीना होता है और जबकि गर्मी १०८ डिग्री से ऊपर होती है, इन नौजवानों को रोजाना १६ मील पैदल चलना पड़ता था। इनमें से कुछ तो रास्ते में बेहोश होकर गिर भी जाते थे। इतना होने पर भी कर्नल जॉनसन, बहुत ही प्रसन्न थे। लाहौर के यूरोपियनों ने तो उन्हें बिदाई देते समय एक दावत दी थी और "गरीबों का रक्षक" की उपाधि से अलंकृत करके उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। गुजरानवाला में कर्नल ओब्रायन ने, कसूर में कैप्टिन डोवटन ने और शेखूपुरा में मिस्टर बॉसवर्थ स्मिथ ने खास तौर पर अत्याचार करने में खूब ही नाम कमाया था। कर्नल ओब्रायन ने कमिटी के सामने अपनी गवाही में कहा था कि भीड़ जहां कहीं पाई गई वहीं उस पर गोली चला दी गई। यह बात उन्होंने हवाई जहाजों के सम्बन्ध में कही थी। एक बार एक हवाई जहाज ने, जो कि लेफ्टिनेण्ट डॉडकिन्स के चार्ज में था, एक खेत में २० किसानों को एकत्र देखा। उन्होंने उन पर मशीनगन से तब तक गोली चलाई जब तक कि वे भाग नहीं गये। उन्होंने एक मकान के सामने आदमियों के एक झुण्ड को देखा। वहां एक आदमी व्याख्यान दे रहा था। इसलिए वहां उन्होंने उन पर एक बम गिरा दिया; क्योंकि उनके दिल में इस तरह का कोई शक नहीं था कि वे लोग किसी शादी या मुर्दनी के लिए एकत्र नहीं हुए थे। मेजर कार्बी वह सज्जन हैं जिन्होंने लोगों के एक दल पर इसलिए बम बरसाये कि वे बलवाई हैं, जो शहर से आ-जा रहे हैं। उन्हीं के शब्दों में सुनिए:—

"लोगों की भीड़ दौड़ी जा रही थी और मैंने उनको तितर-बितर करने के लिए

गोली चला दी। ज्योंही भीड़ तितर-बितर हो गई, मैंने गांव पर भी मशीनगन लगा दी। मेरा ख्याल है कि कुछ मकानों मे गोलियां लगी थीं। मैं निर्दोष और अपराधी में कोई पहचान नहीं कर सकता था। मैं दो सौ फीट की ऊँचाई पर था और यह भले प्रकार देख सकता था कि मैं क्या कर रहा हूं। मेरे उद्देश्य की पूर्ति केवल बम बरसाने से नहीं हुई। गोली केवल नुकसान पहुंचाने के लिए ही नहीं चलाई गई थी, वह स्वयं गांववालों के हित के लिए चलाई गई थी। कुछ को मार कर मैं समझता था, मैं गांववालों को फिर एकत्र होने से रोक दूंगा। मेरे इस कार्य का असर भी पड़ा था। इसके बाद शहर की तरफ मुड़ा। वहां बम बरसाये और उन लोगों पर गोलियां चलाईं जो भाग जाने की कोशिश कर रहे थे।"

कर्नल ओब्रायन ने एक यह हुक्म जारी किया था कि जब कोई हिन्दुस्तानी किसी अंग्रेज अफसर से मिले तो वह उसको सलाम करे, अगर सवारी में जा रहा हो या घोड़े पर सवार हो तो उतर जाय, अगर छाता लगाये हुए हो तो उसे नीचे झुका दे। कर्नल ओब्रायन ने कमिटी के सामने कहा था कि "यह हुक्म इसलिए अच्छा था कि लोगों को यह मालूम हो जाय कि उनके नये मालिक आये हैं।" लोगों के कोड़े लगवाये गये, जुर्माना किया गया और पूर्वोक्त राक्षसी हुक्म न मानने पर अन्य अनेक प्रकार की सजायें दी गईं।

कैप्टिन डोवटन कसूर के इलाके में एक प्रकार से सर्व-सर्वा ही थे। इस स्थान पर लोगों को खुलेआम फांसी देने के लिए एक फाँसी-घर बनाया गया था। यह स्थान वहां निवासियों के लिए, एक आतंक-गृह हो गया था। रेलवे-स्टेशन के पास एक बड़ा पिंजड़ा बनवाया गया था, जिसमें १५० आदमी रखे जा सकते थे। जिन पर संदेह होता था उन्हें इसमें बन्द कर दिया जाता था, ताकि आम जनता उन्हें देख सके। सनाख्त करने के लिए नगर के सारे पुरुष-निवासियों की परेड कराई जाती थी।

मि० बॉसवर्थ स्मिथ एक सिविलियन अफसर थे जिन्होंने शेखूपुर में फौजी कानून का दौर-दौरा किया था। उन्होंने अपने बयान में इस बात को स्वीकार किया था कि फौजी-कानून 'आवश्यक तो न था, परन्तु मेरी राय में वह वांछनीय अवश्य था।' उन्होंने अपने हलके के सारे मुकदमों का फैसला किया था और जैसा कि अन्य स्थानों में हुआ था, उनके यहां भी बेंत की सजायें दी जाती थीं और अदालत उठते ही अपराधियों के बेंत लगवा दिये जाते थे। ६ मई से २० मई तक उन्होंने ४७७ आदमियों के मुकदमे किये थे।

फौजी-अधिकारियों ने एक हुक्म जारी किया था, जिसके अनुसार स्कूल के लड़के बाध्य थे कि वे दिन में तीन बार परेड करें और झण्डे को सलामी दें। यह हुक्म स्कूल की छोटी जमातों के बच्चों के लिए भी लागू था, जिनमें ५ और ६ बरस तक के बच्चे भी शामिल थे। कितने ही बच्चे लू लगने से मर गये। कुछ

मौकों पर लड़कों से यह कहलाया जाता था, "मैंने कोई अपराध नहीं किया है, मैं कोई अपराध नहीं करूंगा, मुझे अफसोस है, मुझे अफसोस है, मुझे अफसोस है !"

दुर्घटनाओं के बाद

घटनाओं के ऐसा अकल्पित रुप धारण कर लेने से गांधीजी के हृदय को बहुत बड़ा धक्का लगा। उन्होंने इस बात को स्वीकार किया कि मैंने महान् भूल की है। अतः उन्होंने एक ओर तो सत्याग्रह को स्थगित कर दिया और दूसरो ओर यह घोषणा की कि मैं शान्ति स्थापित करने में हर प्रकार से सहायता करने को तैयार हूं। लॉर्ड चेम्सफ़ार्ड ने १४ अप्रैल १९१९ को एक हुक्म निकाला, जिसमें स्पष्ट शब्दों में सरकार की यह इच्छा घोषित की गई कि वह उत्पातों का शीघ्र ही अन्त कर देने के लिए जितनी शक्ति उसके पास है सबको लगा देगी। इसी बीच तीसरे अफगान-युद्ध ने पञ्जाब की स्थिति को और भी पेचीदा बना दिया। ४ मई को सारी फौज युद्ध के लिए तैयार कर ली गई। इधर फौजी-कानून अपने खूनी कारनामों को ११ जून तक बराबर चलाता रहा। फौजी-कानून को आवश्यक रूप से एक मुद्दत तक जारी रखने के विरोध में सर शंकरन् नायर ने १९ जुलाई को वाइसराय की कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया। इस सारे समय में पञ्जाब पर एक कठोर सेंसर बिठा दिया गया। एण्डरूज साहब को पञ्जाब की भूमि पर कदम रखने को मनाही करदी गई। बाद में उन्हें गिरफ्तार करके अमृतसर भेज दिया गया। यह मई मास के प्रारम्भ की बात है। मिस्टर ई० नार्टन बैरिस्टर को जो कि पञ्जाब इसलिए जाना चाहते थे कि वहां कैदियों की पैरवी करें, पञ्जाब में घुसने को मनाही कर दी गई। चारों ओर से पञ्जाब में हुए अत्याचारों की जांच के लिए एक कमीशन बैठाने की पुकार मच रही थी। खास फौजी-अदालतों-द्वारा लोगों को जो घातक और जङ्गली सजायें दी गई थीं उन्हें भी कम करने के लिए एक देश-व्यापी मांग थी। लाला हरकिशनलाल को, जो एक प्रतिष्ठित कांग्रेसी और बहुत बड़े धनिक व्यक्ति थे, आजन्म कालेपानी की सजा दी गई थी। लगभग ४० लाख रुपये की उनकी सम्पत्ति भी जब्त करने का हुक्म दिया गया था।

सितम्बर १९१९ में वाइसराय ने इस उद्देश्य से हन्टर-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की, कि वह पञ्जाब के उपद्रवों की जांच करेगा। परन्तु इसके साथ ही, १८ सितम्बर को, इनडेम्निटी-बिल आया, जो आम तौर पर फौजी-कानून के साथ आया करता है। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने इसे मुल्तवी कराने के लिए बहुत जोर लगाया, परन्तु इसका फल कुछ भी नहीं हुआ।

२० और २१ अप्रैल को महासमिति की बैठक हुई। उसमें सरकार ने गांधीजी को दिल्ली और पञ्जाब से देश-निकाले का जो हुक्म दिया था उसका विरोध

किया गया और पञ्जाब में किये गये अत्याचारों की जांच करने पर जोर दिया गया। देश में जो गम्भीर राजनैतिक परिस्थिति पैदा हो गई थी उसको मद्देनजर रखते हुए श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर का एक शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड भेजने का भी निश्चय हुआ। ये लोग २९ अप्रैल १९१९ को इंग्लैण्ड के लिए रवाना हो गये। ८ जून को महासमिति की दूसरी बैठक इलाहाबाद में हुई। इधर गवर्नर-जनरल ने २१ अप्रैल को ही एक आर्डिनेन्स जारी कर दिया था, जिसमें पञ्जाब की सरकार को यह अधिकार दे दिया था कि ३० मार्च तक जितने जुर्म हुए हों उनका मुकदमा वह खास फौजी अदालत-द्वारा करा सके। गिरफ्तार शुदा लोगों को अपना इच्छानुसार वकील चुनने की इजाजत नहीं थी। देश के सारे प्रमुख-पत्रों के सम्पादकों, श्रीमती बेसेण्ट और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने एण्डरूज साहब से अनुरोध किया कि वह पञ्जाब जाकर दुर्घटना और उपद्रव के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से जांच करें। पर वहां वह गिरफ्तार कर लिये गये। ८ जून की बैठक में यह बात सुझाई गई कि तहकीकात के लिए जो कमिटी नियत हो वह पञ्जाब जाकर इस बात की भी जांच करे कि सर माइकेल ओडायर के शासन में फौज के लिए रंगरूट भरती करने में किन हथकण्डों और ढंगों को काम में लाया गया था, किस प्रकार 'लेबर कोर' में आदमियों को भरती किया गया था, किस प्रकार लड़ाई के लिए कर्ज लिया गया था और फौजी-कानूनों द्वारा किस प्रकार शासन किया गया था। मि० हार्निमैन को इसलिए देश-निकाला कर दिया गया था, कि उन्होंने 'बाम्बे क्रानिकल' में सरकार की पंजाब-सम्बन्धी नीति की कड़े शब्दों में निन्दा की थी। महासमिति ने इस सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया कि सरकार हार्निमैन साहब को दिये गये देश-निकाले के हुक्म को मंसूख कर दे।

महासमिति ने एक कमिटी इसलिए नियुक्त की कि वह पंजाब की दुर्घटनाओं की जांच करे, इस सम्बन्ध में इंग्लैण्ड तथा दोनों स्थानों में आवश्यक कानूनी कार्रवाई करे और इस कार्य के लिए धन एकत्र करे। इस कमिटी में बाद को, यानी १६ अक्तूबर को गांधीजी, एण्डरूज, स्वामी श्रद्धानन्द तथा अन्य लोगों को भी शामिल कर लिया गया। नवम्बर के प्रारम्भ में मि० एण्डरूज दक्षिण-अफ्रीका चले गये। उन्होंने गवाहियों के रूप में जितनी सामग्री एकत्र की थी वह सब कांग्रेस-कमिटी को देते गये। १९ और २० जुलाई को कलकत्ते में महासमिति की फिर बैठक हुई, जिसमें विचारणीय मुख्य बात यह थी कि कांग्रेस का आगामी अधिवेशन कहां किया जाय। अन्त में उसे अमृतसर में ही करने का निश्चय हुआ। एक प्रस्ताव द्वारा उस मांग को फिर दोहराया गया जिसमें सम्राट की सरकार-द्वारा जांच करने के लिए एक समिति नियुक्त करने की प्रार्थना की गई। १० हजार रुपये की एक रकम पञ्जाब समिति के लिए जमा की गई। २१ जुलाई को गांधीजी का वक्तव्य

प्रकाशित हुआ, जिसमें सत्याग्रह को कुछ समय के लिए स्थगित करने का जिक्र था। वह इस प्रकार है:—

गांधीजी का वक्तव्य

"बम्बई के गवर्नर-द्वारा भारत-सरकार ने मुझे एक बहुत ही गम्भीर चेतावनी दी है, कि सत्याग्रह के फिर से आरम्भ करने से जनता के लिए बहुत ही बुरा परिणाम निकल सकता है। बम्बई के गवर्नर ने जब मुझे मिलने के लिए बुलाया था, तब यह चेतावनी उन्होंने और भी जोर के साथ दोहराई थी। इन चेतावनियों को ध्यान में रखकर, मैंने बहुत सोच-विचार करने के बाद यह निश्चय किया है कि फिलहाल सत्याग्रह आरम्भ न करूँ। मैं यहां इतना और बता देना चाहता हूं कि उन कुछ मित्रों ने भी, जो गरम-दल के माने जाते हैं, मुझे यही सलाह दी है। उनका कहना सिर्फ इतना हो था कि इससे सम्भव है वे लोग, जिन्होंने सत्याग्रह के सिद्धान्त को भले प्रकार नहीं समझा है, फिर मार-काट कर बैठें। जब दूसरे सत्याग्रहियों के साथ मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि सविनय-भंग के रूप में सत्याग्रह शुरू कर दिया जाय, तब मैंने वाइसराय को एक पत्र भेजकर उन पर अपना यह इरादा प्रकट कर दिया था और उनसे यह अनुरोध किया था कि वे रौलट बिल को वापस ले लें और एक जोरदार तथा निष्पक्ष कमिटी शीघ्र नियुक्त करने की घोषणा करें जिसे यह भी अधिकार रहे कि पञ्जाब की दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में दी गई सजाओं की फिर से निगरानी कर सके। मुझे इस बात का विश्वास दिलाया गया है कि जिस जांच-कमिटी के लिए मैंने जोर दिया था वह नियुक्त की जा रही है। सद्‌भावना के इन प्रमाणों के मिलते हुए मेरी ओर से यह बड़ी ही नासमझी होगी, यदि मैं सरकार की चेतावनी पर ध्यान न दूं। वास्तव में मेरा सरकार की सलाह मान लेना लोगों को सत्याग्रह का पाठ पढ़ाना है। एक सत्याग्रही कभी सरकार को विषम स्थिति में डालना नहीं चाहता। मैं अनुभव करता हूं कि मैं देश की, सरकार की और उन पञ्जाबी नेताओं की, जिन्हें कि मेरी राय में अन्यायपूर्वक सजा दी गई है, और वह भी बड़ी हो निर्दयतापूर्वक, और भी अधिक सेवा करूँगा, यदि मैं इस समय सत्याग्रह को स्थगित कर दूं। मेरे ऊपर यह इल्जाम लगाया गया है कि आग तो मैंने ही लगाई थी। मेरा कभी-कभी सत्याग्रह करना यदि आग लगाना है, तो रौलट-कानून और उसे कानून की किताब में ज्यों-का-त्यों बनाये रखने का हठ देश के हजार स्थानों में आग लगाना है। सत्याग्रह फिर से न होने देने का एक-मात्र उपाय यही है कि उस कानून को वापस ले लिया जाय।"

शिष्ट मंडल का कार्य

गांधीजी ने जिस समय यह वक्तव्य दिया उस समय इंग्लैण्ड में लॉर्ड सेलबार्न की अध्यक्षता में संयुक्त पार्लमेण्टरी कमिटी की बैठक हो रही थी। ऐसे अवसर पर

कांग्रेसी शिष्ट-मंडल वहाँ पहुंचा। उसके सामने श्री विट्ठलभाई पटेल और वी० पी० माधवराव ने बड़ी योग्यता से भारतवर्ष का पक्ष उपस्थित किया। उनके साथ लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे, डाक्टर प्राणजीवन मेहता, ए० रङ्गस्वामी आयंगर, नृसिंह चिन्तामणि केलकर, सय्यद हसनइमाम, डा० साठये, मि० हार्निमैन आदि भी थे। श्री वी० पी० माधवराव मैसूर-राज्य के भूतपूर्व दीवान थे। उनकी शिष्टता और सौजन्य तथा स्पष्टवादिता और स्वतन्त्रता-प्रिय स्वभाव ने कांग्रेस को इंग्लैण्ड की जनता की नजरों में बहुत ही ऊंचा उठा दिया और मि० बेन स्पूर (एम० पी०) जैसों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

श्री विट्ठलभाई पटेल और कांग्रेसी शिष्ट-मण्डल का लन्दन में दुहरा मुकाबला था। एक ओर तो उसे कांग्रेस की ब्रिटिश-कमिटी से उलझना था, दूसरी ओर श्रीमती बेसेण्ट से जो अपनी अथक शक्ति के साथ कांग्रेस का विरोध कर रही थीं। कांग्रेसी शिष्ट-मण्डल आत्म-निर्णय और पूर्ण उत्तरदायी शासन की मांग के साथ दिल्लीवाले प्रस्ताव पर जोर दे रहा था। २५ अक्तूबर १९१९ को अलबर्ट-हाल में जो सभा हुई, उसमें दोनों दलों के मतभेद इतने खुले तौर पर सामने आये कि सभापति मि० लान्सबरी बड़ी दुविधा में पड़ गये। यह सभा भारतीय होमरूल-लीग की लन्दन-शाखा की ओर से की गई थी, जिसकी स्थापना श्रीमती बेसेण्ट ने की थी। अन्त में एक ऐसा प्रस्ताव पास हुआ, जिस पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती थी। प्रस्ताव में कहा गया कि 'ब्रिटिश राष्ट्र समूह की यह विशाल सभा जो इस बात पर जोर देती है कि राष्ट्र-समूह के अन्तर्गत सब राष्ट्रों को स्व-शासन का अधिकार मिलना चाहिए, इस बात का ऐलान करती है कि भारतीय जनता भी शीघ्र-से-शीघ्र आत्म-निर्णय का सम्पूर्ण स्वत्व पाने की हकदार है।' मि० लान्सबरी इस सभा के चुने हुए सभापति थे। उनके बीच में पड़ने से ही प्रस्ताव को यह रूप प्राप्त हुआ, नहीं तो पहले जो मसविदा बनाया गया था उसमें तो मि० मांटेगु के बिल का समर्थन किया गया था। लेकिन इतने पर भी श्रीमती बेसेण्ट ने स्पष्ट रूप से मि० मांटेगु के बिल का समर्थन किया, जिस पर श्री विट्ठलभाई पटेल को उनका प्रतिवाद करना पड़ा।

जांच-समिति की नियुक्ति

महासमिति के प्रस्तावानुसार, जून के अन्तिम सप्ताह में स्वामी श्रद्धानन्द, पं० मोतीलाल नेहरू और मदनमोहन मालवीय पंजाब में हुई दुर्घटनाओं की जांच के लिए पंजाब गये। कुछ ही समय बाद दीनबन्धु एण्डरूज भी वहां पहुँच गये। इसके बाद पं० मोतीलाल और मालवीयजी लौट आये, लेकिन मोतीलालजी दुबारा फिर वहां गये। पं० जवाहरलाल नेहरू और पुरुषोत्तमदास टण्डन एण्डरूज

साहब के साथ हुए। गांधीजी भी, जैसे ही उन पर से प्रवेश-निषेध का हुक्म उठाया गया, १७ अक्तूबर को सबके साथ जा मिले। पंजाब के लोग भयभीत हो रहे थे, लेकिन ज्यों ही गांधीजी उनके पास पहुंचे त्यों ही उनमें फिर से आत्म-विश्वास आ गया। लाहौर और अमृतसर में, दोनों जगह, उनके आगमन को विजय से कम नहीं समझा गया। इसी बीच सरकारी जांच की घोषणा हुई। जिन बातों की जांच सरकारी जांच-कमिटी करनेवाली थी उनकी मर्यादा कांग्रेस की जांच से बहुत कम थी। फिर भी सरकारी कमिटी से सहयोग करना ठीक समझा गया। चित्तरंजन दास तुरन्त कलकत्ता से पंजाब आये और कांग्रेस की ओर से हण्टर-कमीशन के सामने हाजिर हुए। लेकिन कांग्रेस-उप-समिति को ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिनकी पहले कल्पना भी न थी, इसलिए दुर्घटनाओं की जांच करने वाली कमिटी (हंटर-कमिटी) से उसको अपना सहयोग हटा लेना पड़ा। कांग्रेस उप-समिति चाहती थी कि मार्शल लॉ के कुछ कैदियों को पहरे के अन्दर जांच के समय हाजिर रहने तथा जांच में मदद करने के लिए बुलाया जाय, लेकिन इस बात की इजाजत नहीं दी गई। उप-समिति ने इस पर पंजाब-सरकार के खिलाफ भारत-सरकार और भारत-मन्त्री से अपील की, लेकिन उन्होंने हस्तक्षेप करने से इन्कार किया। ऐसी हालत में उन लोगों ने भी, जो कि फौजी-कानून के मातहत जेलों में थे, सहयोग न करने के निश्चय की ही ताईद की——और बाद के अनुभव ने भी इस निश्चय को उचित ही सिद्ध किया। अतएव कांग्रेस ने एक समिति द्वारा अपनी जांच अलग शुरू की। गांधीजी, मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास, फजलुल हक और अब्बास तैयबजी इस कमिटी के सदस्य थे और के० सन्तानम् मन्त्री। लेकिन इसके बाद शीघ्र ही पं० मोतीलाल नेहरू अमृतसर-कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए, इसलिए उन्होंने पद त्याग दिया और श्री मुकुन्दराव जयकर उनकी जगह सदस्य बनाये गये। लन्दन के सालिसिटर मि० नेवली भी, जिनके सुपुर्द प्रिवी-कौंसिल में की जानेवाली अपीलों का काम था, कमिटी के साथ थे। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि जलियांवाला-बाग को प्राप्त करके वहां शहीदों का एक स्मारक बनाया जाय, और इसके लिए मालवीयजी की अध्यक्षता में एक कमिटी बना दी गई।

अमृतसर-कांग्रेस : १९१९

अमृतसर-कांग्रेस में श्री चित्तरंजन दास प्रमुख रूप से सामने आये। उस अधिवेशन में उपस्थित करने के लिए प्रस्ताव का मसविदा दास बाबू बना कर लाये थे और संशोधन के बाद विषय-समिति ने उसे मंजूर किया था। वह इस प्रकार है—

"(क) यह कांग्रेस अपने पिछले वर्ष की इस घोषणा को दोहराती है कि

भारतवर्ष उत्तरादायित्वपूर्ण शासन के योग्य है और इसके खिलाफ जो बात समझी या कही जाती है उनको यह कांग्रेस अस्वीकार करता है।

(ख) वैध सुधारों के सम्बन्ध में दिल्ली की कांग्रेस-द्वारा पास किये गये प्रस्तावों पर हो कांग्रेस दृढ़ है और इसकी राय है कि सुधार-कानून अपूर्ण, असन्तोष-जनक और निराशापूर्ण है।

(ग) आगे यह कांग्रेस अनुरोध करती है कि आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार भारतवर्ष में पूर्ण उत्तरदायी सरकार कायम करने के लिए पार्लमेंट को शीघ्र कार्रवाई करनी चाहिए।"

अमृतसर-कांग्रेस में ५० प्रस्ताव पास हुए, जिनमें लॉर्ड चेम्सफोर्ड को वापस बुलाने से लेकर कानून मालगुजारी, मजदूरों की हीनावस्था और तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के दुःखों की जांच को मांग तक के प्रस्ताव थे। इस कांग्रेस में ३६ हजार लोग आये थे, जिनमें ६ हजार मामूली प्रतिनिधि और कोई १२०० किसान-प्रतिनिधि थे। कांग्रेस के सारे वातावरण में मानो बिजली फैली हुई थी। पंजाब और उसपर हुए अत्याचारों पर स्वभावतः हो सबसे अधिक ध्यान दिया गया था। गांधीजी उत्सुक थे कि पंजाब और गुजरात में जो मारकाट लोगों की तरफ से हो गई थी उसकी निन्दा को जाय, लेकिन विषय-समिति में उनका प्रस्ताव गिर गया। गांधीजी को इससे निराशा हुई। रात बहुत हो चुकी थी। उन्होंने, यदि कांग्रेस उनके दृष्टि-बिन्दु को न अपना सके तो दृढ़ता परन्तु साथ ही शिष्टता और अदब के साथ कांग्रेस में रहने की अपनी असमर्थता प्रकट की। दूसरे हो दिन सुबह प्रस्ताव मंजूर हुआ। इस विषय पर गांधीजी ने जो व्याख्यान दिया वह अत्यन्त उच्चकोटि का और प्रभावशाली था। उन्होंने बहुत संक्षेप में अपने संग्राम की योजना और भावी नीति का दिग्दर्शन कराया था। उन्होंने कहा कि "हमारी भावी सफलता की सारी कुंजी इसी बात में है कि हम उसके मूलभूत सत्य को समझ लें, उसे हृदय से स्वीकार कर लें और उसके अनुसार आचरण भी रखें। जिस अंश तक हम उसके मूल शाश्वत सत्य को मानने में असमर्थ होंगे उसी हद तक हमारी असफलता भी निश्चत है। मैं कहता हूं कि यदि हम लोगों ने मारकाट न की होती—तो यह बखेड़ा न खड़ा होता; लेकिन उस समय सरकार भी पागल हो गई थी और हम भी पागल हो गये थे। मैं कहता हूं, पागलपन का जवाब पागलपन से मत दो, बल्कि पागलपन के मुकाबले में समझदारी से काम लो और देखो कि सारी बाजी आपके हाथ में है।" आत्मा को जगानेवाले कैसे शब्द हैं ये, जो अबतक कानों में गूंजते हैं! परन्तु प्रश्न यह है कि क्या लोगों ने उस समय उनके पूरे रहस्य को समझा होगा? उस समय तक गांधीजी सरकार से सहयोग तोड़ने के लिए न तो राजी थे और न तैयार हो थे। इसीलिए युवराज के स्वागत करने का प्रस्ताव यहां पास किया गया; गोया दिल्ली में जो बात छूट गई थी उसकी पूर्त्ति यहां की गई। यही कारण

है कि अमृतसर में सहयोग के आश्वासन वाले प्रस्ताव में जोड़ा गया टुकड़ा पास हो गया, हालांकि समझौते के कारण वह बहुत-कुछ कमजोर हो गया था।

पंजाब में किये गये अत्याचारों के प्रश्न पर विचार करते हुए कांग्रेस ने उस हर्जाना लेने की व्यवस्था को, जो कुछ लोगों पर कहीं-कहीं लागू की गई थी, रद्द करने की प्रार्थना की। मौलिक अधिकारों-सम्बन्धी भी एक प्रस्ताव पास हुआ, जिससे शासन-सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव का बल और बढ़ गया। इसके बाद कांग्रेस ने प्रेस-ऐक्ट और रौलट-ऐक्ट को उठा देने और सम्राट् की ओर से मुक्ति की घोषणा होने पर जो कैदी तब तक जेल में पड़े हुए थे, उनकी रिहाई के लिए जोर दिया।

:९:

असहयोग का जन्म : १९२०

खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय

१९२० का आरम्भ भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में दलबन्दियों से हुआ। उदार अर्थात् नरम दल वाले कांग्रेस से अलग हो गये थे और १९१९ के दिसम्बर में कलकत्ते में एकत्र हुए थे। बाकी बचे कांग्रेसियों में भी फूट के लक्षण दिखाई पड़ रहे थे। अमृतसर में मुख्य प्रश्न था, असहयोग या अड़ंगा। नये साल का आरम्भ होने के कुछ महीने बाद अमृतसर में बने दलों की स्थिति उलट गई। गांधीजी ने असहयोग का बीड़ा उठा लिया था और जो लोग अमृतसर में उनके सहयोग के विरुद्ध थे वे अब एक बार फिर उनके खिलाफ एकत्र हो गये थे। बात यह थी कि पंजाब के अत्याचार और खिलाफत के प्रश्न पर जनता में खलबली बढ़ रही थी। १९२० की घटना खिलाफत के महान् आन्दोलन को लेकर आरंभ हुई थी। महायुद्ध के समय प्रधान मंत्री मि० लायड जार्ज ने भारत के मुसलमानों को कुछ वचन दिये थे, जिनके कारण भारतीय मुसलमान देश के बाहर गये और अपने तुर्की सहधर्मियों से लड़े। परन्तु जब युद्ध समाप्त हो गया तब दिये गये वचनों को बुरी तरह भंग किया गया। ब्रिटिश प्रधान-मंत्री के विश्वासघात से भारत के मुसलमानों में क्रोध की लहर फैल गई। अमृतसर में प्रमुख कांग्रेसी और खिलाफती नेता एकत्र हुए और उन्होंने लायड जार्ज की करतूत से उत्पन्न हुई देश की स्थिति के सम्बन्ध में चर्चा की और अन्त में गांधीजी के नेतृत्व में खिलाफत आन्दोलन करने का निश्चय किया।

१९ जनवरी १९२० को डा० अन्सारी की अध्यक्षता में एक शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला। उसने उन्हें बताया कि तुर्की-साम्राज्य को और सुलतान को खलीफा बनाये रखना आवश्यक है। वाइसराय का उत्तर बहुत कुछ निराशाजनक था। इस पर मुसलमान नेताओं ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें

उन्होंने यह दृढ़ संकल्प प्रकट किया कि यदि संधि की शर्तें मुसलमानों के धर्म और भावों के विरुद्ध गईं तो इससे मुसलमानों की वफादारी को धक्का लगेगा।

फरवरी और मार्च के महीनों में खिलाफत का प्रश्न भारत के राजनैतिक क्षेत्र में बराबर प्रमुख स्थान पाता रहा। १९२० के मार्च में एक मुस्लिम शिष्ट-मण्डल मौलाना मुहम्मदअली के नेतृत्व में इंग्लैण्ड गया। इस शिष्ट-मण्डल से भारत-सचिव की ओर से मि० फिशर मिले। शिष्ट-मण्डल प्रधानमन्त्री से भी मिला। उसने अपने विचार शान्ति-परिषद् की बड़ी कौंसिल के आगे रखने की अनुमति चाही, पर वह न मिली।

१७ मार्च को लायड ज़ार्ज ने मुस्लिम शिष्ट-मण्डल को उत्तर दिया, जिसके दौरान में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ईसाई राष्ट्रों के साथ जिस नीति का व्यवहार किया जा रहा है, तुर्की के साथ उससे भिन्न नीति का व्यवहार नहीं किया जा सकता। परन्तु साथ ही इस बात पर जोर दिया कि वैसे तुर्की तुर्की-भूमि पर अधिकार रख सकेगा, पर जो प्रदेश तुर्की नहीं है उसपर कोई अधिकार न रख सकेगा। इसने भारत के खिलाफत-सम्बन्धी सारे प्रश्न की ही जड़ काट दी। इसलिए १९ मार्च राष्ट्रीय शोक-दिवस नियत हुआ। उस दिन उपवास, प्रार्थनाएं और हड़तालें की गईं।

गांधीजी फिर मैदान में आये। उन्होंने फिर घोषणा की कि यदि तुर्की के साथ संधि की शर्तें भारत के मुसलमानों के भावों के अनुकूल न हुईं तो मैं असहयोग-आन्दोलन शुरू करूंगा। उन्होंने अपने विचार अपने १० मार्च के घोषणा-पत्र में प्रकट कर दिये जिसमें उन्होंने कहा कि "यदि हमारी मांगें स्वीकार न हुईं तो हमें क्या करना चाहिए, इसपर विचार कर लेना आवश्यक है। एक जंगली मार्ग खुल्लम-खुल्ला या छिपे हुए युद्ध का है। इस मार्ग को छोड़िए, क्योंकि वह अव्यवहार्य है। यदि मैं सबको समझा सकूं कि यह उपाय हमेशा बुरा है, तो हमारे सब उद्देश्य शीघ्र सिद्ध हो जायं। कोई व्यक्ति या कोई राष्ट्र हिंसा के त्याग-द्वारा जो शक्ति उत्पन्न कर सकता है उसका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। अतएव हमारे लिए असहयोग ही एक-मात्र औषधि है। यदि यह सब तरह की हिंसा से मुक्त रखी जाय तो यही सबसे अच्छी और रामबाण औषधि है। यदि सहयोग-द्वारा हमारा पतन होता हो और हमारे धार्मिक भाव को आघात पहुंचता हो, तो असहयोग हमारे लिए कर्तव्य हो जाता है। इंग्लैण्ड हमसे यह आशा नहीं रख सकता कि हम उन अधिकारों का हनन चुपचाप सह लेंगे जो मुसलमानों के जीवन-मृत्यु के प्रश्न हैं। इसलिए हमें जड़ और चोटी दोनों ओर से काम आरम्भ करना चाहिए। जिन लोगों को सरकारी उपाधियां और सम्मान प्राप्त हैं उन्हें त्याग देना चाहिए। जो नीचे दर्जे की सरकारी नौकरियों पर हैं उन्हें भी नौकरियां छोड़ देनी चाहिए। असहयोग का खानगी नौकरियों से कोई वास्ता नहीं है। पर मैं उन लोगों के, जो

असहयोग की औषधि को नहीं अपनाते, सामाजिक बहिष्कार की धमकी देने की बात को पसन्द नहीं कर सकता। सत्याग्रही होकर नौकरी छोड़ देना ही जनता के भावों और असंतोष की कसौटी है। सैनिकों से सेना में काम करने से इन्कार करने को कहने का समय अभी नहीं आया है। यह उपाय अन्तिम है, पहला नहीं है। जब वाइसराय, भारत-मंत्री और प्रधान मंत्री हमें दाद न दें तब हमें इस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए। इसके अलावा सहयोग तोड़ने में एक-एक कदम बहुत समझ-बूझकर रखना होगा। हमें धीरे-धीरे बढ़ना होगा, जिससे बड़े-से-बड़े उत्तेजन पर भी हम अपना आत्म-संयम बनाये रख सकें।"

लोकमान्य तिलक के विचार

अशान्ति के इस वातावरण में २५ मार्च १९२० को पंजाब के अत्याचारों पर गैर सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उसने सर माइकेल ओडायर को ही अपने कटाक्षों का लक्ष्य बनाया। १९१९ की घटनायें ६ अप्रैल से आरम्भ हुई थीं और उनका अन्त १३ तारीख को जलियांवाला-बाग-हत्या-काण्ड के रूप में हुआ था। अतः वह सप्ताह १९२० में राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया। १४ मई १९२० को तुर्किस्तान के साथ संधि की शर्तें प्रकाशित हुईं, जिससे खिलाफत आन्दोलन ने और भी जोर पकड़ा। इसके बाद ही गांधीजी ने अपने एक संकल्प की घोषणा की। लोकमान्य तिलक ने इस आन्दोलन का समर्थन हृदय से नहीं किया, पर साथ ही इसका विरोध भी नहीं किया। इन दोनों महान् नेताओं ने अप्रैल के तीसरे हफ्ते में महत्वपूर्ण वक्तव्य प्रकाशित कराये। इसी अवसर पर गांधीजी ने होमरूल-लीग का सभापतित्व ग्रहण किया। अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा कि "मुझे आशा है कि सारे दल कांग्रेस को एक ऐसी राष्ट्रीय संस्था बनाना चाहेंगे जिसके द्वारा वे कांग्रेस की नीति निर्धारित करने के लिए राष्ट्र से अपील कर सकें। मैं लीग की नीति को ऐसी बनाना चाहता हूँ जिससे कांग्रेस दल-बन्दियों से ऊपर रह कर अपना राष्ट्रीय पद कायम रख सके। मेरा विश्वास है कि देश के राजनैतिक जीवन में कठोर सत्य और ईमानदारी का वातावरण उत्पन्न करना सम्भव है। मैं लीग से यह आशा नहीं रखता कि वह सत्याग्रह के मामले में मेरा साथ देगी, पर मैं शक्ति भर चेष्टा करूंगा कि हमारे सारे राष्ट्रीय कामों में सत्य और अहिंसा से काम लिया जाय। तब हम सरकार और उसके उपायों से न भयभीत होंगे, न उनके प्रति अविश्वास रखेंगे। फिलहाल मेरा उद्देश्य अपने काम के औचित्य या उसमें समाविष्ट नीति की सत्यता का प्रदर्शन करना नहीं है, बल्कि लीग के सदस्यों पर विश्वास करके अपने कार्यक्रम पर उनकी आलोचना-सूचनाओं को आमंत्रित करना है।"

लोकमान्य तिलक ने अपने वक्तव्य में नये सुधारों के प्रति अपनी नीति प्रकट

करते हुए कहा कि कांग्रेस-प्रजातंत्र दल में कांग्रेस के प्रति अगाध भक्ति और प्रजातंत्र के प्रति आस्था काम कर रहा है। यह दल चाहता है कि जाति या रिवाज के कारण जो नागरिक, राजनैतिक अथवा सामाजिक बंधन लगा दिये गये हैं उन्हें उठा दिया जाय। इस दल का धार्मिक सहिष्णुता और अपने लिए अपने धर्म की पवित्रता में विश्वास है और उस पवित्रता की खतरे से रक्षा करना सरकार का अधिकार और कर्तव्य है। यह दल मुसलमानों के उस दावे का समर्थन करता है जो खिलाफत-संबंधी प्रश्नों का हल इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार चाहता है। यह दल जोर के साथ प्रतिपादन करता है कि भारत प्रतिनिधि उत्तरदायी शासन के सर्वथा योग्य है और अन्तिम-निर्णय के सिद्धान्त पर भारत की जनता के लिए अपनी सरकार का ढांचा स्वयं तैयार करने का और यह निर्णय करने का कि कौन-सी शासन-प्रणाली भारत के लिए सबसे अच्छा रहेगा, पूर्ण अधिकार चाहता है। यह दल माण्टेगु-सुधार-विधान को अपर्याप्त, असन्तोष-पूर्ण और निराशाजनक समझता है और इस दोष को दूर करने की चेष्टा करने के निमित्त मजदूरदल के सदस्यों और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के अन्य भारत-हितैषियों की सहायता से शीघ्र-से-शीघ्र एक नवीन सुधार-बिल पास कराना चाहता है। जिसका उद्देश्य भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करना हो और जो सेना पर पूरा अधिकार और अर्थ-सम्बन्धी नीति में पूरी स्वतंत्रता प्रदान करे और वैधानिक-गारण्टियों-सहित अधिकारों की विस्तृत घोषणा करे।"

सत्याग्रह का निश्चय

अभी मुसलमानों का शिष्ट-मण्डल यूरोप में ही था कि तुर्किस्तान के साथ संधि की प्रस्तावित शर्तें प्रकाशित हो गईं और भारत में उनके साथ-ही साथ वाइसराय का संदेश भी प्रकाशित हुआ, जिसमें भारतीय मुसलमानों को वे शर्तें समझाई गई थीं। हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट भी इसी समय प्रकाशित हुई। बस, सारे देश में आग लग गई। खिलाफत-कमिटी की बैठक बम्बई में हुई जिसमें गांधीजी के असहयोग-कार्यक्रम पर विचार किया गया और १९२० को २८ मई को असहयोग भारतीय मुसलमानों का एकमात्र शस्त्र समझ कर अपना लिया गया। ३० मई को महासमिति की बैठक बनारस में हुई, जिसमें हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट और तुर्किस्तान के साथ संधि की शर्तों पर विचार किया गया। लम्बे-चौड़े वाद-विवाद के बाद असहयोग पर विचार करने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करने का निश्चय किया गया।

इस समय तक गांधीजी चम्पारन, खेड़ा और अहमदाबाद में सत्याग्रह करके देश को स्थायी लाभ पहुंचाने का श्रेय प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने चम्पारन में १९१७-१८ में सत्याग्रह किया और नील की खेती का अन्त करने में सफल हुए।

गांधीजी ने १९१८ में खेड़ा जिले के किसानों के कष्ट दूर करने का काम अपने हाथ में लिया। उन्होंने किसानों को सलाह दी कि जबतक समझौता न हो जाय, तबतक लगान अदा न किया जाय। अन्त में खेड़ा के किसानों को आंशिक छूट मिल गई। तीसरी घटना अहमदाबाद मिल-हड़ताल थी, जो १९१८ के मार्च में आरम्भ हुई। अन्त में मजदूरों और मालिकों के बीच एक समझौता ठहराया गया, पर इसी बीच कुछ मजदूरों ने दुर्बलता और विह्वलता का परिचय दिया और मजदूरों का संगठन टूटता-सा दिखाई देने लगा। इस नाजुक अवसर पर गांधीजी ने उपवास करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार की भीषण प्रतिज्ञा करने का गांधीजी का यह पहला अवसर था, पर इसके सिवा और कोई चारा न था। इससे संपूर्ण देश पर चिन्ता छा गई। अन्त में समझौता हो गया। इन सत्याग्रह-आन्दोलनों में सफल होने से उनके प्रति जनता का विश्वास जम गया।

कुली-प्रथा का अन्त

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में १९२० की घटनाओं का जिक्र करने से पहले हमें १९२० की १ जनवरी के उत्सव की चर्चा करनी है। इस दिन तक उपनिवेशों में शर्तबन्दी कुली-प्रथा एक शताब्दी से जारी थी। जब भारत सरकार ने और अधिक मजदूर भर्ती करने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया तब नेटाल में इस प्रथा का अन्त हो गया। मारिशस में कुली-प्रथा का अन्त स्वतः ही हो गया, क्योंकि वहां मजदूरों की और अधिक जरूरत न रही। परन्तु पृथ्वी के अन्य भागों के उपनिवेशों में शर्तबन्दी कुली-प्रथा उसी प्रकार जारी थी। गांधीजी ने उत्तर और पश्चिम भारत में कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। श्रीमती बेसेण्ट ने मद्रास में श्रीगणेश किया। १९१७ के मार्च-अप्रैल में आन्दोलन पूरे जोर पर था। गांधीजी ने ३१ मई १९१७ का दिन नियत कर दिया कि उस दिन तक यह प्रथा बन्द होनी चाहिए, नहीं तो भरती रोकने के लिए सत्याग्रह आरम्भ होगा। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने १२ अप्रैल १९१७ को घोषणा की कि भारत-रक्षा-विधान के अन्तर्गत युद्ध-कालीन कार्रवाई के रूप में मजदूरों की भरती बन्द की जाती है, पर यह स्पष्ट था कि युद्ध समाप्त होते ही वे सारे उपनिवेश इस प्रश्न को फिर उठायेंगे जिनका उसमें बहुत बड़ा आर्थिक-हित था। इसलिए एंडरूज साहब गांधीजी की सलाह और श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की हार्दिक सहानुभूति प्राप्त कर ताजा मसाला इकट्ठा करने के लिए एक बार फिर फिजी गये। वह एक साल तक फिजी में रहे और पहली बार से भी अधिक भयंकर हकीकतें जमा कर लाये। १९१८ के मार्च में उन्होंने मि० माण्टेगु से दिल्ली में भेंट की और उनके सामने सारा मामला पेश कर दिया कि शर्तबन्दी कुली-प्रथा घोर अनैतिक है। फलतः यह प्रथा उठा दी गई। पहली जनवरी १९२० को फिजी, ब्रिटिश गायना, ट्रिनडाड, सुरीनाम

और जमैका के प्रवासी-भारतीयों में हर्ष का वारापार न रहा; क्योंकि वहां अभी तक यह प्रथा जारी थी। यह प्रथा १८३५ में आरंभ की गई थी जिससे उपनिवेशों में शक्कर की खेती के लिए कुली मिल सकें।

हण्टर रिपोर्ट का प्रभाव

३० मई को महासमिति की बैठक बनारस में हुई, जिसमें हण्टर कमिटी की रिपोर्ट पर भारत की ओर से क्रोध प्रकट किया गया और उस मामले पर विचार करने के लिए विशेष कांग्रेस अधिवेशन का निश्चय किया गया। लोकमान्य तिलक इस अवसर पर बनारस से होकर गुजरे, पर उन्होंने महासमिति में भाग न लिया, क्योंकि खिलाफत-आन्दोलन उन्हें कुछ रुचा न था। फिर भी उन्होंने देशभक्ति और सौजन्य का परिचय देते हुए यह अवश्य कह दिया कि वह महासमिति के आदेश का पालन करेंगे। इसी अवसर पर गांधीजी ने नेताओं का एक सम्मेलन बुलाकर असहयोग-आन्दोलन को, उसके सामने रखने का निश्चय किया। अबतक असहयोग-आन्दोलन खिलाफत के प्रश्न से ही सम्बन्ध रखता था। सारे दलों के नेता २ जून १९२० को इलाहाबाद में एकत्र हुए। इस सम्मेलन में असहयोग की नीति अपनाने का निश्चय किया गया और कार्यक्रम तैयार करने के लिए गांधीजी और कुछ मुसलमान नेताओं की एक समिति बनाई गई। इस समिति ने रिपोर्ट प्रकाशित करके स्कूलों, कालेजों और अदालतों के बहिष्कार की सिफारिश की। वास्तव में नवम्बर १९१९ में दिल्ली अ० भा० खिलाफत-परिषद् ने गांधीजी की सलाह के अनुसार सरकार से असहयोग करने का निश्चय कर लिया था। इस निश्चय की पुष्टि कलकत्ता और अन्य स्थानों के मुसलमानों ने, और १७ अप्रैल १९२० को मद्रास की खिलाफत-परिषद् ने, कर दी थी। मद्रास की खिलाफत-परिषद् ने असहयोग की योजना की जो परिभाषा की थी उसके अनुसार उपाधियों और सरकारी नौकरियों का परित्याग, आनरेरी पदों और कौंसिलों की मेम्बरी तथा पुलिस और फौज की नौकरी का त्याग और कर अदा करने से इन्कार करना भी आवश्यक था। इस प्रकार खिलाफत, पंजाब के अत्याचारों और अपर्याप्त सुधारों ने उबलती हुई त्रिवेणी का रूप धारण कर लिया था। इसी बीच मुसलमानों ने अफगानिस्तान को हिजरत करने का निश्चय किया, क्योंकि अब तुर्किस्तान के साथ ब्रिटेन की संधि के बाद भारत में अंग्रेजों के शासन में रहना उन्होंने ठीक नहीं समझा। यह आन्दोलन सिन्ध में आरम्भ हुआ और सीमान्त प्रदेश में जा फैला। कचगढ़ी में मुहाजिरीन और सैनिकों में जोर की मुठ-भेड़ हो गई, जिससे जनता में और भी आग लग गई और अगस्त के भीतर-भीतर अनुमानतः १८,००० मुसलमान अफगानिस्तान के लिए चल पड़े। पर अफगान-सरकार ने शीघ्र ही इन मुहाजिरीन का दाखिला बन्द कर दिया। इससे मुसलमानों के विचार बदल गये।

असहयोग का प्रस्ताव

उक्त परिस्थितियों में असहयोग की योजना का नियमानुसार आरम्भ १ अगस्त को हुआ। गांधीजी और अली-भाइयों ने देश का दौरा किया। गांधीजी ने जनता को अनुशासन का पाठ पढ़ाया और उसके उछलते हुए उत्साह को संयम में रखा। इस नवीन आन्दोलन के लिए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन की आवश्यकता थी। इस अधिवेशन का निश्चय मई में ही हो चुका था। अतः यह १९२० के ४ से ९ सितम्बर तक कलकत्ते में हुआ। यह अधिवेशन बड़ा ही महत्वपूर्ण था। बंगाल गांधीजी से पूरी तरह सहमत नहीं था। देशबन्धुदास गांधीजी के असहयोग-कार्यक्रम के सोलह आने विरुद्ध थे। उनके या अधिकांश प्रतिनिधियों के हृदयों में कौंसिलों और अदालतों के बहिष्कार की योजना के प्रति बिलकुल सहानुभूति नहीं थी। पर तो भी ७ मत के संकीर्ण निश्चयात्मक बहुमत से कार्य-समिति ने गांधीजी का प्रस्ताव पास कर दिया, जिसमें उन्होंने शनैः-शनैः बहिष्कार करने की सलाह दी थी। कांग्रेस का यह विशेष अधिवेशन कलकत्ते में बड़े उत्साह के बीच हुआ। श्री व्योमकेश चक्रवर्ती स्वागत-समिति के प्रधान थे और लाला लाजपतराय, जो हाल ही में अमरीका से लौटे थे, सभापति थे। पहले प्रस्ताव में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु (३१ जुलाई १९२०) पर दुःख प्रकट किया गया। अधिवेशन का मुख्य प्रस्ताव असहयोग से सम्बन्ध रखने वाला था, जिसे गांधीजी ने पेश किया। प्रस्ताव का सार इस प्रकार है :—

"चूंकि खिलाफत के प्रश्न पर भारत तथा ब्रिटेन दोनों देशों की सरकार भारत के मुसलमानों के प्रति अपना फर्ज अदा करने में खास तौर से असफल रही हैं और ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ने जान-बूझ कर उन्हें दिये हुए वादे को तोड़ा है और चूंकि प्रत्येक गैर-मुस्लिम भारतीय का यह फर्ज है कि अपने मुसलमान भाई पर आई हुई धार्मिक-विपत्ति को दूर करने में प्रत्येक उचित उपाय से सहायता करे;

"और चूंकि अप्रैल १९१९ की घटनाओं के मामले में उक्त दोनों सरकारों ने पंजाब की बेकसूर जनता की रक्षा करने में और उन अफसरों को सजा देने में, जो पंजाब की जनता के प्रति असभ्य तथा सैनिक-धर्म-विरुद्ध आचरण करने के दोषी ठहरे हैं, घोर लापरवाही की है, इसलिए जबतक उक्त भूलों का सुधार न हो जाय और स्वराज्य की स्थापना न हो जाय, भारतवासियों के लिए इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है कि वे गांधीजी-द्वारा संचालित क्रमिक अहिंसात्मक असहयोग की नीति को स्वीकार करें और अपनायें।

"और चूंकि आन्दोलन को चलाने में यह वाञ्छनीय है कि कम-से-कम खतरा रहे और वाञ्छित उद्देश्य की सिद्धि के लिए आवश्यक कम-से-कम त्याग का आह्वान किया जाय, यह कांग्रेस सब के साथ सलाह देती है कि:—

(क) सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदों को छोड़ दिया जाय और

म्युनिसिपल बोर्ड तथा अन्य संस्थाओं में जो लोग नामजद हुए हों, वे इस्तीफा दे दें;

(ख) सरकारी दरबारों आदि द्वारा किये जाने वाले सरकारी और अर्द्ध-सरकारी उत्सवों में भाग लेने से इनकार किया जाय;

(ग) राजकीय तथा अर्द्ध राजकीय स्कूलों तथा कालेजों से छात्रों को धीरे-धीरे निकाल लिया जाय;

(घ) वकीलों तथा मुवक्किलों द्वारा ब्रिटिश अदालतों का धीरे-धीरे बहिष्कार किया जाय और खानगी झगड़ों को तय करने के लिए पंचायती अदालतों की स्थापना की जाय;

(ङ) फौजी, क्लर्की तथा मजदूरी करने वाले लोग मेसोपोटामिया में नौकरी करने के लिए भरती होने से इनकार करें;

(च) नई कौंसिलों के चुनाव के लिए खड़े हुए उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें, और

(छ) विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय।

"और चूंकि असहयोग को अनुशासन तथा आत्म-त्याग के एक साधन के रूप में पेश किया गया है जिसके बिना कोई भी सच्ची उन्नति नहीं कर सकता, और चूंकि असहयोग के सबसे पहले युग में ही हर स्त्री-पुरुष व बालक को इस प्रकार के अनुशासन एवं आत्म-त्याग का अवसर मिलना चाहिए, यह कांग्रेस सलाह देता है कि एक बड़े पैमाने पर स्वदेशी वस्त्रों को अपनाया जाय; और हरेक घर में हाथ की कताई तथा हाथ की बुनाई को पुनरुज्जीवित करके बड़े पैमाने पर वस्त्रों की उत्पत्ति तुरन्त ही बढ़ाई जाय।"

इस प्रस्ताव पर गरमागरम बहस हुई। बाबू विपिनचन्द्र पाल ने एक संशोधन पेश किया, जिसका देशबन्धु चित्तरञ्जनदास ने समर्थन किया। इस संशोधन के अनुसार ब्रिटेन के प्रधान-मंत्री को भारत के एक शिष्ट-मंडल से मिलने के लिए कहा गया। बहुत देर के विवाद के बाद अन्त में गांधीजी का प्रस्ताव पास हो गया।

२ अक्टूबर १९२० को महासमिति ने अपनी बैठक में 'अखिल-भारतीय तिलक-स्मारक-कोष' तथा 'स्वराज्य-कोष' नाम के दो कोष इकट्ठे करने का निश्चय किया, लेकिन उसका यह प्रस्ताव दिसम्बर १९२० तक रद्दी की टोकरी में ही पड़ा रहा।

नागपुर काँग्रेस : १९२०

नागपुर-कांग्रेस में असहयोग के कार्य-क्रम पर अन्तिम रूप से विचार होकर निश्चय होना था। कांग्रेस के सभापति दक्षिण के अनुभवी नेता चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य थे। कर्नल वेजवुड, मि० हालफोर्ड नाइट तथा मि० बेन स्पूर ने कांग्रेस में इंग्लैण्ड के मजदूर-दल के मित्र-प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया था।

श्री चित्तरंजनदास पूर्वी बंगाल तथा आसाम से लगभग २५० प्रतिनिधियों का एक दल लाये थे। उन्होंने उनका दोनों ओर का व्यय दिया था और अपनी जेब से लगभग ३६०००) इसलिए खर्च किया था कि कलकत्ते के निर्णय पर पानी फेरा जा सके। श्री दास के आदमियों और उनके विरोधी श्री जितेन्द्रलाल बनर्जी के आदमियों के बीच एक मामूली-सी तकरार भी हो गई थी। महाराष्ट्र का विरोध भी कुछ कम तगड़ा न था। कर्नल वेजवुड, मि० बेन स्पूर तथा मि० हालफोर्ड नाइट ने विषय-समिति की बैठक में भी भाग लिया था। कर्नल वेजवुड ने तो असहयोग के विरोध में दलीलें पेश करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी थी, परन्तु नतीजा कुछ भी न हुआ। खादी-सम्बन्धी धारा और भी कड़ी कर दी गई। असहयोग का प्रस्ताव फिर दोहराया गया। अधिवेशन में गांधीजी के व्यक्तित्व की विजय हुई।

नागपुर-कांग्रेस में असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव का पास हो जाना स्वयं एक बड़ी भारी बात थी, लेकिन उसके बारे में सबसे बड़ी बात यह थी कि उसे श्री चित्तरंजनदास ने पेश किया और उसका लाला लाजपतराय ने समर्थन किया। नागपुर में गांधीजी को निस्संदेह कलकत्ते से अधिक समर्थन प्राप्त हुआ। कलकत्ते में केवल एक ही पुराने सिरे के राजनीतिज्ञ पं० मोतीलाल नेहरू ने गांधीजी का साथ दिया था, और सो भी अधिवेशन की समाप्ति के करीब जबकि गांधीजी ने नेहरूजी का यह संशोधन स्वीकार कर लिया कि अदालतों तथा कालेजों का बहिष्कार धीरे-धीरे हो।

नागपुर के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव ने करीब-करीब कलकत्तावाले प्रस्ताव को ही दोहराया। एक ओर उपाधियाँ छोड़ देने की बात तो दूसरी ओर करों के न देने तक की बात उसमें शामिल कर ली गई। व्यापारियों से अनुरोध किया गया कि वे धीरे-धीरे विदेशी व्यापारिक सम्बन्धों को छोड़ें और हाथ की कताई बुनाई को प्रोत्साहन दें। देश से अनुरोध किया गया कि वह राष्ट्रीय आन्दोलन में अधिक-से-अधिक त्याग करे। राष्ट्रीय सेवक दल को संगठित करने और 'अखिल-भारतीय तिलक-स्मारक-कोष' को बढ़ाने के लिए कांग्रेस पर जोर दिया गया। कौंसिलों के लिए चुने गये सदस्यों से इस्तीफा देने की और मतदाताओं से उन सदस्यों से किसी भी प्रकार की राजनैतिक सेवा न लेने की प्रार्थना की गई। पुलिस तथा पलटन और जनता में मित्रता के जो भाव बढ़ रहे थे उनको स्वीकार किया गया। सरकारी कर्मचारियों से अपील की गई कि वे जनता से बर्ताव करते समय अधिक नरमी तथा ईमानदारी का परिचय देकर राष्ट्र-कार्य में सहायता करें और सब सार्वजनिक सभाओं में बिना डर के खुले तौर पर भाग लें। इस बात पर भी जोर दिया गया कि अहिंसा असहयोग-आन्दोलन का अविच्छिन्न अंग है। वचन और कर्म दोनों में अहिंसा का होना आवश्यक माना गया और उस पर जोर

दिया गया, विनिमय की दर में वृद्धि होने और उसके फल-स्वरूप स्वर्ण-विनिमय मान-कोष तथा कागजी-मुद्रा कोष में 'लूट' मचने के कारण नागपुर में जोरों से इस बात की मांग पेश की गई कि ब्रिटिश-सरकार इस घाटे को पूरा करे। पांचवें प्रस्ताव में तो यह भी कहा गया कि ब्रिटिश माल की तिजारत करनेवाले व्यापारी विनिमय की वर्तमान दरों पर अपना वादा पूरा करने से इन्कार करने के हकदार हैं। ड्यूक ऑफ कनाट के सम्मान में किसी उत्सव तथा समारोह में भाग न लेने के लिए देश से अनुरोध किया गया। मजदूरों को प्रोत्साहित किया गया और ट्रेड-यूनियनों के जरिये जारी किये गये उनके संग्राम के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई। पंजाब, दिल्ली तथा अन्य स्थानों में पुनः प्रारम्भ हुए दमन को ध्यान में रखा गया और जनता से कहा गया कि वह सब कुछ धैर्य से सहे। कांग्रेस ने सब देशी नरेशों से भी प्रार्थना की कि वे अपनी-अपनी रियासतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए शीघ्र-से-शीघ्र प्रयत्न करें।

कांग्रेस का ध्येय बदल दिया गया। कांग्रेस का ध्येय "शान्तिमय तथा उचित उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना" घोषित किया गया। कांग्रेस का प्रांतीय संगठन प्रान्तों की भाषा के अनुसार किया गया। विषय-समिति की बैठकों का कांग्रेस के खुले अधिवेशन से दो-तीन दिन पहले करना तथा उसकी सदस्यता केवल महा-समिति के सदस्यों तक सीमित रखना—ये मार्के के परिवर्तन थे; लेकिन विषय-समिति के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ३५० तक कर दी गई। सभापति, मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष समेत १५ सदस्यों की एक कार्य-समिति का नियुक्त होना नये विधान का एक ऐसा अंग था जिसने कांग्रेस के रोजमर्रा के कार्य में एक क्रांति ही कर दी।

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले उन तीन प्रमुख सत्याग्रहियों का उल्लेख कर देना आवश्यक है जिन्होंने तत्कालीन राजनीति को विशेषरूप से प्रभावित किया था।

१. चम्पारन-सत्याग्रह

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गोरे खेतिहरों ने चम्पारन में नील की खेती करना प्रारम्भ किया था। आगे चलकर इन लोगों ने वहां के जमींदारों से, अस्थायी और स्थायी जैसे भी सौदा पटा, भूमि के बड़े-बड़े भागों को अपने हाथ में कर लिया तथा शीघ्र ही वहां के गांवों के किसानों से अपने लिए नील की खेती कराना प्रारम्भ कर दिया। आगे चलकर यह अनिवार्य हो गया कि किसान अपनी ³/₂₀ या ⁵/₂₀ भूमि पर नील अवश्य बोयें। कुछ ही दिनों में इन लोगों ने बंगाल टेनेन्सी एक्ट में इस बात को कानून का रूप दिलवा दिया। नील पैदा करने की यह प्रथा आगे चलकर 'तीन कठिया' के नाम से मशहूर हुई, जिसके मानी थे एक बीघे का

३।२० भाग। किसानों की यह शिकायत थी कि नील की खेती से उन्हें कोई फायदा नहीं है। लेकिन फिर भी उसे करने के लिए उन्हें मजबूर किया जाता था। इससे उनको अन्य खेतो को नुकसान पहुंचता था और इसके लिए उन्हें जो मजदूरी मिलती थी वह नाममात्र थो। कई बार उनकी शिकायतों ने जोर मारा, परन्तु कड़ाई के साथ उन्हें वहीं-का-वहीं दबा दिया गया।

१६१७ में गांधीजी मोतोहारो पहुंचे। यह जिले का मुख्य स्थान था। गांवों को देखने के लिए वह रवाना होने वाले हो थे कि दफा १४४ का नोटिस मिला कि तुरन्त ही जिले से बाहर चले जाओ। गांधीजी भला इस हुक्म को कब मानने-वाले थे! उन्होंने अपना 'कैसरेहिन्द' का स्वर्ण-पदक, जो कि सरकार ने उन्हें उनके लोकोपयोगी कार्यों के लिए पुरस्कार में दिया था, सरकार को लौटा दिया। मजिस्ट्रेट की अदालत में उन पर दफा १४४ भंग करने का मुकदमा चला। उन्होंने अपने को अपराधी स्वीकार करते हुए एक विलक्षण बयान अदालत के सम्मुख दिया। अन्त में सरकार ने मुकदमा वापस ले लिया और उन्हें अपनी जांच करने दी। इस जांच में उन्होंने अपने मित्रों की सहायता से कोई २० हजार किसानों के बयान कलमबन्द किये। इन्हीं बयानों के आधार पर गांधीजी ने किसानों की मांगें पेश कीं। आखिरकार सरकार को एक कमीशन नियुक्त करना पड़ा जिसमें जमींदार, सरकार और निलहे गोरों के प्रतिनिधि थे। गांधीजी को किसानों की ओर से प्रतिनिधि रखा गया था। इस कमीशन ने जांच के बाद एकमत होकर अपनी रिपोर्ट लिखी, जिसमें किसानों की लगभग सभी शिकायतों को जायज माना गया। इस रिपोर्ट में एक समझौता भी लिखा गया, जिसमें किसानों पर बढ़ाये गये लगान को कम कर दिया गया और जो रुपया गोरों ने नकद वसूल किया था, उसका एक भाग लौटा देना तय हुआ। इनकी सिफारिश को बाद में कानून का रूप दे दिया गया, जिसके अनुसार नील पैदा करना या 'तीन कठिया' लेना मना कर दिया गया।

२. खेड़ा-सत्याग्रह

चम्पारन-सत्याग्रह के समान ही महत्त्वपूर्ण खेड़ा का (१६१८) भी सत्याग्रह था। गांधीजी के भारत के सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले, भारतीय किसान यह नहीं जानते थे कि घोर-से-घोर अकाल के दिनों में भी वे सरकार के लगान लेने के अधिकार के सम्बन्ध में कुछ एतराज कर सकते हैं। उनके प्रतिनिधि सरकार के पास आवेदन एवं प्रार्थनापत्र भेजते थे, स्थानीय कौंसिल में प्रस्ताव करते थे। बस यहां तक उनका विरोध समाप्त हो जाता था। १६१८ में गांधीजी ने एक नये युग का श्रीगणेश किया। गुजरात के खेड़ा जिले में इस वर्ष ऐसा बुरा समय आया कि जिले भर की सारी फसल खराब हो गई। अवस्था अकाल के समान हो गई।

किसान यह महसूस करने लगे कि अवस्था को देखते हुए लगान स्थगित होना चाहिए। आमतौर पर ऐसे मौकों पर जो उपाय काम में लाये जाते थे, उन सबको आजमाया जा चुका था। सारे उपाय बेकार हो चुके थे। अत: गांधीजी के पास किसानों को सत्याग्रह की सलाह देने के अलावा कोई चारा ही नहीं था। उन्होंने लोगों से स्वयं-सेवक और कार्यकर्त्ता बनने की अपील की और कहा कि वे किसानों में जाकर उन्हें अपने अधिकारों आदि का ज्ञान करायें। गांधीजी की अपील का असर तुरन्त हो हुआ। सबसे पहले स्वयं-सेवक बनने को आगे बढ़ने वाले सरदार वल्लभ-भाई पटेल थे। आपने अपनी खासी और बढ़ती हुई वकालत पर लात मार दी, और सब कुछ छोड़कर गांधीजी के साथ फकीरी ले ली। खेड़ा का सत्याग्रह ही इन दो महान् पुरुषों को मिलाने का कारण बना। सरदार वल्लभभाई के सार्व-जनिक जीवन में प्रवेश करने का यह श्रीगणेश था। उन्होंने अन्तिम निश्चय करके अपने आपको गांधीजी के अर्पण कर दिया। सत्याग्रह की खूब धूम रही। गिर-फ्तारियाँ हुईं, मुकदमे चले और सजायें हुईं। आखिरकार इस झगड़े का यकायक ही अन्त हो गया। अधिकारियों ने गरीब किसानों के लगान को मुल्तवी कर दिया। लेकिन उन्होंने यह कार्य किया बिना किसी प्रकार की सार्वजनिक घोषणा किये हुए। उन्होंने किसानों को यह भी न अनुभव होने दिया कि यह उनके साथ किसी प्रकार का समझौता करके हुआ है।

३. अहमदाबाद-सत्याग्रह

गांधीजी द्वारा अहमदाबाद के मिल-मजदूरों के संगठन की कहानी उपन्यास की भांति ऐसी रोमांचकारी है कि उससे किसी भी जाति की स्वतन्त्रता के इतिहास की शोभा बढ़ सकती है। उस समय तक महात्माजी ने कांग्रेस का नेतृत्व ग्रहण नहीं किया था। औद्योगिक झगड़ों को सुलझाने के लिए इतिहास में सबसे पहली बार अहमदाबाद में ही उन उपायों को काम में लाया गया जिसका आधार सत्य और अहिंसा था। १९१६ से श्रीमती अनसूया बेन साराभाई मजदूरों में शिक्षा-सम्बन्धी कार्य कर रही थीं। १९१८ में बुनकरों और मिल-मालिकों में जो झगड़ा उठ खड़ा हुआ था उसके सम्बन्ध में परामर्श लेने के लिये उन्हें गांधीजी के पास जाना पड़ा। उन्होंने मिल-मालिकों को जबरदस्ती मनवाने की कोशिश करने की अपेक्षा उनसे पंचायत के सिद्धांत को स्वीकार करा लिया। यह मजदूर-आंदोलन के लिए एक महत्वपर्ण बात थी। गांधीजी और सरदार वल्लभभाई पटेल ने मजदूरों की ओर से पंच होना स्वीकार कर लिया। लेकिन पंच-फैसले की बात बीच में ही टूट गई, क्योंकि थोड़ी मिलों के कुछ मजदूरों ने बीच ही में हड़ताल कर दी। गांधीजी ने स्वयं इसके लिए खेद प्रकाशित करके मजदूरों को वापस काम पर भेज दिया। यद्यपि समझौता-भंग दोनों ओर से हुआ था, तो भी मिल मालिक कुछ सहमे ही

न थे। गांधीजी ने मजदूरों को कुछ निश्चित कार्य करने की सलाह देने से पहले खुद इस समस्या का गहराई के साथ अध्ययन किया। व्यापारिक अवस्था, उससे मिलों को होने वाले लाभ, जीवन की आवश्यक वस्तुओं की महंगाई और दूसरी ओर मिलों में उत्पत्ति-खर्च-वृद्धि—ये उनकी जांच के मुख्य विषय थे। इस जांच के पश्चात् जिस परिणाम पर गांधीजी पहुंचे वह यह था कि मजदूरों की मजदूरी में कम-से-कम ३५ फी सदी की वृद्धि की जाय। इस प्रकार जो मांग तैयार की गई थी उसे मिल-मालिकों के सामने रखा गया। उन्होंने २० फी सदी से अधिक देने से कतई इन्कार कर दिया और कह दिया कि २२ फरवरी १९१८ से मिलों में ताले डाल दिये जायंगे। इस पर गांधीजी ने सारे मजदूरों की एक सभा बुलाई और एक पेड़ के नीचे, उनसे प्रतिज्ञा कराई, कि वे तबतक काम पर नहीं लौटेंगे, जबतक कि उनकी पूरी मांग स्वीकार नहीं हो जाती। प्रतिज्ञा में यह बात भी थी कि वे लोग जबतक मिलों में ताले पड़े रहेंगे तबतक किसी हालत में शांति-भंग न करेंगे। लेकिन अजदूर लोग इस बात के आदी नहीं थे। इसलिए उनमें कमजोरी के लक्षण प्रतीत होने लगे। यह देखकर गांधीजी ने शाम की सभा में यह घोषित कर दिया कि जबतक मजदूर लोग अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहने की शक्ति नहीं पा जाते तबतक वह न तो किसी सवारी में ही चलेंगे और न भोजन ही करेंगे। यह समाचार विद्युत्-गति से सारे भारतवर्ष में फैल गया। यह आमरण-अनशन था। मजदूरों ने उन्हें बहुतेरा समझाया, पर उनका निर्णय अटल था। इस पर गांधीजी ने उनसे अपील की कि वे अपना समय व्यर्थ नष्ट न करें; और उन्हें जो कोई भी काम मिल जाय उस पर ईमानदारी के साथ अपनी रोटी पैदा करें। गांधीजी के लिए यह बहुत आसान था कि वे इन मजदूरों की आर्थिक सहायता के लिए धन की अपील करते, जिससे काफी धन अवश्य आ जाता, लेकिन इस तरह भिक्षान्न देना उन्हें पसन्द न था। सत्याग्रहाश्रम साबरमती की भूमि पर सैकड़ों मजदूरों को काम मिल भी गया। वहां इमारतें बन रही थीं। वे आश्रम के सदस्यों के साथ बड़े आनन्द से काम करने लगे। इनमें सबसे आगे श्रीमती अनसूया बेन थीं, जो मिट्टी, ईंट और चूना ढो रही थीं। इसका बड़ा ही नैतिक प्रभाव पड़ा। इससे मजदूर अपनी प्रतिज्ञा पर और भी दृढ़ हो गए, और मिल-मालिकों के भी दिल दहल गए। देश के विभिन्न भागों से नेताओं ने उनसे अपीलें कीं। उपवास के चौथे दिन एक ऐसा रास्ता हाथ आया जिससे मजदूरों की भी प्रतिज्ञा-भंग नहीं होती थी और इधर मिल-मालिक भी अपनी प्रतिष्ठा कायम रखते हुए उनके साथ न्याय कर सकते थे। दोनोंने पंच-फैसला मानना स्वीकार कर लिया। पंचों ने मजदूरों की मांग के अनुसार ही ३५ फी सदी बढ़ोतरी कर देने का निर्णय किया। मजदूरों की समस्या के शान्ति-पूर्ण ढंग से सुलझ जाने के कारण कांग्रेसी नेताओं और मजदूरों में एक सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित

हो गया। इसीके फलस्वरूप मजदूरों का 'मजूर महाजन' नामक एक स्थायी संगठन हो गया।

: १० :

असहयोग का वेग : १९२१-२३

नागपुर-कांग्रेस का प्रभाव

नागपुर-कांग्रेस से भारत के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। निर्बल, क्रोधपूर्ण और आग्रहपूर्वक प्रार्थनाओं के स्थान पर दायित्व और स्वावलम्बन की नयी भावना जाग्रत हो उठी।

नागपुर-कांग्रेस के आदेश का उत्तर लोगों ने काफी दिया। कौंसिलों के बहिष्कार में सराहनीय सफलता मिली। देश भर में कितने ही वकीलों ने वकालत छोड़ दी और उन्होंने दिलो-जान से अपने को आन्दोलन में झोंक दिया। राष्ट्रीय-शिक्षा के क्षेत्र में भी आशातीत सफलता दिखाई पड़ी। जनवरी के मध्य तक देशबन्धुदास की अपील पर हजारों विद्यार्थियों ने अपने कॉलेजों और परीक्षाओं को ठोकर मार दी। गांधीजी कलकत्ता गये और उन्होंने ४ फरवरी को वहां एक राष्ट्रीय-कॉलेज का उद्‌घाटन किया। इसी तरह वह पटना भी गये और वहां एक राष्ट्रीय कॉलेज खोलकर बिहार-विद्यापीठ की स्थापना की। इस तरह चार महीने के भीतर-ही-भीतर राष्ट्रीय-मुस्लिम विद्यापीठ अलीगढ़, गुजरात-विद्यापीठ, बिहार-विद्यापीठ, बङ्गाल-राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक-महाराष्ट्र-विद्यापीठ और एक बड़ी तादाद में राष्ट्रीय-स्कूल देश में चारों ओर खुल गये।

नागपुर के प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिए कार्य-समिति की बैठक १९२१ के प्राय: हर महीने में विभिन्न स्थानों में हुई। महासमिति की पहली बैठक (नागपुर) ने कार्य-समिति का चुनाव किया और २१ प्रान्तों में महासमिति के सदस्यों की संख्या का बटवारा किया। जनवरी १९२१ में नागपुर कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष सेठ जमनालाल बजाज ने अपनी रायबहादुरी की पदवी छोड़ दी और असहयोगी वकीलों की सहायता के लिए तिलक स्वराज्य-कोष में एक लाख रुपया दिया। इस कोष से किसी वकील को १००) और किसी राष्ट्र-सेवक को ५०) मासिक से अधिक नहीं मिल सकते थे।

रचनात्मक कार्य और दमन-नीति का आरंभ

यद्यपि लोग सुधार और सङ्गठन के निर्दोष कार्यों का प्रचार करते थे, तो भी सरकार ने पहले ही से दफा १४४ और १०८ का दौर आरंभ कर दिया था।

देशबन्धुदास मैमनसिंह जाने से रोक दिये गये थे और बाबू राजेन्द्रप्रसाद तथा मौ० मजहरुल हक़ को आरा जाने की मनाही कर दी गई थी। श्री याकूबहुसेन कलकत्ता जाने से और लाला लाजपतराय पेशावर जाने से रोके गये थे। लाहौर में सभाबन्दी कानून जारी कर दिया गया था। परन्तु ननकाना-काण्ड के मुकाबले में ये कुछ भी नहीं थे। मार्च के पहले सप्ताह में गुरुद्वारा में कुछ सिक्ख इकट्ठे हुए। वह शान्ति-मय समुदाय था। एकाएक उनपर धावा बोला गया और गोलियाँ चलाई गईं, जिसमें लोगों के कथनानुसार १९५ और सरकार के अनुसार ७० मौतें हुईं। ननकाना जैसा भीषण-काण्ड पहले कहीं नहीं हुआ था।

२८, २९ और ३० जुलाई १९२१ को बम्बई में महासमिति की एक महत्वपूर्ण बैठक हुई। बेजवाड़ा-कार्यक्रम को देश में जो सफलता मिली थी उससे चारों ओर प्रसन्नता छाईहुई थी। तिलक-स्वराज्य-कोष में निश्चित धन से १५ लाख रुपये अधिक आ गये थे। कांग्रेस-सदस्यों की संख्या आधे के ऊपर पहुंच गई थी; चर्खे करीब-करीब २० लाख चलने लगे थे। इसके बाद बुनने तथा खादी सम्बन्धी विविध क्रियाओं की ओर देश का ध्यान गया। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए विदेशी कपड़े के बहिष्कार और खादी की उत्पत्ति में सारी शक्ति लगाने का प्रश्न देश के सामने था। महासमिति ने यह भी सलाह दी कि तमाम कांग्रेसी आगामी १ अगस्त से विदेशी कपड़ों का उपयोग छोड़ दें। बम्बई और अहमदाबाद के मिल-मालिकों से अनुरोध किया कि वे अपने कपड़ों की कीमत मजदूरों की मजदूरी के अनुपात से रखें और वह ऐसी हो जिससे गरीब भी उस कपड़े को खरीद सकें और मौजूदा दरों से तो दाम हर्गिज न बढ़ाये जायं। विदेशी कपड़े मंगानेवालों से कहा गया कि वे विदेशी कपड़ों के आर्डर न भेजें और अपने पास के माल को हिन्दुस्तान के बाहर खपाने का उद्योग करें।

यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समय तक कांग्रेस में पिकेटिंग के बारे में कोई प्रस्ताव पेश नहीं हुआ था और इस समय भी उसे सार्वजनिक-संस्थाओं तक ही सीमित रखा गया था। व्यापारियों से प्रार्थना की गई थी कि वे नशीली चीजों का व्यापार बन्द कर दें। पूर्ण अहिंसा बनाये रखने के राष्ट्र के कर्तव्य के प्रति कांग्रेस सतर्क थी, फिर भी दमन-चक्र बड़े भयावह और विस्तृत-रूप में जारी था। उत्तर प्रदेश में उसका बहुत जोरशोर था। कई जगह तो गोली-काण्ड भी हुए थे। बहुत से लोग, बिना मुकदमा लड़े, जेलों में पड़े हुए थे। परिस्थिति यह थी कि देश के वभिन्न भागों ने प्रान्तीय सरकारों द्वारा किये गये दमन के उत्तर में सविनय अवज्ञा शुरू करने की मांग की थी। इतने पर भी, यह प्रस्ताव पास किया गया कि सविनय अवज्ञा को उस समय तक स्थगित कर देना चाहिए जबतक कि स्वदेशी-सम्बन्धी प्रस्ताव में उल्लिखित कार्यक्रम पूरा न हो जाय। युवराज के आगमन के संबंध में महासमिति ने निश्चय किया, कि उनके आगमन के सिलसिले में सरकारी तौर पर

अथवा अन्य किसी प्रकार के जो भी समारोह हों, उनमें कोई शरीक न हो और न किसी प्रकार को कोई सहायता दे।

१६ अगस्त को जब पटना में कार्य-समिति की बैठक हुई तब उसमें हरदोई जिले (उत्तर प्रदेश) का वह पत्र पेश हुआ, जिसमें वहां लगाई गई दफा १४४ के विरुद्ध सविनय अवज्ञा शुरू करने की इजाजत मांगी गई थी; लेकिन उसका विचार अगली बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया। कार्य-समिति की अगली बैठक भी जल्दी ही ६,७,८,९ सितम्बर को कलकत्ता में हुई। यह बैठक महत्त्वपूर्ण थी। धारवाड़-गोली-काण्ड और मोपला-उत्पात की जांच की रिपोर्ट उसमें पेश हुई और प्रस्ताव पास हुए। इसके पश्चात ही मौलाना मुहम्मदअली को, जो कि आसाम से मद्रास जा रहे थे, १४ सितम्बर को वाल्टेयर में गिरफ्तार किया गया। उन्हें कुछ दिनों तक एक छोटी-सी जेल में रखा गया, फिर उन्हें रिहाई की आज्ञा सुनाई गई और दुबारा गिरफ्तार करके करांची ले जाया गया। मुहम्मदअली की गिरफ्तारी के बाद ही फौरन बम्बई में शौकतअली पकड़े गये। जब यह पता चला कि ८ जुलाई को करांची में होनेवाली अखिल भारतीय परिषद के अवसर पर दिए गए भाषण को लेकर मामला चलाया जायगा तब गांधीजी ने, जो इस अवसर पर त्रिचनापल्ली में थे, भाषण को स्वयं दोहराया। उन्होंने इस गिरफ्तारी को इतना महसूस किया कि सारे राष्ट्र को कार्य-समिति के इस विषय पर पास किये गये प्रस्ताव को दोहराने की आज्ञा दी। दिल्ली की ५ नवम्बर १९२१ को महासमिति की बैठक ने प्रांतीय कांग्रेस-कमिटियों को अपनी जिम्मेदारी पर सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार दे दिया। सत्याग्रह में कर-बन्दी भी शामिल थी। सत्याग्रह किस प्रकार आरम्भ किया जाय, इसके निर्णय का भार प्रांतीय कांग्रेस-कमिटियों पर छोड़ दिया गया। शर्त यह थी कि प्रत्येक सत्याग्रही ने असहयोग के कार्य-क्रम के उस अंश को जो उस पर लागू होता हो, पूर्ति कर ली हो, वह चर्खा चलाना जानता हो, विदेशी कपड़ा त्याग चुका हो, खद्दर पहनता हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता में विश्वास रखता हो, खिलाफत और पंजाब के अन्यायों को दूर करने और स्वराज्य प्राप्त करने के लिए अहिंसा में विश्वास रखता हो, और यदि हिन्दू हो तो अस्पृश्यता को राष्ट्रीयता के लिए कलंक समझता हो।

मोपला-उत्पात

यहां उन परिस्थितियों का जिक्र करना भी आवश्यक है जिनसे मलाबार में मोपला-उत्पात उत्पन्न हुआ था। मोपले वे मुसलमान हैं जिनके पूर्वज अरब थे। वे मलाबार के सुन्दर स्थान पर आ बसे थे और वहीं शादी-ब्याह करके रहने लगे थे। साधारणतया वे छोटा-मोटा व्यापार या खेती-बारी करते हैं। पर धार्मिक उन्माद की धुन में वे इतने असहिष्णु हो जाते हैं कि प्राणों की या शारीरिक सुख

तक की बिलकुल चिन्ता नहीं करते। मोपलों के आये दिन के दंगों ने 'मोपला दंगा-विधान' नामक एक विशेष कानून को भी जन्म दिया था। सरकार आरम्भ से इस बात के लिए चिन्तित थी कि 'भड़क जाने वाले' मोपलों में असहयोग की चिनगारी न लगने पाये। पर आन्दोलन और सब जगहों की भांति केरल में भी पहुंचा। फरवरी में चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और मौ० याकूबहसन जैसे प्रमुख नेता अहिंसा का प्रचार करने के लिए उस प्रान्त में गये। याकूबहसन ने खासतौर से कह दिया था कि असहयोग पर व्याख्यान न दूंगा, परन्तु इतने पर भी उनके खिलाफ निषेधात्मक आज्ञा जारी की गई और १६ फरवरी १९२१ को चार नेता गिरफ्तार कर लिये गये। मोपले मुख्यत: वाल्वनद और एरण्ड ताल्लुकों में रहते हैं। सरकार ने इन ताल्लुकों में दफा १४४ लगा दी। अगस्त आते-आते रंग-ढंग ही बदल गया और मोपलों ने मार-काट आरम्भ कर दी। शीघ्र ही उनकी हिंसा ने सैनिक रूप धारण कर लिया। उन्होंने बन्दूकों और तलवारों से लुक-छिपकर छापे मारने आरम्भ कर दिये। अक्तूबर के मध्य में पहले की अपेक्षा अधिक कठोर फौजी-कानून जारी किया गया। मोपले सरकारी अफसरों को लूटने और बरबाद करने के अलावा हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाने, लूटने, आग लगाने और हत्या करने के भागी बने। महासमिति ने अपनी नवम्बर की बैठक में उनके अत्याचारों का विरोध किया।

युवराज का बहिष्कार

१७ नवम्बर को युवराज भारत में आये। नई बड़ी कौंसिल को वही खोलने वाले थे, पर १९२० के अगस्त के वातावरण को देखकर भारत-सरकार ने ड्यूक ऑफ कनाट को बुलाया। १९२१ के नवम्बर में युवराज को ब्रिटिश सरकार की आन बनाये रखने के लिए भेजा गया। कांग्रेस ने पहले ही निश्चय कर लिया था कि युवराज को अगवानी से सम्बन्ध रखने वाले सारे उत्सव का बहिष्कार किया जाय। यही किया गया। जगह-जगह विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। युवराज के बम्बई-पदार्पण के दिन शहर में केवल मुठभेड़ ही नहीं हुई, बल्कि चार दिनों तक दंगे और खून-खच्चर होते रहे, जिनके फलस्वरूप ५३ आदमी मरे और लगभग ४०० आदमी घायल हुए। ये दंगे सरोजिनी देवी और गांधीजी के रोके भी न रुके। गांधीजी ने जब तक शांति स्थापित न हो जाय, जनता की ज्यादतियों का प्रायश्चित्त करने के निमित्त ५ दिन का व्रत किया। युवराज के आगमन के फलस्वरूप देशभर में स्वयंसेवकों के दल संगठित हुए। युवराज २५ दिसम्बर को कलकत्ता जाने वाले थे। बंगाल-सरकार ने पहले से ही क्रिमिनल लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के अनुसार स्वयंसेवक भरती करना गैर-कानूनी करार दे दिया था। बहुत से आदमी गिरफ्तार हुए जिनमें देशबन्धुदास, उनकी धर्मपत्नी और पुत्र भी थे।

इसके बाद ही उत्तर प्रदेश और पंजाब की बारी आई। अहमदाबाद-कांग्रेस होते-होते लालाजी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और सपरिवार देशबन्धु दास जेलमें बन्द कर दिए गये।

समझौते का प्रयत्न

इसी अवसर पर कांग्रेस और सरकार में समझौते की बातचीत चल पड़ी। भारत की राजधानी को कलकत्ते से दिल्ली ले जाते समय यह प्रबन्ध किया गया था कि वाइसराय हर साल बड़े दिनों में तीन-चार सप्ताह कलकत्ते में व्यतीत करेंगे। युवराज के बड़े दिन भी कलकत्ते में ही बिताने का निश्चय किया गया। पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसे मध्यस्थ सज्जनों ने कलकत्ते में लॉर्ड रीडिंग की उपस्थिति का उपयोग करके सरकार और जनता में समझौता कराने की चेष्टा की। लॉर्ड रीडिंग भी राजी हो गये। २१ दिसम्बर को पण्डित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में एक शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला। देशबन्धुदास कलकत्ते की अलोपुर-जेल में थे। उनसे मध्यस्थों की टेलीफोन-द्वारा बात हुई। शीघ्र ही गांधीजी से तार-द्वारा बातचीत करना आवश्यक समझा गया। वह अहमदाबाद में थे। सरकार इस बात पर राजी हो गई कि सत्याग्रह के कैदियों को छोड़ दिया जाय और मार्च १९२२ में गोलमेज-परिषद् बुलाई जाय, जिसमें कांग्रेस को ओर से २२ प्रतिनिधि हों। इस परिषद् में सुधार-योजना पर विचार किया जाय। देशबन्धुदास की मांग यह थी कि नये कानून के अनुसार सजा पाये हुए सारे कैदियों को छोड़ दिया जाय। समझौते के निश्चय का फल यह होता कि लालाजी जैसे कैदी और फतवे के कैदी जिनमें मौलाना मुहम्मदअली, मौलाना शौकतअली, डॉ० किचलू और अन्य नेता शामिल थे, जेल में ही रह जाते। परन्तु गांधीजी करांची के कैदियों का छुटकारा चाहते थे। सरकार ने आंशिक रूप में इसे भी स्वीकार कर लिया। उन्होंने मांग पेश की कि फतवे के कैदियों को भी छोड़ा जाय और पिकेटिंग जारी रखने का अधिकार माना जाय। ये मांगें नामंजूर कर दी गईं। इस स्थिति के सम्बन्ध में लॉर्ड रीडिंग के नाम गांधीजी का तार-द्वारा उत्तर समय पर कलकत्ता न पहुँच सका। तार को रास्ते में देर लग गई और लॉर्ड रीडिंग के सहयोगी कलकत्ते से रवाना हो गये। फलतः समझौते की बात असफल रही। श्री जिन्ना और पण्डित मदनमोहन मालवीय मध्यस्थ थे। इस समझौते की बात असफल होने पर युवराज के आगमन के सम्बन्ध में बहिष्कार के कार्यक्रम का पालन अवशिष्ट भारत ने भी उसी प्रकार किया। कलकत्ते में पूर्ण हड़ताल हुई।

अहमदाबाद-कांग्रेस : १९२१

१९२१ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में अहमदाबाद-कांग्रेस हुई। अहमदाबाद का अधिवेशन कई सुधारों के लिए प्रसिद्ध है। इस बार प्रतिनिधियों के बैठने के लिए कुरसियों और बेंचों का प्रबन्ध नहीं था। स्वागताध्यक्ष बल्लभभाई पटेल का भाषण छोटे-से-छोटा था। कम-से-कम कुल ९ प्रस्ताव पास हुए। कांग्रेस की मुख्य भाषा हिन्दी थी। कांग्रेस-कार्य के लिए जो तम्बू और डेरे लगे थे, उनके लिए २ लाख से ऊपर की खादी मोल ली गई थी।

गांधीजी ने एण्डरूज साहब को अहमदाबाद-अधिवेशन में आने और एक धार्मिक संदेश देने का निमंत्रण दिया था। उन्होंने आना निश्चित किया, लेकिन यह भी स्पष्ट कह दिया कि मैं विदेशी कपड़े की होली के खिलाफ हूं, क्योंकि मुझे डर है कि वह हिंसा के भाव जाग्रत करेगी। अपनी मामूली पोशाक को छोड़कर वह यूरोपियन लिबास में आये, जिससे कि वह विदेशी कपड़े की होली-नीति पर अपना विरोध स्पष्ट कर सकें। अपने व्याख्यान में उन्होंने इसे स्पष्ट भी किया। लोगों ने उनकी बातों को बहुत आदर और प्रेम से सुना, यद्यपि वे उनके विचार से सहमत नहीं थे।

अधिवेशन के सभापति हकीम अजमल खाँ थे। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रतिमूर्त्ति थे। उनके सभापतित्व में असहयोग और उसके प्रति देश के कर्तव्य के सम्बन्ध में मुख्य प्रस्ताव पास हुआ जिसमें कहा गया कि चूंकि कांग्रेस के पिछले अधिवेशन के समय से अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप भारतीय जनता ने निर्भयता, आत्म-बलिदान और आत्म-सम्मान के मार्ग पर पर्याप्त प्रगति करने के साथ-साथ सरकार के सम्मान को बहुत बड़ा धक्का पहुंचाया है और चूंकि देश की प्रगति स्वराज्य की ओर तीव्र गति से हो रही है; इसलिए यह कांग्रेस कलकत्ता के विशेष अधिवेशन-द्वारा स्वीकृत और नागपुर में दोहराये गए प्रस्ताव को स्वीकार करती है और दृढ़ निश्चय प्रकट करती है कि जबतक स्वराज्य की स्थापना नहीं हो जायगी तबतक अहिंसात्मक असहयोग का कार्यक्रम इस समय की अपेक्षा अधिक उत्साह से उस प्रकार चलता रहेगा जिस प्रकार प्रत्येक प्रांत निश्चय करेगा। इस प्रस्ताव के अगले अंशों में लोगों को स्वयंसेवक बनने के लिए प्रोत्साहित किया गया। स्वयं-सेवक के लिए कुछ प्रतिज्ञाएँ भी निश्चित की गईं। प्रतिज्ञाएँ इस प्रकार थीं:—

ईश्वर को साक्षी करके मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि:—

(१) मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ का सदस्य होना चाहता हूं।

(२) जबतक मैं संघ का सदस्य रहूंगा तबतक वचन और कर्म में अहिंसात्मक रहूंगा।

(३) मुझे साम्प्रदायिक एकता पर विश्वास है और उसकी उन्नति के लिए मैं सदैव प्रयत्न करता रहूंगा।

(४) मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष के आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक उद्धार के लिए स्वदेशी का प्रयोग आवश्यक है और मैं दूसरी तरह के सब कपड़ों को छोड़कर केवल हाथ के कते और बुने खद्दर का ही इस्तेमाल करूंगा।

(५) हिन्दू होने की हैसियत से मैं अस्पृश्यता को दूर करने की न्यायपरता और आवश्यकता पर विश्वास करता हूं।

(६) मैं अपने धर्म और अपने देश के लिए बिना विरोध किये जेल जाने, आघात सहने और मरने तक के लिए तैयार हूं।

(७) अगर मैं जेल जाऊंगा तो अपने कुटुम्बियों या जो लोग मुझ पर निर्भर हैं, उनकी सहायता के लिए कांग्रेस से कुछ नहीं मांगूंगा।

सर्वदल-सम्मेलन : १९२२

अहमदाबाद कांग्रेस के समाप्त होते ही कांग्रेस के मित्रों ने, जो उसका नया कार्यक्रम स्वीकार नहीं कर सकते थे, कांग्रेस और सरकार में समझौता कराने की उत्सुकता प्रकट की। अभी अहमदाबाद के प्रस्तावों की स्याही सूखने भी न पाई थी कि १४, १५ और १६ फरवरी को बम्बई में एक सर्व-दल-सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें भिन्न-भिन्न दलों के लगभग ३०० सज्जनों ने भाग लिया। सम्मेलन के आयोजकों ने एक ऐसा प्रस्ताव तैयार करने की बात सोची जिसके आधार पर अस्थायी-संधि की बात चलाई जा सके। गांधीजी ने असहयोगियों की स्थिति साफ करते हुए कहा कि मैं वैधानिक रूप से सम्मेलन में भाग न ले सकूंगा, पर मैं सम्मेलन की सहायता अवश्य करुंगा। इसका कारण उन्होंने बताया कि सरकार की तरफ से दमन बराबर जारी है और जबतक सरकार के मन में उसके प्रति पश्चात्ताप नहीं है तबतक ऐसे सर्वदल-सम्मेलन करने से कोई लाभ नहीं। सम्मेलन के बीस सज्जनों की एक विषय-समिति ने जो प्रस्ताव तैयार किया था वह सम्मेलन के इजलास में रखा गया। गांधीजी ने फिर असहयोगियों की स्थिति स्पष्ट की। सर शंकरन् नायर इस सम्मेलन के सभापति थे। उन्होंने इस प्रस्ताव को ना-पसंद किया और सम्मेलन छोड़कर चले गये। उनका स्थान सर एम० विश्वेश्वरय्या ने लिया। सम्मेलन ने एक ऐसा प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किया जिसमें सरकार की दमन-नीति को धिक्कारा गया था और साथ ही यह भी सलाह दी गई थी कि जबतक समझौते की बात-चीत चलती रहे, अहमदाबाद के प्रस्ताव के अनुसार सत्याग्रह शुरू न किया जाय। इस प्रस्ताव के द्वारा एक ऐसी गोलमेज-परिषद् शीघ्र ही बुलाने की पुष्टि की गई जिसे खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य-सम्बन्धी मामलों पर समझौता करने का अधिकार हो, और साथ ही जो देश में अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के अंतर्गत संस्थाओं

को गैर-कानूनी करार देनेवाले सारे आदेशों तथा राजद्रोहात्मक सभाबन्दी-कानून आदि को रद करने के लिए सरकार से अनुरोध करे। कमेटी के जिम्मे उन मुकदमों की जांच का भी काम सुपुर्द किया गया जिनके मातहत आन्दोलन में भाग लेनेवालों को साधारण कानून के अनुसार सजा दी गई थी। कांग्रेस की कार्य-समिति ने अपनी ७ जनवरी को बैठक में इन प्रस्तावों को पुष्टि कर दी और सत्याग्रह उस महीने के अन्त तक के लिए मुल्तवी कर दिया, परन्तु वाइसराय ने सम्मेलन की शर्तों को मंजूर करने से इंकार कर दिया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि कलकत्ते में लॉर्ड रीडिंग ने जो आश्वासन दिया था वह कितना खोखला था।

अन्तिम चेतावनी

३१ जनवरी १९२२ को कार्य-समिति की बैठक में बारडोली ताल्लुका-परिषद का प्रस्ताव पेश हुआ, जिस पर विचार करने के बाद ताल्लुका के लोगों को सामूहिक सत्याग्रह-द्वारा आत्म-बलिदान करने के निश्चय पर बधाई दी गई। कार्य-समिति ने भारतवर्ष के अन्य सारे भागों को सलाह दी कि वे बारडोली के साथ सहयोग करें और उस समय तक किसी प्रकार का सामूहिक सत्याग्रह न करें जबतक उन्हें महात्मा गांधी की अनुमति पहले से प्राप्त न हो जाय। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप १ फरवरी को गांधीजी ने वाइसराय के नाम एक पत्र लिखा जिसमें कहा गया कि 'पेश्तर इसके कि बारडोली की जनता सचमुच सत्याग्रह आरम्भ करे, आपके सरकार के प्रधान अफसर होने की हैसियत से, मैं आपसे एक बार फिर अनुरोध करता हूं कि आप अपनी नीति में परिवर्तन करें और उन सारे असहयोगी कैदियों को मुक्त कर दें जो अहिंसात्मक-कार्यों के लिए जेल गये हैं या जिनका मामला अभी विचाराधीन है। मैं आपसे यह भी अनुरोध करता हूं कि आप साफ-साफ शब्दों में देश की सारी अहिंसात्मक हलचल में--- चाहे वह खिलाफत के सम्बन्ध में हो, चाहे पंजाब या स्वराज्य के सम्बन्ध में, अथवा चाहे और किसी विषय में हो, यहां तक कि वह ताज़ीरात हिंद या जाब्ता फौजदारी की दमनकारी धाराओं के या दूसरे दमनकारी कानूनों के भीतर क्यों न आती हो---सरकार की तटस्थता की घोषणा कर दें। हां, अहिंसा की शर्त अवश्य हमेशा लागू रहे। मैं आपसे यह भी अनुरोध करूंगा कि आप प्रेस पर से कड़ाई उठा लें और हाल में जो जुर्माने किये गये हैं उन्हें वापस करा दें। मैं आपसे जो यह करने का अनुरोध कर रहा हूं, सो संसार के उन सभी देशों में किया जा रहा है, जहां की सरकारें सभ्य हैं। यदि आप सात दिन के भीतर इस प्रकार की घोषणा कर दें तो मैं उस समय तक के लिए उग्र सत्याग्रह मुल्तवी करने की सलाह दूंगा जब तक सारे कैदी छूटकर नये सिरे से अवस्था पर विचार न कर लें। यदि सरकार उक्त प्रकार की घोषणा कर दे तो मैं उसे सरकार की ओर से लोकमत के अनुकूल कार्य करने की इच्छा का सबूत समझूंगा और फिर

नि:संकोच भाव से सलाह दूंगा कि दूसरे पर हिंसात्मक दबाव न डालते हुए देश अपनी निश्चित मांगों की पूर्ति के लिए और भी ठोस लोकमत तैयार करे। ऐसी अवस्था में उग्र सत्याग्रह तभी किया जायगा जब सरकार बिलकुल तटस्थ रहने की नीति का परित्याग करेगी, अथवा जब वह भारत के अधिकांश जन-समुदाय की स्पष्ट मांगों को मानने से इंकार कर देगी।' भारत-सरकार ने तुरन्त ही गांधीजी के इस वक्तव्य का उत्तर छपवाया, जिसमें दमन-नीति का यह कहकर समर्थन किया गया कि यह नीति बम्बई के दंगों, अनेक स्थानों पर खतरनाक और गैर-कानूनी प्रदर्शनों और स्वयंसेवक-दलों द्वारा हिंसा, डराने-धमकाने और दूसरे के काम-काज में बाधा डालने के फल-स्वरूप है।

हिंसात्मक प्रवृत्ति का प्रभाव

पर कांग्रेस के सिर पर एक अशुभ मंडरा रहा था। ५ फरवरी को उत्तर प्रदेश में गोरखपुर के निकट चौरी-चौरा में एक कांग्रेस-जलूस निकाला गया। इस अवसर पर २१ सिपाहियों और एक थानेदार को भीड़ ने एक थाने में खदेड़ दिया और आग लगादी। वे सब आग में जल मरे। उधर ऐसे ही हत्याकांड १३ जनवरी को मद्रास में तथा १७ नवम्बर को बम्बई में हो चुके थे। यह देखकर १२ फरवरी को बारडोली में कार्य-समिति की एक बैठक हुई, जिसमें इन घटनाओं के कारण सामूहिक सत्याग्रह आरम्भ करने का विचार छोड़ दिया गया। कांग्रेसियों से अनुरोध किया गया कि गिरफ्तार होने और सजा पाने के लिए कोई काम न किया जाय और स्वयंसेवकों का संगठन और सभायें केवल सरकार की आज्ञा को तोड़ने के लिए न की जायं। एक रचनात्मक-कार्यक्रम तैयार किया गया जिसमें कांग्रेस के लिए एक करोड़ सदस्य भरती करना, चर्खे का प्रचार, राष्ट्रीय विद्यालयों को खोलना और मादक द्रव्य-निषेध का प्रचार और पंचायत संगठित करना आदि शामिल था। २४ और २५ फरवरी को दिल्ली में महासमिति की बैठक हुई। उसमें कार्यसमिति के बारडोली-सम्बन्धी लगभग सारे प्रस्तावों का समर्थन हुआ। हां, व्यक्तिगत रूप से किसी खास कानून के खिलाफ सत्याग्रह करने की अनुमति अवश्य दे दी गई। महासमिति ने व्यक्तिगत-सत्याग्रह की यह परिभाषा की कि व्यक्तिगत सत्याग्रह वह है जिसके अनुसार एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के द्वारा किसी सरकारी आज्ञा या कानून का उल्लंघन किया जाय। इस प्रस्ताव से मध्यस्थ लोगों में हलचल मच गई। पण्डित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय ने जेल के भीतर से लम्बे-लम्बे पत्र लिखे। उन्होंने गांधीजी को किसी एक स्थान के पाप के कारण सारे देश को दण्ड देने के लिए आड़े हाथों लिया। बंगाल और महाराष्ट्र तो गांधीजी पर टूट पड़े। बाबू हरदयाल नाग जैसे गांधी-भक्त ने बगावत का झण्डा खड़ा किया। बारडोली के प्रस्तावों की एक-एक सतर की कड़ी आलोचना

की गई। महासमिति की बैठक में डॉ० मुंजे ने गांधीजी के विरुद्ध निंदा का प्रस्ताव पेश किया और कुछ सज्जनों ने भाषणों द्वारा उनका समर्थन भी किया। पर राय लेने के वक्त केवल उन्हीं सज्जनों ने प्रस्ताव के लिए मत दिय जो गांधीजी के विरुद्ध बोले थे। गांधीजी ने इस प्रस्ताव के विरोध में किसी को बोलने की अनुमति न दी। तूफान आया और निकल गया और गांधीजी उसी प्रकार पर्वत की भांति अचल रहे।

गांधीजी की गिरफ्तारी

पांसा पड़ चुका था। अब गांधीजी को धर दबोचने की सरकार की बारी थी। कोई भी सरकार देश में किसी नेता पर उस समय हमला नहीं करती जब उसकी लोक-प्रियता बढ़ी हुई हो। वह सब्र के साथ अपना अवसर देखती रहती है और जब सेना पीछे हटने लगती है तब दुश्मन अपने पूरे वेग के साथ आ टूटता है। १३ मार्च को गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये, यद्यपि उनकी गिरफ्तारी का निश्चय फरवरी के अन्तिम सप्ताह में ही कर लिया गया था। गांधीजी को राजद्रोह के अपराध में सेशन सुपुर्द कर दिया गया। यह 'ऐतिहासिक मुकदमा' १८ मार्च को अहमदाबाद में आरम्भ हुआ। सरोजिनी देवी ने एक छोटी-सी पुस्तक की भूमिका में लिखा है, "जिस समय गांधीजी के कृश, शान्त और अजेय-देह ने अपने भक्त, शिष्य और सहबन्दी-शंकरलाल बैंकर के साथ अदालत में प्रवेश किया उस समय कानून की निगाह में इस कैदी और अपराधी के सम्मान के लिए सब एक साथ उठ खड़े हुए।" कानूनी अहलकारों ने तीन लेख छांटे जिनके लिए गांधीजी पर मुकदमा चलाया गया था: (१) 'राजभक्ति में दखल', (२) 'समस्या और उसका हल', (३) 'गर्जन-तर्जन'। ज्यों ही अभियोग पढ़कर सुनाये गये, गांधीजी ने अपना अपराध स्वीकार किया। श्री बैंकर ने भी अपने को अपराधी कबूल किया। इसके बाद गांधीजी ने अपना लिखित बयान पढ़ा, जो निम्न प्रकार है :—

गांधीजी का वक्तव्य

"यह जो मुकदमा चलाया जा रहा है वह इंग्लैण्ड की जनता को सन्तुष्ट करने के लिए है। इसलिए मेरा कर्तव्य है कि मैं इंग्लैण्ड और भारत की जनता को यह बता दूं कि मैं कट्टर सहयोगी से पक्का राजद्रोही और असहयोगी कैसे बन गया। मैं अदालत को भी बताऊंगा कि मैं इस सरकार के प्रति, जो देश में कानूनन कायम हुई है, राजद्रोहपूर्ण आचरण करने के लिये अपने आपको दोषी क्यों मानता हूं।

"मेरे सार्वजनिक जीवन का आरम्भ १८९३ में दक्षिण-अफ्रीका की विषम परिस्थिति में हुआ। उस देश के ब्रिटिश अधिकारियों के साथ मेरा पहला समागम कुछ अच्छा न रहा। मुझे पता लगा कि एक मनुष्य और एक हिन्दुस्तानी के नाते

वहां मेरा कोई अधिकार नहीं है। मैंने यह भी पता लगा लिया कि मनुष्य के नाते मेरा कोई अधिकार इसलिए नहीं है, क्योंकि मैं हिन्दुस्तानी हूँ।

"पर मैंने हिम्मत न हारी। मैंने समझा था कि भारतीयों के साथ जो दुर्व्यवहार किया जा रहा है वह दोष एक अच्छी-खासी शासन-व्यवस्था में यों ही आकर घुस गया है। मैंने खुद ही दिल से सरकार के साथ सहयोग किया। जब कभी मैंने सरकार में कोई दोष पाया तब मैंने उसकी खूब आलोचना की, पर मैंने उसके विनाश की इच्छा कभी नहीं की।

"जब १८९० में बोअरों की चुनौती ने सारे ब्रिटिश-साम्राज्य को महान विपद में डाल दिया, उस अवसर पर मैंने उसे अपनी सेवायें भेंट कीं—घायलों के लिए एक स्वयंसेवक-दल बनाया और लेडी स्मिथ की रक्षा के लिए जो कुछ लड़ाइयां लड़ी गईं, उनमें काम किया। इसी प्रकार जब १९०६ में जूलू लोगों ने विद्रोह किया तब मैंने स्ट्रेचर पर घायलों को ले जानेवाला दल संगठित किया और जबतक 'विद्रोह' दब न गया, बराबर काम करता रहा। इन दोनों अवसरों पर मुझे पदक मिले और खरीतों तक में मेरा जिक्र किया गया। दक्षिण अफ्रीका में मैंने जो काम किया उसके लिए लार्ड हार्डिंग ने मुझे कैसर-ए-हिन्द पदक दिया। जब १९१४ में इंग्लैंड और जर्मनी में युद्ध छिड़ गया तब मैंने लन्दन में हिन्दुस्तानियों का एक स्वयं-सेवक दल बनाया। इस दल में मुख्यतः विद्यार्थी थे। अधिकारियों ने इस दल के काम की सराहना की। जब १९१७ में लार्ड चेम्सफोर्ड ने दिल्ली की युद्ध-परिषद् में खास तौर से अपील की तब मैंने खेड़ा में रंगरूट भर्ती करते हुए अपने स्वास्थ्य तक को जोखिम में डाल दिया। मुझे इसमें सफलता मिल ही रहा था कि युद्ध बन्द हो गया और आज्ञा हुई कि अब और रंगरूट नहीं चाहिए। इन सारे सेवा-कार्यों में मेरा एक मात्र यही विश्वास रहा कि इस प्रकार मैं साम्राज्य में अपने देशवासियों के लिए बराबरी का दर्जा हासिल कर सकूंगा।

"पहला धक्का मुझे रौलट-ऐक्ट ने दिया। यह कानून जानता की वास्तविक स्वतन्त्रता का अपहरण करने के लिए बनाया गया था। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि इस कानून के खिलाफ मुझे जोर का आन्दोलन करना चाहिए। इसके बाद पंजाब के भीषण काण्ड का नम्बर आया। इसका आरम्भ जलियांवाला बाग के कत्ले-आम से और अन्त में पेट के बल रेंगाने, खुले आम बेंत लगाने और दूसरे बयान से बाहर अपमानजनक कारनामों के साथ हुआ। मुझे यह भी पता लग गया कि प्रधान-मन्त्री ने भारत के मुसलमानों को जो आश्वासन दिया कि तुर्की और इस्लाम के तीर्थ-स्थानों की पवित्रता बदस्तूर रखी जायगी, वह कोरा आश्वासन ही रहेगा।

"वैसे १९१९ की अमृतसर-कांग्रेस में अनेक मित्रों ने मुझे सावधान किया और मेरी नीति की सार्थकता में संदेह प्रकट किया, पर फिर भी मैं इस विश्वास पर अड़ा रहा कि भारतीय मुसलमानों के साथ प्रधान-मंत्री ने जो वादा किया है उसका पालन

किया जायगा, पंजाब के जख्मों को भरा जायगा और नाकाफी और असन्तोष जनक होने पर भी सुधार भारत के जीवन में एक नई आशा को जन्म देंगे। फलतः मैं सहयोग और मांटेगु-चेम्सफोर्ड-सुधारों को सफल बनाने की बात पर अड़ा रहा ।

"पर मेरी सारी आशायें धूल में मिल गईं । खिलाफत-सम्बन्धी वचन पूरा किया जानेवाला नहीं था । पंजाब-सम्बन्धी अपराध पर लीपापोती कर दी गई थी । इधर अधपेट भूखे रहनेवाले भारतवासी धीरे-धीरे निर्जीव होते जा रहे हैं । वे यह नहीं समझते कि उन्हें जो थोड़ा-सा सुख-ऐश्वर्य मिल जाता है वह विदेशी शोषक की दलाली करने के कारण है और सारा नफा और सारी दलाली जनता के खून से निकाली जाती है । वे यह नहीं जानते कि ब्रिटिश-भारत में जो सरकार कानूनन कायम है वह इसी जनता के धन-शोषण के लिए चलाई जाती है । चाहे जितने झूठे-सच्चे तर्क से काम लिया जाय, हिन्दुस्तान के साथ चाहे जैसी चालाकी की जाय असंख्य गावों में जो नर-कंकाल दिखाई पड़ रहे हैं उनकी प्रत्यक्ष गवाही को किसी तरह नहीं झुठलाया जा सकता । यदि हमारा कोई ईश्वर है, तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इतिहास में जो यह अपने ढंग का निराला अपराध किया जा रहा है उसकी जवाबदेही इंग्लैंड की जनता और हिन्दुस्तान के नागरवासियों को करनी होगी । इस देश में कानून का उपयोग विदेशी धन-शोषकों के सुभीते के लिए किया गया है । पंजाब के फौजी कानून के सम्बन्ध में मैंने जो निष्पक्ष जांच की है, उससे मैं इस नतीजे पर पहुंचता हूं कि १०० पीछे ९५ मामलों में सजा के फैसले बिलकुल खराब रहे । हिन्दुस्तान के राजनैतिक मुकदमों का तजर्बा मुझे बताता है कि दस पीछे नौ दण्डित आदमी सोलह आने निर्दोष थे । इन आदमियों का केवल इतना ही अपराध था कि वे अपने देश से प्रेम करते थे । १०० पीछे ९९ मामलों में देखा गया है कि हिन्दुस्तान की अदालतों में हिन्दुस्तानी को यूरोपियन के मुकाबले में न्याय नहीं मिलता । मैं अतिशयोक्ति से काम नहीं ले रहा हूं । जिस-जिस भारतवासी को इस तरह के मामलों से काम पड़ा है उसका यही अनुभव है ।

"सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात यह है कि जिन अंग्रेजों और उनके हिन्दुस्तानी सहयोगियों के जिम्मे इस देश का शासन-भार है वे खुद यह नहीं जानते कि मैंने जिस अपराध का वर्णन किया है उसमें उनका हाथ है । मैं अच्छी तरह जानता हूं कि बहुत-से अंग्रेज और हिन्दुस्तानी अधिकारी हृदय से इस बात में विश्वास रखते हैं कि वे जिस शासन-व्यवस्था को अमल में ला रहे हैं वह संसार की बढ़िया-से-बढ़िया शासन-व्यवस्थाओं में से है और हिन्दुस्तान धीरे-धीरे परन्तु निश्चित रूप से उन्नति कर रहा है । वे यह नहीं जानते कि कैसे सूक्ष्म परन्तु कारामद ढंग से आतंक का सिक्का बैठाया गया है और किस तरह एक ओर शक्ति का

संगठित प्रदर्शन करके और दूसरी ओर आत्म-रक्षा या बदले में प्रहार करने की तमाम शक्तियां छीनकर लोगों को निःसत्व और पौरुषहीन बना दिया गया है। जिस धारा के अंतर्गत मुझ पर मुकदमा चलाया गया है वह नागरिकों की आजादी का अपहरण करने में ताजीरात हिंद की धाराओं में सिरताज है। प्रेम न तो उत्पन्न किया जा सकता है, न कायदे-कानून के मातहत रह सकता है। यदि किसी आदमी के हृदय में किसी दूसरे आदमी के प्रति प्रेम के भाव न हों, तो जबतक वह हिंसा-पूर्ण कार्य या विचार या प्रेरणा न करे तबतक उसे अपने अप्रीति के भाव प्रकट करने का पूरा अधिकार होना चाहिए। पर श्रीयुत बैंकर पर और मुझपर जिस धारा का प्रयोग किया गया है उसके अनुसार अप्रीति फैलाना अपराध है। इस धारा के अंतर्गत चलाये गये कुछ मामलों का मैंने अध्ययन किया है, और मैं जानता हूं कि इस धारा के अनुसार देश के कई परम प्रिय देश-भक्तों को सजा दी गई है। इसलिए मुझपर जो इस धारा के अनुसार मामला चलाया गया है उसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। मैंने संक्षेप में अपनी अप्रीति के कारणों का दिग्दर्शन करा दिया है। किसी शासक के प्रति मेरे मन में किसी प्रकार का दुर्भाव नहीं है, और स्वयं सम्राट् के व्यक्तित्व के प्रति तो मुझ में अप्रीति का भाव बिलकुल है ही नहीं। परन्तु जिस शासन-व्यवस्था ने इस देश को अन्य सारी शासन-व्यवस्थाओं की अपेक्षा अधिक हानि पहुंचाई है उसके प्रति अप्रीति के भाव रखना मैं सद्गुण समझता हूं। अंग्रेजों की अमलदारी में हिन्दुस्तान में पुरुषत्व का अन्य अमलदारियों की अपेक्षा अधिक अभाव हो गया है। जब मेरी ऐसी धारणा है तब इस शासन व्यवस्था के प्रति प्रेम के भाव रखना मैं पाप समझता हूँ और इसलिए मैंने अपने इन लेखों में, जो मेरे खिलाफ प्रमाण के तौर पर पेश किये गये हैं, जो कुछ लिखा है उसे लिख पाना अपना परम सौभाग्य समझता हूँ।

"वास्तव में मेरा विश्वास तो यह है कि इंग्लैण्ड और भारत जिस अ-प्राकृतिक रूप से रह रहे हैं, मैंने असहयोग के द्वारा उससे उद्धार पाने का मार्ग बताकर दोनों की एक सेवा की है। मेरी विनम्र सम्मति में जिस प्रकार अच्छाई से सहयोग करना कर्त्तव्य है उसी प्रकार बुराई से असहयोग करना भी कर्तव्य है। इससे पहले बुराई करनेवाले को क्षति पहुंचाने के लिए असहयोग को हिंसात्मक ढंग से प्रकट किया जाता रहा है। पर मैं अपने देशवासियों को यह बताने की चेष्टा कर रहा हूँ कि हिंसा बुराई को कायम रखती है,इसलिए बुराई की जड़ काटने के लिए यह आवश्यक है कि हिंसा से बिलकुल अलग रहे। अहिंसा का मतलब यह है कि बुराई से असहयोग करने के लिए जो कुछ भी दण्ड मिले उसे स्वीकार कर ले। इसलिए मैं यहां उस कार्य के लिए जो कानून की निगाह में जान-बूझकर किया गया अपराध है और जो मेरी निगाह में किसी नागरिक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, सबसे बड़ा दण्ड चाहता हूँ और उसे सहर्ष ग्रहण करने को तैयार हूँ। आपके जज और

असेसरों के सामने सिर्फ दो ही मार्ग हैं। यदि आप लोग हृदय से समझते हैं कि जिस कानून का प्रयोग करने के लिए आपसे कहा गया है, वह बुरा है और मैं निर्दोष हूँ, तो आप लोग अपने-अपने पदों से इस्तीफा दे दें और बुराई से अपना सम्बन्ध अलग कर लें; अथवा यदि आपका विश्वास हो कि जिस कानून का प्रयोग करने में आप सहायता दे रहे हैं वह वास्तव में इस देश की जनता के मंगल के लिए है और मेरा आचरण लोगों के अहित के लिए है, तो मुझे बड़े-से-बड़ा दण्ड दें।''

जज ने फैसले में लोकमान्य तिलक का दृष्टान्त देते हुए गांधीजी को छः वर्ष की सजा दी और श्री शंकरलाल बैंकर को एक वर्ष की सजा और १०००) जुर्माने का दण्ड हुआ। जुर्माना न देने पर छः मास और। गांधीजी ने गिने-चुने शब्दों में उत्तर दिया, जिसमें उन्होंने कहा कि यह मेरे लिए परम-सौभाग्य की बात है कि मेरा नाम लोकमान्य तिलक के नाम के साथ जोड़ा गया है। उन्होंने जज को सजा देने के मामले में विचारशीलता से काम लेने के लिए और उसकी शिष्टता के लिए धन्यवाद दिया। अदालत में उपस्थित लोगों ने गांधीजी को बिदा किया। बहुतों की आंखों में आंसू भी भरे हुए थे।

गिरफ्तारी के बाद

गांधीजी की सजा के बाद तीन महीने तक कार्य-समिति काम-काज को ठीक-ठाक करती रही। खद्दर-विभाग सेठ जमनालाल बजाज के जिम्मे कर दिया गया और ५ लाख रुपये उनके हाथ में रखने का निश्चय किया गया। मालाबार के कष्ट-निवारण के लिए कमिटी ने ८४,०००) की मंजूरी दी। सेठ जमनालाल बजाज ने वकीलों के भरण-पोषण के लिए उदारतापूर्वक एक लाख रुपया और भी दिया। खद्दर के अनिवार्य 'उपयोग' का अर्थ 'पहनना' लगाया गया। असहयोगी वकीलों को एक बार फिर चेतावनी दी गई कि वे मुकदमे हाथ में न लें, और असहयोगियों को आदेश दिया गया कि वे अपनी पैरवी न करें। एक कमिटी बनाई गई, जिसके जिम्मे मोपला-विद्रोह की जांच करने तथा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित कराने का काम दिया गया। अस्पृश्यता-निवारण-संबंधी योजना बनाने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गयी। ७, ८ और ९ जून १९२२ को लखनऊ में महासमिति की बैठक हुई, जिसमें ऊपर लिखी और अन्य सिफारिशों पर विचार किया गया। वास्तव में महासमिति का काम था असहयोग, सविनय-भंग और सत्याग्रह के सिद्धान्त और व्यवहार का मूल्य फिर से निश्चित करना और उनके विज्ञान और कला का सिंहावलोकन करना। देशबन्धुदास और विट्ठलभाई पटेल-जैसे चोटी के नेता, ऐसा असहयोग चाहते थे जिसका प्रवेश खास नौकरशाही के गढ़ में हो सके। महासमिति ने इस बात पर विचार किया। वाद-विवाद के पश्चात् इस बात को अगस्त के लिए स्थगित कर दिया गया। साथ ही सभापति से अनुरोध किया गया

कि कुछ सज्जनों को देश का दौरा करके वर्तमान हालत की रिपोर्ट आगामी कमिटी में पेश करने के लिए नियुक्त किया जाय। तदनुसार सभापति ने पण्डित मोतीलाल नेहरू, डा० अन्सारी, श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल, सेठ जमनालाल बजाज, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और सेठ छोटानी को नियुक्त किया। हकीम अजमलखां को कमिटी का अध्यक्ष बनाया गया। सेठ जमनालाल ने नियुक्ति स्वीकार न की। इसलिए उनके स्थान पर श्री एस० कस्तूरी रंगा आयंगर को नियुक्त किया गया। सेठ छोटानी शरीक न हो सके।

बोरसद-सत्याग्रह

इसी बीच एक ऐसी घटना हो गई जिसके साथ बोरसद का नाम जुड़ा हुआ है। यह सत्याग्रह १९२२ में बोरसद में हुआ। कुछ दिनों से बोरसद-ताल्लुका में देवर बाबा नाम का एक छटा हुआ डाकू उपद्रव कर रहा था। उधर एक मुसलमान डाकू उठ खड़ा हुआ और देवर बाबा के मुकाबले में छापे मारने लगा। पुलिस लाचार थी। सरकार ने अपना सबसे बढ़िया अफसर इस काम पर नियुक्त किया, पर उसे भी सफलता न हुई। बड़ौदा-पुलिस भी उपद्रवियों का पता लगाना चाहती थी, क्योंकि बड़ौदा रियासत बोरसद के बगल में ही है। अन्त में ताल्लुके और रियासत के पुलिस तथा रेवेन्यू अफसरों ने मिलकर अपराधियों का पता लगाने की एक तरकीब सोच निकाली। उन्होंने देवर बाबा को पकड़ने के लिए मुसलमान डाकू को मिला लिया। मुसलमान डाकू इस शर्त पर राजी हुआ कि उसके पास हथियार रहें और ४-५ सशस्त्र सिपाही दिये जायं। अधिकारी राजी हो गये। चोर को पकड़ने के लिए चोर नियुक्त किया गया। पर पुलिस के इस नये साथी ने अपने आदमियों और हथियारों का उपयोग तहसील में और भी धूम-धड़ाके के साथ लूटमार करने में किया।

अपराधों की संख्या बढ़ी। अन्त में सरकार ने सोचा कि इन अपराधों में गांववालों की भी साजिश है। तहसील में दण्ड-स्वरूप अतिरिक्त-पुलिस बैठाई गई और एक भारी ताजीरी-कर भी लोगों पर लगा दिया। यह कर बेरहमी के साथ वसूल किया जाने लगा। इसी बीच गुजरात के नेताओं को पुलिस और मुसलमान डाकू के समझौते का पता चल गया। श्री वल्लभभाई पटेल ने इस मामले में सरकार को चुनौती दी। वह बोरसद गये और लोगों से कर न देने को कहा। जिन लोगों को डाकुओं ने घायल किया था उनके शरीर से गोलियां निकाली गई इससे साबित हुआ कि गोलियां सरकारी हैं। अब कोई सन्देह न रहा कि डाकुओं ने सरकारी गोलियां और सरकारी रायफलों का उपयोग किया है। श्री वल्लभभाई पटेल ने २०० स्वयंसेवक रात दिन चौकी-पहरा देने के लिए तैनात किये। लोग कई हफ्तों से शाम से ही घरों के दरवाजे बन्द कर लेते थे। श्री पटेल ने उन्हें

दरवाजे खुले रखने को राजी किया। गांववालों ने फोटो की तसवीरों द्वारा प्रमाणित कर दिया कि ताल्लुके में जो ताजीरी पुलिस नियुक्त की गई है उसके आदमी भीतर से स्वयं दरवाजे बन्द कर देते हैं और बाहर से भी ताले लगा देते हैं, जिससे डाकुओं को भ्रम हो जाय कि घर खाली हैं। बाहर जहाँ जरा-सा शोर हुआ कि पुलिसवाले अपनी चारपाइयों के नीचे घुस जाते थे। फोटो की तसवीरों के द्वारा ये सारी बातें बिलकुल सच्ची साबित हुईं। अब सरकार के आगे दो मार्ग थे: या तो वह इस प्रकार के अभियोग लगानेवालों पर मुकदमा चलाती, या चुप्पी साधकर अपने-आपको कसूरवार साबित करती। जब इस प्रकार के अभियोग लगाये गये, तब बड़ौदा-पुलिस गांवों से झटपट रियासत में हटा ली गई। पर ब्रिटिश पुलिस उसी प्रकार बनी रही और ताजीरी-कर के लिए सामान कुर्क करती रही। इसी समय बम्बई के गवर्नर लॉर्ड लायड भारत से चले गये और उनका स्थान सर लेसली विल्सन ने लिया। जब उन्होंने बोरसद की कथा सुनी तब वहां तत्काल होम-मेम्बर को भेजा जिसने सारी बातों की तसदीक कराई और उसी समय पुलिस हटा ली गई। देवर बाबा वल्लभभाई और स्वयंसेवकों के पहुंचते ही वहां से गायब हो गया।

सत्याग्रह-समिति की रिपोर्ट

इसके बाद सत्याग्रह-कमिटी ने देश-भर का दौरा किया। लोगों का उत्साह भंग न हुआ था। कमिटी के सदस्य जहां कहीं गये, उनका जोरदार स्वागत हुआ। कमिटी ने अपना काम समाप्त करके रिपोर्ट पेश की। आरम्भ में महासमिति इसकी चर्चा १५ अगस्त की बैठक में करना चाहती थी; पर ऐसा न हो सका। सत्याग्रह-कमिटी की रिपोर्ट तैयार करने में जो-जो शक्तियाँ काम कर रही थीं उनके सम्बन्ध में विशेष सिफारिशें संक्षेप में यहाँ दी जाती हैं—

१. **सत्याग्रह**—देश फिलहाल छोटे पैमाने पर या सामूकि-सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है, जैसे किसी खास कानून का भंग अथवा किसी खास कर की गैर-अदायगी। हम सिफारिश करते हैं कि प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को अधिकार दे दिया जाय कि यदि महासमिति की सत्याग्रह-सम्बन्धी शर्त पूरी होती हो तो वे अपनी जिम्मेदारी पर छोटे पैमाने पर सामूहिक-सत्याग्रह की मंजूरी दे सकते हैं।

२. **कौंसिल-प्रवेश**—कौंसिल प्रवेश के संबंध में डा० एम० ए० अनसारी, राजगोपालाचार्य तथा एस० कस्तूरी रंगाअयंगर की सिफारिश थी कि कांग्रेस की नीति में तत्संबंधी किसी प्रकार का परिवर्तन न किया जाय। इसके विरुद्ध हकीम अजमल खां, पं० मोतीलाल नेहरू और वल्लभ भाई पटेल का मत था कि :—

(१) असहयोगियों को उम्मीदवारी के लिए पंजाब और खिलाफत की

दादरसी और तत्काल स्वराज्य-प्राप्ति के उद्देश्य से खड़ा होना चाहिए और अधिक-से-अधिक संख्या में पहुँचने की कोशिश करनी चाहिए।

(२) यदि असहयोगी इतनी अधिक संख्या में पहुंच जायं कि उनके बग़ैर कोरम पूरा न हो सके तो उन्हें कौंसिल-भवन में जाकर बैठने के बजाय एक साथ वहाँ से चले आना चाहिए और फिर किसी बैठक में शरीक न होना चाहिए। बीच-बीच में वे कौंसिल में केवल इसलिए जायँ कि उनके रिक्त स्थान पूरे न हो सकें।

(३) यदि असहयोगी इतनी संख्या में पहुंचें कि अधिक होने पर भी उनके बिना कोरम पूरा हो सकता हो, तो उन्हें हरेक सरकारी कार्रवाई का जिसमें बजट भी शामिल है, विरोध करना चाहिए और केवल पंजाब, खिलाफत और स्वराज्य-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने चाहिए।

(४) यदि असहयोगी अल्पसंख्या में पहुंचें तो उन्हें वही करना चाहिए जो नं० २ में बताया गया है, और इस प्रकार कौंसिल के बल को घटाना चाहिए।

(५) कौंसिलों के बहिष्कार के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन न होना चाहिए।

३. स्थानीय संस्थाएँ—हमारी सिफारिश है कि असहयोगी रचनात्मक कार्यक्रम को अमली शक्ल में देने के लिए म्युनिसिपैलिटियों, जिला और लोकल बोर्डों की उम्मीदवारी के लिए खड़े हों, परन्तु असहयोगी सदस्यों के वहां आचरण के सम्बन्ध में अभी किसी खास ढंग के नियम-उपनियम न बनाये जायँ।

४. स्कूल-कालेजों का बहिष्कार—स्कूल-कालेजों के सम्बन्ध में हमारी सिफारिश है कि मौजूदा जोरदार प्रचार बन्द करके विद्यार्थियों को स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार करने की सलाह न देनी चाहिए।

५. अदालतों का बहिष्कार—पंचायतें स्थापित करने की कोशिश करनी चाहिए और इस ओर लोक-प्रवृत्ति जाग्रत करनी चाहिए। हमारी यह भी सिफारिश है कि इस समय वकीलों पर जो प्रतिबंध लगे हुए हैं, उन्हें उठा लेना चाहिए।

६. आत्मरक्षा का अधिकार—सबका मत था कि कानून के भीतर आत्म-रक्षा करने की स्वतन्त्रता सब को दी जाय। इस बात का हमेशा खयाल रहे कि इससे खुल्लम-खुल्ला हिंसा की नौबत न आ जाय। धर्म के मामले में, स्त्रियों की रक्षा करने में, या लड़कों और पुरुषों पर अनुचित अत्याचार होने पर शारीरिक बल का प्रयोग किसी हालत में मना नहीं है। श्री पटेल का मत था कि असहयोगियों को कानून के भीतर आत्म-रक्षा करने का अधिकार रहना चाहिए; शर्त सिर्फ यही रहनी चाहिए कि इससे सामूहिक हिंसा की नौबत न आ जाय।

७. अंग्रेजी माल का बहिष्कार—सब की राय थी कि हम इसे सिद्धांत-रूप में स्वीकार करते हैं और सिफारिश करते हैं कि इस प्रश्न को विशेषज्ञों के सुपुर्द करना चाहिए और उनकी विशद रिपोर्ट कांग्रेस के पहले आ जानी चाहिए।

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य का मत था कि विशेषज्ञों की सारी बातों के संग्रह करने और उनकी जांच-पड़ताल करने में कोई हानि नहीं है, परन्तु महासमिति द्वारा सिद्धांत-रूप में स्वीकृति होने से देश को गलतफहमी होगी और आंदोलन को हानि पहुंचेगी।

उक्त रिपोर्ट से स्पष्ट है कि असहयोग के पुराने और नवीन दल समान-रूप से बंटे हुए थे। पर दोनों थे असहयोग के ही दल और सरकार से सहयोग करने को दोनों में से कोई दल तैयार न था। अन्तर केवल इतना ही था कि नवीन दल असहयोग की कमान में एक दूसरी डोरी चढ़ाकर उससे नौकरशाही के गढ़ कौंसिल के भीतर से ही तीर छोड़ने का समर्थक था। स्थानीय बोर्डों के निर्वाचन के सम्बन्ध में जो सिफारिशें की गई थीं उनकी कल्पना तो पहले ही से की जा सकती थी। कांग्रेसियों और असहयोगियों ने म्युनिसिपैलिटियों और स्थानीय बोर्डों के लिए खड़ा होना आरम्भ कर दिया था। सफल होने पर वे अस्पतालों में खद्दर और नौकरों के लिए खादी की वर्दियों के व्यवहार पर जोर देते थे, आफिसों पर राष्ट्रीय-झण्डा फहराने का आग्रह करते थे, म्युनिसिपल स्कूलों में चर्खा और हिन्दी के प्रचार की सिफारिश करते थे और यदा-कदा गवर्नरों और मिनिस्टरों के आगमन का बहिष्कार करने पर बल देते थे। इस प्रकार उन्होंने सरकार की नाक में दम करना आरम्भ कर दिया था। पर इन सारी कार्रवाइयों से केवल उनके रुख का पता लगता था, कोई ठोस काम होता नजर नहीं आता था।

महासमिति की जो बैठक १५ अगस्त को होनेवाली थी, वह नवम्बर तक के लिए रुक गई। उस महीने की २०, २१, २२, २३ और २४ तारीख को कमिटी की ऐतिहासिक बैठकें हुईं। कांग्रेस-कमिटी की चर्चा क्या थी, एक प्रकार का टूर्नामेण्ट था, जिसमें अपने-अपने पक्ष के योद्धाओं का ध्यानपूर्वक छांटा गया था। पहले दिन की बैठक इण्डियन एसोसियेशन के कमरों में हुई, पर वहां खुली हवा न मिलती दिखाई दी, इसलिए बाकी चार दिन की बैठक १४८, रसा रोड पर देशबन्धु चित्तरंजन दास के भव्य-भवन में शामियाने के नीचे हुई। पांच दिन की उधेड़बुन, नुकताचीनी, तानाजनी और वाक्-प्रहारों के बाद कमिटी ने निर्णय किया कि देश सामूहिक सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है। पर कमिटी ने प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को अधिकार दे दिया कि यदि कोई मौका आ पड़े तो वे अपनी जिम्मेदारी पर सीमित रूप से सत्याग्रह की मंजूरी दे सकती हैं, बशर्ते कि उस सम्बन्ध में लगाई गई सारी शर्तें पूरी हों। कौंसिल-प्रवेश का अधिक जटिल प्रश्न गया-कांग्रेस के लिए मुल्तवी कर दिया गया। इसी प्रकार अंग्रेजी माल के बहिष्कार का प्रश्न, स्थानीय बोर्डों आदि में प्रवेश करने का प्रश्न, स्कूलों-कालेजों और अदालतों के बहिष्कार का प्रश्न, आत्म-रक्षा करने के अधिकार का प्रश्न—ये सब भी मुल्तवी कर दिये

गये। बोर्डों में प्रवेश के प्रश्न को इसलिए स्थगित किया गया कि रचनात्मक कार्य में बाधा न पड़े। इस कार्य में कांग्रेस के १६,०००) खर्च हुए।

गया-कांग्रेस: १९२२

१९२२ की गया-कांग्रेस हर प्रकार से अपने ढंग की निराली थी। प्रतिनिधियों में जिस बात को लेकर सबसे ज्यादा हो-हल्ला मचा और सबसे अधिक मत-भेद उपस्थित हुआ वह कौंसिल-प्रवेश-सम्बन्धी-समस्या थी। कुछ लोगों का विचार था कि यदि कौंसिल-प्रवेश की इजाजत दे दी गई तो असहयोग की योजना भंग हो जायगी, इसलिए वे इस बात पर जोर देते थे कि कौंसिल-प्रवेश-सम्बन्धी प्रतिबन्ध न उठाया जाय। कुछ ऐसे बुद्धिशाली व्यक्ति थे, जो कहते थे कि हम कौंसिलों में जाकर न शपथ लेंगे, न स्थान ग्रहण करेंगे और इस ढंग से शत्रु को पराजित कर देंगे। इसके बाद उन जोशीले राजनीतिज्ञों की बारी थी, जो कहते थे कि हम शेर को उसकी मांद में जाकर पराजित करेंगे, रुपये की मंजूरी न देंगे, धिक्कार का प्रस्ताव पास करेंगे और सरकारी यंत्र का चलना असम्भव कर देंगे। इस प्रकार यद्यपि असहयोग की नाव को दूसरी ओर ले जाने के विरुद्ध अनेक शक्तियां जुट गई थीं, तो भी एस० श्रीनिवास आयंगर और पण्डित मोतीलाल नेहरू की प्रतिभा के रहते हुए वह नाव अपने रास्ते चलता रहा। एस० श्रीनिवास आयंगर ने संशोधन पेश किया कि कांग्रेसी उम्मीदवारी के लिए खड़े हों, परन्तु कौंसिलों में स्थान ग्रहण न करें। पण्डित मोतीलाल नेहरू कुछ शर्तों के साथ इस पर रजामन्द हो गये।

जिस समय देशबन्धु दास ने गया-कांग्रेस का सभापतित्व ग्रहण किया था उस समय उनकी जेब में वास्तव में दो महत्त्वपूर्ण कागज थे: एक था सभापति का भाषण और दूसरा था सभापति-पद से त्याग-पत्र, जिसके साथ उनकी स्वराज्य-पार्टी के नियम-उपनियम भी थे। किसी को आशा न थी कि दास-जैसे व्यक्तित्व का पुरुष, पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्री विट्ठलभाई पटेल-जैसे चोटी के आदमियों का सहारा पाकर भी जनता के आगे चुपचाप सिर झुका देगा और कौंसिल बहिष्कार के लिए राजी हो जायगा। फलतः एक पार्टी बनाई गई और कार्यक्रम तैयार किया गया। श्री दास के जिम्मे बंगाल की प्रान्तीय कौंसिल पर कब्जा करने का काम रहा और पं० मोतीलाल नेहरू को दिल्ली और शिमला पर धावा बोलने का काम दिया गया।

बम्बई में समझौता

गया में अपरिवर्त्तनवादियों की जो विजय हुई थी वह स्थायी साबित नहीं हुई। १ जनवरी १९२३ को महासमिति ने निश्चय किया कि ३० अप्रैल १९२३ तक २५ लाख रुपया एकत्र किया जाय और ५०,००० स्वयंसेवक भरती किये

जायं। कार्य-समिति के जिम्मे यह सारा काम सौंपा गया। परन्तु सबसे अधिक जरूरी बात सभापति देशबन्धुदास का त्याग-पत्र था। उन्होंने पहले ही विषय-समिति को अपनी स्वराज्य-पार्टी वाली योजना बता दी थी, इसलिए पद-त्याग आवश्यक ही था। पर त्याग-पत्र पर विचार महासमिति की २७ फरवरी १९२३ को इलाहाबाद में होनेवाली बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया। इस बैठक में आपस में समझौता करके दोनों दलों ने निश्चय किया कि ३० अप्रैल तक किसी ओर से कौंसिल-सम्बन्धी प्रचार-कार्य न हो और इस बीच अपने-अपने कार्यक्रम का शेष भाग दोनों दल पूरा करने को स्वतन्त्र रहें। कोई किसी के काम में दखल न दे। ३० अप्रैल के बाद जैसा तय हो उसके अनुसार दोनों दल अपना रवैया रखें। इस समय तक मौलाना अबुलकलाम आजाद और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जेल से छूट चुके थे। महासमिति ने यह समझौता करने के लिए दोनों को धन्यवाद दिया।

रचनात्मक कार्यक्रम

इधर कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम जोर-शोर से फैलाया गया। इस काम के लिए जो शिष्ट-मंडल नियुक्त किया गया था उसमें बाबू राजेन्द्रप्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, सेठ जमनालाल बजाज और श्री देवदास गांधी थे। इस शिष्ट-मंडल ने देशभर का दौरा किया और तिलक स्वराज्य-कोष के लिए काफी चन्दा जमा किया। मई १९२३ को बम्बई में हुई कार्य-समिति की बैठक में इसने अपने कार्य की रिपोर्ट पेश की। १९२३ की २५, २६ और २७ मई को कार्य-समिति की बैठक के साथ महासमिति की एक बैठक हुई, जिसमें तय किया गया कि गया-कांग्रेस के अवसर पर मतदाताओं में कौंसिल-प्रवेश-प्रचार करने का जो प्रस्ताव पास किया गया था उस पर अमल न किया जाय। इस बैठक में मध्यप्रांत के स्वयंसेवकों को नागपुर में झण्डा-सत्याग्रह जारी रखने के लिए बधाई दी गई और साथ ही देश के स्वयंसेवकों को आवश्यकता पड़ने पर नागपुर-सत्याग्रह में भाग लेने के लिए तैयार रहने का आदेश दिया गया।

बम्बई के उक्त समझौते से कई प्रांतीय कांग्रेस-कमिटियां स्वभावतः ही क्षुब्ध हुईं। बाद को नागपुर में महासमिति की बैठक हुई, जिसमें २६ मई के समझौते वाले प्रस्ताव को जायज और उपयुक्त समझा गया और इस बात की जोरदार शब्दों में घोषणा की गई। पर इसी कमिटी में अचानक एक ऐसा प्रस्ताव पेश किया गया और पास हुआ जिसका नोटिस पहले से नहीं दिया गया था। इस प्रस्ताव के अनुसार सितम्बर में बम्बई में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन करने का निश्चय किया गया, जिसमें कौंसिल-बहिष्कार के प्रश्न पर विचार किया जाय। मौलाना अबुलकलाम आजाद को इसका सभापति चुना गया और कार्य-समिति को इस सम्बन्ध में जरूरी कार्रवाई करने का अधिकार सौंपा गया।

नागपुर का झंडा-सत्याग्रह

इसी बीच नागपुर-सत्याग्रह ने भीषण रूप धारण कर लिया। नागपुर की पुलिस ने १ मई १९२३ को १४४ धारा के अनुसार सिविल लाइन्स में राष्ट्रीय झण्डे समेत जलूस ले जाने का निषेध कर दिया। स्वयंसेवकों ने कहा—'हमें अधिकार है, जहां चाहें झण्डा ले जायेंगे।' बस, गिरफ्तारियाँ और सजाएँ आरम्भ हो गईं। बात-की-बात में इस घटना ने आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। महासमिति ने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए उसकी सहायता करने का निश्चय किया और साथ ही देश को आह्वान किया कि आगामी १८ तारीख को गांधी-दिवस मनाए जाने के बदले उसे 'झण्डा-दिवस' कहकर मनाया जाय। प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को आज्ञा हुई कि उस दिन जलूस निकालकर जनता-द्वारा झंडा फहराएँ। इस समय तक इस सत्याग्रह के सिलसिले में सेठ जमनालाल बजाज भी गिरफ्तार हो चुके थे। कमिटी ने सेठजी को उनकी सजा पर बधाई दी। सेठजी की मोटर ३,०००) जुर्माना न देने के कारण कुर्क कर ली गई। पर नागपुर में उसके लिए कोई बोली लगानेवाला न निकला और अन्त में उसे काठियावाड़ ले जाया गया। नागपुर के इस आन्दोलन में भाग लेने के लिए कार्य-समिति और महासमिति ने देश का जो आह्वान किया था उसके उत्तर में देश के कोने-कोने से सत्याग्रही आकर गिरफ्तार होने लगे। इस प्रकार नागपुर-झंडा-सत्याग्रह शीघ्र ही एक अखिल-भारतीय आन्दोलन हो गया। ऐसी स्थिति में श्री वल्लभभाई पटेल से १० जुलाई से उसकी जिम्मेदारी लेने का अनुरोध किया गया। वल्लभभाई पटेल ने १८ तारीख के लिए जलूस का मार्ग निश्चित कर दिया। दफा १४४ अभी बदस्तूर लगी हुई थी। पर इतने पर भी १८ तारीख को जलूस को जाने दिया गया। बाद को इस विषय को लेकर खूब हो-हल्ला मचा।

प्रवासी भारतीयों की समस्या

जुलाई, अगस्त और सितम्बर में प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण हल-चल हुई जिसकी ओर कांग्रेस का ध्यान गया। केनिया में अवस्था दिन-पर-दिन बुरी होती जा रही थी। वहां के प्रवासी भारतीयों की अवस्था बहुत दिनों से असन्तोषजनक थी। इस उपनिवेश को उपजाऊ बनाने का श्रेय भारतीय मजदूरों और भारतीय पूंजी को था। कई मामलों में भारतीयों ने ही सबसे पहले कदम आगे बढ़ाया था। परन्तु भारतवासियों को इस उपनिवेश के हाइलेंड्स (ऊंची भूमि) की खेती योग्य जमीनें देने की मुमानियत कर दी गई थी। इससे भारतीयों में अधिक असन्तोष फैला। तत्कालीन औपनिवेशिक मन्त्री ने १९२३ के आरम्भ में केनिया के गवर्नर को बुला भेजा। गवर्नर के साथ अन्तिम समझौते की शर्तों पर चर्चा करने के लिए यूरोपियन और भारतीय प्रतिनिधि भी गये।

भारतीय (बड़ी) कौंसिल ने भी एक प्रतिनिधि मण्डल भेजा, जिसके सदस्य माननीय श्रीनिवास शास्त्री थे। केनिया के प्रतिनिधि-मण्डल ने एण्डरूज साहब से अपने साथ चलने का आग्रह किया। अगस्त १९२३ में कांग्रेस ने इस मामले में निश्चयात्मक कार्रवाई आरम्भ की। इस विषय पर महासमिति ने एक प्रस्ताव पास किया और कहा कि २६ अगस्त को देश भर में हड़ताल की जाय और जगह-जगह सभाएँ की जायं।

दिल्ली में विशेष अधिवेशन

उक्त दोनों घटनाओं के बाद ही कांग्रेस का विशेष अधिवेशन सितम्बर के तीसरे सप्ताह में बम्बई में न होकर दिल्ली में हुआ। इसके सभापति मौलाना अबुलकलाम आजाद थे। कौंसिल-प्रवेश का समर्थन करनेवाले दल ने बिना कठिनाई के कांग्रेस से यह अनुमति-सूचक प्रस्ताव पास करा लिया कि जिन कांग्रेस-वादियों को कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध धार्मिक या और किसी प्रकार की आपत्ति न हो उन्हें अगले निर्वाचनों में खड़े होने और अपनी राय देने के अधिकार का उपयोग करने की आजादी है, इसलिए कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध सारा प्रचार बन्द किया जाता है। साथ ही यह भी कहा गया कि रचनात्मक कार्य-क्रम को पूरा करने में दूनी शक्ति से काम लेना चाहिए। रामभजदत्त चौधरी के स्वर्गवास, जापान के भूकम्प, महाराजा नाभा के जबर्दस्ती गद्दी छोड़ने और बिहार, कनाडा और बर्मा में बाढ़ आने के सम्बन्ध में सहानुभूति और समवेदना-सूचक प्रस्ताव पास किये गये। एक कमिटी नियुक्त की गई जिसके सुपुर्द सत्याग्रह-सम्बन्धी आन्दोलन संगठित करने और विभिन्न प्रान्तों की तत्सम्बन्धी हलचल को व्यवस्थित करने का काम हुआ। एक और कमिटी नियुक्त हुई जिसके जिम्मे कांग्रेस के विधान में परिवर्त्तन-परिवर्द्धन करने का काम हुआ। एक दूसरी कमिटी राष्ट्रीय-पैक्ट तैयार करने के लिए नियुक्त की गई। समाचार-पत्रों को चेतावनी दी गई कि साम्प्रदायिक मामलों में बड़े संयम से काम लिया जाय। अकाली लोग दमन का जिस साहस और अहिंसा के साथ सामना कर रहे थे, उसके लिए उन्हें एक बार फिर बधाई दी गई। खद्दर प्रचार के द्वारा विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने पर जोर दिया गया और एक कमिटी देशी माल बनाने वालों को प्रोत्साहन और अंग्रेजी माल का बहिष्कार करने के लिए सर्वोत्तम उपाय निश्चित करने के उद्देश्य से नियुक्त की गई। झण्डा-सत्याग्रह-आन्दोलन को उसकी सफलता के लिए बधाई दी गई और जेल से छूटे नेताओं का, खास कर लालाजी और मौलाना मुहम्मदअली का, स्वागत किया गया।

केनिया के सम्बन्ध में क्रोध और तुर्की के सम्बन्ध में हर्ष प्रकट किया गया। दो कमिटियां और भी नियुक्त की गईं जिनमें से एक के सुपुर्द हिन्दू-मुस्लिम-कलह

को रोकने का काम, और दूसरी के सुपुर्द शुद्धि और शुद्धि-विरुद्ध आन्दोलन में बल का प्रयोग करने की सत्यता की जांच करने का काम हुआ। शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखने के लिए रक्षक दल बनाने और शारीरिक बल की वृद्धि करने के सम्बन्ध में जोर दिया गया।

कोकनडा-कांग्रेस : १९२३

कांग्रेस का आगामी अधिवेशन कोकनाडा में होना निश्चित हुआ। कुछ अपरिवर्त्तनवादियों को अब भी थोड़ी-बहुत आशा थी कि दिल्ली ने जो कुछ कर डाला है, कोकनडा उसे चाहे बिलकुल मिटा न सके, क्योंकि उस समय तक चुनाव समाप्त हो जायंगे, फिर भी वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर उसी पुराने असहयोग का झण्डा खड़ा रखा जायगा। मौलाना मुहम्मदअली को सभापति चुना गया। कोकनडा-कांग्रेस में खूब कश-म-कश रही। अपरिवर्त्तनवादी-दल के कुछ प्रसिद्ध नेता शरीक नहीं हुए। राजेन्द्र बाबू अस्वस्थता के कारण कोकनडा-कांग्रेस में न जा सके और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने दिल्ली के प्रस्ताव पर अपना प्रभाव डाला। श्री वल्लभभाई उपस्थित थे, परन्तु दिल्ली के प्रस्ताव के समझौते के सम्बन्ध में दिल्ली-अधिवेशन के अवसर पर उनकी स्वीकृति बंगाल के वृद्ध जर्जर बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने हासिल कर ली थी। उन्हें देश-निर्वासन और कारावास, निर्धनता और दरिद्रता में अनेक वर्ष बिताने पड़े थे। उन्होंने कोकनडा-कांग्रेस के प्रबल समुदाय को अपने कौंसिल-प्रवेश-विरोधी भाषण से थर्रा दिया। परन्तु पासा पड़ चुका था। कौंसिल-बहिष्कार के भाग्य का निपटारा हो चुका था।

कोकनडा-कांग्रेस को एस० कस्तूरी रंगा आयंगर और अश्विनीकुमार दत्त जैसे नेताओं की मृत्यु पर शोक-प्रकाश करने का अप्रिय-कर्तव्य पालन करना पड़ा। कांग्रेस ने अखिल भारतीय स्वयंसेवक-दल की रचना करने के आन्दोलन का स्वागत किया। इस संस्था में बाद को रक्षक-दल भी मिला दिया गया। कांग्रेस के अलग-अलग विभाग करने की योजना तैयार करने की आवश्यकता समझी गई और इन अनेक विभागों के वेतन भोगी कार्यकर्ताओं के संबंध में राष्ट्रीय सर्विस की भी एक योजना तैयार करने को कहा गया। केनिया-प्रवासी भारतीयों के प्रति हार्दिक परन्तु शक्तिहीन समवेदना प्रकट की गई, और केनिया-इण्डियन कांग्रेस में भाग लेने के लिए श्रीमती सरोजिनी नायडू और मि० जार्ज जोसेफ को तैनात किया गया। दिल्ली में जो सविनय-भंग कमिटी नियुक्त की गई थी वह और सत्याग्रह-कमिटी कार्यसमिति में मिला दी गईं। अखिल-भारतीय चर्खा-संघ बनाया गया, जिसे खद्दर का काम चलाने का अधिकार दिया गया। भारत से देशान्तर प्रवास न करने की सलाह दी गई और सीलोन में गये भारतीय मजदूरों की अवस्था की जांच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई। कांग्रेस के विधान में कई संशोधन पेश किये

गये, जो पास हुए। सरकार ने शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबंधक-कमिटी के अकाली-दल पर आक्रमण करके भारतीयों के अहिंसात्मक उद्देश्य से एकत्र होने के अधिकार को जो चुनौती दी थी उसे कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया और उनके वर्तमान संघर्ष में उनका साथ देने और उन्हें आदमी तथा रुपये और हर प्रकार की सहायता देने का निश्चय किया।

गुरुद्वारा-आन्दोलन

इसी वर्ष एक और महत्त्वपूर्ण घटना हो गयी। यह गुरुद्वारा-आन्दोलन था। अंग्रेजों ने पंजाब को, १८४६ में ब्रिटिश-भारत में मिला लिया था। इस रद्दोबदल के अवसर पर सिक्ख-धर्म के केन्द्र और गढ़-स्वरूप अमृतसर के दरबार साहब के बंदोबस्त में गड़बड़ा मची हुई थी। अमृत छके हुए सिक्खों की एक कमिटी को ट्रस्टी बनाया गया था और सरकार द्वारा नियुक्त व्यक्ति सरबराह या अभिभावक बना था। एक मैनेजर नियुक्त किया गया था जिसके हाथों से हर साल लाखों रुपये निकलते थे। परन्तु १८८१ में यह कमिटी भंग हो गई और मैनेजर के हाथ में ही सारे अधिकार आ गये। नियंत्रण के अभाव में गैर-जिम्मेदारी और आचार हीनता का जन्म हुआ। एक ओर मैनेजर और ग्रन्थियों और दूसरी ओर सिक्ख-जनता में आये दिन मुठभेड़ होने लगी। सरकार परेशान थी कि क्या करे। १९२० के अन्त में एक कमिटी बनाई गई जो बाद को शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक कमिटी हुई। इस कमिटी के पहले सभापति सरदार सुन्दरसिंह मजीठिया हुए जो कुछ दिनों के बाद ही पंजाब सरकार की कार्य-समिति के सदस्य नियुक्त किये गये। सुधारक सिक्ख 'अकाली' कहलाते थे। उन्होंने अपेक्षा-कृत अधिक ऐतिहासिक गुरुद्वारों को अपने हाथ में कर लिया। तरन-तारन में फसाद हो गया, कई सिक्ख घायल हुए और दो मरे। १९२१ के आरम्भ में ननकानासाहब में निर्दोष यात्रियों की हत्या हो ही चुकी थी। पुलिस की निगाह में यह आन्दोलन गुरुद्वारों के साथ प्राप्त होनेवाली शक्ति और सामर्थ्य को अपने कब्जे में करने के लिए था। इस दृष्टिकोण से महन्तों को बढ़ावा मिला। इन महन्तों में वे लोग भी थे जिन्होंने अकालियों से समझौता कर लिया था। अब वे इस समझौते से हट गये। सरकार सुधारक सिक्खों के अन्धा-धुन्ध दमन पर उतारू थी। १९२१ के मई मास में सैकड़ों सिक्ख जेलों में ठूंस दिये गये और प्रतिष्ठा-हीन महन्तों को फिर अधिकार दिया गया। फलतः जहां तक इस सुधार का सम्बन्ध था, शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी ने १९२१ की मई में सरकार से असहयोग करने का प्रस्ताव पास कर दिया।

सरकार जो गुरुद्वारा-बिल पास कराना चाहती थी, वह सिक्खों में नरम-दल-वालों और सहयोगियों तक को मंजूर न हुआ। फलतः उसका विचार छोड़ दिया गया। सिक्खों पर एक निश्चित लम्बाई से अधिक बड़ी कृपाणें पहनने के लिए

मुकदमे चलाये गये। पंजाब-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी ने १० जुलाई १९२१ को इसका विरोध किया, और महीने के अन्त में सिक्खों को जेल से छोड़ दिया गया। झब्बा के भाई करतारसिंह और भूचड़ के भाई राजासिंह को १८ और ७ वर्ष का बर्बरतापूर्ण कारावास-दण्ड दिया गया। २८ अगस्त १९२१ को कौंसिलों के सिक्ख सदस्यों से इस्तीफा देने के लिए कहा गया। सरदारबहादुर सरदार महताबसिंह बैरिस्टर ने गुरुद्वारा-आन्दोलन के सम्बन्ध में सरकार की नीति के विरोध में सरकारी वकालत और पंजाब-कौंसिल के उपाध्यक्ष के पद से इस्तीफा दे दिया। १९२१ के सितम्बर के आरम्भ में उपर्युक्त लम्बी सजा पाये हुए दोनों सिक्खों तथा अन्य कई को छोड़ दिया गया। परन्तु पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के प्रधान-मंत्री सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर को, जिन्हें १९२१ के जून में १२४ ए धारा के अनुसार पांच वर्ष का सपरिश्रम कारावास हुआ था, और गुरुद्वारे के अन्य कार्यकर्त्ताओं को न छोड़ा गया। अचानक १९२१ की ७ नवम्बर को सरकार ने अमृतसर के दरबार-साहब की चाबियां छीन लीं, जिसके फल-स्वरूप गुरु नानक के जन्म-दिवस पर सजावट न हो सकी। सरकार की ओर से एक मैनेजर नियुक्त किया गया, पर उसे शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबंधक-कमिटी ने चार्ज न लेने दिया और उसे इस्तीफा देना पड़ा। बस, इसके बाद से चाबियां ही सारे झगड़े की जड़ बन गईं और जन-सभाओं-द्वारा उसका विरोध किया जाने लगा। सरकार ने राजद्रोही सभाबन्दी-कानून जारी किया और सरदार खड्गसिंह और सरदार महताबसिंह को कड़ी कैद की सजा दी गई। गुरु गोविन्दसिंह का जन्म-दिवस ५ जनवरी १९२२को था। सरकार ने चाबियां उस समय तक के लिए सौंपने की तैयारी दिखाई जबतक कि उसके द्वारा दीवानी अदालत में दायर किये गये मुकदमे का फैसला न हो। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी ने चाबियां लेने से इन्कार कर दिया। जब २०० सिक्ख-कार्यकर्ता गिरफ्तार हो चुके तब सरकार ने हाथ रोक लिया और सारे कैदियों को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। १९२२ की ११ जनवरी को चाबियां भी सौंप दी गईं; पर पण्डित दीनानाथ को न छोड़ा गया। फलतः राजद्रोही सभाबन्दी-कानून के विरुद्ध फिर सत्याग्रह जारी हुआ और १९२२ की ८ फरवरी को शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी की प्रबंध-समिति के सारे सदस्य एक सभा में बोले। अन्त में पण्डित दीनानाथ को भी रिहा कर दिया गया और कोमागाटामारू (१९१४) वाले बाबा गुरुदत्तसिंह को भी छोड़ दिया गया।

अकाली काली पगड़ी पहनते थे। १९२२ के मार्च मास के दूसरे सप्ताह से, पहले से ही निश्चित किये गये कार्यक्रम के अनुसार, पंजाब के १३ चुने हुए जिलों में और पटियाला और कपूरथला की रियासतों में अकाली सिक्खों को एक-साथ पकड़ना आरम्भ कर दिया गया। १५ दिन के भीतर-भीतर १७०० काली पगड़ी वाले सिक्ख गिरफ्तार कर लिये गये। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी और

पंजाब-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के सभापति सरदार खड़गसिंह को ५ वर्ष का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया। मार्च १९२२ के आरम्भ में सरकार ने कहा—'कृपाण तलवारें हैं जिनके बनाने के लिए लाइसेन्स की जरूरत है।' लोगों को निर्देश किया गया कि सरकार-द्वारा बताये गये नये ढंग से कृपाण पहनी जाय। फौजी सिक्खों का कृपाण धारण करना भी जुर्म माना गया। कुछ को गिरफ्तार करके ४ वर्ष से लेकर १८ वर्ष तक की कड़ी सजा दी गई। कोमागाटामारूवाले बाबा गुरुदत्त-सिंह को फिर गिरफ्तार कर लिया गया और १९२२ में उन्हें ५ वर्ष का निर्वासन-दण्ड मिला। रौलट-कानून के विरुद्ध आन्दोलन में प्रसिद्धि पाये हुए मास्टर मोतासिंह को ८ साल की सजा मिली।

चारों ओर क्रिमिनल लॉ-अमेण्डमेण्ट-ऐक्ट का दौर-दौरा था और जमानत सम्बन्धी धाराएँ उसकी सहायिका थीं। पण्डित मदनमोहन मालवीय पंजाब गये और राजा नरेन्द्रनाथ की अध्यक्षता में कमिटी नियुक्त कराई, जिसके जिम्मे सरकारी ज्यादतियों, गैर-कानूनी कार्रवाइयों और निर्दयता के सम्बन्ध में जांच करना था। १९२२ की चौदह मई को पंजाब-सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाल कर धार्मिक सुधारकों को चेतावनी दी कि वे उन लोगों के, जिनका सुधार से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है, बदअमनी फैलानेवाले और गैर-कानूनी कामों से अलग रहें। १५ जून १९२१ तक १९०० से २००० तक सिक्ख गिरफ्तार किये जा चुके थे।

इसी अवसर पर गुरु-का-बाग-काण्ड (१९२२) हुआ। इस काण्ड के सिल-सिले में जो ज्यादतियां की गईं उनकी जांच पंजाब-सरकार के एक यूरोपियन सदस्य ने की। एण्डरूज साहब जैसे व्यक्तियों ने इन ज्यादतियों के गम्भीर स्वरूप की पुष्टि की। उन्होंने कहा, "अब तक मैंने जितने हृदय-विदारक और करुणाजनक दृश्य देखे हैं, यह उनमें सबसे बढ़कर है। अहिंसा की पूरी विजय हुई है। ये लोग सचमुच शहीद हो रहे हैं।" पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा —"एक घेरा डाल दिया गया था और कई दिन तक कांटेदार लोहे के तारों को भेदकर कोई अन्न का दाना भीतर न ले जा सका। जो ले गये, उन्हें बुरी तरह पीटा गया। जब मेरी मोटरकार की गुरुद्वारे के द्वार पर तलाशी ले ली गई, तब कहीं उस घेरे के एक छोटे-से प्रवेश-द्वार में जाने की इजाजत मिली।"

इस सिलसिले में २१० गिरफ्तारियां हुईं। एक ही आनरेरी मजिस्ट्रेट ने ५ इजलासों में १,२७,०००) के जुर्माने किये। स्वामी श्रद्धानन्द को १८ महीने की सजा मिली। २२ अक्टूबर को एक जत्था अमृतसर से गुरु-का-बाग को रवाना हुआ। इस जत्थे में १०१ फौजी पेन्शनयाफ्ता लोग थे, जिनमें से ५५ नान-कमिशण्ड अफसर थे और बाकी सिपाही थे। ये लोग मारू बाजा बजाते रवाना हुए। इनके साथ ५०,००० आदमी दर्शक-रूप में थे। पंजा साहब के स्टेशन से होकर एक रेलगाड़ी गुजरनेवाली थी, जिसमें फौजी कैदी थे। स्टेशन पर कुछ लोग उनके

लिए भोजन की सामग्री लिये बैठे थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि गाड़ी स्टेशन पर न रुकेगी तब वे पटरियों पर लेट गये। रेलगाड़ी तब भी न रोकी गई। फलतः २ आदमी मरे और ११ घायल हुए। कुछ दिनों बाद पीटना बन्द कर दिया गया और गिरफ्तारियाँ आरम्भ हुईं। जत्थों के मुखियों को कड़ी सजायें मिलीं। पर अभी इससे भी बुरी घटनायें आने को थीं। जनता के दबाव और ८ मार्च १९२३ के कौंसिल के प्रस्ताव के उत्तर में अकालियों को धीरे-धीरे छोड़ा जाने लगा। १७० अकालियों को रावलपिण्डी में छोड़ा गया, पर उन्हें बुरी तरह मारा-पीटा गया। कसूर यह बताया गया कि वे रेलवे-स्टेशन से बताये रास्ते से होकर नहीं गये थे। फौजी सिपाही और घुड़सवार—सबने एक साथ मिलकर उन्हें तितर-बितर किया। १२८ व्यक्तियों को संगीन चोटें आईं। ३ मई से रावलपिण्डी ने पूर्ण हड़ताल मनानी आरम्भ की। जब पंजाब-कौंसिल में इस मामले की जांच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त करने का सवाल उठाया गया तब सरकार के चीफ सेक्रेटरी ने बड़ी शान्ति से सलाह दी कि हंटर-कमिटी की भांति पुराने जख्मों को दुबारा खोलने का नतीजा ठीक न होगा। गुरु-का-बाग-काण्ड की दुखदायी घटनाओं की स्मृति को जितनी जल्दी भुला दिया जाय, अच्छा है। परन्तु अकालियों के दुर्दिन अभी पूरे न हुए थे। १९२३ के मध्य में महाराजा नाभा ने गद्दी त्याग दी, पर शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबंधक-कमिटी ने इसे महाराजा को गद्दी से उतारा जाना समझा और उन्हें दुबारा गद्दी पर बिठाने के लिए नाभा रियासत के जैतो नामक स्थान पर और दूसरी जगहों पर सभायें आदि करके एक आन्दोलन खड़ा कर दिया। जो भाषण दिये गये उन्हें राजद्रोहात्मक समझा गया और वक्ताओं को अखण्ड पाठ पढ़ते-पढ़ते गिरफ्तार कर लिया गया।

इस प्रकार नाभा-रियासत के जैतो नामक स्थान पर अखण्ड पाठ के ऊपर झगड़ा शुरू हो गया और कुछ समय तक २५-२५ सिक्खों के जत्थे रोज जैतो भेजे जाने लगे। बाद को फरवरी में ५०० आदमियों का शहीदी जत्था भेजा गया। डा० किचलू और आचार्य गिडवानी इस जत्थे के साथ दर्शक की हैसियत से गये। जैतो के निकट इस जत्थे पर गोली चलाई गई और कुछ आदमी मरे। किचलू और गिडवानी दोनों को नाभा के अधिकारियों ने गिरफ्तार कर लिया, क्योंकि वे घायलों की सुश्रूषा कर रहे थे! कुछ दिनों बाद किचलू को तो छोड़ दिया गया, पर गिडवानी उस वर्ष के अन्त तक नाभा जेल में ही रहे। शहीदी जत्थे बराबर जाते रहे और गिरफ्तारियां भी होती रहीं। इस प्रकार अकाली हजारों की संख्या में जेल में पहुंच गये। उनके साथ जो व्यवहार किया गया उसकी खराब रिपोर्ट आई। अकाली-सहायक ब्यूरो में आचार्य गिडवानी का स्थान श्री पणिक्कर ने लिया। कांग्रेस की कार्य-समिति ने जेल में अकालियों के साथ किये गये दुर्व्यवहार की जांच के लिए जांच-कमिटी भेजी और साथ ही अकाली-परिवारों को काफी आर्थिक सहायता भी दी।

बाद को जब गुरुद्वारों के प्रबन्ध के सम्बन्ध में कानून बना दिया गया तब यह प्रश्न भी तय हो गया।

: ११ :

कांग्रेस और कौंसिल-प्रवेश: १९२४-२६

गांधीजी की रिहाई

१२ जनवरी १९२४ को महात्मा गांधी के 'अपेंडिसाइटिस' रोग से भयंकर रूप में बीमार पड़ने और आधी रात में कर्नल मैडॉक-द्वारा भारी आपरेशन किये जाने के समाचार से देशभर में चिन्ता उत्पन्न हो गई। पर गांधीजी के स्वस्थ होने और अन्त में ५ फरवरी को उन्हें समय से पहले ही बिना किसी शर्त के छोड़ दिये जाने से वह चिन्ता दूर हो गई।

जेल से छूटकर भी गान्धीजी को न तो शान्ति मिली, और न विश्रान्ति। कोकनडा-कांग्रेस में जः फूट पैदा हो गई थी वह दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थी। एक ओर अ-परिवर्त्तनवादी आशा कर रहे थे कि कांग्रेस का इंजन फिर सत्याग्रह के पुराने मार्ग पर लौट पड़ेगा, दूसरी ओर परिवर्त्तन-वादियों को चिन्ता थी कि दिल्ली और कोकनडा में प्राप्त हुई विजयों को पक्का करके अपने ऊपर जो कुछ धब्बा बाकी रह गया है उसे धो लिया जायगा। परिवर्त्तनवादियों की 'स्वराज्य पार्टी' बन चुकी थी और उसने देश की विभिन्न कौंसिलों के निर्वाचनों में भाग लिया था। बड़ी कौंसिल में ४५ स्वराजी पहुचे जिनमें खूब अनुशासन था और जो अपना कार्यक्रम पूरा करने का व्रत लिए हुए थे। वे राष्ट्रीय-दल का सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करके कौंसिल में आसानी से बहुमत प्राप्त कर सके थे। उनकी पहली विजय तब हुई जब श्री टी० रंगाचारी ने शासन-व्यवस्था में तत्काल परिवर्तन करने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने यह संशोधन पेश किया कि भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार की सिफारिश करने के लिए एक गोलमेज-परिषद् बुलाई जाय।

सरकार को यों तो कई बार हार खानी पड़ी, पर कुछ राजनैतिक कैदियों को छोड़ने, दक्षिण-अफ्रीका से भारत में आनेवाले कोयले पर कर लगाने तथा सिक्ख-आन्दोलन की व्यवस्था के सम्बन्ध में जांच करने के बारे में पूरी हार हुई। सरकार की पराजय स्वराज्य-पार्टी की विजय थी, जिसका बल स्वतंत्र, राष्ट्रीय तथा कभी-कभी नरम-दल तक का सहयोग प्राप्त होने के कारण भी बढ़ गया था। स्वराज्य-पार्टी ने दूसरा काम यह किया कि सरकारी मांगों की चार मदों को नामंजूर कर दिया। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था।

गांधीजी का वक्तव्य

१९२४ की गर्मियों में जो कुछ हो रहा था उसका चित्र पाठकों के आगे पेश करने के लिए हम अब गांधीजी, दास बाबू और नेहरूजी के वक्तव्य देते हैं जो शुरू की वार्तालाप के बाद प्रकाशित किये गये। गांधीजी ने अपने वक्तव्य में कहा : "अपने स्वराजी मित्रों के साथ कांग्रेसवादियों के द्वारा कौंसिल-प्रवेश के जटिल प्रश्न पर बातचीत करने के बाद मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि मैं उनसे सहमत न हो सका। ××× मेरी अब भी यही सम्मति है कि असहयोग के सम्बन्ध में जैसी मेरी धारणा है उसके अनुसार कौंसिल-प्रवेश असंगत है। हमारा मतभेद 'असहयोग' शब्द की भिन्न-भिन्न परिभाषा तक ही सीमित हो सो बात भी नहीं है; यह मतभेद तो चित्तवृत्ति से सम्बन्ध रखता है, जिसके कारण महत्वपूर्ण समस्याओं के सुलझाने में मतभेद अनिवार्य हो जाता है। उस मनोवृत्ति के पैमाने से ही बहिष्कार-त्रयी की सफलता या विफलता को जांचना होगा, फल-सिद्धि के पैमाने से नहीं। मैं इसी दृष्टि-कोण से कह रहा हूँ कि देश के लिए कौंसिल से बाहर रहना उनके भीतर रहने की अपेक्षा कहीं अधिक लाभदायक होगा।

"दिल्ली और कोकनडा-कांग्रेस ने उन कांग्रेसवादियों को कौंसिलों और असेम्बली में जाने की इजाजत दे दी है जिनकी आत्मा उन्हें न रोकती हो। इसलिए मेरी राय में स्वराजी कौंसिलों में जाने का और अपरिवर्त्तन-वादियों से तटस्थ रहने की आशा रखने का अधिकार रखते हैं। उनको वहां जाकर अड़ंगा-नीति धारण करने का भी हक है; क्योंकि उनकी नीति ही यह थी और कांग्रेस ने उनके कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शर्त नहीं लगाई थी। यदि स्वराजियों को सफलता हुई और देश को लाभ पहुँचा, तो मेरे जैसे संशयशील व्यक्तियों को अपनी भूल अवश्य मालूम हो जायगी और यदि अनुभव के द्वारा स्वराजियों का मोह दूर हो गया, तो मैं जानता हूं कि वे देश-भक्त हैं और अवश्य अपना कदम पीछे हटा लेंगे। इसलिए मैं उनके मार्ग में बाधा डालने के काम में शरीक न होऊंगा और न स्वराजियों के कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध प्रचार करने में ही भाग लूंगा। हां, मैं ऐसे कार्य में स्वयं कोई ऐसी सहायता नहीं दे सकता जिसमें मेरा विश्वास नहीं है . . .।

"कौंसिलों में क्या ढंग अपनाना चाहिए, इसके सम्बन्ध में मेरा कहना यही है कि मैं कौंसिलों में तभी घुसूंगा जब मुझे मालूम हो जाय कि मैं उसके उपयोग से लाभ उठा सकूंगा। अतएव यदि मैं कौंसिलों में जाऊंगा तो मैं सोलह आने अड़ंगा नीति का अलवम्बन न करके कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को सफल बनाने की चेष्टा करूंगा। मैं उस हालत में प्रस्ताव पेश करके केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों से चाहूंगा कि

(१) वे सारे कपड़े हाथ के कते और हाथ के बुने खद्दर के खरीदें।

(२) विदेशी कपड़ों पर बहुत भारी चुंगी लगा दें।

(३) शराब आदि की आय को ही रद कर दें, और सेना-विभाग के व्यय में, अपेक्षाकृत ही सही, कमी कर दें।

"यदि सरकार कौंसिलों में पास होने के बाद भी इन प्रस्तावों पर अमल करने से इन्कार कर दे, तो मैं सरकार से कौंसिलों को भंग करने के लिए कहूंगा और उन्हीं खास-खास बातों पर फिर निर्वाचकों के वोट हासिल करूंगा। यदि सरकार कौंसिल भंग करने से इंकार कर दे तो मैं अपनी जगह से इस्तीफा दे दूंगा और देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करूंगा। जब यह अवस्था आ पहुंचे तब स्वराजी मुझे फिर अपने साथ और अपने नेतृत्व में पायेंगे। सत्याग्रह-सम्बन्धी योग्यता के सम्बन्ध में मेरी कसौटी वही पुरानी है।"

स्वराजी-वक्तव्य

देशबन्धु चित्तरंजन दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने अपने वक्तव्य में कहा :—

"हमें अफसोस है कि हम गांधीजी को कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में स्वराजियों की स्थिति के औचित्य का कायल न कर सके। हमारी समझ में यह नहीं आता कि कौंसिल-प्रवेश नागपुर-कांग्रेस के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुकूल क्यों नहीं है। परन्तु यदि असहयोग मनोवृत्ति से ही सम्बन्ध रखता हो और हमारे राष्ट्रीय जीवन की वास्तविक अवस्था से उसका कोई विशेष सम्बन्ध न हो, तो हम देश के वास्तविक हित के लिए असहयोग तक का बलिदान करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

"हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमने अपने कार्यक्रम में 'अड़ंगा' शब्द का जो व्यवहार किया है वह ब्रिटेन की पार्लमेण्ट के इतिहास के वैधानिक अर्थ में नहीं है। मातहत और सीमित अधिकारों वाली कौंसिलों में उस अर्थ में अड़ंगा डालना असम्भव है, क्योंकि सुधार-कानून के अन्तर्गत असेम्बली और कौंसिल के अधिकार गिने-चुने हैं, पर हम यह कह सकते हैं कि हमारा विचार अड़ंगा डालने की अपेक्षा स्वराज्य के मार्ग में नौकरशाही-द्वारा डाली गई रुकावटों का मुकाबला करने का अधिक है। 'अड़ंगा' शब्द का व्यवहार करते समय हमारा मतलब इसी मुकाबले से है। हमने स्वराज्य-पार्टी के विधि-विधान की भूमिका में असहयोग की परिभाषा करते हुए इस बात को अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है।

"पर यहां भी हम इस बात के व्यर्थ वाद-विवाद का अन्त करना चाहते हैं कि इस नीति को "सतत और लगातार अड़ंगे की नीति" कहा जा सकता है या नहीं। हम तो अपनी नीति को विस्तार के साथ बताकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। हमारे मित्र यदि चाहें तो इसे अधिक उपयुक्त नाम प्रदान कर सकते हैं।" इसी सिद्धान्त और नीति के अनुसार वक्तव्य में एक भावी कार्यक्रम भी सम्मिलित था।

महासमिति की बैठक

अहमदाबाद में २७, २८ और २९ जून को महासमिति की बैठक हुई। निर्वाचित कांग्रेस-संस्थाओं के सारे सदस्यों के लिए हर महीने २,०० गज अच्छी तरह ऐंठा और कता हुआ सूत भेजना अनिवार्य कर दिया गया। न भेजने पर उस सदस्य का स्थान खाली समझने को कहा गया। जिस समय इस विषय पर चर्चा हो रही थी, कुछ सदस्य इस जुर्मानेवाली बात के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिए बैठक से उठकर चले गये। यह प्रस्ताव पास हो गया। ६७ अनुकूल और ३७ प्रतिकूल रहे। पर यह सोचकर कि जो लोग उठकर चले गये थे यदि वे खिलाफ राय देते तो सम्भव था कि यह गिर जाता, गांधीजी ने जुर्मानेवाली बात हटा ली और महासमिति ने नागा करनेवालों के खिलाफ जाब्ता कार्रवाई करने की सिफारिश की।

विदेशी कपड़े, अदालतों, स्कूलों-कालेजों, उपाधियों और कौंसिलों के पांचों प्रकार के (कोकनडा के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए) बहिष्कार पर जोर दिया गया और कांग्रेस के मतदाताओं को खास तौर से हिदायत कर दी गई कि उन लोगों को कांग्रेस की मातहत-संस्थाओं में न चुना जाय जो पांचों प्रकार के बहिष्कार के सिद्धान्त में विश्वास न रखते हों और स्वयं भी उस पर अमल न करते हों। सरकार की अफीम-सम्बन्धी नीति की निन्दा की गई और एण्डरूज साहब से अनुरोध किया गया कि वह आसामवालों के अफीम-व्यसन के सम्बन्ध में जांच करें। सिक्खों ने जैतो के अनावश्यक और निर्दयता-पूर्ण गोली-काण्ड के अवसर पर जो शांतिपूर्ण साहस दिखाया था उसके लिए उन्हें बधाई दी गई।

इस बैठक में जिस प्रस्ताव ने काफी जोश पैदा किया वह गोपीनाथ साहा-द्वारा आर्नेस्ट डे की हत्या के धिक्कार और मृत व्यक्ति के परिवार के प्रति समवेदना-प्रकाशन के सम्बन्ध में था। प्रस्ताव में गोपीनाथ साहा के देश-प्रेम की बात को, जिससे प्रेरित होकर उसने हत्या की, हृदय के साथ स्वीकार किया गया, पर साथ ही उसे पथ-भ्रष्ट बताया गया। महासमिति ने इस और इसी प्रकार की सारी राजनैतिक हत्याओं को जोरदार शब्दों में धिक्कारा और अपनी स्पष्ट राय प्रकट की कि इस प्रकार के कृत्य कांग्रेस की अहिंसा की नीति के विरुद्ध हैं, स्वराज्य के मार्ग में रुकावट डालते हैं और सत्याग्रह की तैयारी में बाधक बनते हैं। इस प्रस्ताव पर खूब वाग्युद्ध हुआ।

स्वराजी इस बैठक में अपनी इच्छानुसार सब-कुछ प्राप्त न कर सके और उन्हें अपनी कठोर परिश्रम से प्राप्त की हुई सफलता को मजबूत बनाने के लिए नवम्बर तक रुकना पड़ा। जहांतक अपरिवर्त्तनवादियों का सम्बन्ध था, सूतवाली शर्त को उन्होंने आश्चर्यजनक रीति से पूरा किया। अगस्त में २७८० सदस्य थे, सितम्बर में ६३०१ हुए, अक्तूबर में ७७४१ और नवम्बर में ७९०५ हो गये।

साम्प्रदायिक दंगे

परन्तु उस वर्ष की सबसे बुरी बात थी जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगों का होना, खासकर दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहांपुर, इलाहाबाद और जबलपुर में। सबसे अधिक भयंकर दंगा कोहाट में हुआ। कोहाट के दगे ने तो भारतवर्ष की कमर तोड़ दी। दंगों के कारणों और परिस्थितियों के सम्बन्ध में गांधीजी और मौ० शौकतअली की एक कमिटी नियुक्त की गई। दोनों ने रिपोर्ट पेश की, पर दुर्भाग्य से दोनों का इस विषय में मत-भेद था कि दंगों की जिम्मेदारी किस पर है। १९२४ की ९ और १० सितम्बर की घटनाओं को बीते आज बत्तीस वर्ष से भी अधिक हुए, पर दंगे के फौरन बाद ही कोहाट के भ्रातृस्कूल के हेडमास्टर लाला नन्दलाल ने जो रिपोर्ट लिखी और जिसे कोहाट-दंगा-पीड़ित-सहायक समिति ने प्रकाशित किया, उसे पढ़ने पर तो अब भी शरीर में रोमांच हो आता है। हम इससे अधिक और कुछ नहीं कह सकते कि ९ और १० सितम्बर के गोलीकाण्ड और कत्लेआम के बाद एक स्पेशल ट्रेन ४००० हिन्दुओं को सवार कराकर ले गई। इनमें से २६०० दो महीने बाद तक रावलपिण्डी की जनता की और १४०० अन्य स्थानों की जनता की दान-शीलता पर जीते रहे।

गांधीजी का उपवास

ऐसी दशा में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं जो गांधीजी ने २१ दिन के उपवास का व्रत लिया। इस क्रोधोन्माद और हत्या-प्रवृत्ति का जिम्मेदार उन्होंने अपने-आपको ठहराया और उपवास के द्वारा प्रायश्चित करने का निश्चय किया। अभी अपेण्डिसाइटिस के भयंकर और लगभग सांघातिक प्रकोप से उठे उन्हें अधिक दिन नहीं हुए थे। अतः यह उनके लिए अग्नि-परीक्षा थी। गांधीजी ने व्रत मौलाना मुहम्मदअली के मकान पर आरम्भ किया, पर बाद को उन्हें शहर के बाहर एक मकान में ले जाया गया। इस अवसर से लाभ उठाकर सारी जातियों के नेताओं को एकत्र किया गया। कलकत्ते के बड़े पादरी भी शरीक हुए। यह एकता-परिषद् २६ सितम्बर से २ अक्तूबर सन् १९२४ तक होती रही। परिषद् के सदस्यों ने प्रतिज्ञा की कि वे धर्म और मत की स्वतन्त्रता के सिद्धांत का पालन कराने का अधिक-से-अधिक प्रयत्न करेंगे और उत्तेजन मिलने पर भी इनके विरुद्ध किये गये आचरण की निन्दा करने में कोई कसर न रक्खेंगे। एक केन्द्रीय राष्ट्रीय पंचायत बनाई गई, जिसके संयोजक और अध्यक्ष गांधीजी हुए और हकीम अजमलखां, लाला लाजपतराय, के० एफ० नरीमान, डा० एस० के० दत्त और लायलपुर के मास्टर सुन्दरसिंह सदस्य हुए। परिषद् ने धार्मिक सिद्धांतों को मानने, धार्मिक विचारों को प्रकट करने और धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन करने, धर्म-स्थानों की पवित्रता का ध्यान रखने और गोवध और मस्जिद के आगे बाजा बजाने के सम्बन्ध

में सबका एक-समान अधिकार माना, पर साथ ही उनकी मर्यादाओं का भी निदर्शन किया। अखबारों को चेतावनी दी कि वे सांप्रदायिक मामलों में समझबूझ कर लिखा करें और जनता से अनुरोध किया गया कि गांधीजी के उपवास के अंतिम सप्ताह में देशभर में प्रार्थना की जाय। ८ अक्तूबर जन-सभाओं द्वारा ईश्वर को धन्यवाद देने के लिए नियत किया गया।

सर्वदल-सम्मेलन

अभी गांधीजी ने अपना उपवास समाप्त ही किया था कि उन्हें बम्बई में २१ और २२ नवम्बर को सर्वदल-सम्मेलन में और उसके बाद ही और उसी के सिलसिले में २३, २४ को महा-समिति की बैठक में शरीक होना पड़ा। सर्वदल-सम्मेलन करने का उद्देश्य यह था कि बंगाल में सरकार का दमन जोर पकड़ता जा रहा था। यह दमन-नीति स्वराज्य-पार्टी और तारकेश्वर में सत्याग्रह करनेवाले कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध आरम्भ की गई थी। लोकमत को इसके विरुद्ध तैयार करना था। परिषद् ने बंगाल-सरकार द्वारा जारी किये गये क्रिमिनल-ला-अमेण्डमेण्ट-आर्डिनेन्स के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पास किया और उसके साथ ही १८१८ के रेगूलेशन ३ को रद करने पर जोर दिया। सर्वदल-सम्मेलन ने बंगाल की अशान्ति का कारण स्वराज्य न मिलना ठहराया और एक कमिटी नियुक्त की, जिसके सुपुर्द स्वराज्य की योजना और साम्प्रदायिक समझौता तैयार करने का काम किया गया। इस कमिटी में देश के सारे राजनैतिक दलों के प्रमुख व्यक्तियों को रक्खा गया। ३१ मार्च १९२५ तक रिपोर्ट मांगी गई। परिषद् के द्वारा कुछ विशेष काम होने की आशा न थी। पर इससे सम्भवत: देशबन्धु चित्तरंजन दास की गिरफ्तारी टल गई।

बेलगांव-कांग्रेस : १९२४

असहयोग के इतिहास में बेलगांव-कांग्रेस खास महत्व रखती है। गांधीवाद के विरुद्ध जो विद्रोह उठा था वह करीब-करीब अन्तिम सीमा तक पहुंच चुका था। कांग्रेस अब ऐसे स्थान पर खड़ी थी जहां से दो मार्ग दो ओर को जाते थे। कांग्रेस-वादियों को अब दो परस्पर विरुद्ध दलों में बंट जाना चाहिए या समझौता करके अपने भेद-भाव को मिटा लेना चाहिए, और यदि समझौते की बात ठीक हो तो इस जटिल काम को गांधीजी के सिवा और कौन हाथ में ले? केवल गांधीजी ही ऐसे थे जो सत्याग्रह का कार्य-क्रम वापस लेकर भी अपरिवर्तन-वादियों को शांत कर सकते थे और कौंसिल-प्रवेश का सामना करके भी स्वराजियों को सन्तुष्ट रख सकते थे। यदि किसी महती योजना के आरम्भ करने के लिए महान् व्यक्ति की आवश्यकता है, तो उसे बन्द करने में भी महान् व्यक्ति ही समर्थ हो सकता है। इसलिए यह समय के अनुकूल ही हुआ कि १९२४ की कांग्रेस के सभापति गांधीजी हुए। उन्होंने अपना अद्‌भुत भाषण पेश किया; पर कांग्रेस में उसका संक्षेप ही

सुनाया गया। इस भाषण में उन्होंने १९२० से उस समय तक की घटनाओं पर प्रकाश डाला और बताया कि किस प्रकार कांग्रेस मुख्यतः एक ऐसी संस्था रही है जिसके द्वारा भोतर से शक्ति का विकास होता रहा है। सब तरह के बहिष्कारों को भिन्न-भिन्न दलों ने अपनाया। वैसे कोई भी बहिष्कार पूरा न हो सका, फिर भी जिन-जिन संस्थाओं का बहिष्कार किया गया उनका रौब बहुत-कुछ कम हो गया। सबसे बड़ा बहिष्कार हिंसा का बहिष्कार था। पर अहिंसा ने असहायावस्था की निष्क्रियता को छोड़कर अभी साधन-सम्पन्न और परिष्कृत रूप धारण नहीं किया था। जिन्होंने असहयोग में साथ नहीं दिया उनके विरुद्ध एक प्रकार की छिपी हुई हिंसा से काम लिया गया। पर अहिंसा जैसी कुछ भी थी, उसने हिंसा को दबाये रखा। फलतः सब प्रकार के बहिष्कार उठा लिये गये, केवल एक बहिष्कार--विदेशी कपड़ों का रह गया। इस प्रकार बहिष्कार करने का जनता का न केवल अधिकार ही था, बल्कि कर्त्तव्य भी था। अहिंसा के सम्बन्ध में भी उनका यही रुख था। परन्तु अकेले घरेलू-धन्धे ने ही जिन हजारों आदमियों के दरवाजे से सुख-चैन को दूर कर रक्खा था उनके विनाश से उनका जी बहुत दुखी था। उनके और स्वराजियों के मतभेदों में समझौता हो गया था। स्वराजी सूत कात कर देने को राजी हो गये और गांधीजी ने उनके कौंसिलों में काम करने पर आपत्ति नहीं की। उन्होंने कोहाट के दंगे पर सन्ताप प्रकट किया, अकालियों के साथ सहानुभूति प्रकट की, अस्पृश्यता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये और स्वराज्य-योजना का जिक्र किया। इस प्रकार भूमिका बांधने के बाद गांधीजी ने स्वराज्य की योजना के सम्बन्ध में कुछ बातें बताईं।

मताधिकार के लिए शारीरिक परिश्रम की शर्त, सैनिक व्यय में कमी, सस्ता न्याय, मादक-द्रव्य और उससे आने वाली चुङ्गी का अन्त, सिविल और सैनिक नौकरियों के वेतनों में कमी, प्रांतों का भाषा की दृष्टि से पुनर्निर्माण, इस देश में विदेशियों के इजारों (मोनोपली) की नये सिरे से जांच-पड़ताल, भारतीय नरेशों को उनकी पद-मर्यादा की गारण्टी और केन्द्रीय सरकार-द्वारा खलल न पहुँचने का आश्वासन, तानाशाही का अन्त, नौकरियों में जाति-भेद का अन्त, भिन्न-भिन्न संस्थाओं को धार्मिक-स्वतन्त्रता, देशी-भाषाओं द्वारा सरकारी काम-काज, और हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा मानना उपयुक्त समझा गया।

पूर्ण स्वराज्य के प्रश्न की ओर भी गांधीजी का ध्यान आकृष्ट हुआ। अहमदाबाद के बाद से उनके विचार सौम्य हो गये थे; क्योंकि उस समय वे आशा से भरे हुए थे, किन्तु अब जहां तक सरकार के रंग-ढंग और स्थिति का सम्बन्ध था, गांधीजी की आशाओं पर पानी पड़ गया था। उन्होंने कहा--"मैं साम्राज्य के भीतर ही स्वराज्य पाने की चेष्टा करूंगा, पर यदि स्वयं ब्रिटेन के दोष से ही उससे सारे नाते तोड़ना आवश्यक हुआ तो मैं ऐसा करने में संकोच नहीं करूंगा।" इसके बाद उन्होंने

स्वराज्य-पार्टी और रचनात्मक कार्य-क्रम का जिक्र किया और बंगाल की अवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने के बाद अहिंसा में अपनी आस्था प्रकट करके भाषण समाप्त किया।

इस अधिवेशन में कांग्रेस-मताधिकार में परिवर्तन किया गया। हिन्दुओं के कोहाट-त्याग पर खेद प्रकट किया गया। कोहाट के मुसलमानों को सलाह दी गई कि वे हिन्दुओं को उनके जान-माल के सम्बन्ध में आश्वासन दें, साथ ही हिन्दू मुहाजरीन को सलाह दी गई कि जबतक कोहाट के मुसलमान उन्हें सम्मानपूर्वक न बुलावें तबतक वे वापस न जायं। इसी तरह गुलबर्गा के पीड़ितों के प्रति भी सहानुभूति दिखाई गई। वैतनिक राष्ट्र-सेवा को पूर्ण सम्मानप्रद बताया गया। अकाली-दल, मदिरा और अफीम के सम्बन्ध में भी विचार हुआ और कांग्रेस के विधान में कुछ जरुरी तब्दीलियां की गईं।

अड़ंगा-नीति

१९२५ की राजनीति मुख्यतः कौंसिलों में किये गये काम तक सीमित रही। स्वराजियों को अपरिवर्त्तनवादियों की ओर से परेशानी नहीं थी, क्योंकि गांधीजी दोनों दलों को एक तराजू पर रखने को मौजूद थे। मध्यप्रदेश और बंगाल में द्वैध-शासन का अन्त हो गया था। लॉर्ड लिटन के निमंत्रण पर देशबन्धु दास ने बंगाल में मंत्रिमण्डल बनाने से इन्कार कर दिया था। जब लॉर्ड रीडिंग का १९२४ का नं० १ आर्डिनेन्स समाप्त हुआ तब बंगाल-कौंसिल में एक बिल पेश किया गया, जिसे स्वराजियों ने और स्वराजियों के प्रभाव ने १९२५ की जनवरी में रद कर दिया। लॉर्ड लिटन ने उसे सही कर दिया और लन्दन सम्राट्-सरकार की मंजूरी के लिए भेजा। १७ फरवरी को बंगाल-कौंसिल ने प्रस्ताव पास करके बजट में मंत्रियों के वेतन की गुंजाइश रखने की सिफारिश की। स्वराजियों को हारना पड़ा, पर उन्होंने शीघ्र ही इस क्षति को पूरा कर लिया। इधर बंगाल असहयोग के इस निश्चित मार्ग पर चल रहा था, उधर मध्यप्रान्त में इस बात की चर्चा की जा रही थी कि स्वराज्य-पार्टी को मंत्रित्व ग्रहण क्यों नहीं करना चाहिए, जिससे वह भीतर से विध्वंस कर सके? बड़ी कौंसिल में स्वराज्य-पार्टी १९२४ और १९२५ में विरोधी दल का काम करती रही। स्वराजियों ने सिलेक्ट कमिटियों में भाग लिया और लाभदायक कानून पास करने में सहयोग दिया। कभी किसी पार्टी का साथ दिया, कभी किसी का और यदाकदा सरकार का भी।

देशबन्धु की मृत्यु

इस समय तक देशबन्धुदास ने कांग्रेस में अपने लिए गौरवपूर्ण स्थान तैयार कर लिया था। इसी बीच बेलगांव-कांग्रेस के अवसर पर एक समाचार प्रकाशित हुआ कि देशबन्धु दास ने अपनी सारी सम्पत्ति देश को अर्पण कर दी है,

जिसका उपयोग परोपकार में किया जायगा। इस बात से देशबन्धुदास जनता की दृष्टि में और भी ऊंचे उठ गये थे। १९२५ के मार्च और अप्रैल में गांधीजी ने दक्षिण-भारत और केरल में दौरा किया। दक्षिण से गांधीजी बंगाल जानेवाले थे। उस समय तक दास बाबू अस्वस्थ हो चुके थे। उन्हें शाम को ज्वर रहने लगा था जो चिन्ता का कारण हो रहा था। इसके लिए उनके यूरोप जाने का प्रबन्ध किया गया था। फरीदपुर की बंगाल-प्रान्तीय-परिषद के अवसर पर यही स्थिति थी। देशबन्धु ने पण्डित मोतीलाल नेहरू को जो अन्तिम पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने कहा "हमारे इतिहास की सबसे अधिक नाजुक घड़ी आ रही है। इस वर्ष के अन्त में ठोस काम होना चाहिए और दूसरे साल के आरम्भ में हमारी सारी शक्तियां काम में लग जायंगी। इधर हम दोनों बीमार पड़े हैं। ईश्वर ही जाने, क्या होने वाला है।" इसके कुछ ही दिनों बाद ईश्वर की ऐसी इच्छा हुई कि उसने देशबन्धु को स्वर्ग में बुला लिया। १६ जून १९२५ को दार्जिलिंग में उनका परलोकवास हुआ। दास बाबू का जीवन स्वयं ही भारत के इतिहास का एक परिच्छेद था। उनके देहान्त के सम्बन्ध में खुलना में गांधीजी ने दुखी होकर कहा था—"उनकी स्मृति को अमर बनाने के लिए हमें क्या करना चाहिए। आंसू बहाना बड़ा आसान है। परन्तु आंसुओं से हमें या उनके निकटस्थ और प्रिय व्यक्तियों को कोई लाभ न होगा। यदि हम लोग हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, ये सब जो अपने-आपको भारतीय कहते हैं, संकल्प कर लें कि जिस काम के लिए देशबन्धु जिये और जिस काम में वह निमग्न रहे उसे पूरा करेंगे, तो हम सचमुच उनके स्मारक के रूप में कुछ कर सकेंगे। हम सबमें उनकी जैसी बुद्धि नहीं है, पर वे जिस उत्साह के साथ अपनी मातृभूमि से प्रेम करते थे, हम उनका अनुकरण अवश्य कर सकते हैं।"

गांधीजी देशबन्धु दास से अत्यन्त स्नेह रखते थे। वह बंगाल ही में रुक गये। उन्होंने उनकी स्मृति में एक महान् स्मारक बनाया। उन्होंने दस लाख रुपया एकत्र किया। देशबन्धु दास का भवन १४८ रसा-रोड, देश के अर्पण हुआ। इस भवन को दास बाबू की उस ट्रस्ट-योजना के अनुसार, जो उन्होंने बेलगांव-कांग्रेस से पहले प्रकट की थी, स्त्रियों और बच्चों का अस्पताल बना दिया गया। गांधीजी ने स्वराजियों के हाथ में सारी शक्ति देने और बंगाल में स्वराज्य-पार्टी की जड़ मजबूत जमाने में कोई कसर न उठा रखी। इस प्रकार श्री जे० एम० सेनगुप्त को कौंसिल में स्वराज्य-पार्टी का नेता, कलकत्ता-कारपोरेशन का मेयर और बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी का सभापति बनाने का काम उन्हीं का था। यह तिहरा राजमुकुट जो दास बाबू धारण किये हुए थे सेनगुप्त के सिर पर रख दिया गया।

स्वराज्य पार्टी से मत-भेद

इधर गांधीजी स्वराजियों को निश्चित करने की भरसक चेष्टा कर रहे थे,

उधर गांधीजी की इस उदारता का उत्तर स्वराज्य-पार्टी दूसरे ढंग से दे रही थी। स्वराज्य-पार्टी की जनरल कौंसिल का विरोध सूत देने की उस शर्त के खिलाफ हुआ था, जो बेलगांव में तय हो चुकी थी। यह विरोध बढ़ता ही गया, और अन्त में इस शर्त को उड़ा देने का फैसला महासमिति के हाथ में सौंप दिया गया। महासमिति में स्वराज्य-पार्टी का बहुमत था। १५ जुलाई को महासमिति की कलकत्ते की बैठक के बाद सम्भवतः गांधीजी ने पण्डित मोतीलाल नेहरू के पास एक पर्ची लिखकर भेजी कि चूंकि कांग्रेस में स्वराजियों की बहुलता है, और चूंकि आप स्वराज्य-पार्टी के सभापति हैं, इसलिए आपको कार्य-समिति के सभापतित्व का भार भी अपने ऊपर लेना चाहिए। गांधीजी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि मैं इसका सभापति और अधिक रहना नहीं चाहता। इस पर्ची से स्वराजियों में हलचल मच गई। पर अन्त में यह तय हुआ कि कम-से-कम उस साल के अन्त तक गांधीजी ही महासमिति के सभापति बने रहेंगे, पर यदि अगली बैठक में सूत कातने की शर्त उठा दी जायगी तो वह इस्तीफा दे देंगे और एक अलग चर्खा-संघ स्थापित करेंगे। कार्य-समिति ने सूत कातने की शर्त में परिवर्तन करने के प्रश्न पर विस्तार के साथ विचार किया और अन्त में सारे प्रश्न पर दुबारा विचार करने के लिए १ अक्तूबर को बैठक करने का निश्चय किया। इस बीच गांधीजी ने स्वराज्य पार्टी का समर्थन करने में कुछ उठा न रखा। अगस्त में गांधीजी ने लिखा था—"मुझे कांग्रेस के मार्ग में और अधिक खड़ा न होना चाहिए। कांग्रेस का पथ-प्रदर्शन मुझ-जैसे आदमी के द्वारा, जिसने अपने आपको अपढ़ जनता में मिला दिया है और जिसका भारत के शिक्षित-समाज की मनोवृत्ति से मौलिक अन्तर है, होने की अपेक्षा शिक्षित भारतीयों के द्वारा होने के मार्ग में मैं बाधक बनना नहीं चाहता। मैं अब भी उन पर अपना असर डालना चाहता हूं, परन्तु कांग्रेस को छोड़ कर नहीं। यह काम तभी अच्छी तरह हो सकता है, जब मैं रास्ते में से हट जाऊं और कांग्रेस की सहायता से, उसके नाम पर, अपना सारा ध्यान रचनात्मक कार्य में लगा दूं। मैं कांग्रेस की सहायता और उसके नाम का उपयोग उसी हद तक करूंगा जिस हद तक शिक्षित भारतीय मुझे अनुमति देंगे।" असली बात यह थी कि एक ओर तो स्वराजी लोग गांधीजी के सिद्धांतों का खण्डन करते थे और दूसरी ओर उनका नेतृत्व भी चाहते थे। वे उनका सहयोग अपनी शर्तों पर चाहते थे।

पटना-महासमिति

२१सितम्बर १९२५ को पटना में महासमिति की बैठक हुई। इस बैठक में कांग्रेस की स्थिति में तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। खद्दर का राजनैतिक महत्व छिन गया। हाथ-कता सूत देने की शर्त केवल चार आना न देने की हालत में ही लागू रही। राजनैतिक काम का भार स्वराज्य-पार्टी को सौंप दिया

गया। अब स्वराज्य-पार्टी कांग्रेस का एक अङ्ग-मात्र न रही। वह स्वयं कांग्रेस हो गई। इसके बाद से निर्वाचन का काम स्वराज्य-पार्टी नहीं, स्वयं कांग्रेस करेगी। कौंसिल-प्रवेश में विश्वास रखने वाली बड़ी कौंसिल के सदस्य अब "स्वराजिस्ट" नहीं कहलायेंगे, बल्कि कौंसिलों में कांग्रेस-सदस्य कहलायेंगे। सूत कातने की शर्त अब एकमात्र शर्त नहीं रही। इसका कारण यह न था कि उस शर्त को मानने वाले कम थे—१०,००० सदस्य मौजूद थे—परन्तु यह था कि स्वराजियों को यह शर्त पसन्द न थी। इस प्रकार खद्दर के समर्थकों और कौंसिल के समर्थकों में कांग्रेस का बटवारा हो गया। एकता ऊपर-ही-ऊपर थी। वास्तव में खद्दर के समर्थकों में असंतोष फैला हुआ है, यह बात छिपाई न जा सकती थी। फलतः पटना में जो कुछ निश्चित हुआ, कानपुर में हमें उसपर सही करनी पड़ी।

कानपुर-कांग्रेस : १९२५

१९२५ की कानपुर-कांग्रेस के दिन आ लगे थे। जनता ज्यों-की-त्यों थी——उसमें पहले की भांति प्रबल शक्ति उत्पन्न हो सकती थी। पर वह तभी जब 'शिक्षित' समुदाय उसके पास कोई जीता-जागता आदर्श, कोई फकड़ता हुआ कार्यक्रम ले जाय। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। फलतः मसाला मौजूद था, पर उसकी शक्ति गायब हो गई थी। जिस प्रकार किसी मोटरकार के साधारण उपायों से न चलने पर उसे पीछे से ढकेलने का उपाय अपनाया जाता है, और इस प्रकार ढकेले जाने के दो चार कदम बाद मोटर के इंजन में गति उत्पन्न हो जाती है और वह दुबारा रोके जाने तक काम करता रहता है, उसी प्रकार सत्याग्रह की सारी शक्तियाँ उस समय के लिए रुकी हुई थीं और उसमें गति उत्पन्न करने के लिए हर तरह का उपाय किया जा रहा था। ऐसे ही वातावरण में २६ दिसम्बर को कानपुर की कांग्रेस हुई।

कानपुर-कांग्रेस को पटना के निर्णय पर सही करनी थी। पटना में भी यह बात संदिग्ध समझी जा रही थी कि बेलगांव के आदेश के विरुद्ध सूत कातने के, मिल्कियत का बटवारा करने के और कार्य-विभाग करने के सम्बन्ध में जो निश्चय किया गया है, वह महासमिति भी स्वीकार करेगी अथवा नहीं। कानपुर-कांग्रेस के अधिवेशन के सामने, जिसकी सभानेत्री भारत की कवयित्री श्रीमती सरोजिनी नायडू थीं, इसी प्रकार के जटिल प्रश्न मौजूद थे। गांधीजी केवल ५ मिनट बोले। उन्होंने कहा कि "अपने ५ वर्ष के काम का पर्यालोचन करने के बाद मैं अपनी ऐसी एक भी बात नहीं पाता जिसे रद करूं, न अपना ऐसा कोई वक्तव्य ही पाता हूँ जिसे वापस लूं। यदि मुझे विश्वास हो जाय कि लोगों में जोश और उत्साह है तो मैं आज सत्याग्रह आरम्भ कर दूं। पर अफसोस! हालत ऐसी नहीं है।" सरोजिनी देवी ने सभानेत्री की हैसियत से जो भाषण दिया वह कांग्रेस-मंच से दिया

गया शायद सबसे छोटा भाषण था और साथ ही वह मधुरता में अपना सानी न रखता था। उन्होंने राष्ट्रीय एकता पर जोर दिया।

कानपुर-कांग्रेस का अधिवेशन स्वभावतः ही देशबन्धु दास, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, डा० सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर और अन्य नेताओं की मृत्यु पर शोक-प्रकाश के साथ प्रारम्भ हुआ। उस समय देश में दक्षिण अफ्रीका से एक शिष्ट-मण्डल आया हुआ था। कांग्रेस ने उसका स्वागत किया। बंगाल आर्डिनेन्स और गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदियों के सम्बन्ध में भी उपयुक्त प्रस्ताव पास हुए। बर्मा के गैर-बर्मन अपराधियों को निर्वासित करने और समुद्र-यात्रा करने वालों पर कर लगाने के सम्बन्ध में पेश किये गये बिलों को नागरिकों की स्वतंत्रता पर नया आक्रमण समझा गया। कांग्रेस ने सत्याग्रह अर्थात् सविनय-भंग में अपनी आस्था प्रकट की और इस बात पर जोर दिया कि सारे राजनैतिक कामों में आत्मनिर्भरता ही एक पथ-प्रदर्शक समझी जाय। इसके बाद कांग्रेस ने जो निश्चय किए उनमें मुख्यतः इन बातों पर बल दिया गया :—

(१) देश के भीतर कांग्रेस का काम यह होगा कि देश-वासियों को उनके राजनैतिक अधिकारों के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए रचनात्मक कार्यक्रम में विशेषकर चर्खे और खद्दर के प्रचार, साम्प्रदायिक ऐक्य की वृद्धि, अस्पृश्यता-निवारण, दलित जतियों का उद्धार और नशे की चीजों का सेवन न करने पर जोर दिया जाय, साथ ही स्थानीय संस्थाओं पर अधिकार करना, ग्राम-संगठन करना, राष्ट्रीय ढंग से शिक्षा का प्रचार करना, मिल-मजदूरों और खेती का काम करने वाले मजदूरों का संगठन करना, मजदूरों और मालिकों, तथा जमीदारों और किसानों में सौहार्द्र स्थापित करना और देश के राष्ट्रीय, आर्थिक, उद्योग-सम्बन्धी एवं व्यापारिक हितों की वृद्धि करना भी शामिल रहेगा।

(२) देश से बाहर कांग्रेस का काम विदेशी राष्ट्रों में वस्तुस्थिति का प्रचार करना होगा।

(३) कांग्रेस ने देश की ओर से समझौते की उन शर्तों को मंजूर किया जिन्हें बड़ी कौंसिल की इण्डिपेण्डेण्ट और स्वराज्य-पार्टियों ने अपने १८ फरवरी १९२४ के प्रस्ताव-द्वारा सरकार के आगे रखा था, और यह देखते हुए कि सरकार ने अभी तक उनका कोई उत्तर नहीं दिया है, निश्चय किया कि स्वराज-पार्टी जल्दी-से-जल्दी बड़ी कौंसिल में सरकार से उन शर्तों पर अपना आखिरी निर्णय सुनाने का अनुरोध करे। यदि फरवरी के अन्त तक कुछ निर्णय सरकार न दे सके या जो निर्णय सुनाया जाय उसे कांग्रेस की कार्य-समिति-द्वारा नियुक्त विशेष समिति अथवा महासमिति-द्वारा नियुक्त सदस्य, संतोषजनक न समझें, तो स्वराज्य-पार्टी उचित कार्रवाई-द्वारा बड़ी कौंसिल में सरकार को सूचित कर दे

कि अब वह पहले की तरह वर्तमान कौंसिलों में काम न करेगी। इसके बाद स्वराज्य-पार्टी का कोई सदस्य—चाहे वह राज्य परिषद् में हो, चाहे बड़ी कौंसिलों में, चाहे छोटी कौंसिलों में—उनकी किसी बैठक में, या उनके द्वारा नियुक्त की गई किसी कमेटी में शरीक न हो। अपनी जगह को खाली घोषित करने से रोकने, प्रान्तीय बजटों को नामंजूर करने अथवा कोई नया कर लगानेवाले बिल को रद करने के लिए कौंसिलों में जाया जा सकता है।

(४) यह कांग्रेस विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों की कार्य-समितियों को अधिकार देती है कि वे अगले वर्ष के कौंसिलों और बड़ी कौंसिलों के निर्वाचन के लिए अपने प्रान्तों में उम्मेदवार शीघ्र-से-शीघ्र चुनना आरम्भ कर दें।

अन्त में कांग्रेस और महासमिति की कार्रवाई के लिए हिन्दुस्तानी भाषा अपनाई गई। महासमिति को प्रवासी भारतवासियों के हितों की देख-भाल रखने के लिए अपने अन्तर्गत एक वैदेशिक विभाग खोलने का अधिकार दिया गया। अगला अधिवेशन आसाम में करना तय हुआ। डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी, श्री ए० रंगस्वामी आयंगर और श्री के० सन्तानम प्रधान मन्त्री नियत हुए।

साम्प्रदायिक दंगे

इस वर्ष को समाप्त करने से पहले हमें उन हिन्दू-मुस्लिम दंगों का जिक्र करना है जो १९२५ में कई स्थानों में होते रहे। हिन्दू-मुस्लिम-दंगों का जिक्र करते हुए १९२५ की पहली मई को गांधीजी ने कलकत्ते के मिर्जापुर-पार्क में कहा—"मैंने अपनी अयोग्यता स्वीकार कर ली है। मैंने स्वीकार कर लिया है कि इस रोग की औषधि बतानेवाले वैद्य की विशेषता मुझमें नहीं है। मैं तो नहीं देखता कि हिन्दू अथवा मुसलमान मेरी औषधि को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। इसलिए आजकल मैंने इस समस्या की यों ही उड़ती-सी चर्चा करके सन्तोष करना आरम्भ कर लिया है। मैं यह कहकर सन्तोष कर लेता हूँ कि यदि हम अपने देश का उद्धार करना चाहते हैं तो एक-न-एक दिन हम हिन्दू और मुसलमानों को एक होना पड़ेगा और यदि हमारे भाग्य में यही बदा है कि एक होने से पहले हमें एक-दूसरे का खून बहाना चाहिए, तो मेरा कहना यह है कि जितनी जल्दी हम यह कर डालें हमारे लिए उतना ही अच्छा है। यदि हम एक-दूसरे का सिर तोड़ने पर उतारू हैं तो हमें ऐसा मर्दानगी के साथ करना चाहिए, हमें झूठ-मूठ के आंसू न बहाने चाहिए, और यदि हम एक दूसरे के साथ दया नहीं करना चाहते तो हमें किसी दूसरे से सहानुभूति की याचना नहीं करनी चाहिए।"

१९२५ की जुलाई में सारे महीने-भर दंगे होते रहे। इनमें प्रमुख स्थान दिल्ली, कलकत्ता और इलाहाबाद थे। बकर-ईद के अवसर पर निजाम की रियासत में हुस्नबाद नामक स्थान पर भी दंगा हो गया। १९२५ का साल समाप्त करने से

पहले सिक्खों की समस्या का भी जिक्र करना आवश्यक है। १९२५ में सिक्खों की समस्या ने शान्ति धारण कर ली थी। पंजाब-कौंसिल में गुरुद्वारा-बिल पेश किया गया और पास हो गया। साथ ही सर मालकम हेली ने कहा कि यदि गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदी शर्तनामे पर दस्तखत करके नये कानून को मंजूर कर लेंगे और पहले की भांति आन्दोलन न करने का जिम्मा लेंगे तो उन्हें छोड़ दिया जायगा। बहुतों ने इसपर क्रोध प्रकट किया, पर धीरे-धीरे क्रोध शान्त हो गया। बहुत-से कैदियों ने कानून न मानने का जिम्मा लिया। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक कमिटी में इस बात को लेकर फूट पड़ गई। अधिकांश कैदी छोड़ दिये गये, पर कुछ पूरी सजा भुगतने के लिए जेलों में ही रहे।

सहयोग की ओर

१९२६ का आरम्भ कौंसिलों के कार्यक्रम के लिए कुछ विशेष शुभ न रहा। १९२३ की नवीनता का आकर्षण इस समय तक फीका पड़ चुका था। केवल 'युद्ध' की खातिर लगातार 'युद्ध' किये जाना कुछ थकाने वाली बात सिद्ध हुई और नये वर्ष के आरम्भ में ही थकावट और प्रतिक्रिया के लक्षण दिखाई देने लगे।

६ और ७ मार्च को महासमिति की बैठक रायसीना (दिल्ली) में हुई जिसमें कानपुर के निश्चय की पुष्टि की गई। एक बार फिर दिल्ली ने प्रकट किया कि स्वराज्य के मार्ग में रोड़े अटकानेवाले किसी भी कार्य का, चाहे वह सरकारी हो या और किसी प्रकार का, पूरे संकल्प के साथ मुकाबला किया जायगा और विशेष रूप से उस समय तक कौंसिलों में गये हुए कांग्रेसी सरकार द्वारा प्रदान किये जाने वाले पदों को स्वीकार न करेंगे जब तक कि सरकार की ओर से सन्तोष-जनक उत्तर न मिलेगा।

बड़ी कौंसिल में जब बजट की चर्चा आरम्भ हुई तब पण्डित मोतीलाल नेहरू ने जाहिर किया कि मैं और मेरे समर्थक मत देने में कोई भाग न लेंगे। कौंसिल-भवन की गैलरियां खचाखच भरी हुई थीं, क्योंकि स्वराजियों के बड़ी कौंसिल से 'वाक्-आउट' करने की बात पहले से ही लोगों को अच्छी तरह मालूम थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने बताया कि सरकार ने देशबन्धु की सम्पूर्ण समझौते की बात का किस प्रकार तिरस्कार किया और सरकार को चेतावनी दी कि यदि उसने सावधानी से काम न लिया तो देश भर में गुप्त-समितियां कायम हो जायंगी। इतना कहकर नेहरू जी अपनी पार्टी के सदस्यों के साथ कौंसिल-भवन से बाहर चले गये।

इस 'वाक्-आउट' के कारण एक और घटना भी हुई। अध्यक्ष श्री विट्ठलभाई पटेल ने इस 'वाक्-आउट' का जिक्र करते हुए कहा कि चूंकि कौंसिल की सबसे जबर्दस्त पार्टी कौंसिल-भवन छोड़कर चली गई है, इसलिए अब भारत-सरकार

कानून के अनुसार आवश्यक प्रतिनिधित्व रूप इस कौंसिल का नहीं रह जाता। अब यह बात भारत-सरकार ही निश्चित करे कि बड़ी कौंसिल को बैठक जारी रहे या नहीं? उन्होंने सरकार से अनुरोध किया कि वह कोई विवादग्रस्त कानून पेश न करे, नहीं तो मुझे विवश होकर उन विशेष अधिकारों का उपयोग करके जो भारत-सरकार-कानून ने मुझे प्रदान किये हैं, बैठक को अनिश्चित समय तक के लिए स्थगित करना पड़ेगा। दूसरे दिन उन्होंने बड़ी सज्जनता के साथ अपने शब्द वापस लिये और कहा—"मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि अच्छी तरह विचार करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि अध्यक्ष को अपने अधिकारों का जिक्र न करना चाहिए था, और न ऐसी भाषा का ही व्यवहार करना चाहिए था, जिसका अर्थ सरकार को धमकी देने के रूप में किया जा सके, बल्कि कोई कार्रवाई करने से पहले मुझे देखना चाहिए था कि आगे क्या होता है।" इससे सरकार की चिन्ता मिट गई।

राष्ट्रीय दल का जन्म

असहयोग का जो पत्थर गया में ऊंचाई से ढलकना शुरू हुआ था वह १९२६ के आरम्भ में साबरमती में करीब-करीब नीचे आ गिरा। हम यह देख चुके हैं कि प्रतिसहयोगी, स्वतन्त्र और राष्ट्रीय-दलवालों के कितना निकट पहुंच गये थे। तदनुसार उन्होंने ३ अप्रैल को बम्बई में अन्य दलों के नेताओं के साथ एक बैठक की, जिसके फल-स्वरूप "इंडियन नेशनल पार्टी" (राष्ट्रीय दल) का जन्म हुआ। इस पार्टी का कार्यक्रम था शान्तिपूर्ण और वैध उपायों से (सामूहिक सत्याग्रह और करबन्दी को छोड़कर) शीघ्र औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करने की तैयारी करना। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने इस पार्टी के संगठन को स्वराज्य-पार्टी के विरुद्ध चुनौती समझा। कुछ समझौते की बात-चीत के बाद स्वराज्य-पार्टी के दोनों दलों की एक बैठक २१ अप्रैल को साबरमती में बुलाई गई। इस बैठक में अन्य नेताओं के अलावा सरोजिनीदेवी, लाला लाजपतराय, श्री केलकर, श्री जयकर, श्री अणे और डा० मुंजे भी थे। यहां महासमिति द्वारा पुष्टि मिलने की शर्त रखते हुए समझौते पर हस्ताक्षर करनेवाले नेताओं के बीच यह तय हुआ कि १९२४ की फरवरी में स्वराजियों ने जो मांग पेश की थी उसके सरकार-द्वारा दिये गये उत्तर को संतोष-जनक समझा जाय, यदि मन्त्रियों को प्रांतों में अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए आवश्यक अधिकार, उत्तरदायित्व और स्वेच्छा-पूर्वक कार्य करने की सुविधा कर दी जाय। भिन्न-भिन्न प्रान्तों की कौंसिलों के कांग्रेसी सदस्यों के ऊपर इस बात का निर्णय छोड़ा गया कि इस प्रकार दिये गये अधिकार पर्याप्त हैं या नहीं, पर साथ ही उनके निर्णय पर एक कमिटी की, जिसमें पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्री मुकुन्दराव जयकर हों, पुष्टि मिल जाना

आवश्यक रखा गया। पर अभी इस समझौते की स्याही सूखने भी न पाई थी कि आन्ध्र प्रान्तीय कांग्रेस-अमिटी के सभापति श्री प्रकाशम् ने अपनी असहमति प्रकट की। अन्य अनेक प्रमुख कांग्रेसवादियों ने भी इसी प्रकार का असंतोष प्रकट किया। साधारणतया यह समझा जाने लगा कि चाहे कुछ ही दिनों के लिए सही, स्वराजी शीघ्र ही फिर कौंसिलों में चले जायँगे और मंत्रि-मण्डल कायम करेंगे। परन्तु पं० मोतीलाल नेहरू ने यह प्रकट करके कि पद-ग्रहण करने से पहले तीन शर्तों क पूरा होना जरूरी है, वातावरण को स्वच्छ कर दिया। वे तीन शर्तें थीं:—

(१) मन्त्री कौंसिलों के प्रति पूर्ण-रूप से उत्तरदायी समझे जायँ और उनपर सरकार का कोई शासन न रहे, (२) आय का उचित भाग "राष्ट्र-निर्माण" विभाग के लिये नियत किया जाय और (३) मंत्रियों को हस्तान्तरित विभागों की नौकरियों पर पूरा अधिकार हो।

परन्तु सारी बातें फिर खटाई में पड़ गईं। श्री जयकर ने उस मसविदे को, जो कमिटी के सामने रखा गया, समझौते के बिलकुल विरुद्ध बताया। साबरमती के समझौते का निपटारा करने के लिए ५ मई को महासमिति की बैठक हुई। इस बैठक में पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा कि "चूंकि शर्तों के ठीक-ठीक अर्थ के संबंध में समझौते पर हस्ताक्षर करनेवालों में इतना मतभेद है कि उसका दूर होना असम्भव है, इसलिए मैं पिछले कुछ दिनों से समझौते की जो बातचीत चला रहा था उसे रद समझा जाय।" वह इंग्लैण्ड जाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने दो महीने की छुट्टी ली और श्रीनिवास आयंगर ने उनका स्थान ग्रहण किया।

साम्प्रदायिक दंगे

१९२६ के मध्य में देश की राजनैतिक स्थिति भयंकर हो गयी। ६ अप्रैल १९२६ को लॉर्ड इर्विन भारत में आये। लगभग उसी समय कलकत्ते में बड़ा ही भयानक साम्प्रदायिक दंगा हो गया। छः सप्ताह तक कलकत्ते की सड़कें हत्या-काण्ड और अव्यवस्था का अखाड़ा बनी रहीं। जगह-जगह सड़कों पर दंगे हुए, ११० जगह आग लगाई गई, मन्दिरों और मस्जिदों पर हमला किया गया। सरकारी बयान के अनुसार पहली मुठभेड़ में ४४ आदमी मरे और ५८४ घायल हुए और दूसरी मुठभेड़ में ६६ आदमी मरे और ३९१ घायल हुए। ६ सप्ताह के विध्वंस और हत्या-काण्ड के बाद दंगा शान्त हुआ। लॉर्ड इर्विन इन दंगों से बड़े बेचैन हुए। उन्होंने इस विषय पर जो भाषण दिये उनमें उन्होंने अपनी सारी आस्था और विह्वलता, सारी धर्म-भावना और सहृदयता रख दी। उन्होंने जनता को समझाया कि भारत के राष्ट्रीय जीवन और धर्मके नाम पर भारत की उस सुकृति को बचाओ जिसे वर्तमान वैमनस्य मिटा रहा है।

निर्वाचन में कांग्रेस की विजय

सितम्बर में लाला लाजपतराय और पण्डित मोतीलाल नेहरू के बीच बड़ी कौंसिल के काम के संबंध में फिर मतभेद उठ खड़ा हुआ। लालाजी का ख्याल था कि स्वराजियों की 'वाक्-आउट' की नीति हिन्दू-हितों के लिए स्पष्टतया हानिकर है। वह पद-ग्रहण करने के सम्बन्ध में साबरमती के समझौते की पुष्टि के पक्ष में भी थे। इसलिए उन्होंने बड़ी कौंसिल में कांग्रेस-पार्टी से इस्तीफा दे दिया। बड़ी कौंसिल की अवधि भी शीघ्र ही समाप्त होने वाली थी। नये निर्वाचन सर पर मौजूद थे।

१९२६ के नवम्बर में निर्वाचन हुआ। मद्रास के कांग्रेसी उम्मीदवार—अब वह स्वराजी न कहलाते थे—पूर्ण रूप से विजयी हुए। लॉर्ड बर्कनहेड प्रतीक्षा कर रहे थे कि देखें, गोहाटी में कांग्रेस के सहयोग करने का कोई लक्षण दिखाई देता है या नहीं। श्री एस० श्रीनिवास आयंगर गोहाटी-कांग्रेस के सभापति चुने गये।

गोहाटी कांग्रेस : १९२६

गोहाटी-कांग्रेस स्वभावतः ही तनातनी के वातावरण में हुई। तनातनी का कारण सहयोग और असहयोग का पारस्परिक संघर्ष था। यह याद रखने की बात है कि आरम्भ में असहयोग का अर्थ लगातार और एक-सी रुकावट डालना था, उसके बाद इस नीति का अनुसरण उस अवस्था में, जब कौंसिलों में स्वराजियों का मताधिक्य हो, करने की बात कही गई। धीरे-धीरे यह सहयोग लगभग असहयोग के निकट आ लगा, क्या कौंसिलों की कमिटियों के निर्वाचन-द्वारा प्राप्त होने वाली जगहों के सम्बन्ध में और क्या भारत-सरकार की कमिटियों की नामजद जगहों के सम्बन्ध में। अन्त में यह असहयोग साबरमती में सहयोग के आस-पास घूमने लगा, पर झिझक के साथ। कौंसिल-पार्टी इस सम्बन्ध में बात-चीत चलाने को तो तैयार थी, पर स्वीकार करने में संकोच करती थी। इसके अलावा स्वराज्य-पार्टी में भी असहयोग करने की प्रवृत्ति मौजूद थी। पर वह राष्ट्रीय-दल, स्वतन्त्र-दल या उदार-दलवालों की स्थिति अपनाने को तैयार न थी। सहयोग के विचार को तो वह खिलवाड़ में उड़ाती थी, परन्तु स्वराजी खुद प्रतिसहयोग की, सम्मान-सहयोग की, सम्भव होने पर सहयोग और आवश्यक होने पर अड़ंगा डालने की, और सुधारों के मामले में सहयोग करने की बात करते जरूर थे। इन्हीं सूक्ष्म पर पूर्ण रूप से व्यावहारिक प्रश्नों ने प्राग्ज्योतिषपुर (गोहाटी) में आपस में खिचाव पैदा कर दिया था। साथ ही सरकार भी खुल्लम-खुल्ला प्रशंसा करके, और अप्रत्यक्ष रूप से उसे आमंत्रित करके, प्रलोभन दे रही थी और उन सारे हथकण्डों

से काम ले रही थी, जिनके द्वारा अनिश्चित मस्तिष्क और भीरू-हृदय काबू में आते हैं।

यह खिंचाव काफी सताने और तपानेवाला था, पर दुःखान्त न था। किन्तु जब अकस्मात गोहाटी में यह समाचार पहुंचा कि एक मुसलमान ने स्वामी श्रद्धानन्द को रोग-शय्या पर उनसे मुलाकात करने के बहाने, गोली मार दी तब यह और भी बढ़ गया। जिस दिन यह समाचार मिला उस दिन गोहाटी में कांग्रेस के सभापति का हाथी पर जलूस निकाला जानेवाला था। आसाम हाथियों का देश ठहरा, इसलिए वह कांग्रेस के सभापति का सम्मान अद्भुत और अपूर्व ढंग से करना चाहता था। पर जलूस का विचार छोड़ देना पड़ा। हिन्दू-मुसलमान दोनों में इस दुखद संवाद से शोक छा गया।

जब श्रीनिवास ने अपना भाषण समाप्त किया तब उसमें कोई बात दिखाई न पड़ी। उनके सारे विचार पहले से ही जाने-बूझे थे। उन्होंने निर्वाचनों का जिक्र किया और कहा कि स्वराज्य-पार्टी ने कौंसिलों में जिस नीति का अवलम्बन किया, परिणामों ने उसको उचित सिद्ध कर दिया है। फिर देशबन्धु की समझौते की कोशिश, भारत का दर्जा, सेना और जल-सेना के सम्बन्ध में कहकर कौंसिल के कार्यक्रम की चर्चा की। इसके बाद उन्होंने तत्कालीन समस्याओं, मुद्रा और साम्प्रदायिक झगड़ों और साथ ही खद्दर, अस्पृश्यता और मादक-द्रव्यनिषेध की चर्चा की और सहिष्णुता और एकता पर जोर दिया।

गोहाटी के प्रस्ताव हस्ब मामूल थे। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द के सम्बन्ध में प्रस्ताव गांधीजी ने पेश किया और अनुमोदन मौलाना मुहम्मदअली ने। गांधीजी ने समझाया कि मजहब की असलियत क्या है, और हत्या के कारणों को बताया—"शायद अब आप लोग समझ जायंगे कि मैंने अब्दुल रशीद को भाई क्यों कहा। मैं तो उसे स्वामीजी की हत्या का दोषी तक नहीं ठहराता। दोषी तो असल में वे हैं जिन्होंने एक-दूसरे के विरुद्ध घृणा को उत्तेजित किया है।" केनिया का नम्बर प्रस्तावों में दूसरा था। केनिया में प्रवासी भारतीयों के विरुद्ध कानून और भी कठोर होता जा रहा था। आरम्भ में कर २० शिलिंग था। फिर वह मुद्रा-व्यवस्था की उलट-फेर के द्वारा बढ़ाकर ३० शिलिंग कर दिया गया और उसके बाद कानून के द्वारा ५० शिलिंग कर दिया गया। इस प्रकार वहां यूरोपियन हितों की रक्षा भारतीय हितों के, उनकी स्वतन्त्रता के और उनकी आकांक्षाओं के विरुद्ध की जा रही थी। कौंसिलों के कार्यक्रम के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया गया कि:—

(१) जबतक सरकार राष्ट्रीय मांग का ऐसा उत्तर न दे देगी जो कांग्रेस की या महासमिति की राय में सन्तोषजनक हो, तबतक कांग्रेसवादी मन्त्रित्व के

पद को या सरकार-द्वारा प्रदान किये जानेवाले और किसी पद को स्वयं ग्रहण न करेंगे, और अन्य पार्टियों-द्वारा मन्त्रि-मण्डल की रचना का विरोध करेंगे।

(२) कांग्रेसवादी ऐसे प्रस्ताव पेश करेंगे और ऐसे प्रस्तावों और बिलों का समर्थन करेंगे जो राष्ट्रीय जीवन की उचित वृद्धि के लिए आर्थिक, कृषि-सम्बन्धी, उद्योग और व्यापार-सम्बन्धी हितों की उन्नति के लिए, और व्यक्तिगत तथा भाषण देने, सभा संगठन करने और समाचार पत्रों की आजादी और फलत: नौकरशाही को स्थान-च्युत करने के लिए आवश्यक हों।

इस जमाने में कांग्रेस का काम वार्षिक अधिवेशनों में लम्बे-चौड़े प्रस्ताव पास करना और कौंसिलों में मुठभेड़ करते रहना मात्र रह गया था। पर एक बात ऐसी भी थी जिसने उन दिनों में विशेषता धारण कर ली थी। जबसे अखिल-भारतीय चर्खा-संघ बना, खद्दर, ग्रामोन्नति और मितव्ययिता के पवित्र वातावरण में पनपने लगा। जिन स्त्री-पुरुषों ने खद्दर का व्रत ले लिया था वे पृथक् रूप से इसके प्रचार में लगे हुए थे। वार्षिक प्रदर्शिनियों के द्वारा सिद्ध हुआ कि कताई ने कितनी उन्नति कर दिखाई है। बिहार ने गोहाटी के अवसर पर खद्दर तैयार करने में अपनी छ:सात साल की जो उन्नति दिखाई वह सारे देश के लिए दृष्टांत-स्वरूप थी।

: १२ :

साइमन कमीशन का बहिष्कार : १९२७-२८

महासमिति की बैठक

बम्बई की महासमिति की बैठक में साम्राज्यवाद-विरोधी परिषद् के प्रश्नपर विचार हुआ। पं० जवाहरलाल इस समय यूरोप में थे। उन्होंने परिषद् में भारत का प्रतिनिधित्व किया और ब्रूसेल्स से, जहां परिषद् की बैठक हुई थी, कांग्रेस को उसकी एक रिपोर्ट भी भेजी। महासमिति ने जवाहरलाल की सेवाओं की मुक्तकंठ से प्रशंसा की और साम्राज्यवाद-विरोधी संघ के प्रयत्न को भी सराहा। महासमिति ने कांग्रेस से यह सिफारिश करने का भी निश्चय किया कि वह संघ को अपनी एक सहायक-संस्था मानकर उसके उद्देश्य तथा कार्यों का समर्थन करे।

दूसरे प्रस्ताव-द्वारा चीन की आजादी की लड़ाई के साथ भारतीयों की सहानुभूति प्रकट की गई और चीन को फौजें भेजने की भारत-सरकार की कारंवाई की निन्दा की गई; साथ ही फौजों की वापसी की भी मांग की गई। हिन्दुस्तानी-सेवा-दल ने चीन को एम्बुलेन्स कोर भेजने का जो इरादा किया था उसकी

महासमिति ने प्रशंसा की। ब्रिटेन का प्रस्तावित ट्रेड-यूनियन-कानून, बंगाल-कांग्रेस का झगड़ा, मजदूरों का संगठन, नागपुर का सत्याग्रह तथा ब्रिटिश माल का बहिष्कार—ये अन्य विषय थे जिन पर महासमिति ने उपयुक्त प्रस्ताव पास किये। इस समय मई के चौथे सप्ताह में बड़ा आनन्ददायक समाचार प्राप्त हुआ। चार साल के जेल-जीवन के बाद सुभाष बाबू छोड़ दिये गये। लॉर्ड लिटन इस विषय में जरा घबराते रहते थे।

दंगों की बाढ़

सन् १९२७ की गर्मियों में अन्य सालों की भांति कोई मार्के का कानून पास नहीं हुआ, लेकिन देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगों की बाढ़-सी आ गई। सबसे भीषण दंगा लाहौर में हुआ, जो ३ मई से ७ मई तक होता रहा और जिसमें २७ व्यक्ति मारे गये तथा २७२ घायल हुए। बिहार, मुलतान, बरेली तथा नागपुर में भी इसी प्रकार के दंगे हुए। लाहौर के बाद नागपुर का दंगा इन सबमें भीषण था, जिसमें १९ व्यक्ति मारे गये और १२३ घायल हुए। इन दंगों के पहले क्या-क्या घटनाएँ घटीं, जो इन दंगों में कुछ का कारण बनीं, इसके बारे में कुछ कहना आवश्यक है। तीन साल पहले एक किताब छपी थी, जिसका नाम था 'रंगीला रसूल'। किताब के नाम से पता चलता है कि वह कितनी आपत्तिजनक होगी। सरकार ने उसके लेखक पर मुकदमा चलाया, जो दो साल तक चलता रहा। अदालत ने दो साल की सजा का हुक्म सुनाया जो अपील में भी बहाल रहा, लेकिन हाईकोर्ट ने सजा रद कर दी और लेखक को बरी कर दिया। 'रिसाला वर्त्तमान केस' नाम का एक केस और भी हुआ, जिसमें अभियुक्त को सजा हो गई। इन दो मुकदमों का यह फल हुआ कि सरकार ने कानून में अनिश्चितता देखकर अगस्त १९२७ को एक बिल पेश कर दिया, जिसका मुख्य भाग इस प्रकार था:—

"जो कोई व्यक्ति सम्राट् की प्रजा के किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं पर जान-बूझकर और बुरे इरादे से चोट पहुंचाने के लिए मौखिक या लिखित शब्दों से या दृश्य संकेतों से उस वर्ग के धर्म या धार्मिक भावनाओं का अपमान करेगा या अपमान करने का प्रयत्न करेगा, उसे दो साल की सजा मिलेगी या जुर्माना होगा या उस पर सजा व जुर्माना दोनों होंगे।"

एकता सम्मेलन

दो दिन बहस होकर ही बिल पास हो गया। अभीतक २६ दंगे हो चुके थे जिनमें से १० उत्तर प्रदेश में, ६ बम्बई में और २-२ पंजाब, मध्य-देश, बंगाल, बिहार तथा दिल्ली में हुए थे। २९ अगस्त सन् १९२७ को भारतीय धारा-सभा में भाषण देते हुए वाइसराय लार्ड इर्विन ने बताया कि १८ महीने से भी कम समय में दंगों के कारण २५० व्यक्ति मौत के घाट उतर गये और २५०० से अधिक

घायल हुए। वायसराय ने एकता की आवश्यकता पर भी जोर दिया। इसके बाद एक एकता-सम्मेलन भी किया गया, लेकिन उसे कुछ अधिक कामयाबी न मिली। महासमिति ने भी २७ अक्तूबर १९२७ को इसी प्रकार के एक एकता-सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन का उद्‌घाटन श्री श्रीनिवास आयंगर ने किया। बहुत लम्बी बहस के बाद सम्मेलन ने एक प्रस्ताव पास किया। सम्मेलन ने उन्हीं दिनों के कुछ कातिलाना हमलों की भी निन्दा की और हिन्दू तथा मुसलमान नेताओं से अपील की कि वे देश में अहिंसा का वातावरण उत्पन्न करें। सम्मेलन ने कांग्रेस की महासमिति को भी यह अधिकार दिया कि वह हिन्दूमुस्लिम एकता का प्रचार करने के लिए हर प्रांत में एक-एक कमिटी नियुक्त करे।

महासमिति की बैठक

एकता-सम्मेलन के खत्म होते ही २८, २९ व ३० अक्तूबर १९२७ को कलकत्ता में महासमिति की बैठक हुई। साम्प्रदायिक प्रश्न पर एकता-सम्मेलन के प्रस्ताव ज्यों-के-त्यों पास कर दिये गये। इसके पश्चात् बंगाल के नजरबन्दों का सवाल सामने आया। इन नजरबन्दों में कुछ तो चार-चार साल से जेलों में पड़े हुए थे। इसलिए उनकी शीघ्र-से-शीघ्र रिहाई कराने का प्रयत्न करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई।

साइमन कमीशन का उद्देश्य

नवम्बर के पहले हफ्ते में कुछ सनसनीदार बातें हुईं। वाइसराय अपने दौरे का कार्यक्रम रद करके दिल्ली वापस आ गये। भारत के मुख्य-मुख्य नेताओं को ५ नवम्बर तथा उसके बाद की तारीखों में सुविधानुसार वाइसराय से मिलने का निमन्त्रण दिया गया। गांधीजी इस समय दिल्ली से बहुत दूर बंगलौर में थे। उन्हें भी वाइसराय से मिलने का निमन्त्रण मिला। उन्होंने अपना कार्यक्रम रद कर दिया और दिल्ली आ पहुंचे। जब वह वाइसराय से मिले तब कोई ऐसी विशेष बात न निकली। लार्ड इर्विन ने गांधीजी के हाथ में साइमन-कमीशन के सम्बन्ध में भारत-मन्त्री की घोषणा रख दी। जब गांधीजी ने वाइसराय से पूछा कि क्या बस यही काम है, तो लार्ड इर्विन ने कहा, "बस, यही।" गांधीजी ने सोचा कि यह सन्देश तो एक आने के लिफाफे के जरिये भी उनके पास पहुंच सकता था। पर बात यह थी कि साइमन-कमीशन की घोषणा भारत में ८ नवम्बर सन् १९२७ को की गई। वाइसराय उसके प्रति सद्भावनापूर्ण सहयोग प्राप्त करने के प्रयत्न में थे। कांग्रेस के सिवा भी भारत की सब पार्टियां साइमन-कमीशन की नियुक्ति से इसलिए नाराज हुईं कि उसमें एक भी भारतीय नहीं रखा गया था। श्री दिनशा वाचा जैसे अखिल-भारतीय नरम नेताओं ने कमीशन के विरुद्ध एक

घोषणा-पत्र निकाला। कांग्रेस के सिवा भारत के सब राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों ने घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये।

और आखिरकार यह कमीशन, जिसे हर जगह धिक्कारा जा रहा था, किस काम के लिए नियुक्त किया गया था? सरकारी शब्दों में कमीशन को यह काम सौंपा गया था कि वह ब्रिटिश-भारत के शासन-कार्य की शिक्षा-वृद्धि की, प्रातिनिधिक संस्थाओं के विकास की एवं तत्सम्बन्धी विषयों की जांच करे और इस बात की रिपोर्ट पेश करे कि उत्तरदायी शासन का सिद्धान्त लागू करना ठीक है या नहीं? यदि है तो किस दरजे तक? और अभीतक उत्तरदायी शासन जिस मात्रा में स्थापित किया गया है उसे बढ़ाया जाय, या कम किया जाय या उसमें और किसी प्रकार कोई हेर-फेर किया जाय? इन प्रश्नों के साथ इस बात की रिपोर्ट भी पेश की जाय कि प्रान्तों में दो-दो कौंसिलों का स्थापित करना वांछनीय है या नहीं?

जब कमीशन अपनी रिपोर्ट दे दे और उसपर भारत-सरकार तथा सम्राट् की सरकार विचार कर ले तब सम्राट्-सरकार का यह फर्ज होगा कि वह पार्लमेण्ट के सामने अपने निर्णय पेश करे। लेकिन समाट्-सरकार का पार्लमेण्ट से यह कहने का इरादा नहीं है कि जबतक उक्त निर्णयों पर भारत के भिन्न-भिन्न विचारवालों की रायें जाहिर न हो जायं उससे पहले ही वह उन निर्णयों को स्वीकृत कर ले। इसलिए सम्राट्-सरकार ने निश्चय किया है कि वह पार्लमेण्ट से यह कहे कि ये निर्णय विचारार्थ दोनों हाउसों की एक ज्वाइण्ट (संयुक्त) कमिटी के सुपुर्द किये जायं और इस बात का प्रबन्ध किया जाय कि भारत की केन्द्रीय धारा सभायें उक्त कमिटी के सामने अपने विचार पेश करने के लिए प्रतिनिधि-मण्डल भेजें जो ज्वाइण्ट कमिटी की बैठकों में भाग लें और उनके साथ विचार-विमर्श करें। ज्वाइन्ट-कमिटी जिन-जिन संस्थाओं के विचार जानना चाहे उसके प्रतिनिधियों से विचार-विमर्श करने का भी उसे अधिकार हो।

मद्रास-कांग्रेस : १९२७

ऐसे वातवरणों में १९२७ की कांग्रेस मद्रास नगर में हुई। कमीशन के सम्बन्ध में कांग्रेस को क्या करना होगा, यह ठीक-ठीक किसी को पता नहीं था। प्रश्न यह था कि इस अधिवेशन का सभापति कौन हो? १९२७ में हिन्दू-मुस्लिम दङ्गे हो रहे थे। दो एकता-सम्मेलन हो चुके थे और महासमिति ने एक सम्मेलन के प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिये थे। ऐसे वर्ष में कांग्रेस का सभापतित्व एक मुसलमान से बढ़कर और कौन कर सकता था? और मुसलमानों में भी डॉ० अंसारी से बढ़कर? वही मद्रास-कांग्रेस के सभापति चुने गये। उन्होने अपने भाषण में साम्प्रदायिक मेल-जोल के प्रश्न को खूब जगह दी। कांग्रेस की नीति का संक्षेप में वर्णन करते हुए उन्होंने बताया कि कांग्रेस की नीति ३५ साल तक तो

सहयोग की रही, फिर डेढ़ साल तक असहयोग की, और फिर चार साल कौंसिलों में अड़ंगेबाजी करने और कौंसिलों का काम ही रोक देने की। "असहयोग असफल सिद्ध नहीं हुआ" डॉ० अन्सारी ने कहा, "हम ही असहयोग के लिए विफल सिद्ध हुए। शोक-प्रस्ताव, साम्राज्यवाद-विरोधी-संघ, चीन, पासपोर्टों का न मिलना आदि ऐसे विषय थे जिन पर हर साल ही प्रस्ताव पास होते रहते थे। चूंकि स्वराज्य का मसविदा तैयार करने की मांग की गई थी और कांग्रेस के सामने कई मसविदे पेश थे, अतः कांग्रेस ने कार्य-समिति को अधिकार दिया कि वह अन्य संस्थाओं से मशविरा करके स्वराज्य का मसविदा तैयार करे और उसे एक विशेष कन्वेन्शन (पंचायत) के सामने स्वीकृति के लिए रक्खे। इस कार्य के लिए कार्य-समिति को और सदस्य बढ़ाने का भी अधिकार दिया गया। कांग्रेस के विधान में कुछ परिवर्तन किया गया। लेकिन इस वर्ष का सबसे मुख्य प्रस्ताव शाही कमीशन के सम्बन्ध में था, जिसका प्रारम्भिक अंश इस प्रकार था—"चूंकि ब्रिटिश-सरकार ने भारत के स्वभाग्य-निर्णय के अधिकार की पूर्ण उपेक्षा करके एक शाही कमीशन नियुक्त किया है, यह कांग्रेस निश्चय करती है कि भारत के लिए आत्मसम्मानपूर्ण एकमात्र मार्ग यही है कि वह कमीशन का हर हालत में और हर तरह से बहिष्कार करे।"

काकोरी-केस के अभियुक्तों को बर्बरतापूर्ण सजायें दी जाने पर और उससे जनता में रोष की प्रबल भावना फैलने पर भी सरकार ने उनकी सजायें न घटाईं। उस पर भी एक विशेष प्रस्ताव-द्वारा दुःख प्रकट किया गया और कांग्रेस ने उनके परिवारों के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट की।

अन्त में कांग्रेस के ध्येय की भी एक पृथक् प्रस्ताव-द्वारा परिभाषा की गई। इसके अनुसार यह कहा गया—"यह कांग्रेस घोषित करती है कि भारतीय जनता का लक्ष्य पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता है।" यह प्रस्ताव कुछ साल तक कांग्रेस के हरेक अधिवेशन में पेश होता चला आ रहा था। यूरोप से जवाहरलालजी के लौट आने के कारण इस प्रस्ताव को और भी बल प्राप्त हुआ। स्वयं श्रीमती बेसेण्ट ने भी इस प्रस्ताव पर कोई आपत्ति न की। आपने विषय-समिति की बैठक में कहा कि भारत के लक्ष्य का यह बड़ा ही शानदार व स्पष्ट वक्तव्य है। गांधीजी उस समय समिति की बैठक में मौजूद नहीं थे और उन्हें इस प्रस्ताव का पता तभी चला जब कि वह पास हो गया।

कमीशन का बहिष्कार

जब १९२८ का साल प्रारम्भ हुआ तब देश कमीशन के बहिष्कार में जी-जान से जुटा हुआ था। कमीशन की घोषणा करते समय लॉर्ड इर्विन ने कहा था कि भारतीयसम्मान तथा भारतीय गौरव को जान-बूझ कर अपमानित करने का सम्राट्-

सरकार का कोई इरादा नहीं है। साथ ही उन्होंने इस बात की भी धमकी दे दी थी कि यदि कमीशन के कार्य में भारतीयों की सहायता न प्राप्त हुई तब भी कमीशन अपना कार्य बदस्तूर चलाता रहेगा और अपनी रिपोर्ट पार्लमेण्ट में पेश कर देगा। रिपोर्ट पेश हो जाने के बाद पार्लमेण्ट उस पर अपनी मर्जी के अनुसार जो निर्णय करना चाहेगी, करेगी।

३ फरवरी को कमीशन बम्बई में आकर उतरा। उस दिन भारत-भर में हड़ताल मनाई गई और कमीशन के बहिष्कार का श्रीगणेश कर दिया गया। मद्रास में हाईकोर्ट के पास पुलिस ने भीड़ पर गोली चला दी। पुलिस की गोली से कई व्यक्ति घायल हुए, जिनमें से एक तो जहां-का-तहीं मर गया और दो बाद में जाकर मरे। कलकत्ते में भी छात्रों और पुलिस की मुठभेड़ हुई।

कमीशन बम्बई से चलकर सबसे पहले दिल्ली आया। दिल्ली में कमीशन को "गो बैक, साइमन!" "साइमन वापस लौट जाओ" के झण्डे तथा तख्ते दिखाये गये। दक्षिण भारत लिबरल फेडरेशन (जो आम तौर पर जस्टिस-पार्टी के नाम से प्रसिद्ध था) तथा कुछ मुस्लिम संस्थाओं को छोड़कर यह कहा जा सकता है कि भारत ने कमीशन का पूर्ण बहिष्कार किया।

कमीशन के बहिष्कार की इतनी भारी सफलता देखकर सरकार के मन में यह बात आई कि अब आतंक तथा दबाव से काम लेना चाहिए। लाहौर में कमीशन के विरोध में प्रदर्शन करने के लिए लाला लाजपतराय के नेतृत्व में एक बड़ा भारी जन-समूह एकत्र हुआ। पुलिस वालों ने भीड़ पर हमला किया और कई प्रतिष्ठित नेताओं को डण्डों और लाठियों से ठोंका-पीटा। लालाजी के कई जगह गहरी चोटें आईं। यह एक आम ख्याल है कि उनकी मृत्यु इस बुजदिलाना हमले के कारण ही हुई थी। यद्यपि लालाजी की मृत्यु के सम्बन्ध में खुले तौर पर यह अभियोग लगाया गया, तो भी सरकार ने निष्पक्ष जांच करने से साफ इन्कार कर दिया।

लखनऊ में भी कमीशन के आने के दिन निःशस्त्र तथा शान्त भीड़ पर पुलिस ने कई बार जानबूझ कर व अकारण डण्डे बरसाये। उत्तरप्रदेश की पुलिस ने तो जवाहरलालजी तक को न छोड़ा। लखनऊ तो पैदल तथा घुड़सवार पुलिस के कारण एक विशाल फौजी पड़ाव-सा ही बन गया। चार दिन तक पुलिस के बर्बरतापूर्ण हमले होते रहे। पुलिस वाले लोगों के घरों तक में घुस गये और "साइमन, वापस चले जाओ!" के नारे लगाने पर ही उन्होंने कई प्रतिष्ठित राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया और बुरी तरह पीटा। लेकिन लखनऊ के जोशीले नागरिक इन बर्बरता-पूर्ण हमलों से तनिक भी न घबराए। अधिकारी-वर्ग को तो उन्होंने एक बार इतना छकाया कि वह देखता का-देखता रह गया और सारा शहर हँसी के मारे लोट-पोट हो गया। मामला इस प्रकार था: कुछ ताल्लुकेदारों ने कैसरबाग में साइमन कमीशन

को एक पार्टी दी। पुलिस ने कैसरबाग को चारों ओर से घेर लिया। इतनी एहतियात रखने पर भी जब आसमान से सैकड़ों काली-काली पतंगें तथा गुब्बारे, जिन पर 'साइमन चले जाओ', 'भारत भारतवासियों के लिए है' आदि शब्द लिखे हुए थे, आ-आकर बाग में गिरने लगे तब सारी पार्टी का मजा किरकिरा हो गया।

जब कमीशन पटना पहुंचा तब उसके विरोध में प्रदर्शन करने के लिए ५० हजार आदमियों की एक भारी भीड़ जमा हुई। कमीशन का स्वागत करने के लिए भी कुछ सरकारी चपरासी और मुट्ठीभर सरकारी कर्मचारी मौजूद थे। सरकार ने आस-पास के गांवों से लारियों में भर-भर कर किसान बुलवाये, लेकिन स्वागत-कैम्पों में घुसने के बजाय वे बहिष्कार कैम्पों में जा डटे और स्टेशन पर विराट् जन-समूह ने कमीशन के विरोध में जो अहिंसा-पूर्ण प्रदर्शन किया उसे और स्वागत तथा बहिष्कार-पार्टियों के बल को देखकर तो सरकार की आंखें ही खुल गईं।

कमीशन के भारत आते ही सर जान साइमन ने वाइसराय को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा कि कमीशन एक संयुक्त स्वतन्त्र सम्मेलन का रूप लेगा जिसमें एक ओर कमीशन के सातों अंग्रेज सदस्य होंगे और दूसरी ओर बड़ी कौंसल-द्वारा चुने गये सातों भारतीय। सम्मेलन के सब सदस्यों को सब कागजात देखने का अधिकार होगा और भारतीय-सदस्य उसमें बराबरी के दर्जे पर माने जायंगे। प्रान्तीय कौंसिलों से भी इसी प्रकार की प्रान्तीय सिलेक्ट कमिटियां चुनने की सिफारिश करने को कहा गया था। यह निश्चय हुआ कि जब केन्द्रीय विषयों पर कमीशन के सामने विचार होगा तब उसके साथ बड़ी कौंसिल-द्वारा निर्वाचित संयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी काम करेगी और जब प्रान्तीय विषयों पर विचार होगा तब उस प्रान्तीय कौंसिल की सिलेक्ट-कमिटी काम करेगी, जिसका उन विषयों से सम्बन्ध है। कमीशन अपनी रिपोर्ट अलग ब्रिटिश-सरकार को देगा और संयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी अपनी रिपोर्ट अलग बड़ी कौंसिल को। इस घोषणा का भी भारत पर कुछ असर न हुआ। घोषणा के निकलने के दो-तीन घन्टे के भीतर ही राजनैतिक नेतागण दिल्ली में एकत्र हुए और यह घोषणा की कि कमीशन के खिलाफ उनकी जो आपत्तियां थीं वे ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं और वे किसी भी हालत में कमीशन से सरोकार नहीं रखना चाहते। असेम्बली ने तो केन्द्रीय संयुक्त सिलेक्ट-कमिटी के लिए अपने सदस्य तक चुनने से इन्कार कर दिया। इस सम्बन्ध में लाला लाजपतराय ने १६ फरवरी को असेम्बली में यह प्रस्ताव पेश किया कि चूंकि कमीशन की सदस्यता तथा उसके कार्य की सारी योजना असेम्बली को अस्वीकार्य है, अतः वह उससे किसी भी हालत में और किसी भी तरह कोई सरोकार नहीं रखना चाहती। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा कि "कमीशन के साथ भारतीय

उसी हालत में सहयोग कर सकेंगे जब कि उसमें भारतीय भी इतनी ही संख्या में नियुक्त किये जायं।'' प्रस्ताव ६२ के विरुद्ध ६८ रायों से पास हो गया। सरकार को लाचार होकर स्वयं केन्द्रीय कमिटी के लिए असेम्बली के सदस्य नामजद करने पड़े। यहां यह जानकर आश्चर्य होगा कि जब कमीशन बम्बई में घूम रहा था तब 'सर' की पदवी धारण करनेवाले २२ नाइटों में से एक ने भी कमीशन से मिलने की तकलीफ गवारा न की। देश में बहिष्कार की जो लहर फैली हुई थी उसका इससे ज्वलन्त प्रमाण और क्या मिल सकता है?

सर्वदल सम्मेलन

साइमन कमीशन के भ्रमण के बाद कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार दिल्ली में फरवरी-मार्च १९२८ में सर्वदल-सम्मेलन की बैठक की गई। सम्मेलन में उपस्थित संस्थाएँ और कांग्रेस इस बात पर एक मत हो गये कि भारत की वैधानिक समस्या पर 'पूर्ण उत्तरदायी शासन' को आधार मानकर विचार होना चाहिए। दो महीनों में सम्मेलन की कुल मिलाकर २५ बैठकें हुईं और लगभग $\frac{3}{4}$ समस्याएँ शांतिपूर्वक तय हो गईं। १९ मई को डा० अन्सारी के सभापतित्व में फिर सम्मेलन की बैठक हुई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि भारतीय विधान के सिद्धांतों का मसविदा तैयार करने के लिए पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमिटी नियुक्त की जाय, जो १ जुलाई १९२८ तक अपनी रिपोर्ट दे दे और मसविदा देश की भिन्न-भिन्न संस्थाओं के पास भेजा जाय। २९ राजनैतिक संस्थाओं ने कमिटी नियुक्त करने के प्रस्ताव के पक्ष में राय दी।

बारडोली सत्याग्रह की बैठक

१९२८ की घटनाओं में बारडोली का सत्याग्रह भी प्रमुख था। बारडोली वह तहसील है जहां गांधीजी 'सामूहिक-सविनय-अवज्ञा' का प्रयोग करना चाहते थे, लेकिन दो तीन बार इरादा करके उन्होंने फरवरी १९२२ में उसे छोड़ दिया था। बारडोली में बन्दोबस्त होनेवाला था। बन्दोबस्त का और कोई परिणाम होता हो या न होता हो, यह एक परिणाम अवश्य होता है कि मालगुजारी लगभग २५ प्रतिशत बढ़ जाती है। बारडोली के आदमियों का कहना था कि उनपर माल गुजारी बढ़ने का कोई कारण नहीं होना चाहिए, क्योंकि जमीन से जो कुछ भी उनकी फसल बढ़ी है या अच्छी है उसके लिए उनको बहुत परिश्रम और समय खर्च करना पड़ा है। फिर भी बारडोली में सरकार ने २५ प्रतिशत मालगुजारी बढ़ा दी। जांच कराने के सभी उपाय व्यर्थ हो गये। अन्त में चुनौती दे दी गई और करबन्दी आन्दोलन शुरू हो गया। कांग्रेस ने पहले कोई दखल नहीं दिया। किसानों ने कर न देने का निश्चय पहले ही अपनी ताल्लुका-परिषद् में कर लिया था और सरदार वल्लभभाई पटेल को आमन्त्रित किया था कि उनका नेतृत्व

करें। ऐसी हालत में सरदार पटेल ने आन्दोलन को संगठित किया। सरकार ने जानवरों की कुर्की कराना शुरू किया। लोगों ने कुर्कियां होने के मार्ग में कोई रुकावट नहीं डाली। इसके बाद जल्द ही, बम्बई-कौंसिल के कुछ निर्वाचित सदस्यों ने विरोध में कौंसिल की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया और आन्दोलन में दिलचस्पी लेने लगे। असेम्बली के अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल ने भी वाइसराय को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने इस बात की धमकी दी कि यदि सरकार न झुकेगी तो वह इस्तीफा देकर इस काम में जुट जायंगे। आखिरकार एक मार्ग निकल ही आया, जिसके अनुसार एक तीसरे आदमी ने बढ़ाई गई मालगुजारी जमा कर दी, कैदियों की रिहाई की शर्त मान ली गई, जायदाद का लौटाया जाना तय हो गया और आन्दोलन वापस लेने का निश्चय हुआ। सरकार ने एक अदालत बिठा दी, जिसमें न्याय-विभाग के और शासन-विभाग के प्रतिनिधि थे। अदालत ने मामले की जांच की और यह निश्चय किया कि मालगुजारी केवल ६$\frac{1}{4}$ प्रतिशत बढ़ाई जाय। वास्तव में देखा जाय तो न तो कानून में ही और न मालगुजारी के नियमों में ही ऐसा कोई विधान था कि कोई अदालत जांच के लिए बिठाई जाय। इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि यद्यपि अदालत ने यह सिफारिश की थी कि केवल ६$\frac{1}{4}$ मालगुजारी बढ़ाई जाय, तो भी वास्तव में बारडोली तहसील में मालगुजारी बिलकुल बढ़ी ही नहीं और फैसले के बाद भी अपनी पहली हद तक ही रही। समझौते की वास्तविक सफलता तो इस बात में थी कि मालिकों को बेची हुई जमीनें और पटेल तथा तलाटियों को अपनी जगहें फिर मिल गईं।

सर्वदल सम्मेलन की बैठक

नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए सर्वदल-सम्मेलन की बैठकें लखनऊ में २८, २९ तथा ३० अगस्त १९२८ को हुईं। नेहरू-कमिटी को उसके परिश्रम के लिए बधाई दी गई। सम्मेलन ने उसे औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में घोषित किया, यद्यपि उन राजनैतिक दलों को अपने विचारों के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता दी गई, जिनका ध्येय 'पूर्ण स्वतन्त्रता' था। उन पूर्ण स्वतन्त्रतावादियों ने, जो औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में न थे, सम्मेलन में एक वक्तव्य पढ़कर सुनाया, जिसमें बात स्पष्ट की गई कि भारत का विधान पूर्ण-स्वतन्त्रता के आधार पर ही बनाया जाना चाहिए। उनका उद्देश्य था कि वे उक्त प्रस्ताव से, जिसके द्वारा उन्हें कार्य-स्वतन्त्रता दी गई थी, खूब फायदा उठाएँ। इसलिए जहां उन्होंने प्रस्ताव का समर्थन न करने का निश्चय किया, वहां उन्होंने सम्मेलन के कार्य में कोई बाधा न डाली। उन्होंने कहा कि इस प्रस्ताव से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है और इसलिए वे न तो उस पर होनेवाली बहस में भाग लेंगे और न उसमें कोई संशोधन पेश करेंगे। सम्मेलन में जिन अन्य विषयों पर विचार

हुआ वे सिन्ध, प्रान्तों का बंटवारा तथा संयुक्त-निर्वाचन से सम्बन्ध रखते थे। सम्मेलन की रिपोर्ट पर महासमिति ने दिल्ली में ४ तथा ५ नवम्बर को विचार किया। महासमिति ने पूर्ण-स्वतन्त्रता के ध्येय को दोहराया, नेहरू-कमिटी के साम्प्रदायिक फैसले को स्वीकार किया और यह राय जाहिर करते हुए कि नेहरू-कमिटी के प्रस्ताव राजनैतिक प्रगति की ओर ले जाने में सहायक हैं उन्हें आमतौर पर स्वीकार किया।

कलकत्ता-कांग्रेस : १९२८

कलकत्ता-कांग्रेस राष्ट्रीय सम्मेलनों में एक बड़े महत्व का सम्मेलन था, क्योंकि उसे कांग्रेस का भावी मार्ग निर्दिष्ट करना था। इस महत्त्व के कारण पंडित मोतीलाल नेहरू उसके सभापति चुने गये। इसके साथ सर्वदल-सम्मेलन भी लागू हुआ था, जिसका पूरा इजलास कलकत्ते में हुआ। इस समय भारत में साइमन-कमीशन का दूसरा दौरा शुरू हो चुका था और जिस समय कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हो रहा था उस समय भी कमीशन देश का दौरा कर रहा था। पंडितजी ने अपने अभिभाषण में बताया कि कमीशन का देश में, कितने जोर के साथ बहिष्कार हुआ और उस बहिष्कार ने एंग्लो-इण्डियनों के दिमाग पर क्या असर किया। उन्होंने कहा कि हमारा लक्ष्य स्वाधीनता है, जिसका स्वरूप इस बात पर निर्भर है कि वह किस समय और किस परिस्थिति में हमें प्राप्त होती है। आगे पंडितजी ने इस बात पर जोर दिया कि "सर्वदल-सम्मेलन जिस स्थल तक पहुंच गया है वहीं से सरकार को उसका कार्य शुरू कर देना चाहिए और जहां तक हम जा सकें वहां तक उसे हमारा साथ देना चाहिए।"

कलकत्ता-कांग्रेस की एक भारी विशेषता यह थी कि विदेशों से व्यक्तियों तथा संस्थाओं की सहानुभूति के सैकड़ों सन्देश प्राप्त हुए जिनमें न्यूयार्क से श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती सनयात सेन, मोशिये रोम्या रोलां और फारस के समाजवादी दल तथा न्यूजीलैंड के कम्यूनिस्ट दल प्रमुख थे। विदेशों से आये सन्देशों तथा बधाइयों के उत्तर में विदेशी मित्रों को भी उसी प्रकार के सन्देश तथा बधाइयां दी गईं और महासमिति को आदेश दिया गया कि वह एक वैदेशिक विभाग खोलकर विदेशी मित्रों से सम्पर्क स्थापित करे। अखिल-एशिया-सम्मेलन का आयोजन भारत में करने के लिए भी एक प्रस्ताव पास किया गया। चीन के पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर लेने पर उसे बधाई दी गई और मिश्र, सीरिया, फिलस्तीन तथा ईराक के स्वातन्त्र्य-युद्ध के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। साम्राज्य-विरोधी-संघ के द्वितीय विश्व-सम्मेलन के आयोजन का स्वागत किया गया। ब्रिटिश माल के बहिष्कार के आंदोलन पर भी जोर दिया गया। बारडोली की शानदार विजय पर सरदार वल्लभभाई पटेल को बधाई दी गई। सरकारी उत्सवों, दरबारों तथा

सरकारी अधिकारियों-द्वारा आयोजित अथवा उनके सम्मान में किये जाने वाले अन्य सब सरकारी तथा गैर-सरकारी उत्सवों में भाग लेने की कांग्रेसवादियों को मनाही की गई। देशी-राज्यों में उत्तरदायी-शासन स्थापित करने की भी एक प्रस्ताव द्वारा मांग की गई। सरकार को अन्तिम चेतावनी देने का जो प्रस्ताव पास हुआ था वह इस प्रकार थाः—

"सर्व-दल-समिति (नेहरू-कमिटी) की रिपोर्ट में शासन-विधान की जो तजबीज पेश की गई है उसपर विचार करके कांग्रेस उसका स्वागत करती है और उसे भारत की राजनैतिक तथा साम्प्रदायिक समस्याओं को हल करने में बहुत अधिक सहायता देनेवाली मानती है। साथ ही सब सिफारिशों को प्रायः सर्व-सम्मति से ही करने के लिए कमिटी को बधाई देती है। यद्यपि यह कांग्रेस मद्रास-कांग्रेस के पूर्ण-स्वाधीनता के निश्चय पर कायम है, फिर भी यह कमिटी-द्वारा तैयार किये गये विधान को राजनैतिक प्रगति की दिशा में एक बड़ा पग मानकर उसे मंजूर करती है।

"अगर ब्रिटिश-पार्लमेण्ट इस विधान को ज्यों-का-त्यों ३१ सितम्बर १९२९ तक या उसके पहले स्वीकार करले तो यह कांग्रेस इस विधान को अपना लेगी, बशर्ते कि राजनैतिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन न हो। लेकिन यदि उस तारीख तक पार्लमेण्ट उसे मंजूर न करे या इसके पहले ही उसे नामंजूर कर दे तो कांग्रेस देश को यह सलाह देकर कि वह करों का देना बन्द कर देगी और उन अन्य तरीकों-द्वारा, जिनका बाद में निश्चय हो, अहिंसात्मक असहयोग का आन्दोलन संगठित करेगी।"

कलकता-कांग्रेस ने अपना अगला कार्य-क्रम भी निर्धारित किया जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार थीं:—

(१) सब नशीली चीजों का व्यवहार बन्द कराने के लिए कौंसिलों के भीतर और बाहर देश में हर तरह से कोशिश की जायगी।

(२) हाथ की कती और बुनी खादी की उत्पत्ति बढ़ाकर तुरन्त उपयुक्त उपाय काम में लाये जायंगे।

(३) जहां कहीं लोगों को कोई खास तकलीफ हो और यदि वे लोग तैयार हों तो उस शिकायत को दूर कराने के लिए अहिंसात्मक अस्त्र का उपयोग किया जायगा।

(४) कांग्रेस की ओर से कौंसिलों के लिए जो सदस्य जायंगे उन्हें अपना अधिक समय कांग्रेस-कमिटी-द्वारा समय-समय पर नियत किये गये रचनात्मक कार्य क्रम में लगाना होगा।

(५) प्रत्येक हिन्दू-कांग्रेसवादी का यह कर्तव्य होगा कि वह सामाजिक

कुरीतियों तथा अस्पृश्यता को दूर करने के लिए पूरी चेष्टा करेगा और अछूत कहे जाने वालों को उनकी अयोग्यताएँ दूर करने में यथासंभव सहायता देगा।

कलकत्ता-कांग्रेस में लगभग ५०,००० से अधिक मजदूरों-द्वारा किया गया प्रदर्शन सदा स्मरण रहेगा। आस-पास के मिल-क्षेत्रों के रहनेवाले मजदूर सुव्यवस्थित रूप से एक जलूस बना कर कांग्रेस-नगर में घुस आये और राष्ट्रीय-झण्डे की सलामी करके पंडाल में आकर दो घण्टे तक अपनी सभा करते रहे। इसके पश्चात 'भारत के लिए स्वतन्त्रता' का प्रस्ताव पास करके वे पंडाल छोड़कर चले गये।

देश में युवक-आन्दोलन का प्रादुर्भाव होना इस वर्ष की एक विशेषता थी। देश में जगह-जगह युवक-संघ तथा छात्र-संघ बन गये। बम्बई और बंगाल में तो उनका बड़ा जोर था। युवकों ने साइमन-कमीशन के सम्बन्ध में किये गये बहिष्कार-प्रदर्शनों में भी खूब भाग लिया था। लखनऊ में पुलिस की लाठियों और डंडों की मार तो खास तौर पर उन्होंने ही खाई थी।

गांधीजी की ओर

अब हमें पाठकों को संक्षेप में यह बताना है कि गांधीजी अपने एकान्त-जीवन से कलकत्ता कांग्रेस में कैसे आ फंसे। याद रहे कि उन्हें अहमदाबाद कांग्रेस के बाद मार्च १९२२ में ही गिरफ्तार कर लिया गया था। इसलिए वह १९२२ की गया-कांग्रेस, सितम्बर १९२३ के दिल्ली के विशेष अधिवेशन और १९२३ के कोकनडा के वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित न हो सके थे। ५ फरवरी १९२४ को वह छूटे और बेलगांव-कांग्रेस के सभापति बने। कानपुर-कांग्रेस में स्वराज्य-पार्टी से साझेदारी के मामले में पटना के निर्णयों पर कांग्रेस की छाप लगवाने के लिए ही वह आये थे। इसके बाद उन्होंने राजनीति में चुप्पी साधने की एक साल की शपथ ले ली और गोहाटी में उसे पूरा कर दिया। गोहाटी में उन्होंने कांग्रेस के बहस-मुबाहसों में सक्रिय-भाग लिया, लेकिन मद्रास में तो वह बिलकुल उदासीन रहे। यह बात सन्देहजनक ही थी कि वह कलकत्ता-कांग्रेस के अधिविशेनों में भाग लेंगे या नहीं। कुछ वर्षों से वह कांग्रेस के सालाना अधिवेशनों के पहले एक मास वर्धा-आश्रम में बिताया करते थे। इस साल भी जब कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में दिसम्बर १९२८ में होने वाला था, वह वर्धा में थे। पंडित मोतीलाल नेहरू जिन्हें स्वागतार्थ ३६ घोड़ों की गाड़ी में बिठाकर शहर में जलूस में निकाला गया था, अपने आपको बड़ी विकट परिस्थिति में पाने लगे। लखनऊ-सर्वदल-सम्मेलन में जिन विरोधियों ने सभापति के नाम एक पत्र पर हस्ताक्षर करके औपनिवेशिक स्वराज्य के विरोध में और स्वतन्त्रता के पक्ष में घोषणा की थी, वे भी वहां मौजूद थे और उन्होंने अपना स्वाधीनता-संघ भी बना लिया था। इनमें जवाहरलाल भी शामिल

थे। बंगाल ने अपना संघ अलग बनाया था और श्री सुभाषचन्द्र बसु उसके मुखिया थे।

सर्वदल-सम्मेलन के बारे में भी एक शब्द इस समय कहना उचित होगा। सम्मेलन बुरी तरह असफल हुआ। मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य अल्प-संख्यक जातियों ने एक-एक करके साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को धिक्कारा। उधर श्री जिन्ना भी, जो अभी इंग्लैण्ड से वापस आये थे और जिन्होंने आते ही नेहरू-रिपोर्ट को कोसना शुरू कर दिया था, उसका विरोध करने लगे। कुछ मुसलमान पहले ही उसकी मुखालफत जाहिर कर चुके थे। कोरम पूरा न होने के कारण श्री जिन्ना ने लीग की बैठक स्थगित कर दी। ऐसी दशा में कलकत्ते में सर्वदल-सम्मेलन मृत्यु-शय्या पर पहुंच चुका था। अतः उसे स्वर्ग में पहुँचाने की आवश्यकता थी। गांधीजी के अलावा उसे स्वर्ग-द्वार तक कौन पहुंचा सकता था? अतः उन्होंने प्रस्ताव किया कि सम्मेलन की कार्रवाई अनिश्चित काल के लिए स्थगित की जाय। प्रस्ताव पास हो गया। अब कांग्रेस निश्चित रूप से गांधीजी की ओर झुक रही थी; लेकिन वह अपने खुद के कई बोझों से लदी हुई थी। राजनैतिक वातावरण इस समय बहुत अन्धकारमय था। स्वतन्त्रता के हामियों पर मुकदमे चलने की अफवाहें, वाइसराय का कलकत्ता में उत्तेजनापूर्ण भाषण, "फारवर्ड" के सम्पादक को सजा होना, मद्रास में मुकदमों का दौर-दौरा—ऐसी घटनायें थीं जिन्होंने गांधीजी के ऊपर बहुत भारी प्रभाव डाला। वह कलकत्ते की घटनाओं से और भी अधिक बेचैन थे। इन बातों के अलावा गांधीजी के पास यूरोप आने का भी निमंत्रण था। लेकिन अच्छी तरह विचार करके और मित्रों से परामर्श करने के बाद गांधी जी इस नतीजे पर पहुँचे कि कम-से-कम इस एक वर्ष के लिए तो उन्हें अपना दौरा स्थगित रखना चाहिए। यह फरवरी १९२९ के प्रथम सप्ताह की बात है। हमें अब देखना है कि फरवरी १९३० के लिए देश के भाग्य में क्या-क्या बदा था।

: १३ :

कांग्रेस का उग्र रूप : १९२९-३०

मज़दूर-दल की विजय

१९२९ के आरम्भ में भारत की परिस्थिति वस्तुतः बड़ी विकट थी। इस समय साइमन-कमीशन के साथ-साथ सेण्ट्रल कमिटी भी देश में दौरा कर रही थी। इस कमिटी में चार सदस्य तो राज्य-परिषद् से चुने गये थे और पांच सरकार ने

असेम्बली में से मनोनीत कर दिये थे। साइमन कमीशन ने भी १४ अप्रैल १९२९ को अपना भारतीय कार्य समाप्त कर दिया था। कमीशनवाले विलायत में पहुंचे ही थे कि मई १९२९ में अनुदार-दल की सरकार साधारण चुनाव में हार गई। मजदूर-दल का मन्त्रिमण्डल बना। मैकडानाल्ड प्रधानमंत्री बने और वेजवुड बने भारत-मंत्री। लार्ड अर्विन चार मास की छुट्टी लेकर जून में इंग्लैण्ड पहुंचे। इस यात्रा का उद्देश्य यह था कि साइमन-कमीशन के परणाम-स्वरूप भारत के लिए जो सुधार-योजना पार्लमेण्ट के समक्ष रखी जाय उससे पहले ऐसा उपाय किया जाय जिससे विधान-सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट हो जाय और भारत के भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों का अधिक सहयोग प्राप्त किया जा सके।

उपसमितियों का कार्य

कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन के बाद तुरन्त ही कार्य-समिति ने अनेक उपसमितियां बनाईं। विदेशी वस्त्र के बहिष्कार, मादक-द्रव्यों के निषेध, अस्पृश्यता-निवारण, महासभा के संगठन तथा स्वयंसेवकों और स्त्रियों की बाधाओं को दूर करने के लिए कमिटियां नियुक्त की गईं। इधर यह हो रहा था, उधर कांग्रेस अपने निश्चयों के अनुसार रचनात्मक कार्यों में लगी थी।

विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार समिति के अध्यक्ष थे गांधीजी और मंत्री थे श्री जयरामदास दौलतराम। यह समिति वर्ष-भर काम करती रही। बहिष्कार के काम में अपना सारा समय लगाने के लिए श्री जयरामदास ने बम्बई-कौंसिल का सदस्य-पद छोड़ दिया और अपनी समिति का केन्द्र बम्बई में बनाकर बैठ गये। मादक-द्रव्य-निषेध-समिति का काम चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के हाथ में था। उन्होंने इस कार्य को अपना खास विषय बना लिया। यह कार्य अधिकतर दक्षिण भारत और गुजरात में हुआ। सफलता भी अच्छी मिली। इस आन्दोलन की ओर विदेशों तक का ध्यान आकृष्ट हुआ। नशे के विरुद्ध सरकारी तौर पर प्रचार करने के लिए मद्रास-सरकार चार लाख रुपया खर्च करने के लिए राजी हो गई। उत्तर प्रदेश की सरकार से भी इसी प्रकार की कार्रवाई की आशा हुई। श्री राजगोपालाचार्य भारतीय-मद्यपान-निषेध-संघ के मंत्री हुए और उसके अंग्रेजी त्रैमासिक मुख-पत्र 'प्रॉहीबिशन' का सम्पादन करते रहे। अस्पृश्यता-निवारण-आंदोलन का काम श्री जमनालाल बजाज के सुपुर्द किया गया। उन्होंने भी काफी परिश्रम किया। जो लोग दीर्घकाल से दलित रखे गये थे उनकी बाधायें दूर करने के लिए सर्वत्र लोकमत जाग्रत किया गया। जहां दलित जातियों को मनाही थी, ऐसे अनेक प्रसिद्ध मन्दिरों के द्वार उनके लिए खोल दिये गये। समिति को बहुत से कुएँ और पाठशालायें भी खुलवाने में सफलता मिली। कई म्युनिसिपैलिटियों ने इस काम में सहयोग दिया। श्री जमनालाल बजाज ने मद्रास, मध्यप्रांत, राजस्थान, सिंध,

पंजाब और सीमाप्रान्त में लम्बे प्रवास किये। कांग्रेस के पुनस्संगठन के लिए जो समिति बनाई गई थी उसने साल के शुरू में ही अपनी रिपोर्ट पेश कर दी।

गांधीजी उस समय भारत का दौरा कर रहे थे और बर्मा जाते हुए कलकत्ते से गुजरे। वहां विदेशी कपड़े की होली जलाई गई। इस सम्बन्ध में मार्च १६२६ के दूसरे सप्ताह में उनपर यह अभियोग लगाया गया कि उन्होंने आज्ञा-भंग की है या आज्ञा-भंग में सहायता दी है। आज्ञा यह थी कि सार्वजनिक स्थानों पर घास-फूस आदि न जलाया जाय। गांधीजी पर मुकदमा चला और एक रुपया जुर्माना हुआ। इसके बाद उन्होंने आन्ध्रदेश की स्मरणीय यात्रा की और डेढ़ मास में खद्दर के लिए दो लाख सत्तर हजार रुपये जमा किये।

इन कार्यों के अतिरिक्त कार्य-समिति ने १० पौण्ड मासिक की रकम इसलिए मंजूर की कि बर्लिन में भारतीय छात्रों को सलाह और सहायता देने वाली एक समिति स्थापित की जाय। थोड़े समय पश्चात् यह समिति श्री० ए० सी० ए० नम्बियर की देख-रेख में कायम हुई। इससे बहुसंख्यक भारतीय छात्रों एवं यात्रियों को जो मदद मिली उससे इसकी उपयोगिता पूर्णतः सिद्ध हो गई। श्री शिवप्रसाद गुप्त ने अपनी यूरोप-यात्रा में इस समिति का निरीक्षण किया और इसके कार्य की भूरि भूरि प्रशंसा की। उनकी सिफारिश पर कार्य-समिति ने एक वाचनालय के निमित्त सहायता में दो पौण्ड मासिक की वृद्धि कर दी। यह संस्था अच्छे ढंग से चली। इसकी रिपोर्ट प्रति मास आती रही।

कलकत्ता-कांग्रेस ने महासमिति को वैदेशिक विभाग खोलने का आदेश दिया था। कार्य-समिति ने इस मामले में आवश्यक कार्रवाई करने का अधिकार प्रधान-मन्त्री को दे दिया। वह स्वयं इस विभाग की देख-भाल रखने लगे। उन्होंने अन्य देशों के व्यक्तियों और संस्थाओं से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया।

महासमिति के निर्णयानुसार समिति के कार्यालय की शाखा के रूप में ही मजदूरों-सम्बन्धी प्रश्न के लिए एक अनुसंधान-विभाग भी खोला गया। हिन्दुस्तानी सेवादल ने स्वयंसेवक तैयार करने का कार्य देश के भिन्न-भिन्न भागों में किया। अधिकतर कार्य तो कर्नाटक में ही हुआ। वहीं दल का दफ्तर और व्यायाम-मन्दिर भी था। कांग्रेस के सदस्य बनाने और विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के काम में दल ने बड़ी मदद दी। मासिक झण्डाभिवादन के कार्यक्रम का संगठन करने में हिन्दुस्तानी-सेवा-दल को आशातीत सफलता मिली। बहुत-सी म्युनिसिपैलिटियों ने भी अपनी इमारतों पर विधि-पूर्वक राष्ट्रीय झण्डे लगाये। हिन्दुस्तानी-सेवा-दल की पुनर्रचना की गई। थोड़े दिनों बाद मई १६२६ में महासमिति की बम्बई में बैठक हुई।

बम्बई में महासमिति की बैठक

बम्बई की यह बैठक महत्वपूर्ण थी। सरकार घोषणा कर चुकी थी कि असेम्बली का कार्य-काल बढ़ाया जायगा। इस बात पर भी कांग्रेस को कार्रवाई करने की जरूरत थी। इधर देश-भर में गिरफ्तारियों का तांता बंध गया था। कार्य-समिति के सदस्य श्री साम्बमूर्ति पकड़ लिये गये थे और पंजाब में घोर दमन-चक्र चल रहा था। इससे यह सन्देह होता था कि शायद और बातों के साथ-साथ इसका उद्देश्य लाहौर के कांग्रेस-अधिवेशन की तैयारियों में बाधा डालना भी हो। इन सब कारणों से प्रत्येक प्रांत में कांग्रेस की शाखाओं के लिए जोरदार कार्रवाई करना आवश्यक हो गया था। अतः बम्बई में यह तय हुआ कि प्रांतीय-कांग्रेस-कमेटियों में प्रांत की समस्त जनसंख्या के ½ फीसदी से कम चार आनेवाले सदस्य नहीं होने चाहिए और प्रांतीय-कमिटी में कम-से-कम आधे जिलों के प्रतिनिधि होने चाहिए। जिला और तहसील कमिटी में आबादी से कम-से-कम ¾ फीसदी चार आनेवाले सदस्य होने चाहिए और ग्राम-समिति में कम-से-कम एक फीसदी। कार्य-समिति को अधिकार दिया गया कि जो शाखा इन आदेशों का पालन न करे उसका सम्बन्ध-विच्छेद किया जाय। कार्य-समिति को यह भी सत्ता दी गई कि देश के हित के लिए वह जो उपाय उचित समझे उसका पालन असेम्बली और प्रांतीय-कौंसिलों के कांग्रेस-सदस्यों से भी करा ले। धारा-सभाओं में कांग्रेसी दल के बारे में कार्य-समिति ने यह प्रस्ताव किया कि बंगाल और आसाम के सिवा बड़ी अथवा अन्य प्रांतीय कौंसिलों के सारे कांग्रेसी सदस्य इन कौंसिलों की भी बैठक में अथवा उनके द्वारा अथवा सरकार द्वारा नियुक्त किसी भी समिति की किसी भी बैठक में तबतक शामिल न हों जबतक कि महासमिति अथवा कार्य-समिति दूसरा निर्णय न करे। यह भी निश्चय हुआ कि कांग्रेसी सदस्य अब से अपना सारा समय कांग्रेस के कार्यक्रम को पूरा करने में ही लगायें। मेरठ के अभियुक्तों के सहायतार्थ भी १५००) मंजूर हुए।

सभापति का चुनाव

भविष्य के गर्भ में बड़ी-बड़ी घटनायें छिपी थीं। अन्य अधिवेशनों की भांति लाहौर-कांग्रेस के लिए भी सभापति की जरूरत थी। दस प्रान्तों ने गांधीजी के लिए, पांच ने श्री वल्लभ भाई पटेल के लिए और तीन ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू के लिए राय दी। गांधीजी का चुनाव विधिपूर्वक घोषित हो गया, परन्तु उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। अतः २८ सितम्बर १९२९ को लखनऊ में महासमिति की बैठक हुई। सबकी दृष्टि गांधीजी पर लगी हुई थी। अतः उन पर फिर जोर

डाला गया। परन्तु उनकी दूरदर्शिता ने कांग्रेस की गद्दी पर ऐसे किसी युवक को ही बिठाने की सलाह दी जिस पर देश के युवक-हृदयों की श्रद्धा हो। गांधी जी ने इसके लिए युवक जवाहरलाल को सभापति बनाना उचित समझा। उपस्थित मित्रों ने बहुमत से पं० जवाहरलाल को चुन लिया।

लार्ड अर्विन की घोषणा

अक्तूबर का महीना घटनापूर्ण था। लॉर्ड अर्विन विलायत जाकर २५ अक्तूबर को लौट आये थे और उन्होंने एक घोषणा भी की थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने पहली नवम्बर को दिल्ली में कार्य-समिति की जरूरी बैठक बुलाई। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त राजधानी में अन्य दलों के नेता भी उक्त घोषणा को सुनने और उस पर सम्मिलित कार्रवाई करने के लिए मौजूद थे। जून १९२९ के अन्त में इंग्लैण्ड को रवाना होते समय लॉर्ड अर्विन ने कहा था, "विलायत पहुंचकर मैं ब्रिटिश-सरकार से इन गम्भीर मामलों पर चर्चा करने के लिए अवसर ढूंढूंगा। जैसा मैं अन्यत्र कह चुका हूँ, जो लोग भारतीय राजनैतिक लोकमत के प्रतिनिधि हैं उनकी भिन्न-भिन्न दृष्टियों को ब्रिटिश-सरकार के सम्मुख रखना मेरा कर्तव्य होगा।" इसके बाद उन्होंने अगस्त १९१७ की घोषणा और सम्राट्-द्वारा दिये गये उनके नाम के आदेश-पत्र का हवाला दिया। इस आदेश-पत्र में सम्राट् ने कहा था—"हमारी सर्वोपरि इच्छा और प्रसन्नता इसी में है कि हमारे साम्राज्य का अंगभूत रहते हुए ब्रिटिश-भारत को क्रमशः उत्तरदायी शासन-प्राप्ति के लिए पार्लमेण्ट ने जो योजना बनाई है वह इस प्रकार सफल हो कि हमारे उपनिवेशों में ब्रिटिश-भारत को भी अपने योग्य स्थान मिले।"

लॉर्ड अर्विन ने अपनी ३१ अक्तूबर की घोषणा के अन्त में कहा कि ब्रिटिश-सरकार ने मुझे यह स्पष्ट घोषित कर देने का अधिकार दिया है कि १९१७ की घोषणा में यह अभिप्राय असंदिग्ध रूप से है कि भारत को अन्त में उपनिवेश का दर्जा मिले।

घोषणा का प्रभाव

यह घोषणा हुई ३१ अक्तूबर को और २४ घण्टे के भीतर पण्डित मालवीय, सर तेजबहादुर सप्रू और डॉ० बेसेण्ट आदि बड़े बड़े लोग दिल्ली आ पहुँचे। कांग्रेस की कार्य-समिति तो वहां थी ही, गम्भीर विचार के पश्चात इस सम्मिलित सभा ने कुछ निर्णय किये। इन्हीं निर्णयों के प्रकाश में एक वक्तव्य तैयार किया गया। इस वक्तव्य में कहा गया कि "हमें आशा है, भारतीय आवश्यकताओं के अनुकूल औपनिवेशिक विधान तैयार करने के सरकार के प्रयत्न में हम सहयोग दे सकेंगे, परन्तु हमारी राय में देश की मुख्य-मुख्य राजनैतिक संस्थाओं में विश्वास उत्पन्न करने

और उनका सहयोग प्राप्त करने के हेतु कुछ कार्यों का किया जाना और कुछ का साफ होना जरूरी है।

प्रस्तावित परिषद् की सफलता के लिए हम अत्यन्त जरूरी समझते हैं कि—

(क) वातावरण को अधिक शान्त करने के लिए समझौते की नीति अख्तियार की जाय।

(ख) राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायं।

(ग) प्रगतिशील राजनैतिक संस्थाओं को काफी प्रतिनिधित्व दिया जाय और सबसे बड़ी संस्था होने के कारण कांग्रेस के प्रतिनिधि सबसे अधिक लिये जायं।

(घ) औपनिवेशिक दर्जे के सम्बन्ध में वाइसराय की घोषणा में सरकार की ओर से जो कुछ कहा गया है उसके अर्थ क्या हैं, इस विषय में लोगों ने सन्देह प्रकट किया है। हमारी सम्मति में जनता को यह अनुभव कराना आवश्यक है कि आज ही से नवीन युग आरम्भ हो गया है और नया विधान इस भावना पर केवल मुहर लगायेगा।

निस्संदेह इस नये रवैये का कारण मजदूर-सरकार का अधिक उदार दृष्टिकोण था। इस बीच में अंग्रेज मित्र तार-पर-तार भेजकर गांधीजी पर जोर डाल रहे थे कि वह भारत की सहायता करने के प्रयत्न में मजदूर-सरकार का साथ दें।

गांधीजी का उत्तर

उत्तर में गांधीजी ने कहा, "मैं तो सहयोग देने को मर रहा हूँ। इसी हेतु से पहला मौका आते ही मैंने हाथ आगे बढ़ा दिया है। परन्तु जैसे मैं कलकत्ता-कांग्रेस के प्रस्ताव के प्रत्येक शब्द पर कायम हूं, वैसे नेताओं के इस सम्मिलित वक्तव्य के प्रत्येक शब्द पर भी अटल हूं। इन दोनों में कोई विरोध नहीं है। किसी भी दस्तावेज के शब्दों में क्या धरा है, यदि व्यवहार में उसकी भावना की रक्षा हो जाय। यदि मुझे व्यवहार में सच्चा औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जाय तो उसके विधान के लिए मैं ठहरा भी रह सकता हूँ। अर्थात् आवश्यकता इस बात की है कि हृदय-परिवर्तन सच्चा हो, अंग्रेज भारतवर्ष को एक स्वतंत्र और स्वाभिमानी राष्ट्र के रूप में वस्तुतः देखें और भारत में अधिकारी मण्डल की भावना सेवापूर्ण हो जाय। इसका अर्थ है संगीनों के बजाय जनता के सद्भाव की स्थापना। क्या अंग्रेज स्त्री-पुरुष अपने जान-माल की रक्षा के लिए अपने किलों और तोप-बन्दूकों के स्थान पर प्रजा के सद्भाव पर विश्वास रखने को तैयार हैं? यदि उनकी यह तैयारी अभी नहीं है, तो मुझे कोई औपनिवेशिक स्वराज्य संतुष्ट नहीं कर सकता। औपनिवेशिक स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यदि मैं चाहूँ तो आज ही ब्रिटिश-सम्बन्ध विच्छेद कर सकूं। ब्रिटेन और भारत के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्णय करने में जबरदस्ती-जैसी कोई बात नहीं चल सकती।"

सर्वदल सम्मेलन

१६ नवम्बर को प्रयाग में सर्वदल-सम्मेलन का अधिवेशन फिर बुलाया गया और साथ ही कार्य-समिति की बैठक हुई। ऐक्य-भाव बनाए रखने के सब प्रयत्न किए गये। कार्य-समिति ने अपना कोई निश्चित निर्णय दिया भी नहीं था कि पंडित जवाहरलाल और सुभाष बाबू ने समिति की सदस्यता को पहले ही छोड़ दिया। पंडित मोतीलाल नेहरू अपने नौजवान साथियों से भी बढ़कर थे। उन्हें कामन-सभा की छल-कपट-पूर्ण कार्रवाई और कैप्टिन बेन के दुमुंहेपन पर बड़ा क्रोध आ रहा था। उन्हें ऐसा लगा कि ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल जो चित्र खींच रहा था वह ऐसा था कि भारतवासियों को उसमें स्वराज्य दीखे और वियालतवालों को ब्रिटिश-राज्य।

नेताओं से भेंट

इधर 'पायोनियर' के भूतपूर्व सम्पादक विलसन साहब समाचार पत्रों में चिट्ठी-पर-चिट्ठियां छपवा रहे थे और लॉर्ड अर्विन पर जोर डाल रहे थे कि लाहौर कांग्रेस से पहले सरकार की ओर से कोई ऐसी बात होनी चाहिये जिससे भारत के राजनैतिक नेताओं को खाली हाथ लाहौर न पहुंचना पड़े। लॉर्ड अर्विन, डॉ० सप्रू के मार्फत, १५ तारीख को मिलने का निमन्त्रण पण्डित मोतीलाल नेहरू को भेज चुके थे। परन्तु १५ ता० तक पण्डितजी लखनऊ में अपने वकालत के काम से मुक्त न हो सके। विलसन साहब ने अखबारों में लिखा कि वाइसराय गांधीजी, पंडित मोतीलालजी और मालवीयजी से शीघ्र ही मुलाकात करनेवाले हैं। इधर वाइसराय साहब १५ ता० को दक्षिण-भारत के लिए रवाना हो रहे थे, इसलिए उन्होंने डॉ० सप्रू को लिखा कि अगर पहले हैदराबाद (दक्षिण) में न मिल सका तो २३ दिसम्बर को दिल्ली में गांधीजी और नेहरूजी से मुलाकात होगी। लॉर्ड अर्विन समय पर, अर्थात् २३ दिसम्बर को, दिल्ली लौट आये। उसी दिन नई दिल्ली से १ मील दूर पुराने किले के स्थान पर उनकी गाड़ी के नीचे बम फटा। लार्ड अर्विन तो बाल-बाल बच गये, परन्तु उनकी खाने की गाड़ी को नुकसान पहुंचा और उनका एक नौकर घायल हुआ। उसी दिन गांधीजी और मोतीलाल जी कांग्रेस की ओर से वाइसराय से नये भवन में मिले। दूसरे विचार वालों की बात कहनेवालों में श्री जिन्ना, सप्रू और विट्ठलभाई पटेल थे। लार्ड अर्विन ने हंसते-हंसते बात-चीत की। उनके दिल पर प्रातःकालीन दुर्घटना का कोई असर न था। पौन घण्टे तक तो बम की घटना और उसके परिणामों पर ही चर्चा होती रही। फिर लॉर्ड अर्विन ने प्रस्तुत विषय को हाथ में लिया। उन्हें राजनैतिक कैदियों से अच्छी शुरुआत करनी थी, परन्तु गांधीजी तो वाइसराय से औप-

निवेशिक स्वराज्य के मामले पर निपट लेना चाहते थे। वह यह आश्वासन चाहते थे कि गोलमेज-परिषद् की कार्रवाई पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य को आधार मानकर होगी। वाइसराय साहब ने उत्तर दिया, "सरकार ने अपने विचार अपने वक्तव्य में स्पष्ट कर दिये हैं। इससे आगे मैं कोई वचन नहीं दे सकता। मेरी ऐसी स्थिति नहीं है कि औपनिवेशिक स्वराज्य देने का वादा करके गोलमेज परिषद् में आप लोगों को बुला सकूं।"

लाहौर-कांग्रेस : १९२९

उत्तर-भारत के निर्दय हेमन्त में लाहौर का कांग्रेस अधिवेशन अन्तिम था। तम्बुओं में रहना प्रतिनिधियों के लिए बड़ा कष्टप्रद सिद्ध हुआ। परन्तु भीतर भावना और जोश की गर्मी भी कम न थी। सरकार से समझौता न होने पर रोष था और युद्ध के बाजे सुन-सुनकर लोगों की बाहें फड़क रही थीं। पंडित जवाहरलाल नेहरू जितने कम उम्र के थे उतने ही बड़े राजनीतिज्ञ और लोकप्रिय नेता थे। उनका अभिभाषण क्या था, मानो उन्होंने अपने हृदय को उंडेलकर देशवासियों के सामने रख दिया था। उसमें भारत के अपमान पर क्रोध भरा था। उसमें उन्होंने भारत को स्वतन्त्र करने की अपनी योजना, अपने स्पष्ट साम्यवादी आदर्शों और सफल होने के अपने दृढ़ निश्चय को व्यक्त किया था।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने अभिभाषण में बताया कि वाइसराय की घोषणा दीखने में समझौते का प्रस्ताव है। वाइसराय का इरादा नेक और उनकी भाषा मेल-मिलाप की भाषा है। परन्तु हमारे सामने जो कठोर वस्तुस्थिति है उसमें इन मीठी-मीठी बातों से कोई अंतर नहीं पड़ता। हम अपनी ओर से कोई घोर राष्ट्रीय संग्राम आरम्भ करने की जल्दी नहीं कर रहे हैं। समझौते का द्वार अभी खुला है। परन्तु कैप्टिन वेजवुड बेन का व्यावहारिक औपनिवेशिक स्वराज्य हमारे लिए जाल-मात्र है। हम तो कलकत्ते के प्रस्ताव पर कायम हैं। हमारे सामने एक ही ध्येय है और वह है पूर्ण स्वाधीनता का। इसके पश्चात् उन्होंने अल्पसंख्यक जातियों, देशी राज्यों और किसानों तथा मजदूरों के तीन बड़े प्रश्नों को लिया। फिर उन्होंने अहिंसा के प्रश्न का विवेचन किया और कहा कि—हिंसा के परिणाम बहुधा विपरीत और भ्रष्ट करनेवाले होते हैं। खासकर हमारे देश में तो इससे सत्यानाश हो सकता है। मैं समझता हूं, हममें से अधिक लोग नैतिक दृष्टि से नहीं, प्रत्युत व्यावहारिक दृष्टि से विचार करते हैं। यदि हमने हिंसा के मार्ग का परित्याग किया है तो इसलिए किया है कि हमें इससे कोई सार निकलता नहीं दिखाई देता। स्वतंत्रता के किसी भी आंदोलन में जनता का शामिल होना जरूरी है और जनता के आंदोलन तो शांत ही हो सकते हैं। हां, संगठित विद्रोह की बात अलग है। अंत में उन्होंने कहा कि यह कोई नहीं कह सकता कि

सफलता कब और कितनी मिलेगी। सफलता हमारे काबू की चीज नहीं है, परन्तु विजय का सेहरा प्रायः उन्हीं के सिर बँधता है जो साहस करके कार्य-क्षेत्र में बढ़ते हैं। जो सदा परिणाम से भयभीत रहते हैं, ऐसे कायरों के भाग में सफलता क्वचित् ही होती है। इन विचारों से भारत के नेता गांधीजी और राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू दोनों सहमत थे। इस कारण लाहौर-कांग्रेस का कार्य-संचालन करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। श्री यतीन्द्रदास और श्री फुङ्गो विजय के महान् आत्मोत्सर्ग की प्रशंसा की गई और पंडित गोकर्णनाथ मिश्र, प्रोफेसर पराञ्जपे, श्री भक्तवत्सल नायडू आदि के देहावसान पर शोक प्रदर्शित करने के बाद बम-दुर्घटना पर एक प्रस्ताव पास हुआ।

इस कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव पूर्ण-स्वाधीनता के सम्बन्ध में था, जो इस प्रकार है :—

"औपनिवेशिक स्वराज्य के सम्बन्ध में ३१ अक्तूबर को वाइसराय ने जो घोषणा की थी और जिसपर कांग्रेस एवं अन्य दलों के नेताओं ने सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित किया था उस सम्बन्ध में की गई कार्य-समिति की कार्रवाई का यह कांग्रेस समर्थन करती है और स्वराज्य के राष्ट्रीय आंदोलन को निपटाने के लिए वाइसराय की कोशिशों की कद्र करती है, किन्तु उसके बाद जो घटनायें हुई हैं और वाइसराय के साथ महात्मा गांधी, पंडित मोतीलाल नेहरू और दूसरे नेताओं की मुलाकात का जो नतीजा निकला है उसपर विचार करने पर कांग्रेस की यह राय है कि सम्प्रति प्रस्तावित गोलमेज परिषद् में कांग्रेस के शामिल होने से कोई लाभ नहीं। इसलिए गत वर्ष कलकत्ते के अधिवेशन में किये हुए अपने निश्चय के अनुसार यह कांग्रेस घोषणा करती है कि कांग्रेस-विधान की पहली कलम में 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता होगा। कांग्रेस यह भी घोषणा करती है कि नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट में वर्णित सारी योजना को समाप्त समझा जाय। कांग्रेस आशा करती है कि अब समस्त कांग्रेसवादी अपना सारा ध्यान भारतवर्ष की पूर्ण स्वाधीनता को प्राप्त करने में ही लगायेंगे। चूंकि स्वाधीनता का आन्दोलन संगठित करना और कांग्रेस की नीति को उसके नये ध्येय के अधिक-से-अधिक अनुकूल बनाना आवश्यक है, इसलिए यह कांग्रेस निश्चय करती है कि कांग्रेसवादी और राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेनेवाले दूसरे लोग भावी निर्वाचनों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई भाग न लें और कौंसिलों और कमिटियों के वर्तमान कांग्रेसी सदस्यों को त्याग-पत्र देने की आज्ञा देती है। यह कांग्रेस अपने रचनात्मक कार्यक्रम को उत्साह-पूर्वक पूरा करने के लिए राष्ट्र से अनुरोध करती है और महासमिति को अधिकार देती है कि वह जब और जहां चाहे, आवश्यक प्रतिबन्धों के साथ सविनय अवज्ञा और करबन्दी तक का कार्य-क्रम आरम्भ कर दे।"

दूसरी बात इस कांग्रेस ने यह की कि वार्षिक अधिवेशन का समय दिसम्बर से बदलकर फरवरी अथवा मार्च कर दिया।

कांग्रेस ने इन प्रस्तावों के परिणाम-स्वरूप विधान में आवश्यक परिवर्तन करने का अधिकार कार्य-समिति को दे दिया। सदा की भांति पूर्व-अफ्रीका पर भी प्रस्ताव हुआ। देशी-राज्यों का विषय महत्वपूर्ण था ही। कांग्रेस ने सोचा, अब समय आ गया है कि भारतीय नरेश अपनी प्रजा को दायित्वपूर्ण शासन प्रदान करें और उनके आवागमन, भाषण, सम्मेलन आदि अधिकारों और व्यक्ति एवं सम्पत्ति की रक्षा के नागरिक हकों के बारे में घोषणायें करें और कानून बनाएँ।

नेहरू-रिपोर्ट के रद हो जाने से साम्प्रदायिक समस्या पर फिर से विचार करना पड़ा। इस सम्बन्ध में अपनी नीति घोषित करना आवश्यक समझा गया। कांग्रेस ने अपना यह विश्वास व्यक्त किया कि स्वाधीन-भारत में तो साम्प्रदायिक प्रश्नों का निपटारा सर्वथा राष्ट्रीय ढंग से ही होगा। परन्तु चूंकि सिक्खों ने विशेषत: और मुसलमानों और दूसरी अल्प-संख्यक जातियों ने साधारणत: नेहरू-रिपोर्ट के प्रस्तावों पर असन्तोष प्रकट किया है, इसलिए कांग्रेस इन जातियों को विश्वास दिलाती है कि किसी भी भावी-विधान में कांग्रेस ऐसा कोई साम्प्रदायिक निर्णय स्वीकार नहीं करेगी जिससे सब पक्षों को पूर्ण सन्तोष न हो। कलकत्ता-कांग्रेस के बाद जो भिन्न-भिन्न समितियां फरवरी १९२९ में बनी थीं उनका काम विशेषज्ञों को सौंपा गया। स्वंयसेवकों का संगठन जवाहरलालजी और सुभाष बाबू के हवाले किया गया। कांग्रेस का कार्य पहली ही बार विभागों में बांटा और कार्य-समिति के अलग-अलग सदस्यों के सुपुर्द किया गया। कलकत्ते में राष्ट्रीय मांग को स्वीकार करने के लिये सरकार को बारह मास का समय दिया गया था। तद-नुसार ३१ दिसम्बर को ठीक आधी रात के समय पूर्ण स्वतंत्रता के प्रस्ताव के रायों की गिनती खतम हुई। उस समय सारी कांग्रेस ने मिलकर पूर्ण स्वाधीनता का झंडा फहराया।

कार्य-समिति की बैठक

प्रतीक्षा का वर्ष समाप्त होकर कार्य का वर्ष आरम्भ हुआ। नई कार्य-समिति की बैठक २ जनवरी १९३० को हुई। पहला काम उसने कौंसिल-बहिष्कार के निश्चय पर अमल करवाने का किया। इसके लिए उसने मत-दाताओं से अनुरोध किया कि जो सदस्य कांग्रेस की अपील पर ध्यान न दें उन्हें मत-दाता मजबूर करें कि वे इस्तीफा दें और नये चुनाव में शामिल न हों। इसके परिणाम-स्वरूप असेम्बली के २७ सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया। दूसरा निश्चय कार्य-समिति ने देश-भर में पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाने का किया और इसके लिए २६ जनवरी १९३० का दिन नियत हुआ। देश-भर के नगर-नगर और गांव-गांव में एक घोषणा-पत्र तैयार करके जनता के

सम्मुख पढ़कर सुनाना और उस पर हाथ उठवाकर श्रोताओं की सम्मति लेना तय हुआ। उस दिन सुनाया जानेवाला घोषणा-पत्र संक्षेप में यह था:—

स्वाधीनता का घोषणा-पत्र

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भांति अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतंत्र होकर रहें, अपने परिश्रम का फल हम स्वयं भोगें और हमें जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधायें प्राप्त हों जिससे हमें भी विकास का पूरा मौका मिले। अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की स्वतंत्रता का ही अपहरण नहीं किया है बल्कि उसका आधार भी गरीबों के रक्तशोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारतवर्ष का नाश कर दिया है। अतः हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अंग्रेजों से सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

"भारत की आर्थिक बरबादी हो चुकी है। हाथ-कताई आदि ग्राम-उद्योग नष्ट कर दिये गये हैं। इससे साल में कम-से-कम चार महीने किसान बेकार रहते हैं। विनिमय की दर भी ऐसे स्वेच्छाचारी ढंग से निश्चित की गई है जिससे देश का करोड़ों रुपया बाहर चला जाता है। राजनैतिक दृष्टि से भारत का दर्जा जितना अंग्रेजों के जमाने में घटा है उतना पहले कभी नहीं घटा था। किसी भी सुधार-योजना से जनता के हाथ में वास्तविक राजनैतिक सत्ता नहीं आई है। संस्कृति के लिहाज से, शिक्षा-प्रणाली ने हमारी जड़ ही काट दी है और हमें जो तालीम दी जाती है उससे हम अपनी गुलामी की जंजीरों को ही प्यार करने लगे हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से, हमारे हथियार जबरदस्ती छीनकर हमें नामर्द बना दिया गया है। विदेशी सेना हमारी छाती पर सदा मौजूद रहती है। उसने हमारी मुकाबले की भावना को बड़ी बुरी तरह कुचल दिया है। उसने हमारे दिल में यह बात बिठा दी है कि हम न अपना घर सम्हाल सकते हैं और न विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा कर सकते हैं। इसलिए हम ब्रिटिश-सरकार से यथा सम्भव स्वेच्छा-पूर्वक किसी भी प्रकार का सहयोग न करने की तयारी करेंगे और सविनय-अवज्ञा एवं करबन्दी तक के साज सजायेंगे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम राजी-राजी सहायता देना और उत्तेजना मिलने पर भी हिंसा किये बगैर कर देना बन्द कर सकें तो इस अमानुषी-राज्य का नाश निश्चित है। अतः हम शपथ-पूर्वक संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के हेतु कांग्रेस समय-समय पर जो आज्ञायें देगी उनका हम पालन करते रहेंगे।"

गांधीजी की ग्यारह शर्तें

स्वाधीनता-दिवस जिस ढंग से मनाया गया उससे प्रकट हुआ कि स्वदेश-भक्ति और आत्म-बलिदान के अंगारे राज-भक्ति या कानून और व्यवस्था की

गुलामी की राख से केवल ढके हुए थे। जरूरत इतनी ही थी कि भावना एवं उत्साह के लाल अंगारों पर जमी हुई राख को फूंक मार कर हटा दिया जाय। स्वाधीनता-दिवस का समारोह खत्म ही हुआ था कि २५ जनवरी को असेम्बली में दिया गया वाइसराय का भाषण भी प्रकाशित हो गया। इसने भारत के आशावादी और विश्वासशील राजनीतिज्ञों की रही-सही आशाओं पर पानी फेर दिया। आगे चलकर गांधीजी ने 'यंग इंडिया' में लॉर्ड अर्विन के सामने नीचे लिखी शर्तें रक्खीं—

(१) सम्पूर्ण मदिरा-निषेध।

(२) विनिमय की दर घटा कर एक शिलिंग चार पेंस रख दी जाय।

(३) जमीन का लगान आधा कर दिया जाय और उस पर कौंसिलों का नियन्त्रण रहे।

(४) नमक-कर उठा दिया जाय।

(५) सैनिक-व्यय में आरम्भ में ही कम-से-कम ५० फीसदी कमी कर दी जाय।

(६) लगान की कमी को देखते हुए बड़ी-बड़ी नौकरियों के वेतन कम-से-कम आधे कर दिये जायं।

(७) विदेशी कपड़े के आयात पर निषेध-कर लगा दिया जाय।

(८) भारतीय समुद-तट केवल भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित रखने का प्रस्तावित कानून पास कर दिया जाय।

(९) हत्या या हत्या के प्रयत्नों में साधारण ट्रिब्यूनलों-द्वारा सजा पाये हुओं के सिवा, समस्त राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायं, सारे राजनैतिक मुकदमे वापस ले लिये जायं, १२४ अ धारा और १८१८ का तीसरा रेग्यूलेशन उठा दिया जाय और सारे निर्वासित भारतीयों को देश में वापस आ जाने दिया जाय।

(१०) खुफिया पुलिस उठा दी जाय, अथवा उस पर जनता का नियंत्रण कर दिया जाय।

(११) आत्म-रक्षार्थ हथियार रखने के परवाने दिये जायं और उन पर जनता का नियन्त्रण रहे।

गांधीजी ने यह भी कहा—"अन्य देशों के लिए स्वतंत्रता-प्राप्ति के दूसरे उपाय भले ही हों, परन्तु भारतवर्ष के लिए अहिंसात्मक असहयोग के सिवा दूसरा मार्ग नहीं है। परमात्मा करे, आप लोग स्वराज्य के इस मंत्र को सिद्ध और प्रकट करें और स्वाधीनता की जो लड़ाई निकट आ रही है उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने का वह आपको बल और साहस प्रदान करे।"

असेम्बली तथा कौंसिलों से त्याग-पत्र

जब असेम्बली में वाइसराय साहब ने अपना भाषण दिया, तब वसन्त ऋतु थी। उस समय वातावरण सरकार के अनुकूल नहीं था, क्योंकि वस्त्र-उद्योग-रक्षण कानून उसी समय बना था। इसके बहुत-से विरोधी समझते थे कि इसके द्वारा सरकार ने आर्थिक-परिषद् की भावना के विपरीत हिन्दुस्तान के माथे पर साम्राज्य के साथ रिआयत करने की नीति लाद दी है। इस कारण पण्डित मदन-मोहन मालवीय और उनके राष्ट्रीय दल के कुछ सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया। कांग्रेस के आदेश पर कौंसिलों के १७२ सदस्यों ने फरवरी १९३० तक इस्तीफे दे दिये। इनमें से २१ असेम्बली के और ९ राज्य-परिषद् के सदस्य थे। प्रान्तीय कौंसिलों में बंगाल से ३४, बिहार-उड़ीसा से ३१, मध्यप्रान्त से २०, मद्रास से २०, उत्तर-प्रदेश से १६, आसाम से १२, बम्बई से ६, पंजाब से २ और बर्मा से १ ने इस्तीफा दिया।

सविनय अवज्ञा का श्रीगणेश

१४,१५ और १६ फरवरी को कार्य-समिति की साबरमती में बैठक हुई। कौंसिलों के जिन मेम्बरों ने इस्तीफा नहीं दिया था या देकर चुनाव में फिर खड़े हो गए थे उनसे कहा गया कि या तो वे कांग्रेस की निर्वाचित समितियों की सदस्यता छोड़ दें, अन्यथा उनपर जाब्ते की कार्रवाई की जायगी। सरकार ने राजनैतिक कैदियों के साथ सद्व्यवहार करने का आश्वासन दिया था, परन्तु सरकार ने इस वचन का पालन नहीं किया। इस पर साबरमती में कार्य-समिति ने खेद प्रकट किया, किन्तु इस बैठक़ का मुख्य प्रस्ताव तो सविनय-अवज्ञा के सम्बन्ध में था। इस प्रस्ताव ने गांधीजी और उनके विश्वस्त साथियों को सविनय-अवज्ञा करने का अधिकार दिया। कुछ समय बाद अहमदाबाद में महा-समिति की बैठक हुई, उसने इस अधिकार का और भी विस्तार करके सविनय-अवज्ञा आंदोलन चलाने की सत्ता भी उन्हें दे दी।

नमक-कानून का विरोध

परन्तु सविनय-अवज्ञा शुरू करें तो कैसे? गांधीजी के इरादे पहले ही जाहिर हो गए थे। बम्बई में ये समाचार पहुंच चुके थे और कार्य-समिति की साबरमती की बैठक से पहले ही पहुंच चुके थे कि नमक के ढेरों पर धावा बोला जायगा। १४ फरवरी से पहले ही बम्बई में प्रचार-कार्य भी शुरू हो गया था। नमक-कर का इतिहास खोज निकाला गया। मालूम हुआ कि १८३६ में एक नमक-कमीशन बैठा था और उसने भारत में अंग्रेजी नमक की बिक्री के खातिर भारतीय नमक

पर कर लगाने की सिफारिश की थी। लिवरपूल बन्दर में माल के बिना जहाज खाली पड़े थे और अशांत समुद्र पर वे तबतक चल नहीं सकते थे जबतक कि आवश्यक भार को पूरा करने के लिए भी कोई माल उनपर लदा न हो। इसलिए कुछ माल, कुछ भार, कुछ वजन तो उन्हें लाना ही पड़ता था। इसके लिए चेशायर के नमक से अच्छी चोज और क्या हो सकती थी। ऐसी नीति का विरोध आवश्यक था। साबरमती की बैठक के बाद थोड़े दिनों में वातावरण नमक-ही-नमक से व्याप्त हो गया। लोग पूछने लगे, क्या बनाया हुआ नमक पड़ता खायगा? सरकारी कर्मचारी और भी आगे बढ़े। उन्होंने समुद्र के पानी से नमक बनाने में ईंधन और मजदूरी का हिसाब लगाकर बताया कि नमक-कर से तिगुना खर्च नमक बनाने में लगता है। ये बेचारे यह न समझ सके कि यह संग्राम भौतिक नहीं, नैतिक था।

गांधीजी नमक-सत्याग्रह का आरंभ करने वाले थे। उनकी योजना थी कि वह किसी नमक के क्षेत्र में जाकर नमक उठाएँगे, दूसरे नहीं उठाएँगे। उस समय अगर कोई उनसे पूछता था 'क्या हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहें?' तो यही उत्तर मिलता था—'अवश्य। परन्तु मैदान में उतरने के लिए तैयार रहो।' उन्हें तो आशा थी कि परिणाम तत्काल होगा। वह वल्लभभाई तक को कूच में साथ न ले गये। केवल साबरमती-आश्रम के निवासियों को ही उन्होंने अपने साथ लिया। वर्धा-आश्रमवालों को भी तैयारी करने और गांधीजी की गिरफ्तारी तक ठहरे रहने का आदेश मिला। फिर तो एक साथ भारत-भर में लड़ाई शुरू होनेवाली ही थी। गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद लोग जो चाहते वह करने को स्वतंत्र थे। उन्हें दीख गया था कि उनके बाद भारत में सर्वत्र यह आन्दोलन फैल जायगा और खूब जोर पकड़ लेगा। या तो जीत ही होगी या मर मिटेंगे।

सरकार को अंतिम चेतावनी

गांधीजी की योजना सदा उनकी अन्तःप्रेरणा से बनी है। मस्तिष्क के भावना हीन, हानि लाभ-दर्शक तर्क से नहीं बनी है। उनका गुरु और मित्र उनका अन्तः-करण ही रहा है। इसीको लायड जार्ज साहब ने 'सदियों की प्रगति का निचोड़ एक युग में निकालना' बताया है। इसी को भारतीय शब्दों में कहा जाय तो, उन्होंने हजारों वर्ष का काम बारह महीने में कर दिखाया। गांधीजी की दिव्य-दृष्टि और शुद्ध विचार का लोहा सभी ने माना। नरम-दलवालों तक ने नमक-सत्याग्रह को भले ही बेहूदा और खतरनाक बताया हो, गांधीजी के हेतु की पवित्रता से वे भी इन्कार नहीं कर सके। गांधीजी ने वाइसराय को बहुत देर तक अंधेरे में नहीं रक्खा। सदा की भांति इस बार भी (२ मार्च १९३० को) उन्होंने लार्ड

अर्विन को चिट्ठी भेजी जिसमें उन्होंने 'सविनय अवज्ञा' का उद्देश्य स्पष्ट किया। उन्होंने लिखा :—

"सविनय-अवज्ञा शुरू करने से और जिस जोखिम को उठाने के लिए मैं इतने सालों से सदा हिचकिचाता रहा हूँ उसे उठाने से पहले, मुझे आप तक पहुँचकर कोई मार्ग निकालने का प्रयत्न करने में प्रसन्नता है। अनेक देश-बन्धुओं की भांति मुझे भी यह सुख-स्वप्न दीखने लगा था कि प्रस्तावित गोलमेज-परिषद् शायद समस्या हल कर सके। परन्तु जब आपने स्पष्ट कह दिया कि आप या ब्रिटिश मंत्रि-मंडल पूर्ण-औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना का समर्थन करने का आश्वासन नहीं दे सकते, तब गोलमेज-परिषद् वह चीज नहीं दे सकती जिसके लिए शिक्षित भारत ज्ञानपूर्वक और अशिक्षित जनता दिल-ही-दिल में छटपटा रही है। राष्ट्र के नाम पर काम करनेवालों को खुद भी समझ लेना चाहिए और दूसरों को समझाते रहना चाहिए कि स्वाधीनता की इस तड़प के पीछे हेतु क्या है। इस हेतु को न समझने से स्वाधीनता इतने विकृत रूप में आ सकती है कि जिन करोड़ों मूक किसानों और मजदूरों के लिए स्वाधीनता की प्राप्ति का प्रयत्न किया जा रहा है और किया जाना चाहिए उनके लिए यह स्वाधीनता कदाचित् निकम्मी सिद्ध हो। इसी कारण मैं कुछ अरसे से जनता को वांछित स्वाधीनता का सच्चा अर्थ समझा रहा हूँ।

"सरकारी आय का मुख्य भाग जमीन का लगान है। इसका बोझ इतना भारी है कि स्वाधीन भारत को इसमें काफी कमी करनी पड़ेगी। स्थायी बन्दोबस्त अच्छी चीज है, परन्तु इसमें भी मुट्ठी-भर अमीर जमीदारों को लाभ है, गरीब किसानों को कोई लाभ नहीं। वे तो सदा से बेबसी में रहे हैं। उन्हें जब चाहे बेदखल किया जा सकता है। भूमि-कर को घटा देने से काम नहीं चलेगा, सारी कर-व्यवस्था ही फिर से इस प्रकार बदलनी पड़ेगी कि रैयत की भलाई ही उसका मुख्य हेतु रहे। परन्तु मालूम होता है कि सरकार ने जो तरीका जारी किया है वह रैयत की जान निकाल लेने के लिए ही किया है। नमक तो उसके जीवन के लिए भी आवश्यक है। परन्तु उस पर भी कर इस तरह लगाया गया है कि यों दीखने में तो वह सब पर बराबर पड़ता है, परन्तु इस हृदय-हीन निष्पक्षता का भार सबसे अधिक गरीबों पर ही पड़ता है। याद रहे कि नमक ही ऐसा पदार्थ है जो अलग-अलग भी और मिलकर भी अमीरों की अपेक्षा गरीब लोग अधिक मात्रा में खाते हैं। इस कारण नमक-कर का बोझ गरीबों पर और भी ज्यादा पड़ता है। अतः कर का भार बहुत अधिक उसी हालत में कम किया जा सकता है जब शासन-व्यय भी उतना ही घटा दिया जाय। इसका अर्थ है शासन-योजना की काया-पलट कर देना। मेरी राय में २६ जनवरी के स्वाभाविक प्रदर्शन में लाखों ग्रामीणों ने स्वेच्छा से जो भाग लिया उसका भी यही

अर्थ है। उन्हें लगता है कि इस नाशकारी भार से स्वाधीनता ही छुटकारा दिलायेगी ।

"यह सभी को मालूम है कि भले ही हिंसक-दल कितना ही असंगठित या सम्प्रति महत्वहीन हो, फिर भी उसका जोर बढ़ता जा रहा है। उसका और मेरा ध्येय एक ही है। परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह मूक-जनता का कष्ट-निवारण नहीं कर सकता। मेरा यह विश्वास भी दिन-दिन दृढ़तर होता जा रहा है कि ब्रिटिश-सरकार की संगठित हिंसा को शुद्ध अहिंसा ही रोक सकती है। यह अहिंसा सविनय-अवज्ञा के रूप में प्रकट होगी। आरम्भ में आश्रम-निवासी ही इसमें भाग लेंगे, परन्तु बाद में इसकी मर्यादाओं को समझकर जो चाहेंगे वे सभी इसमें शामिल हो जायँगे। मैं जानता हूँ कि अहिंसात्मक संग्राम का प्रारम्भ करने में जोखिम है। लोग इस तरह से ठीक ही कहेंगे कि यह पागलपन है। परन्तु सत्य की विजय बहुधा बड़ी-से-बड़ी जोखिमों के उठाये बिना नहीं हुई है। जिस राष्ट्र ने जान या अनजान में अपने से अधिक जन-संख्यावाले, अधिक प्राचीन और अपने समान सभ्य दूसरे राष्ट्र को शिकार बनाया उसको ठीक रास्ते पर लाने के लिए कोई भी जोखिम बड़ी नहीं है। मैंने 'ठीक रास्ते पर लाने' के शब्द जान-बूझकर प्रयोग किये हैं। कारण, मेरी यह महत्वाकांक्षा है कि मैं अहिंसा द्वारा ब्रिटिश जाति का हृदय पलट दूं और उसे भारत के प्रति किये गये अपने अन्याय का अनुभव करा दूं। मैं आपकी जाति को हानि पहुंचाना नहीं चाहता। मैं उसकी भी वैसी ही सेवा करना चाहता हूं, जैसी अपनी जाति की। अगर यह बात सच है तो यह ज्यादा देर तक छिपी न रहेगी। बरसों तक मेरे प्रेम की परीक्षा लेने के बाद मेरे कुनबे वालों ने मेरे प्रेम के दावे को कबूल किया है; वैसे ही अंग्रेज भी किसी दिन करेंगे। यदि मेरी आशाओं के अनुकूल जनता ने मेरा साथ दिया तो या तो पहले ही ब्रिटिश-जाति अपना कदम पीछे हटा लेगी, अन्यथा जनता ऐसे-ऐसे कष्ट-सहन करेगी जिन्हें देखकर पत्थर का दिल भी पिघले बिना नहीं रह सकता।

"इस पत्र का हेतु धमकी देना नहीं है। यह तो सत्याग्रही का साधारण और पवित्र कर्तव्य-मात्र है। इसलिए मैं इसे भेज भी खास तौर पर एक ऐसे युवक अंग्रेज मित्र के हाथ रहा हूं जो भारतीय पक्ष का हिमायती है, जिसका अहिंसा पर पूर्ण विश्वास है और जिसे शायद विधाता ने इसी काम के लिए मेरे पास भेजा है।"

इस चिट्ठी को रेजिनाल्ड रेनाल्ड नामक अंग्रेज युवक दिल्ली ले गये। रेजिनाल्ड रेनाल्ड कुछ समय तक आश्रम में रह चुके थे। गांधीजी के इस पत्र को जनता और अखबारों ने अन्तिम चेतावनी का नाम दिया। लॉर्ड अर्विन का उत्तर भी तुरन्त और साफ-साफ मिला। वाइसराय ने खेद प्रकट किया कि गांधीजी ऐसा काम करने

वाले हैं जिससे निश्चित रूप से कानून और सार्वजनिक शान्ति-भंग होगी। गांधीजी का प्रत्युत्तर भी उनके योग्य ही था। वह सच्चे सत्याग्रही के एकमात्र कवच, विनय और साहस की भावना से कूट-कूट कर भरा था। उन्होंने लिखा--"मैंने दस्तबस्ता रोटी का सवाल किया था और मिला पत्थर। अंग्रेज जाति सिर्फ शक्ति का ही लोहा मानती है। इसलिए मुझे वाइसराय के उत्तर पर कोई आश्चर्य नहीं है। हमारे राष्ट्र के भाग्य में तो जेलखाने की शान्ति ही एकमात्र शान्ति है।"

दण्डी-यात्रा की तैयारी

इस प्रकार गांधीजी का कूच अनिवार्य हो गया था। सब तैयारी पहले से ही हो चुकी थी। लम्बी-चौड़ी तैयारी की तो जरूरत भी न थी। दण्डी समुद्र-तट पर एक गांव है। गांधीजी को वहीं पहुँचना था। उन्होंने मार्ग के ग्रामवासियों को मना कर दिया था कि यात्रियों को बढ़िया भोजन न दें। इधर गांधीजी शुद्ध नैतिक ढंग की ये तैयारियां कर रहे थे, उधर वल्लभभाई अपने 'गुरु' के पहले ही आनेवाली तपस्या और संकटों के लिए तैयार होने की प्रेरणा करने के लिए गांवों में पहुँच चुके थे। सरकार ने प्रथम प्रहार करने में विलम्ब नहीं किया। जब वल्लभ-भाई इस प्रकार गांधीजी के आगे-आगे चल रहे थे, सरकार ने समझा, "यह तो १९०० वर्ष पहले ईसामसीह का दूत जॉन बैपटिस्ट है।" उसने तुरत मार्च के प्रथम सप्ताह में वल्लभभाई को रास गांव में गिरफ्तार कर लिया और उन्हें चार मास की सादी सजा दे दी। इस घटना के साथ-साथ गुजरात का बच्चा-बच्चा सरकार के खिलाफ खड़ा हो गया। इस समाचार से प्रभावित होकर साबरमती के रेतीले तट पर ७५ हजार स्त्री-पुरुषों ने एकत्र होकर यह निश्चय किया--

"हम अहमदाबाद के नागरिक संकल्प करते हैं कि जिस रास्ते वल्लभभाई गये हैं उसी रास्ते हम जायंगे और ऐसा करते हुए स्वाधीनता को प्राप्त करके छोड़ेंगे। देश को आजाद किये बिना न हम चैन लेंगे, न सरकार को लेने देंगे। हम शपथपूर्वक घोषणा करते हैं कि भारतवर्ष का उद्धार सत्य और अहिंसा से ही होगा।"

गांधीजी ने कहा, 'जो यह प्रतिज्ञा लेना चाहे, अपने हाथ ऊंचे कर दे।' सारे जन-समूह ने हाथ उठा दिये। उधर वल्लभभाई ने गुजरात में अपने भाषणों से जीवन फूंक दिया था। इस प्रकार यात्रा की पूरी तैयारी हो चुकी थी।

दण्डी-यात्रा का आरंभ

गांधीजी अपने ७९ साथियों को लेकर १२ मार्च १९३० को दण्डी-यात्रा पर निकल पड़े। यह एक ऐतिहासिक भव्य-दृश्य था और प्राचीनकाल की राम एवं पाण्डवों के वन-गमन की घटनाओं की स्मृति ताजा करता था। यह विद्रो-

हियों की यात्रा थी। इधर कूच जारी थी, उधर ग्राम-कर्मचारियों के धड़ाधड़ त्याग-पत्र आ रहे थे। ३०० ने नौकरी छोड़ दी। अहमदाबाद की खानगी बात-चीत मे गांधीजी ने कहा था, "मैं आरंभ करूं तबतक ठहरना। जब मैं कूच पर निकलूंगा तब विचार अपने-आप फैल जायंगे। फिर आप लोगों को भी मालूम हो जायगा कि क्या करना चाहिए।" यह बात एक तरह से दिमागी-अटकल लगाने के विरुद्ध चेतावनी के रूप में कही गई थी। यह विरोध की ऐसी योजना थी कि उस समय इसके पूरे-पूरे स्वरूप की कल्पना इसके योग्य-से-योग्य अनुगामी भी नहीं कर सकते थे। शायद गांधीजी को भी भावी योजना की पूरी कल्पना नहीं थी। ऐसा लगता है, मानों उनपर आन्तरिक ज्योति की एक किरण पड़ती थी और उसी के प्रकाश में वह अपना व्यवहार निश्चित करते थे। कूच आरम्भ होते ही जनता उनके झण्डे के नीचे आ खड़ी हुई। विचार फैल गया और अलग-अलग रूप में प्रकट होने लगा। ज्योंही विचारों और भावनाओं को छुट्टी मिली, लोगों की क्रिया-शक्ति के बन्द भी खुल गये। कूच का आरम्भ में तो उपहास किया गया, बाद में उसे ध्यान से देखा जाने लगा, और अन्त में उसी की प्रशंसा की गई। नगर तो डरते रहे, पर गांव पीछे हो लिये। सीधे-सादे लोगों का गांधीजी के अचूक निर्णय पर विश्वास था। उनका नमक-सत्याग्रह किसी सुरक्षित भण्डार या अनन्त महासागर की लूट का धावा नहीं था। यह अंग्रेजों की सत्ता के खिलाफ ३३ करोड़ भारतीयों के विद्रोह का परिचायक-मात्र था।

कूच के बीच में ही २१ मार्च १९३० को अहमदाबाद में महासमिति की बैठक हुई। इसमें कार्य-समिति के पूर्व-कथित प्रस्ताव का समर्थन और नमक-कानून पर ही शक्ति केन्द्रित रखने का अनुरोध किया गया। साथ ही यह चेतावनी दी गई कि गांधीजी के दण्डी पहुंचकर नमक-कानून तोड़ने से पहले देश में और कहीं सविनय-अवज्ञा शुरू न की जाय। सरदार वल्लभभाई और श्रीसेनगुप्त की गिरफ्तारियों पर और सरकारी नौकरियां छोड़नेवाले ग्राम-कर्मचारियों को बधाई दी गई। सत्याग्रहियों के लिए एक ही तरह की प्रतिज्ञा निश्चित करना वाञ्छनीय समझा गया और गांधीजी की अनुमति से प्रतिज्ञा-पत्र बनाया गया जिसमें सत्याग्रह करनेवालों के लिए कर्त्तव्यों का विधान था।

गांधीजी के गिरफ्तार होने पर जनता क्या करे और कैसा व्यवहार रखे, इस विषय में भी गांधीजी ने अपनी सूचनाएं दे दीं। इसी समय के आस-पास पंडित मोतीलाल नेहरू ने आनन्द-भवन का शाही दान दिया। उस वर्ष कांग्रेस के अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू थे। उन्होंने देश के प्रतिनिधि के रूप में इस भेंट को स्वीकार किया।

गांधीजी-द्वारा आरम्भ किये गये इस आन्दोलन को संख्या, धन और प्रभाव का बल मिलता ही गया। गांधीजी ने सूत्र रूप से विचार दिया था। उनके

शिष्यों ने भाष्यकार बनकर उसे जनता को समझाया। अनेक कार्यकर्त्ता राष्ट्र-दूत बनकर उसका प्रचार करने दूर-दूर निकल पड़े। इस प्रकार यह नवीन धर्म देश के कोने-कोने और घर-घर में फैल गया। गांधीजी की कूच के समय जो सरकार अविचलित दिखाई देती थी, एक ही सप्ताह में उसके होश-हवास गुम हो गए। गांधीजी के महाप्रस्थान से पहले ही मार्च के प्रथम सप्ताह में वह वल्लभभाई को गिरफ्तार करने और उन्हें चार मास की सजा देने की दो गैर-कानूनी कार्रवाईयां कर चुकी थी। कूच के बाद उसने यह आज्ञा दी कि लंगोटी और दण्डधारी गांधी की पैदल-यात्रा का सिनेमा-चित्र न दिखाया जाय। बम्बई, उत्तर प्रदेश, पंजाब और मद्रास आदि सभी प्रांतों ने ऐसी ही आज्ञायें निकाल दीं।

गांधीजी सहारे के लिए हाथ में लम्बी लकड़ी लिये हुए चलते थे। उनकी सारी सेना बिलकुल करीने से पीछे-पीछे चलती थी। सेना-नायक का कदम फुर्ती से उठता था और सभी को प्रेरणा देता था। असलाली गांव १० मील दूर था, लोग घण्टों पहले से भारत के महान् सेनापति के दर्शनों की उत्सुकता में खड़े थे। इस अवसर पर अहमदाबाद में जितना बड़ा जलूस निकला, उतना पहले कभी निकला हुआ याद नहीं पड़ता। इसकी लम्बाई दो मील से कम न थी। कूच को देखने और अपने अलौकिक उद्धारक के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए भीड़ सर्वत्र मिलती थी। कूच में ही गांधीजी ने घोषित कर दिया था कि स्वराज्य नहीं मिला तो या तो रास्ते में मर जाऊंगा या आश्रम के बाहर रहूँगा। नमक-कर न उठा सका तो आश्रम लौटने का भी इरादा नहीं है। अंग्रेजी राज्य ने भारत का नैतिक, भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरह नाश कर दिया है। मैं इस राज्य को अभिशाप समझता हूं और इसे नष्ट करने का प्रण कर चुका हूं।

"मैंने स्वयं 'गाड सेव दि किंग' के गीत गाये हैं और दूसरों से गवाये हैं। मुझे 'भिक्षांदेहि' की राजनीति में विश्वास था। पर वह सब व्यर्थ हुआ। मैं जान गया कि इस सरकार को सीधा करने का यह उपाय नहीं है। अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है। पर हमारी लड़ाई अहिंसा की लड़ाई है। हम किसी को मारना नहीं चाहते, किन्तु इस सत्यानाशी शासन को खत्म कर देना हमारा परम-कर्तव्य है।"

गांधीजी की गिरफ्तारी होने ही वाली थी। श्री अब्बास तय्यबजी उनके उत्तराधिकारी मुकर्रर हुए।

गांधीजी को कूच में २४ दिन लगे। रास्ते भर वह इस बात पर जोर देते रहे कि यह तीर्थ-यात्रा है। इसमें शरीर को कायम रखने मात्र के लिए खाने में ही पुण्य है, स्वादिष्ट भोजन करने में नहीं है। वह बराबर आत्म-निरीक्षण कराते रहे। सूरत में गांधीजी ने जो भाषण दिया उसका उपस्थित जनता पर जबरदस्त

असर हुआ। नवसारी में पारसियों को सम्बोधन करके गांधीजी ने उनसे शराब का व्यापार छोड़ने का अनुरोध किया—"यदि हम नमक-कर और शराब की बिक्री को उठा देने में भी सफल हो गये, तो अहिंसा की जीत है। फिर पृथ्वी पर कौन शक्ति भारतवासियों को स्वराज्य लेने से रोक सकती है? यदि ऐसी शक्ति होगी, तो मैं उसे देख लूंगा। या तो जो चाहिए वह लेकर लौटूंगा, या मेरी लाश समुद्र पर तैरती मिलेगी।"

नमक-कानून टूटा

५ अप्रैल को प्रातःकाल गांधीजी दण्डी पहुँचे। श्रीमती सरोजिनी देवी भी उनसे मिलने आई थीं। प्रातःकाल को प्रार्थना के थोड़ी देर बाद गांधीजी और उनके साथी समुद्र-तट से नमक बीनकर न .क-कानून तोड़ने निकले। नमक-कानून तोड़ते ही गांधीजी ने यह वक्तव्य प्रकाशित किया:—

"नमक-कानून विधिवत् भंग हो गया है। अब जो कोई सजा भुगतने को तैयार हो वह जहां चाहे और जब सुविधा देखे, नमक बना सकता है। मेरी सलाह यह है कि सर्वत्र कार्यकर्त्ता नमक बनाएँ; जहां उन्हें शुद्ध नमक तैयार करना आता हो वहां उसे काम में भी लाएँ और ग्राम-वासियों को भी सिखा दें, परन्तु उन्हें यह अवश्य जता दें कि कानून छिपाकर नहीं, खुल्लम-खुल्ला भंग करना है।"

दूसरे वक्तव्य में स्त्रियों के विषय में गांधीजी ने नवसारी में कहा कि मैं इतना विश्वास अब भी रख सकता हूं कि सरकार हमारी बहनों से लड़ाई मोल नहीं लेगी। इसको उत्तेजना देना हमारे लिए भी अनुचित होगा। जबतक सरकार की कृपा पुरुषों तक ही सीमित रहती है तबतक पुरुषों को ही लड़ना चाहिए; जब सरकार सीमोल्लंघन करे तब भले ही स्त्रियां जी खोलकर लड़ें। मैंने स्त्रियों के सामने जो कार्यक्रम रक्खा है उसमें उनके बहुत काम हैं। वे जितना सामर्थ्य हो, साहस दिखाएँ और जोखिम उठाएँ।

सरकार का दमन-चक्र

६ अप्रैल से नमक-सत्याग्रह से छुट्टी क्या मिली, देश में इस छोर से उस छोर तक आग-सी लग गई। सारे बड़े-बड़े शहरों में लाखों की उपस्थिति में विराट सभाएँ हुईं। करांची, पूना, पेशावर, कलकत्ता, मद्रास और शोलापुर की घटनाओं ने नया अनुभव कराया और दिखा दिया कि इस सभ्य सरकार का एकमात्र आधार हिंसा है। पेशावर में सेना की गोलियों से कई आदमी मारे गये। मद्रास में भी गोली चली। २३ अप्रैल को बंगाल-आर्डिनेन्स फिर जारी कर दिया गया। २७ अप्रैल को वाइसराय साहब ने भी कुछ संशोधन कर के १९१० के प्रेस-ऐक्ट को आर्डिनेन्स-रूप में फिर से जीवित कर दिया। गांधीजी का 'यंग इण्डिया' अब

साइक्लोस्टाइल पर निकलने लगा था। थोड़े दिन बाद गांधीजी ने अपने 'नवजीवन प्रेस' के व्यवस्थापक को आदेश दे दिया कि सरकार जमानत मांगे तो न दी जाय और प्रेस को जब्त होने दिया जाय। 'नवजीवन' गया और उसके साथ-साथ नवजीवन-प्रेस द्वारा प्रकाशित अन्य पत्र भी जाते रहे। देश के अधिकांश पत्रकारों ने जमानतें दाखिल कर दीं।

अब गांधीजी ने जनता को गांवों में ताड़ी के सारे पेड़ काट डलाने का आदेश दिया। शुरुआत तो उन्होंने अपने ही हाथों से की। ४ मई को सूरत में स्त्रियों की सभा में वह बोले—"भविष्य में तुम्हें तकली के बिना सभाओं में न आना चाहिए। तकली पर तुम बारीक-से-बारीक सूत कात सकती हो। विदेशी कपड़ा पहले-पहल सूरत के बन्दर पर उतरा था। सूरत की बहनों को ही इसका प्रायश्चित्त करना है।" यहीं पर उन्होंने जातीय पंचायतों से अपनी मदिरा-त्याग की प्रतिज्ञा पालन करने का अनुरोध किया। किन्तु नवसारी में सरकारी कर्मचारियों के सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध उन्हें जनता को चेतावनी देनी पड़ी। खेड़ा जिला गुजरात का रणांगण बन गया था।

धारासना पर धावा

इसी समय गांधीजी ने वाइसराय साहब के लिए अपना दूसरा पत्र तैयार किया और सूरत जिले के धारासना और छरसाड़ा के नमक के कारखानों पर धावा करने का इरादा जाहिर किया। उन्होंने वाइसराय को लिखाः—

"ईश्वर ने चाहा तो धारासना हुंच कर नमक के कारखाने पर अधिकार करने का मेरा इरादा है। मेरे साथ मेरे साथी भी रवाना होंगे। जनता को यह बताया गया है कि धारासना व्यक्तिगत सम्पत्ति है। यह महज धोखाधड़ी है। धारासना पर सरकार का उतना ही वास्तविक नियंत्रण है जितना वाइसराय साहब की कोठी पर है। अधिकारियों की स्वीकृति के बिना चुटकी-भर नमक भी कोई वहां से नहीं ले जा सकता। इस धावे को रोकने के तीन उपाय हैं:—

(१) नमक-कर उठा देना।

(२) मुझे और मेरे साथियों को गिरफ़्तार कर लेना, परन्तु जैसी मुझे आशा है, यदि एक के बाद दूसरे गिरफ़्तार होने के लिए आते रहेंगे तो यह उपाय कारगर न होगा।

(३) खालिस गुण्डापन। परन्तु एक का सिर फूटने पर दूसरा सिर फुड़वाने को तैयार रहेगा तो यह वार भी खाली जायगा।

यह निश्चय बिना हिचक के नहीं कर लिया गया है। मुझे आशा थी कि सत्याग्रहियों के साथ सरकार सभ्य तरीके से लड़ेगी। यदि उनपर साधारण कानून का प्रयोग करके सरकार सन्तोष कर लेती तो मैं कह ही क्या सकता था? इसके बजाय

जहां प्रसिद्ध नेताओं के साथ सरकार ने थोड़ा-बहुत जाब्ता बरता भी है, वहां साधारण सैनिकों पर पाशविक ही नहीं, निर्लज्ज प्रहार भी किये गये हैं। ये घटनायें इक्की-दुक्की होतीं तो उपेक्षा भी कर ली जाती। परन्तु मेरे पास बंगाल, बिहार, उत्कल, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और बम्बई से जो संवाद पहुंचे हैं उनसे गुजरात के अनुभव का समर्थन होता है। गुजरात-सम्बन्धी सामग्री तो मेरे पास ढेरों है। करांची, पेशावर और मद्रास के गोली-काण्ड भी अकारण एवं अनावश्यक प्रतीत होते हैं। हड्डियां चूर-चूर करके और अण्डकोष दबा-दबा कर स्वयंसेवकों से वह नमक छीनने का प्रयत्न किया गया है जो सरकार के लिए निकम्मा था। हां, स्वयंसेवकों के लिए अलबत्ता यह बेशकीमती था। बंगाल में नमक के सम्बन्ध में मुकदमे और प्रहार तो कम ही हुए दीखते हैं, परन्तु स्वयंसेवकों से झण्डा छीनने के काम में अकल्पनीय निर्दयता का परिचय दिया गया बताते हैं। समाचार है कि चावल के खेत जला दिये गये और खाद्य-पदार्थ जबरदस्ती लूट लिये गये। कर्मचारियों के हाथ शाक-भाजी न बेचने के अपराध पर गुजरात में एक सब्जी-मण्डी ही नष्ट कर दी गई। ये कृत्य जन-समूहों की आंखों के सामने हुए हैं। कांग्रेस की आज्ञा न होती तो क्या ये लोग बदला लिये बिना छोड़ते? कृपया इन वृत्तान्तों पर विश्वास कीजिए। ये मुझे उन लोगों से मिले हैं जिन्होंने सत्य का व्रत ले रखा है। बारडोली की भांति बड़े-बड़े कर्मचारियों-द्वारा किया गया प्रतिवाद भी झूठा सिद्ध हुआ है। मुझे खेद है, इन दिनों भी कर्मचारी झूठी बातें प्रकाशित करने से बाज नहीं आते।" अन्त में उन्होंने लिखा—"अतः आप नमक-कर उठा न सकें और नमक बनाने की मनाही दूर न करा सकें तो मुझे अनिच्छा होते हुए भी इस पत्र के आरम्भ में वर्णित कार्रवाई करनी पड़ेगी।"

गांधीजी की गिरफ्तारी

५ तारीख की रात को १ बजकर १० मिनट पर गांधीजी को चुपके से गिरफ्तार करके मोटर लारी में बिठा दिया गया। साथ में पुलिसवाले थे। बम्बई के पास बोरीविली तक रेलगाड़ी में और वहां से यरवडा-जेल तक उन्हें मोटर द्वारा पहुंचा दिया गया। 'लन्दन टैलीग्राफ' नामक अखबार के संवाददाता अशमीद बार्टलेट ने इस प्रसंग पर लिखा था :—

"जब हम गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे उस समय हमें वातावरण में नाटक का-सा चमत्कार प्रतीत होता था। हमें लगा, दृश्य के प्रत्यक्ष द्रष्टा हमी हैं। कौन जाने यह घटना आगे चलकर ऐतिहासिक बन जाय? एक ईश्वर-दूत की गिरफ्तारी कोई छोटी बात है? सच्चे-झूठे की भगवान जाने, परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि गांधी आज करोड़ों भारतीयों की दृष्टि में महात्मा और दिव्य पुरुष हैं। कौन कह सकता है कि सौ वर्ष बाद तीस करोड़ भारतीय उसे अवतार मानकर नहीं पूजेंगे?

इन विचारों को हम रोक न सके और इस ईश्वर-दूत को हिरासत में लेने के लिए उषा के प्रकाश में रेल की पटरी पर खड़ा रहना हमें अच्छा नहीं लगा।"

गिरफ्तार होने से पहले गांधीजी ने दण्डी में अपना अन्तिम सन्देश लिखवा दिया था। वह यह था:—

"यदि इस शुभारम्भ को अन्त तक निभा लिया तो पूर्ण-स्वराज्य मिले बिना नहीं रह सकता। फिर भारतवर्ष समस्त संसार के सम्मुख जो उदाहरण उपस्थित करेगा वह उसके योग्य ही होगा। त्याग के बिना मिला हुआ स्वराज्य टिक नहीं सकता। अतः सम्भव है जनता को असीम बलिदान करना पड़े। सच्चे बलिदान में एक ही पक्ष को कष्ट झेलने पड़ते हैं, अर्थात् बिना मारे मरना पड़ता है। परमात्मा करे, भारत इस आदर्श को पूरा कर दिखाए। सम्प्रति भारत का स्वाभाविक स्वाभिमान और सर्वस्व एक मुट्ठी नमक में निहित है। मुट्ठी भले ही टूट जाय, पर खुलनी हरगिज न चाहिए।

"मेरी गिरफ्तारी के बाद जनता या मेरे साथियों को घबराना न चाहिए। इस आन्दोलन का संचालक मैं नहीं हूँ, परमात्मा है। वह सबके हृदय में निवास करता है। हममें श्रद्धा होगी तो वह अवश्य रास्ता दिखाएगा। हमारा मार्ग निश्चित है। गांव-गांव को नमक बीनने या बनाने के लिए निकल पड़ना चाहिए। स्त्रियों को शराब, अफीम और विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना देना चाहिए। घर-घर में आबाल-वृद्ध सबको तकली पर कातना शुरू कर देना चाहिये और रोज़ सूत के ढेर लग जाने चाहिए। विदेशी वस्त्रों की होलियां जलाई जायं। हिन्दू किसी को अछूत न मानें। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सब हृदय से गले मिलें। बड़ी जातियां छोटी जातियों को देने के बाद बचे हुए भाग से सन्तोष करें। विद्यार्थी सरकारी मदरसे छोड़ दें और सरकारी नौकर उन पटेलों और तलटियों की भांति नौकरियां छोड़कर जनता की सेवा में जुट जायं। इस प्रकार आसानी से हमें पूर्ण स्वराज्य मिल जायगा।"

गिरफ़्तारी का व्यापक प्रभाव

गांधीजी की गिरफ्तारी पर देश के इस छोर से उस छोर तक सहानुभूति की लहर अपने-आप फैल गई। गिरफ्तारी का समाचार पहुंचना था कि बम्बई, कलकत्ता और अनेक स्थानों पर सम्पूर्ण और स्वेच्छापूर्वक हड़ताल हो गई। गिरफ्तारी के दूसरे दिन की हड़ताल और भी व्यापक थी। बम्बई में विराट् जलूस निकला। शाम को इतनी विशाल सभा हुई कि कई मंचों पर से भाषण देने पड़े। ८० में से ४० के लगभग मिलें बन्द रहीं। ५० हजार मजदूर विरोध-स्वरूप निकल आये। जी०आई०पी० और बी० बी० सी० आई० के कारखानों के मजदूर भी काम छोड़कर हड़ताल में शरीक हो गये। गिरफ्तारी पर अपनी नाराजी जाहिर करने के

लिए कपड़े के व्यापारियों ने ६ दिन की हड़ताल का निश्चय किया। गांधीजी पूना में नजरबन्द किये गये थे। वहां भी पूरी हड़ताल हुई। समय-समय पर सरकारी पदों और पदवियों के छोड़ने की घोषणा होने लगी। इस देश ने प्राय: सर्वत्र महात्माजी के उपदेशों का आश्चर्यजनक रूप में पालन किया। एक-दो स्थानों पर झगड़ा भी हो गया। शोलापुर में ६ पुलिस-चौकियां जला दी गईं, जिनके फल-स्वरूप पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें २५ व्यक्ति मरे और लगभग १००० घायल हुए। कलकत्ते में शहर की हड़तालें तो शान्तिपूर्ण रहीं, परन्तु हवड़ा और पंचतल्ला में भीड़ को तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने गोली चला दी। १४४ वीं धारा के अनुसार ५ से अधिक मनुष्यों के एकत्र होने की मनाही कर दी गई।

परन्तु गांधीजी की गिरफ्तारी का असर तो विश्व-व्यापी हुआ। पनामा के भारतीय व्यापारियों ने २४ घण्टे की हड़ताल मनाई। सुमात्रा के पूर्वीय समुद्र-तटवासी हिन्दुस्तानियों ने भी ऐसा ही किया और वाइसराय साहब एवं कांग्रेस को तार भेज कर गांधीजी की गिरफ्तारी पर खेद प्रकट किया। फ्रांस के पत्र गांधीजी और उनकी बातों से भरे थे। बहिष्कार-आन्दोलन का परिणाम जर्मनी पर भी हुआ। वहां के कपड़े के व्यापारियों को उनके भारतीय आढ़तियों ने माल भेजने की मनाही करदी। रूटर ने यह समाचार भेजा कि सैक्सनी की सस्ती छींट के कारखानों को खास तौर पर हानि हो रही है। नैरोबी के भारतीयों ने भी हड़ताल रखी।

इसी बीच अमरीका के भिन्न-भिन्न दलों के १०२ प्रभावशाली पादरियों ने तार-द्वारा रैम्जे मैकडानल्ड साहब की सेवा में आवेदन-पत्र भेजा और उनसे अनुरोध किया कि गांधीजी और भारतवासियों के साथ शान्तिपूर्ण समझौता किया जाय। इसपर हस्ताक्षर न्यूयॉर्क के डॉक्टर जॉन हेनीज होम्स ने करवाये थे। सन्देश में प्रधान मन्त्री से अपील की गई थी कि भारत, ब्रिटेन और जगत का हित इसी में है कि इस संघर्ष को बचाया जाय और समस्त मानव-जाति की भयंकर विपत्ति से रक्षा की जाय।

भारत-सरकार को स्थिति की गंभीरता का अवश्य पूरा खयाल था। वाइसराय ने सर तेज बहादुर सप्रू और सर चिम्मनलाल सीतलवाड जैसे नरम नेताओं से लम्बी-लम्बी मुलाकातें कीं। नरम-दल-संघ की कौंसिल की बम्बई में बैठक हुई। उसने राजनैतिक परिस्थिति पर विचार किया और नरम-नेताओं ने इस बात की आवश्यकता बताई कि वाइसराय शीघ्र ही दूसरी घोषणा करें और गोलमेज-परिषद् की तारीखें मुकर्रर करें। किन्तु सर्वदल-सम्मेलन और नरम-दल की कौंसिल की बैठक के एक दिन पहले ही वाइसराय ने दूसरी महत्वपूर्ण घोषणा कर दी और प्रधान-मन्त्री के साथ का अपना पत्र-व्यवहार भी प्रकाशित कर दिया। नरम-दल की कौंसिल ने भी मौजूदा परिस्थिति पर एक वक्तव्य निकाला। इसमें कानून-भंग के

आन्दोलन की भरपेट निन्दा की गई और औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा के लिए गोलमेज-परिषद् की जल्दी तैयारी करने का वाइसराय से अनुरोध किया गया। इस बात पर भी जोर दिया गया कि सरकार परिषद् की शर्तें और मर्यादायें प्रकट कर दे, ताकि उस समय भी जो लोग परिषद् से अलग थे वे नरम-दल वालों के साथ उसमें शामिल हो सकें। इस बात पर भी आग्रह किया गया कि कानून-भंग का आन्दोलन और सरकार का दमन-चक्र साथ-साथ बन्द हो, राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायं और सब राजनैतिक दलों पर सरकार पूर्ण विश्वास करे।

कार्य-समिति की बैठक

महात्माजी के स्थान पर श्री अब्बास तैयबजी नमक-सत्याग्रह के नायक हुए थे। वह भी १२ अप्रैल को गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारियों, लाठी-प्रहारों और दमन का दौर-दौरा जारी रहा। एक के बाद दूसरा स्वयंसेवक-दल नमक के गोदामों पर धावा करता रहा। पुलिस उन्हें लाठियों से मारती रही। बहुतों को सख्त चोटें आईं।

गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद कार्य-समिति की बैठक प्रयाग में हुई और उसने कानून-भंग का क्षेत्र और भी विस्तृत कर दिया। नमक के धावों के लिए धारसाना अखिल-भारतीय केन्द्र माना गया, सविनय कानून-भंग में शाश्वत विश्वास प्रकट किया गया और महात्माजी के कारावास-काल में लड़ाई को दुगुने उत्साह से चलाने का निश्चय किया गया। साथ ही विद्यार्थियों, वकीलों, व्यवसायियों, मजदूरों, किसानों, सरकारी नौकरों और समस्त भारतीयों को सफलता के लिए अधिक-से-अधिक कष्ट उठाकर सहायता देने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

यह भी निश्चय किया गया कि हाथ-कते हुए तथा बुने हुए कपड़े की पैदावार बढ़ाई जाय, रुपये से बेचने के साथ-साथ सूत लेकर खद्दर देने वाली संस्थायें खड़ी की जायं और सामान्यतः हाथ-कताई को प्रोत्साहन दिया जाय।

श्रीमती सरोजनीदेवी कार्य-समिति की बैठक में प्रयाग गई थीं। श्री तैयबजी की गिरफ्तारी का समाचार सुनकर वह शीघ्र ही धारसाना लौट आईं और उन्होंने धावे का संचालन करने का गांधीजी को दिया हुआ अपना वचन पूरा किया। वह और उनका स्वयंसेवक-दल जाब्ते से गिरफ्तार तो १६ तारीख को ही कर लिया गया, किन्तु बाद में पुलिस के घेरे से निकाल कर उन्हें रिहा कर दिया गया। इसके बाद स्वयंसेवकों के दल नमक के गोदामों पर टूट पड़े। उन्हें मार-मार कर हटा दिया गया। उसी दिन शाम को पुलिस ने २२० स्वयंसेवकों को गैर-कानूनी संस्था के सदस्य करार देकर गिरफ्तार कर लिया और धारसाना की अस्थायी जेल में नजरबन्द कर दिया।

वड़ाला पर धावा

१९ ता० को प्रातःकाल ही वड़ाला के नमक के कारखाने पर स्वयंसेवक बड़ी संख्या में एकत्र हो गये। पुलिस की तत्परता के कारण धावा न हो सका। उस दिन पुलिस तमंचे लेकर आई थी। उसने ४०० सत्याग्रहियों को पकड़ लिया।

वड़ाला के नमक के कारखाने पर कई धावे हुए। २२ ता० को १८८ स्वयंसेवक पकड़े गये और वर्ली भेज दिये गये। २५ ता० को १०० स्वयंसेवकों के साथ २००० दर्शकों की भीड़ भी गई। पुलिस ने लाठी-प्रहार करके १७ को घायल किया और ११५ को गिरफ्तार। धावा दो घण्टे तक रहा। तीसरे पहर फिर धावा हुआ। इसमें १८ घायल हुए। प्रसिद्ध उड़ाके श्री कबाड़ी भी इनमें शामिल थे। २६ ता० को ६५ स्वयंसेवक मैदान में गये और ४३ गिरफ्तार हुए। बाकी भीड़ के साथ नमक लेकर भाग गये। उस समय एक सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया कि अबतक जो गड़बड़ियाँ हुई हैं वे अधिकतर दर्शकों ने की हैं और इनमें सैनिकों का-सा अनुशासन नहीं है, अतः जनता को धावों के समय वड़ाला से दूर रहना चहिये। किन्तु सबसे चमत्कारी धावा तो १ जून को हुआ। युद्ध-समिति उसके लिए बड़े परिश्रम से तैयारियां कर रही थी। उस दिन सुबह १५००० सैनिकों और असैनिकों ने वड़ाला के विशाल सामूहिक धावे में भाग लिया।

पोर्ट-ट्रस्ट के रेलवे चौराहे पर एक के बाद दूसरा दल पहुँचा। थोड़ी देर में धावा करने वाले स्त्री और बच्चे तक पुलिस का घेरा तोड़ कर कीचड़ पार करके कढ़ाइयों पर पहुँचे। लगभग १५० कांग्रेसी सैनिकों के मामूली चोटें आईं। पुलिस ने धावा करने वालों को खदेड़ दिया। यह सब खुद होम-मेम्बर साहब की देख-रेख में हुआ।

३ जून को वर्ली की अस्थायी जेल में बड़ा उपद्रव हो गया। स्थिति को सम्हालने के लिए पुलिस को दो बार प्रहार करने पड़े और सेना बुलानी पड़ी। उस दिन वड़ाला के ४ हजार अभियुक्तों से पुलिस की भिड़न्त हो गई। लगभग ९० घायल हुए। २५ को सख्त चोटें आईं। किन्तु जिस प्रकार धावा करनेवालों के साथ पुलिस ने बरताव किया उस पर जनता में बड़ा रोष फैला। दर्शक उस निर्दय दृश्य को देखकर चकित रह गये।

दमन का दौर-दौरा

परन्तु एक-एक बात को कहां तक गिनायें! घटनाओं का अन्त नहीं था। लार्ड अरविन ने अपनी सत्ता का पेंच कसना शुरू कर दिया। आरम्भ में तो उन्होंने गांधीजी को गिरफ्तार नहीं करने दिया। परन्तु गांधीजी की कूच का रोग तो सारे राष्ट्र को लग गया था। सर्वत्र कूच के नक्कारे बजने लगे थे। उनकी पुकार पर हजारों

महिलायें मैदान में निकल आई थीं। इस कारण सरकार बड़े चक्कर में पड़ गई। उन्होंने आते ही शराब और विदेशी कपड़े की दुकानों पर धरना देने का काम अपने हाथ में ले लिया और जबतक शौर्य पर स्वेच्छाचार ने विजय प्राप्त न की तबतक पुलिस भी उनके आगे कुछ न कर सकी। १४ अप्रैल को जवाहरलालजी को पकड़ कर सजा दे दी गई। जवाहर क्या बन्दी हुआ, कांग्रेस बन्दी हो गई। सारा देश एक विशाल जेलखाना बन गया। धरना, करबन्दी और सामाजिक बहिष्कार सबकी रोक के लिये आर्डिनेन्स निकल गये। राष्ट्रीय झंडे पर अनेक मुठभेड़ें हुईं। सजायें दिन-दिन कठोर होने लगीं। कैद के साथ-साथ जुर्माने किये जाने लगे। सभा-भंग की आज्ञा तो होती थी देश के साधारण कानून के अनुसार और उस पर अमल होता था लाठी के निर्दय प्रहारों से। नमक-कानून के साथ-साथ ताजीरात-हिन्द की धारायें मिलाकर लम्बी-से-लम्बी सजायें दी जाने लगीं। फरवरी १९३० के मध्य में एक सरकारी आज्ञा निकली। उसमें राजनैतिक कैदियों का वर्गीकरण किया गया, पर उसमें 'राजनैतिक' शब्द सावधानी के साथ नहीं आने दिया गया। 'ए' वर्ग तो नाममात्र को ही था। 'बी' क्लास भी बड़ी कंजूसी से दिया जाता था। विपुल सम्पत्ति के स्वामी और ऊंचे रहन-सहन के अभ्यासी सरकार की शर्तों के अनुसार भी उच्च-वर्ग के हकदार थे। पर उन्हें भी 'सी' क्लास में डाल दिया जाता था और काम भी उन्हें जेलों में पत्थर तोड़ने, घानी पेरने और पानी निकालने का दिया जाता था। सत्याग्रहियों के साथ किये गये व्यवहार ने इस सरकारी आज्ञा की शीघ्र कलई खोल दी। एक बार कलकत्ते के सार्वजनिक उद्यान में उपस्थित लोग तो ताले में बन्द करके बुरी तरह पीटे गये। फाटकों पर आड़ लगाकर पहरे बिठा दिये गये। पाशविक व्यवहार की शुरुआत उत्तर प्रदेश और बंगाल से हुई, पर थोड़े ही दिनों में दक्षिण-भारत में यही हाल होने लगा। आंदोलन के उत्तरार्द्ध-काल में वहां दमन की अमानुषिकता का पार नहीं रहा। बंबई लड़ाई का मुख्य केन्द्र बन गया। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार पर सारा जोर आ पड़ा। इसमें मिल मालिकों का स्वार्थ साथ था। सौभाग्य से पंडित मोतीलाल नेहरू उस समय जेल के बाहर थे। वह बम्बई गये और उन्होंने अहमदाबाद के मिलवालों से समझौते की बात-चीत की। अहमदाबादवालों से निपटना आसान था, पर बम्बई के मिलों में यूरोपियनों का हिस्सा था। उनसे कांग्रेस की मुहर लगवाने की शर्त कबूल कराना बड़ा मुश्किल काम था। परन्तु मोतीलालजी ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया। बात यह थी कि वायुमण्डल ही उस समय बहिष्कार की भावना से परिपूर्ण था। जनता के हृदय में वह व्याप्त हो चुकी थी। विदेशी कपड़े की सैकड़ों गांठें बन्दर पर पड़ी थीं। व्यापारी उन्हें उठवाते न थे। उन्होंने एकत्र होकर निश्चय कर लिया था कि वे माल नहीं लेंगे। इस कारण देश में कपड़े की तंगी होने लगी थी।

कार्य-समिति-द्वारा प्रोत्साहन

२७ जून आ पहुंची। उस दिन प्रयाग में कार्य-समिति की बैठक हुई। उसने बहुत-से शहरों और गांवों में विदेशी वस्त्र-बहिष्कार की प्रगति पर संतोष प्रकट किया और समस्त कांग्रेस-संस्थाओं तथा देशभर से अनुरोध किया कि ब्रिटिश माल के सम्पूर्ण बहिष्कार का पहले से भी अधिक जोरदार प्रयत्न करें और उसके लिए हिन्दुस्तान में न बनने वाली चीजों को ब्रिटेन के सिवा अन्य विदेशों से खरीदें। जनता से यह भी अनुरोध किया गया कि जिन सरकारी नौकरों और दूसरे लोगों ने राष्ट्रीय आंदोलन का गला घोंटने के लिए जनता पर अमानुषिक अत्याचार करने में भाग लिया है उन सबका संगठित और कठोर-रूप में सामाजिक बहिष्कार किया जाय। भारत के कालेजों के विद्यार्थियों से भी राष्ट्रीय-स्वतन्त्रता के संग्राम में पूर्ण भाग लेने की अपील की गयी।

ऐसी समितियों और संस्थाओं से, जो सरकार-द्वारा गैर-कानूनी घोषित कर दी गई थीं यह कहा गया कि वे सरकार की घोषणा की पर्वाह न करके पहले की भांति काम करती रहें और कांग्रेस-कार्यक्रम को जारी रखें।

उन दिनों विलायती कपड़े का बहिष्कार दिन-दिन जोरदार और कारगर होता जा रहा था। खद्दर से किसी भांति कपड़े की मांग पूरी होती दीखती न थी। इसके बाद मिल के सूत का हाथ से बुना हुआ कपड़ा ही देश-भक्त नागरिकों के लिए ग्राह्य हो सकता था। इसी कारण राष्ट्रीय कार्य में सहायक और बाधक होनेवाले कारखानों में भेद करना पड़ा। तदनुसार उन्हें सनद देने की प्रथा द्वारा कांग्रेस के नियन्त्रण में लाया गया। मिलों से जो शर्तें करवाई गईं उनमें से मुख्य ये थीं कि वे अपनी मशीनरी ब्रिटिश कम्पनियों से न खरीदेंगी, अपने आदमियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने से न रोकेंगी, कांग्रेस की दी हुई रिआयत का बेजा फायदा उठाकर अपने माल की कीमत न बढ़ायेंगी और ग्राहकों को हानि न पहुंचायेंगी। मिलों ने धड़ाधड़ इस प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर दिये। इसके पश्चात् महासमिति गैर-कानूनी ठहरा दी गई। पण्डित मोतीलाल नेहरू को ३० जून १९३० के दिन गिरफ्तार करके ६ महीने की सजा दे दी गई। दमन-पुराण में इतनी वृद्धि और हुई कि बहिष्कार-आंदोलन की तीव्रता के साथ-साथ दमन-चक्र की कठोरता भी बढ़ती गई। बम्बई के स्वयंसेवक-संगठन में कोई कसर बाकी न थी। स्त्रियां आती गईं और जब ये कोमलांगियां केसरिया साड़ी पहन-पहन कर अत्यन्त विनम्रता के साथ धरना देती थीं, तब लोगों के हृदय बात-की-बात में पिघल जाते थे। यदि कोई दूकानदार अपने माल पर मुहर न लगवाता तो उसकी पत्नी धरना देने आ बैठती थी। अन्यत्र की तरह बम्बई में भी सार्वजनिक सभायें वर्जित करार दे दी गईं। पर इन आज्ञाओं को मानता कौन था?

ब्रेल्सफोर्ड का वक्तव्य

ब्रेल्सफोर्ड साहब ने आन्दोलन के समय इस देश की यात्रा की थी और जनता के साथ जो पाशविक व्यवहार किया जाता था, उसे अपनी आंखों देखा था। १२ जनवरी १९३१ के 'मैंचेस्टर गार्जियन' में उन्होंने अपना अनुभव इन शब्दों में प्रकट किया—"पुलिस के खिलाफ जिम्मेदार भारतीय नेताओं को जगह-जगह इतनी शिकायतें हैं कि उनकी जांच करना बड़ी टेढ़ी खीर है। इस तरह की बहुत-सी बातें मुझे प्रत्यक्षदर्शी अंग्रेजों और घायलों की मरहमपट्टी करनेवाले हिन्दुस्तानी डाक्टरों ने सुनाईं। मैंने भी दो सभायें देखीं। उन्हें नहीं रोका गया था। भाषण राजद्रोहात्मक थे, पर किये गये थे शान्तिपूर्वक। हिंसा की बराबर निन्दा की गई। लोग जमीन पर बैठे तकलियां चलाते हुए भाषण सुन रहे थे। स्त्रियों की संख्या भी खूब थी। अगर इन सभाओं को रोका न जाता तो कोई उपद्रव न होता और जनता सुनते-सुनते थोड़े दिन में ऊबकर अपने-आप घर बैठ जाती। पर हुआ यह कि खासकर बम्बई में मारपीट कर तितर-बितर करने की नीति से सारे शहर का जोश उमड़ आया, लाठी-प्रहार सहन करना सम्मान का प्रश्न बन गया और शहादत के जोश में सैकड़ों स्वयंसेवक मार खाने के लिए निकल आये। उन्होंने नियमबद्धता और शान्त साहस का परिचय दिया। इस बात में तो मुझे कोई शंका रही नहीं कि अंग्रेज अफसरों की अधीनता में भी पुलिस राजद्रोह की सजा अकसर शारीरिक रूप में देना चाहती थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुछ छात्र झरोखों पर खड़े थे। शान्त जलूस पर होने वाले लाठी-प्रहार देखकर वे जोर से पुकार उठे—"बुजदिलो!" दो घण्टे बाद एक अंग्रेज अफसर पुलिस लेकर पहुंच गया, और पढ़ाई के कमरों में घुस-घुसकर पढ़ते-लिखते हुए विद्यार्थियों की आंख मींचकर पिटाई हुई। यहां तक कि दीवारें खून से रंग गईं। विश्वविद्यालय की ओर से जाब्ते में शिकायत की गई, पर कौन सुनता था! इस घटना का हाल मुझे ऐसे अध्यापकों ने सुनाया जिनकी यूरोप के विज्ञान-जगत में खूब ख्याति है। हाईकोर्ट के एक भारतीय न्यायाधीश का लड़का भी इस पिटाई का शिकार हुआ था। लाहौर में भी ऐसी घटनाएँ हुईं। बंगाल के कण्टाई गांव में निर्दोष भीड़ को तितर-बितर करते हुए पांच आदमी तालाब में ढकेल दिये गये। पांचों डूबकर मर गये। मेरठ में एक बड़े वकील से मिला। वहां भी एक सभा भंग की गई थी। वकील महाशय मुख्य वक्ता थे। उन्हें गिरफ्तार करके पीटा गया और उसी हालत में पास खड़े पुलिस के किसी सिपाही ने उन पर गोली चला दी। बेचारों को अपनी बांह कटवानी पड़ी।"

पेशावर की घटना

२३ अप्रैल १९३० को पेशावर में जो घटनाएँ हुईं उनका भी सार यहां दे

देना ठीक होगा। भारत के अन्य भागों की भांति सीमा प्रान्त में भी कानून-भंग का आन्दोलन चल रहा था। पेशावर-शहर में कांग्रेस की ओर से घोषणा की गई कि २३ अप्रैल से शराब की दुकानों पर पहरा लगेगा। परन्तु शकुन अच्छे नहीं हुए। २२ अप्रैल को महासमिति का प्रतिनिधि-मण्डल पेशावर पहुंचनेवाला था। इसका उद्देश्य सीमा-प्रान्त के विशेष कानूनों के अमल की जांच करना था। मण्डल अटक में ही रोक दिया गया और प्रान्त में उसे घुसने नहीं दिया गया। इस समाचार पर पेशावर में जलूस निकला और शाही बाग में विराट सभा हुई। दूसरे दिन तड़के ६ नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। ९ बजे दो नेता और पकड़ लिये गये। परन्तु जिस मोटर-लारी में पुलिस उन्हें थाने पर ले जा रही थी वह बिगड़ गई। नेताओं ने थाने पर आ जाने का आश्वासन दिया और वे छोड़ दिये गये। तदनुसार जनता उक्त नेताओं का जलूस बनाकर काबुली दरवाजे के थाने पर ले गई। पर थाना बन्द था। इतने में एक पुलिस अफसर घोड़े पर आ पहुंचा। उसके आते ही जनता नारे लगाने और राष्ट्रीय गीत गाने लगी। अफसर चला गया और अकस्मात् दो-तीन सशस्त्र मोटरें आ पहुंचीं और भीड़ के भीतर घुस गईं। इसी समय एक अंग्रेज मोटर-साइकिल से तेजी से आ रहा था। उसकी मोटर-साइकिल सशस्त्र मोटर से टकरा गई और चूर-चूर हो गई। मोटर में से किसी ने गोली चलाई और संयोग से मोटर में आग भी लग गई। डिप्टी कमिश्नर अपनी सशस्त्र मोटर में से उतरा और थाने में जाते हुए जीने पर गिर पड़ा। वह बेहोश हो गया, किन्तु जल्दी ही होश में आ गया। इसके बाद सशस्त्र मोटरों से गोलियां चलने लगीं। लोगों ने मृत शरीरों को वहां से हटाने का प्रयत्न किया। फौजी दस्ते और मोटरें भी हटा ली गईं। दूसरी बार फिर गोलियां चलाई गईं और वे करीब ३ घण्टे तक चलती रहीं। दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में सरकार-द्वारा प्रकाशित वक्तव्य में मृतकों की संख्या ३० और घायलों की संख्या ३३ दी गई है; किन्तु लोग इन संख्याओं को करीब-करीब ७ से १० गुना तक बतलाते थे। सायं-काल फौज कांग्रेस के बिल्लों और राष्ट्रीय झण्डे को उठा ले गई। २५ तारीख को फौज और सामान्यतः वहां रहनेवाली पुलिस दोनों हटा ली गईं। २८ तारीख को पुलिस ने फिर आकर कांग्रेस और खिलाफत के स्वयंसेवकों से, जो शहर के दरवाजों पर पहरा दे रहे थे, सब शहर का चार्ज ले लिया। ४ मई को शहर पर फौज ने कब्जा कर लिया।

बम्बई में लाठी-चार्ज

१ अगस्त १९३० को बम्बई में लोकमान्य तिलक की बरसी मनाई गई और श्रीमती हंसा मेहता के नेतृत्व में, जो उस समय नगर-कांग्रेस की डिक्टेटर थीं, एक जलूस निकाला गया। कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक नगर में लगातार

तीन दिन से हो रही थी। वह उस समय वहां गैर-कानूनी घोषित नहीं हुई थी, क्योंकि सरकार उस हुक्म को एक प्रान्त से दूसरे में धीरे-धीरे जारी कर रही थी। कार्य-समिति के कुछ सदस्य सायंकाल के जलूस में शामिल हो गये थे। जिस समय वे आगे बढ़े चले जा रहे थे उस समय उन्हें जलूस निकालने की निषेधाज्ञा का दफा १४४ का नोटिस मिला। उस समय तक जलूस में हजारों आदमी हो गये थे। जिस समय वह हुक्म मिला उस समय सड़क पर एक विशाल जन-समुदाय बैठा था और सारी रात पानी बरसते रहने के बाद भी एक इंच हटना नहीं चाहता था। लोग सचमुच पानी के पोखरों में ही बैठे थे। यह आशा की जा रही थी कि जलूस को आधी रात के बाद आगे बढ़ने दिया जायगा, जैसा कि एक बार पहले हुआ था। किन्तु यह न हुआ। चीफ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट ने इस स्थिति की सूचना पूना-स्थित होम-मेम्बर को दी। मि० हॉटसन ने उत्तर दिया कि जब तक मैं न आऊंगा तब तक कुछ भी नहीं करना चाहिए। वह सुबह होते-होते वहां पहुंचे और भीड़ को विक्टोरिया-टर्मिनस की इमारत की गैलरी की एक छत से देखने लगे। कुछ चुने हुए आदमी सुबह गिरफ्तार कर लिये गये और उनके साथ कोई सौ महिलायें भी; और तब भीड़ को तितर-बितर करने के लिए लाठी-प्रहार का हुक्म हुआ। कार्य-समिति के जो सदस्य उस समय गिरफ्तार हुए उनमें पं० मदनमोहन मालवीय, श्री वल्लभभाई पटेल, जयरामदास दौलतराम और श्रीमती कमला नेहरू थे। श्रीमती मणिबहन (वल्लभभाई की सुपुत्री) जलूस में थीं, इसलिए वह भी गिरफ्तार कर ली गईं। कोई सौ अन्य महिलायें भी गिरफ्तार की गई थीं। उनमें डिक्टेटर श्रीमती हंसा मेहता भी थीं।

विभिन्न प्रान्तों में दमन

जब वल्लभभाई पटेल अपनी ४ मास की पहली सजा काट कर बाहर आये तब पण्डित मोतीलाल नेहरू ने उन्हें कांग्रेस का स्थानापन्न अध्यक्ष नियुक्त किया। उन्होंने बम्बई और गुजरात में कार्य संगठित करना आरंभ किया और आन्दोलन को और भी तीव्र कर दिया। इस राष्ट्रीय-आन्दोलन में भारतवर्ष के हरेक प्रान्त और भाग ने अपने-अपने हिस्से का कष्ट-सहन किया। भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न तरह से आन्दोलन और दमन चल रहा था। इसका कारण था—भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ, सम्बन्धित अफसरों का स्वभाव, पट्टे की शर्तें आदि। दक्षिण-भारत पर तो बहुत ही बुरी बीती। वहां लाठी-प्रहार, भारी-भारी जुर्मानों और लम्बी-लम्बी सजाओं की शुरुआत आन्दोलन के बढ़नेपर नहीं, बल्कि पहले ही से हो गई थी। बंगाल-प्रान्त ने देश भर में सब प्रान्तों से अधिक कैदी दिये। अंग्रेजी कपड़े का बहिष्कार बंगाल और बिहार-उड़ीसा में सबसे अधिक हुआ। वहां नवम्बर १९२९ के मुकाबले में नवम्बर १९३० में अंग्रेजी कपड़े का आयात ९५% गिर

गया था। स्वतन्त्रता के युद्ध में गुजरात की कारगुजारियां अनुपम थीं। कर-बन्दी का आन्दोलन तो केवल उत्तर प्रदेश में ही शुरू किया गया था। वहां अक्तूबर १९३० में जमींदारों और काश्तकारों दोनों को ही लगान और मालगु-जारी रोक लेने के लिए कहा गया था। पंजाब भी किसी से पीछे न रहा। अहिंसा-धर्म को हृदय से स्वीकार करके सीमाप्रान्त की जितनी राजनैतिक जीत हुई उतनी ही नैतिक विजय भी हुई। बिहार में चौकीदारी-टैक्स देना अधिकांश बन्द कर दिया गया। उसके लिए उस प्रान्त ने पूरे-पूरे कष्ट सहे। वहां के लोगों को सजा देने के लिए वहां अतिरिक्त-पुलिस रख दी गई और छोटी-छोटी रकमों के लिए उनकी बड़ी-बड़ी जायदादें जब्त कर ली गईं। मध्य-प्रान्त में जंगल-सत्याग्रह शुरू किया गया। उसमें सफलता मिली। लोगों ने भारी-भारी जुर्मानों और पुलिस की ज्यादतियों के होने पर भी उसे जारी रखा। तीन लाख ताड़ और खजूर के पेड़ काट डाले गये। सिर्सी ताल्लुके के १३० पटेलों में से ९६ ने, सिद्दापुर ताल्लुके के २५ ने और अंकोला ताल्लुके के ६३ पटेलों में से ४३ ने त्याग-पत्र दे दिये थे। अंकोला में करबन्दी-आन्दोलन का हेतु शुरू से ही राजनैतिक था, किन्तु सिर्सी और सिद्दापुर में वह आर्थिक कारणों से शुरू हुआ था। किसानों की तबाही भी एक कारण थी। केरल, जो कि प्रान्तों में सबसे छोटा है, सविनय-अवज्ञा-आन्दो-लन का झण्डा अन्त तक फहराता रहा। दूसरे सिरे पर आसाम प्रान्त ने, जिसमें कछार और सिलहट भी शामिल हैं, राष्ट्रीय महासभा की आवाज का शानदार जवाब दिया। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों में भी दमनकारी घटनाएँ हुईं।

गुजरात में किसानों की हिजरत वर्णन करते हुए मि० बिल्सफोर्ड ने लिखा है कि यहां के देहातियों ने आश्चर्यजनक एकता के साथ एक-एक करके पहले अपना सारा सामान अपनी-अपनी गाड़ियों में जमाया और फिर वे उन्हें बड़ौदा की सीमा में हांक ले गये। उनमें से कुछ ने अपनी कीमती फसलों को ले जाना असम्भव देख जला दिया। उन्होंने चटाइयों की दीवारें और टाट पर ताड़ के पत्ते बिछाकर छतें बना लीं और काम चलाऊ घर बना लिये। मैंने उनमें से एक बड़े दल से पूछा कि आप लोगों ने अपने-अपने घर क्यों छोड़ दिये हैं? स्त्रियों ने बहुत जल्दी सीधे सादे उत्तर दिये, 'क्योंकि महात्माजी जेल में हैं।' पुरुषों को अपने आर्थिक कष्ट का ज्ञान था। उन्होंने कहा, 'खेती में इतना पैदा नहीं होता और लगान बेजा है।' एक-दो ने कहा, 'स्वराज्य लेने के लिए।' मैंने सूरत की कांग्रेस के सभापति के साथ उन परित्यक्त गांवों में भ्रमण करते हुए दो दिन व्यतीत किये, जो मुझे सदा याद रहेंगे। घरों की कतार-की-कतार खाली पड़ी थी। उनपर कपड़ा सिले हुए ताले लगे थे। इन परित्यक्त गांवों में से एक से जब हमारी मोटर रवाना होने लगी तब संगीन चढ़ी हुई रायफल वाले पुलिसमैन ने हमें ठहर जाने का हुक्म दिया। उसने कहा कि 'आप पुलिस की लिखित आज्ञा लेकर ही गांव से जा

सकते हैं', किन्तु जब उसने मेरी यूरोपियन पोशाक देखी तब वह तुरन्त डर गया। टूटी-फूटी अंग्रेजो में सिटपिटाते हुए बोला—'हुजूर !' किन्तु मजे की बात तो यह थी कि उसको वर्दी पर नम्बर का कहीं पता भो न था। जब मैंने उससे उसका नम्बर पूछा तब उसने मुझे विश्वास दिलाया कि हम सब लोग गुप्त नम्बर रखते हैं। वह सिपाही उस दल का आदमी था जो उस विशेष कार्य के लिए तैयार किया गया था, और जो आयर्लैंड के 'ब्लेक एन्ड टान्स' दल से मिलता-जुलता था। इस दल के संगठन-कर्त्ता यह बात न जानते होंगे कि उनकी वर्दियों पर उनके नम्बर नहीं रहते।

इस दु:खभरी कहानी को समाप्त करते हुए हमें पेशावर और वहाँ के पठानों के विषय में कुछ अन्तिम शब्द और कहने हैं। पठान, जिनका नाम निर्दयता और हिंसा के लिए प्रसिद्ध है, मेमनों के समान सीधे-सादे और अहिंसा की प्रतिमूर्ति बन गये थे। खान अब्दुलगफ्फार खाँ ने अपने 'खुदाई खिदमतगारों' का ऐसे सुनियन्त्रित और सच्चे ढंग से संगठन किया था कि भारतवर्ष का जो भाग इस दिशा में अत्यन्त भयजनक था वह अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन के प्रयोग के लिए बहुत ही सुरक्षित केन्द्र बन गया था। सीमांतप्रान्त में की गई निर्दयताओं को बिलकुल अन्धकार में रखा गया था और श्री विट्ठलभाई पटेल की रिपोर्ट सरकार ने जब्त कर ली थी। एक महत्वपूर्ण घटना जो सोमाप्रान्त में हुई थी, वह यहां उल्लेखनोय है। उस प्रान्त में जो दमन हुआ उस सिलसिले में गढ़वालो सिपाहियों को, एक सभा में बैठे हुए लोगों पर, गोली चलाने की आज्ञा दी गई। उन्होंने शान्त और नि:शस्त्र भीड़ पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। इस कारण उन सिपाहियों पर फौजी अदालत में मुकदमा चलाया गया और उन्हें १० से लगाकर १४ साल तक की लम्बी-लम्बी सजायें दी गई। बोरसद में भी इसी प्रकार की एक रोमाञ्चकारी घटना हुई। वहाँ की महिलाओं ने बड़ी वीरता दिखाई। पुलिस प्रदर्शन को रोकने का निश्चय कर चुकी थी। स्त्रियों ने जलूसवालों को पानी पिलाने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों पर पानो के बड़े-बड़े बर्तन रख छोड़े थे। पुलिस ने पहले इन बर्तनों को ही तोड़ा। फिर स्त्रियों को बलपूर्वक तितर-बितर कर दिया। यह भी कहा जाता है कि जब स्त्रियाँ गिर गईं तब पुलिसवाले उनके सीनों को बूटों से कुचलते हुए चले गये। पुलिस के गुण्डेपन का कदाचित् यह अन्तिम कार्य था। क्योंकि २६ जनवरी को समझौते की बातचीत चलाने योग्य वातावरण उत्पन्न करने के लिए गांधीजी और उनके २६ साथियों को बिना शर्त छोड़ देने की विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी।

समझौते के असफल प्रयत्न

समझौते की बातचीत पहले से ही चल रही थी। २० जून १९३० को बम्बई में पं० मोतीलालजी से, जब वह बाहर थे, 'डेली हेरल्ड' के संवाददाता मि०

स्लोकोम्ब ने मुलाकात की थी और उनसे 'कांग्रेस किन शर्तों पर गोलमेज-परिषद् में शामिल हो सकती है ?'—इस विषय पर बातचीत की थी। इसके थोड़े दिन बाद मि० स्लोकोम्ब की सोची हुई शर्तों पर एक सभा में, जिसमें पण्डितजी, श्री जयकर और मि० स्लोकोम्ब खुद मौजूद थे, विचार हुआ और वे स्वीकार हुईं। सर सप्रू और जयकर मध्यस्थ हुए। पंडित मोतीलालजी समझौते की तजवीजें लेकर कांग्रेस के सभापति पं० जवाहरलाल नेहरू और गांधीजी के पास जाने को राजी हो गये। शर्त यह थी कि ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार दोनों निजी तौर पर यह आश्वासन देने को राजी हो जायँ कि, चाहे गोलमेज-परिषद् को कुछ भी सिफारिशें हों और चाहे पार्लमेन्ट हमारे प्रति कुछ भी रुख रखे वह स्वयं भारतवर्ष की पूर्ण उत्तरदायी-शासन की मांग का समर्थन करेंगे। शासन-परिवर्तन की खास-खास तर्मीमों और शर्तों को, जिन्हें गोलमेज-परिषद् रखे, उनमें गुंजाइश रहे। इस आधार पर मध्यस्थों ने वाइसराय से लिखा-पढ़ी की और गांधीजी, मोतीलालजी और जवाहरलालजी से जेल में मिलने की इजाजत मांगी। यह १३ जुलाई की बात है। तब तक मोतीलाल जी को जेल हो चुकी थी। वाइसराय ने अपने उत्तर में भारतवासियों को दिये जानेवाले स्वराज्य के प्रकार को और भी नरम कर दिया। उन्होंने वादा किया कि 'हम भारतवासियों को उनके गृह-प्रबन्ध का उतना अंश दिलाने में सहायता देंगे जितना कि उन विषयों के प्रबन्ध से मेल खाता हुआ दिखाया जायगा, जिनमें जिम्मेदारी लेने की स्थिति में वे नहीं हैं।'

उक्त दो कागजों को लेकर सप्रू और जयकर ने यरवदा जेल में २३ और २४ जुलाई को गांधीजी से मुलाकात की, जिसमें गाँधीजी ने उन्हें नैनी-जेल (इलाहाबाद) में पं० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू को देने के लिए एक नोट और पत्र दिया। गांधीजी चाहते थे कि गोलमेज परिषद् के वाद-विवाद को संरक्षणों-सम्बन्धी विचार तक ही सीमित रखा जाय। संक्रमण-काल के सिलसिले में स्वाधीनता का प्रश्न विचार-क्षेत्र से निकाल न दिया जाय। गोलमेज-परिषद् की रचना संतोषजनक हो, सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के रोक लेने की दशा में भी तबतक विदेशी वस्त्र और शराब का धरना जारी रहे, जबतक कि सरकार स्वयं शराब और विदेशी वस्त्र का निषेध कानून न कर दे और नमक का बनाया जाना बिना किसी भी तरह की सजा के जारी रखा जाय। इसके बाद उन्होंने राजनैतिक बन्दियों के छुटकारे का; जायदादों, जुर्मानों और जमानतों के वापस करने का; जिन अफसरों ने अपने पदों से त्यागपत्र दे दिये थे उनकी पुनर्नियुक्ति का और आर्डिनेन्सों को वापस लेने का जिक्र किया। उन्होंने सन्देशवाहकों को सावधान किया और कहा कि मैं एक कैदी हूँ, इसलिए मुझे राजनैतिक गति-विधियों पर राय देने का कोई हक नहीं है। ये मशविरे मेरे अपने हैं। मैं स्वराज्य की हरेक योजना

को अपनी ११ शर्तों से कसने का हक अपने लिए सुरक्षित रखता हूँ। गांधीजी से बातें करने के पश्चात् सन्देश-वाहकों ने २७ और २८ जुलाई को पं० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू से मुलाकात की। खूब बहस भी हुई। मोतीलालजी और जवाहरलालजी ने २८ जुलाई १९३० के पत्र में अपनी यह राय प्रकट की कि जबतक मुख्य-मुख्य विषयों पर एक समझौता न हो जाय तबतक किसी भी परिषद् में हमें कोई भी चीज न मिल सकेगी। ३१ जुलाई तथा १ और २ अगस्त को श्री जयकर गांधीजी से पुनः मिले, तब गांधीजी ने उनसे साफ-साफ कहा कि मुझे ऐसी कोई भी शासन-विधान-सम्बन्धी योजना स्वीकार न होगी जिसमें चाहे जब साम्राज्य से पृथक् होने की इजाजत न हो और जिससे भारतवर्ष को मेरी ग्यारह बातों के अनुसार कार्य करने का अधिकार और शक्ति न मिले।

थोड़े दिन बाद ही दोनों नेहरू और डा० सैयद महमूद यरवडा-जेल में ले जाये गये। वहां १४ अगस्त को एक सम्मेलन हुआ, जिसमें एक तरफ मध्यस्थ थे जयकर तथा सप्रू और दूसरी तरफ गांधीजी, दोनों नेहरू, वल्लभभाई पटेल, डा० सैयद महमूद, श्री जयरामदास दौलतराम और श्रीमती नायडू। इस सम्मेलन का परिणाम १५ अगस्त के एक पत्र में प्रकाशित हुआ जिसमें हस्ताक्षर-कर्ताओं ने, समझौतों की शर्तों को, दोहराया था। उसमें उन्होंने भारतवर्ष के पृथक् होने के हक को और अंग्रेजों के दावों और उनकी रियायतों की जांच के लिए एक कमिटी की नियुक्ति की मांग को भी शामिल कर दिया था। वाइसराय ने अपने २८ अगस्त के एक पत्र में लिखा कि मैं तो प्रान्तीय सरकारों से राजनैतिक बन्दियों को बड़ी संख्या में छोड़ने की प्रेरणा कर सकता हूँ, किन्तु मामलों पर उनके प्रकारों और योग्यता के अनुसार विचार करना उन्हीं का अधिकार होगा। दोनों नेहरूओं ने, जो नैनी-जेल में वापस ले आये गये थे, ३१ तारीख को गांधीजी को लिखा कि वाइसराय मुख्य प्रारम्भिक बातों पर विचार करना भी गैर-मुमकिन खयाल करते हैं। कुछ समय तक और भी पत्र-व्यवहार हुआ, किन्तु अन्त में हुआ यह कि शान्ति की बात-चीत असफल हो गई। सप्रू-जयकर की समझौते की बात-चीत के असफल हो जाने से भारतवर्ष के हितैषियों को निराशा नहीं हुई। इसके बाद मि० हॉरेस जी० अलक्जैण्डर के, जो सैली ओक कॉलेज में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अध्यापक थे, उत्साह-पूर्ण प्रयत्न शुरू हुए। वह वाइसराय से और जेल में गांधीजी से मिले। गांधीजी की साफ मांगों से वह प्रभावित हुए। उनमें कोई शब्दाडम्बर न था, केवल हिन्दुस्तान की गरीबी की सीधी-सादी समस्याओं का मुकाबला भर करने का प्रयत्न किया गया था। इस समय तक लॉर्ड अर्विन ने एक दर्जन के करीब आर्डिनेन्स निकाल दिये थे। वह आर्डिनेन्सों की बहुत आवश्यकता भी बताते जा रहे थे और भारतीय राष्ट्रीयता की थोड़ी कद्र भी कर रहे थे।

गोलमेज-परिषद्

१२ नवम्बर १९३० को गोलमेज परिषद् शुरू हुई। अपर-हाउस की शाही गैलरी में बड़ी शान के साथ उसका उद्घाटन हुआ था। कुल ८६ प्रतिनिधि थे, जिनमें १६ रियासतों से गये थे, ५७ ब्रिटिश भारत से और बाकी १३ इंग्लैंड के भिन्न-भिन्न दलों के मुखिया थे। गोलमेज-परिषद् बीच-बीच में सेण्ट जेम्स महल में भी हुई। शुरू के भाषणों में प्रायः सभी ने औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा की। पटियाला, बीकानेर, अलवर और भूपाल के नरेश-प्रतिनिधि संघ-राज्य के पक्ष में थे। प्रधान-मन्त्री ने शासन-विधान की सफलता के लिए जरूरी दो मुख्य शर्तें रखीं। पहली यह कि शासन-विधान पर अमल किया जाय और दूसरी यह कि उसका विकास होता रहे। उन्होंने इस पिछली बात की खूबियां दिखलाईं। उन्होंने कहा कि जो शासन-व्यवस्था विकासशील होगी उसे अगली पीढ़ी पवित्र विरासत समझेगी। इसके बाद भिन्न-भिन्न उपसमितियां बनाई गईं जिन्होंने रक्षा के अधिकार, सीमा, अल्प-संख्यकों, ब्रह्मा, सरकारी नौकरियां और प्रान्तीय तथा संघ-शासन के ढांचों की बाबत बाकायदा रिपोर्टें दीं। परिषद् अधिवेशन को जल्दी समाप्त करना चाहती थी, इसलिए १९ जनवरी को खुला अधिवेशन हुआ। इसके बाद प्रधानमन्त्री ने भारतवर्ष के भावी शासन-विधान के सम्बन्ध में ब्रिटिश-सरकार की नीति और उसके इरादों की घोषणा की और फिर परिषद् समाप्त हुई।

रिआयती प्रस्ताव

परिषद् को समाप्त हुए अभी एक सप्ताह भी न हुआ था कि भारतवर्ष की स्थिति में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गया, जिसके परिणामस्वरूप गांधीजी और उनके १९ साथियों को जेल से बिना शर्त रिहा कर दिया गया। पीछे ७ आदमियों की रिहाई से यह संख्या और भी बढ़ गई। उस समय वाइसराय ने जो वक्तव्य प्रकाशित कराया था वह भाषा और भाव दोनों में ही सुन्दर था। कांग्रेस-कार्य-समिति-द्वारा पास किये हुए एक विशेष प्रस्ताव को यहां देना आवश्यक समझते हैं, जिसपर 'रिआयती' (Privileged) लिखा हुआ था। यह 'रिआयती प्रस्ताव' कांग्रेस कार्यकारिणी ने २१ जनवरी १९३१ को शाम के ४ बजे स्वराज्य भवन इलाहाबाद में स्वीकार किया।

"अ० भा० राष्ट्रीय महासभा की यह कार्यसमिति उस 'गोलमेज परिषद्' की कार्रवाईयों को स्वीकार करने को तैयार नहीं है जो ब्रिटिश-पार्लमेंट के खास-खास सदस्यों, भारतीय नरेशों और ब्रिटिश-सरकार द्वारा अपने समर्थकों में से चुने हुए उन व्यक्तियों ने मिलकर की थी, जो भारतवासियों के किसी भी वर्ग के चुने हुए प्रतिनिधि नहीं थे। इस कार्य-समिति की राय में ब्रिटिश-सरकार ने

भारतीय-प्रतिनिधियों से सलाह लेने का प्रदर्शन करने के लिए जिन तरीकों का इस्तेमाल किया है, उनसे उसने स्वयं अपने-आपको निन्दनीय ठहराया है। वास्तव बात तो यह है कि वह, भारतवासियों के महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे वास्तविक नेताओं को जेलों में बंद करके, आर्डिनेंसों और सजाओं द्वारा और सविनय-अवज्ञा-द्वारा अपने देश की स्वाधीनता प्राप्त करने के देशभक्तिपूर्ण प्रयत्न में लगे हुए हजारों शांत, शस्त्रहीन, और मुकाबला न करनेवाले लोगों पर लाठी-प्रहार करके और गोलियां चलाकर, इस देश की सच्ची आवाज को रोकती रही है।

"इस कार्य-समिति ने १९ जनवरी १९३१ को मन्त्रि-मंडल की ओर से इंगलैंड के प्रधान मंत्री मि० रेम्जे मैकडानल्ड-द्वारा घोषित सरकार की नीति पर खूब विचार कर लिया है। इस समिति की राय में वह इतनी अस्पष्ट और सामान्य है कि उससे कांग्रेस की नीति में परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

"यह समिति लाहौर-कांग्रेस में स्वीकृत पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव पर दृढ़ है और यरवडा जेल से १५ अगस्त १९३० को लिखे हुए पत्र में म० गांधी; पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य लोगों ने जो विचार प्रकट किये हैं उनका समर्थन करती है।

"समिति देश से अपील करती है कि वह, २६ जनवरी को स्वाधीनता-दिवस, प्रकाशित किये हुए कार्यक्रम के अनुसार मनाये और यह सिद्ध कर दे कि वह निर्भय और आशा-पूर्ण होकर स्वाधीनता की लड़ाई जारी रखने का दृढ़ निश्चय कर चुका है।"

जब कांग्रेस-कार्य-समिति में यह प्रस्ताव आया तब राजेन्द्र बाबू कांग्रेस के काम-चलाऊ अध्यक्ष थे। वल्लभभाई तो ११ मास में तीसरी बार जेल गये हुए थे, इसलिए वही उनके स्थानापन्न थे। पं० मोतीलाल नेहरू जेल में सख्त बीमार हो जाने के कारण सजा की मियाद खतम होने से पहले ही छोड़ दिये गये थे। इसके थोड़े दिन बाद ही उनकी मृत्यु हुई थी। कार्य-समिति की बैठक का और उसके उद्देश्य का प्रेस द्वारा खुला एलान कर दिया गया था। इस अवसर पर कार्य-समिति के सदस्य इलाहाबाद में जमा हुए। कुछ वाद-विवाद के बाद यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। पं० मदनमोहन मालवीय यद्यपि रोगी थे, किन्तु फिर भी समिति की इस बैठक में उपस्थित हुए थे। सवाल यह था कि आया यह प्रस्ताव प्रकाशित किया जाय या नहीं? इस पर मतभेद था। अन्त में यह तय हुआ कि इसे अगले दिन तक प्रकाशित न किया जाय। किन्तु दूसरे दिन अचानक एक ऐसी घटना हो गई जिससे इसे प्रकाशित न करने का निश्चय ही ठीक सिद्ध हुआ। लन्दन से डा० सप्रू और शास्त्रीजी का एक तार मिला, जिसमें उन्होंने कार्य-समिति से उनके आने से पहले उनकी बातें बिना सुने प्रधान-मन्त्री के भाषण पर कोई निर्णय न करने

की प्रार्थना की थी। उस तार के अनुसार प्रस्ताव प्रकाशित नहीं किया गया; किन्तु जैसा कि ऐसे मामलों में प्रायः हुआ करता है, इसकी सूचना इसके पास होने के कुछ देर बाद ही सीधी सरकार के पास पहुँच गई थी। २५ जनवरी १९३१ को गवर्नर-जनरल ने एक वक्तव्य निकाला जिसके अनुसार कांग्रेस की कार्य-समिति के सदस्यों को आपस में और उन लोगों के साथ जो १ जनवरी १९३० से समिति के सदस्य के तौर पर काम कर रहे थे, बातचीत करने की पूरी-पूरी छूट दी गई और वे जेल से मुक्त कर दिये गये।

: १४ :

गांधी-अर्विन-समझौता : १९३१

मोतीलाल नेहरू का स्वर्गवास

कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई २६ जनवरी की आधीरात से पहले होने वाली थी। इस बात की भी हिदायत थी कि उनकी पत्नियां यदि जेल में हों तो उन्हें भी रिहा कर दिया जाय। बीच-बीच में जो लोग किसी के बजाय कार्य-समिति के सदस्य बने थे उनकी रिहाई की भी आज्ञा थी, इसलिए इस प्रकार रिहा होनेवालों की कुल संख्या २६ तक पहुँच गई। गांधीजी, छूटते ही, पं० मोती-लाल नेहरू से मिलने के लिए इलाहाबाद चल दिये, जहां वह बीमार पड़े हुए थे। कार्य-समिति के सब सदस्यों को भी बुलाया गया। वहीं स्वराज्य-भवन में, ३१ जनवरी और १ फरवरी १९३१ को, कार्य-समिति की बैठक हुई, जिसमें एक प्रस्ताव पास हुआ। प्रस्ताव में कहा गया कि जबतक स्पष्ट रूप से सविनय अवज्ञा आन्दोलन को बन्द करने की आज्ञा न निकाली जाय तबतक आन्दोलन बराबर जारी रहेगा। साथ ही विदेशी कपड़े और शराब तथा अन्य नशीली चीजों की दूकानों पर धरना देना जबतक बिलकुल शान्ति-पूर्ण रहे और जबतक सर्वसाधारण के कार्य में उससे कोई रुकावट न पड़ती हो तबतक वह नागरिकों के साधारण अधिकार के अन्तर्गत है।

कार्य-समिति के असली और स्थानापन्न सदस्य ३ फरवरी तक इलाहाबाद ही रहे। पण्डित मोतीलाल की हालत दिन-ब-दिन खराब होती जाती थी। इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि उन्हें 'एक्सरे-परीक्षा' के लिए लखनऊ ले जाया जाय। तबतक करीब-करीब सभी लोग थोड़े दिनों के लिए वहां से चले गये, पर गांधीजी सहित कुछ लोग वहीं रहे। गांधीजी तो मोतीलालजी के साथ लखनऊ

भी गये; जहां मौत से बड़ी कश-मकश के बाद इन अन्तिम शब्दों के साथ मोतीलाल जी सदा के लिए हमसे बिदा हो गये—"हिन्दुस्तान की किस्मत का फैसला स्वराज्य-भवन में ही कीजिये। मेरी मौजूदगी में ही फैसला कर लो। मेरी मातृ-भूमि के भाग्य-निर्णय के आखिरी सम्मानपूर्ण समझौते में मुझे भी साझीदार होने दो। अगर मुझे मरना ही है, तो स्वतंत्र भारत की गोद में ही मुझे मरने दो। मुझे अपनी आखिरी नींद गुलाम देश में नहीं, बल्कि आजाद देश में ही लेने दो।" इस प्रकार पंडितजी की महान् आत्मा हमसे जुदा हो गई। जब उनकी दूरन्देशी और तत्काल बुद्धि से राष्ट्र को अपने सामने उपस्थित पेचीदा समस्याओं को स्पष्ट रूप से सुलझाने में पर्याप्त सहायता मिलने की आवश्यकता थी तब उनका हमारे बीच से उठ जाना राष्ट्र की ऐसी भारी क्षति थी कि वस्तुतः उसकी पूर्ति नहीं हो सकती थी। उनकी मृत्यु प८, ७ फरवरी को, गांधीजी ने इलाहाबाद से यह संदेश दिया—"मोतीलालजी की मृत्यु हरेक देशभक्त के लिए ईर्ष्यास्पद होनी चाहिए। क्योंकि अपना सब-कुछ न्योछावर करके वह मरे हैं और अन्त समय तक देश का ही ध्यान करते रहे हैं। इस वीर की मृत्यु से हमारे अन्दर भी बलिदान की भावना आनी चाहिए। हम में से हरेक को चाहिए कि जिस स्वतन्त्रता के लिए वह उत्सुक थे और जो अब हमारे बहुत नजदीक आ पहुंची है, उसको प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्व नहीं, तो कम-से-कम इतना बलिदान तो करें ही कि जिससे वह हमें प्राप्त हो जाय।"

दमन का दौर-दौरा

राजनैतिक परिस्थिति में इस समय जो बात वस्तुतः शोकजनक थी, और जिसके लिए गांधीजी खास तौर पर चिन्तित थे, वह यह थी कि इंग्लैण्ड में तो खूब चिल्ला-चिल्ला कर हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता देने की बात कही जा रही थी, पर उसके कारण हिन्दुस्तानी के अधिकारियों के रुख में कोई परिवर्तन नजर नहीं आ रहा था। चारों ओर दमन-चक्र अपने भयंकर रूप में जारी था। ठीक इसी समय गोलमेज परिषद् में गये हुए प्रतिनिधि लौटकर हिन्दुस्तान आये और आते ही, ६ फरवरी १९३१ को, उन्होंने कांग्रेस से निम्न प्रकार अपील की :—

"गोलमेज-परिषद् की योजना अभी तो खाली एक खाका है, तफसील की बातें तो जिनमें से कुछ बहुत सार की और महत्वपूर्ण हैं, अभी तय होनी हैं। हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि अब कांग्रेस तथा अन्य दलों के नेता आगे बढ़कर इस योजना की पूर्ति के लिए अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान करें। हमें आशा है कि वातावरण को ऐसा शांत कर दिया जाय जिसमें आवश्यक विषयों पर भलीभांति विचार किया जा सकें और राजनैतिक कैदियों की रिहाई हो सके।"

लेकिन इसके बाद भी सजायें दी जाती रहीं। फरवरी १९३१ में कानपुर शहर में पिकेटिंग के अपराध में १३६ गिरफ्तारियाँ हुईं। साथ ही जेलों में भी क्या खाना-कपड़ा और क्या दवादारू—कैदियों के साथ वैसा ही खराब व्यवहार होता रहा जैसा पहले होता था। उन्हें पहले की ही तरह सजा भी दी जाती रही। १३ फरवरी को इलाहाबाद में कार्य-समिति की बाजाब्ता बैठक हुई। इस समय तक डा० सप्रू और शास्त्रीजी हिन्दुस्तान आ गये थे। गांधीजी और कार्य-समिति से मिलने के लिए वे दौड़े हुए इलाहाबाद गये। कार्य-समिति के साथ उनकी लम्बी बहस हुई, जिसमें कार्य-समिति के सदस्यों ने उनसे कड़ी-से-कड़ी जिरह की। यहां तक कि कभी-कभी तो कार्य-समिति के सदस्य उनके प्रति मृदुता तक न रख पाते थे; क्योंकि शास्त्री जी इंग्लैण्ड में कुछ ऐसी बातें कह गये थे जिससे सर्वसाधारण में उत्तेजना ही नहीं फैल रही थी, बल्कि उनके प्रति रोष भी बढ़ रहा था।

वाइसराय से भेंट

गांधीजी ने लार्ड अर्विन को एक पत्र लिखा, जिसमें देश में पुलिस-द्वारा की जा रही ज्यादतियों, खास कर २१ जनवरी को बोरसद में स्त्रियों पर किये जानेवाले हमले की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए उनसे पुलिस के कारनामों की जांच कराने के लिए कहा। लेकिन इस मांग को ठुकरा दिया गया। तब गांधीजी ने लार्ड अर्विन के पास मुलाकात के लिए एक संक्षिप्त पत्र लिखा जिसमें उन्होंने उनसे बहैसियत एक मनुष्य बात-चीत करने की इच्छा प्रकट की। यह पत्र १४ तारीख को भेजा गया और १६ तारीख के बड़े सबेरे तार-द्वारा इसका उत्तर आ गया। १६ तारीख को ही गांधीजी दिल्ली के लिए रवाना हो गये। पुरानी कार्य-समिति के अन्य सदस्य भी शीघ्र ही दिल्ली पहुंच गये। कार्य-समिति ने एक प्रस्ताव द्वारा गांधीजी को कांग्रेस की ओर से सुलह-सम्बन्धी सब अधिकार दे दिये थे। गांधीजी ने १७ फरवरी को वाइसराय से पहली बार मुलाकात की और कोई चार घण्टे तक वाइसराय से उनकी बातें होती रहीं। तीन दिन तक लगातार यह बात-चीत चलती रही।

इस बात-चीत के दौरान में गांधीजी ने पुलिस-द्वारा की गई ज्यादतियों की जांच और पिकेटिंग के अधिकार पर जोर दिया। पिकेटिंग का अधिकार और पुलिस की जांच की बातें ऐसी विवादास्पद थीं जिनपर तुरन्त कोई समझौता होने की सम्भावना नहीं थी। १९ फरवरी को वाइसराय-भवन से जो सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई उसमें कहा गया कि बात-चीत के दौरान में कई ऐसी बातें उठी हैं जिनके बारे में विचार किया जा रहा है। यह बहुत सम्भव है कि उसके आगे बात-चीत होने में कई दिन लग जायं।

पहले दिन की बात-चीत से एक प्रकार की निश्चित आशा बंधती थी। दूसरे

दिन यह स्पष्ट हो गया कि गांधीजी की स्थिति को वाइसराय समझते तो हैं, लेकिन उनके अनुसार करने को तैयार नहीं हैं। चूंकि इंग्लैण्ड के निर्णय की प्रतीक्षा थी, इसलिए बात-चीत कुछ समय के लिए रुकने की सम्भावना पैदा हो गई, स्वयं वाइसराय ने गांधीजी को दुबारा शनिवार २१ तारीख को बुलवाने के लिए कहा। लेकिन गुरुवार १९ तारीख को एकाएक बुलावा आ पहुंचा। इधर सरकार और कांग्रेस के बीच चलने वाली बातचीत के दौरान में उठने वाले विविध-विषयों के विचारार्थ १२ व्यक्तियों का एक छोटा सम्मेलन करने का विचार किया गया, जिसकी संख्या बाद में बढ़कर तीस हो गई। वाइसराय लन्दन से इस विषय में तार आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, इसलिए इस सम्मेलन को २४ ता० तक ठहरना पड़ा। बहुत प्रतीक्षा के बाद आखिर २६ ता० को वाइसराय का बुलावा आ ही पहुंचा। २६ ता० को गांधीजी वाइसराय के पास गये और साढ़े-तीन घण्टे तक बहुत खुलकर, साफ-साफ और मित्रता-पूर्वक बातचीत हुई। २८ ता० को, वाइसराय की इच्छानुसार, गांधीजी ने पिकेटिंग के बारे में उन्हें अपना मन्तव्य भेजा और वाइसराय ने प्रस्तावित समझौते के बारे में अपने कुछ विचार गांधीजी को लिख भेजे। समझौते के सिलसिले में उठी प्रत्येक बात पर वाइसराय ने गांधीजी के निश्चित विचार जानने चाहे और इसके लिए १ मार्च के दिन दोपहर के २।। बजे उन्हें वाइसराय-भवन में मिलने के लिए बुलाया। १ मार्च को हालत एकदम निराशाजनक मालूम पड़ने लगी। निश्चित समय पर गांधीजी वाइसराय से मिले और सायंकाल ६ बजे वाइसराय-भवन से वापस आ गये। इतने थोड़े समय में उनके लौट आने से एकदम निराशा छा गई, लेकिन शीघ्र ही समझौते की फिर से आशा बंधने लगी। १ मार्च के तीसरे पहर जब गांधीजी वाइसराय से मिले तब वाइसराय का रुख बिलकुल दोस्ताना था। होम-सेक्रेटरी मि० इमर्सन भी बड़ी अच्छी तरह पेश आये। वाइसराय ने गांधीजी से कहा कि मि० इमर्सन के सलाह-मशविरे से वह पिकेटिंग के बारे में कोई हल सोचें।

आशाजनक परिस्थिति

इतने समय के बाद अब सम्भवतः हम यह कह सकते हैं कि यदि अधिकारों की भावना के ऊपर कर्तव्य-भाव ने विजय न पाई होती तो शायद समझौता बिलकुल ही न हुआ होता। पिकेटिंग के बारे में बहस-तलब एक बात यह थी कि सारे "विदेशी माल के खिलाफ़ की जाय या ब्रिटिश माल के ?" दूसरी बात उसके लिए ग्रहण किये जानेवाले साधनों के बारे में थी। सामान्य वाद-विवाद के बाद लॉर्ड अर्विन ने गांधीजी और मि० इमर्सन से आपस में मिलकर कोई हल निकालने के लिए कहा और वह निकाल भी लिया गया।

इसके बाद ताजीरी पुलिस के बारे में बातचीत हुई और वह सन्तोषजनक

रही। गांधीजी ने नजरबंदों का भी प्रश्न उठाया और वाइसराय ने निश्चित रूप से यह आश्वासन दिया कि सामूहिक रूप में नहीं, पर वैयक्तिक रूप में वह उनके मामलों की तहकीकात अवश्य करेंगे। जब्त सम्पत्ति के बारे में तय हुआ कि उसमें से जो बिक चुकी है वह नहीं लौटाई जा सकती। गांधीजी से कहा गया कि इसके लिए वह प्रान्तीय सरकारों से मिलें, क्योंकि भारत-सरकार प्रान्तीय सरकारों से सीधी बातचीत चलाने के लिए तैयार नहीं है। मगर जब्त जमीनों के बारे में बम्बई-सरकार के नाम एक सिफारिशी-चिट्ठी गांधीजी को देने का वाइसराय ने वादा किया। नमक के बारे में तो स्थिति अच्छी ही रही। जिन जगहों पर नमक अपने-आप तैयार होता है वहां से आजादी से नमक लेने-देने का वाइसराय ने आश्वासन दिया। यह एक ऐसी सुविधा थी जो गांधीजी के लिए बड़ी संतोष-जनक हुई। पुलिस की ज्यादतियों के प्रश्न पर दोनों ही अड़ गये। गांधीजी ने इस सम्बन्ध में अपने को कार्य-समिति पर ही छोड़ दिया। वाइसराय से बातचीत करके वह १ बजे वापस आये और रात के २। बजे तक कार्य-समिति के सदस्यों तथा अन्य मित्रों के सामने भाषण देते रहे। वाइसराय और मि० इमर्सन दोनों ही अच्छी तरह पेश आये थे। पिकेटिंग के बारे में उसी रात एक हल निकल आया, लेकिन उस पर और विचार करने के लिए ३ मार्च का दिन तय रहा, क्योंकि २ मार्च को सोमवार पड़ता था, जो गांधीजी का मौन-दिवस था।

समझौते की जो आशा थी, ३ मार्च को उसमें एक और बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो गई। बारडोली के किसानों की जमीन लौटाने के मामले पर पहले भी विचार हुआ था, अब फिर उस मामले को उठाया गया। वाइसराय की भी अपनी कठिनाइयां थीं। जब बारडोली में करबन्दी-आन्दोलन अपने पूरे जोर पर था तब उन्होंने बम्बई-सरकार को एक पत्र में लिखा था, कि चाहे कुछ हो, मैं किसानों को जब्त जमीनें लौटाने के लिए कभी नहीं कहूंगा। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि अब उससे बिलकुल उलटी बात लिखने के लिए वह तैयार नहीं थे। उन्होंने चाहा कि गांधीजी सर पुरुषोत्तमदास और सर इब्राहीम रहीमतुल्ला से इसके लिए बीच में पड़ने को कहें, और आशा प्रकट की कि सब ठीक हो जायगा। गांधीजी ने चाहा कि वाइसराय स्वयं ऐसा करें। आखिरकार वाइसराय बम्बई सरकार के नाम ऐसा पत्र लिखने के लिए तैयार हुए कि जमीनें प्राप्त कराने के मामले में पूर्वोक्त दोनों महानुभावों की मदद की जाय। इस बातचीत के दौरान में बम्बई सरकार के रेवेन्यु-मेम्बर भी दिल्ली पहुंचे। वह तत्सम्बधी बातचीत के लिये बुलाये गये।

समझौता और उसकी विज्ञप्ति

३ तारीख की रात के २॥ बजे (अर्थात् ४ मार्च १९३१ के बड़े सबेरे) गांधी जी वाइसराय-भवन से वापस लौटे। सब लोग उनकी प्रतीक्षा में जाग रहे थे।

गांधीजी बड़े उत्साह में थे। अपने स्वभाव के अनुसार गांधीजी ने उस रात की सब घटनायें कार्य-समिति के सदस्यों को सुनाईं। कार्य-समिति के सदस्यों में शाम तक पिकेटिंग के सम्बन्ध में सोचे गये हल पर खूब गरमागरम वाद-विवाद हुआ, क्योंकि उसका पहले-पहल जो मसविदा बनाया गया उसमें मुसलमान दुकानदारों के यहां पिकेटिंग न करने की धारा रखी गई थी। सरकार उसे रखना चाहती थी, लेकिन अन्त में उसे छोड़ ही दिया गया। समझौते की हरेक मद में थोड़ी-बहुत खामी थी। वल्लभभाई समझौते की ज़मीन सम्बन्धी अंश से सहमत नहीं थे। जवाहर-लाल को विधान-सम्बन्धी अंश नापसन्द था। कैदियों वाली बात पर तो किसी को भी सन्तोष न था। लेकिन यदि प्रत्येक अंश ऐसा होता कि उसपर प्रत्येक को सन्तोष हो जाता तो फिर वह समझौता ही कहां रहता, वह तो कांग्रेस की जीत ही न होती! जब कांग्रेस समझौता या राजीनामा कर रही थी तब ऐसा नहीं हो सकता कि उसी-उसकी बात रहे। गांधीजी ने कार्य-समिति के प्रत्येक सदस्य से पूछा कि क्या कैदियों के प्रश्न पर, पिकेटिंग के मामले पर, जमीनों के सवाल पर, अन्य किसी बात पर या प्रत्येक बात पर, या आप कहें तो समूचे समझौते पर मैं सुलह की बातचीत तोड़ दूं? समझौते की आखिरी धारा पर, जिसमें सरकार ने अपने लिए यह अधिकार रखा था कि "यदि कांग्रेस इस समझौते की बातों पर पूरी तरह अमल न कर सकी तो उसे (सरकार को) ऐसा कार्य करने का हक रहेगा, जो, उसके परिणाम स्वरूप, सर्वसाधारण तथा व्यक्तियों की रक्षा और कानून-व्यवस्था के उपयुक्त अमल के लिए आवश्यक हो," यह ऐतराज उठा कि यह हक दोनों पक्षों के बजाय एक ही के लिए क्यों रखा जाय? दूसरे शब्दों में, ऐतराज करनेवालों का कहना था कि एक धारा इसमें और जोड़ी जाय, कि यदि सरकार इस समझौते की बातों पर पूरी तरह अमल न कर सके तो कांग्रेस सविनय-अवज्ञा की घोषणा कर सकेगी। लेकिन यह समझना कोई बहुत मुश्किल बात नहीं थी कि कांग्रेस ने सरकार से स्वीकृति लेकर सविनय-अवज्ञा की शुरुआत नहीं की थी, इसी तरह उसकी फिर से शुरुआत करने के लिए भी उसे स्वीकृति लेने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

इस प्रकार १५ दिन तक सरकार और कांग्रेस के बीच खूब गहरा वाद-विवाद हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप ५ मार्च १९३१ को यह समझौता हुआ। इसकी मुख्य-मुख्य बातें यहां दी जाती हैं:—

"सर्व-साधारण की जानकारी के लिए कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल का निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया जाता है:—

(१) विधान-सम्बन्धी प्रश्न पर सम्राट्-सरकार की अनुमति से यह तय हुआ कि हिन्दुस्तान के वैध-शासन की उसी योजना पर आगे विचार किया जायगा,

जिसपर गोलमेज-परिषद् में पहले विचार हो चुका है। वहां जो योजना बनी थी, संघ-शासन उसका एक अनिवार्य अंग है।

(२) १९ जनवरी १९३१ के प्रधान-मन्त्री के वक्तव्य के अनुसार, ऐसी कार्रवाई की जायगी जिससे शासन-सुधारों की योजना पर आगे जो विचार हो उसमें कांग्रेस के प्रतिनिधि भी भाग ले सकें।

(३) सविनय-अवज्ञा अमली रूप में बन्द कर दी जायगी और (उसके बदले में) सरकार अपनी ओर से कुछ कार्रवाई करेगी। सविनय अवज्ञा-आंदोलन को अमली तौर पर बन्द करने का मतलब है उन सब हलचलों को बन्द कर देना, जो कि किसी भी तरह उसको बल पहुंचानेवाली हों।

(४) विदेशी कपड़ों के बहिष्कार के संबंध में यह बात तय पाई है कि सविनय-अवज्ञा-आंदोलन बन्द करने में ब्रिटिश माल के बहिष्कार को राजनैतिक शस्त्र के तौर पर काम में लाना निश्चित रूप से बन्द कर देना भी शामिल है; और इसलिए आंदोलन के समय में जिन्होंने ब्रिटिश माल की खरीद-फरोख्त बन्द कर दी थी वे यदि अपना निश्चय बदलना चाहें तो अबाध-रूप से उन्हें ऐसा करने दिया जायगा।

(५) विदेशी माल के स्थान पर भारतीय माल का व्यवहार करने और शराब आदि नशीली चीजों के व्यवहार को रोकने के लिए काम में लाये जानेवाले उपायों के सम्बन्ध में तय हुआ है कि ऐसे उपाय काम में नहीं लाये जायँगे जिनसे कानून की मर्यादा भंग होती हो।

(६) सविनय-अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले में जो कानून (आर्डिनेन्स) जारी किये गये हैं वे वापस ले लिये जायंगे।

(७) १९०८ के क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट के मातहत संस्थाओं को गैर-कानूनी करार देने के हुक्म वापस ले लिये जायंगे, बशर्ते कि वे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में जारी किये गये हों।

(८) जो मुकदमे चल रहे हैं उन्हें वापस ले लिया जायगा, यदि वे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले में चलाये गये होंगे और ऐसे अपराधों से सम्बन्धित होंगे जिनमें हिंसा सिर्फ नाम के लिए होगी या ऐसी हिंसा को प्रोत्साहन देने की बात हो। यही सिद्धान्त जाब्ता-फौजदारी की जमानती धाराओं के मातहत चलने वाले मुकदमों पर लागू होगी। सैनिकों या पुलिस वालों पर चलाने वाले हुक्म-उदूली के मुकदमे, अगर कोई हों, इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नहीं आयेंगे।

(९) वे कैदी छोड़े जायंगे, जो सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में ऐसे अपराधों के लिए कैद भोग रहे होंगे जिनमें नाम-मात्र की हिंसा को छोड़ कर और किसी प्रकार की हिंसा या हिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो।

(१०) जुर्माने जो वसूल नहीं हुए हैं, माफ कर दिये जायंगे। इसी प्रकार

जाब्ता-फौजदारी की जमानती धाराओं के मातहत निकले हुए जमानत-जब्ती के हुक्म के बावजूद जो जमानतें वसूल नहीं हुई होंगी उन्हें भी माफ कर दिया जायगा। जुर्माने या जमानतों की जो रकमें वसूल हो चुकी हैं, चाहे वे किसी भी कानून के मुताबिक हों, उन्हें वापस नहीं किया जायगा।

(११) सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले में किसी खास स्थान के बाशिन्दों के खर्चे पर जो अतिरिक्त-पुलिस तैनात की गई होगी उसे प्रान्तीय सरकारों के निश्चय पर उठा लिया जायगा। इसके लिए वसूल की गई रकम, यदि असली खर्चे से ज्यादा हो तो भी लौटायी नहीं जायगी, लेकिन जो रकम वसूल नहीं हुई है वह माफ कर दी जायगी।

(१२) वह चल-सम्पत्ति जो गैर-कानूनी नहीं है और जो सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में आर्डिनेन्सों या फौजदारी-कानून की धाराओं के मातहत अधिकृत की गई है, यदि अभी तक सरकार के कब्जे में होगी तो लौटा दी जायगी। जो चल-सम्पत्ति बेच दी गई होगी या सरकार-द्वारा अंतिम रूप से जिसका भुगतान कर दिया गया होगा, उसके लिए हरजाना नहीं दिया जायगा और न उसकी बिक्री से प्राप्त रकम ही लौटाई जायगी।

(१३) जिस अचल-सम्पत्ति पर १९३० के नवें आर्डिनेन्स के मातहत कब्जा किया गया है उसे आर्डिनेन्स के अनुसार लौटा दिया जायगा। जहां अचल-सम्पत्ति बेच दी गई होगी, जहांतक सरकार से सम्बन्ध है, वह सौदा अन्तिम समझा जायगा।

(१४) जिन लोगों ने सरकारी नौकरियों से इस्तीफा दिया है उनके रिक्त-स्थानों की जहां स्थायी-रूप से पूर्ति हो चुकी होगी वहां सरकार पुराने (इस्तीफा देनेवाले) व्यक्ति को पुनः नियुक्त नहीं कर सकेगी। इस्तीफा देनेवाले अन्य लोगों के मामलों पर उनके गुण-दोष की दृष्टि से प्रांतीय सरकारें विचार करेंगी।

(१५) नमक-व्यवस्था सम्बन्धी मौजूदा कानून के भंग को गवारा करने के लिए सरकार तैयार नहीं है, न देश की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए नमक-कानून में ही कोई खास तब्दीली की जा सकती है।

(१६) यदि कांग्रेस इस समझौते की बातों पर पूरी तरह अमल न कर सकी तो, उस हालत में, सरकार वह सब कार्रवाई करेगी जो, उसके परिणाम-स्वरूप, सर्व-साधारण तथा व्यक्तियों के संरक्षण एवं कानून और व्यवस्था के उपयुक्त परिपालन के लिए आवश्यक होगी।"

गांधीजी का वक्तव्य

समझौते से निबटते ही गांधीजी ने, ५ मार्च की शाम को अमरीकन, अंग्रेज व भारतीय पत्रकारों और प्रेसमैनों के एक समूह के सामने एक युगान्तकारी वक्तव्य दिया। पूरा वक्तव्य लिखाने में गांधीजी को कुल डेढ़ घण्टा लगा। वक्तव्य गांधीजी ने

मुंह-जबानी ही लिखाया था और उसमें कहीं भी एक-बार भी रद्दो-बदल नहीं किया। इस वक्तव्य में उन्होंने लॉर्ड अर्विन की उचित प्रशंसा की और पुलिस, सिविल-सर्विस तथा क्रांतिकारियों से उपयुक्त अपील की। उन्होंने कहा कि इस समझौते ने वास्तव में रास्ता खोल दिया है। इस प्रकार के समझौते का स्थायी होना स्वाभाविक ही है। यह जो सन्धि हुई है वह कई बातों का पूर्ति होने पर निर्भर है। कांग्रेस गोलमेज-परिषद् में भाग ले सके, इसके पहले कई बातों का पूरा हो जाना आवश्यक है। कांग्रेस का ध्येय तो पूर्ण स्वराज्य है, जिसको अंग्रेजी में अनुवाद करके 'पूर्ण स्वाधीनता' कहा जाता है। अन्य राष्ट्रों की भांति भारत का यह जन्म-सिद्ध अधिकार है और भारत इससे कम पर सन्तुष्ट नहीं हो सकता। संघ-शासन (फेडरेशन) मृगतृष्णा भी हो सकता है, अथवा एक ऐसे सजीव राष्ट्र का रूप धारण कर सकता है जिसके दोनों हाथ इस प्रकार कार्य करते हों कि उनसे उसका शरीर मजबूत बन जाय। इसी प्रकार 'उत्तरदायित्व' जो दूसरा पाया है वह या तो बिल्कुल छाया के समान निःसार है या बड़ा ऊंचा, विशाल अथवा न झुकने वाले बरगद के पेड़ के सदृश हो सकता है। एक दल इन तीन पायों का एक मतलब निकाल सकता है और दूसरा दल दूसरा। इस धारा के अनुसार दोनों दल अपनी-अपनी दिशा में काम कर सकते हैं। कांग्रेस ने परिषद् की कार्रवाई में भाग लेने की जो रजामन्दी दिखाई है वह इसी कारण कि वह संघ-शासन, उत्तरदायित्व, संरक्षण, प्रतिबन्ध अथवा उन्हें जिन नामों से पुकारा जाता हो उनको ऐसा रूप देना चाहती हैं कि उनसे देश की वास्तविक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक उन्नति हो। यदि परिषद् ने कांग्रेस की स्थिति को ठीक-ठीक समझकर मान लिया, तो मेरा दावा है, कि इसका परिणाम 'पूर्ण-स्वाधीनता' होगा। लेकिन मैं जानता हूं कि यह मार्ग बहुत कठिन और थका देनेवाला है। मार्ग में बहुत-सी चट्टानें हैं और बहुत से गड्ढे हैं। लेकिन यदि कांग्रेस-वादी इस नये काम को विश्वास एवं उत्साह के साथ करेंगे तो मुझे इसके परिणाम के बारे में कोई भी सन्देह नहीं रह सकता। अतः यह उन्हीं के हाथ में है कि वे इस नये अवसर का, जो उन्हें मिला है, अच्छे-से-अच्छा उपयोग करें।

अपने वक्तव्य में गांधीजी ने अंग्रेजों से भी अपील की। उन्होंने कहा कि यदि भारत को परिषदों तथा विचार-विमर्श द्वारा ही अपने निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करना है तो अंग्रेजों की सद्भावना एवं सक्रिय-सहायता की बड़ी आवश्यकता होगी। मुझे यह बात कहनी पड़ेगी कि लंदन में पहली परिषद् में जिन-जिन बातों को उन्होंने मान लिया है वे तो उस ध्येय की आधी भी नहीं हैं जिस ध्येय तक भारत पहुंचना चाहता है। यदि अंग्रेज वास्तव में सच्ची मदद करना चाहते हैं तो उन्हें भारत को भी उसी स्वतन्त्रता की मस्ती का अनुभव करा देना पड़ेगा, जिसको वे स्वयं मरते दम तक नहीं छोड़ सकते। उन्हें इस बात के लिए

तैयार होना पड़ेगा कि वे भारत को गलतियां करने के लिए छोड़ दें। यदि गलती करने की, यहां तक कि पाप तक करने की, स्वतन्त्रता न हुई तो ऐसी स्वतन्त्रता किस काम की? यदि परम-पिता परमात्मा ने अपने छोटे-से-छोटे जीव को गलती करने की स्वतन्त्रता दी है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि वे कैसे मनुष्य-जीव होंगे जो, चाहे वे कितने ही अनुभवी और योग्य क्यों न हों, दूसरी जाति के मनुष्यों के इस अमूल्य अधिकार को छीनने में खुशी मना सकते हैं?

अमरीकन-राजतन्त्र तथा संसार के अन्य राष्ट्रों की जनता से अपील करते हुए उन्होंने कहा—"मैं एक अपील करना चाहता हूँ। मुझे मालूम है कि इस युद्ध ने जिसका आधार सत्य और अहिंसा है—उनके मन पर बड़ा असर डाला है और उनमें उत्सुकता पैदा की है। उत्सुकता ही नहीं; वे इससे भी आगे बढ़े हैं। उन्होंने और खासकर अमरीका ने सहानुभूति के द्वारा हमारी प्रत्यक्ष मदद की है। कांग्रेस की ओर से और अपनी ओर से मैं कहता हूँ कि इस सहानुभूति के लिए हम उनके बहुत आभारी हैं। मुझे आशा है कि कांग्रेस अब जिस मुश्किल काम में पड़नेवाली है उसमें हमें न केवल उनकी यह वर्तमान सहानुभूति ही प्राप्त रहेगी बल्कि वह दिन-प्रति-दिन बढ़ती भी जायगी। मैं बड़ी नम्रता से यह कहने की हिम्मत करता हूं कि यदि सत्य एवं अहिंसा के द्वारा भारत अपने ध्येय तक पहुंच गया तो जिस विश्व-शांति के लिए संसार के सब राष्ट्र तड़प रहे हैं, उसके हित में बड़ा भारी काम कर दिखायेगा और इन राष्ट्रों ने उसे जी खोलकर जो सहायता दी है, उसका कुछ थोड़ा-सा बदला भी चुक जायगा।"

गांधीजी ने आखिरी अपील पुलिस तथा सिविल-सर्विस अर्थात् सरकारी अधिकारियों से की। उन्होंने कहा—"समझौते में एक वाक्य है, जिसमें जाहिर किया गया है कि मैंने पुलिस की कुछ ज्यादतियों की जांच की मांग की थी। इस जांच की मांग को छोड़ देने का कारण भी समझौते में दिया गया है। महकमा पुलिस द्वारा शासन की जो मशीन चलती रहती है उसका सिविल सर्विस एक अभिन्न अंग है। यदि वे वास्तव में यह महसूस करते हैं कि भारत शीघ्र ही अपने घर का मालिक बननेवाला है और उन्हें बफादारी तथा ईमानदारी से भारत सेवकों की तरह काम करना है, तो उन्हें यह शोभा देता है कि वे अभी से लोगों को अनुभव करा दें कि सिविल-सर्विस तथा पुलिसवाले उनके सेवक हैं।"

जेल में पड़े बन्दियों के बारे में गांधीजी ने कहा—व्यक्तिगत रूप से उन लोगों के जो हिंसा करने के दोषी हैं, जेल भेजे जाने की प्रणाली पर मेरा विश्वास नहीं है। मेरा विश्वास है कि वे लोग महसूस करेंगे कि मैं न्यायपूर्वक उनकी रिहाई के लिए नहीं कह सकता था। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मुझे अथवा कार्य-समिति के सदस्यों को उनका खयाल ही नहीं है।

अन्त में गांधीजी ने कहा कि कांग्रेस ने जान-बूझकर, चाहे अस्थायी तौर पर

ही सही, सहयोग का मार्ग ग्रहण किया है। यदि कांग्रेसवादी ईमानदारी से समझौते की उन शर्तों को जो उनपर लागू होती हैं, पूरी-पूरी तरह से पालन करें तो कांग्रेस का गौरव बहुत बढ़ जायगा और सरकार पर इस बात का सिक्का बैठ जायगा कि जहा कांग्रेस ने, अवज्ञा-आन्दोलन चलाने की योग्यता सिद्ध कर दी है वहां उसमें शान्ति बनाये रखने की भी क्षमता है। मेरा खयाल है कि सम्मानप्रद समझौता करने के प्रयत्न में मैंने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। मैंने लार्ड अर्विन को अपना वचन दे दिया है कि मैं समझौते की शर्तों को, जहांतक उनका कांग्रेस से सम्बन्ध है, पालन कराने में जी-जान से जुट जाऊंगा। मैंने समझौते का प्रयत्न इसलिए नहीं किया कि पहला अवसर मिलते ही मैं उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालूं, बल्कि इसलिए कि अभी जो अस्थायी है उसे बिलकुल पक्का करने में कोई भी कसर न छोड़ूं और उसे उस ध्येय तक पहुंचाने वाला पेशवा समझूं जिसे प्राप्त करने के लिए कांग्रेस कायम है।

पत्रकारों से भेंट

उक्त वक्तव्य के पश्चात् दूसरे दिन, गांधीजी ने कई पत्रकारों से भेंट की। ६ मार्च १९३१, दिल्ली में ११॥ बजे भारत तथा विदेशों के कई पत्रकार उपस्थित थे। गांधीजी ने उनके प्रश्नों का उत्तर दिया। इस अवसर पर अमरीका के 'असोशिएटेड-प्रेस' के श्री जेम्स मिल्स, 'लन्दन-टाइम्स' के श्री पीटरसन, 'शिकागो ट्रिब्यून' के श्री शिरार, 'बोस्टन ईवनिंग ट्रांसक्रिप्ट' के श्री हाल्टन जेम्स, 'क्रिश्चियन साइन्स मॉनीटर' (अमरीका) के श्री० इंगल्स, 'हिन्दुस्तान-टाइम्स' के श्री जे० एन० सहानी, और 'पायोनियर' व 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' के श्री नीडहम आदि पत्रकार उपस्थित थे। कुछ प्रश्न और उनके उत्तर यहां दिए जाते हैं :—

प्रश्न—आपने अपने कल वाले वक्तव्य में 'पूर्ण स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया और कहा कि जिसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में मामूली तौर से 'पूर्ण-स्वाधीनता' होता है। सो 'पूर्ण-स्वराज्य' की आपकी सही व्याख्या क्या है ?

उत्तर—मैं आपको इसका ठीक उत्तर नहीं दे सकता, क्योंकि अंग्रेजी भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं जो, 'पूर्ण-स्वराज्य' के भाव को व्यक्त कर सके। स्वराज्य का मूल अर्थ तो स्व-राज्य अर्थात् स्व-शासन है। 'स्वाधीनता' से इस प्रकार का कोई मतलब नहीं निकलता। स्वराज्य का मतलब है आत्म-नियंत्रित-शासन और पूर्ण का मतलब है पूरा। कोई बराबरी का शब्द न मिलने के कारण हमने अंग्रेजी में complete independence (पूर्ण-स्वाधीनता) शब्दों को चुन लिया है जिन्हें हर कोई समझता है। 'पूर्ण-स्वराज्य' का यह मतलब नहीं कि किसी भी राष्ट्र से, या इंग्लैण्ड से ही कहिए, सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता। लेकिन यह सम्बन्ध स्वेच्छा से और दोनों के फायदे के लिए ही हो सकता है।

प्रश्न—समझौते की दूसरी धारा को देखते हुए क्या कांग्रेस के लिए युक्ति-संगत होगा कि वह पूर्ण-स्वाधीनता के प्रस्ताव को, जो उसने मद्रास, कलकत्ता, तथा लाहौर के अधिवेशनों में पास किया था, फिर से दोहराये ?

उत्तर—अवश्य ही, क्योंकि करांची-कांग्रेस को फिर इसी प्रकार का प्रस्ताव पास करने से रोकने की और आगामी गोलमेज-परिषद् तक में उसपर जोर देने से रोकने की कोई शर्त नहीं है।

प्रश्न—द्वितीय गोलमेज-परिषद् का भारत में होना आप पसन्द करते हैं या इंग्लैंड में ?

उत्तर—परिस्थिति पर इसका दारोमदार है। मेरा अभी कोई खास विचार नहीं है। मोटे तौर पर मैं यह चाहूंगा कि गोलमेज-परिषद् का पूर्वार्द्ध भारत में हो और फिर उसकी समाप्ति लन्दन में हो।

प्रश्न—क्या आप नियमित रूप से परिषद् में भाग लेंगे ?

उत्तर—मैं आशा तो करता हूं और शायद हो भी यही।

प्रश्न—क्या आप परिषद् में 'पूर्ण-स्वराज्य' के लिए जोर देंगे ?

उत्तर—यदि हम उसके लिए जोर न दें तब तो हमें अपने अस्तित्व से ही इन्कार कर देना चाहिए।

प्रश्न—क्या आप इस समझौते को अपने अबतक के जीवन की सबसे बड़ी सफलता समझते हैं ?

उत्तर (हंसकर)—मुझे यही मालूम नहीं कि मैंने जीवन में अबतक कौन-कौनसी सफलतायें पाईं और यह उनमें से एक है या नहीं ?

प्रश्न—यदि आप 'पूर्ण-स्वराज्य' प्राप्त कर लें तो आप उसे अपने जीवन की ऐसी सफलता मान सकेंगे ?

उत्तर—मैं समझता हूं कि यदि ऐसा हो सके तो मैं उसे अवश्य ऐसा मानूंगा।

प्रश्न—क्या आप अपने जीवन-काल में 'पूर्ण-स्वराज्य' प्राप्त करने की उम्मीद करते हैं ?

उत्तर—यकीनन ! जरूर ! (मुस्कुराते हुए) पाश्चात्य विचारों के अनुसार तो मैं अपने को ६२ साल का युवक मानता हूं।

प्रश्न—क्या आपकी राय में समझौते के फलस्वरूप विदेशी-कपड़े का बहिष्कार ढीला कर देना चाहिए ?

उत्तर—नहीं, कदापि नहीं। विदेशी कपड़े का बहिष्कार राजनैतिक अस्त्र नहीं है। यह तो भारत के एकमात्र सहायक धन्धे चर्खे की उन्नति के लिए है। उसका कार्य सिर्फ विदेशी कपड़े के भारत-आगमन से सम्बन्ध रखता है।

प्रश्न—परिषद् में जाने से पूर्व क्या आप हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को सुलझा लेने की आशा करते हैं ?

उत्तर—यह मेरी आकांक्षा तो है, लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि यह कहां तक पूरी हो सकेगी। परिषद् में जाकर एकता होना, मेरी राय में मुश्किल है।

प्रश्न—क्या हिंदू-मुस्लिम-एकता स्थापित करने में बरसों लगेंगे?

उत्तर—नहीं, मेरा ख्याल ऐसा नहीं है। हिन्दू तथा मुसलमान जनता में कोई नाइत्तिफाकी नहीं है। नाइत्तिफाकी केवल सतह पर है और इसका अधिक महत्त्व इसलिए है कि सतह पर जो आदमी हैं, वे वही हैं जो भारत के राजनैतिक दिमाग के प्रतिनिधि हैं।

प्रश्न—क्या आप इस बात की सम्भावना देखते हैं कि जब 'पूर्ण-स्वराज्य' मिल जायगा तो राष्ट्रीय-सेना हटा दी जायगी?

उत्तर—गगन-विहारी आदमी का उत्तर है तो अवश्य, लेकिन मेरा विचार है कि मैं अपने जीवन-काल में तो ऐसा न देख सकूंगा। बिलकुल सेना न रखने की स्थिति तक पहुंचने के लिए भारतीय-राष्ट्र को कई युगों तक ठहरना होगा। सम्भव है कि श्रद्धा की कमी के कारण ही मेरी यह शंकाशीलता हो। लेकिन ऐसी सम्भावना असम्भव नहीं। वर्तमान सामूहिक जागृति की तथा अहिंसा पर लोगों के डटकर कायम रहने की—अपवादों को छोड़ दीजिये—किसे आशा थी? इसी बात से मुझे कुछ आशा होती है कि निकट-भविष्य में भारतीय नेता हिम्मत के साथ कह सकेंगे कि अब हमें किसी सेना की जरूरत नहीं। मुल्की कामों के लिए पुलिस पर्याप्त समझी जानी चाहिए।

प्रश्न—क्या आप भावी सरकार के प्रधान मंत्री बनना स्वीकार करेंगे?

उत्तर—नहीं। यह पद तो नौजवानों और मजबूत आदमियों के लिए है।

प्रश्न—लेकिन यदि जनता आपको चाहे और अड़ जाय, तो?

उत्तर—तो मैं आप जैसे पत्रकारों की शरण ढूंढूंगा। (हंसी)

प्रश्न—"यदि पूर्ण-स्वराज्य स्थापित हो गया तो क्या आप सब मशीनरी उड़ा देंगे?" एक अमेरिकन पत्रकार ने पूछा।

उत्तर—नहीं, बिलकुल नहीं। उड़ा देने के बजाय मैं तो अमरीका को शायद और भी अधिक मशीनरी का आर्डर दूंगा (हंसी) और कौन कह सकता है कि मैं ब्रिटिश मशीनरी को ही तरजीह दूं? (और अधिक हंसी)

प्रश्न—स्वराज्य मिलने के पूर्व क्या आप आश्रम लौटेंगे?

उत्तर—मेरा विचार केवल आश्रम देखने का है। जबतक पूर्ण-स्वराज्य का मेरा व्रत पूरा न हो जायगा तबतक मैं आश्रम में नहीं रहूंगा।

प्रश्न—सेना-सम्बन्धी प्रश्न के आपके उत्तर से क्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आप इस बात की सम्भावना नहीं देखते कि अन्तर्राष्ट्रीय पेचीदगियों को सुलझाने में अहिंसा उपयोगी अस्त्र हो सकता है?

उत्तर—अगर संसार के अन्य राष्ट्रों की भांति भारत में भी सेना हो तो, मेरा खयाल है, कि अहिंसा ऐसा अस्त्र बन जायगा। सबसे पहले विचारों में परिवर्तन होगा। कार्य तो सदा धीरे-धीरे होता है। ज्यों-ज्यों समय जायगा, राष्ट्र विचार-विमर्श तथा पंचायती फैसलों पर अधिकाधिक विश्वास करेंगे और शनैः शनैः सेनाओं पर कम। सम्भव है कि सेनायें केवल दर्शन-मात्र की ही चीज रह जायं, जिस प्रकार खिलौने पुरानी किसी चीज के अवशेष होते हैं, न कि राष्ट्र की रक्षा के साधन।

कांग्रेस की हिदायतें

समझौता होते ही कांग्रेस-कमिटियों तथा संस्थाओं पर से रोक उठा ली गई और वे फिर से जीवित हो गईं। महासमिति के प्रधानमंत्री ने कांग्रेस के आगामी अधिवेशन में भाग लेनेवाले प्रतिनिधियों के चुनाव के बारे में अपनी सूचनायें कांग्रेस-वादियों के पास भेजीं। कार्य-समिति ने यह निर्णय किया कि प्रत्येक जिले से दो प्रकार के प्रतिनिधि चुने जायं। आधे प्रतिनिधियों का चुनाव तो वे व्यक्ति करें जिन्हें आन्दोलन में सजा मिल चुकी हो, और शेष का चुनाव साधारण नियमों के अनुसार हो। इस सम्बन्ध में विस्तार-सहित कई हिदायतें जारी की गईं। जेल हो आने वालों का चुनाव एक सभा बुलाकर करना था। बंगाल के प्रतिनिधियों के चुनाव के निर्णायक श्री अणे नियत किये गये थे। उसी दिन कांग्रेस-वादियों को यह भी हिदायत दी गई कि वे सविनय-अवज्ञा, करबन्दी-आंदोलन और ब्रिटिश-माल के बहिष्कार को बन्द कर दें। लेकिन नशीली चीजों, सब विदेशी कपड़ों व शराब की दुकानों के बहिष्कार की इजाजत दे दी गई और उन्हें जारी रखने की भी हिदायत कर दी गई। साथ ही यह भी कहा गया कि पिकेटिंग शान्तिमय होना चाहिए, लेकिन उसमें दबाव न रहना चाहिए, विरोधी प्रदर्शन न होना चाहिए, जनता के मार्ग में रुकावट नहीं डाली जानी चाहिए और देश के साधारण कानून के अन्तर्गत कोई अपराध नहीं किया जाना चाहिए। गैर-कानूनी समाचार-पत्रों के प्रकाशन बन्द करने का आदेश भी हुआ। इस प्रकार समझौते की हरएक मद के सम्बन्ध में हिदायतें जारी की गईं और स्वयं गांधीजी ने उन आदेशों के साथ वे शर्तें जोड़ दीं जो शराब तथा विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग करते समय स्वयंसेवकों को माननी चाहिए।

करांची-कांग्रेस : १९३१

कार्य-समिति ने सरदार वल्लभभाई पटेल को करांची-कांग्रेस के सभापति-पद के लिए चुन लिया, क्योंकि करीब एक साल तक कांग्रेस की जो साधारण परिस्थिति थी उसके कारण साधारण प्रणाली-द्वारा सभापति का चुनाव होना सम्भव न था।

करांची-कांग्रेस के लिए आवश्यक प्रबन्ध करना कोई आसान काम न था। यद्यपि १ मार्च के आसपास कार्य-समिति के सदस्यों के छूटने पर ही अधिवेशन का होना निश्चित-सा दिखाई देने लगा था, तो भी अस्थायी-सन्धि के भाग्य ने करांची-कांग्रेस के प्रबन्धकों की स्थिति बड़ी असमंजस में डाल दी थी। एक सुभीता अवश्य था—और वह यह कि अब केवल गुलाबी जाड़े रह गये थे। अधिवेशन के मार्च में करने से पंडाल की भी कोई जरूरत नहीं रही, क्योंकि कांग्रेस अब खुले मैदान में हो सकती थी। केवल एक सभा-मञ्च और व्यासपीठ की जरूरत थी और जमीन के चारों ओर एक घेरा डालने की।

करांची-अधिवेशन के प्रबन्ध की सफलता का बहुत अधिक श्रेय करांची की म्युनिसिपैलिटी को था जिसने जमशेद मेहता की अध्यक्षता एवं संचालकत्व में कार्य किया। कांग्रेस के खुले अधिवेशन के प्रारम्भ होने के पहले ही २५ मार्च को खुले मैदान में एक मीटिंग की गई; जिसमें चार आने की प्रवेश-फीस देने वाले गांधीजी को देख और उनका भाषण सुन सकते थे। इस प्रकार १०,०००) इकट्ठा हुआ।

सरदार वल्लभभाई पटेल ने अधिवेशन का सभापतित्व किया। उन्होंने अपने छोटे से अभिभाषण में सभापति चुने जाने पर कहा कि यह गौरव एक किसान को नहीं, किन्तु गुजरात को, जिसने स्वतन्त्रता के युद्ध में एक बड़ा भाग लिया था, प्रदान किया गया है। उन्होंने कहा कि यदि कांग्रेस ने गांधी-अर्विन-समझौता न किया होता तो उसने अपने-आपको गलती में रख दिया होता। उन्होंने समझौते का वास्तविक महत्व समझाते हुए यह बताया कि समझौते के रहते हुए कांग्रेसवादियों का क्या कर्त्तव्य है।

करांची-कांग्रेस जो एक सर्व-व्यापी आनन्दमयी छटा के साथ होने जा रही थी, वास्तव में विषाद और सन्ताप की घनघोर घटा से घिरकर हुई। कांग्रेस के अधिवेशन के प्रारम्भ होने से पूर्व ही भारत के तीन नौजवान भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव फांसी के तख्ते पर चढ़ाये जा चुके थे। इन तीन युवकों की आत्मायें उस समय कांग्रेस-नगर पर मंडराती हुई लोगों को शोक-सन्ताप में डुबो रही थीं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भगतसिंह का नाम भारत-भर में उतना ही लोकप्रिय था जितना कि गांधीजी का। अधिकाधिक प्रयत्न करने पर भी गांधीजी इन तीन युवकों की फांसी की सजा रद नहीं करा सके थे। लेकिन जो लोग इन तीनों युवकों की जान बचाने के गांधीजी के प्रयत्नों की अभीतक प्रशंसा कर रहे थे, अब इस बात पर बेतहाशा नाराज होने लगे कि इन तीनों शहीदों के सम्बन्ध में पास किये जाने वाले प्रस्ताव की भाषा क्या हो। पंडित मोतीलाल नेहरू, मौलाना मुहम्मदअली, मौलवी मजहरुलहक, श्री रेवाशंकर झवेरी, शाह मुहम्मद जुबैर तथा गुरुनन्धा मुदालियर की मृत्यु पर शोक प्रकाशित करने के पश्चात् सबसे पहले

जिस प्रस्ताव पर विचार हुआ वह भगतसिंह के सम्बन्ध में था। इस प्रस्ताव में बहस एवं मतभेद की केवल यही बात थी कि भगतसिंह तथा उनके साथियों की वीरता और आत्मत्याग की प्रशंसा करते हुए ये शब्द कि 'प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक हिंसा से अपने-आपको अलिप्त रखते हुए और उसका विरोध करते हुए' भी प्रस्ताव में जोड़े जायं या नहीं?

दूसरा प्रस्ताव जिस पर कांग्रेस ने विचार किया, वह बन्दियों की रिहाई के बारे में था। उस समय तक यह स्पष्ट हो चुका था कि बन्दियों की रिहाई के सम्बन्ध में सरकार केवल कंजूसों-जैसी नीति ही नहीं बरत रही है, बल्कि उन वादों से भी मुकर रही है और उन शर्तों को भी तोड़ रही है जो उसने समझौते के सिल-सिले में की थीं। इसलिए कांग्रेस ने अपना यह दृढ़ मत प्रकट किया कि यदि सर-कार और कांग्रेस के समझौते का उद्देश्य ग्रेट ब्रिटेन और भारत में सद्भाव बढ़ाना है और यदि यह समझौता ग्रेट ब्रिटेन की शासनाधिकार छोड़ने की इच्छा को वास्त-विकता में प्रकट करता है तो सरकार को चाहिए कि वह सब राजनैतिक बन्दियों, नजरबन्दों तथा विचाराधीन बन्दियों को, जो समझौता की शर्तों में नहीं भी आते हैं, रिहा कर दे और उन सब राजनैतिक प्रतिबन्धों को हटा ले जो सरकार ने भारतीयों पर, चाहे वे भारत में हों या विदेशों में, उनके राजनैतिक विचारों या कार्यों के कारण, लगा रखी हैं। कांग्रेस ने सरकार को यह भी याद दिलाया कि यदि वह इस प्रस्ताव के अनुकूल कार्य करेगी तो जनता का वह रोष जो हाल की फांसियों के कारण उत्पन्न हो गया है, कुछ कम हो जायगा।

गणेश शंकर की हत्या

भगतसिंह आदि की फांसियों के अलावा एक और कारण भी था जिसने करांची-कांग्रेस में उदासी के बादल छा दिये थे। जब इधर कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था, कानपुर में जोरों का हिन्दू-मुस्लिम-दंगा शुरू हो गया और श्री गणेश शंकर विद्यार्थी शान्ति एवं सद्भाव स्थापित करने और मुसलमानों को हिन्दुओं के रोष से बचाने के प्रयत्न में मारे गये। कानपुर कोई ऐसी जगह नहीं थी जो साम्प्रदायिक कलहों के लिए बदनाम रही हो। १६०७ में एक इक्की-दुक्की मार-पीट हुई थी और फिर १६२८ तथा २६ में। भगतसिंह तथा उनके साथियों को लाहौर में २३ मार्च को जो फांसी दी गई थी उसके संबंध में देश-भर में हड़तालें की गई। कानपुर में हड़ताल पूरी नहीं हुई। हिन्दुओं ने तो अपनी दुकानें बन्द कर दीं, लेकिन मुसलमानों ने नहीं कीं। कुछ समय पहले जब मौ० मुहम्मदअली मरे थे उस समय हिन्दुओं ने भी मुसलमानों की हड़ताल में भाग नहीं लिया था। बस, अधिक कहने की जरूरत नहीं—चिंगारी भी मौजूद थी और बारूद का ढेर भी मौजूद था। २४ मार्च को हिन्दुओं की दुकानों का लूटना प्रारम्भ हो गया। २३ मार्च की रात

को ही लगभग ५० व्यक्ति घायल कर दिये गये थे। २५ मार्च को अग्निकाण्ड प्रारम्भ हो गये। दुकानों और मन्दिरों में आग लगा दी गई और वे जल-जल कर खाक हो गये। पुलिस ने कोई सहायता नहीं दी। लूट-मार, मार-काट, अग्निकाण्ड, हुल्लड़बाजी का बाजार गरम हो गया। लगभग ५०० परिवार अपने घर छोड़-छोड़ कर आस-पास के गांवों में जा बसे। कांग्रेस ने बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा अन्य कुछ मित्रों को शीघ्र ही कानपुर घटना-स्थल पर भेजा, लेकिन शान्ति के वातावरण को वापस लाना सहज न था। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी २५ ता० से लापता थे। उनकी लाश का पता २९ ता० को लगा। उन्होंने उस दिन कई मुसलमान परिवारों को बचाया था। पता चलता है कि उन्हें फंसा कर किसी स्थान पर ले जाया गया था जहां वे बिना किसी संकोच के चले गये और फिर एक सच्चे सत्याग्रही की भांति क्रुद्ध भीड़ के सामने उन्होंने अपना सिर झुका दिया। कांग्रेस ने इस शोक-भरी घटना पर भी एक प्रस्ताव पास किया और डा० भगवानदास की अध्यक्षता में ६ सदस्यों की एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी ने एक मोटी रिपोर्ट तैयार करके कार्य-समिति के सामने पेश की, जो बहुत दिनों बाद छापी गई, लेकिन सरकार ने उसका विवरण रोक दिया।

अन्य प्रस्ताव

इसके पश्चात अस्थायी सन्धिवाला प्रस्ताव आता है जो एक मुकम्मिल चीज है। इसमें कांग्रेस का दृष्टि-कोण दर्शाने के साथ-साथ कांग्रेस की ओर से वह बात भी स्पष्ट कर दी गई जो गांधी-अर्विन-समझौते में अस्पष्ट अथवा सन्देहास्पद समझी गई थी। इसके बाद कांग्रेस ने उन सब व्यक्तियों को, खासकर महिलाओं को, बधाई दी जिन्होंने गत सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन में महान् कष्ट उठाये थे। महात्मा गांधी को कांग्रेस ने गोलमेज-परिषद् के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया और यह निश्चय किया कि उनके अतिरिक्त जिन्हें कांग्रेस-कार्यसमिति नियुक्त करेगी वे भी महात्माजी के नेतृत्व में सम्मेलन में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करेंगे। अन्य प्रस्ताव साम्प्रदायिक उपद्रव, पूर्ण मद्य-निषेध, खादी-प्रचार, शान्तिमय धरना आदि के संबंध में थे।

मौलिक अधिकार का प्रस्ताव

यहां यह कह देना शेष है कि 'मौलिक अधिकारों तथा आर्थिक व्यवस्था' वाला प्रस्ताव कार्य-समिति के सामने कुछ यकायक तौर पर पेश हुआ था। मौलिक अधिकारों का प्रश्न सबसे पहले श्री चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य ने अमृतसर-कांग्रेस में उठाया था। जब दूसरे साल नागपुर में कांग्रेस-अधिवेशन के वह स्वयं सभापति बने तब इस प्रश्न को और महत्व मिल गया। करांची में युवक-वर्ग तथा प्रौढ़-

वर्ग में इस प्रश्न पर कुछ मतभेद-सा था। यह सोचा गया कि इतने महत्वपूर्ण प्रश्न पर फुरसत के साथ विचार होना चाहिए और कार्य-समिति तथा महासमिति के सदस्यों द्वारा उसका अध्ययन-मनन होना चाहिए। यह सलाह मान ली गई। इसलिए महासमिति को अधिकार दिया गया कि प्रस्ताव के सिद्धान्तों तथा उसकी नीति को आघात पहुँचाये बिना उसमें रद्दो-बदल करे। बम्बई में, अगस्त १९३१ में, महासमिति ने मूल प्रस्ताव में कुछ परिवर्तन किये। इसके बाद उसे जो रूप प्राप्त हुआ वह इस प्रकार था :—

सर्वसाधारण के अधिकार

(१) भारत के प्रत्येक नागरिक को प्रत्येक विषय में, जो कि कानून और सदाचार के विरुद्ध न हो, अपनी स्वतन्त्र राय प्रकट करने, स्वतन्त्र संस्थायें तथा संघ बनाने और बिना हथियार के एवं शातिपूर्वक एकत्र होने का अधिकार है।

(२) भारत के प्रत्येक नागरिक को, अन्तरात्मा का अनुसरण करने और सार्वजनिक शान्ति और सदाचार में बाधक न होनेवाले धार्मिक विश्वास और आचरण की स्वतन्त्रता है।

(३) अल्पसंख्यक जातियों और भिन्न भाषा-भाषी वर्ग की संस्कृति, भाषा और लिपि की रक्षा की जायगी।

(४) भारत के सब नागरिक, कानून की दृष्टि में बिना किसी धर्म, जाति, विश्वास अथवा लिंग के भेद-भाव के समान हैं।

(५) सरकारी नौकरियों, अधिकार और सम्मान के पदों और किसी भी व्यापार या धन्धे के करने में किसी भी नागरिक स्त्री-पुरुष को धर्म, जाति, विश्वास अथवा लिंग के कारण अयोग्य नहीं ठहराया जायगा।

(६) सरकारी अथवा सार्वजनिक खर्च से बने अथवा नागरिकों-द्वारा सार्वजनिक उपयोग के लिए समर्पित कुओं, सड़कों, पाठशालाओं और सार्वजनिक आवागमन के स्थानों के सम्बन्ध में सब नागरिकों के समान अधिकार और कर्त्तव्य हैं।

(७) हथियार रखने के सम्बन्ध में बनाये गये नियम और मर्यादा के अनुसार प्रत्येक नागरिक को हथियार रखने और धारण करने का अधिकार है।

(८) कानूनी आधार के बिना किसी तरह किसी भी मनुष्य की स्वतन्त्रता न छीनी जायगी और न किसी के घर और जायदाद में प्रवेश और कुर्की या जब्ती की जायगी।

(९) सरकार सब धर्मों के प्रति तटस्थ होगी।

(१०) बालिग उमर के तमाम मनुष्यों को मताधिकार होगा।

(११) राज्य मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

(१२) सरकार किसी को खिताब न देगी।

(१३) मौत की सजा उठा दी जायगी।

(१४) भारत का प्रत्येक नागरिक भारत-भर में भ्रमण करने, उसके किसी भाग में ठहरने या बसने, जायदाद खरीदने और कोई भी व्यापार या धंधा करने में स्वतन्त्र होगा और कानूनी कार्रवाई और रक्षा के विषय में, भारत के सब भागों में, उसके साथ समानता का व्यवहार होगा।

श्रमिक वर्ग के अधिकार

(१) सरकार कारखानों के मजदूरों के स्वार्थों की रक्षा करेगी और उपयुक्त कानून-द्वारा एवं अन्य उपायों से उनके जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त मजदूरी, काम के लिए आरोग्यप्रद परिस्थिति, मजदूरी के घण्टों की मर्यादा, मालिकों और मजदूरों के बीच झगड़ों के निपटारे के लिए उपयुक्त साधन और बुढ़ापा, बीमारी तथा बेकारी के आर्थिक परिणामों के विरुद्ध रक्षा का उपाय करेगी।

(२) दासत्व या लगभग दासत्व-जैसी दशा से मजदूर मुक्त होंगे।

(३) मजदूर-स्त्रियों की रक्षा और प्रसूति-काल के लिए पर्याप्त छुट्टी का विशेष प्रबंध होगा।

(४) स्कूल में जा सकने योग्य आयु के लड़के खानों और कारखानों में नौकर न रक्खे जायंगे।

(५) किसान और मजदूरों को अपने हितों की रक्षा के लिए संघ बनाने के अधिकार होंगे।

कर और व्यय

(१) जमीन की मालगुजारी और लगान का तरीका बदला जायगा और छोटे किसानों को वर्तमान कृषि-कर और मालगुजारी से तुरन्त और यदि अराजी से लाभ न होता हो तो आवश्यक समय तक के लिए छूट देकर या उससे मुक्त करके कृषकों के बोझ का न्याययुक्त निपटारा किया जायगा।

(२) एक न्यूनतम निश्चित रकम के अलावा की जायदाद पर क्रमागत विरासत-कर लिया जायगा।

(३) फौजी खर्च में बहुत अधिक कमी की जायगी, जिससे कि वर्तमान व्यय से वह कम-से-कम आधा रह जायगा।

(४) मुल्की-विभाग के व्यय और वेतन में बहुत कमी की जायगी। खास तौर पर नियुक्त किये गए विशेषज्ञ अथवा ऐसे ही व्यक्ति के सिवा राज्य के किसी

भी नौकर को, एक निश्चित रकम के सिवा, जोकि आम तौर पर ५००) मासिक से अधिक न होनी चाहिये, अधिक वेतन न दिया जायगा।

(५) हिन्दुस्तान में बने हुए नमक पर कोई कर नहीं लिया जायगा।

आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम

(१) राज्य देशी कपड़े की रक्षा करेगा और इसके लिए ब्रिटिश वस्त्र और सूत को देश में न आने देने की नीति और आवश्यक अन्य उपायों का अवलम्बन करेगा। राज्य अन्य देशी धन्धों की भी, जब कभी आवश्यक होगा, विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा करेगा।

(२) औषधियों के काम के सिवा, नशीले पेय और पदार्थ सर्वथा बन्द कर दिये जायंगे।

(३) हुण्डावन और विनिमय का नियंत्रण राष्ट्र-हित के लिए होगा।

(४) मुख्य उद्योगों और विभागों, खनिज साधनों, रेलवे, जल-मार्ग, जहाजरानी और सार्वजनिक आवागमन के अन्य साधनों पर राज्य अपना अधिकार और नियन्त्रण रखेगा।

(५) कृषकों के ऋण से उद्धार के उपाय और प्रत्यक्ष रूप से लिये जाने वाले ऊंचे दर के ब्याज पर सरकार का नियंत्रण होगा।

(६) नियमित सेना के सिवा, राष्ट्र-रक्षा का साधन संगठित करने के लिए राज्य नागरिकों की सैनिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

कार्य-समिति की बैठक

गांधी-अर्विन समझौते की सफलता तथा इससे भी अधिक करांची के प्रस्तावों की सफलता गांधीजी तथा कांग्रेसके भारी बोझों को और भी अधिक बोझीला बनाती गई। करांची-कांग्रेस में एक दो महत्वपूर्ण प्रश्न ऐसे रह गए थे जिन्हें उसने कार्य समिति एवं महासमिति के लिए छोड़ दिया था। सिक्खों ने राष्ट्रीय झण्डे तथा उसमें उनके लिए समाविष्ट किये जानेवाले रंग के प्रश्न को उठाया। यह प्रश्न पहले लाहौर में भी उठाया जा चुका था; करांची में इसे और भी अधिक महत्व मिला। चूंकि कांग्रेस का अधिवेशन ऐसी तफसील पर विस्तार-सहित विचार नहीं कर सकता था, अतः उसे कांग्रेस की कार्य-समिति के सुपुर्द किया गया। नई कार्य-समिति ने, जिसकी बैठकें १ और २ अप्रैल को हरचन्द्रराय-नगर में हुईं, इस आपत्ति की जांच कराने के लिए कि राष्ट्रीय-झण्डे के रंग साम्प्रदायिक आधार पर निर्धारित किये गये हैं अथवा नहीं, और यह सिफारिश करने के लिए कि कांग्रेस कौन-सा झण्डा स्वीकृत करे, एक कमिटी नियुक्त करने का निश्चय किया। कमिटी को गवाहियां लेने का अधिकार दिया गया और जुलाई १९३१ से पहले उसकी रिपोर्ट मांगी गई।

हम देख चुके हैं कि कांग्रेस वर्षों से इस बात पर जोर देती आई है कि ब्रिटेन ने भारत में जो खर्चे किये हैं तथा उसके लिए जो कर्जे लिये हैं उनकी एक निष्पक्ष पंच-द्वारा जांच हो। इस विषय पर जो वाद-विवाद तथा द्वन्द्व होना लाजिमी था उसके लिए अपने तीर-तरकस तैयार रखना जरूरी था। इसलिए ईस्ट-इण्डिया कम्पनी तथा ब्रिटिश-सरकार-द्वारा भारत में किये गये आर्थिक खर्चों तथा भारत के राष्ट्रीय कर्जों की छानबीन करने के लिए और इस बात की रिपोर्ट पेश करने के लिए कि भविष्य में भारत कितना आर्थिक बोझ सहे, कार्य-समिति ने एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी से प्रार्थना की गई कि मई के अन्त तक वह अपनी रिपोर्ट पेश करे। एक कमिटी और भी नियुक्त की गई। वास्तव में यह केवल कमिटी नहीं थी, बल्कि एक शिष्ट-मण्डल था जिसके गांधीजी, वल्लभभाई तथा सेठ जमनालाल बजाज सदस्य थे। यह शिष्ट-मण्डल इसलिए नियुक्त किया गया था कि वह साम्प्रदायिक समस्या को निबटाने के लिए मुसलमान नेताओं से मिले। कांग्रेस के तीसरे प्रस्ताव के अनुसार जिन राजबन्दियों की रिहाई चाही गई थी उनके बारे में सब प्रांतों से सामग्री एकत्र करने के लिए श्री नरीमैन को नियुक्त किया गया।

अपनी बैठक समाप्त करने के पूर्व अन्त में कार्य-समिति ने जिस प्रश्न को निबटाया वह था गोल-मेज परिषद् में भेजे जानेवाले कांग्रेसी शिष्ट-मण्डल का। कार्य-समिति के कई सदस्यों की राय थी कि शिष्ट-मण्डल केवल एक व्यक्ति का न हो, किन्तु लगभग १५ सदस्यों का हो। सरकार तो २० सदस्यों तक के लिए खुशी से राजी थी। उसकी दृष्टि से तो एक सदस्य के बजाय १५ या २० सदस्यों का होना ही अधिक लाभदायक था। जब कार्य-समिति में विवाद चला तब यह बात साफ कर दी गई कि गांधीजी लन्दन शासन-विधान की तफसीलें तय करने के लिए नहीं, बल्कि सन्धि की मूल बातें तय करने के लिए जा रहे हैं। जब यह बात साफ कर दी गई तब मतभेद दूर हो गया और सदस्यों की सर्वसम्मति हो गई कि भारत का प्रतिनिधित्व केवल गांधीजी को करना चाहिए।

समझौते का प्रभाव और नये वाइसराय

संघर्ष तथा संग्राम समाप्त हो गया था। जिन कांग्रेस दफ्तरों की कल तक कोई हस्ती न थी, उनपर कांग्रेसी-झण्डा लहराने लगा था। कांग्रेस के अधिकारी एक बार फिर पुलिस-द्वारा जब्त किए हुए एक-एक कागज और कपड़े को वापस लेने का दावा करने लगे थे। एक बार फिर स्वयंसेवक-गण बिल्ले, तमगे और पेटी लगाये अपनी अर्द्ध-सैनिक अथवा राष्ट्रीय पोशाक में झण्डे हाथ में लिये माला पहने तथा राष्ट्रीय गीत गाते हुए जलूस निकालने लगे थे। छोटी-छोटी बालिकायें और बालक, वयस्क स्त्री-पुरुष शराब और विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग कर लोगों

को शराब न पीने और विदेशी कपड़े से तन न ढकने की शिक्षा देने लगे थे और ये सब बातें उसी सिपाही की आंखों के सामने होने लगी थीं जो कल इन लोगों पर भेड़िये की तरह टूटता था। कानून और अमन के ठेकेदार बननेवाले निराशा और पराजय का अनुभव कर रहे थे। कैदी रोज छोड़े जा रहे थे। उन्हें मालायें पहनाई जाती थीं, उनके जलूस निकाले जाते थे। वे भाषण देते थे। अब उनके व्याख्यानों में विजय की ध्वनि और ललकार की भावना होती थी। १८ अप्रैल को लार्ड अर्विन ने भारत से प्रस्थान किया और गांधीजी ने बम्बई में उन्हें बिदाई दी। वाइसराय-भवन के व्यक्ति बदल गये।

१७ अप्रैल को नए वाइसराय लार्ड विलिंगडन ने चार्ज लिया। वह देश की स्थिति से अनभिज्ञ थे। देश के हाकिम समझौते को अपनी हतक-इज्जत समझते थे। इसलिए प्रतिदिन कांग्रेस के दफ्तरों में यह शिकायतें आती थीं कि समझौते की शर्तों का ठीक पालन नहीं होता। गुन्तूर में समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद भी पुलिस इससे बाज न आई थी। पूर्वी गोदावरी के बादपल्ली में बहुत दुखद गोली-काण्ड हुआ था, जिसमें चार आदमी मर गये थे और कई घायल हो गये थे। यह गोली-कांड महज इसलिए हुआ था कि लोगों ने एक मोटर पर गांधीजी का चित्र रक्खा था और पुलिस इस पर ऐतराज करती थी। स्थिति शीघ्र ही खेदजनक और असमर्थनीय गोली-कांड में बदल गई। लाठियां और गोलियां चला देना पुलिस का स्वभाव ही हो गया था। वह इसके बिना रह नहीं सकती थी।

कार्य-समिति की बैठक

जब कांग्रेस ने अस्थायी संधि की थी, तब वह इस उम्मीद में थी कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायों में भी एक समझौता हो जायगा और सरकार भी इस दशा में हमारी मददगार होगी। लेकिन ये सब उम्मीदें नाकामयाब हुईं। गांधीजी यह अच्छी तरह जानते थे कि यहां हिन्दू-मुस्लिम-समझौता हुए बिना लन्दन जाने की बनिस्वत भारत में ही रहना अधिक उपयुक्त है। फिर भी, कार्य-समिति ९, १० और ११ जून १९३१ को बैठी और, गांधीजी की इच्छा न होते हुए भी मुसलमान मित्रों के आग्रह से उसने ऐसा प्रस्ताव पास कर दिया—

"समिति की यह सम्मति है कि दुर्भाग्य से यदि इन प्रयत्नों में सफलता न मिले तो भी कांग्रेस के रुख के सम्बन्ध में किसी तरह की गलतफहमी फैलने की सम्भावना से बचने के लिए महात्मा गांधी गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस की ओर से प्रतिनिधित्व करें, यदि वहां कांग्रेस के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता हो।"

कार्य-समिति को यह उम्मीद थी कि यदि भारत में नहीं, तो इंग्लैण्ड में अवश्य समझौता हो जायगा। उसने मौलिक-अधिकार, उप-समिति और सार्वजनिक ऋण-समिति की रिपोर्ट आने की मियाद बढ़ा दी और मिल के सूत से बने कपड़े

के व्यापारियों तथा ऐसे करघों को प्रमाण-पत्र देने की प्रथा को, जो पिछले दिनों बहुत बढ़ गई थी, बन्द कर दिया। कुछ कांग्रेस-संस्थायें विदेशी कपड़े के वर्तमान स्टाक को बेचने की इजाजत दे रही थीं। उनको बुरा बताया गया। श्री नरीमैन से कहा गया कि एक सूची उन कैदियों की तैयार करें जो कि अस्थायी सन्धि की शर्तों के अन्दर नहीं आते और उसे गांधीजी के सामने पेश करें।

गांधीजी की चेतावनी

अस्थायी-सन्धि और उसकी शर्तों के पालन के संबंध में गांधीजी ने सारे देश के कांग्रेसियों को झगड़ा न शुरू करने की, पर साथ ही राष्ट्रीय आत्म-सम्मान पर चोट भी न सहने की सख्त चेतावनी दी। गांधीजी पस्त-हिम्मती के भारी शैतान को दूर रखना चाहते थे। वह भय और असहायता पर हावी होने का सदा आग्रह करते थे। कांग्रेसियों को समझाते हुए उन्होंने कहा कि—

"यदि वे समझौता का सम्मान-पूर्वक पालन असम्भव कर देते हैं, तो यह इस बात की स्पष्टतम चेतावनी है कि हम भी रक्षणात्मक उपाय करने के अधिकारी हैं। हम कोई नई स्थिति अपने आप पैदा नहीं करते, लेकिन हमें अपनी रक्षा करनी ही चाहिए। उदाहरण के तौर पर यदि झण्डाभिवादन रोक दिया जाता है तो हम इसे सहन नहीं कर सकते और हमें इस पर जरूर अड़े रहना चाहिए। यदि एक जलूस रोक दिया जाता है तो हमें उसके लिए लाइसेन्स की प्रार्थना करनी चाहिए और यदि वह नहीं दिया जाता, तो हमें जलूस न निकालने की आज्ञा का उल्लंघन करना चाहिए। लेकिन जहां मासिक झण्डाभिवादन और सार्वजनिक सभा का मामला हो, हमें इजाजत की प्रतीक्षा न करनी चाहिए और न इसके लिए दरख्वास्त ही देनी चाहिए। हमें असहायता और उससे उत्पन्न होनेवाली पस्त-हिम्मती को दूर करना चाहिए। करबन्दी-आन्दोलन के बारे में तुम इसकी इजाजत दे सकते हो, लेकिन इसे अपने कार्यक्रम में शामिल नहीं कर सकते। वे इसे खुद अपने हाथ में लेंगे और अपने मित्रों को भी इस आन्दोलन में लेआएंगे। जब ऐसा होगा, तब आर्थिक प्रश्न बन जायगा और जब यह आर्थिक प्रश्न बन जायगा, तब जनता इस आन्दोलन की ओर खिंच जायगी।"

जगह-जगह संधि भंग

उक्त चेतावनी के फलस्वरूप सरकार की ओर से बहुत सहानुभूति दिखाई गई और लॉर्ड विलिंगडन ने मीठे शब्दों की भी कमी न रखी। ऐसा कोई कारण न था कि उनके वचनों की सच्चाई पर सन्देह किया जाता। लेकिन यह जानने में अधिक समय न लगा कि वाइसराय की हवाई बातों से जो ऊंची आशायें की गई थीं, वे सब झूठी हैं। जुलाई के पहले सप्ताह में गांधीजी के दिल में यह सन्देह उत्पन्न हो गया था। किसी-न-किसी रूप में दमन सब जगह जारी था। उत्तर

प्रदेश के अन्तर्गत सुलतानपुर में ६० आदमियों पर दफा १०७ ताजीरात हिन्द के अनुसार मुकदमा चलाया गया था। भवन शाहपुर में ताल्लुकेदारों ने किसानों को राष्ट्रीय झण्डा हटा लेने का हुक्म दिया था और उनके इन्कार करने पर उन्हें हवालात में बिठा दिया था। मथुरा में एक थानेदार ने सार्वजनिक सभा को जबरदस्ती भंग कर दिया था। बाराबंकी में जिला-मजिस्ट्रेट ने पुलिस-इंस्पेक्टरों को १४४ धारावाले कोरे आर्डर अपने दस्तखत करके दे दिये थे। डिप्टी कमिश्नर ने गांधी-टोपियों को उतरवा दिया था और लोगों को गांधी-टोपी न पहनने तथा कांग्रेस में न जाने की चेतावनी दी था।

अहमदाबाद, अंकलेश्वर और रत्नागिरी जिलों में गैर-लाइसेन्स-शुदा शराब की दुकानों पर और गैर-लाइसेन्स शुदा घण्टों में शान्तिमय पिकेटिंग की आज्ञा नहीं दी गई। कैदी भी नहीं छोड़ गये। बलसाड़ में पांच आदमियों से इसलिए जुरमाना मांगा गया कि सत्याग्रह संग्राम के दिनों में उन्होंने स्वयंसेवक-कैम्प के लिए अपनी जमीनें दे दी थीं। उनसे जबतक जुरमाना वसूल नहीं हुआ तबतक उन्हें जमीनें नहीं दी गईं। कर्नाटक में पश्चिमी जमीनें तबतक वापस नहीं की गईं, जबतक यह वचन नहीं ले लिया कि आगे वे आंदोलन में भाग न लेंगे। कई पटेल और तलाटी फिर बहाल नहीं किये गये। दो डिप्टी-कमिश्नरों को, जिन्होंने इस्तोफा दे दिया था, पेन्शन नहीं दी गई, यद्यपि लॉर्ड अर्विन वचन दे चुके थे। बंगाल में वकीलों तथा बैरिस्टरों से 'आयन्दा ऐसा न करने का' वचन लेने से एक नई परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी। नवें आर्डिनेन्स के मातहत एक जब्त आश्रम वापस नहीं लौटाया गया। गोहाटी में विद्यार्थियों से ५०)-५०) की जमानतें मांगी गईं। जोरहट में सुपरिन्टेंडेन्ट बार्टली की आज्ञा से १९ जून को प्रभातफेरी करनेवाले लड़कों को पीटा गया। दिल्ली में विद्यार्थियों से आगे के लिए वादे लिये गये। मद्रास में १३ जुलाई को एक सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई कि अस्थायी सन्धि के शान्तिमय पिकेटिंग में 'स्लिकारी साल' पर पिकेटिंग शामिल नहीं है। तंजोर के वकीलों पर शराब की दुकानों की पिकेटिंग न करने के लिए १४४ दफा की रू से नोटिस तामील किये गये। पिकेटिंग करते हुए स्वयंसेवकों पर बनावटी अभियोग लगाये गये। अनेक स्थानों पर उन्हें पीटा गया और झण्डा तथा छाता रखने से भी रोका गया। लोगों को यह चेतावनी दी गई कि उन्हें पानी न दिया जाय। शोलापुर के मार्शल-लॉ कैदियों की रिहाई की निश्चित प्रतिज्ञा लार्ड अर्विन कर गये थे, लेकिन फिर भी वे न छोड़े गये। परन्तु बारडोली में सरकार ने अस्थायी-संधि को जिस ढंग से भंग किया उसके सामने ये सब बातें फीकी पड़ जाती हैं। पाठकों को याद होगा कि इस ताल्लुके में लगान-बन्दी का आंदोलन था। नई मालगुजारी २२ लाख रुपये देनी थी, जिसमें से २१ लाख रुपये दिये जा चुके थे। इस प्रकार प्रश्न केवल एक लाख के संबंध में था।

जब गांधीजी जुलाई के मध्य में शिमला गये तब उन्होंने ये सब शिकायतें भारत-सरकार तक पहुंचाईं। अगले दस दिनों में स्थिति में जो परिवर्तन हुआ, उसकी कोई उम्मीद न थी। गांधीजी ने बारडोली से इस विषय पर अपने विचार सीधे सूरत के कलक्टर को लिखे और उसकी एक प्रति बम्बई-सरकार को भी भेजी। बम्बई के गवर्नर का जवाब भी असन्तोष-जनक था। शिमला के अधिकारियों ने भी बम्बई-सरकार का समर्थन किया।

जांच का प्रस्ताव

तब गांधीजी ने पंच नियुक्त करने का प्रश्न उठाया। इस संबंध में भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी इमर्सन साहब और उनके बीच पत्र-व्यवहार हुआ। यह पत्र-व्यवहार जुलाई के अंतिम सप्ताह तक चलता रहा। गांधीजी ने २१ जुलाई, १९३१ का शिमला से इमर्सन साहब के पास जो चौथा पत्र भेजा उसमें उन्होंने लिखा कि वाइसराय-भवन में आज शाम को किये गये वादे के अनुसार मैं अपनी यह प्रार्थना लेखबद्ध कर रहा हूँ कि सरकार तथा कांग्रेस के बीच हुए समझौते-सम्बन्धी उन प्रश्नों का निर्णय करने के लिए निष्पक्ष पंच बैठाये जायं, जो समय-समय पर सरकार या कांग्रेस की ओर से उसके सामने पेश किये जायं। कुछ ऐसे मामले हैं, जिन पर शीघ्र विचार होना अत्यन्त आवश्यक है। यह नहीं समझना चाहिए कि पंच के सामने केवल यही मामले पेश होंगे। संभव है, भविष्य में ऐसे अकल्पित मामले भी खड़े हो जायं, जिनके संबंध में समझौते की सीमा के अन्दर होने का दावा किया जा सके। हम यह तरीका रखें कि सरकार और कांग्रेस दोनों की ओर से लिखित वक्तव्य पेश हों। दोनों पक्ष के वकील उन विषयों पर अपनी-अपनी दलीलें पेश करें और बाद को पंच जो निर्णय करें वह दोनों पक्षों को मान्य हों।

इमर्सन साहब ने शिमला से ३० जुलाई १९३१ को उक्त पत्र का उत्तर देते हुए लिखा कि भारत सरकार ने व्याख्या-सम्बन्धी प्रश्नों के लिए निर्णायक मण्डल-सम्बन्धी प्रस्ताव पर खूब गौर किया है। आपके पत्र में वर्णीत प्रश्नों पर भी सरकार ने खास ध्यान दिया है, जिन्हें आप इस श्रेणी के अन्तर्गत समझते हैं। इसके साथ सरकार ने यह भी ध्यान में रक्खा है कि इन प्रश्नों पर निर्णायक-मण्डल मंजूर करने का आवश्यक परिणाम होगा सरकार की खास जिम्मेदारी और फर्जों का उलझन में पड़ जाना। आप भी निस्संदेह यह स्वीकार करेंगे कि सरकार के लिए किसी ऐसी व्यवस्था को मान लेना संभव नहीं है, जिससे हुकूमत की नियमित मशीनरी मौकूफ हो जाय, और जो अदालत की अधिकार-सीमा में प्रवेश करे। ५ मार्च के समझौते में इस तरह की किसी बात की कोई गुंजाइश नहीं है।

परिषद् से गांधीजी का इन्कार

इस पत्र-व्यवहार से स्पष्ट हो गया कि समझौते में कोई दम नहीं है। उत्तर-प्रदेश में किसानों पर दमन और अत्याचार जारी था। अपने खेतों तथा घरों से निर्वासित किसानों की दुर्दशा से उत्तर प्रदेश के नेताओं को विशेष चिन्ता उत्पन्न हो गई थी। ऐसी दशा में गांधीजी ने उत्तर प्रदेश के गवर्नर सर माल्कम हेली को एक तार भेजा। लेकिन उसका जवाब निराशाजनक मिला। सभी ओर से ऐसी शिकायतें आ रही थीं और परिस्थितियां इतनी दिल तोड़ने वाली थीं कि ११ अगस्त १९३१ को गांधीजी वाइसराय को एक तार भेजने पर विवश हो गये। उस तार में उन्होंने लिखा कि अभी हाल में बम्बई-सरकार का जो पत्र मिला है, उसने मेरा लन्दन जाना असम्भव कर दिया है। पत्र से कई कानूनी समस्यायें उपस्थित हो गई हैं। पत्र में हकीकत और कानून दोनों दृष्टियों से एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है और लिखा है कि सरकार ही हर प्रकार से दोनों बातों में अन्तिम निर्णय करेगी। इसका साफ अभिप्राय यह है कि जिन मामलों में सरकार और शिकायत करने वाले दो दल हों, उनमें भी सरकार ही अभियोग लगाये और वही फैसला करे। कांग्रेस के लिए यह स्वीकार करना असम्भव है। बम्बई-सरकार के पत्र, सर माल्कम हेली के तार और उत्तर प्रदेश, सीमा-प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में होने वाले अत्याचारों की रिपोर्ट पर जब मैं ध्यान देता हूं तब मुझे यही प्रतीत होता है कि मैं लन्दन न जाऊं, जैसा मैंने वादा किया था कि कोई भी अन्तिम निर्णय करने से पहले मैं आपको लिखूंगा। मैं ऊपर लिखी हुई सब बातें आपके सामने रख रहा हूँ। अन्तिम घोषणा करने से पहले मैं आपके उत्तर की प्रतीक्षा करूंगा।

वाइसराय ने १३ अगस्त १९३१ को गांधीजी के तार का उत्तर देते हुए लिखा कि समझौते-सम्बन्धी हरेक मामले में मैं खुद दिलचस्पी रखता हूं और मैंने आशा की थी कि आप इन विस्तार की बातों से उत्पन्न विवादों के कारण अपने को भारत की उस सेवा से वंचित नहीं करेंगे, जो आप उस महत्वपूर्ण वाद-विवाद में भाग लेकर कर सकते हैं, जो आपके और मेरे समय के भी आगे के लिए देश के भाग्य का निपटारा कर देने वाला है। यदि आपका निश्चय अन्तिम है तो मैं फौरन ही प्रधान-मंत्री को आपके लन्दन न जाने की सूचना दे दूंगा। गांधीजी ने १३ अगस्त १९३१ को तार-द्वारा वाइसराय को जो सूचना दी वह लन्दन न जाने के ही संबंध में थी।

यद्यपि जून के महीने से यह आशंका की जा रही थी कि कांग्रेस के गोलमेज-परिषद् में भाग लेने के रास्ते में दिक्कतें आएंगी, लेकिन फिर भी प्रत्येक व्यक्ति अन्तिम क्षण तक यह उम्मीद कर रहा था कि किसी तरह परिस्थिति अपने-आप सुलझ जायगी। परन्तु प्रयत्न करने पर भी कोई सूरत न निकल सकी। इस तरह

जब कि गांधीजी वाइसराय और बम्बई तथा उत्तर प्रदेश की सरकारों से पत्र-व्यवहार करने में लगे हुए थे, कांग्रेस की कार्य-समिति बदस्तूर अपना कार्य करने में संलग्न थी।

कार्य-समिति तथा महासमिति के निश्चय

कार्य-समिति की एक बैठक २० जुलाई को हुई। उसने 'ब्रिटेन तथा भारत के लेन-देन' पर तैयार की हुई रिपोर्ट को छापने की स्वीकृति दे दी। मौलिक-अधिकार-समिति ने अपनी बैठकें मछलीपट्टम में करके जो रिपोर्ट तैयार की थी उसे कार्यसमिति ने महासमिति के सामने पेश करने का निश्चय किया। हिन्दुस्तानी-सेवादल को कांग्रेस का केन्द्रीय स्वयंसेवक-संगठन मान लिया गया और यह निश्चय किया गया कि इसका नियन्त्रण कार्य-समिति प्रत्यक्ष रूप से स्वयं करेगी या वह करेगा, जिसे वह अपनी ओर से नियुक्त करे। प्रांतीय कांग्रेस-कमिटियों को यह अधिकार और आदेश दिया गया कि वे भी बाकायदा स्वयं-सेवक-दल बनाएँ। इस दल के सदस्यों के लिए कांग्रेस का सदस्य होना और केन्द्रीय स्वयंसेवक-दल के नियन्त्रण को मानना जरूरी रखा गया। इसके बाद साम्प्रदायिक प्रश्न पर विचार हुआ और एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ। विदेशी कपड़े और सूत के बहिष्कार की रूपरेखा तैयार की गई। यह भी निश्चय किया गया कि अस्पृश्यता-निवारण-समिति को, जो गत वर्ष सविनय अवज्ञा के संग्राम में लुप्त हो गई थी, पुनर्जीवित किया जाय। मिल-समिति की तथा मजदूरों की हालत के प्रश्न पर कार्य-समिति ने यह निर्णय किया कि जहां सम्भव और आवश्यक प्रतीत हो, उक्त समिति आपसी तजबीजों के द्वारा ऐसी मिलों में, जिन्होंने कांग्रेस की घोषणा पर हस्ताक्षर कर दिये हों, मजदूरों को दण्ड दिये जाने या निकाले जाने को रोकने और मजदूरों की स्थिति को अधिक अच्छी करने की कोशिश करे।

महासमिति की बैठक ६, ७ और ८ अगस्त १९३१ को हुई। उसने बहुत महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये। पहला प्रस्ताव बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर की हत्या के प्रयत्न और बंगाल में जज गार्लिक की हत्या के संबंध में था। इसके पश्चात् राष्ट्रीय-झंडा-समिति की रिपोर्ट पर विचार हुआ और यह निश्चय किया गया कि राष्ट्रीय झण्डा तीन रंग का और पहले की तरह लम्बाई-चौड़ाई में समानान्तर होगा। लेकिन उसके रङ्ग क्रमशः ऊपर से नीचे केसरिया, सफेद और हरा होंगे। सफेद पट्टे के केन्द्र में गहरे नीले रङ्ग का चरखा होगा। रंग गुणों के न कि जातियों के सूचक हैं। केसरिया रङ्ग साहस और बलिदान का, सफेद रङ्ग शान्ति और सत्य का, हरा रङ्ग श्रद्धा तथा वीरता का एवं चर्खा जनता की आशा का प्रतिनिधि होगा। झण्डे की लम्बाई-चौड़ाई का अनुपात ३ : २ होगा। ३० अगस्त रविवार को नया राष्ट्रीय झण्डा फहराने का निश्चय किया गया। इसी के अनुसार

प्रति मास हर रविवार को झण्डा फहराया जाने लगा। मौलिक-अधिकार-समिति की रिपोर्ट पर विचार हुआ और अधिकार एवं कर्त्तव्य स्वीकृत हुए।

सीमा-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी, अफगान-जिरगा तथा खुदाई-खिदमतगारों के सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस-विधान के अनुसार एक नई प्रान्तीय संस्था स्थापित की जाय जो प्रान्त में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करे। यह नई चुनी हुई कमिटी प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी होगी। उस प्रान्त की भाषा में यह सीमा-प्रान्तीय जिरगा कहलायेगी। इसी तरह जिला तथा स्थानीय कांग्रेस-कमिटियां स्थानीय जिरगे कहे जा सकेंगे। यह भी फैसला हुआ है कि खुदाई खिदमतगार कार्य-समिति के हाल के प्रस्ताव के अनुसार कांग्रेस-स्वयंसेवक बन जायं। 'खुदाई खिदमतगार' नाम रक्खा जा सकेगा। कांग्रेस के विधान, नियम और कार्यक्रम के अनुसार ही सम्पूर्ण संगठन चलाया जायगा। इसलिए झंडे के तौर पर वस्तुतः राष्ट्रीय झंडा ही काम में लाया जायगा। कार्य-समिति की प्रार्थना पर सीमा-प्रान्तीय नेता खान अब्दुलगफ्फारखां ने उस प्रान्त में कांग्रेस-आन्दोलन के संचालन का भार अपने कंधों पर ले लिया।

कार्य-समिति ने इस आशय का प्रस्ताव भी पास किया कि वह अनिच्छा-पूर्वक इस परिणाम पर पहुंची है कि समझौते की शर्तों और राष्ट्रीय हितों को देखते हुए कांग्रेस गोलमेज परिषद् में न भाग ले सकती है और न उसे लेना ही चाहिए। मणि-भवन (बम्बई) में सारे दिन आशाओं से भरी ऐसी अफवाहें गरम हो रही थीं कि सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के आखिरी समय किये गये शान्ति के प्रयत्नों के कारण गांधीजी का लन्दन जाना सम्भव हो जायगा। लेकिन जब गांधीजी रात के ८।।। बजे मणि-भवन छोड़कर बम्बई-सेन्ट्रल स्टेशन पर गुजरात-मेल के एक तीसरे दर्जे के डिब्बे में सवार हो गये तब सब सन्देह बिलकुल खतम हो गये।

परिषद् में न जाने के कारण

गांधीजी के गोलमेज-परिषद् में उपस्थित होने से इन्कार करने और १३ अगस्त को वाइसराय को तार-द्वारा अपने निश्चय से (जिसका समर्थन कार्य-समिति ने भी किया) सूचित करने का, एक कारण था। वस्तुतः इमर्सन साहब के ३० जुलाई के पत्र, बम्बई गवर्नर के पत्र तथा सर माल्कम हेली के तार ने, यह निश्चय करने में गांधीजी को बाध्य किया था, लेकिन इनमें सबसे बड़ा कारण था बारडोली में लगान-वसूली के लिए दमनकारी उपायों का अवलम्बन। २२ लाख रुपये में से २१ लाख दिए जा चुके थे। कांग्रेस का कहना था कि लगान न चुकानेवाले आपत्ति में ग्रस्त हैं और समय चाहते हैं। परन्तु सरकार ने पुलिस-द्वारा धमकियां देना तथा पुलिस के 'जुल्म' के जोर पर उस साल का तथा पिछले

सालों का बकाया वसूल करना शुरू किया। सरकार का कहना था कि लगान की वसूली में अन्तिम निर्णय कांग्रेस का नहीं, बल्कि सरकार और उसके कर्मचारियों का होना चाहिए। सरकार को मालगुजारी की इतनी परवाह न थी, जितनी अपने रौब की।

एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण और भी था, जिससे गांधीजी इंग्लैंड नहीं जाना चाहते थे। भारत-सरकार ने डॉक्टर अंसारी को गोलमेज-परिषद् का प्रतिनिधि मनोनीत नहीं किया था। स्वभावतः कांग्रेस उन्हें ले जाना चाहती थी। कांग्रेसी होने के अलावा वह भारत की एक बड़ी पार्टी—राष्ट्रीय मुस्लिम दल—का प्रतिनिधित्व करते थे। सभी मुसलमान उन्नति-विरोधी नहीं थे। उनमें भी एक ऐसा साफ गिरोह था, जो दिल से राष्ट्रीय था और पूर्ण स्वराज्य के लिए उत्सुक था। लॉर्ड अर्विन ने गांधीजी के कहने से पण्डित मदनमोहन मालवीय, श्रीमती सरोजिनी नायडू और डाक्टर अंसारी को मनोनीत करने का वचन दिया था। लॉर्ड विलिंगडन भी यह जानते थे। लॉर्ड अर्विन के वचन का पालन करने की मांग के उत्तर में लॉर्ड विलिंगडन ने यह दलील दी कि मुसलमान-प्रतिनिधि डॉक्टर अंसारी के प्रतिनिधित्व के विरुद्ध हैं। देश में डॉक्टर अन्सारी की स्थिति असाधारण थी, उनके अनुयायी भी बहुत थे, उनके विचार भी राष्ट्रीय थे। वह साम्प्रदायिकता के प्रबल और निर्भीक विरोधी थे। ऐसे डॉक्टर अन्सारी के चुनाव को वह मुसलमान-प्रतिनिधि कैसे सहन करते? कांग्रेस ने साम्प्रदायिक प्रश्न पर एक हल तैयार कर लिया था, जिसका समर्थन गोलमेज परिषद् में एक हिन्दू और एक मुसलमान प्रतिनिधि करते। सरकार यह जानती थी। इसलिए वह साफ तौर पर मुसलमान अंग को काटकर कांग्रेस को बेकार बना देना चाहती थी। इन परिस्थितियों में कांग्रेस के लिए राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा करते हुए केवल एक ही मार्ग खुला था। गांधीजी ने उसे ही पकड़ा और गोलमेज-परिषद् के लिए लन्दन जाने से इन्कार कर दिया।

लन्दन के लिए प्रस्थान

गांधीजी ने शान्ति के लिए कभी दरवाजा बन्द नहीं किया। उनका कहना था कि ज्यों ही रास्ता साफ हुआ, मैं लन्दन की ओर दौड़ पड़ूंगा। जो बात प्रत्येक राजनैतिक विचार के दिमाग में घूम रही थी, उसे उन्होंने खुले तौर पर कह दिया—"यहां के बड़े सिविलियन नहीं चाहते कि मैं परिषद् में जा सकूं और यदि वे चाहते भी हैं, तो ऐसी परिस्थितियों में ,जिन्हें कांग्रेस-जैसी कोई राष्ट्रीय-संस्था बर्दाश्त नहीं कर सकती।" देश के सिविलियन बड़े जोरों से यह बात फैला रहे थे कि कांग्रेस के रूप में गांधीजी एक मुकाबले की सरकार कायम करना चाहते हैं और ऐसी विध्वंसक संस्था कभी गवारा नहीं की जा सकती। गांधीजी ने बम्बई से अहमदाबाद

के लिए रवाना होते समय लार्ड विलिंगडन को एक निजी पत्र लिखा कि अपने नेतृत्व में मुकाबले की सरकार खड़ी करने का मेरा इरादा कभी नहीं रहा और न मैंने कभी पंच नियुक्त करने पर जिद की। हां, उसके इस अधिकार का दावा मैंने अवश्य किया है। मैं तो केवल न्याय चाहता हूं। कांग्रेस-कार्य-समिति ने आज प्रातःकाल जो प्रस्ताव पास किया है उसके अनुसार दिल्ली-समझौते का अन्त नहीं समझना चाहिए। इससे आप देखेंगे कि कार्य-समिति इस समय सरकार को परेशान नहीं करना चाहती और वह सच्चाई से दिल्ली-समझौते का पालन करना चाहती है।

गांधीजी ने अपना पत्र इस प्रार्थना के साथ समाप्त किया कि इसका उत्तर शीघ्र मिले और यदि दिल्ली-समझौते का पालन मंजूर है तो शिकायतों पर शीघ्र ही विचार किया जाय; क्योंकि कांग्रेसी कार्यकर्त्ता इस पर जोर दे रहे हैं कि यदि शिकायतें दूर नहीं होतीं तो कम-से-कम आत्म-रक्षा के लिए रक्षात्मक उपाय हाथ में लेने की आज्ञा दी जाय। गांधीजी को इसकी कोई चिन्ता न थी कि सरकार कांग्रेस को अपने और जनता के बीच मध्यस्थ स्वीकार नहीं करती। वह सरकार को परेशानी में डालने अथवा उसे अपमानित करना नहीं चाहते थे।

गांधीजी ने शिमला से प्राप्त १४ अगस्त के तार से अधिकार पाकर सरकार के विरुद्ध आरोप-सूची प्रकाशित कर दी। गांधीजी के पत्र का वाइसराय ने जो जवाब दिया, वह भी सन्तोषजनक न था। उसमें वाइसराय ने यह भी लिखा था कि गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस का सम्मिलित न होना समझौते के प्रधान उद्देश्य को असफ़ल करना है। इस विषय पर वाइसराय से बातचीत करने के लिए गांधीजी ने तार-द्वारा मुलाकात की अनुमति मांगी। मुलाकात की अनुमति मिल गई। गांधी जी, श्री वल्लभभाई पटेल, जवाहरलालजी और सर प्रभाशंकर पट्टनी वाइसराय से मिले। वाइसराय ने कार्यकारिणी की बैठक की। आखिर बहुत-सी बाधाओं के बाद मामले किसी तरह सुलझाये गये और गांधीजी शिमला से स्पेशल ट्रेन-द्वारा उस गाड़ी को पकड़ने के लिए रवाना हुए, जो उन्हें २९ अगस्त को रवाना होने वाले जहाज पर सवार करा सके। इस तरह गांधीजी और भारत-सरकार के प्रतिनिधियों की बातचीत के परिणाम-स्वरूप यह फैसला हुआ कि कांग्रेस की ओर से गांधीजी गोलमेज परिषद् में भाग लें। इसके अनुसार वह बम्बई से २९ अगस्त को जहाज पर रवाना हो गये।

यात्रा में गांधीजी

गांधीजी के साथ श्री महादेव देसाई, देवदास गांधी, प्यारेलाल, श्रीमती मीराबहन और श्रीमती सरोजिनी नायडू थीं। अदन में उनका हार्दिक स्वागत हुआ। अरबों तथा भारतीयों ने उन्हें एक साथ अभिनन्दन-पत्र दिया।

रेजीडेन्ट सभा में राष्ट्रीय झण्डा फहराने की अनुमति नहीं देना चाहता था। गांधी जी ने स्वयं यह गुत्थी सुलझाई। उन्होंने स्वागत समति के अध्यक्ष श्री फरामरोज कावसजी को यह सुझाया कि वह रेजिडेण्ट को फोन पर यह सूचित कर दें कि इन परिस्थितियों में गांधीजी अभिनन्दन-पत्र लेना स्वीकार नहीं करेंगे। यह दलील काम कर गई। जहां गांधीजी को मानपत्र देना था उस स्थान पर भारत का राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया और ३२८ गिनी की थैली उन्हें भेंट में दी गई।

जहाज पर गांधीजी उसी तरह अपनी प्रार्थना, अपना चरखा और बालकों के साथ अपना मनोरंजन आदि साधारण जीवन व्यतीत करते रहे, जैसे आश्रम में करते थे। गांधीजी को श्रीमती जगलुलपाशा और वफ्द पार्टी के अध्यक्ष नहस-पाशा ने बधाई भेजी। पहले का संदेश तो स्वभावतः हृदयस्पर्शी था, और दूसरे का हार्दिक उत्साह इस उद्धरण से ज्ञात हो जायगा—

"अपनी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के लिए लड़ते हुए मिश्र के नाम पर मैं उसी स्वाधीनता के लिए लड़नेवाला भारत के सर्वप्रधान नेता का स्वागत करता हूं। मेरी हार्दिक कामना है कि आपकी यह यात्रा सकुशल समाप्त हो और आप प्रसन्नतापूर्वक लौटें। मैं ईश्वर से भी प्रार्थना करता हूं कि आप जब वहां से लौटकर स्वदेश जाने लगें, तब मुझे आपसे मिलने की खुशी हासिल हो। ईश्वर आपको चिरायु करे और आपके प्रयत्नों में आपको व्यापक तथा स्थायी विजय दे।"

मिश्री शिष्ट-मण्डल को पोर्टसईद पर गांधीजी से मिलने की आज्ञा नहीं दी गई, लेकिन कैरो पर भारतीयों के शिष्ट-मण्डल को उनसे मिलने दिया गया। बहुत दिक्कत के बाद नहसपाशा का एक प्रतिनिधि गांधीजी से मिल सका। जब गांधीजी मार्सेलीज पहुंचे, तब वहां श्री रोम्यां रोलां की बहन मैडलीन रोलां उनका उत्साहपूर्वक स्वागत करने के लिए प्रतीक्षा कर रही थीं। रोम्यां रोलां अस्वस्थ होने के कारण स्वयं उपस्थित न हो सके थे। मैडलीन रोलां के साथ मोशियर प्रिवे तथा उनकी पत्नी भी थीं। मो० प्रिवे स्विटजरलैण्ड के एक अध्यापक थे, जिन्हें भारत-सरकार ने पीछे १९३२-३३ के आन्दोलन में मामूली तथा संदिग्ध अध्यापक कहकर प्रसिद्ध कर दिया था। कितने ही फ्रांसीसी विद्यार्थियों ने भी गांधीजी का अभिनंदन किया।

लन्दन में गांधीजी

गांधीजी लन्दन के ईस्ट-एन्डवाले सार्वजनिक गृहों तथा ग़रीबों के मैले घरों के बीच मिस म्यूरियल लिस्टर के यहां किंग्स्ले-हाल में ठहरे। लन्दन में उन्हें ठहरने के लिए बहुत-से निमंत्रण मिले और इससे भी अधिक निमंत्रण गांवों में उन्हें सप्ताह का अन्तिम भाग शान्ति से बिताने के लिए मिले। एक मित्र ने

एक दिन यूस्टन रोड पर स्थित मित्र-सभा-भवन में दिये गांधीजी के भाषण तथा किंग्स्ले-हाल से न्यूयार्क को ब्रौडकास्ट-द्वारा भेजे गये संदेश की रिपोर्ट 'टाइम्स' में पढ़कर ५० पौंड का चेक ही भेज दिया था। 'चचा गांधी'—हिन्दुस्तानी चप्पल के सिवा नंगे पैर, कमीज नदारद, सिर्फ चादर ओढ़े हुए—ईस्ट-एन्ड के बालकों में इतने प्रिय हो गये थे कि वे प्रति दिन प्रातःकाल आकर उनको घेर लेते थे। गांधीजी और उनकी शाम की प्रार्थनायें, लंकाशायर के मजदूरों के सामान्य अतिथि के रूप में गांधीजी, और उनकी ब्रिटिश-सम्राट् से अपनी मामूली पोशाक में भेंट—ये सब ऐसी बातें हैं जिनका कांग्रेस के इतिहास से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, लेकिन जो भारतीयों के लिए बहुत दिलचस्पी की हैं।

परिषद् में गांधीजी

गोलमेज परिषद् में गांधीजी एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी ओर हमारा ध्यान गये बिना नहीं रह सकता। फेडरल स्ट्रक्चर कमिटी में दिये गये उनके भाषण को लन्दन में दिये गये उनके अन्य भाषणों की उत्तम भूमिका कह सकते हैं। उन्होंने कांग्रेस, उसका इतिहास, उसकी रचना, उसके साधन, उसके उद्देश्य आदि सबका संक्षिप्त परिचय नपे-तुले शब्दों में दिया। उन्होंने कांग्रेस के जन्मकालीन सहायक और पालन-पोषणकर्ता मि० ए० ओ० ह्यूम के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की और कांग्रेस तथा सरकार और कांग्रेस तथा अन्य दलों के आधार-भूत भेदों का निर्देश किया। उन्होंने करांची का प्रस्ताव पढ़कर उसकी व्याख्या की। उन्होंने यह भी बताया कि प्रधान मन्त्री का वक्तव्य केन्द्रीय उत्तरदायित्व, संघ तथा भारतीय हितों की दृष्टि से संरक्षण, इन तीन कारणों से चित्रित भारतीय ध्येय से बहुत कम है। उन्होंने वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता पर भी विचार प्रकट किये।

अल्प संख्यक-समिति में भाषण देते हुए गांधीजी ने कई खरी बातें पेश कीं। उन्होंने असंदिग्ध भाषा में यह कहते हुए स्थिति को बिलकुल साफ कर दिया कि विभिन्न जातियों को अपने पूरे बल के साथ अपनी-अपनी मांग पर जोर देने के लिए उत्साहित किया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि यही प्रश्न आधार-रूप नहीं है, हमारे सामने मुख्य प्रश्न तो शासन-विधान का निर्माण है। उन्होंने पूछा कि क्या प्रतिनिधियों को अपने घरों से ६००० मील केवल साम्प्रदायिक प्रश्न हल करने के लिए ही बुलाया गया है? हमें लन्दन में इसलिए निमंत्रित किया गया है कि हमें जाने से पहले यह संतोष हो जाय कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए हम सम्मान-युक्त और असली ढांचा तैयार कर चुके हैं और अब उसपर केवल पार्लमेण्ट की स्वीकृति लेनी रह गई है। उन्होंने सर ह्यूबर्टकार की अल्पसंख्यक

जातियों की योजना की चुटकी लेते हुए कहा कि सर ह्यबर्टकार तथा उनके साथियों को इससे जो संतोष हुआ है वह मैं उनसे न छीनूंगा, लेकिन मेरे विचार में उन्होंने जो-कुछ किया है वह मुर्दे की चीर-फाड़-जैसा ही है। सरकार की यह योजना उत्तरदायित्वपूर्ण शासन अर्थात् स्वराज्य प्राप्ति के लिए नहीं, किन्तु नौकरशाही की सत्ता में भाग लेने के लिए ही बनाई गई है। 'मैं उनकी सफलता चाहता हूँ, लेकिन कांग्रेस इससे बिलकुल अलग रहेगी। किसी ऐसे प्रस्ताव या योजना पर, जिससे कि खुली हवा में पैदा होनेवाला आजादी और उत्तरदायी शासन का वृक्ष कभी पनप न सकेगा, अपनी सहमति प्रकट करने की अपेक्षा कांग्रेस वर्षों जंगल में भटकना स्वीकार कर लेगी।' अन्त में उन्होंने उस कठिन प्रतिज्ञा के साथ अपना भाषण समाप्त किया, जिस पर कुछ समय बाद उन्होंने अपने जीवन की बाजी लगा दी थी। उन्होंने कहा कि अन्य अल्पसंख्यक जातियों के भावों को मैं समझ सका हूं, लेकिन अछूतों की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए सबसे अधिक निर्दय घाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक निरंतर रहेगा। हम नहीं चाहते कि अस्पृश्यों का एक पृथक् जाति के रूप में वर्गीकरण किया जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और ईसाई हमेशा के लिए ईसाई रह सकते हैं। लेकिन क्या अछूत भी सदा के लिए अछूत रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूंगा कि हिन्दू-धर्म ही डूब जाय। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं वे भारत को नहीं जानते, और हिंदू-समाज का निर्माण किस प्रकार हुआ है, यह भी नहीं जानते। इसलिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहता हूं कि इस बात का विरोध करनेवाला यदि सिर्फ मैं ही अकेला होऊं तो भी, अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी, मैं इसका विरोध करूंगा।

सेना के सवाल पर बहस हुई और गांधीजी ने इस विषय पर भी कुछ और स्पष्ट बातें कहीं। लेकिन इससे पहले उन्होंने यह भी कहा कि जरूरत हुई तो मैं इग्लैंड में अधिक समय तक ठहरने का विचार रखता हूं, क्योंकि मैं तो लन्दन आया ही इसलिए हूं कि सम्मान-युक्त समझौते का प्रत्येक सम्भव उपाय खोजने का प्रयत्न करूं। उन्होंने कहा कि कांग्रेस उत्तरदायी-शासन से आनेवाली सब प्रकार की जिम्मेदारियों को—रक्षा का पूर्ण अधिकार और वैदेशिक मामले तक—आवश्यक हेर-फेर और व्यवस्था के साथ अपने कन्धों पर उठाने के योग्य है। उन्होंने इसका भी निर्देश किया कि भारत की सेना वस्तुत: देश पर अधिकार जमाये रखने के लिए है। उसके सैनिक चाहे किसी जाति के हों, मेरे लिए सब विदेशी हैं; क्योंकि मैं उनसे बोल नहीं सकता, वे खुले तौर पर मेरे पास आ नहीं सकते और उन्हें यह सिखाया जाता है कि वे कांग्रेसियों को अपना देशभाई न समझें। इन सैनिकों और हमारे बीच एक पूरी दीवार खड़ी कर दी गई है।

अंग्रेजी सेना अंग्रेजों के स्वार्थों की रक्षा करने, विदेशियों के हमलों को रोकने तथा आन्तरिक विद्रोहों का दमन करने के लिए रखी गई है। वस्तुत: केवल अंग्रेजी सेना ही नहीं, सम्पूर्ण सेना (भारतीय सेना) रखने का भी यही हेतु है। सम्पूर्ण सेना पर पूरा-पूरा भारतीय अधिकार होना चाहिए। लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि वह सेना मेरा आदेश नहीं मानेगी, न प्रधान सेनापति और न सिक्ख या राजपूत ही मेरी आज्ञा मानेंगे, किन्तु फिर भी मैं आशा करता हूं कि ब्रिटिश-जनता की सद्भावना से मैं अपने आदेश और आज्ञा का पालन उनसे करा सकूंगा। अंग्रेजी फौज को भी यह कहा जा सकेगा कि अब तुम यहां अंग्रेजों के स्वार्थों की रक्षा के लिए नहीं, वरन् भारत को विदेशी आक्रमण से बचाने के लिए हो। यह सब मेरा स्वप्न है। मैं जानता हूं कि मैं ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों तथा जनता से इस स्वप्न को पूर्ण न करा सकूंगा; लेकिन यदि इस समय मेरा यह स्वप्न पूरा न हुआ, और मैं फौज पर अधिकार न पा सका तो जिन्दगी-भर इसके पूर्ण होने की प्रतीक्षा करूंगा। भारत अपनी रक्षा करना जानता है। मुसलमान, गुरखे, सिक्ख और राजपूत हिन्दुस्तान की हिफाजत कर सकते हैं। राजपूत तो ग्रीस की एक छोटी-सी थर्मा-पोली नहीं, हजारों थर्मापोलियों के जन्मदाता कहे जाते हैं।

गांधीजी अंग्रेजों और उनकी कर्तव्य-बुद्धि पर विश्वास करते थे। उन्होंने कहा कि हमें अंग्रेजों के हृदय में भारत के प्रति उस प्रेम-भाव का संचार कर देना चाहिए, जिससे भारत अपने पैरों पर खड़ा हो सके। यदि अंग्रेजों का यह खयाल है कि ऐसा होने के लिए अभी एक सदी दरकार है, तो इस सदी-भर कांग्रेस बयावान में भटकती रहेगी, उसे भयंकर अग्नि-परीक्षा में होकर गुजरना होगा, आपदाओं के तूफान और गलतफहमियों के बवण्डर का मुकाबला करना होगा और यदि परमात्मा की इच्छा हुई तो गोलियों की बौछार भी सहनी पड़ेगी। संरक्षणों पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि कोई भी ऐसा संरक्षण नहीं है, जो साथ-साथ ब्रिटिश-स्वार्थों की भी रक्षा न करे, बशर्तेकि हम साझेदारी—इच्छित और सर्वथा बराबरी के दर्जे की साझेदारी—की कल्पना करें। गोलमेज-परिषद् के खुले अधिवेशन में बोलते हुए उन्होंने उपस्थित लोगों के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि मैं इस भ्रम में नहीं हूं कि आजादी वाद-विवाद से एवं सन्धि-चर्चा से मिल सकती है। लेकिन मैं यह जरूर कहूंगा कि जब यह घोषणा हो चुकी है कि परिषदों या कमिटियों में फैसले की कसौटी बहुमत नहीं रखी जायगी, तब परिषद् के संयोजक ऐसी कमिटियों की एक के बाद दूसरी रिपोर्ट पर 'बहुमत की सम्मति' कैसे लिखते हैं और मतभेद रखनेवाले 'एक' के नाम तक का उल्लेख नहीं करते, वह 'एक' कौन है? क्या यहाँ उपस्थित दलों में से कांग्रेस भी एक दल है? मैं तो पहले भी यह दावा कर चुका हूं कि कांग्रेस ८५ फीसदी जनता की प्रतिनिधि है। अब मैं यह दावा करता हूं कि अपनी सेवा के अधिकार से कांग्रेस राजाओं, जमींदारों

और शिक्षित-वर्ग की भी प्रतिनिधि है। अन्य सब प्रतिनिधि खास-खास वर्गों के प्रतिनिधि होकर आये हैं; कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी संस्था है जो साम्प्रदायिकता से दूर है। इसका मंच सबके लिए एकसा खुला है। फिर भी इसे अनेक दलों में से एक दल माना गया है। लेकिन यह भी याद कर लेना चाहिए कि यही एकमात्र ऐसी संस्था है, जिससे कारआमद फैसला हो सकता है। कुछ लोग अनुभव कर रहे थे कि कांग्रेस मुकाबले की सरकार चलाने की कोशिश कर रही है। यदि कांग्रेस हत्यारे के छुरे, जहरीले प्याले, गोलियों और भालों के मार्ग को छोड़कर अहिंसा-पूर्वक मुकाबले की सरकार चला सकती है, तो इसमें बुरा क्या है? यह ठीक है कि कलकत्ता कारपोरेशन पर एक लांछन लगाया गया था, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि ज्योंही उस बात के सम्बन्ध में मेयर का ध्यान आकृष्ट किया गया, उन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर ली और उस सम्बन्ध में यथोचित परिमार्जन भी किया था। कांग्रेस हिंसा नहीं, अहिंसा को मानती है; इसलिए सविनय अवज्ञा-आन्दोलन जारी किया गया। इसे भी तो सरकार ने बरदाश्त नहीं किया। परन्तु उसका मुकाबला भी नहीं किया जा सकता था—स्वयं जनरल स्मट्स भी नहीं कर सके। १९०८ में जो भारतीयों को देने से इन्कार किया जाता था, १९१४ में वही दे देना पड़ा। बोरसद तथा बारडोली में सत्याग्रह सफल हुआ है, इसे लॉर्ड चेम्सफोर्ड भी स्वीकार कर चुके हैं। लॉर्ड अर्विन ने आर्डिनेन्सों-द्वारा देश को खूब तपाया है, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। समय रहते हुए, मैं चाहता हूं, आप समझें कि कांग्रेस का ध्येय क्या है। परमात्मा के नाम पर मुझ ६२ साल के दुबले-पतले आदमी को थोड़ा-सा तो मौका दो। मुझे और जिस संस्था का मैं प्रतिनिधि हूं उसके लिए, अपने हृदय के कोने में थोड़ा स्थान तो बनाओ। यद्यपि आप मुझपर विश्वास करते प्रतीत होते हैं, तथापि कांग्रेस पर अविश्वास करते हैं। परन्तु एक क्षण के लिए भी आप मुझे उस महान् संस्था से भिन्न न समझिए जिसमें मैं समुद्र की एक बूंद के समान हूं। मैं कांग्रेस से बहुत छोटा हूं; और यदि आप मुझपर विश्वास कर मुझे कोई जगह दें, तो मैं आपको आमन्त्रित करता हूं कि आप कांग्रेस पर भी विश्वास कीजिए, अन्यथा मुझपर आपका जो विश्वास है वह किसी काम का नहीं; क्योंकि कांग्रेस से जो अधिकार मुझे मिला है उसके सिवा मेरे पास कोई अधिकार नहीं। यदि आप कांग्रेस की प्रतिष्ठा के अनुकूल काम करेंगे, तो आप आतंकवाद को नमस्कार कर लेंगे। तब आपको उसे दबाने के लिए अपने आतंकवाद की कोई जरूरत न रहेगी। क्या आप यह नहीं देखेंगे कि हम गेहूं को बनी हुई रोटी नहीं, बल्कि आजादी की रोटी चाहते हैं, और जबतक रोटी नहीं मिल जाती, ऐसे हजारों लोग मौजूद हैं, जो इस बात के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध हैं कि उस वक्त तक न तो खुद शान्ति लेंगे और न देश को ही चैन से बैठने देंगे?

१ दिसम्बर को परिषद् विसर्जित। हुई गांधीजी ने सभापति को धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश करते हुए कहा कि अब हमें अलग-अलग रास्तों पर जाना होगा। मनुष्य-स्वभाव का गौरव तो इसमें है कि हम जीवन में आनेवाली आंधियों से टक्कर लें। मैं नहीं जानता कि मेरा रास्ता किस दिशा में होगा, लेकिन इसको मुझे चिन्ता नहीं है। यदि मुझे आपसे बिलकुल विभिन्न दिशा में भी जाना पड़े, तो भी आप मेरे हार्दिक धन्यवाद के अधिकारी तो हैं ही। इन भावीसूचक शब्दों के साथ गांधीजी गोलमेज-परिषद् से बिदा हुए। उस समय स्थिति यह थी कि जिन शर्तों पर कांग्रेस गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित हुई थी, उनमें से एक 'घोर दमन रोक दिया जायगा'—पूरी तरह टूट चुकी थी। गांधीजी बंगाल तथा उत्तर प्रदेश की बढ़ती हुई बुरी स्थिति से बहुत चिन्तित हुए, क्योंकि उनका खयाल था कि भारत में दमन-नीति को जारी रखना लन्दन में प्रदर्शित सहयोग और भारत को स्वतंत्रता देने की इच्छा से बिलकुल मेल नहीं खाता।

बारडोली में अशांत वातावरण

उधर गांधीजी गोलमेज-परिषद् में भाग ले रहे थे, इधर देश का वातावरण विषाक्त होता जाता था। जब गांधीजी गोलमेज-परिषद् के लिए रवाना हुए थे, तब यह आश्वसन दिया गया था कि बारडोली में लगान वसूली के सिलसिले में पुलिस की ज्यादतियों के आरोपों की जांच होगी। मि० गॉर्डन को सूरत जिले की मालगुजारी-कानून के अनुसार अधिकार देकर जांच के लिए खास अफसर नियत किया गया। जांच ६ अक्तूबर १९३१ को शुरू हुई। श्री भूलाभाई देसाई और सरदार वल्लभभाई पटेल उपस्थित थे। दोनों पक्ष इसपर सहमत हो गये कि किसानों को अपनी शक्ति के अनुसार अधिक-से-अधिक लगान देना चाहिए और यदि किसान उन सत्याग्रहियों में से नहीं हैं, जिन्हें बहुत नुकसान उठाना पड़ा है, तो उन्हें कर्ज लेकर भी लगान देना चाहिए। जांच एक अरसे तक चलती रही। भारत-सरकार तथा बम्बई-सरकार ने ५ मार्च से २८ अगस्त तक जितनी आज्ञाएं प्रचारित की थीं, कांग्रेस ने उन्हें पेश करने के लिए कहा। कांग्रेस ने अभिलषित कागजों को मांगने के कारण बताये और यह भी बताया कि किस किस्म के कागज विरोधी-पक्ष के अधिकार में हैं। मि० गॉर्डन ने १२ नवम्बर १९३१ को यह हुक्म दिया कि विचाराधीन प्रश्न के सिलसिले में अनिश्चित और अयुक्ति-युक्त मांगों से सहमत होना असम्भव है। दरअसल सरकार के हाथ में मौजूद कागजों को पेश करने से इन्कार कर देने का अर्थ सरकारी गवाहों पर से जिरह की एक उपयोगी कैद को हटा देना था और यह भी महसूस किया गया कि इस तरह अधकचरी जांच निरुपयोगी से भी अधिक बुरी है। इस कारण सरदार वल्लभभाई पटेल ने जांच से हाथ खींच लिया।

अन्य प्रान्तों की स्थिति

बरडोली की जांच का यह हाल हुआ, अब उत्तर प्रदेश की ओर आइए! उत्तर-प्रदेश में भी विकट परिस्थिति उत्पन्न हो रही थी। किसानों की—अधिकांशतः ताल्लुकेदारों तथा जमींदारों के अधीनस्थ किसानों की—विपत्ति बढ़ रही थी। लगान-वसूली के तरीकों में नरमी का नाम-निशान न था। अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में तो किसानों पर आतंक का राज्य छा गया था। जिन जिलों में किसानों के साथ सख्तियां की गई थीं, उन्हें देखने तथा किसानों की स्थिति और विपत्तियों पर अपनी रिपोर्ट देने के लिये उत्तर प्रदेशीय कांग्रेस-कमिटी ने कई जांच कमिटियां बिठाई थीं, परन्तु उनकी जाँच का फल व्यर्थ हो गया। ऐसी स्थिति में भी उत्तर प्रदेशीय कांग्रेस-कमिटी ऐसा कोई कदम उठाना नहीं चाहती थी जिससे समझौते की बातचीत ही टूट जाय। लेकिन उसी समय किसानों के लगातार सलाह मांगने पर वह चुप भी न रह सकती थी और न यही सलाह दे सकती थी कि वे मांगी हुई रकम दे दें, क्योंकि उसे विश्वास था कि यह रकम बहुत अनुचित है और उन किसानों को तबाह कर देगी, जिनकी वह प्रतिनिधि है। तब कांग्रेस ने महासमिति के अध्यक्ष से आज्ञा लेने के बाद किसानों को यह सलाह दी कि वे लगान और मालगुजारी का चुकाना सन्धि-चर्चा के समय तक के लिए मुल्तवी कर दें। फिर भी कांग्रेस ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह सन्धि-चर्चा के लिए इच्छुक और उद्यत है और ज्योंही किसानों की शिकायत दूर हुई वह अपनी सलाह को वापस ले लेगी। सरकार चाहती थी कि पहले कांग्रेस अपनी सलाह वापस ले। उसने कांग्रेस का परामर्श नहीं माना। अब उत्तर प्रदेश की कांग्रेस-कमिटी के पास सिवा इसके कोई चारा न था कि लगान मुल्तवी करने की अपनी सलाह को दोहराये। सरकार ने अपने लिए खुद दूसरी नीति अख्तियार की। उसने सैकड़ों कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को जेल में डाल दिया। ये गिरफ्तारियां इतनी तड़ाक-फड़ाक हुईं कि सभी प्रमुख और उच्च कार्यकर्त्ता जेलों में पहुंच गये।

संघर्ष का तीसरा केन्द्र बंगाल था। अस्थायी सन्धि के समय वहां अत्याचारों के अनेक दृश्य देखने में आये। शायद इनका उद्देश्य था, चटगांव जिले में हुए उत्पातों का बदला लेना। चटगांव शहर और जिले में ३१ अगस्त और पिछले तीन दिनों में हुई घटनाओं की जांच करने के लिए एक गैर-सरकारी जांच-कमिटी नियुक्त की गई थी। कुछ गैर-सरकारी यूरोपियन और गुण्डे बड़े हथौड़े और लोहे की सलाखें लेकर रात को एक प्रेस में घुस गये और उन्होंने मशीनों को तोड़ दिया तथा प्रेस-मैनेजर एवं अन्य कर्मचारियों को मारा-पीटा। दिल्ली में २७, २८ और २९ नवम्बर को कार्य-सीमित ने इस घटना की रिपोर्ट पर विचार किया और आतंकवाद की नीति का अनुसरण करते हुए कुछ गैर-सरकारी यूरोपियनों तथा गुण्डों के साथ

निरपराध जनता की बेइज्जती करने तथा उसे भीषण क्षति पहुंचाने के लिए स्थानीय पुलिस तथा मजिस्ट्रेटों की तीव्र निन्दा की। जेलों से बाहर लोगों के साथ जब इस प्रकार आयर्लैण्ड के-से दमन के तौर-तरीके काम में लाये जा रहे थे, जेलों और नजरबन्दों के कैम्पों में उनके साथ और भी अधिक कठोर व्यवहार किया जा रहा था। हिजली के नजरबन्द कैम्प में जो दु:खान्त नाटक खेला गया, उसके फलस्वरूप २ नजरबन्द मर गये और २० घायल हो गये।

भारत के उत्तरी द्वार में सरकार ने चौथी अग्नि प्रज्वलित कर रक्खी थी। वहाँ खुदाई खिदमतगार अनुशासन एवं संगठन के साथ असहयोग के लिए तैयार किये गये थे। खान अब्दुलगफ्फार खां के नेतृत्व और प्रेरणा में काम करनेवाले ऐसे आदमी एक लाख से ऊपर थे। अगस्त के महीने तक इन खुदाई खिदमतगारों का कांग्रेस से सम्बन्ध नहीं था। अस्थायी संधि के समय से ही गांधीजी सीमाप्रान्त जाने और उस संगठन का अध्ययन करने के लिए कई बार लॉर्ड अर्विन से उन्होंने आज्ञा मांगी, लेकिन उन्हें आज्ञा नहीं मिली। अन्त में उन्होंने सीमाप्रान्त में श्री देवदास गांधी को भेजा। उन्होंने एक आश्चर्यजनक रिपोर्ट पेश की। उसपर कार्य-समिति ने विचार किया तथा खुदाई खिदमतगारों को कांग्रेस-संगठन का अंग बना कर एक महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन किया। बैण्ड और बिगुल, सिर से पैर तक लाल पोशाक और एक ऐसे ऊंचे व्यक्तित्व में श्रद्धा और विश्वास—जो अपने चरित्र, मनुष्यता, बलिदान एवं सेवा से 'सीमान्त-गांधी' का पद पा चुका था और बहुत जल्दी सब आंखों का एक लक्ष्य, एक केन्द्र हो रहा था—ये सब बातें उस संगठन को अर्द्ध-सैनिक सिद्ध करने के लिए काफी थीं। लाल पोशाक में एक लाख सेना—सब पठान, उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता था! सरकार को एक बहाना भी मिल गया कि खान अब्दुल गफ्फारखां सरकार से सहयोग नहीं करते, क्योंकि वह सीमा-प्रान्तीय चीफ-कमिश्नर के दरबार में सम्मिलित नहीं हुए। वह पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रचार करते हैं। बस, निरपराध खानसाहब और उनके भक्त तथा उन्हीं की तरह उनके निरपराध भाई डॉ० खानसाहब गांधीजी के भारत पहुंचने से कुछ ही दिन पहले जेल में डाल दिये गये।

गांधीजी जब २८ दिसम्बर को बम्बई उतरे तब परिस्थिति इस प्रकार बन चुकी थी।

: १५ :

कांग्रेस पर महान संकट : १९३२-३५

गांधीजी बम्बई में

देश के सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि गांधीजी का स्वागत करने के लिए २८ दिसम्बर को बम्बई में एकत्र हुए । चुंगी-दफ्तर के एक भवन में उनका विधिवत स्वागत किया गया। फिर एक जलूस निकाला गया। गांधीजी ने सबसे पहले बम्बई की जनता को अपना भाषण सुनाया। आजाद मैदान में सचमुच उस दिन बहुत भीड़ थी। गांधीजी ने उसके सामने गम्भीर आवाज में कहा कि मैं शान्ति के लिए अपने बस-भर कोशिश करूंगा और अपनी तरफ से कोई बात उठा न रक्खूंगा। साथ ही हिन्दू जाति से अछूतों को जुदा करनेवाले किसी भी प्रयत्न को मैं बरदाश्त नहीं करूंगा, बल्कि मौका पड़ने पर उसके विरोध में मैं अपनी जान लड़ा दूंगा।

तीन दिन तक गांधीजी जुदा-जुदा प्रान्तों से आये प्रतिनिधियों से मिलते रहे और उनकी दुःख कथायें सुनते रहे। बंगाल में अत्याचार हो रहे थे। सुभाष बाबू बंगाल से अपने चार साथियों को लेकर आये थे। उत्तर प्रदेश और सीमाप्रान्त में आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये थे। आरजी सुलह के दिनों में शासन की गाड़ी इन आर्डिनेन्सों से ही हांकी जा रही थी। देश में भयंकर मन्दी और घोर संकट था। कर्नाटक को कोई रिआयत नहीं दी गई थी। आन्ध्र में लगान बढ़ाया जानेवाला था और मद्रास के गवर्नर ने तो यहां तक धमकी दे रखी थी कि अगर लोग लगान रोकने की बात करेंगे तो आर्डिनेन्स जारी कर दिये जायंगे। गांधीजी ने ऐसी अनेक करुण कथाएँ सुनीं और फिर उन्होंने भी अपने दुखड़ों की कहानी लोगों को सुनायी। वह गोलमेज-परिषद् में जाना नहीं चाहते थे। जो बातें इस परिषद् में होनेवाली थीं उनकी छाया जुलाई और अगस्त में ही नजर आने लग गई थी, पर कांग्रेस की कार्य-समिति ने इस बात पर जोर दिया कि उन्हें जाना ही चाहिए। समझौते के भंग होने पर भी बाद में उन्हें परिषद् में जाने से इन्कार का मौका मिल गया था, पर मजदूर-सरकार चाहती थी कि उन्हें किसी प्रकार जहाज पर चढ़ा कर लन्दन रवाना कर ही दिया जाय।

सबसे पहली बात जो उन्होंने अपने साथियों से कही वह यही थी कि किसी चीज की कल्पना की अपेक्षा उसका प्रत्यक्ष अनुभव एक दूसरी ही चीज है। वह नरम-दल के नेताओं की मनोदशा से परिचित थे, पर वह उस दृश्य के लिए तैयार न थे जो उन्होंने लन्दन में देखा था। मुसलमानों के स्वभाव को भी वह जानते थे और उनकी प्रतिगामी-मनोवृत्ति से भी परिचित थे। पर गोलमेज-परिषद् में राष्ट्र-शरीर की जो चीर-फाड़ हुई उसके लिए वह हर्गिज तैयार न थे। उन्होंने इस बात

का भी निश्चय कर लिया था कि आइन्दा कांग्रेस किसी प्रकार की भी साम्प्रदायिकता का समर्थन नहीं करेगी। उसका धर्म शुद्ध और विशुद्ध राष्ट्र-धर्म होगा। उन्होंने यह भी कहा कि अगर यह देश साम्प्रदायिक प्रश्न के साथ इसी तरह पहले की भांति खिलवाड़ करता रहेगा तो इसके लिए कोई आशा नहीं है। अपने मुसलमान और सिक्ख-मित्रों से उन्होंने यह आश्वासन चाहा कि अगर भारत के लिए कोई ऐसा विधान बने जिसमें किसी प्रकार साम्प्रदायिकता की बू न हो और जो विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर बनाया जाय तो उसे वे स्वीकार कर लेंगे। इन सारे विचारों और अनुभवों के कारण उनके चित्त को बड़ा क्लेश हो रहा था; पर तत्कालीन परिस्थिति का उन्होंने बड़ी शान्ति और स्थिर चित्त से सामना किया। अपने ऊपर तथा अपने देश-भाइयों पर भी उन्हें खूब विश्वास था। देश ने उन पर विश्वास किया और उन्होंने उसका बराबर निर्वाह किया। अब आज उन्हें अपने सामने एक जबरदस्त खाई नजर आ रही थी। सवाल यह था कि इसपर पुल बनाया जा सकता है या इसे जिंदा और मरे हुए आदमियों से पाट कर पार करना होगा? जब वह अपने काम में भिड़े, उनके हृदय में ये विचार उमड़ रहे थे। कार्य-समिति उनके साथ थी। उन चौदह सदस्यों वाली कार्य-समिति की ही नहीं, उन्हें तो सारे देश की हिम्मत थी।

कार्य-समिति के आदेशानुसार उन्होंने लॉर्ड विलिंगडन को एक तार दिया और उसका जवाब भी आया। जवाब लम्बा और तफसीलवार था। उसमें धमकी भी थी। गांधीजी ने फिर एक तार दिया। मगर कोई नतीजा न निकला। अपने तार में गांधी जी ने लिखा कि अपने साथियों के कार्यों की नैतिक जिम्मेदारी से मैं अपने-आपको बरी नहीं समझता, पर मैं यह स्वीकार करता हूं कि मेरे साथियों के कार्यों की और हलचलों की ब्यौरेवार जानकारी मुझ नहीं है; क्योंकि मैं भारत में नहीं था और चूंकि कांग्रेस की कार्य-समिति को अपनी राय देकर मार्ग-प्रदर्शन करना मेरे लिए जरूरी था, मैंने निष्पक्ष भाव से वाइसराय से मिलना और मार्ग-दर्शन चाहा। मैं वाइसराय महोदय से अपनी यह राय नहीं छिपा सकता कि उन्होंने जो जवाब भेजने की कृपा की है वह मेरे सद्भाव और मित्रतापूर्ण प्रस्ताव का पर्याप्त उत्तर नहीं है। अगर अब भी वाइसराय चाहें तो मैं उनसे कहूंगा कि वह अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें और हमारी बातचीत पर, उसके विषय-क्षेत्र पर, बगैर कोई शर्त लगाये मुझसे मिलना स्वीकार करें। अपनी तरफ से मैं यह वचन दे सकता हूं कि वह जो भी बातें मेरे सामने रखेंगे उनपर मैं निष्पक्ष होकर विचार करूंगा। बगैर किसी हिचकिचाहट के और खुशी के साथ मैं उन-उन प्रांतों में जाऊंगा और अधिकारियों की सहायता से प्रश्न के दोनों पहलुओं का अध्ययन करूंगा, और यदि पूरे अध्ययन के पश्चात् मैं इस नतीजे पर पहुंचूंगा कि लोग गलती पर हैं और सरकार का ही पक्ष ठीक है,

तो इस बात को स्वीकार करने में और तदनुसार कांग्रेस को रास्ता बताने में मुझे कोई हिचकिचाहट न होगी। अहिंसा मेरा पहला आचार-धर्म है। मेरा विश्वास है कि सविनय-अवज्ञा जनता का केवल जन्म-सिद्ध अधिकार ही नहीं है, बल्कि वह हत्या और सशस्त्र बगावत का सफलतापूर्वक स्थान भी ले सकती है। इसलिए मैं कभी आचार-धर्म को अलग नहीं रख सकता। उसके पालन के लिए, कार्य-समिति ने मेरी सलाह से सविनय-अवज्ञा-सम्बन्धी एक तात्कालिक प्रस्ताव स्वीकार किया है। उसकी नकल मैं भेजता हूं। अगर वाइसराय समझें कि मुझसे मिलने में कुछ उपयोगिता है तो हमारी बातचीत खतम होने तक, इस आशा से कि आगे चलकर, यह रद कर दिया जायगा, यह प्रस्ताव मुल्तवी रहेगा। मैं मानता हूं कि हमारे बीच का यह तार-व्यवहार सचमुच इतना महत्वपूर्ण है जिसके प्रकाशन में जरा भी देरी न होनी चाहिए। इसलिए मैं अपना तार, आपका उत्तर, यह प्रत्युत्तर और कार्य-समिति का प्रस्ताव सब प्रकाशन के लिए भेज रहा हूं।

कार्य-समिति का प्रस्ताव

कार्य-समिति ने महात्मा गांधी की यूरोप-यात्रा और उत्तर प्रदेश तथा सीमा-प्रांत में जारी किये गये असाधारण आर्डिनेन्सों के कारण देश में उत्पन्न परिस्थिति पर विचार करने के पश्चात जो प्रस्ताव पास किया उसमें कहा गया कि देश की घटनायें तथा वाइसराय को तार, ये सब सरकार के साथ कांग्रेस का सहयोग तबतक के लिए बिलकुल असम्भव बना रहे हैं जबतक कि सरकार की नीति में कोई आमूल परिवर्तन नहीं हो जाता। इससे स्पष्ट है कि नौकरशाही हिन्दुस्तान की जनता के हाथों में यहां की हुकूमत सौंपना नहीं चाहती, बल्कि उसके द्वारा वह उलटे राष्ट्र की तेजस्विता को मिटा देना चाहती है। इससे यह भी प्रकट होता है कि सरकार एक ओर जहां कांग्रेस से सहयोग की उम्मीद करती है, वहां दूसरी ओर वह उसपर विश्वास भी नहीं करना चाहती।

बंगाल में हाल ही में आतंकवादी घटनायें हुई हैं, उनकी निन्दा करने में कांग्रेस किसी से पीछे नहीं है। पर साथ ही वह सरकार-द्वारा किये गये आतंकवाद की निन्दा भी उतने ही जोर के साथ करती है। सरकार की यह हिंसा हाल ही में जारी किये गये आर्डिनेन्सों और कानूनों से प्रकट है। सीमा-प्रांत के सम्बन्ध में स्वयं सरकार की बताई बातों से न तो आर्डिनेन्स जारी करने की कोई आवश्यकता जान पड़ती है और न खान अब्दुल गफ्फार खां तथा उनके साथियों को गिरफ्तार करने और उनपर बिना मुकदमा चलाये जेल में रखने का कोई आधार दिखाई देता है। निरपराध और निःशस्त्र लोगों पर की गई गोलाबारी भी अत्यन्त निष्ठुर और अमानुषिक है। सरकार को इन सब बातों की निष्पक्ष जांच करनी चाहिए। यदि उचित जांच-समिति नियत की जाय, और कार्य-समिति को गवाह पेश करने

की सब सुविधायें दी जायं, तो वह इस समिति के सामने गवाह पेश करके सहायता देने के लिए तैयार रहेगी।

गोलमेज-परिषद् में प्रधानमन्त्री-द्वारा की गई घोषणा और उसपर पार्लमेन्ट की कामन-सभा तथा लार्ड-सभा में हुए वाद-विवाद पर भी कार्य-समिति ने विचार किया और अपना यह मत प्रकट किया कि पूर्ण स्वाधीनता से, जिसमें राष्ट्र के हित के लिए आवश्यक सिद्ध होने वाले संरक्षणों के साथ सेना, वैदेशिक सम्बन्ध तथा आर्थिक मामलों पर पूर्ण अधिकार सम्मिलित हैं, जरा भी कम को कांग्रेस सन्तोषजनक नहीं मान सकती। साथ ही उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि इस बीच यदि आर्डिनेन्सों तथा हाल के कृत्यों के सम्बन्ध में काफी राहत दी जाय, भावी विचारों और परामर्श में कांग्रेस के लिए अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का दावा पेश करने की आजादी रहे और ऐसी स्वतन्त्रता मिलने तक देश का शासन लोक-प्रतिनिधियों की सलाह से चलाया जाय, तो कार्य-समिति सरकार को सहयोग देने के लिये तैयार है। इन शर्तों के आधार पर यदि सरकार की ओर से कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिले, तो कार्य-समिति इसे सरकार की ओर से दिल्ली के समझौते के रद किये जाने की सूचना समझेगी। सन्तोषजनक उत्तर न मिलने की दशा में कार्य-समिति राष्ट्र को कुछ निश्चित शर्तों पर फिर सविनय-अवज्ञा, जिसमें लगान-बन्दी भी सम्मिलित है, आरम्भ करने के लिए आह्वान करती है।

वाइसराय का उत्तर

गांधीजी के तार के उत्तर में, २ जनवरी की शाम को वाइसराय के प्राइवेट-सेक्रेटरी ने तार-द्वारा सूचित किया कि अपने उत्तरदायित्व का खयाल रखने वाली कोई भी सरकार किसी भी राजनैतिक संस्था की गैर-कानूनी कार्रवाई की धमकी-युक्त शर्तों को स्वीकार नहीं कर सकती, न भारत-सरकार आपके तार में वर्णित इस स्थिति को स्वीकार कर सकती है कि दिल्ली के समझौते पर पूरी सावधानी और पूरे ध्यान से विचार करने और अन्य सब सम्भव उपायों के समाप्त हो जाने के बाद, सरकार ने जिन उपायों का अवलम्बन किया है उनके औचित्य का आधार आपके निर्णय पर होना चाहिए। कांग्रेस ने जिन उपायों के अवलम्बन का इरादा जाहिर किया है, उनके सब परिणामों के लिए हम आपको और कांग्रेस को उत्तरदायी समझेंगे और उनके दबाने के लिए सरकार सब आवश्यक अस्त्रों का अवलम्बन करेगी।

गांधीजी का उत्तर

वाइसराय के उक्त तार के उत्तर में गांधीजी ने, ३ जनवरी १९३२ को जो तार भेजा उसमें उन्होंने लिखा कि प्रामाणिक मत-प्रदर्शन को धमकी समझ लेना

अवश्य ही भूल है। क्या मैं सरकार को याद दिलाऊं कि सत्याग्रह के जारी रहते हुए ही दिल्ली की सन्धि-चर्चा आरम्भ हुई और चलती रही थी, और जिस समय समझौता हुआ उस समय सत्याग्रह बन्द नहीं कर दिया गया था, वरन् स्थगित किया गया था। मेरे लन्दन जाने के पहले, गत दिसम्बर में, शिमला में इस बात पर दुबारा जोर दिया गया था और आपने तथा आपकी सरकार ने इसे स्वीकार किया था। यद्यपि मैंने उस समय यह बात स्पष्ट कर दी थी कि सम्भव है कुछ हालतों में कांग्रेस को सत्याग्रह जारी करना पड़े, तो भी सरकार ने बातचीत बन्द न की थी। यदि सरकार इस रवैये के विरुद्ध थी, तो वह मुझे लन्दन न भेजती। किन्तु इसके विपरीत मेरी बिदाई पर आपने शुभकामना प्रदर्शित की थी। आपका यह कहना भी उचि । और सही नहीं है कि मैंने कभी इस बात का दावा किया है कि सरकार की कोई भी नीति मेरे निर्णय पर निर्भर रहनी चाहिए। समय ही बतलायगा कि किसने सच्ची स्थिति ग्रहण की थी। इस बीच मैं सरकार को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि कांग्रेस की ओर से संग्राम को सर्वदा द्वेष-रहित तथा अहिंसापूर्ण तरीक़े से चलाने का पूरा प्रयत्न किया जायगा।

बेन्थल का गश्ती-पत्र

छः दिन में उक्त सभी घटनायें हो गयीं। ३० दिसम्बर को मि० बेन्थल गांधी जी से मिले। उन्होंने काफी देर तक बातचीत की। वह गोलमेज-परिषद् में हिन्दुस्तानके व्यापारिक प्रतिनिधि के रूप में शरीक हुए थे। व्यापारी-समुदाय के लिए गांधीजी की हलचल भयोत्पादक थी। बाद की घटनाओं एवं अनुभवों ने यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्र के हाथों में बहिष्कार एक बड़ा हथियार है। ऐसी स्थिति में मि० बेन्थल तथा उनके राज-भक्त साथियों ने जो 'गुप्त' गश्ती-पत्र प्रचारित किया, उसमें उन्होंने कांग्रेस के विरुद्ध बहुत-सी बातें लिखीं। गोलमेज-परिषद् का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा कि साम्प्रदायिक-समस्या को हल करने का उन्होंने (गांधीजी) जिम्मा लिया, लेकिन सारी दुनिया के सामने उन्हें असफल होना पड़ा...... । मुसलमानों का दल बहुत ठोस और मजबूत रहा। यहां तक कि राष्ट्रीय मुसलमान कहे जाने वाले अली इमाम भी उससे बाहर नहीं गये। शुरू से आखीर तक बड़ी होशियारी के साथ मुसलमानों ने खेल खेला। हमारा समर्थन करने का उन्होंने वादा किया था, जिसे उन्होंने पूरी तरह निभाया। बदले में उन्होंने हमसे कहा कि आर्थिक दृष्टि से बंगाल में उनकी जो बुरी हालत है उस पर हम ध्यान दें। उनकी 'ज्यादा लल्लो-चप्पो करने की तो जरूरत नहीं', पर अंग्रेजी फर्मों में हमें उनको जगह देने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे वे अपनी माली हालत और अपनी जाति की सामान्य स्थिति को ठीक कर सकें। मुसलमान, जो कि केन्द्र में उत्तरदायित्व नहीं चाहते, इस बात से खुश हैं। सरकार ने तो निश्चित

रूप से अपनी नीति बदल ली है और केन्द्रीय सुधारों के आश्वासन के साथ प्रान्तीय स्वराज्य पर ही मामला टालने की कोशिश की है। यह भी निश्चय है कि कांग्रेस के साथ लड़ाई अनिवार्य है; तब हमने महसूस किया और कहा कि जितनी जल्दी वह शुरू हो जाय उतना ही अच्छा है। लेकिन इसके साथ ही हमने यह भी सोच लिया है कि इसमें पूरी सफलता तभी मिल सकती है जबकि जितने हो सकें उन सब मित्रों को अपने पक्ष में करलें। मुसलमान तो हमारे साथ हैं ही, जैसा कि अल्पसंख्यक-समझौते और मुसलमानों के प्रति सरकार के सामान्य रुख से स्पष्ट है। यही हाल राजाओं और दूसरी अल्पसंख्यक जातियों का है।

हमें यह आवश्यक प्रतीत होता है कि सर सप्रू, जयकर, पैटरो आदि के समान सर्व-साधारण हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाया जाय। अगर हम उन्हें कांग्रेस के खिलाफ खड़ा न कर सकें तो कम-से-कम ऐसा तो कर ही सकते हैं कि जिससे वे कांग्रेस का साथ भी न दें। और यह कोई मुश्किल बात भी नहीं है। इसके लिए उन्हें सिर्फ यही विश्वास कराने की आवश्यकता है कि संघ-योजना को नहीं छोड़ा जायगा। हमने सरकार से आग्रह किया है कि वह प्रान्तीय और केन्द्रीय-विधानों को एक-साथ उपस्थित करे, जिसे ये लोग सरकार की ईमानदारी और सद्भाव का ठोस नमूना समझेंगे और इनका सन्तोष हो जायगा। जहांतक प्रान्तीय-स्वराज्य का सम्बन्ध है, वह हिन्दुस्तान पर जबरदस्ती नहीं लादा जा सकता; क्योंकि अकेले मुसलमान उसे नहीं चला सकते। मुसलमान तो अंग्रेजों के पक्के दोस्त ही हो गये हैं। अपनी परिस्थिति से उन्हें पूरा सन्तोष है और वे हमारे साथ काम करने के लिए तैयार हैं। लेकिन यह हरगिज न समझ लेना चाहिए कि जब हम यह कहते हैं कि सुधारों का होना जरूरी है तो हम हरेक प्रान्त में जन-तन्त्रीय सुधारों का ही प्रतिपादन करते हैं। हम जो कुछ कहते हैं उसका अर्थ शासन-पद्धति में ऐसे हेर-फेर करना भर है, जिससे कि उसकी सुचारुता बढ़ जाय।

मजदूर-सरकार ने अपनी घोषणा में भारत को जो कुछ देने का वचन दिया था उसके उद्देश्य को नष्ट करने को टोरी (कंजरवेटिव) सरकार और उसके साथियों ने कैसी चेष्टा की, यह उक्त उद्धरण से भली-भांति मालूम हो जाता है। भारत के विरुद्ध उन्नति-विरोधी ब्रिटिशों के बीच जो समझौता हुआ वह एकाएक नहीं हो गया। उसकी नींव तो गोलमेज-परिषद् के दूसरे अधिवेशन से कहीं पहले हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड दोनों जगह रखी जा चुकी थी। सच तो यह है कि जब गांधीजी और लॉर्ड अर्विन के बीच समझौता हुआ तब उसके बाद ही भारत में उन सब उन्नति-विरोधी लोगों ने, जो समझौते को पसन्द नहीं करते थे, शीघ्रता के साथ अपनी शक्तियों को संगठित किया और भारतीय राष्ट्रवादियों को शिकस्त देने के लिए अपना सम्मिलित गुट बना लिया था। इस षड्यन्त्र की आंशिक रचना तो शिमला में ही हुई थी, जो कि भारत-सरकार का सदर मुकाम है।

दमन-चक्र और गांधीजी की गिरफ्तारी

यह सब एक प्रकार की चुनौती थी। कार्य-समिति ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। वस्तुतः सरकार ने वहीं से लड़ाई को फिर से ग्रहण किया जहां पर कि ४ मार्च १९३१ को उसे छोड़ा गया था। अस्थायी-संधि के दर्मियान उसने हजारों लाठियां और एकत्र करली थीं। यह अवसर सरकार के लिए नये सिरे से लड़ाई की तैयारी करने का था। इस प्रकार अस्थायी-संधि का टूटना निश्चित ही था। तीन आर्डिनेन्स तो जारी कर दिये गये थे, और कई जारी कर देने के लिए वाइसराय की जेब में रखे हुए थे। ४ जनवरी १९३२ को सरकारी प्रहार शुरू हो गया। कांग्रेस को तथा उससे सम्बन्धित प्रत्येक संस्था को गैर-कानूनी करार दे दिया गया और कांग्रेसी लोगों को गिरफ्तार करके जेलों में भेजा जाने लगा। सरकारी लाठी-प्रहार पहले आन्दोलन (१९३१) के समय आरम्भ में नहीं, बल्कि बाद में जारी हुआ था, लेकिन १९३२ में सत्याग्रहियों को सबसे पहले उसी का मुकाबला करना पड़ा। चारों ओर यह बात फैल रही थी कि लॉर्ड विलिंगडन सारे उत्पात को छः सप्ताह में ही समाप्त कर देने की आशा रखते हैं। लेकिन छः सप्ताह का समय इतना कम था और सत्याग्रह ऐसी लम्बी लड़ाई थी कि उनकी आशा पूर्ण नहीं हुई।

गांधीजी गुजरात के उन ताल्लुकों में जाने का इरादा कर रहे थे, जिन्हें १९३० की लड़ाई में बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। लेकिन पेश्तर इसके कि वह वहां जायं, उन्हें और उनके विश्वस्त सहायक वल्लभभाई को ४ जनवरी के प्रातःकाल गिरफ्तार करके शाही कैदी बना दिया गया। खान साहब और जवाहरलालजी पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। इसलिए अब जो भारतीय राजनीतिज्ञ बाकी बचे थे उन्हीं को लड़ाई का संचालन करना पड़ा। हजारों की तादाद में सत्याग्रही मैदान में आये। १९२१ में उनकी संख्या तीस हजार थी, जो एक बड़ी तादाद मानी गई थी। १९३०-३१ में, दस महीने के थोड़े-से समय में ही, नब्बे हजार स्त्री-पुरुष और बच्चे दोषी करार देकर जेलों में ठूंस दिये गये। यह कोई नहीं जानता कि मार कितनों पर पड़ी, लेकिन जितनों को कैद की सजा हुई थी पिटनेवालों की संख्या उनसे ३ या ४ गुनी अधिक थी। लोगों को या तो पीटते-पीटते किसी काम के लायक ही न रहने दिया गया था या फिर छिपने और धर दबोचने की नीति से उन्हें थका दिया गया था। जेलों में कैदियों की पिटाई फिर शुरू हो गई। कांग्रेस के दफ्तर की जो गुप्त या खानगी बातें थीं उनका रहस्योद्घाटन करने के लिए कहा गया। 'तुम्हारे (कांग्रेस के) कागज-पत्र, रजिस्टर और चन्दे व स्वयं-सेवकों की फहरिस्तें कहां हैं?'—यह सरकार की मांग थी। नौजवानों को तरह-तरह से तंग किया गया और न कहने-योग्य बातें उन्हें कही गईं। अकथनीय सजाओं का

आयोजन करके उनको अमली रूप दिया गया। हाईकोर्ट के एक एडवोकेट को सताने के लिए एक-एक करके उसके बाल उखाड़े गये और यह सिर्फ इसलिए कि उसने पुलिस को अपना नाम और पता नहीं बताया था।

आर्डिनेन्सों का राज

जैसे-जैसे परिस्थिति बदलती गई, उसके अनुसार, नये-नये आर्डिनेन्स निकलते गये। हालांकि वे एक साथ नहीं, बल्कि भिन्न-भिन्न समय जारी हुए, मगर उनपर एक साथ विचार करना ही ठीक होगा। इनमें से एक आर्डिनेन्स का जिक्र तो पहले ही हो चुका है, जो कि उस समय बंगाल में जारी किया गया था जबकि गांधीजी लन्दन ही में थे। कहा यह गया था कि यह बंगाल में आतंकवादी-आन्दोलन का प्रसार रोकने और उसके सम्बन्ध में चलनेवाले मुकदमों को जल्दी निपटाने के लिए है। प्रान्तीय-सरकार से अधिकार-प्राप्त किसी भी सरकारी अफसर को इससे यह सत्ता प्राप्त हो गई थी कि जिस किसी भी व्यक्ति पर कोई भी सन्देह हो उससे उसका परिचय प्राप्त करे और उसकी बताई हुई बातें ठीक हैं या नहीं, इसकी तहकीकात करने के लिए उसे गिरफ्तार करके एक दिन के लिए हिरासत में ले ले। इसी प्रकार जिला-मजिस्ट्रेट किसी भी चीज या सामान के मालिक या इस्तेमाल करनेवाले से, मुआवजे के साथ या बिना मुआवजे के ही, उसका सामान ले सकता था।

उत्तर प्रदेशीय इमर्जेन्सी-आर्डिनेन्स १४ दिसम्बर १९३१ को जारी हुआ। इसके द्वारा प्रांतीय सरकार को अधिकार दिया गया कि वह सरकार, स्थानीय अधिकारी अथवा जमींदार को दी जानेवाली किसी रकम को सरकारी पावना करार देकर उसे बकाया मालगुजारी के रूप में वसूल करे। जिस किसी व्यक्ति पर यह शक हो कि वह सरकारी पावने को न अदा करने की प्रेरणा कर रहा है उसे दो साल की कैद, जुर्माना अथवा दोनों सजायें दी जा सकती थीं। जो कोई व्यक्ति किसी सरकारी नौकर को अपने फर्जों को भली-भांति अदा न करने अथवा किसी व्यक्ति को पुलिस या सेना में भरती होने से रोकने की चेष्टा करे उसे एक साल कैद या जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। किसी जब्त साहित्य के अंश दोहरानेवाले को ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। ऐसे हुक्म के खिलाफ दीवानी अदालत में कानूनी कार्रवाई भी नहीं की जा सकती थी। सीमाप्रान्त-सम्बन्धी तीन आर्डिनेन्स २४ दिसम्बर १९३१ को जारी किये गये। उनमें से एक तो उत्तर प्रदेशी आर्डिनेन्स की ही तरह था और सरकारी लहने की वसूली के लिए निकाला गया था। बाकी दो में से एक का नाम सीमाप्रांतीय 'इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स' था और दूसरे का 'अनलाफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स'। इनमें से पहले के मातहत कोई भी अधिकार-प्राप्त व्यक्ति किसी भी सन्दिग्ध-व्यक्ति

को बिना किसी कारण गिरफ्तार करके एक दिन के लिए हिरासत में रख सकता था और प्रान्तीय सरकार-द्वारा वह मियाद दो महीने तक बढ़ाई जा सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट डाक, तार, टेलीफोन और वायरलेस (बेतार के तार) को नियन्त्रित करके उनके द्वारा जानेवाली चीजों अथवा चिट्ठी-पत्रियों को रोक सकता था, किसी खास व्यक्ति या माल को किसी भी मुकाम पर ले जाने की मनाही कर सकता था और रेलगाड़ी में से किसी भी यात्री को उतरवा सकता था।

४ जनवरी को चार नये आर्डिनेन्स और जारी हुए—(१) इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स, (२) अनलॉफुल इंस्टिगेशन आर्डिनेन्स, (३) अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स और (४) प्रिवेन्शन ऑफ मॉलेस्टेशन एण्ड बायकाट आर्डिनेन्स। इनमें से पहले आर्डिनेन्स के मातहत तो लोगों को गिरफ्तार करने, बन्द रखने या उसकी हलचलों को नियन्त्रित करने, इमारतों को मांग लेने, इमारतों या रेलवे को वर्जित-स्थान करार देने, यातायात को नियन्त्रित करने, सर्व-साधारण के व्यवहार की किसी चीज को अपने कब्जे में करने या उसकी खपत व बिक्री पर नियन्त्रण करने, यातायात के साधनों पर नियन्त्रण करने, शस्त्रास्त्र की बिक्री पर नियंत्रण करने, स्पेशल पुलिस-अफसर नियुक्त करने, जमींदारों और अध्यापकों आदि को कानून और व्यवस्था कायम रखने में मदद करने के लिए बाध्य करने, सार्वजनिक उपयोग के कामों पर नियन्त्रण करने, डाक, तार या हवाई जहाज से जानेवाली चीजों तथा चिट्ठी-पत्रियों को रोकने और बीच में गायब कर लेने, रेलों और नौकाओं में जगह हासिल करने तथा उनके यातायात पर नियन्त्रण करने, सभाओं में पुलिस अफसरों को भेजने इत्यादि के वैसे ही अधिकार दिये गये थे जैसों का विस्तार के साथ ऊपर वर्णन किया जा चुका है। 'अनलॉफुल इंस्टिगेशन आर्डिनेन्स' के मातहत सरकार किसी पावने को इश्तिहारी पावना घोषित कर सकती थी और जो भी कोई व्यक्ति उसकी अदायगी में बाधक होता उसे ६ महीने कैद और उसके साथ जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। जिसको ऐसा पावना मिलना हो वह आदमी कलक्टर से यह कह सकता था कि इसे बतौर मालगुजारी वसूल किया जाय और कलक्टर उसे माल-गुजारी के बकाया के रूप में वसूल करवा सकता था। 'अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स' के मातहत प्रान्तीय-सरकार गैरकानूनी करार दी गई संस्था की इमारत और उसकी चल-सम्पत्ति तथा रुपये-पैसे को अपने कब्जे में कर सकती थी। ऐसे रुपये-पैसे को प्रांतीय सरकार जब्त भी कर सकती थी। जिस किसी के पास ऐसा रुपया-पैसा हो उसे तत्सम्बन्धी हिसाब-किताब की जांच कराने और सरकार की स्वीकृति बगैर उसको खर्च न करने का हुक्म दे सकती थी। 'प्रिवेंशन ऑफ मॉलेस्टेशन एण्ड तोयकाट आर्डिनेन्स' के मातहत उन सबको ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा हो

सकती थी जो किसी दूसरे व्यक्ति को तंग करते और उसका बहिष्कार करते या उसे तंग करने और उसका बहिष्कार कराने में सहायक होते थे।

इस प्रकार इन आर्डिनेन्सों के द्वारा सरकार ने बहुत विस्तृत अधिकार अपने हाथ में ले लिये, जो अमली तौर पर सारे देश में लागू कर दिये गये थे। ऐसे आर्डिनेन्सों और दमनकारी अस्त्रों को तैयार करने का विचार तो अस्थायी-संधि के पूर्व से ही हो रहा था।

कार्य-समिति की तत्परता

सरकारी आक्रमण ४ जनवरी के बड़े सबेरे म० गांधी और राष्ट्रपति सरदार वल्लभभाई पटेल की गिरफ्तारी के साथ आरम्भ हुआ। १९३२ के उपर्युक्त आर्डिनेन्स उसी दिन सबेरे जारी हुए और कई प्रान्तों पर लागू कर दिये गये। पश्चात् कुछ ही दिनों में, अमली तौर पर, सारे देश में लागू हो गये। अनेक प्रान्तीय और मातहत कांग्रेस-कमिटियों, आश्रमों, राष्ट्रीय स्कूलों तथा अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं को गैरकानूनी करार दे दिया गया और उनकी इमारतों, फर्नीचर, रुपये-पैसे तथा अन्य चल-सम्पत्ति को सरकारी कब्जे में ले लिया गया। देश के खास-खास कांग्रेसियों में से अधिकांश को एकदम जेलों में ठूंस दिया गया। इस प्रकार देखते-ही-देखते कांग्रेस के पास न तो नेता रहे, न रुपया-पैसा, न निवास-स्थान। लेकिन इन आकस्मिक और दृढ़ झपट्टे के बावजूद जो कांग्रेसी बच रहे थे वे साधन-हीन नहीं हो गये थे। जो जहां था वहीं उसने काम शुरू कर दिया। कार्य-समिति ने तय कर लिया कि १९३० की तरह ही बार खाली होनेवाली स्थानों की पूर्ति न की जाय। सरदार वल्लभ भाई पटेल ने, अपनी खुद की गिरफ्तारी का खयाल करके, अपने बाद क्रमशः कार्य करनेवाले व्यक्तियों की एक सूची बना दी थी। कार्य-समिति ने अपने सारे अधिकार अध्यक्ष के सुपुर्द कर दिये और अध्यक्ष ने उन्हें अपने उत्तराधिकारियों को सौंप दिया, जो क्रमशः अपने उत्तराधिकारियों को नामजद करके वे अधिकार दे सकते थे। प्रान्तों में भी, जहां कहीं सम्भव हुआ, कांग्रेस-संगठन की सारी सत्ता एक ही व्यक्ति को दे दी गई। इसी प्रकार जिलों, थानों, ताल्लुकों और गांवों तक की कांग्रेस-कमिटियों में भी हुआ। यही व्यक्ति आमतौर पर डिक्टेटर या सर्वेसर्वा के रूप में प्रसिद्ध हुए। शराब और विदेशी कपड़े की दुकानों तथा ब्रिटिश माल की पिकेटिंग सब प्रान्तों में समान-रूप से लागू हुई। लगानबन्दी उत्तर प्रदेश में काफी बड़ी हद तक और बंगाल में आंशिक रूप से एक महत्व का विषय रहा। बिहार और बंगाल के कुछ स्थानों में चौकीदारी-टैक्स देना बन्द कर दिया गया। मध्यप्रान्त तथा बरार, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, मद्रास प्रेसीडेन्सी और बिहार के कुछ स्थानों में जंगलात के कानून तोड़े गये। गैरकानूनी नमक बनाने, उसे एकत्र करने और बेचने के रूप में नमक-

कानून भंग तो अनेक स्थानों में किया गया। सभाओं और जलूसों की तो जरूर ही मनाही की गई, लेकिन निषेधाज्ञाओं के होते हुए भी सभायें हुईं और जलूस भी निकाले गये। लड़ाई की शुरुआत में खास-खास दिनों का मनाया जाना बहुत लोकप्रिय रहा। जैसा कि अभी कह चुके हैं, कांग्रेस के दफ्तरों तथा आश्रमों को सरकार ने अपने कब्जे में कर लिया था। अतः अनेक स्थानों में उन्हें सरकारी कब्जे से वापस लेने का प्रयत्न किया गया, जिसका प्रयोजन उस आर्डिनेन्स का भंग करना था जिसके अनुसार इन स्थानों में जाना निषिद्ध और गैरकानूनी करार दे दिया गया था। ये प्रयत्न 'धावों' के नाम से मशहूर हुए। आर्डिनेन्सों के कारण कोई प्रेस कांग्रेस का काम नहीं कर सकता था। इस अभाव की पूर्ति के लिए बेजाब्ता हस्तपत्रक, परचे, संवाद-पत्र, रिपोर्टें आदि निकाले गये। यह मार्के की बात है कि पुलिस के सतर्क रहने पर भी ये संवाद-पत्र और हस्तपत्रक नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे। इससे उस समय सारे देश को खबरें मिल जाती थीं। डाक और तार विभाग के दरवाजे कांग्रेस के लिए बंद हो गये थे, इसलिए कांग्रेस ने अपनी डाक को खुद ही पहुंचाने की व्यवस्था की। कभी-कभी यह डाक ले जाने वाले स्वयंसेवक पकड़े भी गये और तब स्वभावतः उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। १९३० के आन्दोलन के उत्तरार्द्ध में वस्तुतः यह प्रथा प्रारम्भ हुई थी और १९३२ में जाकर यह लगभग पूर्णता को पहुंच गई। और तो और, महासमिति अथवा प्रान्तीय कमिटियों के दफ्तरों का भी सरकार पता नहीं लगा सकी, जहां से न केवल हस्तपत्रक ही निकलते थे बल्कि आन्दोलन चलाने के सम्बन्ध में हिदायतें भी जारी होती रहती थीं। दूसरी बात जिससे कि लोगों में बड़ा उत्साह पैदा हुआ और जिससे पुलिस को भी कम परेशानी नहीं उठानी पड़ी, कांग्रेस के अधिवेशन का किया जाना था। इसके बाद प्रान्तों तथा जिलों की परिषदों के रूप में देश-भर में कांग्रेस-सम्मेलनों की झड़ी लग गई। कई जगह स्वयंसेवकों ने जंजीर खींचकर चलती रेलगाड़ियों को रोकने के रूप में रेलों के नियमित काम-काज में खलल डालने की कोशिश की। एक बार तो रेलों को नुकसान पहुंचाने की दृष्टि से बहुत बड़ी तादाद में बिना टिकट रेल में जाने का प्रयत्न किया गया, लेकिन जिम्मेदार हलकों से इस चेष्टा को प्रोत्साहन नहीं मिला। इसलिए बाद में यह चेष्टा बन्द कर दी गई।

बहिष्कार ने बहुत जोर पकड़ा। इसके एक-एक अंग को चुनकर उस पर शक्तियां केन्द्रित की गईं। कई स्थानों में विदेशी कपड़े, ब्रिटिश दवाइयों, ब्रिटिश बैंकों, बीमा-कम्पनियों, विदेशी शक्कर, मिट्टी का तेल और आम तौर पर ब्रिटिश माल के बहिष्कार का जोरदार आन्दोलन करने के लिए अलग-अलग सप्ताह भी निश्चित किये गये।

यह तो खयाल ही नहीं करना चाहिए कि नेताओं को गिरफ्तार कर लेने के

बाद सरकार खामोश अथवा नरम पड़ गई। आर्डिनेन्सों में उल्लिखित सब अधिकारों का उसने उपयोग किया। यहां तक कि दमन के कुछ ऐसे तरीके भी अख्तियार किये गये जिनकी उन आर्डिनेन्सों तक में इजाजत नहीं थी। गिरफ्तारियाँ बहुत बड़ी तादाद में हुईं, लेकिन वे की गईं चुन-चुन कर। सजा पानेवालों की कुल संख्या एक लाख से कम न थी। इन कारणों से जेल-अधिकारियों के साथ अक्सर उनका संघर्ष हो जाता था, जिसके फल-स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की ऐसी सजायें उन्हें दी जाती रहीं जिनकी जेल के नियमों में स्वीकृति थी; और बहुत बार पिटाई तथा दूसरे ऐसे जुल्म भी किये गये जो जेल की चहार-दीवारी के भीतर किसी को पता लगने के भय से मुक्त होकर आसानी से किये जा सकते हैं। एक खास तरह की अपमानप्रद स्थिति में बैठने से इन्कार करने पर मार-पीट और हमला करने के अत्याचार का एक मामला तो अदालत में भी पहुंचा, जिसके परिणाम-स्वरूप नासिक-जेल के जेलर, उसके सहायक तथा कई अन्य व्यक्तियों को सजा भी हुई; परन्तु सत्याग्रही कैदियों के लाठी से पीटे जाने की घटनायें तो अक्सर ही होती रहीं। अस्थायी जेलों में रहना तो बिलकुल ही नाकाबिल बर्दाश्त था; क्योंकि उनमें टीन के जो छप्पर पड़े हुए थे उनसे न तो मई-जून की गरमी का बचाव होता था, न दिसम्बर-जनवरी की ठण्ड का ही बचाव होता था। इससे वहां तन्दुरुस्ती अच्छी रह नहीं सकती थी। अनेक जेलों में, खासकर कैम्प-जेलों में, कैदियों का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ रहा था। पेचिश का तो सभी समय जोर था, वर्षा और ठण्ड के साथ निमोनिया तथा फेफड़े की नाजुक बीमारियों ने भी बहुतों को दबोचा था। फलतः अनेक तो जेलों में ही मर गये।

लाठी मार-मारकर लोगों की भीड़ और जलूसों को भंग करने का तरीका तो पुलिस ने आरंभ ही में अख्तियार कर लिया था। जेलों तथा मार-पिटाई की सख्तियों के लिए तो सत्याग्रही तैयार ही थे, और अनेक तो गोली खाकर मर जाने को भी तैयार थे—लेकिन, सरकार ने सोचा, अगर इनकी सम्पत्ति पर आक्रमण किया जाय तो इनमें से बहुत-से उसे बरदाश्त न कर सकेंगे। अतएव सजा देते वक्त उनपर भारी-भारी जुर्माने किये गये। कभी-कभी तो जुर्मानों की रकम पांच अंकों तक चली जाती थी। जहां मालगुजारी, लगान अथवा अन्य करों का देना बन्द किया गया वहां तो ऐसी बकाया रकमों और करों की तथा जुर्मानों की वसूली के लिए न केवल उन्हीं लोगों की मिल्कियत पर धावा बोला गया जिनसे कि उन्हें वसूल करना वाजिब था, बल्कि साथ में संयुक्त परिवारों की और कभी-कभी तो नाते-रिश्तेदारों की मिल्कियत भी कुर्क करके बेच डाली गई। कुर्की और बिक्री तक ही बात रहती तो भी गनीमत थी, लेकिन यहां तो कुर्की के बाद बड़ी-बड़ी कीमत की मिल्कियतों को बिल्कुल कौड़ी के ही मोल बेच डाला गया। कई स्थानों में अतिरिक्त ताजीरी-पुलिस तैनात की गई और उसका खर्च वहां के

निवासियों से वसूल किया गया। बिहार-प्रान्त के कुल चार-पांच स्थानों में, जहां जहां ऐसी अतिरिक्त पुलिस तैनात की गई थी, कम-से-कम ४ लाख ७० हजार रुपया वहां के निवासियों से ताजीरी-कर के रूप में वसूल किया गया। मिदनापुर जिले (बंगाल) के कुछ हिस्सों में ताजीरी फौज की तैनाती से ऐसा सर्वनाश और आतंक फैला कि जिले के दो थानों में रहनेवाले हिन्दुओं में से अधिकांश तो सचमुच ही अपने घर-बार छोड़कर आस-पास के स्थानों में चले गये।

अखबारों को भी बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। बहुत-से अखबारों से जमानतें मांगी गईं, बहुतों की जमानतें जब्त की गईं, और बहुत-से अखबारों को जमानत जमा न कर सकने या प्रेस जब्त हो जाने अथवा सरकारी प्रहार के भय से अपना प्रकाशन ही बन्द कर देना पड़ा। इस आतंक और सर्वनाश के बीच भी एक बात बिल्कुल स्पष्ट थी। वह यह कि लोगों ने किसी गम्भीर हिंसात्मक कार्य का अवलम्बन नहीं किया। अहिंसा की शिक्षा उनमें जड़ पकड़ चुकी थी, जिसके कारण महीनों तक आन्दोलन जारी रहा, जब कि सरकार ने तो चन्द हफ्ते में ही उसे खत्म कर देने की आशा की थी।

दिल्ली-कांग्रेस : १९३२

इन्हीं दिनों दिल्ली-अधिवेशन भी हुआ। यह १९३२ के अप्रैल महीने में दिल्ली में हुआ था। यह पुसिस को बड़ी भारी सतर्कता के बावजूद किया गया था, जिसने कि दिल्ली के रास्ते में ही बहुत-से प्रतिनिधियों का पता लगाकर उन्हें गिरफ्तार भी कर लिया था।

चांदनीचौक के घंटाघर पर यह अधिवेशन हुआ और पुलिस की सतर्कता के बावजूद लगभग ५०० प्रतिनिधि जैसे-तैसे सभा-स्थान पर जा पहुंचे थे। पुलिस इस सन्देह में कि अधिवेशन की जगह का जो ऐलान किया गया है वह सिर्फ चाल है, प्रतिनिधियों को नई दिल्ली में कहीं तलाश करती रही और कुछ पुलिस एक जगह अकालियों के जलूस से निपटती रही। पेश्तर इसके कि वह घण्टाघर पर आये, काफी तादाद में प्रतिनिधि एकत्र हुए और उन्होंने कार्रवाई भी शुरू कर दी। अहमदाबाद के सेठ रणछोड़दास अमृतलाल उसके सभापति थे। उसमें कांग्रेस की सालाना रिपोर्ट पेश हुई और चार प्रस्ताव स्वीकृत हुए। पहले प्रस्ताव में इस बात की ताईद की गई कि पूर्ण-स्वाधीनता ही कांग्रेस का लक्ष्य है, दूसरे में सविनय-अवज्ञा के फिर से जारी होने का हार्दिक समर्थन किया गया, तीसरे में गांधीजी के आह्वान पर राष्ट्र ने जो सुन्दर जवाब दिया उसके लिए उन्हें बधाई दी गई और महात्माजी के नेतृत्व में पूर्ण विश्वास प्रदर्शित किया गया, तथा चौथे में अहिंसा में अपने विश्वास की फिर से पुष्टि करते हुए कांग्रेस को, खासकर सीमाप्रांत के बहादुर पठानों को, अधिकारियों की ओर से अधिक-से-

अधिक उत्तेजना की करतूतें की जाने पर भी अहिंसात्मक रहने पर बधाई दी गई।

पं० मदनमोहन मालवीय दिल्ली अधिवेशन के मनोनीत सभापति थे, लेकिन वह तो रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। वैसे कांग्रेसियों में उल्लेख-योग्य वही एकमात्र ऐसे नेता थे जो जेल से बाहर थे। अपनी वृद्धावस्था एवं गिरे हुए स्वास्थ्य के बावजूद, गोलमेज-परिषद् से लौटने के बाद, वह कभी शांति से नहीं बैठे और अधिकारियों की ज्यादतियों का पर्दाफाश करनेवाले वक्तव्य-पर-वक्तव्य निकालकर अपने अथक उत्साह एवं अद्भुत शक्ति से कांग्रेस-कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहन प्रदान करते रहे। जब कभी कोई सन्देह अथवा कठिनाई का प्रसंग उपस्थित होता, कांग्रेस-कार्यकर्त्ता उन्हीं की ओर मुखातिब होते थे और उन्होंने कभी भी उन्हें निराश नहीं होने दिया।

गांधीजी का उपवास

दूसरी गोलमेज-परिषद् में गांधीजी ने अपना यह निश्चय सुनाया था कि अस्पृश्यों को यदि हिन्दू-जाति से अलग करने की चेष्टा की गई तो मैं उस चेष्टा का अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी मुकाबला करूँगा। अब गांधीजी के उस भीषण-व्रत की परीक्षा का अवसर आ पहुंचा था। लोथियन-कमिटी, मताधिकार और निर्वाचन की सीटों का निर्णय करने के लिए, १७ जनवरी को भारत में आ पहुंची थी। इसीलिए बहुत सोचने-समझने के बाद, गांधीजी ने भारत-मन्त्री सर सेम्युअल होर को ११ मार्च को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने यह निश्चय प्रकट किया कि यदि सरकार ने अस्पृश्यों या दलित-जातियों के लिए पृथक निर्वाचन रखा तो मैं आमरण-उपवास करूंगा। सर सेम्युअल होर ने अपना उत्तर १३ अप्रैल १९३२ को भेजा। यह उत्तर वही पुरानी पत्थर की लकीर का उदाहरण था। १७ अगस्त को मि० मैकडानल्ड का निश्चय सुनाया गया। दलित-जातियों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार तो मिला ही, साथ ही आम निर्वाचन में भी उम्मीदवारी करने और दुहरे वोट हासिल करने का उन्हें अधिकार दिया गया। १८ अगस्त को गांधीजी ने अपना निश्चय किया और उस निश्चय से प्रधान मंत्री को सूचित कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि व्रत यानी उपवास २० सितम्बर (१९३२) के तीसरे पहर से शुरू होगा। मि० मैकडानल्ड ने आराम के साथ ८ सितम्बर को उत्तर दिया और १२ सितम्बर को सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया गया। प्रधान-मंत्री ने गांधीजी को दलित-जातियों के प्रति शत्रुता के भाव रखनेवाला व्यक्ति बताना उचित समझा। व्रत २० सितम्बर १९३२ को आरम्भ होनेवाला था। पत्र-व्यवहार के प्रकाशन और व्रत आरम्भ होने में एक सप्ताह था। यह सप्ताह देश ही क्या, संसार-भर के लिए क्षोभ, चिन्ता और हलचल का

सप्ताह था। यह सप्ताह बड़े अवसाद का सप्ताह था, जिसमें व्यक्तियों और संस्थाओं ने उस क्षण जो ठीक समझा किया। गांधीजी से भेंट करने की अनुमति मांगी गई, पर न मिली। संसार के कोने-कोने से पूना को तार भेजे गये। गांधीजी का संकल्प छुड़ाने के लिए तरह-तरह की सलाहों और तर्कों से काम लिया गया। सोचा गया, एक परिषद् करना अच्छा होगा। यह बड़ी अच्छी बात हुई कि दलित जातियों के ही एक नेता ने इस दिशा में पैर बढ़ाया। रायबहादुर एम० सी० राजा ने पृथक् निर्वाचन को धिक्कारा। सर सप्रू ने गांधीजी की रिहाई की मांग पेश की। कांग्रेस-वादियों ने भी स्वभावत: देश-भर में संगठन करके समझौता कराने को चेष्टा को। मालवीयजी ने तत्काल नेताओं की एक परिषद् बुलाने की बात सोची। इंगलैंड में दीनबन्धु एण्डरूज, मि० पोलक और मि० लेन्सबरी ने स्थिति की गम्भीरता की ओर अंग्रेज-जनता का ध्यान आकृष्ट किया। एक अपील पर प्रभावशाली व्यक्तियों के हस्ताक्षर हुए, जिसके द्वारा इंग्लैंड-भर में खास तौर से प्रार्थना करने को कहा गया। भारतवर्ष में २० सितम्बर को उपवास और प्रार्थनायें की गईं। इसमें शांति-निकेतन ने भी भाग लिया। वैसे इस आन्दोलन का आरम्भ प्रधान-मंत्री के निश्चय में संशोधन कराने के लिए किया गया था, पर इस आन्दोलन को अस्पृश्यता निवारण के अधिक व्यापक आन्दोलन का रूप धारण करते देर न लगी। कलकत्ता, दिल्ली और अन्य स्थानों में अस्पृश्यों के लिए मंदिर खोले जाने लगे। यह आशा की जाती थी कि गांधीजी उपवास के आरंभ होते ही छोड़ दिये जायंगे। पर पता चला कि उनकी रिहाई तो क्या होगी, उन्हें किसी खास स्थान पर नजरबन्द कर दिया जायगा और उनकी गति-विधि पर भी रुकावट लगा दी जायगी।

पूना-पैक्ट और उपवास का अन्त

पूना-पैक्ट जिन-जिन बातों का परिणाम है, उनके क्रम-विकास में पाठकों को ले जाना हमारे लिए सम्भव नहीं है। परिषद् बम्बई में आरम्भ हुई, पर शीघ्र ही पूना में ले जाई गई। डा० अम्बेडकर शीघ्र ही बातचीत में शामिल हो गये और श्री अमृतलाल ठक्कर, श्री राजगोपालाचार्य, सर चुन्नीलाल मेहता, पण्डित मालवीय, बिड़लाजी, सरदार पटेल, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री जयकर, डॉ० अम्बेडकर, रायबहादुर एम० सी० राजा, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, पंडित हृदयनाथ कुंजरू और अन्य सज्जनों की सहायता से एक योजना तैयार की गई, जिसे उपवास के पांचवें दिन सारे दलों ने स्वीकार कर लिया। दलित जातियों ने पृथक् निर्वाचन का अधिकार त्याग दिया और आम हिन्दू-निर्वाचनों से ही सन्तोष कर लिया। उच्च जातियों के हिन्दुओं ने महत्वपूर्ण संरक्षण प्रदान किया। निश्चय हुआ कि पूरा समझौता उस समय तक कायम रहे जब तक सब की सलाह से उसमें परिवर्तन

न किया जाय और दलित-जातियों का प्रारम्भिक निर्वाचन दस साल तक जारी रहे। ब्रिटिश-सरकार ने पूना-पैक्ट के उस अंश तक को स्वीकार कर लिया जिस अंश तक उसका प्रधान-मंत्री के निश्चय से सम्बन्ध था। जो-जो बातें साम्प्रदायिक निर्णय के बाहर जाती थीं, उनपर निश्चय रोक रखा गया। दलित-जातियों के नेताओं को कृतज्ञ होना ही चाहिए था, क्योंकि प्रधान-मंत्री के निश्चय के अनुसार उन्हें जितनी जगहें मिलने वाली थीं, अब उन्हें उनसे दुगुनी मिल गईं और उन्हें अपनी जन-संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। दस वर्ष बाद जनमत स्थिर करने के प्रश्न पर अन्तिम समय में फिर विवाद उठ खड़ा हुआ। अन्त में यह निश्चय किया गया कि इस प्रश्न को भविष्य में आपस के समझौते-द्वारा तय किया जाय। २६ तारीख को, ठीक जिस समय ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल द्वारा समझौते के स्वीकृत होने की खबर मिली, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गांधीजी से भेंट की। २६ तारीख की सुबह को इंग्लैंड और भारत में एक साथ घोषणा की गई कि पूना का समझौता स्वीकार कर लिया गया।

गांधीजी को यह व्यवस्था स्वीकार करने में कुछ पशोपेश हुआ। वह चाहते थे कि दलित-जातियों के नेता भी सन्तुष्ट हो जायं। उन्हें अपने भौतिक प्राण बचाने की चिन्ता न थी, बल्कि उन लाखों प्राणियों के नैतिक प्राण बचाने की चिन्ता थी, जिनके लिए वह उपवास कर रहे थे। परन्तु अन्त में पं० हृदयनाथ कुंजरू और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने गांधीजी को सन्तोष करा दिया। इसपर गांधीजी ने ६ तारीख को शाम के सवा पांच बजे उपवास छोड़ने का निश्चय किया। भजन और धार्मिक श्लोक-पाठ के बाद उन्होंने पारण किया। यह ठीक था कि गांधीजी के प्राण बच गये, परन्तु जिस श्वास में वह अपना उपवास भंग करने को राजी हुए उसी में उन्होंने यह भी कह दिया कि यदि उचित समय के भीतर अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी सुधार नेकनीयती के साथ पूरा न किया गया तो मुझे नये सिरे से उपवास करना पड़ेगा।

हरिजन-आन्दोलन

प्रधान-मंत्री-द्वारा पैक्ट स्वीकार होने और गांधीजी के उपवास छोड़ने के बाद ही २५ सितम्बर, १९३२ को परिषद् ने बम्बई में सभा की। परिषद् के सभापति पं० मदनमोहन मालवीय थे। इसमें एक प्रस्ताव पास हुआ, जिसके द्वारा प्रतिज्ञा की गई कि हिन्दू अस्पृश्यता का निवारण करेंगे। जो संस्था बाद को हरिजन-सेवक-संघ के रूप में विकसित हो गई उसकी स्थापना इसी प्रस्ताव के फल-स्वरूप हुई। इसके सभापति सेठ घनश्यामदास बिड़ला और मंत्री भारत-सेवक-समिति के श्री अमृतलाल ठक्कर हुए।

इस प्रकार गांधीजी के पवित्र तप का स्वभावतः ही पूरा परिणाम निकला।

अस्पृश्यता-निवारण के लिए सारा देश तैयार हो गया। खतरा इसी बात का था कि कहीं युवक जल्दबाजी से काम न लें। इसलिए गांधीजी को लगाम खींचनी पड़ी। हरिजनों के लिए मन्दिर-प्रवेश का अधिकार प्राप्त कराने के निमित्त देश में कई व्यक्तियों ने सत्याग्रह किया। भोपाल के नवाब ने इस हिन्दू धार्मिक आन्दोलन के लिए ५०००) दिये। फादर विन्स्लो ने अपने अन्य सहधर्मियों के हस्ताक्षर के साथ एक अपील छपवाकर ईसाइयों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था को धिक्कारा। उधर मौलाना शौकतअली गांधीजी की रिहाई का आग्रह कर रहे थे और इस बात पर जोर दे रहे थे कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का भी निपटारा हो जाय। इस प्रकार वातावरण में एकता की भावना और एकता की पुकार छाई हुई थी, और यदि सरकार अकस्मात २९ सितम्बर को अपनी नीति में परिवर्त्तन करके गांधीजी से मुलाकात आदि करने की सुविधायें देती तो साम्प्रदायिक समझौता भी अवश्य हो जाता। परन्तु मुलाकातें बन्द कर दी गईं। गांधीजी अब वैसे ही कैदी हो गये जैसे १२ सितम्बर से पहले थे।

कलकत्ता-कांग्रेस : १९३३

अप्रैल १९३२ के दिल्ली-अधिवेशन की भांति कलकत्ता का अधिवेशन भी निषेधाज्ञा के होते हुए करना पड़ा। यद्यपि इसका आयोजन उस समय किया गया था जब सत्याग्रह-आन्दोलन शिथिल पड़ गया था, फिर भी जो उत्साह और प्रतिरोध की भावना यहां दिखाई पड़ी वह दिल्ली में भी न दिखाई पड़ी थी। कुछ प्रान्तों ने तो अपने पूरे प्रतिनिधि भेजे। कुल मिलाकर कोई २२०० प्रतिनिधि सारे प्रान्तों से चुने गये। इस बात से कि पं० मदनमोहन मालवीय ने अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार कर लिया है, राष्ट्र का उत्साह और भी बढ़ गया। श्रीमती मोतीलाल नेहरू ने वृद्धावस्था और दुर्बलता का ध्यान न करके अधिवेशन में भाग लेने का जो निश्चय किया उससे आनेवाले प्रतिनिधियों को बड़ी स्फूर्ति मिली। अधिवेशन कलकत्ता में ३१ मार्च को बड़े सनसनीपूर्ण वातावरण में हुआ। डॉ० प्रफुल्ल घोष स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। सरकार ने अधिवेशन न होने देने के लिए कुछ उठा न रखा। पण्डित मदनमोहन मालवीय को बीच ही में आसनसोल स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ ही श्रीमती मोतीलाल नेहरू, डॉ० सैयदमहमूद और अन्य सारे व्यक्ति, जो सभापति के साथ थे, गिरफ्तार कर लिये गये और सबको आसनसोल की जेल में ले जाया गया। कांग्रेस के कार्यवाहक सभापति श्री अणे भी कलकत्ता जाते हुए गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें जेल में भेज दिया गया। कलकत्ते में स्वागत-समिति के सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया और कई कांग्रेस-नेताओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। श्रीमती नेली सेन गुप्त और डॉ० मुहम्मद आलम इनमें प्रमुख थे। लगभग १००० प्रतिनिधि

रवाना होने से पहले ही, कलकत्ते के मार्ग में, गिरफ्तार कर लिये गये। बाकी प्रतिनिधि नगर में पहुंचने में सफल हुए। निषेधाज्ञा होते हुए भी लगभग ११०० प्रतिनिधि अधिवेशन के लिए नियत स्थान पर एकत्र हो गये। शीघ्र ही उनपर पुलिस आ टूटो और कांग्रेस-वादियों के शान्तिपूर्ण-समुदाय पर लाठियां बरसाने लगी। बहुत-से प्रतिनिधि बुरी तरह घायल हुए और श्रीमती नेली सेन गुप्त और अन्य प्रमुख कांग्रेसवादी गिरफ्तार किये गये। पुलिस ने अधिवेशन को बल-प्रयोग-द्वारा होने से रोकने की चेष्टा की, परन्तु असफल रही, क्योंकि लाठियों की वर्षा होते रहने पर भी प्रतिनिधियों का भीतरी समूह अपनी-अपनी जगहों पर जमा रहा, और वे सातों प्रस्ताव पढ़कर सुनाये गये और पास हुए। कलकत्ता-अधिवेशन के सिलसिले में गिरफ्तार हुए अधिकांश व्यक्तियों को कांग्रेस समाप्त होते ही छोड़ दिया गया। अन्य व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें सजायें दी गईं। श्रीमती सेन गुप्त को भी छः मास का दण्ड मिला। जेल से रिहा होते ही पण्डित मदनमोहन मालवीय सीधे कलकत्ता पहुंचे और शीघ्र ही देश के सामने इस बात का कि पुलिस ने किस प्रकार अमानुषिकता के साथ कांग्रेस भंग करने की चेष्टा की थी, प्रमाण पेश किया। उन्होंने सरकार को जांच करने की चुनौती दी, पर वह चुनौती कभी स्वीकार न की गई।

गांधीजी का उपवास

कलकत्ता कांग्रेस के बाद शीघ्र ही देश में एक घटना हुई जो बिल्कुल आकस्मिक थी। हरिजन-आन्दोलन में काम करने वाले कार्यकर्ताओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। इन कार्यकर्त्ताओं को अपना काम पवित्रता, सेवा-भाव और अधिक नेकनीयती के साथ करने में सहायता देने के लिए गांधीजी ने ८ मई १९३३ को आत्म-शुद्धि के निमित्त २१ दिन का उपवास आरम्भ किया। उन्होंने कहा कि यह अपनी और अपने साथियों की शुद्धि के लिए, जिससे वे हरिजन-कार्य में अधिक सतर्कता और सावधानी के साथ काम कर सकें, हृदय से की गई प्रार्थना है। इसलिए मैं अपने भारतीय तथा संसार-भर के मित्रों से अनुरोध करता हूँ कि वे मेरे लिए मेरे साथ प्रार्थना करें कि मैं इस अग्नि-परीक्षा में सकुशल पूरा उतरूं, और चाहे मैं मरूं या जियूं, मैंने जिस उद्देश्य से उपवास किया है, वह पूरा हो। मैं अपने सनातनी भाइयों से अनुरोध करता हूं कि वे प्रार्थना करें कि इस उपवास का परिणाम मेरे लिए चाहे जो कुछ हो, कम-से-कम वह सुनहरा ढकना, जिसने सत्य को ढक रक्खा है, हट जाय। एक पत्र-प्रतिनिधि से उन्होंने कहा कि किसी धार्मिक आन्दोलन की सफलता उसके आयोजकों की बौद्धिक या भौतिक शक्तियों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि आत्मिक-शक्ति पर निर्भर करती है, और उपवास इस शक्ति की वृद्धि करने का सबसे अधिक जाना-पूछा उपाय है।

उसी दिन सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली, जिसमें कहा गया कि उपवास जिस उद्देश्य से किया गया है उसको सामने रखकर और उसके द्वारा प्रकट होने वाली मनोवृत्ति को ध्यान में रखते हुए, भारत-सरकार ने निश्चय किया है कि वह (गांधीजी) रिहा कर दिये जायं। तदनुसार गांधीजी ८ मई को छोड़ दिए गये। रिहा होते ही गांधीजी ने एक वक्तव्य दिया, जिसके द्वारा उन्होंने छः सप्ताह के लिए सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित रखने की सिफारिश की।

अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा कि मैं इस रिहाई से प्रसन्न नहीं हूं, और जैसा कि कल मुझसे सरदार वल्लभभाई ने कहा और ठीक ही कहा, मैं इस रिहाई से लाभ उठाकर सत्याग्रह-आन्दोलन का संचालन अथवा पथ-प्रदर्शन कैसे कर सकता हूं? पर साथ ही, रिहाई होने पर अब मैं अपनी थोड़ी-बहुत शक्ति सत्याग्रह-आन्दोलन का अध्ययन करने में लगाने को बाध्य हूं। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि सत्याग्रह के सम्बन्ध में मेरे विचारों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ा है। असंख्य सत्याग्रहियों की वीरता और आत्मत्याग के लिए मेरे पास साधुवाद के सिवा और कुछ नहीं है। इतना कहने के बाद मैं यह कहे बिना भी नहीं रह सकता कि यदि आन्दोलन को जारी रखना है, तो जो लोग इस आन्दोलन का संचालन देश के विभिन्न स्थानों में कर रहे हैं उनसे मेरा कहना है कि लुका-छिपा कान छोड़ दो। यदि इससे एक सत्याग्रही का मिलना कठिन हो जाय तो मुझे परवाह नहीं है। यदि सरकार देश में वास्तविक शान्ति चाहती है और समझती है कि वास्तविक शान्ति मौजूद नहीं है, यदि वह समझती है कि आर्डिनेन्स का शासन सभ्य-शासन नहीं है तो उसे इस आन्दोलन-बन्दी से लाभ उठाकर सारे सत्याग्रहियों को बिना किसी शर्त के छोड़ देना चाहिए। अन्त में गांधीजी ने कहा कि मैं शान्ति चाहता हूं और सरकार को बता देना चाहता हूं कि मैं इस रिहाई का दुरुपयोग न करूंगा और यदि मैं इस अग्नि-परीक्षा में से निकल आया और मुझे उस समय भी राजनैतिक वातावरण ऐसा ही अन्धकारमय दिखाई पड़ा तो मैं सविनय-अवज्ञा को बढ़ाने की लुक-छिपकर या खुल्लम-खुल्ला कोई भी कार्रवाई किये बिना ही सरकार से कहूंगा कि मुझे अपने साथियों के पास, जिन्हें मैं इस समय त्याग-सा आया हूं, यरवडा पहुंचा दिया जाय।

सत्याग्रह स्थगित

गांधीजी की घोषणा के बाद ही कांग्रेस के कार्यवाहक-अध्यक्ष ने भी अपनी घोषणा प्रकाशित करके सत्याग्रह-आन्दोलन छः सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया। सरकार ने भी उत्तर प्रकाशित कराने में विलम्ब से काम नहीं लिया।

९ मई को एक सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया कि केवल सत्याग्रह स्थगित

करने से वे शर्तें पूरी नहीं होतीं जो कैदियों की रिहाई के लिए रखी गई हैं। सरकार कांग्रेस से इस मामले में सौदा करने को तैयार नहीं है। इधर शिमला से यह नकारात्मक उत्तर आया, उधर वियेना से एक वक्तव्य आया जिसपर श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री सुभाष बसु के हस्ताक्षर थे। उसमें कहा गया कि सत्याग्रह बंद करने की गांधीजी की ताजा कार्रवाई असफलता की स्वीकारोक्ति है।

वक्तव्य में यह भी कहा गया कि हमारी यह स्पष्ट सम्मति है कि गांधीजी राजनैतिक नेता की हैसियत से असफल रहे। इसलिए अब समय आ गया है कि हम नये सिद्धांतों के ऊपर नये उपाय को लेकर कांग्रेस की कायापलट करें। हमें इसके लिए एक नेता की आवश्यकता है, क्योंकि गांधीजी से यह आशा करना अनुचित है कि वे ऐसे कार्य-क्रम को हाथ में लेंगे जो उनके जीवन-भर के सिद्धान्तों के साथ मेल न खाता हो। यदि कांग्रेस में स्वयं ही इस प्रकार का आमूल परिवर्तन हो सके तो अच्छा ही है, नहीं तो कांग्रेस के भीतर ही उग्र मतवाले लोगों की एक नई पार्टी बनानी पड़ेगी।

यह पहला ही अवसर न था जब गांधीजी को इन दोनों संभ्रान्त व्यक्तियों की विरुद्ध आलोचना का शिकार बनना पड़ा हो। गांधीजी जिस प्रकार अपना कष्ट सन्तोष, आस्था और धैर्य के साथ सह रहे थे, उसी प्रकार उन्होंने संसार की आलोचना भी सह ली। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई और २९ मई १९३३ को उन्होंने अपने उपवास का अन्त किया। इस बीच कांग्रेसवादियों में यह तय हुआ कि गांधीजी की रिहाई से जो अवसर मिला है उसका उपयोग करके देश की अवस्था पर आपस में चर्चा की जाय। सोचा गया कि इस प्रकार की बैठक तभी की जाय जब गांधीजी उसमें भाग लेने योग्य हों। इसलिए सत्याग्रह-बन्दी की अवधि को कार्यवाहक सभापति ने छः सप्ताह के लिए और बढ़ा दिया।

पूना-परिषद्

१२ जुलाई १९३३ को देश की राजनैतिक अवस्था पर विचार करने के लिए पूना में कांग्रेसवादियों की अनियमित बैठक हुई। श्री अणे ने भूमिका-स्वरूप भाषण के साथ इस परिषद् का श्रीगणेश किया। गांधीजी ने राजनैतिक अवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार परिषद् के सम्मुख संक्षेप में रख दिये। इसपर आम चर्चा आरम्भ हुई और अन्त में परिषद् दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दी गई। दूसरे दिन की कार्रवाई का आरम्भ गांधीजी ने एक लम्बे-चौड़े वक्तव्य-द्वारा किया। इसके बाद परिषद् ने सत्याग्रह को बिना किसी शर्त के वापस लेने के प्रस्ताव को रद कर दिया, पर साथ ही व्यक्तिगत-सत्याग्रह के प्रस्ताव को अस्वीकार किया। अन्त में परिषद् ने गांधीजी को सरकार से समझौता करने के लिए वाइसराय से मिलने का अधिकार दिया। इस निश्चय के अनुसार गांधीजी ने वाइसराय को

तार देकर शान्ति की सम्भावना को खोज निकालने के उद्देश्य से उनसे मिलने की अनुमति चाही। पर वाइसराय ने उस समय तक मुलाकात करने से इन्कार कर दिया जबतक कांग्रेस सत्याग्रह-आन्दोलन वापस न ले ले। गांधीजी ने उत्तर दिया कि यदि उन्हें मुलाकात करने की इजाजत मिले तो वह यह दिखा देंगे कि कुल मिलाकर कार्रवाई सम्मानप्रद समझौता करने के पक्ष में हुई है। पर गांधीजी की शांति-स्थापना की चेष्टा का कोई उत्तर न मिला और राष्ट्र को अपना सम्मान अक्षुण्ण रखने के लिए युद्ध जारी करने को बाध्य होना पड़ा। पर सामूहिक सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और जो लोग तैयार थे उन्हें व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की सलाह दी गई। कार्यवाहक-सभापति के आज्ञानुसार सारी कांग्रेस-संस्थायें और युद्ध-समितियां उठा दी गईं।

व्यक्तिगत-सत्याग्रह

गांधीजी ने व्यक्तिगत-सत्याग्रह का आरम्भ अपने पास की मूल्यवान् से मूल्यवान वस्तु के परित्याग से किया। इस प्रकार उन्होंने उस कष्ट में भाग लेने की चेष्टा की जिसे आन्दोलन के दौरान में हजारों ग्रामीणों ने सहा था। उन्होंने साबरमती-आश्रम तोड़ दिया और आश्रम के निवासियों को और सारे काम छोड़कर युद्ध में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने सारा आश्रम खाली कर दिया और उसकी जंगम संपत्ति को कतिपय संस्थाओं को सार्वजनिक उपयोग के लिए दे दिया। वह किसी दूसरे से लगान आदि न दिलाना चाहते थे, इसलिए वह जमीन, इमारत और खेती सरकार को देने को तैयार हो गये। सरकार की ओर से केवल उस पत्र की पहुंच में एक पंक्ति भेजी गई।

साबरमती-आश्रम का दान

जब सरकार ने गांधीजी का दान स्वीकार नहीं किया तब उन्होंने आश्रम को हरिजन-आंदोलन को अर्पण कर दिया। इस सम्बन्ध में गांधीजी का वह वक्तव्य याद आता है जो उन्होंने १९३० में दण्डी-यात्रा करने के अवसर पर दिया था। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जबतक स्वराज्य न मिल जायगा, वह आश्रम में वापस न आयेंगे। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। इस प्रकार आश्रम को हरिजन-संघ को देकर उन्होंने पार्थिव-जगत से बांध रखने वाली इस अन्तिम वस्तु का, जिसके प्रति सम्भवतः उनके हृदय में मोह बना रहता था, अंत कर दिया।

गांधीजी की गिरफ्तारी

१ अगस्त १९३३ को गांधीजी रास नामक गांव की यात्रा करने वाले थे। पर एक दिन पहले ही आधी रात के समय गांधीजी को उनके ३४ आश्रम-वासियों

के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। गांधीजी ४ अगस्त की सुबह को छोड़ दिये गये और उन्हें यरवडा गांव की सीमा छोड़कर पूना जाकर रहने का नोटिस दिया गया। इस आज्ञा की निश्चय ही अवहेलना की गई, और रिहाई के आधे घण्टे के भीतर गांधीजी फिर गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें एक वर्ष की सजा दी गई।

व्यक्तिगत-सत्याग्रह की सफलता

उनकी गिरफ्तारी और सजा के बाद ही व्यक्तिगत-सत्याग्रह सारे प्रान्तों में आरम्भ हो गया और पहले ही हफ्ते में सैकड़ों कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हो गये। कांग्रेस के कार्यवाहक-अध्यक्ष श्री अणे अकोला से यात्रा करते समय अपने १३ साथियों के साथ १४ अगस्त को गिरफ्तार कर लिये गये। इसके बाद उनके उत्तराधिकारी सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर की बारी आई। परन्तु उन्होंने गिरफ्तारी के पहले आज्ञा जारी की कि कार्यवाहक-अध्यक्ष का पद और डिक्टेटरों की नियुक्ति का सिलसिला तोड़ दिया जाय, जिससे युद्ध सचमुच व्यक्तिगत-सत्याग्रह का रूप धारण करले। गांधीजी ने जो मार्ग दिखाया था उस पर १९३३ के अगस्त से १९३४ के मार्च तक देशभर में कांग्रेस-कार्यकर्ता लगातार चलते रहे और सत्याग्रहियों के अटूट तांते ने युद्ध को जारी रखा।

गांधीजी की रिहाई

सरकार ने जेल में गांधीजी को उन सुविधाओं से वंचित कर दिया जो मई में उनकी रिहाई से पहले उन्हें दी गई थीं। इसलिए अब दुबारा गिरफ्तारी के थोड़े दिनों बाद ही गांधीजी को फिर अनशन आरम्भ करना पड़ा। सरकार अड़ी रही। गांधीजी की अवस्था बड़ी शीघ्रता के साथ शोचनीय होने लगी। अन्त में उन्हें २० अगस्त को, अर्थात् अनशन के पांचवें दिन, पूना के सैसून-अस्पताल में कैदी की हैसियत से पहुंचाया गया। पर २३ अगस्त तक सरकार को यह शक हो गया कि उनके प्राण संकट में हैं। इसलिए उस दिन उन्हें बिना किसी शर्त के छोड़ दिया गया। जेल से छूटने पर उन्होंने निश्चय किया कि उन्हें अपने-आप को रिहा न समझना चाहिए और अपनी सजा की अवधि अर्थात् ३ अगस्त १९३४ तक, संयम से काम लेना चाहिए। वह स्वयं तो सत्याग्रह न करेंगे, पर जो लोग उनसे सलाह मांगेंगे उन्हें अवश्य ठीक मार्ग दिखायेंगे और इस अवधि के अधिकांश भाग को वह हरिजन-आन्दोलन की उन्नति में लगायेंगे।

हरिजन-आन्दोलन

गांधीजी ने अपने निश्चय के अनुसार हरिजन-आन्दोलन करने के लिए १९३३ के नवम्बर से देश में दौरा शुरू किया। उन्होंने दस महीने के भीतर भारत के

हरेक प्रान्त का दौरा किया। इस दौरे से बहुत प्रचार-कार्य हुआ। उन्होंने लगभग आठ लाख रुपया एकत्र किया। साथ ही दो शोचनीय दुर्घटनायें भी हुईं। २५ जून १९३४ को गांधीजी बाल-बाल बच गये। वह पूना म्युनिसिपैलिटी का मान-पत्र ग्रहण करने वाले थे, कि इस अवसर पर एक व्यक्ति ने उन पर बम फेंका। वह उस मोटर में नहीं थे जिस पर बम फेंका गया था, फिर भी उसके बम ने सात निर्दोष व्यक्तियों को घायल किया। दूसरी घटना १४ दिन बाद ही अजमेर में हुई। यहां किसी तेज मिजाज सुधारक ने आपे से बाहर होकर बनारस के पण्डित लालनाथ का, जो हरिजन-आन्दोलन के कट्टर विरोधी थे, सिर फोड़ दिया। इस दूसरी घटना को लेकर गांधीजी ने ७ दिन का उपवास किया। सार्वजनिक मामलों में एक-दूसरे से मत-भेद रखनेवालों ने जिस असहिष्णुता का परिचय दिया था, यह प्रायश्चित्त उसी के विरुद्ध किया गया था।

गांधीजी ने हरिजनोत्थान-कार्य के सम्बन्ध में सारे भारत का दौरा करने का निश्चय किया था, पर दिसम्बर का महीना उनके लिए एक कसौटी ही सिद्ध हुआ। श्री केलप्पन ने गुरुवयूर-मन्दिर के ट्रस्टियों को तीन महीने का नोटिस दिया था और अब १ जनवरी १९३४ को अन्तिम निश्चय करना जरूरी था। इस निश्चय का अर्थ केलप्पन और गांधीजी दोनों का आमरण उपवास भी हो सकता था। इसलिए यह तय किया गया कि गुरुवयूर-मन्दिर के उपासकों की राय ली जाय। इस प्रयोग का जो परिणाम हुआ वह शिक्षाप्रद भी था और सफल भी। इसी बीच डा० सुब्बारायन ने मद्रास-प्रान्त के मन्दिरों में अछूतों के प्रवेश के सम्बन्ध में बिल भी पेश कर दिया। बिल बहुमत से पास हो गया।

बिहार का भूकंप

१६ जनवरी को सारा भारत हकबका कर रह गया। जब सुबह के समाचार पत्रों ने गत तीसरे पहर के बिहार के भूकम्प की अभूतपूर्व विपत्ति के समाचार घर-घर पहुंचाये तब सब लड़खड़ा कर रह गये। कुछ ही मिनटों के भीतर प्रान्त की शक्ल ऐसी बदल गई कि उसका पहचानना तक असम्भव हो गया। हजारों इमारतें धूल में मिल गईं और पृथ्वी के गर्भ में समा गईं। पलक मारते हजारों परिवार अनाथ और हजारों स्त्रियां विधवा हो गईं और उनके निर्दोष बच्चे गिरते हुए मकानों के बीच दब कर मर गये। भूकम्प का प्रभाव ३०,००० वर्ग मील की लगभग डेढ़ करोड़ जनता पर पड़ा। २०,००० मनुष्यों के प्राण गये। लगभग दस लाख घर नष्ट हो गये, या टूट-फूट गये। ६५,००० कुएं और तालाब या तो निकम्मे हो गये या टूट-फूट गये। लगभग १० लाख बीघा खेती पर रेत छा गया और वह निकम्मी हो गई। इस भयंकर संकट का सामना करने के लिए बिहार और भारत दोनों पीछे न रहे। चन्दे द्वारा लगभग एक करोड़ रुपया एकत्र हुआ।

बिहार केन्द्रीय रिलीफ फण्ड में जून के अन्त तक २७ लाख से अधिक एकत्र हो गया। अधिकांश नेता और कार्यकर्ता भारत के भिन्न-भिन्न भागों से पीड़ितों के कष्ट-निवारण का कार्य करने को दौड़ पड़े।

बिहार के विध्वस्त-प्रदेश में बाहर से आये नेताओं में पण्डित जवाहरलाल भी थे। उनका आगमन सेवा-कार्य का प्रत्यक्ष उदाहरण था। जब समाचार मिले कि गिरे हुए घरों के भीतर जीवित मनुष्य दबे पड़े हैं, तब उन्होंने स्वयंसेवक का बिल्ला लगाया, कंधे पर फावड़ा रखा और उस स्थान को रवाना हो गये। उनके साथ-साथ स्वयंसेवक हाथों में फावड़े लिये मौजूद थे। उन्होंने और अन्य कार्यकर्त्ताओं ने फावड़े चलाये और मिट्टी की टोकरियां अपने सिरों पर ढोयीं। गांधीजी ने एक मास तक उनका पथ-प्रदर्शन किया और उन्हें परामर्श दिया। जबतक वह बिहार में रहे, उन्होंने पीड़ित नगरों और गांवों का दौरा किया और जनता की दयनीय दशा को स्वयं देखा। उन्होंने अपने दक्ष कार्यकर्त्ताओं को भी घटनास्थल पर भेजा और उनकी सेवायें बिहार को अर्पण कर दीं।

जवाहरलाल की गिरफ्तारी

उत्तर प्रदेश की सरकार ने जवाहरलाल को ३० अगस्त को छोड़ा था। इसके कुछ मास बाद ही वह बिहार गये। बिहार का दौरा समाप्त करने पर वह एक बार फिर सरकार के कैदी बने। जब वह कलकत्ता गये थे, तब उन्होंने बंगाल की अवस्था और मिदनापुर जिले की हलचल के सम्बन्ध में दो भाषण दिये थे। उन्होंने अपने स्पष्ट भाषणों में, आतंकवाद की मनोवृत्ति और उसका सामना करने के लिए अधिकारियों ने जो तरीका अपनाया था उसकी चर्चा की थी। बंगाल की नौकरशाही को यह सहन न हुआ। जबतक वह बिहार में मानवता के मिशन को पूरा करने में लगे रहे तबतक बंगाल-सरकार के औचित्य ने उसे उनपर हाथ डालने से रोक रक्खा; पर अभी वह अपने घर भी नहीं पहुँचे थे कि उनके लिए जेल का दरवाजा फिर खोल दिया गया। उनपर कलकत्ते के दो भाषणों के लिए मुकदमा चलाया गया और उन्हें दो वर्ष सादी कैद की सजा दी गई।

कौंसिल-प्रवेश का प्रोग्राम

जुलाई १९३३ की पूना-परिषद् के बाद से ऐसे कांग्रेसवादियों की संख्या में वृद्धि हो रही थी, जिनका यह विचार था कि आर्डिनेन्स-शासन के कारण देश में जो अवस्था उत्पन्न हो गई है उसको ध्यान में रखकर इस 'निश्चेष्टा' से उद्धार पाने के लिए कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम अपनाना आवश्यक है। इस विचार ने संगठित रूप धारण किया और इस प्रकार के विचार रखनेवाले कांग्रेसी-नेताओं की एक परिषद् दिल्ली में ३१ मार्च १९३३ को डॉ० अन्सारी की अध्यक्षता में हुई।

इसमें निश्चय किया गया कि जो स्वराज्य-पार्टी भंग कर दी गई है उसे दुबारा जीवित किया जाय और मतदाताओं को अच्छी तरह संगठित करने तथा गांधीजी के जुलाई १९३३ वाले पूना-वक्तव्य के अनुसार कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने का अवसर दिया जाय। इस परिषद् ने यह विचार भी प्रकट किया कि पार्टी के लिए बड़ी कौंसिल के आगामी निर्वाचनों में भाग लेना आवश्यक है। इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए परिषद् ने निश्चय किया कि निर्वाचन दो लक्ष्यों को लेकर लड़े जायं : (१) सारे दमनकारी कानूनों को रद कराना और (२) ह्वाइट-पेपर की योजनाओं को रद कराकर उनका स्थान उन राष्ट्रीय मांगों को दिलाना जिनका जिक्र गांधीजी ने गोलमेज-परिषद् में किया था। परिषद् ने यह निश्चय करने के बाद गांधीजी के पास डॉ० अन्सारी, श्री भूलाभाई देसाई और डॉ० विधानचन्द्र राय का एक शिष्टमण्डल भेजा कि वह इन प्रस्तावों के विषय में उनसे बातचीत करे और उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने से पहले उनके विचार जान ले।

इस अवसर पर गांधीजी बिहार के भूकम्प-पीड़ित स्थानों का दौरा कर रहे थे और संयोगवश अपना मौन-दिवस (२ अप्रैल, १९३४) सहरसा नामक एक एकान्त स्थान पर बिता रहे थे। यहीं उन्होंने दिल्ली का हाल-चाल जाने बिना ही एक वक्तव्य तैयार किया, जिसे वे प्रेस में देना ही चाहते थे कि उनके पास डॉ० अन्सारी का सन्देश आया कि कल दिल्ली-परिषद् ने एक शिष्ट-मण्डल नियुक्त किया है जो आपसे मिलने पटना आ रहा है। गांधीजी ने उस शिष्ट-मण्डल से बातचीत होने तक वह वक्तव्य रोक रखा और अन्त में अच्छी तरह बात-चीत होने के बाद ७ तारीख को उसे प्रकाशित किया। डॉ० अन्सारी ने भी इसी अवसर पर एक वक्तव्य प्रकाशित करके यह स्पष्ट कर दिया कि गांधीजी ने अपनी हार्दिक और स्वतः दी हुई सहायता द्वारा कांग्रेस में विरोध और भेदभाव की आशंका को दूर कर दिया है। अब कौंसिलों के भीतर और बाहर रहकर दुहरा युद्ध किया जाय जिससे शिक्षित समाज और जनता की राजनैतिक निष्क्रियता और अन्ततः कुपित असंतोष दूर हो जाय।

महासमिति की बैठक

१९३४ की २ और ३ मई को रांची में एक बैठक स्वराज्य-पार्टी को शक्तिशाली और सजीव संस्था का रूप देने के मुख्य उद्देश्य से की गई। ३ मई १९३४ को रांची-परिषद् ने स्वराज्य-पार्टी का जो कार्य-क्रम निश्चित किया उसमें उन सारे कानूनों और विशेष विधानों को, जो राष्ट्र की समुन्नति और पूर्ण-स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग में बाधक हों, रद कराने की बात रखी गई। इस कार्य-क्रम के अनुसार सारे राजनैतिक कैदियों की रिहाई कराना, उन सारे कानूनों और प्रस्तावों का मुकाबला करना जो देश का शोषण करने वाले हों, ग्राम-संघटन करना, मजदूर

सम्बन्धी, मुद्रा-व्यवस्था, विनिमय, कृषि आदि के मामलों में सुधार करवाना और अन्त में कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम पूरा करना कर्त्तव्य माना गया। इन सब विषयों पर १८ और १९ मई १९३४ को पटना में महासमिति की बैठक में चर्चा हुई। यहां यह बात भी कह देना जरूरी है कि कांग्रेस की महासमिति ही एक मात्र ऐसी संस्था थी जो सरकार-द्वारा गैरकानूनी करार नहीं दी गई थी। गांधीजी की सिफारिश के अनुसार सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और स्वराज्य-पार्टी के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें कहा गया कि महासमिति पण्डित मदनमोहन मालवीय और डॉ० अन्सारी को एक बोर्ड बनाने के लिए नियुक्त करती है। इस बोर्ड का नाम होगा—'पार्लमेण्टरी-बोर्ड' और इसके प्रधान डॉ० अन्सारी होंगे। इसमें २५ से अधिक कांग्रेसवादी न रहेंगे। यह बोर्ड कांग्रेस की ओर से कौंसिलों के निर्वाचन के लिए उम्मीदवार खड़े करेगा और इसे अपना काम पूरा करने, चन्दा एकत्र करने, उसे रखने और खर्च करने का अधिकार रहेगा। यह बोर्ड महासमिति के शासन के अधीन रहेगा। यह अपना विधान तैयार करेगा जो कार्य-समिति के सामने स्वीकृति के लिए रखा जायगा। बोर्ड केवल उन्हीं उम्मीदवारों को चुनेगा जो कौंसिलों में कांग्रेस की नीति का, जिसे समय-समय पर निश्चित किया जायगा, पालन करने की प्रतिज्ञा लेंगे।

कार्य-समिति के निश्चय

महासमिति की बैठक के आगे-पीछे कांग्रेस की कार्य-समिति की बैठक भी १८, १९ और २० मई को पटना में हुई। उसने सत्याग्रह की मौकूफी और कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में सिफारिशें कीं, जिन्हें महासमिति ने स्वीकार कर लिया। कार्यसमिति ने, महासमिति के सत्याग्रह-बन्दी के निश्चय के अनुसार, सारे कांग्रेस-वादियों को उसका पालन करने का आदेश दिया। देश-भर के कांग्रेसवादियों ने इस निश्चय का पालन किया और २० मई १९३४ को सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। सत्याग्रह-बन्दी के साथ ही कार्यवाहक-अध्यक्ष का पद स्वभावतः ही उठा दिया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार पटेल इस समय जेल में थे, इसलिए उनकी अनुपस्थिति में सेठ जमनालाल बजाज कार्य-समिति के सभापति बनाये गये, और कांग्रेस के नये अधिवेशन तक उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से सारा काम चलाने का अधिकार दिया गया।

पटना के निश्चय के बाद ही कांग्रेस के कार्य का क्षेत्र बदल गया। सत्याग्रह आन्दोलन बन्द हुआ और कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। अब केवल गांधीजी ही सत्याग्रह करने के लिए रह गये। गांधीजी ने उत्कल में हरिजन-आन्दोलन के सम्बन्ध में दौरा फिर जारी कर दिया। इसके बाद उत्तर प्रदेश की बारी आई। इसके बाद ही से देश-भर के कांग्रेसवादियों ने कांग्रेस-कमिटियों का पुनस्संगठन

आरम्भ कर दिया था। जून लगते-लगते प्रान्तों में कांग्रेस-कमिटियां १९३२ के पहले की भांति काम करने लगीं। तदनुसार कार्य-समिति की बैठक १२–१३ जून को वर्धा में और १७–१८ जून को बम्बई में हुई। इन बैठकों में नव-संगठित कांग्रेस-कमिटियों के लिए एक रचानात्मक कार्यक्रम तैयार किया गया। हाथ से कातकर खद्दर तैयार करना और खद्दर तैयार करनेवाले इलाके में उसका प्रचार करना, अस्पृश्यता-निवारण, साम्प्रदायिक एकता, मादक-द्रव्य-सेवन के त्याग और नशीली वस्तुओं से दूर रहने का प्रचार करना, राष्ट्रीय ढंग की शिक्षा की वृद्धि, छोटे-छोटे उपयोगी उद्योग-धन्धों की वृद्धि, ग्राम्य-जीवन का आर्थिक, शारीरिक, सामाजिक और आरोग्य सम्बन्धी दृष्टि से पुनस्सङ्गठन करना, वयस्क गांववालों में उपयोगी ज्ञान का प्रसार करना, और मजदूरों का संगठन आदि इस कार्यक्रम में सम्मिलित किए गये। कार्य-समिति ने सरकार का ध्यान उसकी उस विज्ञप्ति की असंगति की ओर दिलाया, जिसके अनुसार कांग्रेस-संस्थाओं पर से तो प्रतिबन्ध उठा लिया गया था; परन्तु खुदाई-खिदमतगारों पर, जो १९३१ से कांग्रेस के ही अंग थे, उसी प्रकार प्रतिबन्ध लगा हुआ था। सरकार ने असंगति से तो नहीं, पर खुदाई खिदमतगारों और अफगान जिरगे के विरुद्ध जारी की गई निषेधाज्ञा को वापस लेने से इन्कार कर दिया।

कार्य-समिति की बम्बई वाली बैठक के सामने एक और भी महत्वपूर्ण प्रश्न आया। वह यह था कि ह्वाइट-पेपर की योजना और साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस की क्या नीति होनी चाहिए? कांग्रेस-पार्लमेण्टरी-बोर्ड ने कार्य-समिति से इस मामले में अपनी नीति स्पष्ट करने का अनुरोध किया था, इसलिए उसने इस विषय पर एक प्रस्ताव पास किया।

सरदार पटेल की रिहाई

सत्याग्रह की बन्दी के कारण सरकार ने सत्याग्रहियों को धीरे-धीरे छोड़ना आरम्भ कर दिया था, पर सरदार वल्लभभाई पटेल, पण्डित जवाहरलाल और खान अब्दुलगफ्फार खां को रिहा न करने का उसने निश्चय कर लिया था। इनमें से दो को, सरदार पटेल और खान अब्दुलगफ्फारखां को, उसने जेल में अनिश्चित समय के लिए बन्द कर रक्खा था। पर ऐसी परिस्थिति आ पड़ी कि सरकार को विवश होना पड़ा। सरदार वल्लभभाई पटेल को नाक का पुराना रोग था, जो इधर बहुत बढ़ गया और जुलाई लगते-लगते रोग ने बड़ी भयंकर अवस्था धारण कर ली। सरकार-द्वारा नियुक्त किये गये मेडिकल-बोर्ड ने बताया कि आपरेशन होना जरूरी है, पर आपरेशन तभी अच्छी तरह हो सकेगा जब वह स्वतन्त्र होंगे। फलतः सरकार ने उन्हें १४ जुलाई १९३४ को छोड़ दिया।

मालवीयजी और अणे के त्याग-पत्र

२७ से ३० जुलाई तक बनारस में कार्य-समिति की बैठक हुई। इसमें पं० मदनमोहन मालवीय और श्री अणे के साथ बातचीत फिर आरम्भ हुई। कार्य-समिति मालवीयजी और श्री अणे का सहयोग प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिक निर्णय की मौलिक नीति को नहीं छोड़ सकती थी। इस कारण पण्डित मदनमोहन मालवीय ने कांग्रेस पार्लमेण्टरी-बोर्ड के सभापति-पद से इस्तीफा दे दिया और श्री अणे ने पार्लमेण्टरी बोर्ड और कार्य-समिति की सदस्यता को त्याग दिया। बंगाल को भी शिकायत थी कि हरिजनों को अतिरिक्त जगहें क्यों दी गईं? इस प्रकार बंगाल का रुख कार्य-समिति के साम्प्रदायिक निर्णय वाले मामले के ही विरुद्ध नहीं था, बल्कि पूना पैक्ट के भी विरुद्ध था।

अब्दुल गफ़्फार खां की रिहाई

सत्याग्रह-बन्दी के बाद भी सरकार ने दमन-नीति जारी रखी थी। खान अब्दुलगफ्फार खां को जेल में बन्द रखने से लोक-मत बहुत रुष्ट हो गया था। सीमान्त-प्रदेश उन प्रान्तों में से था जिन्होंने १९२० के और १९३२-३४ के युद्ध में पूरा मोर्चा लिया था। युद्धप्रिय पठानों के अहिंसा-व्रत की बड़ी परीक्षा हुई, पर उन्होंने सन्तोषपूर्वक कष्ट सहे। इसलिए देश में यहां से वहां तक लोगों का दिल यही कहता था कि उस प्रान्त के नेता को जेल में बन्द रखना अन्यायपूर्ण है। सीमान्त-प्रदेश के प्रश्न पर गांधीजी भी चिन्तित थे। परन्तु जब अगस्त के अन्तिम सप्ताह में अचानक खान अब्दुलगफ्फारखां और उनके भाई डॉ० खानसाहब को छोड़ दिया गया तब जनता को बड़ी तसल्ली हुई। पर मुक्त होने पर भी उन्हें अपने प्रांत और अपने घर जाने की इजाजत नहीं थी। यद्यपि सीमान्त-प्रदेश ने भी सत्याग्रह-बन्दी के आदेश का यथावत पालन किया था।

कार्य-समिति की बैठक

कार्य-समिति की बैठक २५ सितम्बर को वर्धा में हुई। इस अवसर पर लक्ष्य और लक्ष्य-प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति को दोहराया गया। 'आगामी निर्वाचनों' के सम्बन्ध में कार्य-समिति ने सारी प्रान्तीय और मातहत कांग्रेस-संस्थाओं को आज्ञा दी कि वे निर्वाचन-सम्बन्धी कार्य में पार्लमेण्टरी-बोर्ड को सहायता देना अपना कर्तव्य समझें। कार्य-समिति ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जो दल या व्यक्ति कांग्रेस की नीति के विरुद्ध हों उन्हें सहायता न दी जाय। एक दूसरे प्रस्ताव में जंजीबार के भारतीयों का और उन्हें उनके न्यायपूर्ण भूस्वत्व से वंचित किये जाने की कार्रवाई-सम्बन्धी कष्टों का जिक्र किया गया। श्री अणे के महासमिति की बैठक बुलाने के प्रस्ताव पर भी विचार हुआ। कार्य-समिति ने

महासमिति की बैठक बुलाने के प्रश्न पर कई घण्टे तक विचार किया। अन्त में वह इस नतोजे पर पहुंची कि चूँकि कार्य-समिति को अपने निश्चय के औचित्य के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है और चूंकि महासमिति के नये चुनाव अभी हो रहे हैं, इसलिए कार्य-समिति महासमिति की बैठक बुलाने का जिम्मा नहीं ले सकती। बैठक में यह भी कहा गया कि यदि महासमिति के कुछ सदस्यों को कार्य-समिति के प्रस्ताव के खिलाफ कोई शिकायत है तो महासमिति के ३० सदस्य महासमिति की बैठक करने की मांग पेश कर सकते हैं। कार्य-समिति ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि चुनाव के उम्मीदवारों को कार्य-समिति के साम्प्रदायिक निर्णय-सम्बन्धी निश्चय का, अन्तःकरण के विरुद्ध होने के आधार पर पालन न करने के लिए मुक्त कर दिया जाय, पर वह इस नतीजे पर पहुंची कि चूंकि कार्य-समिति ने इस बन्धन-मुक्ति के सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव पास नहीं किया है, इसलिए बन्धन-मुक्ति स्वीकार न की जाय। मालवीयजी ने श्री अणे के द्वारा एक संदेश भेजा था, जिसके उत्तर में गांधीजी ने यह तजवीज पेश की थी कि व्यर्थ के पारस्परिक तनाव और संघर्ष को बचाने के लिए यह अच्छा होगा कि प्रतिद्वन्द्वी उम्मीदवारों की सफलता की सम्भावना पर विचार करके उन उम्मीदवारों को हटा लिया जाय जिनके सफल होने की सम्भावना कम हो। इसपर कोई समझौता न हो सका। पर पार्लमेण्टरी-बोर्ड ने यह निश्चय किया कि जिन जगहों के लिए मालवीयजी और श्री अणे खड़े हों उनके लिए उम्मीदवार खड़े न किये जायं। बोर्ड ने यह भी निश्चय किया कि सिन्ध में और कलकत्ता शहर में उम्मीदवार खड़े न किये जायं।

गांधीजी और कांग्रेस

इन्हीं दिनों कांग्रेस के इतिहास में एक और महत्त्वपूर्ण घटना हुई। यह चर्चा आमतौर से की जा रही थी कि गांधीजी कांग्रेस त्याग देंगे। यह कोरी किम्बदन्ती ही न थी, क्योंकि उनके जुलाई के मध्यवाले ७ दिन के उपवास के दौरान में जो मित्र उनसे मिलने गये थे, और इसके बाद बंगाल तथा आंध्र से जो लोग किसी-न-किसी कार्यवश उनके पास वर्धा पहुंचे थे, उनसे वह इसकी चर्चा बराबर कर रहे थे। गांधीजी ने १७ सितम्बर १९३४ को वर्धा से नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने कहा कि यह अफवाह सच थी कि मैं कांग्रेस से अपना स्थूल सम्बन्ध विच्छेद करने की बात सोच रहा हूं। वर्धा में अभी हाल में कार्य-समिति और पार्लमेण्टरी-बोर्ड की बैठकों में भाग लेने के लिए जो मित्र यहां आये थे उनसे मैंने इस सम्बन्ध में विचार करने का अनुरोध किया और उनकी इस बात से बाद में सहमत हो गया कि अगर मुझे कांग्रेस से अलग ही होना हो तो वह सम्बन्ध-विच्छेद कांग्रेस के अधिवेशन के बाद ही होना अच्छा होगा। अन्तिम निश्चय को स्थगित कर देने की बात इस दृष्टि से पसन्द

आई कि इस बीच मुझे अपनी इस धारणा की जांच कर लेने का मौका मिल जायगा।

गांधीजी ने यह भी कहा कि मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि बहुत-से कांग्रेस-वालों और मेरी विचार-दृष्टि के बीच एक बढ़ता हुआ और गहरा अन्तर मौजूद है। वे यदि मेरे प्रति अनुपम भक्ति के बन्धन में न पड़े रहें तो प्रसन्नता के साथ उस दिशा की ओर जायंगे जो मेरी दिशा के बिलकुल विपरीत है। कोई भी नेता उस वफादारी और भक्ति की आशा नहीं कर सकता जो मुझे बुद्धिशाली कांग्रेसवादियों द्वारा प्राप्त हो चुकी है, वह भी ऐसी अवस्था में जब उनमें से बहुतों ने मेरे द्वारा कांग्रेस के सामने रखी गई नीति का स्पष्ट रूप से विरोध व्यक्त किया है। मेरे लिए उनकी भक्ति तथा श्रद्धा से अब और लाभ उठाना उन पर बेजा दबाव डालना है।

मत-भेदों का उल्लेख करते हुए गांधीजी ने कहा कि चर्खा और खादी को मैंने सबसे पहला स्थान दिया है। कांग्रेस के बुद्धिजीवी लोगों द्वारा चर्खा कातना लुप्तप्राय हो गया है। साधारणतः उन लोगों का इसमें कोई विश्वास रहीं रह गया है। कांग्रेस-विधान में खादी के सम्बन्ध में जो धारा है वह शुरू से ही निर्जीव रही है और कांग्रेसवाले खुद मुझे यह चेतावनी देते रहे हैं कि खादी की धारा के सम्बन्ध में जो पाखण्ड और टाल-मटोल चल रही है उसके लिए मैं ही जिम्मेदार हूं। मुझे यह बात मान लेनी चाहिए कि उन लोगों की इस दलील में काफी सचाई है। फिर भी मेरा विश्वास बढ़ता ही रहा है। चर्खा सच्चे अर्थ में मानव-गौरव तथा समानता का शुद्ध चिह्न है। वह खेती का एक सहायक धन्धा है। वह राष्ट्र का दूसरा फेफड़ा है जिसे काम में न लाने से हम नष्ट हो रहे हैं। कांग्रेस-विधान में से खादी की धारा को हटा देने का अर्थ यह है कि कांग्रेस और देश के करोड़ों गरीबों के बीच की कड़ी टूट गई। इस गरीब जनता का प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न कांग्रेस अपने जन्मकाल से करती आ रही है। यदि उक्त सम्बन्ध कायम रखने के लिए वह धारा बनी रहेगी तो उसका सख्ती से पालन कराना पडेगा।

पार्लमेण्टरी-बोर्ड के सम्बन्ध में गांधीजी ने कहा कि कांग्रेस के नियंत्रण में एक पार्लमेण्टरी-पार्टी बनाना किसी भी कार्यक्रम का आवश्यक अंग है। यहां भी हम लोगों के बीच गहरा मतभेद है। पटना की महासमिति की बैठक में जिस जोर से मैंने इस कार्यक्रम को पेश किया था उसने हमारे बहुत-से अच्छे-अच्छे साथियों को व्यथित किया, और उसपर चलने में वे हिचकिचाये। किसी हद तक अपने मत को दूसरे ऐसे व्यक्ति के मत के आगे जो बुद्धि या अनुभव में बड़ा समझा जाता है दबा देना एक संस्था की निर्विकार उन्नति के लिए हितकर और वाञ्छनीय है। किन्तु यह तो एक भयंकर अत्याचार होगा, यदि अपना मत इस प्रकार बार-बार दबाना पड़े। बहुत-से मेरे मित्र मेरा विरोध करने के विषय में हताश हो गये हैं।

मेरे जैसे जन्मना लोकतंत्रवादी के लिए इस भेद का खुल जाना लज्जा की बात है। मैंने गरीब-से-गरीब मनुष्य के साथ अपने को मिला देने और उससे अच्छी दशा में न रहने की तीव्र अभिलाषा अपने हृदय में रखी है, और सतह तक पहुंचने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न किया है। इन कारणों से अगर कोई लोकतंत्रवादी होने का दावा कर सकता है, तो वह दावा मैं करता हूं।

गांधीजी ने यह भी कहा कि मैंने समाजवादी-दल का स्वागत किया है, जिसमें मेरे बहुत से आदरणोय और आत्मत्यागी साथी मौजूद हैं। यह सब होते हुए भी उनका जो प्रामाणिक कार्यक्रम छपा है उससे मेरा मौलिक मतभेद है। किन्तु मैं उनके साहित्य में प्रतिपादित सिद्धान्तों का फैलना अपने नैतिक दबाव से नहीं रोकना चाहता। अस्पृश्यता के बारे में भी मेरी दृष्टि अधिकांश नहीं तो बहुत-से कांग्रेसजनों से कदाचित् भिन्न है। मेरे लिए तो यह एक गम्भीर धार्मिक और नैतिक प्रश्न है। बहुतों का विचार है कि इस प्रश्न को जिस तरह और जिस समय मैंने हाथ में लिया उससे सत्याग्रह-आन्दोलन की गति में बाधा डालकर मैंने भारी भूल की। पर मैं अनुभव करता हूं कि अगर मैंने दूसरा मार्ग पकड़ा होता तो मैं अपने-तईं सच्चा न रहा होता।

अहिंसा के सम्बन्ध में गांधीजी ने लिखा कि १४ वर्ष के प्रयोग के बाद भी वह अबतक अधिकांश कांग्रेसियों के लिए नीतिमात्र ही है, जबकि मेरे लिए वह एक मूल सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के २७ वर्ष के अध्ययन और व्यवहार के बाद भी मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं उसके सम्बन्ध में कुछ जानता हूं। अनुसन्धान का क्षेत्र अवश्य ही परिमित है। मनुष्य के जीवन में सत्याग्रह करने के अवसर निरन्तर नहीं आते रहते। माता, पिता, शिक्षक अथवा धार्मिक या लौकिक गुरुजनों की आज्ञा स्वेच्छा से पालन करने के बाद ही ऐसा अवसर आ सकता है। इसपर आश्चर्य न होना चाहिए कि एकमात्र विशेषज्ञ होने के कारण, चाहे मैं कितना ही अपूर्ण होऊं, मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि कुछ समय के लिए सत्याग्रह मुझ तक ही सीमित रहना चाहिए। सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित करने के बारे में पटना से जो मैंने वक्तव्य प्रकाशित किया था उसमें मैंने लोगों का ध्यान सत्याग्रह की विफलता की ओर दिलाया था। अगर हममें पूर्ण अहिंसा का भाव होता तो वह स्वयं प्रत्यक्ष हो जाता और सरकार से छिपा न रहता। निस्सन्देह सरकार के आर्डिनेन्स हमारे किसी कार्य अथवा हमारी किसी गलती के कारण नहीं बने थे। वे तो हमारी हिम्मत तोड़ने के लिए बनाये गये थे। पर यह कहना गलत है कि सत्याग्रही दोष से परे थे। मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि हम मन, वचन और कर्म से विशुद्ध अहिंसक नहीं रहे हैं। इस प्रयोग के लिए, जिसके लिए जीवन अर्पित है, मुझे पूर्ण निस्संग और स्वतंत्र रहने की आवश्यकता है।

स्वराज्य की परिभाषा के संबंध में गांधीजी ने कहा कि "पूर्ण-स्वराज्य की परिभाषा करना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है। १९०८ से मैं बराबर कहता आया हूं कि साधन और साध्य समानार्थक शब्द हैं। इसलिए जहां साधन अनेक और परस्पर-विरोधी भी हैं वहां साध्य अवश्य भिन्न और साधन के प्रतिकूल होगा। साधनों पर सदा हमारा अधिकार और नियंत्रण रहता है, पर साध्य पर कभी नहीं होता। यदि हम समान अर्थ तथा ध्वनि-वाले साधनों का उपयोग करते हों तो हमें साध्य के विश्लेषण में माथापच्ची करने की जरूरत न होगी। पर बहुतेरे कांग्रेसवादी इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार नहीं करते। उनका विश्वास है कि साध्य शुद्ध हो तो साधन चाहे जैसे काम में लाये जा सकते हैं। इन सब मतभेदों ने ही कांग्रेस के वर्तमान कार्यक्रम को विफल बना दिया है। कारण, जो कांग्रेस-सदस्य हृदय से उसमें विश्वास किये बिना मुंह से उसकी हामी भरते हैं वे स्वभावत: उसे कार्य में परिणत नहीं कर पाते, और मेरे पास उस कार्यक्रम के सिवा दूसरा कोई कार्यक्रम है ही नहीं, जो इस समय देश के सामने है—अर्थात् अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम-एकता, सम्पूर्ण मद्य-निषेध, चर्खा और खादी तथा ग्राम-उद्योगों को पुनर्जीवित करने के रूप में सौ फीसदी स्वदेशी का प्रचार और भारत के ७ लाख गांवों का संगठन। यह कार्यक्रम प्रत्येक देशभक्त की देशभक्ति को तृप्त करने के लिए काफी होना चाहिए। कांग्रेस देश की सबसे अधिक शक्ति-शालिनी और प्रतिनिधि संस्था है। उसका जीवन उच्चकोटि की अटूट सेवा और त्याग का इतिहास है। अपने जन्म-काल से ही उसने जितने तूफानों का सफलता के साथ सामना किया है उतना किसी और संस्था को नहीं करना पड़ा है। अत: यदि ऐसी संस्था से मुझे अलग होना ही पड़े तो यह नहीं हो सकता कि ऐसा करने में मुझे दिल कचोटने का भारी कष्ट, विछोह की असहनीय पीड़ा न सहन करनी पड़ेगी। और मैं तभी ऐसा करूंगा जब मुझे निश्चय हो जायगा कि कांग्रेस के अन्दर रहने की अपेक्षा उसके बाहर रहकर मैं देश की अधिक सेवा कर सकूंगा।

अन्त में गांधीजी ने कहा कि मैं चाहता हूं कि मैंने जिन विषयों की चर्चा की है उनको कार्य रूप में परिणत कराने के लिए कुछ प्रस्ताव विषय-समिति में पेश करके कांग्रेस के भाव की परीक्षा करूं। पहला संशोधन जो मैं पेश करूंगा वह यह होगा कि 'उचित और शान्तिमय' शब्दों के बदले 'सत्यतापूर्ण' और 'अहिं-सात्मक' शब्द रखे जायं। अगर कांग्रेसी वस्तुत: हमारे ध्येय की प्राप्ति के लिए सचाई और अहिंसा की आवश्यकता समझते हैं तो उन्हें इन स्पष्ट विशेषणों को स्वीकार करने में हिचक न होनी चाहिये। दूसरा संशोधन यह होगा कि कांग्रेस की मताधिकार-योग्यता चार आने के बदले हर महीने कम-से-कम १५ नम्बर का अच्छा बटा हुआ २००० तार (एक तार=४ फुट) सूत हर महीने देने की

रखी जाय और वह सूत मतदाता खुद चर्खे या तकली पर कात कर दें। अगर किसी मेम्बर की गरीबी साबित हो तो उसको कातने के लिए काफी रुई दी जाय ताकि वह उतना सूत कातकर दे सके। तीसरा संशोधन जो मैं पेश करना चाहता हूं वह यह होगा कि किसी ऐसे कांग्रेसी को कांग्रेस के निर्वाचन में मत देने का अधिकार न होगा जिसका कि नाम ६ महीने तक बराबर कांग्रेस रजिस्टर पर न रहा हो और जो पूरी तरह से आदतन खादी पहननेवाला न रहा हो। साथ ही मैं यह संशोधन भी चाहूंगा कि ६००० प्रतिनिधियों की संख्या घटा कर इतनी कर दी जाय जो १००० से अधिक न हो, और प्रति एक हजार वोटरों के पीछे एक प्रतिनिधि से अधिक न चुना जाय। इस प्रकार पूरे प्रतिनिधियों की संख्या का अर्थ यह हुआ कि पूरे १० लाख मतदाता हों। यह कोई ऐसी आकांक्षा नहीं है, जो पूरी न हो। ३५ करोड़ की जन-संख्या वाले देश के लिए यह अधिक नहीं है। इस संशोधन के द्वारा कांग्रेस को जो वास्तविक लाभ होगा, उससे संख्या-बल की क्षतिपूर्ति अच्छी तरह हो जायगी। अधिवेशन के ऊपरी ठाट-बाट की रक्षा दर्शकों के लिए उचित प्रबन्ध करके की जायगी, और स्वागत-समिति को अत्यधिक संख्यक प्रतिनिधियों के रहने आदि की व्यवस्था करने में जिस व्यर्थ की परेशानी का सामना करना पड़ता है उससे छुटकारा मिल जायगा।

मुझे आशंका है कि जिन संशोधनों का मैंने उल्लेख किया है वे बम्बई-कांग्रेस में शामिल होनेवाले कांग्रेसजनों में से अधिकतर को शायद ही पसन्द आयें। परन्तु यदि कांग्रेस की नीति का संचालन मेरे जिम्मे रहे, तो मैं इन संशोधनों को और अन्य ऐसे प्रस्तावों को, जो मेरे इस वक्तव्य के भाव के अनुकूल हों, देश के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अति आवश्यक समझता हूं। जिस नेता के पास अहिंसा और सत्य के सिवा और कोई साधन नहीं है, उसके लिए तो यह बात और भी सच्ची है। इसलिए यह स्पष्ट है कि मैंने जो कार्यक्रम उपस्थित किया है उस में समझौते की गुंजाइश नहीं है। कांग्रेसजनों को चाहिए कि शान्त भाव से उसके गुणदोष पर विचार कर लें। वे मेरा कोई लिहाज न करें और अपनी विवेक-बुद्धि के अनुसार ही कार्य करें।

बम्बई-कांग्रेस : १९३४

२६ से २८ अक्तूबर (१९३४) तक बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। अधिवेशन के शुरू होते ही गांधीजी ने अपने संशोधनों को दो विभागों में बांट दिया; कांग्रेस-विधान-सम्बन्धी और सत्याग्रह-सम्बन्धी। सत्याग्रह-सम्बन्धी संशोधनों को उन्होंने कार्य-समिति के फैसले के लिए छोड़ दिया, पर विधान-सम्बन्धी संशोधनों के बारे में उन्होंने कहा कि उनका पास होना ही इस बात की परख होगी कि कांग्रेस उसके नये सभापति व उनके साथियों में विश्वास रखती है अथवा नहीं।

पर आश्चर्य की बात है कि कार्य-समिति ने उपयुक्त परिवर्तनों-सहित दोनों प्रकार के संशोधन स्वीकार कर लिये और स्वयं कांग्रेस ने भी उन्हें मुख्यत: स्वीकार कर लिया, जिससे गांधीजी संतुष्ट हो गये।

लेकिन कांग्रेस का नया विधान या पार्लमेण्टरी बोर्ड, रचनात्मक कार्यक्रम एवं साम्प्रदायिक निर्णय-सम्बन्धी पुराने प्रस्तावों की स्वीकृति में प्रस्तावों का पास होना, अधिवेशन के मार्के के निर्णयों में से नहीं थे। अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ की स्थापना इस कांग्रेस की मुख्य घटना थी, जिसके बारे में यह निश्चय हुआ कि वह गांधीजी की सलाह एवं देख-रेख में काम करे और राजनैतिक कहलाई जानेवाली हलचलों से अलग रहे। खद्दर के कार्यक्रम की पूर्ति का यह युक्ति-युक्त परिणाम ही था।

गांधीजी के कांग्रेस से अलग होने का प्रश्न भी सामने आया। गांधीजी का उद्देश्य कांग्रेस को देश में एक शक्ति बनाना था। किसी संस्था की शक्ति उसके सदस्यों की संख्या से नहीं, बल्कि उन सदस्यों के पीछे जो नैतिक शक्ति होती है उसमें निहित रहती है; और जैसे-जैसे उसके नेताओं में जिम्मेदारी की भावना बढ़ती जाती है वैसे-वैसे ही, अर्थात् उसी अनुपात में, वह नैतिक-शक्ति भी बढ़ती जाती है। इसी जिम्मेदारी को संभालने के बजाय कांग्रेस बहुत काल तक और बहुत अधिक मात्रा में गांधीजी पर ही निर्भर रहती चली आई थी और अपनी शर्तों पर ही गांधीजी का सहयोग चाहती थी। गांधीजी इसके लिए तैयार नहीं थे। कांग्रेसी गांधीजी का सहयोग गांधीजी की शर्तों पर ही प्राप्त कर सकते थे। यदि कांग्रेस गांधीजी की शर्तों को पूरा कर दे तो वह कांग्रेस में वापस आने और उसका कार्य संचालन करने के लिए तैयार थे। अपने इन्हीं विचारों के कारण गांधीजी कांग्रेस से अलग हो गये।

बम्बई-कांग्रेस के सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद थे। उनका अभिभाषण उन गिने-चुने नमूनेदार अभिभाषणों में से था जो राजनैतिक-स्थिति पर स्थायी प्रभाव छोड़ देते हैं। उन्होंने श्वेत-पत्र (ह्वाइट पेपर) की तफसीलवार अत्यन्त विद्वत्ता-पूर्ण आलोचना की। उनके तथा स्वागताध्यक्ष के तत्त्वावधान में कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। कांग्रेस के पहले प्रस्ताव-द्वारा उन प्रस्तावों को मंजूर किया गया जो कार्य-समिति तथा महासमिति ने उस वर्ष अपनी बैठकों में पास किये थे और जिनके मुख्य विषय पार्लमेण्टरी-बोर्ड, रचनात्मक कार्य-क्रम, प्रवासी भारतीयों की स्थिति, शोक-प्रकाश, स्वदेशी आदि थे। इसके पश्चात् राष्ट्र के त्याग और सविनय-अवज्ञा में राष्ट्र की आस्था विषयक एक प्रस्ताव पास हुआ।

अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ के विषय पर खासी बहस और चहल-पहल रही और इस सम्बन्ध में भी एक लम्बा प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रस्ताव के परिणाम-स्वरूप ही नुमाइशों तथा प्रदर्शनों के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव

पास किया गया। कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड पर भी कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया। कांग्रेस ने बोर्ड की सिफारिश स्वीकार करते हुए निश्चय किया कि मौजूदा पार्लमेण्टरी बोर्ड १ मई १९३५ को भंग हो जाय और महासमिति उस तारीख तक या उससे पहले २५ सदस्यों के एक नये बोर्ड का चुनाव करे। निर्वाचित बोर्ड को ५ सदस्यों को अपने में और सम्मिलित करने का अधिकार भी दिया गया। कांग्रेस ने यह भी निश्चय किया कि हर साल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर पार्लमेण्टरी बोर्ड का नया चुनाव हुआ करे और इस बोर्ड को भी ५ अतिरिक्त सदस्यों के सम्मिलित करने का अधिकार रहे। निर्वाचित पार्लमेण्टरी बोर्ड को भी वही अधिकार दिये गये जो मौजूदा बोर्ड को थे। खद्दर-मताधिकार के सम्बन्ध में एक पृथक् प्रस्ताव पास किया गया। इन प्रस्तावों के पश्चात् बम्बई-कांग्रेस में सबसे पहली बार श्रम-मताधिकार का प्रस्ताव पास किया गया। अन्त में गांधीजी की अलहदगी पर गांधीजी में विश्वास का एक प्रस्ताव पास किया गया। तत्सम्बन्धी प्रस्ताव इस प्रकार था—

"यह कांग्रेस महात्मा गांधी के नेतृत्व में अपने विश्वास को फिर प्रकट करती है। उसका यह दृढ़ मत है कि कांग्रेस से अलग होने के निश्चय पर उन्हें विचार करना चाहिए। लेकिन चूंकि उन्हें इस बात के लिए राजी करने के सब प्रयत्न विफल हुए हैं, यह कांग्रेस अपनी इच्छा के विरुद्ध उनके निर्णय को मानते हुए राष्ट्र के लिए की गई उनकी बेजोड़ सेवाओं के प्रति धन्यवाद प्रकट करती है और उनके इस आश्वासन पर संतोष प्रकट करती है कि उनका सलाह-मशविरा और पथ-प्रदर्शन आवश्यकतानुसार कांग्रेस को प्राप्त होता रहेगा।"

कांग्रेस के आगामी अधिवेशन के लिए उत्तर प्रदेश से जो निमन्त्रण मिला था, वह स्वीकार किया गया।

असेम्बली का चुनाव

बम्बई का अधिवेशन खतम भी न हो पाया था कि देश असेम्बली के चुनावों में जी-जान से कूद पड़ा। देश-भर में प्रचार-आन्दोलन जारी कर दिया गया। कांग्रेस ने लगभग हरेक 'साधारण' क्षेत्र की जगह के लिए अपना उम्मीदवार खड़ा किया। राष्ट्रवादियों ने पण्डित मालवीय और श्री अणे के नेतृत्व में कांग्रेस से अलग कांग्रेस-नेशनलिस्टों के नाम से खड़ा होने का निश्चय किया। जिस क्षेत्र के चुनाव पर देश का सबसे अधिक ध्यान गया वह था दक्षिण-भारत का व्यापार-क्षेत्र, जिसके लिए सर षण्मुखम् चेट्टी खड़े हुए थे। स्मरण रहे कि सर चेट्टी को भारत-सरकार ने एक व्यापार-सन्धि की शर्तें तय करने के लिए ओटावा भेजा था। ओटावा से लौटने पर वह असेम्बली के अध्यक्ष भी चुन लिये गये थे। उनको एक प्रकार से मद्रास-सरकार तथा भारत-सरकार का समर्थन प्राप्त था।

मद्रास-सरकार के भूतपूर्व गृह-सदस्य सर मुहम्मद उस्मान तथा चीफ मिनिस्टर बॉबिली के राजा उनके पक्ष में निकाले गये घोषणा-पत्र पर दस्तखत करनेवालों में मुख्य थे। उनके पक्ष में इंग्लैंड के इस रिवाज तक को पेश किया गया कि पार्लमेण्ट अर्थात् असेम्बली के अध्यक्ष के विरुद्ध किसी को चुनाव न लड़ना चाहिए। सरकारी अफसरों तक ने खुलकर चुनाव में भाग लिया था। कांग्रेस सर चेट्टी के विरोधी सामी वेंकटाचलम चेट्टी की ओर थी। सामी वेंकटाचलम ने सर षण्मुखम् के ऊपर जो विजय प्राप्त की उसकी गणना साधारण विजयों में नहीं की जा सकती थी। वास्तव में वह सरकार के ऊपर कांग्रेस की, धनसत्ता के ऊपर नैतिक-बल की, और ओटावा और ब्रिटेन दोनों के ऊपर भारत की विजय थी। दक्षिण-भारत और उत्तर-प्रदेश कांग्रेस ने सब 'साधारण' जगहों पर कब्जा कर लिया। उत्तर-प्रदेश में कांग्रेस को मुसलमानों की भी एक जगह मिल गई। बंगाल में कांग्रेस नेशनलिस्टों की विजय रही। बिहार, मध्यप्रान्त, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक तथा आसाम में सब जगह कांग्रेस ने बाजी मारी। केवल पंजाब में ही कांग्रेस पिछड़ गई। वहां उसे केवल एक ही जगह मिली। 'साम्प्रदायिक निर्णय' के प्रश्न के अलावा कांग्रेस-नेशनलिस्ट हरेक बात में कांग्रेस के साथ थे।

असेम्बली में कांग्रेस-पार्टी ने श्री तसद्दुक अहमदखां शेरवानी को असेम्बली की अध्यक्षता के लिए खड़ा किया, लेकिन वह हार गये। अपने तीन विजयी उम्मीदवार श्री अभ्यंकर, शेरवानी व शशमल को खोकर कांग्रेस को बड़ी क्षति उठानी पड़ी। देश को श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ सेवा अर्पित करके ये तीनों वीर अपने जीवन के यौवन-काल में इस संसार से कूच कर गये।

असेम्बली में कार्य

कांग्रेस-पार्टी ने फौरन असेम्बली में, जिसका अधिवेशन ११ जनवरी को शुरू हुआ, अपना कार्य आरम्भ कर दिया। सरकार ने अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ के बारे में जो गश्ती-पत्र निकाला था उस पर विवाद उठाने के लिए कांग्रेस ने कार्य रोक रखने का प्रस्ताव पेश किया, लेकिन वह खटाई में पड़ गया। श्री शरत्चन्द्र बसु को नजरबन्द रखने के विरोध में पेश किया गया ऐसा ही प्रस्ताव ५४ के विरुद्ध ५८ रायों से पास हो गया। स्मरण रहे कि श्री शरत्चन्द्र बसु जब नजरबन्द थे तब भी वह असेम्बली के लिए निर्विरोध चुन लिये गये थे। असेम्बली के सदस्य होते हुए भी असेम्बली की बैठकों में भाग लेने की सरकार ने उन्हें इजाजत नहीं दी। कांग्रेस-पार्टी का ध्यान सबसे पहले इस बात की ओर ही गया और उसने श्री भूलाभाई के योग्य नेतृत्व में अपनी मोर्चाबन्दी की। कांग्रेस ने अपना दूसरा वार ब्रिटेन तथा भारत में हुए तिजारती समझौते पर किया। समझौता तो किया था ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल के दो सदस्यों ने भारत के व्यापार की लूट को बांटने के

लिए, पर उसको दे दिया गया बड़ा ऊंचा नाम 'ब्रिटेन-भारत का व्यापारिक समझौता'। वास्तव में समझौते में यह बात खुलासा तौर पर रखी गई थी कि "भारतीय-व्यवसायों को केवल इतना ही संरक्षण दिया जायगा, जिससे कि बाहर से आनेवाला माल भारत में लगभग उसी कीमत पर बिक सके जिस कीमत पर उसी प्रकार का भारत का बना माल यहां बिकेगा; और जहांतक सम्भव होगा ब्रिटेन के बने माल पर कम महसूल लगाया जायगा। इस विलक्षण समझौते पर १० जनवरी १९३५ को हस्ताक्षर हुए। बड़ी कौंसिल में इसकी चारों ओर से निन्दा की गई। खुदाई खिदमतगारों पर लगाये गये प्रतिबन्ध को हटाने के पक्ष में भी विजय रही। सरकार की कर-सम्बन्धी नीति के ऊपर भी लोकमत की ही विजय हुई। जब रेलवे-बजट पर विचार हुआ तब सरकार को अनेक बार हार खानी पड़ी। साथ ही स्याम के चावल और २५ या ३० अन्य विषयों पर भी विजय प्राप्त हुई थी।

कार्य-समिति की पहली बैठक

नई कार्य-समिति की पहली बैठक पटना में ५, ६ और ७ दिसम्बर १९३४ को हुई। समिति ने श्री बी० एन० शशमल की मृत्यु पर शोक-प्रकाश किया। वह बड़ी कौंसिल के लिए निर्वाचन का फल प्रकट होने के दिन ही परलोक सिधारे थे। कार्य-समिति ने ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये और उसके विरोध में प्रस्ताव पास किया। श्री सुभाषचन्द्र बसु की स्वतन्त्रता और गति-विधि पर जो अपमान और सन्ताप-जनक सरकारी बन्दिशें लगाई गई थीं, उन पर कार्य-समिति ने क्षोभ प्रकट किया। समिति ने सम्मति प्रकट की कि कौंसिलों में गये हुए कांग्रेसी सदस्यों को सदा खद्दर पहनना चाहिए और उनसे अनुरोध किया कि वे इस नियम का पालन कड़ाई के साथ करें। कार्य-समिति से बंगाल के राष्ट्रीय-दल ने इस आशय का जो आग्रह किया था कि गतनिर्वाचन के अवसर पर दिये गये बंगाल के हिन्दुओं के कांग्रेस-विरोधी मत को ध्यान में रखकर साम्प्रदायिक-निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस के रुख पर दुबारा विचार हो, उसके सम्बन्ध में समिति ने यह सम्मति स्थिर की कि कांग्रेस की नीति बम्बई कांग्रेस के प्रस्ताव-द्वारा निर्धारित हुई थी, और समिति के अधिकांश सदस्यों ने उस नीति का समर्थन किया था, इसलिए उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

कार्य-समिति की दूसरी बैठक

कार्य-समिति की दूसरी बैठक १६ से १८ जनवरी तक फिर हुई। इस बैठक में नागपुर के श्री अभ्यंकर और गुजरात-विद्यापीठ के आचार्य गिडवानी के

परलोकवास पर शोक-प्रकाश किया गया। इन दोनों सज्जनों ने बड़े कष्ट उठाये थे और देश की सेवा बड़ी लगन के साथ की थी। अन्य वर्षों की भांति इस वर्ष भी पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाया गया और इस अवसर के लिए सारे भारत के पालनार्थ एक खास प्रस्ताव बनाया गया।

कार्य-समिति ने यह सिफारिश की कि राष्ट्रीय दिवस में जहां तक सम्भव हो कोई खास रचनात्मक कार्य किया जाय और इस दिन पूर्ण-स्वराज्य के लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपेक्षाकृत अधिक आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया जाय। हड़तालें न की जायं। उसने यह भी हिदायत दी कि किसी आर्डिनेन्स अथवा स्थानीय अधिकारी की आज्ञा की अवहेलना न की जाय और न सभा में भाषण दिए जायं। राष्ट्रीय झण्डा फहराया जाय और खड़े होकर पूर्वोक्त प्रस्ताव पास किया जाय।

सम्राट् जार्ज के शासन की रजत-जयन्ती की ओर स्वभावतः ही कार्य-समिति का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ और इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास हुआ।

सूती-मिलों के प्रश्न पर भी विचार किया गया और यह तय हुआ कि चूंकि अधिकांश सूती मिलों के मालिकों ने कांग्रेस को दिये वचनों को तोड़ दिया है, इसलिए कार्य-समिति की सम्मति है कि कांग्रेस अथवा उससे सम्बन्ध रखने-वाली संस्थाओं के लिए प्रमाण-पत्र जारी करने का सिलसिला कायम रखना सम्भव नहीं है। ऐसी दशा में पुराने प्रमाण-पत्र अब रद समझे जायं। इसके पश्चात् कार्य-समिति ने बर्मा की समस्या पर, ज्वाइन्ट-पार्लमेण्टरी-कमिटी की सुधार-योजना की दृष्टि से, और कांग्रेस के एक केन्द्र की दृष्टि से, विचार किया और निश्चय किया कि बर्मा-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी पहले की भांति ही काम करती रहे।

कार्य-समिति के निश्चय के अनुसार ७ फरवरी १९३५ को ज्वाइन्ट-पार्लमेण्टरी-कमिटी की रिपोर्ट के विरुद्ध दिवस मनाया गया और इसके द्वारा एक बार फिर आदर्श और कार्य का पारस्परिक सहयोग प्रदर्शित कर दिया गया। इस सम्बन्ध में जो अपील प्रकाशित की गई उसके उत्तर में बड़े-बड़े नगरों में ही सभायें की गई हों सो बात नहीं, अनेक प्रान्तों के कोने-कोने में सभायें की गईं। इन सारी सभाओं में वह प्रस्ताव पास किया गया जो कांग्रेस के अध्यक्ष ने बताया था। रंगून में बर्मा-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी-द्वारा आयोजित प्रदर्शन भी अपने ढंग का निराला था, क्योंकि रिपोर्ट को रद करने की मांग पेश करने में बर्मी और भारतीय दोनों आपस में मिल गए थे।

साम्प्रदायिक समझौते के लिए प्रयत्न

अब हमें उस मेल-सम्बन्धी बातचीत की चर्चा करनी है जो **१९३५** की जनवरी

और फरवरी में हुई थी। कांग्रेस के अध्यक्ष बाबू राजनेन्द्र प्रसाद और मुस्लिम लीग के सभापति श्री मुहम्मदअली जिन्ना में, एक ऐसे साम्प्रदायिक समझौते की बातचीत, एक महीने तक चलती रही जो साम्प्रदायिक 'निर्णय' का स्थान ले सके और जिसके द्वारा जातिगत वैमनस्य और कटुता दूर हो और देश सम्मिलित रूप से मुकाबला करे। बातचीत २३ जनवरी को आरम्भ हुई और बीच में कुछ दिनों के लिए बन्द रहकर फिर १ मार्च १९३५ तक जारी रही। पर इस बात-चीत का कोई परिणाम न हुआ और देश को बड़ी निराशा हुई।

सरकार की दमन-नीति

१९३५ में भी सरकारी रुख अथवा नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कांग्रेस को शक्तिशाली शत्रु समझकर उसपर सन्देह की निगाह बनी रही। जरा-जरा-सी बात पर कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध कार्रवाई करने के अवसर से लाभ उठाया जाता रहा। जिनपर आतंककारी कामों का सन्देह किया जाता था, उन्हें बिना मुकदमा चलाये जेलों में या घरों में नजरबन्द रखा जाता था। अनेक स्थानों पर यदा-कदा मकानों की तलाशियां होती थीं। महासमिति के तथा बिहार आदि प्रान्तों की कांग्रेस-कमिटियों के दफ्तरों पर भी निगाह थी। खान अब्दुलगफ्फारखां को बम्बई में भाषण देने के अपराध में दो वर्ष की सजा दी गई थी और डॉ० सत्यपाल को निर्वाचन सम्बन्धी भाषण देने के सिलसिले में एक साल का दण्ड दिया गया था। बंगाल के नजरबन्दों की संख्या हजारों में थी। उनके परिवार असहाय अवस्था में थे। सरकार ने इन परिवारों से उनका निर्वाह करने में समर्थ युवकों को छीन लिया था। २४ और २५ अप्रैल को जबलपुर में महासमिति की बैठक हुई, जिसमें उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। नजरबन्दों के परिवारों और आश्रितों के कष्ट-निवारण के लिए चन्दा इकट्ठा करने का निश्चय किया गया। इस कार्य की पूर्ति के लिए १९ मई का दिन निश्चित किया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष ने इस सम्बन्ध में देश के नाम एक अपील प्रकाशित की। बंगाल की सरकार ने कांग्रेस की इस कार्रवाई का मुकाबला करने के लिए इंडियन प्रेस (इमर्जेन्सी पावर्स) एक्ट की धारा २-ए के अन्तर्गत आदेश जारी कर दिया कि कांग्रेस के अध्यक्ष के आज्ञानुसार देश-भर में मनाये जानेवाले नजरबन्द-दिवस से संबंधित देश के किसी स्थान की कोई सूचना पत्रों में प्रकाशित न की जाय। बंगाल के पत्रकारों ने इसका विरोध किया और इस सम्बन्ध में एक दिन के लिए पत्र-प्रकाशन बन्द रखा।

महासमिति की बैठक

महासमिति ने अपनी २४ और २५ अप्रैल की जबलपुर की बैठक में कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड और निर्वाचन-सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा करने के लिए एक

समिति निर्वाचित की और हिसाब-किताब की जांच के लिये आडीटर नियुक्त किये। महासमिति ने श्री तसद्दुक अहमदखां शेरवानी की मृत्यु पर शोक और बड़ी कौंसिल में कांग्रेस-पार्टी के काम पर संतोष प्रकट किया। इनके सिव. सीमान्तप्रदेश में कांग्रेस-संस्था के बदस्तूर गैर-कानूनी रहने; बंगाल के मिदनापुर जिले की कांग्रेस-कमिटियों के निषिद्ध रहने, और बंगाल, गुजरात तथा अन्य स्थानों पर खुदाई-खिदमतगार और हिन्दुस्तानी सेवादल आदि के गैर-कानूनी बने रहने की ओर देश का ध्यान आकर्षित किया। उसने बंगाल में प्रचलित सरकारी दमन-नीति की, अनेकानेक युवकों को नजरबन्द रखने की नीति की, और स्वयं उन परिवारों के निर्वाह का प्रबन्ध न करने की निन्दा की। उसने कहा कि बंगाल की सरकार को या तो इन नजरबन्दों को छोड़ देना चाहिए, या उनपर अच्छी तरह मुकदमा चलाना चाहिए। बंगाल की जनता और उसके नजरबन्दों को आश्वासन दिया कि उनके कष्टों के साथ उसकी पूरी समवेदना है। समिति ने बंगाल-प्रांतीय कांग्रेस कमिटी को आज्ञा दी कि वह नजरबन्दों की पूरी सूची तैयार करे और उनके नजरबन्द रहने की अवधि और उसके परिवारों की आर्थिक अवस्था से उसे सूचित करे। नजरबन्दों के परिवारों का कष्ट-निवारण करने के उद्देश्य से कार्य-समिति की अधीनता में भारतवर्ष-भर में चन्दा एकत्र करने का निश्चय किया गया। फीरोजाबाद के सामूहिक हिंसात्मक कार्यों के ऊपर खेद प्रकट किया, जिनके फल-स्वरूप डॉ० जीवाराम का पूरा परिवार, बच्चों और कई रोगियों सहित, जीवित जला दिया गया था।

इसी अवसर पर जबलपुर में कार्य-समिति की भी बैठक हुई, जिसमें कांग्रेस के नये विधान के अनुसार प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित की गई और महासमिति के सदस्यों और आगामी कांग्रेस के प्रतिनिधियों के निर्वाचन के सम्बन्ध में विभिन्न कांग्रेस-कमिटियों के पालन के लिए समय-तालिका बनाई गई। उसमें कई प्रान्तों के निर्वाचन-सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा किया गया और कांग्रेस तथा महासमिति में बंगाल के मिदनापुर जिले के प्रतिनिधित्व का प्रबन्ध किया गया, क्योंकि इन दोनों स्थानों पर कांग्रेस-संस्थाओं के गैर-कानूनी होने के कारण निर्वाचन नहीं हो सकता था।

क्वेटा-भूकम्प

१५ जनवरी १९३४ को बिहार के भूकम्प ने देश को हिला दिया था। अभी मुश्किल से १८ महीने बीते होंगे कि ३१ मई १९३५ को क्वेटा के भूकम्प के कारण देश-भर में शोक छा गया। यह शहर सैनिक-केन्द्र था, इसलिए कष्ट-निवारण का काम सरकार ने स्वयं अपने हाथ में लिया। यह स्वाभाविक ही था; पर कष्ट-निवारण और संगठित सहायता के उद्देश्य से बाहर से आनेवालों के प्रवेश

के विरुद्ध आज्ञा क्यों दी गई, यह समझ में न आया। इस स्थान पर जाने की अनुमति न कांग्रेस के सभापति को मिली, न गांधीजी को। ऐसी परिस्थिति में केवल निषिद्ध-प्रवेश के आसपास के स्थानों पर ही संगठित सहायता की जा सकती थी। कांग्रेस के सभापति ने क्वेटा-कष्ट-निवारक-समिति का संगठन किया, जिसकी शाखायें सिंध, पंजाब और सीमान्त-प्रदेश में स्थापित की गईं। ३० जून का दिन भूकम्प-पीड़ितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के निमित्त प्रार्थना करने के लिए नियत हुआ। इस सम्बन्ध में सरकार ने जिस नीति का परिचय दिया वह उसकी अविश्वास और सन्देह की नीति की चरम-सीमा थी।

पद-ग्रहण का प्रश्न

१९३५ के मध्य में कांग्रेसवादियों को, विशेष कर उनको जो कौंसिल-प्रवेश पर अड़े हुए थे, एक और प्रश्न ने उद्विग्न कर रक्खा था, और वह था नये शासन विधान के अन्तर्गत पद-ग्रहण करने के सम्बन्ध में। यह दुर्भाग्य की बात हुई कि इस अवसर पर, जब कि बिल अभी पार्लमेण्ट के सामने पेश ही था, यह प्रसङ्ग छेड़ा गया। बम्बई-कांग्रेस का प्रस्ताव इस मामले में बिलकुल स्पष्ट था। आगामी अधिवेशन तक इसके निर्णय करने का किसी को अधिकार न था। फलतः जुलाई के अन्त में वर्धा में कार्य-समिति की बैठक हुई, जिसमें तय हुआ कि इसका निर्णय कांग्रेस का खुला अधिवेशन ही कर सकता है।

देशी राज्य प्रजा-परिषद् और कांग्रेस

अभी बिल कामन-सभा के सामने ही था कि पार्लमेण्टरी-बोर्ड के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने वकील की हैसियत से देशी-नरेशों को भावी भारत-सरकार के अन्तर्गत सङ्घ शासन के प्रश्न पर सलाह दी और फिर मैसूर में इस विषय पर भाषण भी दिया। इन बातों को लेकर इस वर्ष के आरम्भ में देशी-राज्य-प्रजा-परिषद् में हलचल मच गई। जुलाई में देशी रियासतों की प्रजा के प्रति कांग्रेस के रुख पर विचार करने के लिए महासमिति की बैठक की मांग हुई। देशी-रियासतों की प्रजा ने अपनी मांग गांधीजी के उस भाषण के आधार पर कायम कर रखी थी, जिसे उन्होंने दूसरी गोलमेज-परिषद् के अवसर पर दिया था अर्थात् 'कांग्रेस' ऐसे किसी शासन-विधान से सन्तुष्ट न होगी, जिसके द्वारा देशी राज्यों की प्रजा को नागरिकता के अधिकार प्राप्त न हों और वे संघ व्यवस्था-मण्डल में प्रतिनिधि न भेज सकें।

कार्य-समिति की बैठक

२९, ३० और ३१ जुलाई १९३५ को वर्धा में होनेवाली कार्य-समिति की बैठक में इस विषय पर प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें कहा गया कि भारतीय

रियासतों की प्रजा को भी स्वराज्य का उतना ही अधिकार है जितना ब्रिटिश-भारत की प्रजा को है। इसके अनुसार कांग्रेस ने देशी-राज्यों में प्रतिनिधित्वपूर्ण उत्तर-दायी-शासन की स्थापना के पक्ष में अपनी राय प्रकट की है,और न केवल देशी नरेशों से ही अपने-अपने राज्यों में इस प्रकार की उत्तरदायी-शासन-व्यवस्था स्थापित करने और अपनी प्रजा को व्यक्तिगत, सभा आदि करने के, भाषण देने के और लेखों-द्वारा विचार प्रकट करने के नागरिकता के अधिकार देने की अपील की है, बल्कि देशी-राज्यों की प्रजा से प्रतिज्ञा की है कि पूर्ण उत्तरदायी-शासन की प्राप्ति के लिए उचित और शान्तिपूर्ण साधनों से किये गए संघर्ष में उसकी सहानुभूति है। कांग्रेस अपनी उसी घोषणा और उसी प्रतिज्ञा पर दृढ़ है। पर यह बात समझ लेनी चाहिए कि इस प्रकार का संघर्ष जारी रखने का बोझ स्वयं देशी-राज्यों की प्रजा पर था। कांग्रेस रियासतों पर नैतिक और मैत्री-पूर्ण प्रभाव ही डाल सकती थी। मौजूदा परिस्थिति में और किसी प्रकार का सामर्थ्य कांग्रेस को प्राप्त नहीं था।

अन्त में यह निश्चय किया गया कि चूंकि १८८५ में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ था, इसलिए उसका पचासवां वर्ष उचित ढंग से मनाया जाय। इस उद्देश्य से कार्य-समिति ने कार्यक्रम तैयार करने के लिए एक उप-समिति नियुक्त की। वर्धा की बैठक और वर्ष की समाप्ति के बीच में जो थोड़ा-सा समय रहा उसमें तीन घटनाओं को छोड़कर कोई विशेष बात नहीं हुई। उनमें से एक घटना पण्डित जवाहरलाल की आकस्मिक रिहाई थी। वह अपनी धर्मपत्नी की चिन्ताजनक अवस्था के कारण ३ सितम्बर को अलमोड़ा-जेल से छोड़ दिये गये। उन्हें तुरन्त यूरोप जाना था। शर्त यह थी कि यदि अपनी सजा की मियाद खतम होने से पहले वह लौट आएं तो उन्हें फिर जेल वापस जाना पड़ेगा। दूसरी घटना गवर्नर जनरल-द्वारा सितम्बर में क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट पर सही होना था, यद्यपि बड़ी कौंसिल ने उसे स्पष्ट बहुमत-द्वारा रद कर दिया था। तीसरी महत्व-पूर्ण घटना १७ और १८ अक्तूबर १९३५ की महासमिति की बैठक थी। यह मद्रास में हुई। मद्रास में देशी-राज्यों के प्रश्न पर कार्य-समिति के वक्तव्य के साथ सहमति प्रकट की गयी और पद स्वीकार करने के प्रश्न पर महासमिति ने यह विचार प्रकट किया कि इस विषय पर कांग्रेस के लिए कोई निश्चय करना समयानुकूल नहीं होगा।

अन्त में इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि पार्लमेण्ट ने भारत शासन-विधान पास कर दिया और २ जुलाई को उसे सम्राट् की स्वीकृति प्राप्त गई हो।

: १६ :

पद-ग्रहण और त्याग-पत्र : १९३५-३९

हमारी स्थिति

पूर्व निश्चय के अनुसार सन् १९३५ में न तो कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती मनाई गई और न उसका कोई अधिवेशन ही हुआ। सन् १९३६ में हमको चारों तरफ़ से घेरते हुए तूफ़ान के कुछ आरंभिक लक्षण दिखाई दिये। सन् १९३५ में एबिसीनिया पर इटली ने हमला कर दिया था। भारत में नागरिक स्वतंत्रता बिलकुल समाप्त कर दी गई थी। भारतीय जेलों में लगभग २१०० व्यक्ति नज़रबन्द थे। गवर्नर जनरल के विशेषाधिकार से स्वीकृत क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट कानून मौजूद था। करीब पाँच सौ अखबारों से जमानतें माँगी गई थीं और इसकी वजह से करीब ३५० अखबार बन्द हो गये थे। १६६ अखबारों की जमानतों की रकम २,५०,००० रु० थी। विदेशों में दशा यह थी कि रूस ने बड़ी तेज़ी से उन्नति की थी और सारी दुनिया की आँखें उधर ही थीं। इस अर्द्ध-प्राच्य देश से, जिसने गुलामी की जंज़ीरों और पूँजीवाद के बन्द तोड़े थे, जब कोई प्रगति की खबर मिलती थी तब भारत के लोगों को, जिनकी लम्बी गुलामी ने आज़ादी की सारी उम्मीदों को दूर कर दिया था, एक चैन-सा मिलता था। आम जनता के उत्थान की दिशा में इस विशालकाय रूस ने जो नई समाज-व्यवस्था बनाई थी, उसको देखकर यहाँ के लोगों में वैसा ही आन्दोलन करने, वैसा ही ढाँचा बनाने और वैसी ही सार्वजनिक स्वतंत्रता स्थापित करने की तीव्र उत्कंठा थी। भारत की औद्योगिक जनसंख्या बीस लाख से अधिक नहीं थी। वास्तव में असली समस्या भारत के दसियों करोड़ किसानों की ही थी जो बेकार तो नहीं, पर अर्ध-बेकार ज़रूर थे। भारत विदेशी शासन से कुचला जा रहा था और वह शासन किसी राष्ट्रीय, निरंकुश तानाशाह के शासन से बेहतर नहीं था।

अपनी राजनैतिक मुक्ति के लिए भारत ने कांग्रेस-द्वारा जो योजना चालू की थी, उसको पचास बरस बीत चुके थे। इस लम्बे अर्से में राष्ट्रीयता का वह सिद्धान्त, जो उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही यूरोप के राजनैतिक विकास में गहरी जड़ जमा चुका था, सारे भारत में भी समा गया था और उसकी वजह से राष्ट्रीय जीवन, विचार, आकांक्षा, प्रयत्न, उपलब्धि और आदर्श में एक ऐक्य की भावना स्थापित हो चुकी थी। इससे राष्ट्रीयता के अमूर्त्त विचारों की जगह कुछ ही समय में,

सामाजिक संघर्षों की पार्थिव धारणाओं ने ले ली। नये आर्थिक सिद्धान्त उठ खड़े हुए और मानव-समाज का निर्देश करने वाले नये सिद्धान्तों का प्रचार किया गया। कांँग्रेस ने आर्थिक और सामाजिक ढाँचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की सलाह दी और भारतीय जनता की दशा सुधारने और साथ ही गरीबी और तकलीफ़ दूर करने के ध्येय से सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए कहा। यह बात ध्यान देने की है कि पूर्ण स्वाधीनता संबंधी लाहौर में स्वीकृत प्रस्ताव के छः महीने पहले ही उपर्युक्त प्रस्ताव पास हो गया था। इसलिए यह कहना सही नहीं होगा कि कांँग्रेस का उद्देश्य सिर्फ़ राजनैतिक आजादी ही था और एक नया सामाजिक ढाँचा बनाना नहीं था। 'नई समाज व्यवस्था' का नारा, जिसका महायुद्ध के समय से प्रचार बढ़ गया था, कांँग्रेस के कार्यक्रम में गुथा हुआ था।

भारत में प्रश्न यह था कि 'नई समाज-व्यवस्था' के उद्देश्य पर पहुँचने के लिए कौन-सा साधन है—हिंसा या अहिंसा? बम्बई के अधिवेशन (१९३४) में महासमिति और विषय-निर्वाचन समिति ने कांँग्रेस के उद्देश्य में 'शान्तिपूर्ण और उचित' की जगह 'सत्य और अहिंसा' को नहीं रखा; लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं था कि अधिकांश कांँग्रेसियों और आम जनता में अहिंसा के सिद्धान्त की पकड़ कुछ ढीली हो गई थी, पर देश के तरुण हिंसा से शीघ्र सफलता प्राप्त करने की प्रत्याशा और सम्भावना से प्रभावित थे। देश के नौजवानों में चारों तरफ़ समाजवाद की आवाज़ थी। विद्यार्थी-संघ और यूथ-लीग की इसी कारण स्थापना हुई थी। कांँग्रेस समाजवादी दल के नाम से कांँग्रेस के अन्दर एक पार्टी काम कर रही थी। एक नई पार्टी साम्यवादी पार्टी भी तैयार हो चुकी थी और वह समाजवादी दल से ज्यादा शक्तिशाली थी। दोनों दल जनता में एक-से सुपरिचित हो गये थे। सरकार जब षड्‌यंत्र के मुकदमे चलाती थी तब ये बातें लोगों में और भी ज्यादा फैलती थीं। दक्षिण भारत में समाजवादी दल, साम्यवादी दल के ही रूप में काम कर रहा था। ऐसी दशा में साम्यवादी दल का प्रभाव बराबर बढ़ता जा रहा था। इन्हीं परिस्थितियों में लखनऊ-कांँग्रेस का अधिवेशन (अप्रैल १९३६) हुआ।

लखनऊ-कांँग्रेस : १९३६

इस सारी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न सामने था कि लखनऊ में सभापति कौन हो? गांधीजी धार्मिक मालूम हो सकते थे और उन्हें राजनीतिज्ञ की जगह संत अधिक आसानी से समझा जा सकता था; लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उनमें राजनीति-चातुर्य नहीं था और उनकी अपनी नीति नहीं थी। गांधीजी के बाद सबसे अधिक प्रभावशाली कांँग्रेसी पं० जवाहरलाल थे। वह कांँग्रेस को अन्दर

से आगे बढ़ने की शक्ति दे सकते थे और बाहर से रोक भी लगा सकते थे। इसके अलावा उनमें रूस, जर्मनी, इंगलैण्ड, अमेरिका, जापान, चीन, फ्रांस, स्पेन, इटली और मध्य यूरोप की घटनाओं का गहरा अध्ययन करनेके कारण वर्तमान समस्याओं की उलझन समझने की शक्ति भी थी। भारत की परिस्थिति से भी वह परिचित थे। इस तरह वह पुराने और नये में एक जोड़ने वाली कड़ी थे। वह गांधीवाद और साम्यवाद के बीच एक सेतु की तरह थे और इसी कारण लखनऊ में सभापति-पद ग्रहण करने के लिए सब से अधिक उपयुक्त थे। अन्त में वही कांग्रेस के सभापति चुने गये।

लखनऊ-अधिवेशन में जो कुछ हुआ उससे जवाहरलालजी को बड़ी भारी और तीखी निराशा हुई। उन्होंने ऐसा महसूस किया, मानो वह अकेले एक तरफ़ हों, सारी दुनिया दूसरी तरफ़। खेतिहर कार्यक्रम पर जो प्रस्ताव था वह तो उस बड़े क्रान्तिकारी सामाजिक उभाड़ के कार्यक्रम के लिहाज़ से, जिसे जवाहरलालजी राष्ट्र से मनवाना चाहते थे, एक बहाना भर था। उस समय उन्होंने जिन तीन कट्टर समाजवादियों को कार्यसमिति में लेकर अवसर का ज्यादा-से-ज्यादा फ़ायदा उठाया वे थे : श्री जयप्रकाशनारायण, आचार्य नरेन्द्रदेव और अच्युत पटवर्धन। खेतिहर कार्यक्रम मौके पर लिया गया था। सारे देश में किसानों में हलचल मची हुई थी और सरकार और ज़मींदारों की मनमानी लगान-नीति का विरोध हो रहा था। जमींदार तालाबों, बन्दों, सिंचाई के साधनों, चरागाहों और जंगलों पर विशेषाधिकार जता रहे थे। इन बातों के संबंध में कांग्रेस ने कोई अंतिम निर्णय नहीं किया। नए ऐक्ट का प्रश्न भी उसके सामने था। इस नये ऐक्ट पर उसने अपना असन्तोष जताया और उसकी निन्दा की, लेकिन साथ ही यह तय किया कि चुनाव के लिए एक घोषणा-पत्र बनाया जाय और उसकी बुनियाद पर चुनाव लड़ा जाय। पद-ग्रहण करने के प्रश्न पर कांग्रेस ने उस समय किसी फैसले की जिम्मेदारी लेना मुनासिब नहीं समझा; क्योंकि आगे की परिस्थिति का कुछ ठीक नहीं था। इसलिए उसने खेतिहर कार्यक्रम और पद-ग्रहण के संबंध में अंतिम निर्णय का अधिकार समिति पर छोड़ दिया। ऐक्ट का प्रमुख दोष यह था कि उसमें न तो आत्म-निर्णय था, न संयुक्त निर्णय; बल्कि कुछ और ही निर्णय था। इसके अलावा सरकारी योजनाओं में एक और स्पष्ट दोष था जिसको कि जान-बूझकर रखा गया था। वह यह कि राजसत्ता का धड़ तो था, लेकिन सिर का कोई पता नहीं था और इस तरह सारे काम अनियंत्रित और असंबद्ध थे। न तो उस शरीर का दिमाग था, जो चालक-शक्ति देता और न वह भाग जो विभिन्न प्रान्तों के कामों में सामञ्जस्य बनाये रखता।

इस तरह लखनऊ-अधिवेशन ने महासमिति को दो महत्वपूर्ण काम सौंपे : एक तो खेतिहर कार्यक्रम की अन्तिम रूपरेखा और दूसरे चुनाव के घोषणा-पत्र

की तैयारी। दोनों बातें परस्पर संबंधित थीं। असल में पहली चीज़ दूसरी का हिस्सा बनती और दोनों मिलकर वह बुनियाद उपस्थित करतीं, जिसके अनुसार कांग्रेस चुनाव जीतने पर अगर पद-ग्रहण करती तो अपना वैधानिक काम करती। उस समय इन तीनों बातों में जो गहरा और सजीव नाता था, उसे अनुभव नहीं किया गया। फिर भी घटनाओं की प्रगति में एक मौलिक कठिनाई थी। कार्य-समिति के अधिकांश सदस्यों से सभापति का मतभेद था। तीन नये दोस्त जो अन्दर लिये गये थे, उनके साथ कमेटी का एक-चौथाई से ज्यादा हिस्सा था; लेकिन आमतौर पर कांग्रेस के फ़ैसले, विचार-विनिमय, और विवाद बहुमत और अल्पमत के अनुसार नहीं होते थे। जवाहरलाल शुरू में ही त्याग-पत्र देना चाहते थे, पर उनसे कह-सुन कर उनको वहीं बनाये रखा गया। बने तो वह रहे, लेकिन दिल में बेचैनी थी। एक ओर सभापति-पद से दिया गया उनका भाषण था, दूसरी ओर गांधीजी थे और कार्य-समिति में उनसे सहमत दस सदस्य। ये लोग एक चट्टान की तरह थे। पन्द्रहवां व्यक्ति जेल में था—सुभाषचन्द्र बोस, जो यदि बाहर भी होते तो भी वह किसी एक तरफ न मिलकर अपना अलग ही रास्ता बनाते। सभापति के भाषण में पूरा साम्यवाद का पक्ष था। एक ऐसे देश में, जहाँ बहुत अर्से से विदेशी राज्य की गुलामी रही हो, वहाँ उस राष्ट्र के नौजवानों का पुरानी नीति और व्यवस्था से जी ऊब जाता है और शासक राष्ट्र की नीति और व्यवस्था के प्रति घृणा पैदा हो जाती है। ऐसी हालत में उनके लिए यह स्वाभाविक है कि वे एक ऐसा हल तलाश करें जो दोनों से भिन्न हो।

मुख्य घटनाएँ

लखनऊ और फ़ैजपुर के बीच घटनाओं की एक विशेष प्रगति हुई जिनका उल्लेख आवश्यक है। इनमें से एक अत्यन्त दुखपूर्ण बात तो यह थी कि गुजरात के बुजुर्ग अब्बास तय्यबजी का १० जून १९३६ को मसूरी में स्वर्गवास हो गया और उधर लखनऊ अधिवेशन के कुछ ही बाद यात्रा में डा० अन्सारी की मृत्यु हो गई। १७ मई १९३६ को डा० अन्सारी की मृत्यु पर देश-भर में शोक मनाया गया। कार्यकारिणी की सलाह पर सारे देश में दो दिन और मनाये गये: एक तो ९ मई को 'अबीसीनिया-दिवस' मनाया गया और इटली की निन्दा करते हुए अबीसीनिया के साथ सहानुभूति के प्रस्ताव पास किये गये। कई जगह लीग ऑव नेशन्स की भी निन्दा की गई और यह कहा गया कि उसने अबीसीनिया के साथ विश्वासघात किया है। दूसरा दिन १० मई को मनाया गया। यह था 'सुभाष-दिवस'। सरकार ने श्री सुभाषचन्द्र बोस को कुर्सिओंग में उनके भाई के बंगले में नज़रबन्द कर लिया था। गृह-विभाग के सदस्य ने कहा कि सार्वजनिक हित में उन पर खुला अभियोग नहीं चलाया जा सकता। इस तरह की यह नज़र-

बन्दी थी। देश-भर में सरकार के इस काम की निन्दा की गई और विरोध में प्रस्ताव पास किये गये। १३ सितंबर को यतीन्द्रदास के मृत्यु-दिवस पर कांग्रेस के सभापति जवाहरलालजी ने कांग्रेसियों और कांग्रेस कमेटियों से 'राजबन्दी दिवस' मनाने के लिए कहा। यह सच है कि इस चीज़ को उसी वक्त कामयाबी नहीं मिली, लेकिन इससे दोनों तरफ हृदय-परिवर्तन के लिए रास्ता खुला। बन्दियों ने आतंकवाद की निरर्थकता का अनुभव किया और सरकार ने धीरे-धीरे इन लोगों को छोड़ना शुरू कर दिया; लेकिन उनकी रिहाई इतने लम्बे अर्से में फैला दी कि इस काम में जो कुछ खूबी और भलमनसाहत थी, वह आधी भी नहीं रही।

विदेशों में जो घटनाएँ हो रही थीं, उनकी तरफ़ भी कांग्रेस को उतना ही ध्यान देना जरूरी था, जितना कि घरेलू मामलों पर। एक ओर इटली-द्वारा अबीसीनिया पर बलात्कार था, दूसरी ओर यूरोपीय राष्ट्र निश्चित रूप से अपराधी की मदद कर रहे थे। इसका नतीजा यह हुआ कि भारतीयों के दिमाग़ से अपनी आज़ादी के सिलसिले में न्याय की रही-सही आशा भी जाती रही। दुनिया में शान्ति चाहने वाले लोग खामोश तो नहीं थे, लेकिन उनकी आवाज़ ही क्या थी! जब ६ सितम्बर को विश्व-शांति सम्मेलन की ब्रसैल्स में बैठक हुई तब युद्ध के बादल दुनिया के सिर पर मंडराते हुए बहुत नीचे झुक आये थे। स्पेन में हिंसापूर्ण गृह-युद्ध चल ही रहा था और उसके पड़ोसी अपने आपको तटस्थ बताते हुए भी एक-न-एक पक्ष ले रहे थे।

दमन-चक्र

भारत में भी बड़ी उथल-पुथल रही और जबर्दस्त दमन चक्र चला। तलाशियाँ हुईं, गिरफ्तारियाँ हुईं और बड़ी विचित्र आज्ञाएँ जारी की गईं। विद्यार्थियों को स्कूलों और कालेजों से निकाला गया। मज़दूरों के अधिकारों को सीमित किया गया। यह छूत की बीमारी पांडिचेरी में भी पहुँची, जहाँ फ्रांसीसी कब्ज़ा था। साम्यवादी दल का एक घोषणा-पत्र ज़ब्त कर लिया गया। एक लिफ़ाफ़ा जिस पर गांधीजी की तस्वीर बनी हुई थी, डाकखाने से भेजने वालों के पास 'ज़ब्त' लिखकर लौटा दिया गया। प्रजा समिति और किसान कमेटियों पर पाबन्दियाँ लग गईं। कपूरथला, जोधपुर, मैसूर, बड़ौदा, सिरोही, मारवाड़ और राजनांदगाँव की देशी रियासतों ने भी दमन-नीति का अनुकरण किया। चारों तरफ़ इस अँधेरे में एक प्रकाश की किरण दिखाई पड़ी उस वक्त, जब अल्मोड़े से १ अगस्त १९३६ को मियाद खत्म होने पर खान अब्दुल गफ्फ़ार खाँ को छोड़ा गया; लेकिन जेल के दरवाज़े पर उन्हें यह हुक्म मिला कि वह सीमाप्रांत और पंजाब में न घुसें। लाहौर सेण्ट्रल जेल में एक बन्दी और थे श्री परमानन्द, जो

लाहौर षड्यन्त्र केस में सन् १९१४-१५ के बन्दी थे और जिनकी सज़ा को २३ साल बीत चुके थे। सरकार की तरफ से कामन्स सभा में यह कहा गया कि सरकार का उनको छोड़ने का इरादा नहीं है। यह बात ध्यान देने की है कि जुलाई सन् १९३६ में अकेले बंगाल में ही ३००० से अधिक लोग नज़रबन्द थे और फिर भी दमन-चक्र बराबर ज्यादा तेज़ होता जा रहा था। कम-से-कम ५० कांग्रेसियों और समाजवादियों को पंजाब में इस आशय के नोटिस दे दिये गये थे कि वे अपने गाँवों को न छोड़ें। चार अगस्त को एक हुक्म जारी किया गया कि "सूर्यास्त से सूर्योदय के बीच" कोई शख्स, जिसकी उम्र १२ और ३० साल के बीच हो, घूमता हुआ न पाया जाय। यह हुक्म एक साल के लिए था और यह मनाही ढाका में १९ जगहों और नारायणगंज में १६ जगहों के लिए थी। इन जगहों में पार्क, खेलने के मैदान और मन्दिर भी शामिल थे। इस हुक्म को न मानने पर ६ महीने के लिए जेल और जुर्माने की सज़ा थी। दमन सन् १९३६ में शुरू नहीं हुआ। जिन बातों का ऊपर ज़िक्र किया गया है वे तो बराबर बहनेवाली नदी की एक बूंद की तरह थीं। लखनऊ-अधिवेशन के बाद जिस बात पर राष्ट्रपति ने सबसे पहले ध्यान दिया, वह थी 'भारतीय नागरिक स्वतन्त्रता यूनियन' की स्थापना। इस संस्था के अवैतनिक सभापति डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर और उसकी प्रमुख श्रीमती सरोजिनी नायडू थीं। ऊपर से देखने पर भारत में ऐसी यूनियन की स्थापना, नागरिक स्वतंत्रता के संरक्षण की दृष्टि से एक बड़े राष्ट्रीय महत्व की बात थी।

कार्य और सेवाएँ

इस साल की घटनाओं में एक खास बात यह थी कि काँग्रेस की पार्लमेण्टरी कमेटी और मज़दूर कमेटी ने जिनको पहले अधिवेशन पर नियुक्त किया गया था, नियमित रूप से काम किया। पहली कमेटी का एक बहुत बड़ा काम था अगली फ़रवरी (सन् १९३७) में प्रांतीय धारा-सभाओं के चुनावों के सिलसिले में घोषणा-पत्र की तैयारी। इन चुनावों में ३॥ करोड़ नागरिकों को मताधिकार मिला हुआ था। फिर मुस्लिम और परिगणित जातियों की सीटों के लिए भी चुनाव लड़ने का इरादा था। ऐसी दशा में घोषणा पत्र-द्वारा कांग्रेस का सन्देश, गाँव-गाँव में पहुँचाना था। कांग्रेस महासमिति ने २२, २३ अगस्त १९३६ को बम्बई में इस घोषणा-पत्र को स्वीकार किया।

मज़दूर कमेटी ने, जिसके मंत्री कृपलानीजी थे, अपना कार्यक्रम बनाया। इसमें मज़दूर यूनियनों के संगठनों और औद्योगिक झगड़ों के बारे में सूचना एकत्र करना था। यहाँ एक ज्यादा दिलचस्प और अहम बात यह थी कि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने कांग्रेस-मज़दूर-कमेटी के सदस्यों से मिलने की इच्छा प्रकट की।

इस पर ट्रेड यूनियन कांग्रेस, नेशनल फेडरेशन ऑव ट्रेड यूनियन, अ० भा० रेलवे मैन्स फेडरेशन, अहमदाबाद टेक्स्टाइल लेबर एसोसियेशन, अ० भा० पोस्टल और आर० एम० एस० यूनियन और अ० भा० प्रेस कर्मचारी फेडरेशन के प्रतिनिधियों को कमेटी ने अपनी अगली बैठक के मौके पर बुलाया। इसके अलावा बम्बई में अ० भा० ट्रे० यू० कांग्रेस का जो पन्द्रहवां अधिवेशन हुआ उसमें कांग्रेस सभापति को आमंत्रित किया। यह जलसा १७, १८ और १९ मई को हुआ। इसकी अध्यक्षा श्रीमती मणीबेन कारा थीं। सम्मेलन में देश के मिल-मालिकों का ध्यान इस ओर खींचा गया कि वे मज़दूरों को अपना संगठन करने के लिए आवश्यक सुविधाएँ दें, कायदे से बनी हुई यूनियनों की सत्ता को स्वीकार करें और उनसे समझौते की बातचीत करें। इसके अतिरिक्त वे लोग उन मज़दूरों को, जो यूनियन में काम करते हों, कोई कष्ट न दें। धारासभाओं में जो कांग्रेस दल थे उनसे मज़दूरों के लिए उचित वेतन और उनके साथ सद्व्यवहार के लिए कानून बनवाने की सिफ़ारिश की गयी। ब्रिटिश और भारत की कांग्रेस कमेटियों और रियासतों का ध्यान इस ओर खींचा गया कि मज़दूरों की हालत सुधारने के लिए कदम बढ़ाने की सख्त ज़रूरत है और औद्योगिक श्रम की बेहतरी के मामलों में दिलचस्पी लेना आवश्यक है। रेलवे कम्पनियों का काम सरकार के हाथों में आता जा रहा था। सरकारी रेलों में छंटनी हो रही थी और निचले दर्जे के नौकरों के वेतन घटाये जा रहे थे। इस सिलसिले में जो सवाल उठ खड़े हुए थे उन पर मज़दूर कमेटी और सम्मेलन ने कार्यकारिणी से सिफ़ारिश की कि वह उपयुक्त प्रस्ताव पास करे।

अनुशासन का अभाव

इस तरह यह ज़ाहिर है कि कांग्रेस पार्लमेण्टरी काम तेज़ी से बढ़ रहा था। इस काम को सफलता-पूर्वक करने के लिए अनुशासन की आवश्यकता थी। लेकिन अनुशासन का अभाव चारों तरफ़ दिखाई दे रहा था। सभापति की स्थिति भी विचित्र थी। अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"सभापति की हैसियत से मैं कांग्रेस का प्रमुख कार्य-निर्वाहक था और यह आशा की जा सकती है कि मैं उस संस्था का प्रतिनिधित्व करता था। लेकिन नीति-संबंधी कुछ बड़े सवालों पर मैं बहुमत का प्रतिनिधित्व नहीं करता था। यह दृष्टिकोण लखनऊ-कांग्रेस के प्रस्तावों से प्रकट है। इस प्रकार कार्यसमिति एक साथ मेरे और बहुमत के दृष्टिकोण को नहीं रख सकती थी।" यह एक ऐसी स्थिति थी जैसी कि बाद में त्रिपुरी (सन् १९३९) में और अप्रैल १९४२ में महासमिति की इलाहाबाद वाली बैठक के बाद पैदा हुई थी। अपने मित्रों और आलोचकों से जवाहरलालजी ने लखनऊ की अपनी परेशानियों का फिर ज़िक्र किया। उन्होंने कहा, "इस विचित्र स्थिति का मेरी समाजवादी निष्ठा से कोई संबंध नहीं

है। लखनऊ में जो अन्तर था वह तो केवल राजनैतिक था। लखनऊ के प्रस्तावों में ऐसी कोई बात नहीं थी, जिसको समाजवादी कहा जा सके। समाजवादियों ने भी यह अनुभव किया कि सबसे अहम प्रश्न था—स्वतन्त्रता का प्रश्न, और उन्होंने भी उस पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। फूट की बात बेमानी थी। जब स्वतंत्रता की पुकार हमारे खून में हिलोरें ला रही थी तो हममें फूट की बात कैसे उठ सकती थी? हम सहमत हों, चाहे हममें मतभेद हो, कभी-कभी हम साथ भी छोड़ सकते हों; लेकिन आज़ादी की पुकार में हम सब एक साथ हैं।" खादी पर उन्होंने जो आलोचना की थी, उसके सिलसिले में लोगों को उन्होंने फिर जवाब दिया, "मैं इस चीज़ को कई बार साफ़ कर चुका हूँ कि मैं खादी को अपनी आर्थिक समस्याओं का अन्तिम हल नहीं मानता और इसलिए मैं उस हल को दूसरी जगह तलाश करता हूँ। फिर भी मेरा यह विश्वास है कि आज की परिस्थिति में खादी का एक राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक महत्व है और हमें उसे बढ़ावा देना चाहिए।" उन्होंने यह भी कहा कि रूस के सामाजिक ढांचे की नींव में जो मौलिक आर्थिक सिद्धान्त हैं, मैं उसमें विश्वास करता हूँ। उनका ऐसा विचार था कि रूस ने सांस्कृतिक, औद्योगिक, शिक्षा-संबंधी और सही अर्थों में असाधारण प्रगति की है; लेकिन इसके माने यह नहीं थे कि रूस में जो कुछ हुआ, उस सबको वह अच्छा समझते और मानते हैं। इसी वजह से उनका कहना यह नहीं था कि रूस का अंधानुकरण किया जाय। इसलिए साम्यवाद की जगह उन्होंने समाजवाद शब्द का प्रयोग करना उचित समझा; क्योंकि साम्यवाद सोवियट रूस का द्योतक था। उनका कहना था—"मैं जिस चीज़ को चाहता हूँ वह यह है कि समाज में से मुनाफे का भाव निकल जाय और उसकी जगह समाज-सेवा की भावना आ जाय। प्रतिद्वन्द्विता की जगह सहयोग ले ले। उत्पादन लाभ के लिए न होकर उपभोग के लिए हो। वजह यह है कि मैं हिंसा से घृणा करता हूँ और उसे निंद्य समझता हूँ। वर्तमान व्यवस्था हिंसा पर खड़ी हुई है। मैं सुदृढ़ और समर्थ व्यवस्था चाहता हूँ, जिसमें से हिंसा की जड़ें निकाल दी गई हों, जहां घृणा लुप्त हो गई हो और उनकी जगह श्रेष्ठतर भावनाओं ने ले ली हो। इस सब को मैं समाजवाद कहता हूँ।"

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का प्रभाव

इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जार्ज पंचम के मरने पर उनके सबसे बड़े पुत्र एडवर्ड अष्टम बादशाह बने। जब वह वेल्स के राजकुमार थे तभी उनका एक अपना ढंग था। उनका समाजवाद की तरफ झुकाव था और वे सामाजिक और राजसी परम्पराओं से घृणा करते थे। दीन-हीन व्यक्तियों के उत्थान से उनकी सजीव सहानुभूति थी और वह वेल्स और

दूसरी जगहों के बेकार लोगों के घर अक्सर मिलने चले जाते थे। जानबूझ कर अपनाये गये बादशाह के इस ढर्रे से बड़े-बड़े लोग बिगड़े। मई १९३४ में एक शाही घोषणा प्रकाशित की गई, जिसमें कहा गया कि १२ मई १७३७ को बादशाह को ताज पहनाया जायगा। सन् १९३६ में अपनी पार्लमिण्ट के पहले भाषण में बादशाह ने राजगद्दी के बाद भारत जाने और वहाँ दरबार करने का इरादा ज़ाहिर किया। लेकिन २ दिसम्बर को एक संकट उठ खड़ा हुआ। बात यह थी कि बादशाह ने एक अमरीकी महिला श्रीमती अर्नेस्ट सिम्पसन से विवाह करने की अपनी इच्छा अपने मन्त्रियों के सामने प्रकट की थी। श्रीमती सिम्पसन पहले ही दो पतियों को तलाक दे चुकी थीं। वे दोनों ही ज़िन्दा थे और उनमें से एक तो ब्रिटिश नागरिक ही था। मन्त्रियों को यह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया। ४ दिसम्बर को कामन्स-सभा में मि० बॉल्डविन ने यह सूचना दी कि सम्राट की सरकार हीनतर स्तर की महिला से विवाह की अनुमति देने के लिए कोई विशेष कानून बनाने को तैयार नहीं है। तब १० दिसम्बर को बादशाह को राजगद्दी छोड़ने के निश्चय का सन्देश सुनाया गया। राजगद्दी-त्याग-बिल दोनों सभाओं में बाकायदा पास हुआ और उसे शाही स्वीकृति मिली। रातोंरात अंधेरे और मेंह में भूतपूर्व बादशाह को समुद्र पार अपरिचित स्थान के लिए लाद दिया गया।

दूसरी घटना रूस की है। फ़ैजपुर-अधिवेशन से ठीक एक महीने पहले २५ नवम्बर १९३६ को क्रैमलिन महल में सोवियट रूस के नये विधान पर विचार कर उसे अपनाने के लिए २०४० प्रतिनिधि एकत्र हुए। पिछले बारह बरसों में जो आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति हुई थी, उसकी यह अभिव्यक्ति थी। जरा सी देर में एक विशुद्ध खेतिहर देश, संसार की अत्युन्नत शक्तियों में गिना जाने लगा था और वहाँ खेती के साथ उद्योगों का भी समान रूप से विकास हो गया था। सारे काम आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से होते थे। नये विधान से नया युग आरंभ हुआ और राजसत्ता का एक नया संगठन हुआ। सोवियट के आठवें अधिवेशन में स्टैलिन ने वैधानिक कमीशन की स्थापना और उसके काम, पिछले बारह बरसों में रूसी जीवन में हुआ अन्तर, नये विधान की प्रमुख विशेषताएँ, उसकी मध्यवर्गीय आलोचना, उसके संशोधन और वैधानिक महत्व पर जो भाषण दिया, उसका तालियों, नारों और जयकारों से ज़बर्दस्त स्वागत हुआ।

फ़ैजपुर के सारे वातावरण पर उक्त दोनों समाजवादी हलचलों का प्रभाव पड़ा। एक तरफ़ मज़दूरों और किसानों के अधिकारों पर जोर दिया जाने लगा, दूसरी तरफ़ फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद का विरोध किया जाने लगा। फ़ैजपुर-कांग्रेस में विषय-निर्वाचन-समिति के सामने समाजवादी दल ने इस बात पर जोर दिया कि कांग्रेस भारतीय जनता की दुनिया के गुलाम लोगों के साथ—चाहे

वे उपनिवेशों के हों अथवा तथाकथित आज़ाद देशों के—सोवियट रूस की जनता के साथ एकता की घोषणा करे। इस बात की आशा स्वाभाविक थी; क्योंकि स्टैलिन ने कहा था, "यह इस बात का प्रमाण है कि जो कुछ रूस में हुआ है, वह दूसरे देशों में भी हासिल किया जा सकता है।" इस प्रकार का एक महीने के ही अन्दर कांग्रेस समाजवादी दल ने फ़ैज़पुर में जवाब दिया।

फ़ैज़पुर-कांग्रेस : १६३७

रूसी विधान के पास होने के चार सप्ताह बाद और एडवर्ड के राजगद्दी छोड़न के दो सप्ताह वाद एक बांस से बनी बस्ती में जिसका नाम 'तिलकनगर' था, फ़ैज़पुर अधिवेशन हुआ। यह अपने ढंग का पहला अधिवेशन था। गांधी जी ने स्वयं यहाँ की सारी व्यवस्था को बारीकी के साथ देखा था। फ़ैज़पुर में सौभाग्य से चालक-शक्ति शंकरराव देव थे, जो गांधीजी के अनन्य और समझदार अनुयायी थे। इसके साथ ही उनमें असाधारण व्यवहार-बुद्धि थी। सभापति पं० जवाहर लाल नेहरू भी इस बीच में काफ़ी नर्म हो गये थे। पिछले आठ महीनों में उन्होंने जिस असलियत को पकड़ा उससे उनके और चारों चरफ के वातावरण के बीच जो खाई थी वह पट रही थी। अपने राष्ट्रपति-पद से दिये गए भाषण में उन्होंन खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ और हाल में छुटे हुए श्री एम० एन० राय का स्वागत करते हुए यूरोप में फ़ासिस्टवाद के विजयपूर्ण प्रवाह की चर्चा की और उसका ढर्रा बताया। साथ ही इस बात की तरफ भी लोगों का ध्यान आकृष्ट किया कि अगर रोक-थाम न की गई तो उसका लाज़िमी नतीजा संसारव्यापी महायुद्ध होगा। उन्होंने बताया कि प्रतिक्रियावादी शक्तियों की इस प्रतिक्रिया के बीच कांग्रेस आज भी भारत में पूरी तरह लोकतंत्र लाना चाहती है और उसी के लिए लड़ती है। वह साम्राज्यवाद-विरोधी है और वह राजनैतिक और सामाजिक ढाँचे में बड़े-बड़े परिवर्तनों की कोशिश में है। मेरी ऐसी आशा है कि घटनाओं के प्रवाह में समाजवाद आ जायगा; क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि भारत की आर्थिक बीमारी का सिर्फ वही एक इलाज है। इसके बाद वह राष्ट्रीय समस्याओं की तरफ मुड़े। उन्होंने नये विधान, चुनाव के घोषणापत्र, विधान-परिषद, धारासभा के लिए निर्वाचित कांग्रेस सदस्यों के सम्मेलन, संघीय ढाँचे के विरोध की आवश्यकता और एक नये सिरे से विधान बनाने की बातों की चर्चा की। फिर उन्होंने पद-ग्रहण के प्रश्न की विस्तार-पूर्वक विवेचना की और इस बात की याद दिलाई कि किस तरह लखनऊ में उन्होंने यह बात साफ़ की थी कि पद-ग्रहण से विधान को अस्वीकार करने की बात ही उड़ जायगी। उन्होंने आगे कहा, "हमारे सामने असली उद्देश्य यह है कि देश की सारी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का एक संयुक्त मोर्चा तैयार किया जाय। कांग्रेस ऐसा संयुक्त सार्वजनिक मोर्चा पहले

भी थी और अब भी है और यह बात लाजिमी है कि जो कुछ काम हो, उसकी धुरी और बुनियाद कांग्रेस ही हो। संगठित मज़दूरों और किसानों के सक्रिय सहयोग से यह मोर्चा और भी मज़बूत होगा और हमें उसके लिए कोशिश करनी चाहिए।"

कांग्रेस ने फ़ैज़पुर में एक प्रस्ताव द्वारा देश को चेतावनी दी कि अगर लड़ाई छिड़े तो उसको युद्ध के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा होने वाले अपने धन और जन के शोषण को रोकना चाहिये और यह भी कहा कि उस लड़ाई में न कोई चन्दे दिये जायं, न कर्ज़, न लड़ाई की तैयारियों में ही मदद दी जाय। इसके अलावा देश की सीमाओं में शान्ति और पड़ोसियों से दोस्ती बनाए रखने की कोशिश की जानी चाहिए। कांग्रेस का ऐसा विश्वास है कि सीमाप्रान्त में जो सरकारी नीति है वह असफल रही है; क्योंकि उसका निर्माण साम्राज्यवादी हितों की दृष्टि से हुआ है। कांग्रेस का विश्वास है कि वहाँ के पठानों पर खूंखार होने का जो दोष लगाया गया है, वह निराधार है और उन लोगों के साथ दोस्ताना बर्ताव करके उनका सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। भारत सरकार की हजारों भारतीयों को अनिश्चित काल के लिए नज़रबन्द रखने की अमानुषिक नीति की भी निन्दा की गई। उनकी छूट और तीन नज़रबन्दों की कथित आत्महत्या के सिलसिले में जाँच की माँग की गई और साथ ही अंडमान कारावास को बन्द करने के लिए भी कहा गया।

फ़ैज़पुर के सबसे महत्वपूर्ण विषय चुनाव और विधान-परिषद से संबंधित थे। इसके अतिरिक्त धारासभा के लिए निर्वाचित कांग्रेसियों के सम्मेलन और राज्याभिषेक-उत्सव में साथ देने की बातें भी महत्वपूर्ण थीं। पहली अप्रैल १९३७ को एक आम हड़ताल के लिए कहा गया। यह हड़ताल इस बात को प्रकट करने के लिए थी कि भारतीय जनता अवांछित विधान के लादे जाने के विरुद्ध है। कांग्रेस की दृष्टि से वह विधान भारत की आज़ादी की लड़ाई के साथ विश्वासघात है और इसका नतीजा यह होगा कि भारतीय जनता के शोषण के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पकड़ और भी अधिक मज़बूत हो जायगी। भारत अपने लिए स्वयं ही विधान बनाने का अधिकार चाहता है। पद-ग्रहण की समस्या को फिर महासमिति के लिये छोड़ दिया गया, जिसका फैसला चुनावों के बाद करना था। लेकिन इस बीच धारासभा के कांग्रेसियों, महासमितियों के सदस्यों और ऐसे व्यक्तियों का, जिन्हें कार्य-कारिणी नियुक्त करे, एक सम्मेलन करने के लिए कहा गया। चुनाव के घोषणा-पत्र का समर्थन किया गया। लखनऊ में जो खेतिहर कार्यक्रम तैयार किया गया था, उसे कुछ संशोधनों के बाद स्वीकार कर लिया गया। चूंकि कांग्रेस ने पार्लमेण्टरी कार्य-क्रम बनाया था, इसलिए उस समय सविनय आज्ञा-भंग आन्दोलन का कोई प्रश्न ही नहीं था।

अनुशासन के नियम

कांग्रेस को मज़बूत करने के लिये आम जनता से पोषण प्राप्त करना और राष्ट्रीय संस्था को हर ढंग से समृद्ध बनाना था। यह आवश्यकता फ़ैज़पुर-कांग्रेस के पश्चात् चुनाव से पूरी हो गयी। इससे देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक राजनैतिक जाग्रति का जो तूफ़ान आया, वह सरकारी नजर से भी छिपा न रहा। सरकार ने महसूस किया कि यद्यपि वोट देने का अधिकार आबादी के सिर्फ़ दसवें हिस्से को मिला था, फिर भी उससे देश में एक क्रांति शुरू हो गई थी। नतीजा यह हुआ कि स्थानीय सरकारों ने कांग्रेसी उम्मीदवारों को उनको जेल की सज़ा के या किसी और बहाने मताधिकार से वंचित कर दिया था। कुछ प्रान्तों में बराबर सक्रिय हस्तक्षेप किया गया; और शान्तिपूर्ण जलूसों, सभाओं और झंडारोहण पर पाबन्दियाँ लगा दी गईं। बड़े कांग्रेसी नेताओं के आने-जाने पर रोक लगा दी गई। खान अब्दुल गफ़ार खां को पंजाब और सीमाप्रांत में घुसने नहीं दिया गया। कहने की जरूरत नहीं कि जहां इससे सरकारी रुख का पता लगता है वहाँ साथ ही इसका नतीजा यह भी हुआ कि लोगों ने कांग्रेसी उम्मीदवारों की मदद में जी-जान से काम किया। इस अवसर पर अनुशासन की अत्यन्त आवश्यकता थी। अतः कार्य-कारिणी के अनुशासन संबंधी पहले प्रस्तावों को रद करते हुए ये नियम बनाये गये :—

(१) काँग्रेस कमेटी, कांग्रेस कार्य-कारिणी, किसी निर्वाचित कांग्रेस कमेटी के सदस्य, अथवा कांग्रेस के फैसलों के खिलाफ जो जानबूझ कर काम करता हो, जो नियुक्त निर्णायकों और अधिकारियों की आज्ञा का उल्लंघन करता हो, जो कांग्रेस फंड में ग़बन, चोरी या हिसाब की गड़बड़ी का दोषी हो, जो कांग्रेस के सामने प्रतिज्ञा-भंग का दोषी हो, जिसने कांग्रेस के मेम्बर बनाने या कांग्रेस के चुनाव में बेईमानी की हो, जो जान-बूझकर इस ढंग से काम करता हो जिससे कार्यकारिणी की राय में कांग्रेस की प्रतिष्ठा और शक्ति को चोट पहुँचती हो और जिसकी वजह से उसकी सदस्यता अवाञ्छनीय हो गई हो उसके विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई हो सकती है।

(२) जहाँ तक कांग्रेस कमेटियों का सवाल है, अनुशासन संबंधी कार्रवाई यह हो सकती है कि उस कमेटी को अधिकारों से वंचित कर दिया जाय।

(३) जहाँ तक कार्य-कारिणी या किसी निर्वाचित कांग्रेस कमेटी के सदस्य का सवाल है, उसके खिलाफ़ अनुशासन संबंधी कार्रवाई में उसको उस पद से या सदस्यता से हटाया जा सकता है और एक ऐसा समय निश्चित किया जा सकता है जब तक न वह किसी पद के लिए चुना जा सकता है और न किसी कमेटी का सदस्य ही हो सकता है।

(४) जहाँ प्रारंभिक कांग्रेस संगठन के सदस्य का सवाल है, उस को निश्चित समय तक किसी चुनाव में खड़ा होने के लिए अयोग्य घोषित किया जा सकता है। साथ ही उस अवधि में सदस्यता के दूसरे अधिकारों से उसे वंचित किया जा सकता है और इसके अलावा उसके कांग्रेस सदस्य बनने पर भी रोक लगाई जा सकती है।

(५) अनुशासन संबंधी कोई भी कार्रवाई करने से पहले अपराधी कमेटी, या व्यक्ति को, अपनी सफ़ाई पेश करने और अपने विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर देने का अवसर दिया जायगा।

(६) प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों की कार्य-समितियों को भी अनुशासन संबंधी कार्रवाई करने का अधिकार होगा जिसका उपयोग वे अपने अधीन सभी कमेटियों और सदस्यों पर कर सकती हैं। अभियुक्त कमेटी और व्यक्ति को कार्य-कारिणी से अपील करने का अधिकार होगा; लेकिन अपील तय होने तक उसे उस आज्ञा का पालन करना होगा जो कि पहले जारी हो चुकी है और जिसके ख़िलाफ़ अपील की गई है।

(७) जब कार्यकारिणी काम न कर रही हो उस समय अनुशासन संबंधी मामलों में जहाँ तात्कालिक ध्यान देने की ज़रूरत हो राष्ट्रपति कार्रवाई कर सकता है और यह काम वह कार्य-कारिणी की ओर से और उसी के नाम पर करेगा। ऐसी परिस्थितियों में राष्ट्रपति को कार्यकारिणी की अगली बैठक पर अपने सारे निर्णय उसके सामने रखने होंगे और उसकी स्वीकृति लेनी होगी।

चुनाव में कांग्रेस की विजय

फ़ैज़पुर-अधिवेशन के पश्चात् ही चुनाव हुआ। इस चुनाव में कांग्रेस के ५८ मुस्लिम उम्मीदवारों ने ४८२ में से २६ सीटें जीतीं, जिनमें अधिकांश सीमाप्रान्त में थीं। ४२४ गैर-कांग्रेसी मुसलमान जीते। २ करोड़ ८० लाख लोगों ने वोट दिये। कुल निर्वाचकों की यह संख्या ५५ फ़ीसदी थी। प्रान्तीय धारा सभाओं में कुल १५८५ सीटें थीं। इनमें से ७११ कांग्रेस के हाथ में आईं और पाँच प्रान्तों—मद्रास, यू० पी०, सी० पी०, बिहार और उड़ीसा में उसका स्पष्ट बहुमत रहा। चार प्रान्तों यानी बंगाल, बम्बई, आसाम और सीमाप्रान्त में अकेले, काँग्रेस पार्टी सबसे बड़ी थी। सिंध और पंजाब की एसे-म्बलयों में कांग्रेस अल्पसंख्यक थी।

शपथ की समस्या

चुनावों में कांग्रेस की जीत तो हुई पर उसके साथ ऐसी कठिन समस्याएँ आईं, जिनको हल करना पूरी तरह कांग्रेस के हाथ में नहीं था। इसमें राजभक्ति की

शपथ एक बड़ी परेशानी थी। बहुत से लोगों की आत्मा इस बात को गवारा नहीं करती थी कि पुराने रवैये के मुताबिक अंग्रेज़ बादशाह के प्रति राजभक्ति की शपथ ली जाय। इस सिलसिले में शक उठ खड़ा हुआ था। ऐसी स्थिति में बादशाह के लिए वफ़ादारी की शपथ लेने से पहले ही सम्मेलन ने नये निर्वाचित सदस्यों को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और हिन्दुस्तान की जनता के प्रति वफ़ादारी की शपथ दिलाई, जो इस प्रकार थी :—

"मैं, जो कि अखिल भारतीय सम्मेलन का सदस्य हूँ, इस बात की शपथ लेता हूँ कि मैं हिन्दुस्तान की सेवा करूँगा, धारासभा के बाहर और भीतर, हिन्दुस्तान की आजादी के लिए काम करूँगा और हिन्दुस्तानी जनता की गरीबी और उसके शोषण को ख़त्म करने की कोशिश करूँगा। मैं इस बात की शपथ लेता हूँ कि मैं कांग्रेस के आदर्श और उद्देश्यों को हासिल करने के लिए कांग्रेस के अनुसासन में काम करूँगा ताकि हिन्दुस्तान आज़ाद हो और उसके करोड़ों निवासी जिस बोझ और तकलीफ़ से पिस रहे हैं उससे छुटकारा पा जायं।"

कांग्रेस की निर्देशक नीति

राष्ट्र के सामने तात्कालिक काम धारासभाओं में कांग्रेस नीति को विस्तार-पूर्वक स्पष्ट करना था। इसके लिए संक्षेप में निर्देशक-नीति यह थी—

(१) कांग्रेस धारासभाओं में नये विधान और सरकार से सहयोग के लिए नहीं, बल्कि उनसे लड़ाई लड़ने के लिए घुसी है। इसलिए कांग्रेस अपनी उस बुनियादी नीति पर जमी हुई है कि जब तक परिस्थितियों के कारण परिवर्तन आवश्यक न हो, ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन की मशीनरी से असहयोग करना चाहिये।

(२) कांग्रेस का उद्देश्य हैं, पूर्ण स्वराज्य। कांग्रेस के सारे काम उसी तरफ केन्द्रित हैं। कांग्रेस हिन्दुस्तान में सच्ची लोकतंत्रीय सरकार चाहती हैं, जिसमें राजनैतिक सत्ता भारतीय जनता के हाथों में हो और उस जनता का सरकारी ढाँचे पर सफल नियंत्रण हो।

(३) धारासभाओं में कांग्रेस का तात्कालिक उद्देश्य नये विधान का विरोध करना है, इस नये ऐक्ट के संघीय भाग को लागू होने देने से रोकना है और साथ ही विधान परिषद् के लिए राष्ट्र की माँग पर ज़ोर देना है।

(४) धारासभा के कांग्रेसियों को यह बात याद रखनी है कि वे किसी ऐसे काम अथवा जलसे में शामिल न हों, जिससे हिन्दुस्तान में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शक्ति अथवा प्रतिष्ठा बढ़ती हो।

(५) धारासभा का कोई कांग्रेसी ब्रिटिश सरकार द्वारा दिये हुए किसी ख़िताब को स्वीकार नहीं कर सकता।

(६) हर सदस्य को प्रान्तीय धारासभा में कांग्रेस पार्टी के अनुशासन के

साथ काम करना होगा। सरकार अथवा किसी दूसरे समुदाय से बातचीत करने के लिए उस दल के नेता प्रतिनिधित्व करेंगे।

(७) धारासभा के अधिवेशन के समय जब पार्टी उसमें हिस्सा ले रही हो, तब सब सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक होगी।

(८) धारासभा के सारे कांग्रेसी सदस्य खादी की पोशाक में होंगे।

(९) प्रान्तीय धारासभाओं में कांग्रेस पार्टियों को किसी दूसरे समुदाय से कार्य-कारिणी की अनुमति बिना कोई समझौता नहीं करना चाहिए।

(१०) यदि प्रान्तीय धारासभा का कोई सदस्य, जो कांग्रेस की तरफ से नहीं चुना गया है, लेकिन जो कांग्रेस की शपथ लेकर उसके सिद्धान्तों और अनुशासन को मानने के लिए तैयार है, और पार्टी उसका साथ वांछनीय समझती है तो वह उसको पार्टी में दाखिल कर सकती है। लेकिन यदि कोई ऐसा आदमी है जिसके ख़िलाफ़ कांग्रेस ने अनुशासन संबंधी कार्रवाई की है तो उसको बिना कार्य-कारिणी की अनुमति के दाख़िल नहीं किया जा सकता।

(११) कांग्रेस सदस्यों को इस बात की कोशिश करनी चाहिये कि घोषणा-पत्र और खेतिहर प्रस्ताव में जो कार्यक्रम है उस पर अमल किया जाय।

(१२) वर्तमान एक्ट में संरक्षण तथा गर्वनर और वायसराय के विशेषाधिकारों के कारण गतिरोध होना अनिवार्य है। कांग्रेसी नीति के पालन में यदि ऐसी स्थिति पैदा हो तो उससे बचने की कोशिश नहीं होनी चाहिये।

(१३) प्रान्तीय धारासभा के कांग्रेसियों को सिविल शासन का व्यय घटाने, तथा व्यापार, तट-कर और मुद्रा पर पूर्ण राष्ट्रीय नियंत्रण की मांग करनी चाहिये। बोलने और लिखने की आज़ादी के लिए ज़ोर देना चाहिये। इनके अलावा युद्ध की तैयारियों और युद्ध-ऋणों का विरोध करना चाहिये।

(१४) धारासभा के भीतर और बाहर के काम में सामंजस्य होना चाहिये और जो मांगें की जायें उनके पीछे सार्वजनिक समर्थन प्राप्त कर लेना चाहिये।

राष्ट्रीय सम्मेलन

चुनाव में कांग्रेस की विजय पर चारों तरफ़ खुशियाँ मनाई जा रही थीं। परन्तु जहाँ आशाएँ थीं वहाँ उनके साथ डर भी मिला हुआ था। ऐसी हालत में दिल्ली में राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। उससे पहले १७ मार्च को महासमिति की बैठक हुई और १७ मार्च को ही शाम को श्री सुभाषचन्द्र बोस को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया गया। पाँच बरस से ज्यादा से वह निर्वासित या नज़रबन्द थे। वह जिस समय छोड़े गये, उनका स्वास्थ्य बेहद खराब था। उनकी छूट पर राष्ट्रपति ने महासमिति की तरफ़ से उनका स्वागत किया और उनके शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ की शुभ कामनाएं कीं। पद-ग्रहण के सवाल पर महासमिति ने

२०

इस बात का अधिकार तथा अनुमति दी कि जिन प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत है वहाँ यदि उस प्रान्तीय धारासभा की कांग्रेस पार्टी को इस बात का विश्वास हो और यदि वह इस बात को खुले आम घोषित कर सके कि गवर्नर हस्तक्षेप के अपने विशेषाधिकारों का उपयोग नहीं करेगा या वैधानिक कार्रवाई में मंत्रियों के निर्णय को नहीं टालेगा तो वहाँ पद-ग्रहण किया जा सकता है। इसके बाद सम्मेलन हुआ और सारे सदस्यों ने एक स्वर से हिन्दुस्तानी में शपथ ग्रहण की। फिर यह राष्ट्रीय मांग पेश हुई :—

"यह सम्मेलन भारत की जनता की इस राय को फिर दुहराता है कि सन् १९३५ के गवर्नमेंण्ट ऑफ इंडिया एक्ट से भारत की गुलामी और उसके शोषण की जड़ मज़बूत होती है।

"यह सम्मेलन इस बात की घोषणा करता है कि भारतीय जनता किसी विदेशी शक्ति या सत्ता के इस अधिकार को नहीं मानती कि वह भारत के राजनैतिक और आर्थिक ढांचे का निर्देश करे।

"यह सम्मेलन भारत के लिए सच्ची लोकतंत्रीय राज-सत्ता के पक्ष में है जिसमें राजनैतिक शक्ति देश की जनता के हाथ में हो। ऐसी राजसत्ता की स्थापना खुद भारतीय जनता ही कर सकती है और इसके लिए जो माध्यम है, वह है विधान-परिषद, जो वयस्क मताधिकार से निर्वाचित होनी चाहिये और जिसको देश का विधान बनाने का पूर्ण और अन्तिम अधिकार होना चाहिये।

"इसलिए यह सम्मेलन कांग्रेस पार्लमिण्टरी पार्टियों को आदेश देता है कि वे राष्ट्र के नाम पर अपनी-अपनी धारासभाओं में इस विधान के वापस लिए जाने की माँग करें ताकि हिन्दुस्तानी जनता अपना विधान बना सके।"

नए एक्ट का विरोध

पहली अप्रैल १९३७ आई और चली गई। उस दिन एक तरफ़ तो शांतिपूर्ण हड़ताल हुई और दूसरी तरफ तीन महीने के लिए ज़बर्दस्त प्रचार-कार्य शुरू हुआ। ग्यारह में से जिन छः प्रान्तों में पार्टी का बहुमत था, वहाँ न तो वह पद-ग्रहण ही करती और न उस तरफ़ से अपना हाथ ही खींचती। अगर कांग्रेस पार्लीमेण्टरी मैदान खाली कर देती तो सरकार अपना काम जानती थी। दूसरी तरफ़ अगर कांग्रेस पद-ग्रहण करती तो सरकार फ़ौरन नये वातावरण से अपना मेल बिठा लेती। नौकरशाही अपना रंग बदलने में होशियार थी। मौका पाने पर वह पार्टी के लोगों को उखाड़ फेंकती; लेकिन कांग्रेस सरकार को मनमानी खेलने का मौका देने को तैयार नहीं थी। भारत के, शायद दुनिया के, इतिहास में यह एक पहली संस्था थी जिसने गवर्नर से यह आश्वासन माँगा कि वह अपने विशेषाधिकार से हस्तक्षेप नहीं करेगा और मंत्रियों के वैधानिक काम को नहीं टालेगा।

विशेषाधिकार खुद एक्ट से ही मिले हुए थे और उनको बड़े सोच-विचार के बाद 'विशेष' नाम दिया गया था। फिर गवर्नर इन संरक्षणों को कैसे छोड़ते जिनको कानून ने उन्हींमें निहित किया था, जिनकी शासक सत्ता के स्थापित स्वार्थों के लिए आवश्यकता थी और जिनके बलबूते पर ही असलियत में गुलाम देश की लोकतंत्री कार्रवाई को रोका जा सकता था? ऐसे आश्वासनों को माँगने की वैधानिकता पर एक जबर्दस्त लड़ाई हुई। राष्ट्र के सामने वैधानिकता अथवा अवैधानिकता का प्रश्न नहीं था। जो विधान सामने था उसके लिए भारत जिम्मेदार नहीं था। उस विधान में न तो आत्म-निर्णय की झलक थी, न संयुक्त निर्णय ही था, बल्कि असल में कुछ और ही निर्णय था जो बाहर से लादा गया था। यदि ऐसे विधान को भारतीय अमल में लाते तो साफ़ है कि ऐसा वे अपनी खास शर्तों पर ही करते, वरना नये एक्ट के अध्यायों और उसकी धाराओं के अनुसार कानून और विधान अपना रास्ता पकड़ते। अगर गति-रोध होते तो उसमें भारत का क्या दोष? एक ओर ब्रिटिश सरकार ने जान-बूझकर भारतीय जनता की घोषित इच्छा के विरुद्ध नीति अपनाई थी, दूसरी ओर महासमिति ने नये विधान के विरोध का इरादा किया था। चुनाव के मौके पर निर्वाचन-क्षेत्रों में ये दोनों बातें समझा दी गई थीं। गति-रोध होना अनिवार्य था, यह बात साफ़ कर दी गई थी और साथ ही यह बात भी कि इससे ब्रिटिश-साम्राज्यवाद और भारतीय राष्ट्रीयता का जन्मजात विरोध और उभड़ेगा और तब नये विधान का अलोकतंत्रीय और निरंकुश स्वरूप और भी ज्यादा स्पष्ट होगा। इस विधान के निजी गुण-दोष पर भी कांग्रेस उसे नहीं अपना सकती थी। लेकिन जहाँ कानूनी और वैधानिक पक्ष का संबंध है वहाँ यह कहना आवश्यक है कि गांधीजी ने यदि कांग्रेस के रुख को सही बताया तो वह एक राजनैतिक दल के नेता की हैसियत से नहीं, बल्कि एक वैधानिक वकील की हैसियत से, जिसको साम्राज्य के सुदूर प्रदेशों का पर्याप्त अनुभव था। भारत और इंगलैंड में कानूनी लोगों ने विरोध किया। सबसे पहले मत का विरोध सर तेज बहादुर सप्रू ने किया और इस माँग को अमान्य बताया। कानून के ऐसे धुरंधर के विरोध में दो कानूनी पंडित सामने आये—एक श्री तारापोरावाला और दूसरे डा० बहादुरजी। उन्होंने निश्चित रूप से अपना सुचिन्तित मत यह बताया कि आश्वासनों के लिए कांग्रेस की मांग किसी भी दृष्टि से कानून या विधान के लिए अमान्य नहीं है। इस समय जब कि भारतीय मत दो दलों में बँटा हुआ था, इंगलैंड के कानूनी महारथी बेरीडेल कीथ ने कांग्रेस-मत को सुदृढ़ किया और उसकी मांगों की वैधानिकता का समर्थन किया। इंगलैंड के दैनिक पत्र भारतीय नेताओं के दृष्टिकोणों में दिलचस्पी ले रहे थे। लन्दन के 'न्यूज क्रोनीकिल' में पं० जवाहरलाल नेहरू के बयान के जवाब में लार्ड लोथियन ने लिखा कि यह विधान ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने अपनी जिम्मेदारी पर बनाया है और इसमें भारतीय स्वशासन की

दिशा में एक रास्ते का सुझाव है। मि० नेहरू और उनके दोस्त दूसरे रास्ते में यकीन करते हैं। विधान इस अनुभव के आधार पर बना है कि तात्कालिक स्वशासन के सब से बड़े रोड़े खुद भारत में ही हैं।

गवर्नरों के विशेषाधिकार कुछ समुदायों, स्थापित स्वार्थों और क्षेत्रों से संबंधित थे। समुदाय थे—अल्पसंख्यक दल, स्थापित स्वार्थ थे—ब्रिटिश स्वार्थ और क्षेत्र थे—ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतों के कुछ छँटे हुए भाग। उस माँग का मतलब यह था कि गवर्नर आस्ट्रेलिया के गवर्नरों की तरह ही काम करें। वह अपनी इच्छा से मंत्रियों को पद-च्युत न करें, मंत्रियों की कौंसिल में सभापति न बनें, शान्ति और सुरक्षा के नाम पर आर्डिनेन्स न बनायें, एडवोकेट जनरल नियुक्त करने में उसका कोई हाथ न हो और न वह पुलिस के नियम बनायें।

ब्रिटिश मंत्रियों का यह कहना था कि जब तक एक्ट में संशोधन न कर दिया जाय, कांग्रेस के मांगे हुए आश्वासन देना गवर्नर के हाथ की बात नहीं है। दूसरी तरफ़ कार्यकारिणी को प्रमुख वैधानिकों ने यह परामर्श दिया था कि विधान के अन्तर्गत ऐसे आश्वासन दिये जा सकते हैं। लार्ड ज़ेटलैंड और आर० ए० बटलर के वक्तव्य से कांग्रेस की नाराज़गी बढ़ गई। वजह यह थी कि उस वक्तव्य से ग़लतफ़हमी होती थी और उसमें कांग्रेस दृष्टिकोण को तोड़-मरोड़कर उसके ग़लत अर्थ लगाये गये थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि जिस ढंग से और जिस स्थिति में यह बयान दिया गया था उसमें कांग्रेस के प्रति अशिष्टता थी। इसी बीच कांग्रेसी बहुमत के प्रान्तों में मंत्रिमण्डल बनने लगे जो बिलकुल अवैधानिक थे, जिनमें स्वतंत्रता की गंध भी नहीं थी और जिनमें उन प्रान्तों के सार्वजनिक बहुमत की अवहेलना की गई थी। सारे देश में आम सभाएँ की गईं और तथाकथित मंत्रियों की निन्दा की गई।

पद-ग्रहण का प्रश्न

परस्पर विरोधी राजनैतिक और कानूनी मतों को लेकर तारों और केबिलों द्वारा लड़ाई होती रही, लेकिन भारत-मंत्री या भारत-सरकार पर इसका कोई असर दिखाई नहीं दिया। इस तरह तीन महीने बीते। तब जून के तीसरे सप्ताह में वायसराय ने एक बयान निकाला। लेकिन उनके बीच में आने से मामले कोई ज्यादा सुधर नहीं गये और न कोई छोटा रास्ता ही निकला। उसका उद्देश्य असहानुभूति का भी नहीं था। कांग्रेस ऐसा अनुभव करती थी कि जब तक गवर्नरों से कुछ आश्वासन न मिले, एक्ट के आधार पर पद-ग्रहण करना बुद्धिमानी नहीं होगी। वाइसराय पिछले तीन महीनों के अनुभव से यह सिद्ध कर रहे थे कि जिन प्रान्तों में मत्रिमंडल बने थे वहाँ सरकारी कर्मचारियों से काफी सहयोग मिल रहा था और साथ ही गवर्नर भी सहायता, सहानुभूति और सहयोग के साथ

काम कर रहे थे। वायसराय ने अपने मन में कांग्रेस की आशंकाओं को मानते हुए यह बताया कि उनके लिए व्यवहार में इस बात का कोई आधार नहीं था कि गवर्नर मंत्रिमंडल की नीति में हस्तक्षेप करेंगे ही, लेकिन उस स्थिति में क्या होगा, जहाँ गवर्नर को निज-निर्णय का अधिकार हो और जहाँ गवर्नर और मंत्रिमंडल में जबर्दस्त मतभेद हो? मंत्रियों को सारे क्षेत्र में, यहाँ तक कि विशेषाधिकार के क्षेत्र में भी, परामर्श देने का अधिकार है। ऐसे परामर्श के लिए मंत्री धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी हैं। विशेषाधिकार के सीमित क्षेत्र में अपने काम के लिए गवर्नर पार्लमेण्ट के प्रति उत्तरदायी है, लेकिन जब गवर्नर मंत्रियों के परामर्श को नहीं मानता तब उस निर्णय की जिम्मेदारी उसी की है। मंत्री उस ज़िम्मेदारी से मुक्त हैं और उन्हें इस बात को खुले आम कहने का हक़ है कि उस मामले में जो फैसला हुआ है उसमें उनका कोई हाथ नहीं है। वायसराय ने गांधीजी के इस सहायक सुझाव का स्वागत किया और कहा, "गवर्नर और मंत्रिमंडल के संबंध टूटने का सवाल तो उस समय ही आना चाहिये जब उनमें बड़ा जबर्दस्त मतभेद हो। सिर्फ ऐसी ही हालत में मंत्रिमंडल को या तो इस्तीफा देना चाहिये या उसको पदच्युत कर देना चाहिये। इस्तीफे में आत्म-सम्मान है और मंत्रिमंडल का स्वेच्छा-पूर्ण काम है। पदच्युत करना अस्वाभाविक है और उसमें हीनता का बोध होता है। दोनों बातें संभव हैं; लेकिन ऐक्ट की नीयत यह नहीं है कि गवर्नर के पदच्युत करने की माँग से मंत्रिमंडल विवश होकर त्याग-पत्र दे। आमतौर से गवर्नर और मंत्रि-मंडल में जो मतभेद होंगे वे दोनों ओर की सद्भावनाओं से आपसी समझौते द्वारा सुलझ जाने चाहिये। गवर्नर इस बात के लिए उत्सुक है कि झगड़े न हों और ऐसे झगड़े न होने देने के लिए वह कोई कसर नहीं उठा रखेगा। इस तरह व्यवहार में कार्य-संचालन गवर्नर के नाम से होगा; लेकिन मंत्रिमंडल के क्षेत्र में कुछ पाबन्दियों को छोड़कर गवर्नर अपना शासन-संचालन मंत्रियों के परामर्श से ही करेगा। कुछ सीमित और सुनिश्चित मामलों में और जगहों की तरह यहाँ भी पहली ज़िम्मेदारी तो मंत्रिमंडल की ही होगी; लेकिन गवर्नर अन्ततः पार्लमेण्ट के प्रति उत्तरदायी होगा। शेष क्षेत्र में केवल मंत्रिमंडल की ही ज़िम्मेदारी है और वह सिर्फ प्रान्तीय धारासभा के सामने ही जवाबदेह होगा। विशेष उत्तर-दायित्व के मामलों में गवर्नर मंत्रिमंडल के परामर्श से भिन्न मार्ग अपना सकता है और ऐसे मामलों में फैसला उसी के हाथ में होगा और उसके लिए वह पार्लमेण्ट के प्रति उत्तरदायी है। इसका अर्थ यह नहीं है कि गवर्नर आज़ाद है, या उसको इस बात का हक़ है कि अपने विशेष उत्तरदायित्व के क्षेत्र के अलावा वह प्रान्त के दैनिक शासन में हस्तक्षेप कर सकता है। कठोर प्रथाओं से नहीं; बल्कि परस्पर मिलजुल कर काम करने की नीति से विगत काल में वैधानिक प्रगति हुई है। विधान में असाधारण परिस्थितियों की व्यवस्था का अर्थ यह नहीं है कि ऐसी असाधारण

परिस्थितियाँ सामने लाने की इच्छा है। उस पूर्णतर राजनैतिक जीवन के लिए, जिसे आपमें से बहुत से लोग जी-जान से चाहते हैं, सबसे छोटा मार्ग इस विधान को अपनाना और उसको उसी के गुण-दोष के अनुसार अमल में लाना है। इस विधान को पूरी तरह अमल में लाने और उसके अनुसार आगे बढ़ने में ही देहाती जनता और समाज के निचले वर्ग के कष्टों को स्थायी रूप से घटाने और उन्हें दूर करने की, सर्वोत्तम आशा निहित है।"

कार्यकारिणी की बैठक

२० जून १९३७ के वाइसराय के भाषण के बाद तत्काल जुलाई में कांग्रेस की स्थिति को कांग्रेस की कार्य-कारिणी के उस समय के प्रस्तावों से संक्षिप्त उद्धरण लेकर व्यक्त किया जा सकता है। राष्ट्रीय सम्मेलन से पहले १८ मार्च को दिल्ली में महासमिति की जो बैठक हुई थी, उसमें पद-ग्रहण के प्रश्न पर यह कहा गया था कि उन प्रान्तों में जहाँ धारासभा में कांग्रेसी बहुमत हो और जहाँ कांग्रेस पार्टी के नेता को यह विश्वास हो और इसकी वह खुली घोषणा कर सके कि गवर्नर मंत्रियों के वैधानिक कामों में हस्तक्षेप नहीं करेगा, वहाँ मंत्रिमंडल बनाया जा सकता है। इसके अनुसार विभिन्न प्रान्तों के कांग्रेसी नेताओं ने आश्वासन मांगे और उनके अभाव में मंत्रिमंडल बनाने की अपनी असमर्थता प्रकट की। इस बीच भारत-मंत्री, उपमंत्री और वाइसराय ने ब्रिटिश सरकार की ओर से उस समस्या पर कुछ बातों की घोषणाएं कीं जिनके आधार पर कार्य-कारिणी ने ऐसा महसूस किया कि परिस्थितियों का कुछ ऐसा जोड़ बन गया है कि गवर्नरों के लिए अपने विशेषाधिकारों को उपयोग में लाना सरल न होगा। इसीलिए जुलाई के पहले सप्ताह में वर्धा में कार्य-कारिणी ने अपनी बैठक में यह प्रस्ताव पास किया :—

"इसलिए कमेटी इस नतीजे पर पहुंची है कि जहां कांग्रेसियों को मंत्रिमंडल बनाने के लिए आमन्त्रित किया जाय वहाँ उन्हें मंत्रिमंडल बना लेना चाहिये। किन्तु वह इस बात को भी स्पष्ट करना चाहती है कि पद-ग्रहण करके चुनाव के घोषणा-पत्र के अनुसार काम करने और उसकी बातों को ही पूरा करने के लिए कोशिश होनी चाहिये, जिसके अनुसार एक ओर तो नये विधान के संबंध में कांग्रेसी नीति होगी और दूसरी ओर रचनात्मक कार्य-क्रम को चलाया जायगा।"

पद-ग्रहण : जुलाई १९३७

वर्धा म कार्य-कारिणी द्वारा पद-ग्रहण का निश्चय करने पर कांग्रेसी बहुमत के प्रान्तों के अन्तर्कालीन मंत्रिमंडलों ने त्याग-पत्र दे दिये। गवर्नरों ने अपने-अपने प्रान्त की कांग्रेस-पार्टी के नेताओं को आमन्त्रित किया कि वे नये मन्त्रिमंडल बनाने में उसकी (गवर्नर की) सहायता करें। मुलाकातें संतोषप्रद हुईं और नेताओं ने मंत्रिमंडल बनाना स्वीकार कर लिया तथा गवर्नरों

को अपने साथियों के नाम दे दिये। जैसा कि कांग्रेस कार्य-कारिणी पहले कह चुकी थी, रहने और सवारी के लिए सरकारी इन्तजाम के अलावा, मंत्रियों, प्रमुखों और एडवोकेट-जनरलों का वेतन ५००) रु० प्रति मास निश्चित किया गया।

पद-ग्रहण से राष्ट्रीय जीवन में एक नई प्रक्रिया आरम्भ हुई। कांग्रेसियों को विभिन्न प्रकार के और विभिन्न परिणाम के महत्व के शासन का अनुभव नहीं था। उनमें से कुछ ही लोगों को धारासभा का और उससे भी कम लोगों को सरकारी अनुभव था, किन्तु बड़े प्रान्तों का शासन उनके लिए नयी चीज़ थी। शासन की जटिलताओं से उनका सम्पर्क न तो गहरा था और न व्यापक। इसके अलावा उनको परस्पर विरोधी हितों में मेल कराना था और विभिन्न माँगों के साथ न्याय करना था।

एक ओर यह बात थी, दूसरी ओर जनता की आशाएं बहुत बढ़ी-चढ़ी थीं। किसानों को राहत मिले, कर्ज़ घटे, मद्य-पान निषेध हो, गैरकानूनी वसूलयावी बन्द हो, घरेलू धंधों और बृहत् परिमाण के उद्योगों को बढ़ाया जाय, शिक्षा का पुनस्संगठन हो, राष्ट्रीय संस्कृति का पुनरुत्थान हो, ग्राम-पंचायतें फिर से क़ायम हों, न्याय सस्ता और सही हो, नये नागरिक अधिकार और कर्त्तव्यों का स्वरूप सामने आये, हरिजनों और पिछड़ी हुई जातियों की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा सुधारी जाय, श्रम को देश की सच्ची सम्पत्ति समझा जाय, ये सुधार थे जो मंत्रियों को करने थे। इनमें से हर काम के लिए साधनों की जांच करनी थी, योजना बनानी थी और सामाजिक तथा आर्थिक मूल्य के संबंध में सार्वजनिक धारणाओं को शुद्ध और उन्नत करना था। लगभग सभी प्रान्तों में राजनैतिक कैदी थे जिनमें कुछ हिंसा के दोषी थे। ये लोग कांग्रेस के हाथों छुटकारा पाने की बाट जोह रहे थे। कांग्रेस की नीयत और उसके ढंग पर, कांग्रेस के कट्टर विरोधी तरह-तरह के सन्देह कर रहे थे।

गांधीजी-द्वारा स्पष्टीकरण

विरोधियों से गांधीजी का कहना था कि पद-ग्रहण का अर्थ यह नहीं है कि कांग्रेस एक्ट को अमल में लाना चाहती है। उसका विचार तो यह है कि इस अवसर पर पश्चिम से पूर्व की ओर, पदार्थ से निहित भावना की ओर, मशीन से दस्तकारी की ओर, धन से सेवा की ओर, सजावट से सादगी की ओर और मशीन के पहिये से चरखे के चक्र की ओर दृष्टि को मोड़ दिया जाय। सारे राष्ट्रीय व्यक्तित्व को इस तरह फिर से जगा दिया जाय कि भारत में अंगरेजियत की जगह भारतीयता आ जाय। वह स्वयं पर्याप्त हो, सादा हो, उसका राष्ट्रीय दृष्टिकोण हो और उसकी राष्ट्रीयता में मानवता हो। ऐसी दशा में मंत्रियों के लिए यह आवश्यक था कि वे पुराने मूल्यों को छोड़ें और नये मूल्य अपनायें।

ऐक्ट पर कानूनी ढंग से अमल किया जायगा, इसे और भी स्पष्ट करते हुए गांधीजी ने कहा—"यदि तीन करोड़ निर्वाचकों के प्रतिनिधियों में अपना विश्वास और अपनी बुद्धि है तो वे इस ऐक्ट के उद्देश्यों को दबा सकते हैं। यह काम बड़ी आसानी से हो सकता है। वे कानून के अन्दर ही इस ऐक्ट का अप्रत्याशित ढंग से उपयोग करें और उस ढंग से उसका उपयोग ही न करें, जिसकी कि इसके बनाने वालों ने आशा की है।" इस तरह 'कानूनी' शब्द का अर्थ यह था कि ऐक्ट की धाराओं का इस्तेमाल करने में कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन उसके माने ऐक्ट पर अमल करने की सलाह के नहीं थे।

कांग्रेस की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

गांधीजी-द्वारा ऐक्ट के स्पष्टीकरण से सिद्ध है कि कांग्रेस के सामने अनेक कठिनाइयाँ थीं। सबसे बड़ी कठिनाई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों की स्थिति के संबंध में थी। उन्हींने चुनाव की तैयारी की थी। उन्होंने ही उम्मीदवारों को छाँटा था। इसलिए जनता की दृष्टि में वही सार्वजनिक अधिकारों की रक्षक और मंत्रियों की सत्ता की प्रतिनिधि थी। इसका परिणाम यह हुआ कि अधीर जनता ने इन कमेटियों से बहुत-सी मांगें कीं, जिनका मंत्रिगण निपटारा नहीं कर सकते थे।

कांग्रेस चाहती थी कि कांग्रेसी मंत्रियों के मुश्किल काम को आसान करे और वे धारासभा के बाहर से ही अपने भीतर के साथियों की मदद करें, परन्तु कांग्रेस ने अब तक इस दिशा में काम नहीं किया था। पुराने नरमदली लोगों को शासन संबंधी अनुभव और ज्ञान था। कांग्रेसी पिछले सत्रह साल से लड़ाई और आन्दोलन चला रहे थे। उनका कार्यक्रम सेवा और बलिदान का था। ऐसी दशा में वे कांफ्रेन्स और कमीशनों की रिपोर्टों और सरकारी नियमावलियों से अनभिज्ञ थे।

धारासभा के बाहर के कांग्रेसियों को जनता के मित्र की तरह काम करना था। उन्हें उन लाखों मूक प्राणियों की आवाज ही नहीं बनना था, बल्कि उन्हें सच और झूठ, जरूरी और बेजरूरी को छांट कर रखना था। इस काम के लिए उन्हें पदाधिकारियों का बर्ताव देखना था, जिनको जनता का दुश्मन न समझकर अब जनता में इस तरह घुला-मिला देना था कि दोनों तरफ एक दूसरे का भरोसा और यकीन हो। मौजूदा शासन में बहुत बुरी बात यह थी कि अधिकारियों और जनता में एक बहुत बड़ी दूरी थी। दफ्तरी नौकरियों में भी नौकरशाही घुस गई थी। जब तक खुद राष्ट्रीय चरित्र न उठता, ऊपर के नियंत्रण और दबाव से यह दोष दूर नहीं हो सकता था।

प्रान्तीय और राष्ट्रीय मामलों में जनता के प्रति उत्तरदायित्व के अभाव में एक दुखद चीज यह थी कि लोग छोटे-छोटे आपसी झगड़ों और दलबंदियों में पड़े हुए थे। मौके-मौके पर यह झगड़े खास तौर से उफन पड़ते थे। छोटी-छोटी बातें

बहुत बढ़ जातीं थीं और दीवानी और फौजदारी मुकदमों के जरिये लड़ाई लड़ी जाती थी। इसके अलावा नवयुवकों के एक बहुत बड़े समुदाय को उन संस्थाओं में शिक्षा देनी थी, जिन पर सरकार का संदेह था। इस तरह रचनात्मक कार्यक्रम के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवकों को तैयार करना था। उनकी बेबसी ने इतनी गहरी जड़ जमा ली थी कि अस्पतालों, विद्यालयों, टेकनिकल संस्थाओं, अनाथालयों, और बहरे गूंगों के स्कूलों के लिए ईसाई मिशनरियों से सहायता ली जाती थी। इन सारे कामों को राष्ट्र के नवयुवकों को अपने हाथ में लेना था।

कांग्रेस की ताकत और उसके प्रभाव की वृद्धि से बहुत-सी परेशानियाँ भी उठ खड़ी हुईं। आदर्श और घटनाओं की प्रगति में सार्वजनिक आशाएँ तेजी से बढ़ीं, विशेषकर श्रम के क्षेत्र में, और जहाँ-तहाँ हड़तालें हुईं। कांग्रेस मंत्रिमंडलों के अधीन ही जगह-जगह पुलिस और फौज ने गोलियाँ चलाईं। सत्ताईस महीने के समय में दक्षिण भारत में तीन बार ऐसे मौकों पर गोलियाँ चलीं और इसको बहुत ज्यादा समझा गया। लेकिन इसके मुकाबिले में उत्तर प्रदेश में फौज को ४७ बार गोली की सहायता लेनी पड़ी। बम्बई में भी उग्र प्रदर्शन हुए और गोलियाँ चलीं; लेकिन असली परेशानी तो उत्तर प्रदेश में ही थी। वहां अक्सर दंगे होते—कभी साम्प्रदायिक और कभी दूसरे ढंग के और—बार-बार शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिए फ़ौज को बुलाना पड़ता था। ऐसे उपद्रवों, अनुभवों और ऐसी परेशानियों के बीच कांग्रेसी मंत्रिमंडलों को रचनात्मक सुधार का कार्यक्रम चलाना था।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के कार्य

सबसे पहले कांग्रेस-प्रधान धारासभाओं ने विधान परिषद के लिए प्रस्ताव पास किया; क्योंकि नये ऐक्ट में राष्ट्र का कहीं मत नहीं था और वह बिल्कुल असं-तोषप्रद था। उसमें तो हिन्दुस्तान की जनता को गुलाम बनाये रखने की नीयत थी। बम्बई में सविनय आज्ञा भंग आंदोलन के दौरान में जिन सत्याग्रहियों की जमीन और जायदाद जब्त हो गई थी उन्हें सरकारी खर्चे पर वापस लौटा दिया गया। अखबारों की जमानतें भी लौटा दी गईं। उपयुक्त सिनेमा और साहित्य पर से पाबन्दियाँ हटा ली गईं। मज़दूर नेताओं के कामों पर जो रोक थी वह रद्द कर दी गई और श्रम-कानूनों का काम हाथ में ले लिया गया। देहाती कर्ज पर मद्रास में सबसे पहले ध्यान गया और उसमें ऐसी कानूनी व्यवस्था कर दी कि उससे कर्ज की रकमें घट गईं। इसके बाद मद्य-पान निषेध पर ध्यान दिया गया। और जगहों की तरह यहां भी राजबन्दी छोड़े गये। मोपला-उपद्रव ऐक्ट रद्द किया गया। १९३० के सविनय आज्ञा भंग आन्दोलन में इस्तीफ़ा देने वाले ग्राम्य कर्मचारियों की पुनर्नियुक्ति की गई। खादी और कताई के लिए २ लाख रुपये की रकम निकाली गई। मंत्रिमंडल के लिए यह एक असाधारण साहस का काम था; क्योंकि इससे कांग्रेस-संस्था के

रचनात्मक कार्यक्रम में बड़ी भारी मदद मिलती थी। जुलाहों के संरक्षण के लिए सबसे पहला कदम यह उठाया गया कि हाथबुने कपड़े के अलावा और सब तरह के कपड़े बेचने वालों के लिए लाइसेन्स लेना लाजिमी कर दिया गया। कुछ हड़तालों के सिलसिले में समझौता बोर्ड कायम किये गये।

उत्तर प्रदेश में किसानों को राहत देने के लिए दो कमेटियाँ नियुक्त की गईं। किसानों को बेदखल करने के जो मामले चल रहे थे उन्हें फौरन रोक दिया गया ताकि किसानों को तात्कालिक सुविधा मिले। दूसरी कमेटी ने देहाती कर्ज के सवाल पर ध्यान दिया। कानपुर में मालिकों के झगड़े को मंत्रिमंडल ने समय पर हस्तक्षेप करके दूर किया। मध्य प्रांत में छोटे किसानों को स्थायी रूप से १२॥ फीसदी की छूट दी गई। कर्ज के सिलसिले में समझौता बोर्ड कायम किये गये। क्लबों पर लाइसेंस लगाने, विदेशी शराब की दुकानों और देशी शराब के इस्तेमाल को घटाने का प्रस्ताव रखा गया। रचना विभाग के कामों में सार्वजनिक इमारतों की लागत को काफ़ी घटा दिया गया। २४०० गाँवों की, जहाँ पढ़ाई की सुविधाएँ नहीं थीं, ज़रूरतों को पूरा करने के लिए विद्या मंदिर-योजना जोरों से चलाई गई। बंगाल कांग्रेस-संचालित प्रान्त नहीं था। वहाँ नज़रबन्द और राजबन्दी सब प्रान्तों से ज्यादा थे। वे सब गांधीजी के हाथों छुटकारे के इन्तज़ार में थे। गांधीजी बहुत बुरा स्वास्थ्य होने पर भी कलकत्ते में २५ अक्टूबर १९३७ से १६ नवम्बर तक तीन सप्ताह ठहरे। बंगाल के गवर्नर और मंत्रिमंडल से उन्होंने लम्बी बातचीत की। बहुत से निकले हुए नज़रबन्दों और राजबन्दियों से गांधीजी मिले। कलकत्ते से लौटते वक्त उन्होंने हिजली कैम्प के १६ राजबन्दियों से दो घंटे तक बातचीत की। इस समय सरकार ने लगभग ११०० नज़रबन्दों की रिहाई की आज्ञा दी।

इस प्रकार कुल मिला कर १९३७ का साल बहुत घटनापूर्ण रहा। काँग्रेस ने उस साल कोई अधिवेशन नहीं किया, लेकिन उसने उस समय में आधी सदी की प्रगति पूरी की। असल में जब मंत्रिमंडल बनाये गये तब उसने राष्ट्रीय संगठन की मेहराब की चुनाई की। असहयोग का रास्ता बदला, लेकिन सहयोग का वक्त अभी नहीं आया था। संघ बनाने से ऐक्ट के जिस हिस्से का संबंध था उसके विरोध में काँग्रेस के रुख में कोई फ़र्क नहीं हुआ। जब काँग्रेसी मंत्रिमंडल बने थे तब संघ बनाने के बारे में ब्रिटिश सरकार ने अपना अगला कदम बताया था। काँग्रेस की निगाह में ब्रिटिश सरकार की ऐसी कोशिश भारत की जनता के लिए चुनौती थी और उसने प्रान्तीय और स्थानीय काँग्रेस कमेटियों, प्रान्तीय सरकारों और मंत्रि-मंडलों से संघीय ढाँचा लादे जाने के विरोध में अपील की। विशेषकर प्रान्तीय सरकारों को यह हिदायत दी गई कि वे अपनी धारासभा के विरोध को, प्रस्ताव द्वारा प्रकट करें।

कांग्रेस महासमिति के निर्णय

संघीय विधान के बड़े सवाल के अलावा ब्रिटिश सरकार और भारतीय जनता में और बहुत-सी बातों के झगड़ों की वजह से न कोई सहयोग की भावना हुई और न कोई विशेष प्रगति हो सकी। उदाहरण के लिए हज़ारों नज़रबन्द कैम्पों या जेलों में पड़े हुए थे और कुछ अण्डमान में थे। अण्डमान के बन्दियों ने गांधीजी को एक तार में यह सूचना भेजी कि हिंसा में अब उनका विश्वास नहीं रहा है। ऐसी हालत में उन्हें नज़रबन्द रखने का कोई मौका या बहाना नहीं था। ऐसे लोगों के साथ ही कुछ और लोग भी थे जिनके ख़िलाफ़ हिंसा के अभियोग थे। उनके अलावा निर्वासित लोग भी थे, जिनकी रिहाई के बारे में महासमिति ने एक प्रस्ताव पास किया।

पहले सालों में काँग्रेस ने सारे भारत की श्रम-संबंधी समस्याओं पर उचित ध्यान नहीं दिया, लेकिन जब उसने पद-ग्रहण किया तब इस महत्वपूर्ण विषय को छोड़ना संभव नहीं था। यह चीज़ राष्ट्रीय जीवन में एक विशेष महत्व की थी—विशेषकर बम्बई प्रान्त में। काँग्रेस ने जो मज़दूर-कमेटी नियुक्त की थी उसने बड़े परिश्रम के बाद सुधार का एक विस्तृत कार्यक्रम पेश किया। इसको काँग्रेस महासमिति ने अक्टूबर १९३७ में एक प्रस्ताव द्वारा स्वीकार किया और अपनी यह राय प्रकट की कि अगर काँग्रेसी श्रम-मंत्री समय-समय पर सम्मेलनों में भाग लेते रहें तो वह उन्हें एकसी नीति और एकसा कार्यक्रम निश्चित करने में सहायता देगा।

काँग्रेस के लिए अल्पसंख्यकों का प्रश्न भी महत्वपूर्ण था। उसने इस सम्बन्ध में अक्टूबर, १९३७ में होने वाली कलकत्ता-महासमिति में एक प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा गया कि कांग्रेस अल्पसंख्यकों के विकास के लिए ज्यादा-से-ज्यादा क्षेत्र देना चाहती है जिससे वे राष्ट्र के राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में पूरा-पूरा हिस्सा ले सकें। काँग्रेस का उद्देश्य एक स्वतंत्र और अखण्ड भारत है जहाँ कोई वर्ग, समुदाय—बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक—एक दूसरे का शोषण न कर सकें और जहाँ राष्ट्र के सारे हिस्से एक साथ मिलकर राष्ट्रीय उन्नति के लिए काम कर सकें। अपने इस दृष्टिकोण के अनुसार कांग्रेस ने मौलिक अधिकारों के प्रस्ताव में इन बातों को भी शामिल किया :—

(१) भारत के हर नागरिक को अपनी स्वतन्त्र सम्मति प्रकट करने का अधिकार है।

(२) हर व्यक्ति को आत्मिक स्वतंत्रता होगी और वह किसी भी मत, धर्म या सम्प्रदाय को मान सकता है, लेकिन उससे सार्वजनिक शांति और नैतिकता भंग नहीं होनी चाहिये।

(३) अल्पसंख्यकों और विभिन्न भाषाओं के क्षेत्रों की संस्कृति, भाषा और लिपि का संरक्षण किया जायगा।

(४) कानून के सामने सभी व्यक्ति बराबर हैं, फिर चाहे उनका कोई धर्म हो या उनकी कोई जाति हो और वे चाहे स्त्री हों या पुरुष।

(५) किसी व्यक्ति पर उसके धर्म, लिंग और जाति के कारण सार्वजनिक नौकरियों आदि में कोई भेदभाव या पाबन्दी नहीं होगी।

(६) किसी सार्वजनिक कुएँ, तालाब, सड़क, स्कूल और दूसरे स्थान के लिए हर नागरिक के समान अधिकार और कर्त्तव्य हैं।

(७) सब धर्मों के प्रति राजसत्ता तटस्थ रहेगी।

(८) प्रत्येक वयस्क स्त्री-पुरुष को मताधिकार प्राप्त होगा।

(९) हरएक नागरिक भारत में कहीं आने-जाने, ठहरने और बसने के लिए आज़ाद है। वहाँ वह जायदाद ले सकता है।

अल्पसंख्यकों के सवाल के साथ 'राष्ट्रीय गान' का सवाल भी था। कुछ धारासभाओं में कार्रवाई 'वन्दे मातरम्' गान से शुरू हुई। इस गाने के साथ इकबाल के कुछ गाने भी प्रसिद्ध हुए। इनके अतिरिक्त महासमिति ने कुछ दूसरे मामलों पर भी ध्यान दिया। लगभग पच्चीस बरस से आंध्र और कर्नाटक इस बुनियाद पर अलग प्रान्त बनाने पर ज़ोर दे रहे थे कि नये प्रान्त भाषा के आधार पर बनाये जायं। कलकत्ते में महासमिति ने पहली बार "काँग्रेस-नीति" निश्चित की कि भाषा के आधार पर फिर से प्रान्त बनाए जायं। उसने बम्बई और मद्रास सरकार से आंध्र और कर्नाटक के अलग प्रान्त बनाने पर विचार करने के लिए कहा। इस सिफ़ारिश पर मद्रास की धारासभा ने विभिन्न भाषा क्षेत्रों के लिए विभिन्न प्रान्त बनाने का एक प्रस्ताव पास किया। मद्रास-सरकार और भारत मंत्री में लम्बा पत्र-व्यवहार हुआ। परिणामस्वरूप भारत-मंत्री ने उस प्रस्ताव को उस समय रोक दिया। बम्बई ने भी कर्नाटक के सवाल पर उसी समय विचार किया।

घरेलू समस्याओं के बीच काँग्रेस अपने प्रवासी और रियासती भाइयों के प्रति अपनी जिम्मेदारी को नहीं भूली। भारतीय रियासतों का मामला, भारत सरकार के विदेश-विभाग के अन्तर्गत था। १९३७ में जब मैसूर में जबर्दस्त दमन हुआ तब महासमिति ने उसका घोर विरोध किया। उस समय जो प्रवासी जंज़ीबार में थे वे नये कानून के खिलाफ़ वीरता-पूर्वक लड़ रहे थे। उन कानूनों से भारतीय हितों को चोट पहुँचती थी और उस देश में बसे हुए भारतीयों का आयात-निर्यात व्यापार बरबाद होता था। वास्तव में जंज़ीबार की समृद्धि में सब से बड़ी सहायता प्रवासी भारतीयों ने ही की थी। उस समय उनके संघर्ष में सहायता और भारतीय हितों के रक्षण के लिए भारत में लौंग के आयात पर रोक लगाना ज़रूरी समझा

गया। इस पर भारतीय जनता से जंज़ीबार की लौंग न इस्तैमाल करने की अपील की गई। यह योजना जोश के साथ अपनाई गई। इससे जंज़ीबार के भारतीयों को इच्छित सुविधा प्राप्त करने में सहायता मिली।

१९३७ में कांग्रेस का सब से ज्यादा ध्यान आन्तरिक अनुशासन और स्वतंत्रता पर था। इस देश को दो चीज़ों से दबाकर रखा गया था। एक ओर तो राजभक्ति का पुरस्कार था और दूसरी ओर देशभक्ति के लिए सज़ा थी। अंगरेज़ों ने भारत पर नैतिक और बौद्धिक विजय पाने के लिए जो योजना निकाली थी उसमें सबसे पहला नम्बर ख़िताबों का था। जब उनकी सूची आती तो अखबारों की कई कालमें भर जातीं थीं। ऐसी सूचियां दो बार निकलती थीं—एक तो अंगरेज़ी नये साल के शुरू में और एक बादशाह के जन्म-दिवस पर। इन खिताबों ने राष्ट्रीय अधःपतन में बड़ी भारी सहायता की। नौकरियों और दूसरे इनामों से इनका असर कहीं ज्यादा था। इस पर महासमिति ने अपना सुचिन्तित मत यह प्रकट किया कि काँग्रेसी मंत्रिमंडलों की धारा-सभा में ख़िताबों को बन्द करने का प्रस्ताव पास किया जाय। मंत्रिमंडलों को बादशाह को इस बात की सूचना दे देनी चाहिए कि वे आगे इस सिलसिले में सिफ़ारिशें नहीं करेंगे।

भारत जैसे बड़े देश में प्रान्तों के सरकारी काम में सामंजस्य स्थापित करना और अनुशासन बनाये रखना कोई आसान काम नहीं था—विशेषकर उस समय जब राष्ट्र को शासन-सत्ता का पहली बार स्वाद मिला हो। धारासभाओं की पार्टियों की नेतागिरी में उन बहुत-सी बातों का समावेश था जो ऊपरी तौर से दिखाई नहीं देती थीं। पहली बार काँग्रेस ने महसूस किया कि चार आने देकर काँग्रेस सदस्य बनने में एक वह अंकुर था जो आगे जाकर प्रधान मन्त्री के रूप में एक सुदृढ़ वृक्ष हो सकता था। इसलिए जब व्यक्तिगत अधिकारों के झगड़े होते कि कौन नेता हो तो काँग्रेस कार्य-कारिणी ही एक ऐसी सत्ता थी, जो उन अधिकारों पर निर्णय कर सकती थी।

देश की स्थिति

अगर कहा जाय कि पिछले दो वर्षों में राष्ट्रीय विचार-धारा में होने वाली हलचलें देश में स्थान पाने वाली समाजवादी तथा वर्गवादी विचार-धाराओं के परिणास्वरूप थीं तो यह भी माना जा सकता है कि १९३८ में जो झगड़े उठ खड़े हुए थे, उनकी जड़ें पिछले कुछ वर्षों से काँग्रेस के भीतर चलते रहने वाले आपसी विरोधों में मौजूद थीं। सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व अब भी गांधीजी का ही था। यद्यपि वह काँग्रेस के सदस्य न थे, तो भी शक्ति का सूत्र उन्हीं के हाथों में था। उन्हीं का शक्तिशाली व्यक्तित्व था जो युवा-वर्ग की हिंसात्मक नीति पर रोक लगाए हुए था। परन्तु इतने पर भी देश की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। प्रान्तों में काँग्रेसी

मंत्रिमंडल स्थापित होने पर भी किसानों को मुक्ति नहीं मिली थी। लोग अचरज करते थे कि अभी जमींदार पहले के ही समान बने हुए हैं, पुलिस के जुल्म में भी कोई कमी नहीं हुई है, और बंगाल, बिहार तथ पंजाब में हिंसात्मक अपराधों के बन्दी अभी तक यातनाएँ भुगत रहे हैं। अण्डमान के बन्दियों ने अनशन कर रखा था और वे दिन प्रति-दिन मृत्यु के निकट पहुँच रहे थे। स्वच्छंदता-पूर्वक विचार प्रकट करने के कारण जो लोग जेलों में इतने दिनों से सड़ रहे थे उनकी संख्या अब भी एक हज़ार के लगभग थी। अण्डमान से कैदियों की वापसी तथा १,१०० बंगाली नज़रबन्दों की रिहाई के बाद हलचल में कुछ कमी हुई, परन्तु २० देशभक्तों ने पंजाब में अनशन करके और उसे ३० दिन तक जारी रखकर वातावरण में सर गर्मी ला दी थी और राष्ट्र के अन्तःकरण में फिर से हलचल पैदा कर दी थी। असंख्य किसान सैकड़ों मील चलकर गांवों से आते थे और अपने संगठन अलग कायम करते थे। ये नये संगठन प्रायः काँग्रेस के विरुद्ध होते थे। इसके लिए उन्हें एक उद्देश्य, एक झंडा और एक नेता मिल गया था। किसानों की हिमायत कोई नई बात न थी; लेकिन अब तक ऐसा काँग्रेस ही करती आई थी। इस बार उन्होंने लाल रंग का सोवियट झंडा अपनाया, जिसमें हंसिया और हथौड़ा के चिह्न अंकित थे। किसानों और कम्यूनिस्टों में यह झंडा अधिकाधिक चल पड़ा और पण्डित जवाहरलाल नेहरू के लगातार कहने-सुनने पर भी स्थिति में सुधार नहीं हुआ। झंडे की ऊँचाई तथा प्रमुखता के प्रश्न को लेकर प्रायः सभी जगह काँग्रेस तथा किसानों के बीच झगड़े हुए। तिरंगे झंडे का स्थान किसानों के झंडे को देने का जो प्रयत्न हो रहा था वह दर-असल समाजवाद का गांधीवाद से संघर्ष था। कुछ प्रान्तों में समाजवादियों ने कम्यूनिस्टों का साथ देना शुरू कर दिया था और कुछ में वे राष्ट्रीयतावादियों में मिल गये थे। कई प्रान्तों में प्रान्तीय चुनावों के बीच व्यक्तिगत संघर्षों का दौरदौरा रहा। इनमें कर्नाटक, बिहार और उड़ीसा मुख्य थे।

हरिपुरा-काँग्रेस : १९३८

हिंसा और अहिंसा के संघर्ष, जेलों में भूख-हड़ताल की पृष्ठभूमि और काँग्रेस मंत्रिमंडलों के प्रति असंतोष के इस वातावरण में काँग्रेस का इक्यावनवाँ अधिवेशन विट्ठलनगर, हरिपुरा में १९, २० और २१ फरवरी, १९३८ को श्री सुभाषचंद्र बोस की अध्यक्षता में हुआ। सुभाष बाबू ने अपनी नीति का स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि इस वर्ष भारत की जनता में वह ऐसी अवरोध-शक्ति का विकास करने की चेष्टा करेंगे, जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार को राष्ट्र पर अवांछनीय योजना थोपने का विचार त्यागने के लिए विवश होना पड़ेगा। अपने इन प्रयत्नों के दौरान में भारत की जनता अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर दृष्टि रखेगी और ऐसी नीति से काम

लेगी, जिसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति से पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सके। अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों को चेतावनी देते हुए उन्होंने कहा कि उन्हें इस भ्रम में न रहना चाहिए कि कांग्रेस ने विरोध करते हुए भी जिस तरह प्रान्तों में मंत्रिमंडल कायम करना मंजूर कर लिया उसी तरह वह भारतीय शासन कानून के संघ-योजना वाले अंश को भी स्वीकार कर लेगी। काँग्रेस साम्प्रदायिक प्रश्न के निबटाने का प्रयत्न करते हुए राष्ट्र में एकता कायम करने पर ज़ोर देगी। वह राष्ट्रीयता की रक्षा करते हुए मुसलमानों से समझौता करने के लिए कोई भी प्रयत्न बाकी न छोड़ेगी। उन्होंने मुसलमानों को आश्वासन दिया कि यदि अल्पसंख्यक समान नीति का अनुसरण करने को तैयार हों तो काँग्रेस उनकी सभी उचित माँगें मान लेगी।

जैसा कि पहले कहा गया है हरिपुरा-अधिवेशन का वातावरण ठीक नहीं था। अभी काँग्रेसी मंत्रिमंडलों को कायम हुए सात महीने भी न हुए थे कि प्रान्तीय गवर्नरों से उनका मतभेद हो गया। हरिपुरा में डेलीगेटों के शिविरों में अफ़वाह फैली हुई थी कि हिंसात्मक कार्यों के लिए सजा पाये हुए राजनैतिक बंदियों के छुटकारे के प्रश्न को लेकर बिहार और उत्तर प्रदेश के मंत्रिमंडल इस्तीफा दे चुके हैं। साथ ही रियासतों तथा किसानों की समस्याएं भी कम दिलचस्प न थीं। उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम सभी ओर रियासतों में पिछले दो वर्षों में जाग्रति की लहर फैल गई थी। इसके अलावा, किसान नये जोश में आकर ऐसे कार्य कर रहे थे, जो काँग्रेस के आधार-भूत सिद्धान्तों के खिलाफ़ थे और जिनकी जिम्मेदारी वह नहीं ले सकती थी। अल्पसंख्यकों की समस्या के सम्बन्ध में भी कुछ सनसनी फैली हुई थी। २८ दिसम्बर, १९३७ को मोहम्मदअली पार्क, कलकत्ता में मुस्लिम विद्यार्थी संघ के सम्मेलन में भाषण देते हुए श्री जिन्ना ने काँग्रेस को चुनौती देते हुए कहा था कि "काँग्रेस हाईकमांड का दिमाग ठीक करना पड़ेगा।" इसके अलावा नज़रबन्दों एवं अनशनकारियों का मामला पड़ा हुआ था, जिसके निबटारे के लिए गांधीजी हरिपुरा-अधिवेशन के बाद बंगाल जाने वाले थे। ऐसी विरोधी परिस्थितियों में भी हरिपुरा-अधिवेशन हुआ। सभापति के भाषण के पश्चात् स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल जी की पत्नी श्रीमती स्वरूपरानी के देहावसान पर शोक-प्रस्ताव पास हुआ और मिदनापुर जिले की ११० काँग्रेसी संस्थाओं पर लगे प्रतिबन्ध का विरोध किया गया। साथ ही बंगाल सरकार के इस तर्क का कड़े शब्दों में प्रतिवाद किया गया कि वहाँ की काँग्रेस समितियाँ आतंकवादी संगठन की अंग रही हैं।

काँग्रेस के प्राय: सभी अधिवेशनों में प्रवासी भारतीयों का प्रश्न उठाया जाता था। हरिपुरा में भी दक्षिण-पूर्वी अफ्रीका तथा मारीशस और फिजी के प्रवासी भारतीयों के पद, स्थिति और अधिकार-संबंधी ह्रास पर खेद प्रकट किया गया। दक्षिण तथा पूर्वी अफ्रीका के मूलनिवासियों के प्रति अपनी नीति को स्पष्ट करते हुए काँग्रेस ने कहा कि भारतीय प्रवासियों की मांग अफ्रीका के मूलनिवासियों के

प्रति शत्रुता की भावना से प्रेरित होकर नहीं की गई है, बल्कि उसका उद्देश्य अफ्रीकावासियों और भारतीयों दोनों ही को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण से बचाना है।

परन्तु हरिपुरा-अधिवेशन के समय संसार में विनाशकारी युद्ध के जो बादल छाये हुए थे उनकी तुलना में इन सबका अधिक महत्व न था। चीन, जापान, फ़िलस्तीन, यूरोप आदि सभी देश युद्ध का स्वप्न देख रहे थे। युद्ध तथा विदेशी सम्बन्धों के बारे में भारतीय राष्ट्र की नीति स्पष्ट थी और हरिपुरा-अधिवेशन में उसे और भी अधिक स्पष्ट कर दिया गया। संसार की इस उथल-पुथल तथा हलचलों के बीच काँग्रेस को हरिपुरा में अपनी अन्दरूनी कठिनाइयों का सामना करना था। चूँकि काँग्रेस प्रांतीय स्वायत्त शासन योजना को अमल में ला रही थी, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता था कि वह संघ-योजना को भी कार्यान्वित करेगी, क्योंकि संघ-योजना के दायरे से शासन के कुछ महत्वपूर्ण अंगों को छोड़ दिया गया था। ऐसी परिस्थिति में जनता की प्रकट की हुई इच्छा के विरुद्ध संघ-योजना लादे जाने के प्रयत्नों का सामना करने के अलावा काँग्रेस के पास और कोई उपाय नहीं रह गया था। संघ-योजना से अल्पसंख्यकों के अधिकारों तथा रियासतों के प्रश्नों का भी सम्बन्ध था। पिछले वर्षों में अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकाधिक सदस्य काँग्रेस में सम्मिलित होकर स्वाधीनता के संग्राम तथा जनसाधारण के शोषण को समाप्त करने का समर्थन कर चुके थे। काँग्रेसी मंत्रिमंडलों की स्थापना से काँग्रेस की सदस्यता में वृद्धि हुई थी और एक विशेषता यह भी देखने में आ रही थी कि इन नये सदस्यों में अल्पसंख्यक समुदायों का अनुपात बढ़ता जा रहा था। इसके अतिरिक्त रियासतों का प्रश्न था। रियासती प्रजा अपनी कलकत्ते की सफलता से प्रोत्साहित होकर और आगे बढ़ने की कोशिश करने लगी थी। वह चाहती थी कि काँग्रेस उसका भी भार वहन करे या कम-से-कम उसके संगठन का ही दायित्व ग्रहण कर ले। हरिपुरा में प्रश्न यही उठा कि रियासतों में काँग्रेस समितियाँ स्थापित करने की अनुमति दी जाय या नहीं और भारत के सूबों में काँग्रेस के जिस विधान के अनुसार कार्य हो रहा था उसे रियासतों की प्रजा पर लागू होने दिया जाय या नहीं। अंत में एक बीच का रास्ता निकाला गया। इसके अनुसार जहां एक ओर रियासतों में काँग्रेस-समितियाँ स्थापित करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया वहाँ दूसरी ओर यह तय हुआ कि रियासतों की काँग्रेस-समितियाँ कार्यसमिति के निर्देशन तथा नियन्त्रण में रहकर कार्य करें। मामला यहीं ख़त्म नहीं हुआ। खुले अधिवेशन में रियासती प्रजा संगठन से बाहर के कुछ लोगों ने इस समझौते से आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। परन्तु रियासती प्रजापरिषद के प्रतिनिधियों ने कड़ाई से इस प्रयत्न को दबा दिया और उपर्युक्त समझौता स्वीकार कर लिया। इससे रियासतों में दमन चक्र आरंभ हो गया। फलस्वरूप जनता में हिंसा की ज्वाला उमड़ पड़ी और

हत्याएँ हुईं। इसके बाद दूर-दूर तक आतंक फैल गया और २०००० रियासती प्रजा अपना घरबार छोड़ कर ब्रिटिश भारत में चली आई। मैसूर की प्रगतिशील रियासत में विदुर अश्वथा की दुर्घटना हुई, जिसमें १० व्यक्ति गोली के शिकार बने और इससे दुगने व्यक्ति घायल हुए। इसके अलावा और भी कई गोलीकांड वहाँ हुए। राजकोट, राजपूताना, मध्यभारत तथा पंजाब की रियासतों में सत्याग्रहियों को जेलों में ठूँस दिया गया। इन सभी मामलों में लोगों की आँखें गांधीजी की ही तरफ उठती थीं।

प्रायः इतना ही हलचल उत्पन्न करने वाला किसान-आंदोलन था। देश में विभिन्न पेशों तथा स्वार्थों के संगठन कायम होने पर कांग्रेस को कभी भी आपत्ति न थी और फिर किसान तो देश की जनता के तीन-चौथाई भाग थे। भारत की स्वाधीनता के व्यापक प्रश्न को देखते हुए यह आवश्यक था कि वे बहुत भारी संख्या में कांग्रेस में सम्मिलित होते और उसके झंडे के नीचे एकत्र होकर, स्वाधीनता संग्राम में भाग लेते। इसके विपरीत, किसानों ने कितनी ही जगह लाल झंडा फहराने और कांग्रेस के प्रति विरोध का रुख धारण करने का निश्चय किया था और वह भी इसलिए नहीं कि उनका कांग्रेस के लक्ष्य से कुछ मतभेद था, बल्कि इसलिए कि कांग्रेस में रह कर उनके निजी स्वार्थों की सिद्धि में बहुत देर लग रही थी। इस जल्दबाजी के कारण किसानों ने, कुछ ऐसे कार्यों में सहयोग किया, जो स्पष्टतः कांग्रेस के आधारभूत सिद्धांतों के विरुद्ध थे और इस प्रकार कांग्रेस की नीति तथा सिद्धांतों के विरुद्ध वातावरण तैयार करने में सहायक हुए। हरिपुरा-अधिवेशन ने प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों को इन तथ्यों को ध्यान में रखने और उपयुक्त कार्रवाई करने का आदेश दिया।

हरिपुरा-अधिवेशन की एक और भी सफलता उल्लेखनीय है। इसका सम्बन्ध कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय शिक्षा के ऐसे संगठन से है जिससे कि भारत में हाल में ही फैली राष्ट्रीयता की आवश्कताएं पूरी हो सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक अखिल भारतीय शिक्षा-बोर्ड की स्थापना की गई और उसे अपना विधान तैयार करने, धन इकट्ठा करने तथा अन्य आवश्यक कार्य करने के अधिकार दिये गये। हरिपुरा-अधिवेशन में एक अन्य प्रस्ताव पास किया गया, जिसका महत्व युद्ध के वर्षों तथा युद्ध छिड़ने से पूर्व एक वर्ष तक युद्ध की अफवाहों के काल में प्रमाणित हुआ। यह प्रस्ताव 'विदेश नीति तथा युद्ध-संकट' के संबंध में था और उसके द्वारा हरिपुरा में कांग्रेस ने इस विषय में राष्ट्र की नीति का स्पष्टीकरण किया। प्रस्ताव में कहा गया कि भारतीय राष्ट्र अपने पड़ोसियों तथा अन्य सभी देशों के प्रति मैत्री और शांति के वातावरण में रहना चाहता है। इसलिए भारत में युद्ध की जो तैयारियाँ की जा रही हैं उन्हें कांग्रेस नापसंद करती

है। यदि भारत को युद्ध में फंसाने का प्रयत्न किया गया तो इसका विरोध किया जायगा।

कार्य-समिति के निश्चय

१९२७ से ही कांग्रेस युद्ध के संकट का अनुभव कर रही थी, १९२७ के मद्रास-अधिवेशन और हरिपुरा-अधिवेशन के मध्य के दशक में कितनी ही घटनाएँ हो गईं। कांग्रेस यह नहीं समझती थी कि उसमें युद्ध को रोक सकने की सामर्थ्य है—यह असम्भव कार्य तो बड़े-से-बड़े लोग भी नहीं कर सकते थे। कांग्रेस तो सिर्फ ऐसे युद्ध के विरुद्ध लोकमत तैयार करना चाहती थी, जो सम्भवतः भारत का अपना युद्ध न हो या कांग्रेस के विचार से जो भारत के हितों के विरुद्ध हो। ऐसी परिस्थिति में एक विदेश-विषय-समिति नियुक्त की गई, जिसका कार्य अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के संपर्क में रहना, कांग्रेस कार्यसमिति को परामर्श देना और हिन्दुस्तान से बाहर के लोगों को कांग्रेस के दृष्टिकोण तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के संबंध में हरिपुरा में पास प्रस्ताव से अवगत कराना था।

प्रांतीय स्वायत्तशासन स्थापित होते ही प्रत्येक प्रांत के लिए अपने यहां के योग्य व्यक्तियों को अन्य प्रान्तों के अधिक योग्य व्यक्तियों की तुलना में तरजीह देना स्वाभाविक ही था; परन्तु कुछ पेचीदगियां भी थीं। १९०५ से पूर्व बंगाल, बिहार और उड़ीसा का एक ही प्रांत था। बंगाली लोग अधिक शिक्षित होने के कारण प्रांत के तीनों भागों में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त हुए, किंतु बाद में ये तीनों भाग तीन पृथक प्रांत बन गये। अब प्रश्न यह उठा कि बिहार में बहुत दिनों से बसे हुए बंगालियों के प्रति कैसा व्यवहार किया जाय। इस समस्या ने १९३७-३८ के वर्ष में विशेष महत्वपूर्ण रूप धारण कर लिया। विवाद में बिहार हाईकोर्ट के एक अवकाशप्राप्त जज ने भी भाग लिया। इस प्रश्न पर अच्छी तरह विचार हुआ और कार्य-समिति ने यह निश्चय किया कि (१) प्रांत में बसने, (२) नौकरी करने तथा (३) शिक्षा, (४) व्यापार और (५) व्यवसाय के पहलुओं पर विचार करते हुए श्री राजेन्द्रप्रसाद अपनी रिपोर्ट उपस्थित करें। राजेन्द्र बाबू की रिपोर्ट मिलने पर कार्यसमिति ने बारदोली में ११ जनवरी, १९३९ को अपना जो निर्णय दिया उसके अनुसार प्रांतीय व्यक्तियों को विशेष महत्व दिया गया।

एक ऐसा ही विषय प्रान्तों में रियासती प्रजा पर लगे प्रतिबन्धों तथा अयोग्यताओं का था। अखिल भारतीय मारवाड़ी संघ ने इस सम्बन्ध में कांग्रेस से अनुरोध किया और तब कार्य-समिति ने अपना मत प्रकट किया कि प्रान्तों में रियासती प्रजा को सरकारी नौकरियों तथा मताधिकार के विषय में जिन प्रतिबन्धों तथा अयोग्यताओं का सामना करना पड़ता हो उन्हें तुरन्त हटा लिया जाय।

यद्यपि प्रान्तीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र के विस्तार और उसकी सीमाओं की

समय-समय पर व्याख्या होती रही, तथापि वास्तविक शासन के समय ऐसी समस्याएँ उठने लगीं, जिनकी कल्पना कांग्रेस और सरकार में से किसी ने भी नहीं की थी। ऐसी ही एक अप्रत्याशित समस्या उस समय उठ खड़ी हुई जब उड़ीसा का स्थायी गवर्नर सर जान ह्यू बेक छुट्टी पर जाने वाला था। स्थानापन्न गवर्नरी सिविल सर्विस के एक सदस्य मि० डान को दी गई, जो मंत्रियों की अधीनता में काम कर चुका था। ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति अवांछनीय तथा अन्य देशों में प्रचलित परम्परा के विरुद्ध थी। इस परिस्थिति में उड़ीसा के मंत्रियों ने इस नियुक्ति का विरोध किया और कांग्रेस कार्य-समिति ने इस नियुक्ति में परिवर्तन करने का अनुरोध किया। अन्त में यह राजनैतिक संकट सर जान ह्यू बेक द्वारा अपनी छुट्टी रद्द करा लेने से टल गया।

उत्तरदायी शासन का मतलब यही होता है कि व्यवस्थापिका सभा को मंत्रिमंडल में रद्दोबदल करने का अधिकार रहे। यह अवसर सबसे पहले भारत के नये प्रान्त सिन्ध में मार्च, १९३८ में आया; परन्तु सिन्ध में किसी भी दल को वैसा बहुमत नहीं प्राप्त था, जैसा कांग्रेस को छः प्रान्तों में। इसलिए वहां किसी मंत्रिमंडल को हटाना तो सहल था, किन्तु उसकी जगह नया मंत्रिमंडल बनाना उतना सरल न था। यह समस्या वहाँ उस समय उठी जब वहाँ मन्त्रिमण्डल की पराजय हुई। ऐसी स्थिति में मन्त्रिमण्डल बनना कांग्रेस-दल के समर्थन अथवा विरोध पर निर्भर हो गया। इस अवसर पर गवर्नर ने कांग्रेस-दल के नेता को इस बात का पता लगाने के लिए बुलाया कि प्रान्त के राजनैतिक संकट के प्रति कांग्रेस का क्या रुख है। यह बड़ी अप्रत्याशित बात थी; क्योंकि धारासभा के ६० सदस्यों में से कांग्रेस की शक्ति केवल ८ थी। परन्तु धारासभा में ऐसा कोई भी दल न था, जिसे अकेले बहुमत प्राप्त हो सकता। कांग्रेस के ८ सदस्य किसी भी दल के साथ मिलकर मंत्रिमंडल नहीं कायम कर सकते थे। उन्होंने नये संयुक्त-मन्त्रिमण्डल का समर्थन करना ही निश्चय किया। नये सम्मिलित दल के नेता खानबहादुर अल्लाहबख्श ने कांग्रेस दल के नेता को पत्र लिखकर आश्वासन दिया था कि यदि मैंने मंत्रिमण्डल बनाया तो मेरी नीति कांग्रेस के सिद्धान्तों पर आधारित होगी। इस परिस्थिति में कांग्रेस दल ने उत्तर दिया कि नये मन्त्रिमण्डल के कानूनों तथा शासन-सम्बन्धी कार्यों का विरोध करने की अपनी स्वतंत्रता सुरक्षित रखते हुए कुछ अवधि तक वह ऐसा कोई कदम न उठाएगा और न किसी दूसरे दल के ऐसे किसी कार्य का ही समर्थन करेगा, जिससे नये मन्त्रिमण्डल के अपदस्थ होने की सम्भावना हो। इसके उपरान्त वह अन्तिम रूप से अपनी नीति स्थिर करेगा। इस प्रकार संयुक्त-मन्त्रिमण्डल का रास्ता साफ हो गया। आसाम में भी बहुत कुछ इसी प्रकार की घटनाएँ हुई। परिणाम यह हुआ कि एक समय ११ प्रान्तों में से ८ में कांग्रेसी या मिलीजुले मंत्रिमंडल काम करने लगे।

कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों द्वारा ६ प्रान्तों के शासन में कितनी ही घटनाओं के कारण और कभी-कभी मन्त्रियों की निजी कमजोरियों के कारण विषम समस्याएं उठ खड़ी होती थीं। ऐसी ही एक खेदजनक घटना मध्यप्रान्त के मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध में उठ खड़ी हुई। वहां न्यायमन्त्री-द्वारा दया के अधिकार का प्रयोग एक ऐसे उच्च स्थिति वाले राजनैतिक बंदी के लिए किया गया, जिसे बलात्कार के मामले में सजा की आज्ञा सुनाई जा चुकी थी। सम्बन्धित मन्त्री ने खेद प्रकट किया और इस्तीफा देने को कहा। मध्यप्रान्त का कांग्रेस पार्लामेंटरी दल तथा दूसरे मंत्री इस मंत्री के खेद प्रकट करने पर सन्तुष्ट हो गये और उन्होंने यह कारण भी मान लिया कि मामले की गम्भीरता का अनुभव न करने के कारण ही उसने अपने दूसरे साथियों से सलाह नहीं ली थी; परन्तु कार्य-समिति अधिक ऊँचे दृष्टि-कोण से इस विषय पर विचार करना चाहती थी। इसलिए उसन जनता से अनुरोध किया कि एक प्रसिद्ध कानूनवेत्ता-द्वारा मामले की जांच-पड़ताल किये जाने के बाद उसके अन्तिम निर्णय की उसे प्रतीक्षा करनी चाहिए। फलत: मामला कलकत्ता हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त जज सर मन्मथनाथ मुकर्जी के सुपुर्द किया गया और उनकी रिपोर्ट जब सम्बन्धित मंत्री के आगे उपस्थित की गई तब उन्होंने तुरंत इस्तीफा दे दिया। इस तरह एक ओर कांग्रेस की नेकनामी पर धब्बा न लगा और दूसरी तरफ वह व्यक्ति भी जनता की नजर में ऊँचा उठ गया।

दक्षिण भारत में एक कांग्रेसजन पर राजद्रोह के लिए १२४-अ धारा के अनुसार मुकदमा चलाये जाने पर नौजवान और विशेषकर समाजवादी बड़े क्षुब्ध थे। कार्यसमिति को १९३८ के आरम्भ में ही इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव का सामना करना पड़ा, जिसकी सूचना समाजवादियों ने अक्टूबर १९३७ में अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक में दी थी। इससे कार्यसमिति को विभिन्न प्रान्तों में पैदा होने वाली परिस्थितिओं और साथ की कठिनाइयों पर विचार करने का अवसर मिल गया। कार्यसमिति ने जहां एक तरफ कांग्रेस-मंत्रिमंडलों के कार्यों की पुष्टि की, वहां दूसरी तरफ उसने नागरिक स्वतंत्रता का क्षेत्र बढ़ा दिया तथा कांग्रेस के कार्यक्रम को अमल में लाने के प्रयत्नों का स्वागत किया, परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात कार्यसमिति के शब्दों में "कांग्रेस की अहिंसा की नीति के अनुसार आचरण करना और हिंसा की प्रेरक प्रवृत्तियों को निरुत्साहित करना" थी। इसी नीति के अनुसार कार्यसमिति ने कांग्रेस-कमेटियों तथा कांग्रेस-जनों से देश में शान्तिपूर्ण तथा अनुशासनयुक्त कार्य का वातावरण उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करने की अपील की और साथ ही गलत रास्ते पर चलने वाले उन कांग्रेस-जनों को चेतावनी दी, जिनमें कांग्रेस की अहिंसात्मक नीत के विरुद्ध कार्य करने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही थी।

प्रधान मंत्रियों का सम्मेलन

ऐसी स्थिति में परस्पर सहयोग की विशेष आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रधान मंत्रियों का एक सम्मेलन मई १९३८ में हुआ। सातों प्रधानमन्त्रियों तथा उनके कुछ साथियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में साधारण कृषि-नीति, श्रमिक तथा औद्योगिक पुर्ननिर्माण, शक्ति के साधनों का विकास, ग्रामसुधार, शिक्षा, राजस्व सम्बन्धी साधन, कर-व्यवस्था तथा अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध में विचार हुआ। उत्तर प्रदेश ने रचनात्मक कार्य के लिए राजस्व के नये साधनों के सम्बन्ध में और बम्बई ने जेल-सुधार के सम्बन्ध में सम्मेलन बुलाने की जिम्मेदारी ग्रहण की। प्रत्येक प्रांत ने किसी-न-किसी विषय की विशेष छानबीन करने का भार लिया। मद्रास ने मादक वस्तु निषेध, मन्दिर-प्रवेश तथा ऋण-सम्बन्धी सहायता के सम्बन्ध में, बम्बई ने मजदूरों की समस्या के विषय में, उत्तर प्रदेश तथा बिहार ने भूमि-कर तथा कृषि-समस्याओं के बारे में, आसाम ने खनिज साधनों के विषय में, उड़ीसा ने कलापूर्ण दस्तकारियों के विषय में और मध्यप्रांत ने औद्योगिक तथा खनिज साधनों के अध्ययन का दायित्व ग्रहण किया। ये तो सिर्फ सुझाव थे। मद्रास ने ज़िमींदारी समस्या, बम्बई ने मादक वस्तु निषेध और उत्तर प्रदेश ने जेल सुधार के विषय हाथ में लिये। इस प्रकार प्रधानमंत्रियों के इस सम्मेलन से औद्योगिक योजना-निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ, जिसका कुछ समय बाद श्रीगणेश भी हुआ।

केन्द्रीय सरकार की स्थिति

इस प्रकार जबकि प्रांतीय सरकारें अपने नये क्षेत्र में अप्रत्याशित विषयों द्वारा उत्पन्न होने वाले विरोध का सामना कर रही थीं, कांग्रेस के पुराने महारथी केन्द्रीय सरकार से संघर्ष कर रहे थे। केन्द्रीय सरकार भी अभी तक चंद व्यक्तियों का शासन था और वह पहले के ही समान निरंकुश थी। इसलिए उस पर जनता के मत और उसकी अपील का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। केन्द्रीय असेम्बली का बजट-अधिवेशन भारतीय सेना की ब्रिटिश शाखा के यंत्रीकरण के विरुद्ध कांग्रेस-दल के एक निन्दात्मक प्रस्ताव से आरम्भ हुआ। पांच ब्रिटिश रेजिमेंटों का २ करोड़ १५ लाख रु० की लागत से यंत्रीकरण होने को था और इस रकम में से ब्रिटिश सरकार सिर्फ अस्सी लाख रु० दे रही थी और शेष रकम भारत के मत्थे मढ़ने जा रही थी। यह नीति अनुचित थी; क्योंकि भारतीय धन से भारतीय सेना के अंग्रेज दस्तों का यंत्रीकरण किया जा रहा था और यंत्रीकरण के इस कार्यक्रम से भारतीय रेजिमेंटों को अलग रखा गया था।

२८ फरवरी को अर्थ-सदस्य सर जेम्स ग्रिग ने केन्द्रीय बजट उपस्थित किया।

इसके उपरांत बजट पर आम बहस आरम्भ हुई। आम बहस आरम्भ होने के समय विरोधी दल के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने एक वक्तव्य दिया कि कांग्रेस दल, स्वतन्त्र कांग्रेस राष्ट्रीयतावादी दल और डेमोक्रेट दल ने बजट की आम बहस में भाग न लेने का निश्चय किया है। इसलिए सर जेम्स द्वारा कस्टम्स सम्बन्धी मांग पेश करते ही विरोधी दल की तरफ से कटौती का प्रस्ताव पेश करने के स्थान पर मत लेने की मांग उपस्थित कर दी गई। मांग ४६ के विरुद्ध ६४ मतों से नामंजूर करदी गई। अर्थ-सदस्य द्वारा पेश की गई अन्य मांगों का भी यही हाल हुआ। बाद में इन नामंजूर मांगों को गवर्नर-जनरल ने अपने विशेषाधिकार द्वारा मंजूर कर दिया। असेम्बली ने इसका जवाब सम्पूर्ण अर्थ-बिल को नामंजूर करके दिया। सभा ने सिफारिशी अर्थ बिल को भी ४८ के विरुद्ध ६८ मतों-द्वारा अस्वीकार कर दिया। बजट पर आम बहस आरम्भ होते ही परिषद से कांग्रेस तथा प्रोग्रेसिव दल के सदस्य उठ कर बाहर चले गये।

मजदूर-कमेटी की बैठक

यद्यपि प्रान्तीय सरकारों को मजदूरों की समुचित व्यवस्था करने के लिए काफी अधिकार प्राप्त थे, फिर भी सभी प्रान्तों में एक-जैसी नीति का अनुसरण करने के लिए केन्द्रीय सरकार विभिन्न प्रान्तों की नीतियों का एकीकरण कर सकती थी। बम्बई सरकार ने अपने यहां मजदूरों-सम्बन्धी कानून का मसविदा बनाया था। मई १९३८ में कांग्रेस की मजदूर कमेटी की बैठक हुई, जिसमें कुछ प्रान्तों के प्रधानमन्त्रियों ने तथा अन्य प्रान्तों के प्रधानमन्त्रियों के प्रतिनिधियों न भाग लिया। बैठक में अनुरोध किया गया कि मजदूरों की अवस्था तथा मजदूर-सभाओं के झगड़ों की जाँच-पड़ताल के लिए जो कमेटियां नियुक्त की जायं उनमें सार्वजनिक जीवन और राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियों को ही रखा जाय। यह बड़ी खुशी की बात थी कि बम्बई कपड़ा-उद्योग-जांच कमेटी की सिफारिशें बम्बई की सरकार ने स्वीकार कर लीं और बम्बई प्रान्त के मिल-मालिकों ने उन्हें अमल में लाना मंजूर कर लिया। बम्बई में कानून बनने का कार्य जारी था, जिसमें इस बात का भी प्रबन्ध था कि बीमारी के दिनों में वेतन के साथ छुट्टी दी जाय। बड़ोदा सरकार ने १ अगस्त १९३८ से रियासत में ९ घंटे का दिन घोषित करके दूसरी रियासतों का पथ-प्रदर्शन किया। बम्बई सरकार ने अपने कारखाना-कानून को उन कारखानों पर लागू करने का निश्चय किया जिनमें १० या इससे अधिक व्यक्ति काम करते थे।

उद्योग-मंत्रियों का सम्मेलन

अगस्त १९३७ में ही जबकि कांग्रेस को प्रांतों में मंत्रिमंडल स्थापित किये

महीना-भर भी नहीं हुआ था, कार्यसमिति अखिल-भारतीय औद्योगिक योजना के निर्माण के लिए विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त करने का विचार कर चुकी थी। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए जुलाई १९३८ में कांग्रेस के अध्यक्ष को उद्योग-मंत्रियों का एक सम्मेलन बुलाने तथा विभिन्न प्रांतों के मौजूदा उद्योगों तथा नये उद्योगों की आवश्यकता के संबंध में रिपोर्ट प्राप्त करने का अधिकार दिया गया। यह सम्मेलन दिल्ली में २ और ३ अक्टूबर १९३८ को हुआ। इसका उद्देश्य कुछ ऐसी समस्याओं पर विचार करना था, जिनका हल राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण तथा सामाजिक आयोजन की किसी योजना के लिए आवश्यक था। इन समस्याओं के हल के लिए यह जरूरी था कि हम अपना लक्ष्य निर्धारित करें और विस्तृत जांच-पड़तालों के बाद आवश्यक सामग्री का संकलन करें। सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए सुभाष बाबू ने स्वाधीन भारत में राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण की समस्याओं पर प्रकाश डाला और बतलाया कि कृषि की उन्नति वैज्ञानिक ढंग पर कितनी ही क्यों न की जाय, निर्धनता और बेकारी को दूर करने तथा उत्तम वस्त्र, उत्तम मकान, उत्तम शिक्षा और अधिक फुरसत पाने का एकमात्र उपाय औद्योगीकरण ही हो सकता है। यह हमारे यहाँ ब्रिटेन की तरह क्रमिक न होकर रूस की तरह तुरंत और बल-पूर्वक होना चाहिए। उन्होंने कहा कि घरेलू उद्योग और बड़े उद्योगों में कोई विरोध नहीं है, केवल राष्ट्र को एक ओर यह फैसला कर लेना चाहिए कि औद्योगिक क्रान्ति आवश्यक है और दूसरी तरफ यह कि किस उद्योग का विकास घरेलू आधार पर किया जाय और किसका बड़े आधार पर। इसके बाद उन्होंने राष्ट्रीय-योजना निर्माण के कुछ सिद्धान्त बनाये और औद्योगीकरण की समस्याओं के सम्बन्ध में सलाह देने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति की स्थापना की। योजना-समिति में जिन लोगों को रखा गया उनके नामों की घोषणा की गई। समिति के अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू नियुक्त किये गये। इसके अन्तर्गत २७ उप-समितियाँ थीं और इसने १९३८-३९ से नवम्बर १९४० तक काम किया।

रियासतों की समस्याएँ

अखिल भारतीय क्षेत्र में कांग्रेस की दिलचस्पी जिन समस्याओं में थी उनमें रियासतों की समस्या ने सबसे अधिक महत्व धारण कर लिया था। प्रान्तों में स्वायत्त शासन की प्रगति होने से रियासतों में केवल जाग्रति ही नहीं हुई, बल्कि ऐसी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हो गईं, जिन पर गांधीजी और कार्यसमिति को विचार करना पड़ा। दक्षिण में ट्रावनकोर और मैसूर का तत्कालीन इतिहास में मुख्य स्थान रहा। ट्रावनकोर-कांग्रेस के उद्देश्य के प्रश्न के बारे में रियासती सरकार और राज्य की कांग्रेस के बीच उग्र विवाद चल रहा था। हैदराबाद राज्य ने जरूरत से कहीं ज्यादा विशेषाधिकार-कानून जारी कर दिए थे। लेकिन जिस

रियासत ने जनता का ध्यान सबसे अधिक आकृष्ट किया था और जो उसकी नजर में सबसे अधिक गिरी वह थी मैसूर। वहाँ 'स्वाधीनता दिवस' के सम्बन्ध में मौखिक चेतावनियों और विनाशात्मक कार्यों के लिए व्यक्तियों से जमानतें मांगी जा रही थीं और उन पर प्रतिबंध लगाये जा रहे थे। १९३८ में विदुरस्वाथम् के गोलीकांड से यह नीति अपनी चरम सीमा को पहुँच गई। इसी बीच एक जांच समिति की नियुक्ति हुई। समिति ने निर्णय दिया कि गोली भीड़ की हिंसा से बचने के लिए आत्म-रक्षा के उद्देश्य से चलाई गई थी। इसी समय गांधीजी ने कार्यसमिति के दो सदस्यों, सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा आचार्य कृपलानी, को भेजा। वे मैसूर कांग्रेस के नेताओं तथा दीवान सर मिरजा इस्माइल से मिले। इस वार्ता के परिणामस्वरूप एक समझौते का मार्ग निकाला गया। १७ मई के समझौते में वे सभी मांगें स्वीकार कर ली गईं, जिन्हें राज्य-कांग्रेस ने अपने शिवपुर वाले अधिवेशन में उपस्थित किया था यह समझौता जेल के कैदियों तथा राज्य के अधिकारियों में हुई वार्ता के कारण हुआ था। सरदार पटेल और आचार्य कृपलानी ने राज्य और मैसूर कांग्रेस के बीच जो यह समझौता कराया था उसे कार्य समिति ने भी स्वीकार कर लिया। मैसूर-सरकार ने इस सम्बन्ध में एक विज्ञप्ति प्रकाशित की और जून १९३८ में कार्यसमिति ने महाराज और उन सलाहकारों को समझौते की शर्तें उत्साह से पूरी करने के लिए बधाई भी दी।

अन्तर्राष्ट्रीय सेवाएँ

यद्यपि भारत एक पराधीन देश था, फिर भी कांग्रेस उसकी विशेष अंतरराष्ट्रीय स्थिति पर ध्यान रखती थी। पिछले चार वर्ष से चीन भीतरी अशांति तथा बाहरी आक्रमण की आशंका से गुजर रहा था। इसलिए चीन की राष्ट्रीय सरकार के लिए एक मोटर, एम्बूलेन्स-दल, आवश्यक डाक्टर तथा नर्स आदि के सहित भेजने का निश्चय किया गया। भारतीय डाक्टरों का एक दल डा० अटल की देखरेख में तैयार किया गया। दो वर्ष तक परिश्रम और लगन से काम करने के बाद डा० अटल अपने साथियों के हाथ में काम छोड़कर भारत लौट आये। उनके कार्य की सभी जगह प्रशंसा हुई। दल के एक सदस्य डा० कोटनीस का स्वर्गवास भी हुआ। जंजीबार की परिस्थिति में भी सुधार हुआ। भारत में जंजीबार की लौंग का जो बहिष्कार जून १९३८ के मध्य तक किया था उसका प्रभाव पड़ा और जंजीबार सरकार तथा प्रवासी भारतवासियों में समझौता हो गया। १९३८ के पतझड़ में युद्ध के बादल घिरने लगे। ब्रिटेन और जर्मनी में उन दिनों जो कुछ हो रहा था। उसकी सूचना कार्यसमिति को प्रति सप्ताह पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिल रही थी। नेहरूजी २ जून को भारत से यूरोप के लिए रवाना हुए थे और मसावा में भारतीय व्यापारियों तथा सिकंदरिया में

नहसपाशा तथा दूसरे वफ़द-नेताओं से मिलने के बाद सीधे बार्सीलोना (स्पेन) चले गये थे। उन दिनों आकाश से जो निर्दयतापूर्ण बम-वर्षा हो रही थी, उसे उन्होंने अपनी आँखों से देखा था। इसके उपरान्त वह पेरिस गये और वहाँ उन्होंने रेडियो पर भाषण करते हुए भारतीय स्वाधीनता के आंदोलन के आदर्शों पर प्रकाश डाला और फ्रांसीसियों से सहानुभूति की मांग की। इंगलैंड में भी उनका कार्यक्रम विविध प्रकार का था। पेरिस में जुलाई १९३८ को खुले नगरों में बम-बारी के विरुद्ध हुए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पंडित नेहरू ने एक प्रभावशाली भाषण दिया। सितम्बर १९३८ में कार्यसमिति की बैठक दिल्ली में हुई और उसमें युद्ध-संबन्धी परिस्थिति पर विचार हुआ।

मुसलिम लीग का रुख

पिछले कुछ समय से साम्प्रदायिक मनमुटाव बढ़ रहा था, जिसकी चर्चा भी कभी-कभी सुनने में आती थी। १९३८ में जवाहरलाल और जिन्ना के बीच पत्र-व्यवहार हुआ। यह पत्र-व्यवहार बहुत ही उग्र रहा और उसका परिणाम भी कुछ न निकला। एक असाधारण तथा दुखद घटना यह हुई कि राष्ट्रपति की हैसियत से जब सुभाष बाबू चटगांव डिवीजन गये तब मुसलिम लीगियों की एक भीड़ ने शिष्टाचार और इंसानियत को ताक पर रखकर उनके जुलूस पर पत्थर फेंके। सौभाग्यवश राष्ट्रपति तथा जुलूस के १४ आदमियों को साधारण चोटें लगीं। श्री जिन्ना ने तो जो स्थिति ग्रहण की थी उससे एक इंच भी हटना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। कांग्रेस की कार्य-समिति ने अपनी दिसम्बर वाली बैठक में श्री जिन्ना के ९ अक्टूबर १९३८ वाले पत्र के सम्बन्ध में निश्चय किया कि उससे साम्प्रदायिक समस्या के निबटारे में कुछ भी मदद नहीं मिल सकती। इसलिए राष्ट्रपति ने १६ दिसम्बर १९३८ के दिन श्री जिन्ना को सूचित कर दिया कि कार्य-समिति मुसलिम लीग-कौंसिल से वार्त्ता के आधार पर सहमत नहीं हो सकती। इसलिए इस दिशा में और कुछ नहीं किया जा सका।

राजकोट की समस्या

सन् १९३९ का आरंभ होते ही देश के सामने दो बड़ी-बड़ी समस्याएँ आईं: एक तो राजकोट की समस्या और दूसरी सभापति का चुनाव। काठियावाड़ की ३६० रियासतों में से राजकोट कोई बड़ी रियासत नहीं थी, परन्तु वह एक प्रकार से पश्चिमी भारत की रियासतों की राजधानी थी, क्योंकि एजेंट-जनरल वहीं रहता था। राजकोट का सम्बन्ध गांधीजी के प्रारम्भिक जीवन से भी था। गांधीजी के पिता इसी रियासत के दीवान रह चुके थे। राजकोट के तत्कालीन ठाकुर साहब की सगाई होने के अवसर पर श्रीमती कस्तूरबा

गांधी जी ने उनके माथे पर कुंकुम का अभिषेक किया था। इस पृष्टभूमि को देखते हुए यह विधाता का क्रूर उपहास था कि राजकोट-नरेश को तूफान का केंद्र बन कर संसार के सबसे महान पुरुष से टक्कर लेनी पड़ी। १९३८ में रियासतो प्रजा का संगठन कुछ प्रमुख रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए प्रयत्न कर रहा था। दूसरी रियासतों की तरह राजकोट में भी इस प्रयत्न के दमन की चेष्टा की गई। सत्याग्रह का जोरदार आन्दोलन छिड़ा और इसका उतने ही जोर से दीवान वीरवाला-द्वारा दमन किया गया।

रियासत के अधिकारियों ने राजकोट प्रजापरिषद को गैरकानूनी घोषित कर दिया। इस आदेश के निकाले जाने पर कार्य-समिति का ध्यान इस आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुआ। समिति ने जहां एक ओर उत्तरदायी शासन की प्राप्ति के लिये किये जानेवाले इस आन्दोलन का स्वागत किया वहां दूसरी ओर उसने रियासत के बाहर के लोगों को आन्दोलन में भाग न लेने का परामर्श दिया। ऐसी स्थिति में राजकोट के ठाकुर साहब ने सरदार वल्लभभाई पटेल को बम्बई से मुलाकात के लिए बुलाया। २६ दिसम्बर को सरदार पटेल और ठाकुर साहब के बीच समझौते की घोषणा हुई, जिससे राजकोट की प्रजा का संघर्ष समाप्त हो गया। यह सिर्फ राजकोट की जनता की ही नहीं, बल्कि साधारण रूप से रियासती प्रजा की विजय थी। ठाकुर साहब तथा सरदार पटेल में ८ घंटे के विवाद के बाद जो समझौता हुआ उसके अनुसार ठाकुर साहब ने यह बचन दिया कि हमने दस ऐसे व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त करने का निश्चय किया है, जिसमें तीन रियासत के अफसर और सात प्रजा-जन होंगे। जनवरी, १९३९ के अंत तक यह समिति उचित जाच-पड़ताल के बाद शासन सुधार की एक ऐसी योजना तैयार करेगी, जिसमें प्रजा को अधिक-से-अधिक व्यापक अधिकार दिये जायंगे, किन्तु इन अधिकारों का सर्वोच्च सत्ता के प्रति हमारे उत्तरदायित्व पर या नरेश के रूप में हमारे विशेष अधिकार पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। हमारी यह भी इच्छा है कि अब से हमारे निजी खर्च की रकम नरेन्द्र-मंडल की गश्ती विज्ञप्ति के अनुसार निर्धारित की जाया करे। हम अपनी प्रजा को यह भी आश्वासन देना चाहते हैं कि उपर्युक्त समिति जो भी योजना उपस्थित करेगी, उसे विचार करके कार्यान्वित करने का हमने इरादा कर लिया है। यह मान लिया गया है कि शान्ति तथा सद्भावना स्थापित करने के उद्देश्य से प्रत्येक प्रकार का अवैध आन्दोलन बंद कर दिया जायगा और हम आम माफी करके सब राजनैतिक कैदियों को रिहा कर देंगे, सब जुरमाने वापस कर देंगे और दमनकारी कानूनों को वापस ले लेंगे।

समझौता २६ दिसम्बर १९३८ को हुआ था। उसकी शर्तों के अनुसार जब सरदार ने सात नाम भेजे तब रेजिडेंट और सपरिषद ठाकुर साहब में सलाह-

मशविरा हुआ। रेजिडेंट ने सरदार तथा कांग्रेस के विरुद्ध कुछ बातें कहीं। सरदार की सूची पर इस मामूली बात को लेकर आपत्ति उठाई गई कि ठाकुर साहब को सूची मिलने से पहले ही नाम प्रकट कर दिये गये। इसके अतिरिक्त यह आपत्ति भी उठाई गई कि ठाकुर साहब अपनी प्रजा के महत्त्वपूर्ण वर्गों, जैसे भय्यत, मुसलिम परिषद तथा दलित जातियों की उपेक्षा नहीं कर सकते। इसलिए ठाकुर साहब ने सात नामों में से केवल चार ही मंजूर किये और शेष तीन नामों को नामंजूर कर दिया। सरदार ने जिन नामों की सिफारिश की थी वे ठाकुर साहब को मान्य न थे। इस प्रकार समझौता भंग हो गया। इस विश्वासघात का सामना करने के लिए महात्माजी ने अनशन किया। अनशन अनिश्चित काल के लिए था। वाइसराय के हस्तक्षेप पर सर मारिस ग्वायर को निर्णय के लिए नियुक्त किया गया। निर्णय गांधीजी के पक्ष में था, किंतु गांधीजी ने अपने अनशन में कुछ दबाव का अनुभव किया और फिर उन्होंने निर्णय का लाभ न उठाने का निश्चय किया। यह अनशन त्रिपुरी-अधिवेशन के दिनों में हुआ और इसी बीच समाप्त हो गया।

सभापति का चुनाव

साधारणतया राष्ट्रपति के चुनाव में कोई हलचल नहीं होती थी। अक्टूबर १९३४ में बम्बई वाले अधिवेशन में नया विधान स्वीकार किये जाने से पूर्व प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटियाँ नये वर्ष के लिए राष्ट्रपति के नामों के प्रस्ताव करती थीं और फिर वही इनमें से एक का चुनाव कर लेती थीं। परन्तु त्रिपुरी अधिवेशन के लिए सभापतित्व के सवाल को लेकर वास्तविक विवाद उठ खड़ा हुआ। सुभाष बाबू कांग्रेस के चुप रहने वाले अध्यक्षों में से थे। उनकी तंदुरुस्ती लगातार खराब रही थी और शरीर थक चुका था। फिर भी उनके मस्तिष्क में थकान न थी और शक्ति भी अक्षुण्ण बनी हुई थी। ऐसी स्थिति में सितम्बर १९३८ के अन्त में जाहिर हुआ कि सुभाष बाबू त्रिपुरी में भी अध्यक्ष रहना चाहते हैं। राष्ट्र की मांग और अभी तक ब्रिटेन द्वारा उसकी पूर्ति न होने के कारण आवश्यक यह था कि राष्ट्रपति का पद किसी मुसलमान को दिया जाय। देश को मौलाना अबुल कलाम आजाद के रूप में ऐसा मुसलमान मिल भी सकता था। वह एक बार १९२३ में कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके थे, किन्तु वह विशेष अधिवेशन था। गांधीजी का विचार था कि त्रिपुरी में कांग्रेस के अध्यक्ष मौ० अबुल कलाम आजाद के होने से साम्प्रदायिक समस्या के हल करने में मदद मिलेगी। यही कारण था कि उन्होंने सुभाष बाबू को राष्ट्रपति के पद के लिए फिर से खड़े होने को प्रोत्साहन नहीं दिया। इसके बावजूद मित्रों ने सुभाष बाबू के नाम का प्रस्ताव कर दिया और सुभाष बाबू ने खड़ा होना भी स्वीकार कर लिया। मौलाना की उम्मीदवारी की भी नियमित रूप से घोषणा की गई और जनवरी १९३८ में कार्यसमिति की बार-

दोली वाली बैठक में यह प्राय: निश्चित ही था कि मौलाना को चुन लिया जायगा।

इन पंक्तियों के लेखक को बार्दोली से रवाना होते समय गांधीजी से सूचना मिली कि यदि मौलाना ने स्वीकार न किया तो वह (गांधीजी) यह कांटों का ताज उस (लेखक) के सिर पर रखना चाहते हैं। मौलाना अपनी रजामंदी दे चुके थे और बम्बई के लिए रवाना हो चुके थे। अगले दिन बम्बई में मौलाना ने अपनी राय बदल दी और अपनी उम्मेदवारी वापस लेने का फैसला किया। बाद में मौलाना के कहने पर इन पंक्तियों के लेखक का नाम सामने आया और इस तरह लेखक और सुभाष बाबू दो ही प्रतियोगिता के लिए रह गये। इस प्रकार मौलाना के हट जाने पर सुभाष बाबू को अपने प्रतियोगी के विरुद्ध लगभग ९५ मतों से सफलता प्राप्त हुई।

चुनाव का प्रभाव

चुनाव का परिणाम प्रकट होते ही गांधीजी ने घोषणा कर दी कि सुभाष के 'प्रतिस्पर्धी' की पराजय को वह अपनी पराजय मानते हैं। इससे देश में हलचल मच गई। जिन लोगों ने सुभाष बाबू के पक्ष में मत दिया था वे गांधीजी और उनके नेतृत्व में विश्वास प्रकट करने लगे। इससे एक परेशान करने वाली परिस्थिति उत्पन्न हो गई। राष्ट्रपति के पद के लिए पहले २९ जनवरी १९३९ को मत लिया गया था, परन्तु एक सप्ताह के भीतर ही स्थिति में परिवर्तन हो गया इससे नये अध्यक्ष के लिए बड़ी विकट समस्या उत्पन्न हो गई। यद्यपि अध्यक्ष का चुनाव डेलीगटों के बहुमत से हुआ था, तो भी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में उसका अल्पमत था। अब प्रश्न यह था कि वह अपनी कार्यसमिति कैसे बनाए? सुभाष बाबू का स्वास्थ्य पहले से ही खराब था और इन चिन्ताओं का असर भी उनके स्वास्थ्य पर पड़ा। फलत: ९ फरवरी १९३९ को खुले अधिवेशन के प्रस्तावों का मसविदा बनाने के लिए वर्धा में कार्य-समिति की जो बैठक हुई उसमें वह न जा सके। कार्यसमिति के १३ सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया, जिससे सिर्फ अध्यक्ष और श्रीशरत्‌चन्द्र बोस ही कार्य-समिति में रह गये। सुभाष बाबू के स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ और उनकी बीमारी खुले अधिवेशन में भी चलती रही। अधिवेशन के पांच या छ: दिन उन्हें तापमान रहा और अधिवेशन के दूसरे दिन तो वह १०४° व १०५° डिग्री तक चढ़ गया। बीमारी के कारण तत्कालीन राजनीति में और भी पेचीदगी आ गई।

त्रिपुरी-कांग्रेस : १९३९

त्रिपुरी-अधिवेशन की कार्यवाही अध्यक्ष के चुनाव तथा गांधीजी के अनशन की परिस्थितियों के कारण फीकी पड़ गई थी। वातावरण इन दो मुख्य घटनाओं की

प्रतिक्रियाओं से व्याप्त था। तीसरी घटना स्वयं मनोनीत अध्यक्ष की बीमारी थी, जिसके कारण वह शानदार जलूस में भाग न ले सके। जलूस में अध्यक्ष को ५२ हाथियों के रथ में बैठाकर निकालने का निश्चय किया गया था और इस जलूस को रेलवे स्टेशन से प्रकृति की गोद में बसे त्रिपुरी के विष्णुदत्त नगर तक निकालने की व्यवस्था की गई थी। नगर नदी के किनारे बनाया गया था और वह गांवों तथा जंगलों की पृष्ठ-भूमि में बड़ा ही मनोहर लगता था। इस मनोहर दृश्यावली के बीच जलूस अध्यक्ष के चित्र के साथ निकाला गया। इसके बाद प्रतिनिधियों ने मौ० शौकत-अली, सर मुहम्मद इकबाल, बेगम अंसारी, मद्रास के मंत्री श्री के० रामुनी मेनन, जी० एस० कापड़िया, बी० राजा राउ, डा० राजबली पटेल और श्री के० नागेश्वर राव पंतलू की दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। अधिवेशन आरम्भ होने से पहले समस्याओं का स्पष्टीकरण होना था। अ० भा० कांग्रेस कमेटी की जिस प्रारम्भिक बैठक में प्रबन्ध तथा नियम सम्बन्धी कार्य होते थे उसी में इस बार ताकत की आजमाइश हुई। पिछले महीने कार्यसमिति की जो बैठक वर्धा में हुई थी उसमें प्रधानमन्त्री की वार्षिक रिपोर्ट को मनोनीत अध्यक्ष की अनुपस्थिति के कारण स्वीकार नहीं किया गया था। इसीलिये अ० भा० कांग्रेस कमेटी में जब प्रधानमंत्री की रिपोर्ट उपस्थित की गई तब यह आपत्ति उठाई गई कि कार्य-समिति की स्वीकृति के बिना अ० भा० कांग्रेस कमेटी उस पर विचार नहीं कर सकती। अध्यक्ष ने फैसला दिया कि विधान में यह कहीं नहीं कहा गया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने उपस्थित होने से पूर्व प्रधानमन्त्री की रिपोर्ट पर कार्य-समिति की मंजूरी लाज़िमी है। इसलिए कमेटी ने सर्वसम्मति से रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। यह पहली कशमकश थी। दूसरी कशमकश तब उत्पन्न हुई जब श्री गोविन्दवल्लभ पंत ने अ० भा० कांग्रेस कमेटी के १६० सदस्यों की ओर से एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें कहा गया कि चूंकि आगामी वर्ष में विकट परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है और चूंकि ऐसे संकट के समय केवल महात्मा गांधी ही कांग्रेस तथा देश को विजय-पथ पर ले जा सकते हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि कार्यसमिति को उनका पूर्ण विश्वास प्राप्त हो और इसीलिए कमेटी अध्यक्ष से अनुरोध करती है कि वह कार्यसमिति का चुनाव गांधीजी की इच्छा के अनुसार करें। प्रश्न यह था कि इस प्रस्ताव को स्वीकार किया जाय या नहीं। एक वर्ग ने कहा कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी इस प्रकार के प्रस्ताव पर विचार ही नहीं कर सकती। अध्यक्ष ने भी यही निर्णय दिया। परन्तु उन्होंने विषय-समिति में इस प्रश्न को उठाने की अनुमति देना स्वीकार कर लिया।

अध्यक्ष का भाषण कांग्रेस के इतिहास में सब से छोटा था, किन्तु उसमें सुभाष बाबू ने राष्ट्र के आगे अपना दिल खोल कर रख दिया था। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय

परिस्थिति, म्यूनिक का समझौता, मिस्री प्रतिनिधिमंडल, गांधीजी का अनशन, कार्य-समिति के सदस्यों का इस्तीफा और रियासतों की हलचल—सभी समस्याओं का जिक्र किया था। घरेलू राजनीति के सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि उसमें निराशावाद के लिए स्थान न था, बल्कि इससे विपरीत परिस्थिति राष्ट्र के लाभ में ही थी जिससे लोग सफलता की आशाएं कर सकते थे। उनका कहना था कि हमें ब्रिटिश सरकार के सामने अपनी मांग एक अल्टीमेटम के रूप में रखनी चाहिए और उनका उत्तर पाने के लिए समय की अवधि निर्धारित कर देनी चाहिये और यदि इस निर्धारित अवधि के भीतर संतोषजनक उत्तर न मिले तो हमें अपनी राष्ट्रीय मांग स्वीकार कराने के लिये सामूहिक सत्याग्रह जैसी कार्रवाई करनी चाहिए; क्योंकि सुभाष बाबू का विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार अखिल भारतीय सत्याग्रह जैसे आंदोलन का अधिक समय तक सामना नहीं कर सकेगी। उनके विचार से निष्क्रिय दृष्टिकोण रख कर संघ योजना लादे जाने की प्रतीक्षा का समय नहीं था, बल्कि वह संघ-योजना लादे जाने से पूर्व कार्रवाई आरम्भ कर देने के पक्ष में थे।

राष्ट्रीय मांग के व्यापक प्रश्न पर त्रिपुरी में हरिपुरा से अधिक और कुछ न कहा गया। उस समय एक तरफ राष्ट्रीय संघर्ष के आसार दिखाई दे रहे थे तो दूसरी तरफ अंतर्राष्ट्रीय युद्ध के बादल घिरते आ रहे थे। भारत को इन दोनों ही परिस्थितियों का सामना करना था और इसीलिए त्रिपुरी में एकता की वृद्धि, फूट की शक्तियों के निराकरण, प्रांतीय कार्यों के एकीकरण तथा राष्ट्रीय संस्था की शक्ति बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। सब कुछ ठीक था। मार्ग स्पष्ट था और मंजिल दिखाई देने लगी थी। उस तक पहुंचने की बाधाएं भीतरी और बाहरी दोनों ही प्रकार की थीं। यदि हमें बाहरी बाधाओं पर विजय पाना था तो भीतरी बाधाओं को तो मार्ग से बिलकुल हटा देना ही जरूरी था। जो अव्यवस्था दिखाई दे रही थी उसमें से कांग्रेस व्यवस्था को कैसे खोज निकाले? इस राष्ट्र की डगमगाती नैया का केवट कौन हो? गांधीजी राजकोट में थे और हाल ही में अनिश्चित काल के लिए आरम्भ किये गये एक अनशन को समाप्त कर चुके थे। उनका शरीर त्रिपुरी में नहीं था, किन्तु आत्मा वहीं मौजूद थी। सवाल सिर्फ यही था कि राष्ट्र उन्हें अपना कर्णधार बनाता है या नहीं? त्रिपुरी में प्रतिनिधियों को इसी प्रश्न का फैसला करना था।

अधिवेशन भर सुभाष बाबू बीमार रहे और इधर काफी समय से इस बीमारी में कोई सुधार होता हुआ नहीं दिखाई दे रहा था, यहां तक कि वह खुले अधिवेशन तक में नहीं आ पाये थे। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तथा विषय-समिति की बैठक में वह स्ट्रेचर पर लाये गये थे। उनके स्ट्रेचर पर आने-जाने से दया का संचार होता था, लेकिन जहां तक सिद्धान्तों और नीतियों का सवाल था, दोनों ही पक्ष अडिग थे। प्रतिनिधियों के एक भाग में गुल-गपाड़ा मच रहा था। इसके कारण

लगभग एक घण्टे तक कार्यवाही न हो सकी। जब शरत बाबू मंच पर आये और उन्होंने अनुरोध किया तब शोरगुल कम हुआ। यह उपद्रव पं० गोविन्द वल्लभ पंत के इस सुझाव पर हुआ कि खुले अधिवेशन में इस अप्रिय प्रसंग से बचने के लिए प्रस्ताव को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सिपुर्द कर दिया जाय। परन्तु इस सुझाव का जोरदार विरोध किया गया। सुझाव वापस ले लिया गया और अधिवेशन स्थगित कर दिया गया। अगले दिन दर्शकों को बाहर ही रखा गया और विषय-समिति के पंडाल में, प्रतिनिधि एकत्र हुए। प्रतिनिधियों के अलावा पंडाल में पत्रकार तथा स्वयंसेवक भी थे। इस बार प्रबन्ध उत्तम हुआ और खुला अधिवेशन सुव्यवस्थित रूप से हुआ। बाद में जब विषय समिति के पंडाल में खुला अधिवेशन आरम्भ होने जा रहा था, बंगाल के कुछ मित्रों ने पहले वाले सुझाव को मानना स्वीकार किया; किन्तु फिर शोरगुल होने से वह आगे न बढ़ सका। खैर, खुले अधिवेशन की कार्रवाई आरम्भ हुई और प्रस्ताव, बिना किसी उल्लेखनीय घटना के पास हो गया।

सुभाष बाबू का त्याग-पत्र

कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त हो गया। त्रिपुरी में अध्यक्ष की विदाई एक गम्भीर घटना थी। इस अवसर पर परिवार के कुछ लोग, एक या दो डाक्टर या कार्यसमिति के दो सदस्य उपस्थित थे। बड़ी कठिनाई से सुभाष बाबू को अम्बुलेंस गाड़ी की गद्दी पर रखा गया, जिसमें उन्हें लम्बी यात्रा करनी थी। वह सीधे झरिया के निकट किसी स्थान को गये और वहां स्वास्थ्य सुधार होने में लगभग एक महीना लग गया। प्रायः नित्य ही देश में कार्यसमिति के सदस्यों के चुनाव और इस सम्बन्ध में घोषणा की प्रतीक्षा की जाती थी। परन्तु उन्होंने यह घोषणा नहीं की। अन्त में परिस्थिति का सामना करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक बुलाई गई। कांग्रेस के कार्य में गतिरोध उत्पन्न हो गया था। कार्य समिति के बिना कांग्रेस की वही अवस्था थी, जो हाथ-पैर के बिना शरीर की होती है। सुभाष बाबू के रुख से पैदा हुई स्थिति का मुकाबला अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ही कर सकती थी, जिसकी बैठक कलकत्ता में अप्रैल १९३९ में हुई। परन्तु इस बैठक से पूर्व कलकत्ता में सुभाष बाबू ने इस्तीफा दे दिया। ऐसी स्थिति में उस वर्ष के लिए नये राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू निर्वाचित हुए।

सुभाष बाबू का विरोधी रुख

पाठकों को स्मरण होगा कि जलपाईगिरि (बंगाल) के जिला-सम्मेलन में ब्रिटिश सरकार को छः महीने का अल्टीमेटम देने और फिर से सत्याग्रह शुरू करने का गुर निकाला गया था। बंगाल के लोग ब्रिटिश सरकार से संघर्ष शीघ्र

ही छेड़ने के पक्ष में थे। किसानों को रियायतें देने के बारे में भी वे सत्याग्रह की धमकी दे रहे थे। बंगाल में कांग्रेसी मंत्रिमंडल था। ऐसी स्थिति में यदि सत्याग्रह चलाया जाता तो वहां के मंत्रियों को सत्याग्रह का सामना करना पड़ता। इसके अतिरिक्त किसी भी उद्देश्य के लिए छेड़ा गया सत्याग्रह सम्बन्धित प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के निर्देशन तथा नियंत्रण में ही चलता। इन बातों की उपेक्षा करके सुभाष बाबू ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया। इन्हीं दिनों कांग्रेस के दो दलों में मनमुटाव बढ़ने का एक और भी कारण उत्पन्न हो गया। यह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा अपनी उसी बैठक में कांग्रेस पार्टियों तथा प्रान्तीय कमेटियों को दी हुई सलाह थी। प्रान्तीय कमेटियों को यह आदेश दिया गया था कि उन्हें शासन-सम्बन्धी मामलों में हस्तक्षेप न करना चाहिए। यदि नीति के सम्बन्ध में मन्त्रिमंडल या प्रान्तीय कमेटी में कोई मतभेद उठे तो उसे पार्लामेंटरी बोर्ड के सुपुर्द करना चाहिए और इस सम्बन्ध में सार्वजनिक रूप से कोई बहस न होनी चाहिए। इस नियम के विरोधियों ने जनता के अधिकारों पर कुठाराघात समझा और कहा कि इससे तो प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियां मंत्रियों तथा धारासभाओं की पार्टियों के अधीन हो गईं। विभिन्न स्थानों की मातहत कमेटियों ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के निश्चयों के औचित्य पर संदेह प्रकट करते हुए प्रस्ताव पास किये और उनकी निन्दा के लिए सभाएं बुलाईं। उचित तो यह था कि उच्च कमेटी के पास सुझाव भेजा जाता या कोई अनुरोध किया जाता, किन्तु किया यह गया कि सुभाष बाबू और उनके अनुयायियों ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के उपर्युक्त निर्णयों के बारे में ९ जुलाई को भारत में विरोध-दिवस मनाया। इन दिनों गांधीजी सीमाप्रान्त गये हुए थे और जवाहरलालजी लंका जा रहे थे। फिर भी कार्यसमिति की बैठक तुरन्त बुलाना आवश्यक समझा गया। अगस्त १९३९ में वर्धा में उसकी बैठक हुई। सुभाष बाबू से स्पष्टीकरण करने को कहा गया, क्योंकि उन्होंने इस प्रदर्शन का आयोजन किया था।

कार्य-समिति का निश्चय

सुभाष बाबू की लम्बी सफाई पर कार्यसमिति ने उत्सुकतापूर्वक विचार किया और अन्त में खेद और अनिच्छा के साथ इस परिणाम पर पहुंची कि राष्ट्रपति ने जो मुख्य बात कही थी, उसे सुभाष बाबू ने अच्छी तरह नहीं समझा। कार्यसमिति का विचार यह था कि "भूतपूर्व अध्यक्ष की हैसियत से सुभाष बाबू को अनुभव करना चाहिए था कि अध्यक्ष-द्वारा उन्हें जो आवश्यक आदेश दिये गये थे, राष्ट्र के सेवक के रूप में उन्हें पालन करना चाहिए था, चाहे अध्यक्ष के निर्णय से उनका निजी मतभेद ही क्यों न रहा हो। यदि सुभाष बाबू को अध्यक्ष के निर्णय पर आपत्ति थी तो वह यह आपत्ति कार्यसमिति या अखिल भारतीय कांग्रेस

कमेटी के सामने उपस्थित कर सकते थे, किन्तु जब तक अध्यक्ष के आदेश बने हुए थे तब तक सुभाष बाबू को उन्हें मानना चाहिए था। कांग्रेस को संसार की सब से शक्तिशाली साम्राज्यवादी ताकत से टक्कर लेनी है और ऐसे समय में कार्यसमिति सुभाष बाबू का यह तर्क मानने में असमर्थ है कि प्रत्येक सदस्य को कांग्रेस के विधान का मनमाना अर्थ लगाने की स्वतंत्रता है, क्योंकि यदि इस प्रकार की स्वतंत्रता दी गई तो कांग्रेस में अराजकता फैल जायगी और थोड़े समय में उसका खात्मा हो जायगा। इसीलिए सुभाष बाबू को बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पद के लिए तथा अगस्त, १९३९ से तीन वर्ष के लिए किसी भी निर्वाचित कांग्रेस कमेटी में चुने जाने के अयोग्य ठहरा दिया गया। आशा प्रकट की गई कि श्री सुभाषचन्द्र बोस अपनी गलती महसूस कर के अनुशासन की कार्रवाई स्वीकार करेंगे। परन्तु सुभाष बाबू ने इसके बाद दक्षिण भारत का दौरा किया। इस दौरे में जनता की भारी भीड़ के स्वागत से वह इस भ्रम में पड़ गये कि सब लोग उन्हीं के अनुयायी हैं और सब-के-सब उस अग्रगामी दल (फारवर्ड ब्लाक) में सम्मिलित हो जायंगे, जिसकी स्थापना उन्होंने इस्तीफा देने के बाद की थी।

नेहरूजी की लंका-यात्रा

लंका के कुछ कानूनों के कारण प्रवासी भारतीयों के लिए चिन्तनीय परिस्थिति पैदा हो गई थी। दो मैत्रीपूर्ण पड़ोसियों के बीच अनावश्यक झगड़े को रोकने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने पं० जवाहरलाल नेहरू को लंका जाने और सम्भव हो तो शान्तिपूर्ण समझौता कराने के लिए नियुक्त किया। जवाहरलाल नेहरू १६ जुलाई को वायुयान द्वारा कोलम्बो पहुंचे। जनता ने, जिसमें सिंहल तथा भारतीय दोनों ही थे, उनका शानदार स्वागत किया। लंका की राज-परिषद के नेता सर बेरन जयतिलक के क़हने पर एक विशेष स्वागत समिति बनाई गई, जिसका आतिथ्य पंडितजी ने स्वीकार किया।

लंका में उनका बड़ा व्यस्त कार्यक्रम रहा। वह मंत्रियों, सीलोन इंडियन कांग्रेस और सीलोन सेंट्रल इंडियन असोसियेशन के प्रतिनिधियों तथा अन्य व्यक्तियों से मिले। उन्होंने कई सार्वजनिक सभाओं में भाषण भी दिये। मंत्रियों के साथ अपनी वार्ता में उन्होंने सिंहलों तथा लंका में बसे भारतीयों को व्यापक दृष्टिकोण से हल करने की आवश्यकता पर जोर दिया। आपने कहा कि हमें जिन महान समस्याओं का सामना करना है उनकी तुलना में वर्तमान समस्याएं छोटी एवं गौण हैं, इसलिए इस छोटी समस्या को हमें व्यापक दृष्टिकोण से देखना चाहिए। भारतीयों तथा उनके प्रतिनिधियों से उन्होंने अन्दरूनी मतभेदों को मिटाकर आत्माभिमानी नागरिकों के समुदाय बनने का अनुरोध किया। साथ ही उन्होंने

भारतीयों को सलाह दी कि वे लंका को अपना घर समझें और सचाई तथा लगन से उसकी सेवा करें।

इस प्रकार समस्या के प्रति इस उच्च दृष्टिकोण के कारण सब तरफ शान्त और अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो गया, परन्तु मंत्रिगण भारतीयों को वापस भेजने की योजना में कोई बड़ा परिवर्तन करने के लिए राजी नहीं हो सके। योजना में थोड़ा हेर-फेर करना उन्होंने अवश्य स्वीकार कर लिया और वादा किया कि भारतीयों के लौटाने की वह ऐसी व्यवस्था करेंगे कि उन्हें विशेष असुविधा न हो। यद्यपि जवाहरलाल जी की यात्रा के कारण दोनों देशों की परम्परागत मैत्री की यादगारें ताजी हो गईं और कटुता में भी कमी हो गई, लेकिन उसके कारण उद्देश्य की सिद्धि न हो सकी। लंका की सरकार का रुख तत्कालीन समस्याओं के सम्बन्ध में इतना हठी रहा कि कार्यसमिति को अपने प्रस्ताव में कहना पड़ा कि यह रुख अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की वृद्धि करने वाला अथवा न्यायपूर्ण नहीं है। समिति ने विचारपूर्वक अपना मत प्रकट किया कि लंका के लिए भारत से मजदूरों का जाना एकदम रोक दिया जाय। यहां यह भी बता देना अप्रासंगिक न होगा कि १९४० में लंका-सरकार का एक प्रतिनिधि मंडल भारत सरकार से वार्ता करने के लिए आया और इसका भी कोई भिन्न परिणाम न निकला।

खादी पहनने पर जोर

शिकायतें आने पर कि निर्वाचित स्थानों पर चुने गये अथवा उनके उम्मीदवार व्यक्ति आदतन खद्दरधारी नहीं हैं, एक अधिकारपूर्ण घोषणा आवश्यक हो गई। हरिपुरा अधिवेशन समाप्त होते ही कार्यसमिति की बैठक हुई थी और उसमें कहा गया था कि सिर्फ हाथ का कता और हाथ का बुना कपड़ा ही खद्दर नहीं कहा जायगा, बल्कि उस कपड़े को भी खद्दर कहा जा सकता है, जिसे बनाने में कारीगरों को चर्खा संघ द्वारा निर्धारित मजदूरी दी गई हो। जब कार्यसमिति से प्रश्न किया गया कि "हाथ से कती और हाथ से बुनी खादी का आदतन पहनने वाला" किसे कहा जायगा तब कार्यसमिति ने फैसला दिया कि आदतन खादी पहनने वाला वही व्यक्ति माना जायगा, जो किसी कांग्रेस कमेटी में अथवा किसी पद के लिए निर्वाचित होने के छः महीने पूर्व से खादी पहनता रहा हो। यह भी निश्चय किया गया कि खादी वाली धारा जिस प्रकार धारासभाओं की सदस्यता के लिए आवेदनपत्र भेजने वालों पर लागू होती है उसी प्रकार वह म्यूनिसिपल तथा स्थानीय बोर्डों के सदस्यों पर भी लागू होगी।

बम्बई में नशाबन्दी-आन्दोलन

बम्बई के लिए १ अगस्त का दिन स्मरणीय था। इस दिन बम्बई नगरी तथा

पास की बस्तियों में नशाबंदी का कार्यक्रम आरम्भ किया गया। पहले दिन एक विशाल जलूस निकाला गया, जो एक भारी सभा में समाप्त हुआ। इस सभा में भाषण करते हुए सरदार वल्लभ भाई पटेल ने कहा—"सम्पूर्ण भारत और बम्बई हमें देख रहा है। सारा संसार जिस दिन की इन्तजारी कर रहा था वह दिन आ गया है। इस देश के लिए यह दिन नशाखोरी की राक्षसी से हमारे छुटकारे का दिन है। आज बम्बई ने अपने पिछले इतिहास का खात्मा करके एक नये अध्याय का आरम्भ किया है।"

गांधीजी ने, जो इस प्रयोग के प्रेरक थे, निम्न सन्देश भेजा—

"मुझे आशा है कि अन्त में बम्बई की सहज सद्भावना की, जिसके लिए वह प्रसिद्ध है, विजय होगी और सब मिलकर बम्बई मंत्रिमंडल द्वारा आरम्भ किये गये इस साहसपूर्ण सुधार को सफल बनायेंगे, जैसा कि इसे होना ही चाहिए। मुझे विश्वास है कि नशाखोरी के अभिशाप से छुटकारा देश के लिए एक वरदान सिद्ध होगा।"

जमनालाल बजाज की रिहाई

श्री जमनालाल बजाज की रिहाई भी इस वर्ष की एक प्रमुख घटना थी। कार्यसमिति के एक सदस्य तथा जयपुर प्रजामंडल के अध्यक्ष श्री जमनालाल बजाज को जयपुर राज्य में प्रवेश की निषेध-आज्ञा भंग करने के अपराध में पिछली फरवरी में गिरफ्तार कर लिया गया था। वह जयपुर अकाल-पीड़ितों की सहायता का कार्य करने जा रहे थे। आज्ञा उल्लंघन करने पर उन पर बाकायदा मुकदमा नहीं चलाया गया, बल्कि उन्हें अनिश्चित काल के लिए जेल में रखा गया। जेल के कष्टमय जीवन का उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। जब मामला स्थानीय डाक्टरों की शक्ति के बाहर हो गया तब सेठजी को इस शर्त पर छोड़ना स्वीकार किया गया कि वह इलाज के लिए विदेश चले जायं। जमनालालजी ने इन शर्तों पर छोड़ा जाना पसन्द नहीं किया। ९ अगस्त १९३९ को छः महीने के अनावश्यक तथा कष्टमय जेल-जीवन के बाद उन्हें बिना किसी शर्त के छोड़ दिया गया।

द्वितीय महायुद्ध और भारत

पिछले बारह साल से कांग्रेस दूसरे यूरोपीय महायुद्ध के छिड़ने की आशंका कर रही थी। आखिरकार १९३९ के अगस्त महीने के दूसरे सप्ताह में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति ने चिन्तनीय रूप धारण कर लिया और युद्ध का संकट उपस्थित हो गया। एक ओर वे राष्ट्र थे, जो लोकतंत्रवाद और स्वाधीनता के हामी थे और दूसरी ओर वे राष्ट्र थे जिनके दृष्टिकोण फासिस्ट थे और जिनके आचरण से हमला करने के इरादे के चिह्न दिखाई दे रहे थे। राष्ट्रों के इन दो दलों के बीच

कांग्रेस की सहानुभूति स्पष्टतया पहले की ओर थी। परन्तु कांग्रेस निश्चय कर चुकी थी कि वह युद्ध में भारत के ढकेलने के प्रयत्न का विरोध करेगी। १ मई १९३९ को कलकत्ते में होने वाली अपनी बैठक में कांग्रेस कमेटी विदेशों को भारतीय सेना की रवानगी के बारे में अपने विरोध को दुहरा चुकी थी, फिर भी सरकार ने मिस्र तथा सिंगापुर को भारतीय सेना भारतीय जनता की इच्छा के विरुद्ध भेज दी थी। युद्ध-परिस्थिति के अलावा केन्द्रीय असेम्बली भी कह चुकी थी कि उसकी अनुमति के बिना सेना विदेश न भेजी जायगी। इस तरह जाहिर था कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस तथा असेम्बली की घोषणाओं का अनादर कर ऐसे कार्य कर रही थी, जिनके परिणामस्वरूप भारत के युद्ध में फंस जाने की सम्भावना थी। लोकमत की इस अवज्ञा के कारण ज़वाब में कार्यसमिति ने केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों से असेम्बली के अगले अधिवेशन में भाग न लेने का अनुरोध किया। साथ ही प्रान्तीय सरकारों को चेतावनी दी गई कि कांग्रेसी मंत्रिमंडलों को चाहे इस्तीफा ही देना पड़े, किन्तु उन्हें युद्ध की तैयारियों में हरगिज सहायता न देनी चाहिए।

इसके बाद घटनाचक्र बहुत तेजी से घूमा। इधर २४ अगस्त, १९३९ को मास्को में रूसी-जर्मन अनाक्रमण-संधि हुई और उधर ब्रिटिश विदेश-विभाग ने २५ अगस्त को ब्रिटेन और पोलैण्ड के बीच परस्पर सहायता की घोषणा कर दी। पोलैण्ड के प्रति ब्रिटेन ने जो जिम्मेदारी ग्रहण की थी उसके कारण ब्रिटिश सरकार को जर्मन सरकार से कहना पड़ा कि यदि वह पोलैण्ड के प्रति हमले की कार्रवाई रोक कर संतोषजनक आश्वासन न देगी और पोलैण्ड की भूमि से अपनी सेना न हटा लेगी तो तीन सितम्बर के ११ बजे से दोनों देशों के मध्य युद्ध की अवस्था आरम्भ हो जायगी। फिर तीन सितम्बर को श्री चेम्बरलेन ने रेडियो पर घोषणा करते हुए कहा कि चूंकि ऐसा कोई आश्वासन प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए ब्रिटेन का जर्मनी से युद्ध चालू समझना चाहिए। इस प्रकार युद्ध छिड़ गया।

तीन सितम्बर की रात को सम्राट ने अपने साम्राज्य के नाम एक संदेश दिया। इसमें उन्होंने एक ऐसे राज्य की स्वार्थपरता की निन्दा की, जिसने अपनी संधियों और वचनों को भंग कर के दूसरे राज्यों की स्वाधीनता पर आक्रमण करने के लिए पशुबल का सहारा लिया था। इसके उपरान्त वाइसराय ने अपनी घोषणा में उपस्थित समस्या पर प्रकाश डाला और विश्वास प्रकट किया कि भारत पशुबल के विरुद्ध मानवीय स्वाधीनता के लिए लड़ेगा। उनके संदेश का सबसे उपहासास्पद अथवा सबसे अधिक चोट करने वाला भाग वह था, जिसमें उन्होंने यह विश्वास प्रकट किया था कि भारत पशुबल के विरुद्ध मनुष्य की स्वाधीनता का पक्ष ग्रहण करेगा और संसार की ऐतिहासिक सभ्यता की हैसियत से दुनिया के महान राष्ट्रों के बीच अपने स्थान के अनुरूप अपने हिस्से का कार्य पूरा करेगा। सचमुच एक

गुलाम देश के लिए यह रास्ता बहुत ही अच्छा है कि दूसरे राष्ट्रों को गुलाम बनाये या गुलामी से छुड़ाये और खुद दुनिया के मुल्कों का गुलाम बना रहे।

गांधीजी से भेंट

युद्ध छिड़ते ही वाइसराय ने पहला काम यह किया कि गांधीजी को शिमला बुलाया। इस मुलाकात में जो कुछ हुआ वह गांधीजी के शब्दों में ही सुनिये :

"मैं जानता था कि मुझे कार्यसमिति से इस सम्बन्ध में कुछ भी आदेश नहीं मिले हैं। इसके अलावा मैं यह भी जानता था कि विशुद्ध और पूर्ण अहिंसा का हामी होने की वजह से मैं राष्ट्रीय विचारधारा का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता और यदि मैं ऐसा करने का प्रयत्न करता तो वह मेरी हिमाकत होती। यही मैंने वाइसराय को बता भी दिया। इसलिए मेरे बातचीत या समझौता करने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता था। वाइसराय ने भी मुझे समझौते की बातचीत के लिए नहीं बुलाया था। इसलिए मैं वाइसराय भवन से खाली हाथ लौटा हूं और मुझसे कोई प्रकट अथवा गुप्त समझौता नहीं हुआ है। यदि कोई भी समझौता होता है तो यह कांग्रेस और सरकार के मध्य होना चाहिए। इस प्रकार कांग्रेस के बारे में अपनी स्थिति साफ करने के बाद मैंने वाइसराय को सूचित किया कि इंसानियत की दृष्टि से मेरी सहानुभूति इंगलैण्ड और फ्रांस के प्रति है। और शायद इसीलिए, जैसे आगे आनेवाले कष्ट का मुझे पता चल गया हो, मैंने २३ जुलाई को एबटाबाद से निम्न पत्र हर हिटलर को लिखा था—"मित्र मुझसे कहते रहे हैं कि मानवजाति के कल्याण के लिए मैं आपको पत्र लिखूं। लेकिन उनके अनुरोध को मैं इसलिए नहीं मान रहा था कि शायद ऐसा करना मेरी ढिठाई होगी। पर मुझे कोई प्रेरित करता है कि अब मुझे अधिक सोच-विचार न करके आपसे अपील करनी ही चाहिए, भले ही इस अपील का प्रभाव कुछ भी क्यों न हो। यह बिल्कुल साफ है कि दुनिया में सिर्फ आप ही एक ऐसे इंसान हैं, जो युद्ध को रोक सकते हैं। अपने ध्येय के लिए, वह चाहे जितना उच्च क्यों न दिखाई दे, क्या इतनी कीमत आपको नहीं चुकानी चाहिए? क्या आप एक ऐसे व्यक्ति की अपील पर ध्यान देंगे, जिसने जानबूझ कर युद्ध के तरीके को छोड़ रखा है और इसमें उसे सफलता भी मिली है। खैर, यदि आपको लिखकर मैंने गलती की हो तो आशा है, आप मुझे जरूर माफ कर देंगे।" यदि इस पर भी हिटलर वाजिब बात मानते और इस अपील पर ध्यान देते तो कैसा अच्छा होता, परन्तु हर हिटलर पशुबल के अलावा ईश्वर को नहीं जानते और, जैसा कि श्री चेम्बरलेन कहते हैं, वह किसी की सुनेंगे भी नहीं। इस बेमिसाल मुसीबत के वक्त कांग्रेसजन तथा शेष बाकी सब जिम्मेदार भारतीयों को निजी और सामूहिक तौर पर फैसला करना है कि भारत को क्या करना है।"

कार्यसमिति की बैठक

इस समय ब्रिटेन एक तरह से अकेला और असहाय रह गया था। यहां तक कि स्वाधीन उपनिवेशों ने विरोधी भावनाओं का परिचय दिया था। यदि एक ओर आयर्लैंड ने तटस्थ रहने का निश्चय किया था और दक्षिण अफ्रीका ने सिर्फ एकमत से स्मट्स के पक्ष में फैसला किया था तो आस्ट्रेलिया ने स्वार्थपूर्ण भावना प्रकट की थी और कनाडा ने सुदूर मैत्री का परिचय दिया था। यदि ऐसे समय गांधीजी से नैतिक सहयोग का वचन प्राप्त कर वाइसराय जोरदार और विश्वासपूर्ण स्वर में उत्सुक संसार के आगे घोषणा कर देते कि गांधीजी के इस वचन में वह भारत की ३५ करोड़ जनता के समर्थन की आशा देख रहे हैं तो संसार के समस्त राष्ट्र और विशेषकर शत्रु-राष्ट्र ब्रिटेन के लिए प्राप्त इस सहायता को देखकर चकित रह जाते। अतः लार्ड लिनलिथगो और ब्रिटेन के सामने यह समस्या थी कि गांधीजी के इस पूर्ण और हार्दिक समर्थन से संतुष्ट हो जायं और भारत से साधनों और असंख्य जनों की भी सहायता प्राप्त करें। दूसरे शब्दों में प्रश्न यह था कि गांधीजी ने ब्रिटेन के प्रति राष्ट्र की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए जो आवाज उठाई थी उसे प्राप्त किया जाय या भारत की सम्पत्ति तथा उसकी करोड़ों जनता की सेना में भरती करने की सुविधा उपलब्ध की जाय।

९ सितम्बर, १९३९ को इस परिस्थिति पर विचार करने के लिए वर्धा में कार्यसमिति की बैठक हुई। समिति ने पोलैण्ड के प्रति, जो पशुबल का शिकार हुआ था, गहरी सहानुभूति प्रकट की और इंगलैण्ड तथा फ्रांस जिस उद्देश्य से युद्ध में शामिल हुए थे उसकी सराहना की। साथ ही समिति ने इस बात के लिए खेद और आश्चर्य प्रकट किया कि जब साम्राज्य के स्वाधीन उपनिवेश अपनी-अपनी पार्लमिन्टों से युद्ध में भाग लेने अथवा न लेने का फैसला कर रहे हैं, तब भारत का युद्ध से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने पर भी उसे उसमें भाग लेने के लिए विवश कर दिया गया है। समिति को वाइसराय की इस घोषणा से प्रसन्नता हुई है कि सरकार ने संघ-योजना को अमल में लाने की तैयारियों को रोक दिया है, यद्यपि उसने संघ-शासन के सिद्धान्त को अक्षुण्ण बनाये रखा है। समिति का मत है कि केन्द्र में जिम्मेदार शासन के अभाव तथा संघ-योजना स्थगित होने के कारण केन्द्र में एक ऐसी अनुत्तरदायी सरकार रह गई है, जो युद्ध की तैयारियों के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकारों पर नियंत्रण रखती है और इस तरह एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसे चुपचाप नहीं छोड़ा जा सकता। यदि प्रान्तीय सरकारों को सिर्फ प्रान्तीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र में ही नहीं; बल्कि युद्ध सम्बन्धी उन नये कार्योंके बारे में भी कार्रवाई करनी है, जिनकी अन्तिम जिम्मेदारी प्रांतीय सरकारों पर आनी चाहिए, तो केन्द्रीय सरकार के सम्बन्ध में उनकी स्थिति साफ होनी चाहिए।

पिछले, खासकर गत महायुद्ध के, अनुभव ने हमें सिखा दिया है कि ब्रिटिश सरकार या भारत सरकार के युद्धकालीन वचनों या वक्तव्यों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसलिए समिति सरकार से अनुरोध करती है कि भारत के सम्बन्ध में सिर्फ स्थिति का स्पष्टीकरण ही नहीं होना चाहिए, बल्कि इन सिद्धांतों पर अमल भी शुरू हो जाना चाहिए। समिति ने घोषणा की कि जब तक स्थिति का स्पष्टीकरण इस भांति नहीं किया जाता तब तक वह देश की सरकार से पूर्ण सहयोग करने की सलाह नहीं दे सकती।

इसके अलावा सत्याग्रह का प्रश्न था। इस प्रश्न का एक पक्ष तो यह हो सकता था कि सत्याग्रह छेड़ने पर संभव है, सरकार मार्शला-ला घोषित कर दे और नेताओं को जेलों में ठूंस दे। दूसरे पक्ष में तर्क यह दिया गया कि यदि मंत्रिमंडलों को काम करते रहने दिया गया और मन्त्री कांग्रेसजनों की गिरफ्तारी का आदेश देने को मजबूर हुए तो युद्ध समाप्त होने तक राजनैतिक संगठन के रूप में कांग्रेस का खात्मा ही हो जायगा। इस तरह कांग्रेस को दो बुराइयों में से एक का चुनाव करना था। गांधीजी की राय थी कि हमें अपना नैतिक समर्थन प्रदान करना चाहिए और मन्त्रियों को काम करते रहने देना चाहिए। जवाहरलालजी समझौता द्वारा जिस पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीन उपनिवेश पद प्राप्त करने की आशा करते थे, गांधीजी का ख़याल था कि इस प्रकार की घोषणा वह मन्त्रियों द्वारा प्राप्त कर सकते थे। दोनों ही अवस्थाओं में इस बात का खतरा था कि हो सकता है कि वादा पूरा न किया जाय, किन्तु गांधीजी के दृष्टिकोण से होने वाली घोषणा के पूरी होने की सम्भावना अधिक थी। गांधीजी का कहना था कि उस हालत में सिर्फ बातचीत के दर्मियान हुए वादे को पूरा करने का ही सवाल न था, बल्कि तब तो एक नैतिक जिम्मेदारी अदा करने की बात उठती थी। गांधीजी कोई राजभक्ति की भावना के कारण ऐसा नहीं सोचते थे, बल्कि वह हमारी कमजोरी का अनुभव कर रहे थे। वास्तव में गांधीजी किसी प्रस्ताव के आधार पर बातचीत चलाने को तैयार न थे और न वह कोई मांग उपस्थित करने के ही पक्ष में थे, यहां तक कि वह अवधि निर्धारित करने की बात भी किसी हालत में मानने को तैयार न थे। यदि ब्रिटेन से कुछ मिले तब भी गांधीजी उसे लेने को तैयार न थे। वह सविनय अवज्ञा के भी विरुद्ध थे। सभी जानते हैं कि घोषणा-पत्र के प्रस्ताव के मसविदे के मुख्य भाग से जवाहरलालजी का सम्बन्ध था। गांधीजी ने अनुभव किया कि यदि वह प्रस्ताव पास हो तो जवाहरलालजी को अध्यक्ष बनना चाहिए और उन्हीं को अपनी कार्यसमिति का चुनाव करना चाहिए। गांधीजी अपने अहिंसा के सिद्धान्त पर किसी तरह से आंच न आने देना चाहते थे। वह सिर्फ मध्यस्थ ही बन सकते थे। यही उनकी स्थिति थी। ऐसी स्थिति में उन्होंने अनुभव किया कि कार्यसमिति उनके साथ चलने को तैयार नहीं है।

यदि वह चाहते तो कार्यसमिति में बहुमत उनके पक्ष में हो सकता था, किन्तु वह सदा से हृदय के परिवर्तन में विश्वास करते थे। इसीलिए खुद सहमत न होते हुए भी वह चाहते थे कि जवाहरलालजी का मसविदा मंजूर होना चाहिए। उन्हीं को बातचीत करना चाहिए और अध्यक्ष भी उन्हीं को चुना जाना चाहिए। यह सुझाव कुछ विचित्र-सा जान पड़ता था; परन्तु वास्तव में इससे तीन दिन पहले ही राजेन्द्र बाबू सेवाग्राम गये थे और उन्होंने अपना इस्तीफा देने को कहा था। वैधानिक कठिनाई के कारण जवाहरलालजी को अध्यक्ष बनाने का सुझाव आगे न बढ़ सका। तब युद्ध-समिति नियुक्त करने का एक और प्रस्ताव सामने आया और उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया गया। जवाहरलालजी इस समिति के अध्यक्ष थे और उन्होंने इस समिति के अन्य सदस्यों का चुनाव किया। चुने हुए सदस्य थे वल्लभभाई पटेल तथा अबुलकलाम आजाद। प्रस्ताव का मसविदा समिति में दूसरी बार पढ़ा गया और कुछ मौखिक संशोधनों के साथ उसे स्वीकार कर लिया गया। ९ सितम्बर से १५ सितम्बर तक कार्यसमिति की बैठक हुई। इसी बीच ११ सितम्बर को सम्राट का संदेश आया, जिसमें भारतवासियों के प्रत्येक वर्ग से सहायता और समर्थन की आशा प्रकट की गई थी।

गांधीजी का वक्तव्य

कांग्रेस कार्यसमिति के घोषणा-पत्र पर गांधीजी-द्वारा विचार कर लेने के बाद उसे प्रकाशित कर दिया गया। गांधीजी का वक्तव्य संक्षेप में नीचे दिया जाता है:—

"कार्यसमिति ने विश्व-युद्ध संकट के सम्बन्ध में जो वक्तव्य जारी किया है उसे तैयार करने में पूरे चार दिन लग गये हैं। समिति के कहने पर घोषणा-पत्र का मसविदा पंडित जवाहरलाल नेहरू ने तैयार किया था। मेरा विचार था कि ब्रिटेन को जो भी समर्थन दिया जाय वह बिना किसी शर्त के दिया जाय, किन्तु यह देखकर खेद हुआ कि यह विचार सिर्फ मेरा अपना ही था। यह सिर्फ अहिंसात्मक आधार पर ही होना सम्भव था। लेकिन समिति को तो भारी जिम्मेदारी पूरी करनी थी। वह सिर्फ अहिंसात्मक दृष्टिकोण कैसे ग्रहण कर सकती थी! समिति ने अनुभव किया कि विरोधी की कठिनाई से लाभ न उठाने की शक्ति के लिए जिस अहिंसात्मक भावना की जरूरत होती है उसका राष्ट्र में अभाव है। फिर भी, समिति जिस नतीजे पर पहुंची है उसके कारणों पर रोशनी डालते हुए उसने अंग्रेजों के प्रति महान उदारता का परिचय दिया है। इसलिए इस वक्तव्य को इस देश के निवासियों के नाम, अथवा ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश जनता के नाम नहीं, बल्कि संसार के उन सभी राष्ट्रों के नाम जो भारत की तरह पीड़ित हैं, एक घोषणा-पत्र कहा जा सकता है। इसने कार्यसमिति के द्वारा सम्पूर्ण भारत को इस

बात के लिए मजबूर किया है कि वह सिर्फ अपनी स्वाधीनता का ही खयाल न करे, बल्कि दुनिया के सभी शोषित राष्ट्रों की स्वाधीनता का ध्यान रखे।

"समिति ने यह वक्तव्य पास करने के साथ ही जवाहरलालजी की मर्जी का एक बोर्ड नियुक्त किया है और उन्हीं को इस बोर्ड का अध्यक्ष बनाया है। इस बोर्ड का काम समय-समय पर बदलने वाली परिस्थिति का सामना करना होगा। मुझे आशा है कि इस वक्तव्य का कांग्रेस के सभी वर्ग समर्थन करेंगे। राष्ट्र के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घड़ी में कांग्रेस को विश्वास करना चाहिए कि यदि कुछ करने की जरूरत हुई तो कार्रवाई के समय कमजोरी न दिखाई जायगी। यह बड़े दुःख की बात होगी यदि इस समय कांग्रेसजन दलगत भीतरी और छोटे-मोटे झगड़ों में पड़े रहें। यदि समिति की कार्रवाई से कोई बड़ा या महत्वपूर्ण परिणाम निकलता है तो प्रत्येक कांग्रेसी का हार्दिक सहयोग मिलना बहुत ही जरूरी है। मुझे आशा है कि दूसरे सभी राजनैतिक दल भी ब्रिटिश सरकार से अपनी नीति का स्पष्टीकरण करने और लड़ाई के दिनों में उस नीति के अनुसार जितनी कार्रवाई सम्भव हो करने की मांग में समिति का साथ देंगे। अंग्रेजों ने लोकतंत्रवाद के बारे में जो कुछ कहा है उससे स्वाभाविक परिणाम तो यही निकलता है कि हिन्दुस्तान व ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे प्रदेशों को स्वाधीन राज्य घोषित कर देना चाहिए। यदि युद्ध का उद्देश्य इसके अलावा कुछ और है तो पराधीन राष्ट्र ईमानदारी से या अपनी मर्जी से कैसे सहयोग कर सकते हैं! जरूरत सिर्फ ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की विचारधारा में मानसिक-क्रान्ति की है। युद्ध से पूर्व लोकतंत्रवाद में विश्वास की जो घोषणाएं की गई थीं और जिन्हें अभी तक दोहराया जा रहा है उन्हें अमल में लाने के लिए ईमानदारी से कार्य करने की जरूरत है। सवाल यह है कि ब्रिटिश आधुनिक भारत को युद्ध में घसीटना चाहेगा या सच्चे लोकतंत्रवाद की रक्षा में उसका सहयोग एक इच्छुक साथी के रूप में प्राप्त करेगा? कांग्रेस का समर्थन इंगलैण्ड और फ्रांस के लिए सबसे महान नैतिक निधि होगी; क्योंकि कांग्रेस के पास देने को सिपाही नहीं हैं। कांग्रेस हिंसात्मक साधनों से नहीं लड़ती। वह तो अहिंसात्मक साधनों से ही काम लेती है, फिर चाहे ये साधन कितने ही अपूर्ण या बेढंगे क्यों न हों।"

भारत-सरकार का रुख

इस बात को सभी स्वीकार करेंगे कि युद्ध उप-समिति थोड़े ही समय रही और इस थोड़े समय में उसने कार्य भी अधिक नहीं किया। रामगढ़ में यह उप-समिति फिर नियुक्त नहीं की गई। १६ सितम्बर, १९३९ से १९ मार्च, १९४० तक उसने प्रायः कुछ भी महत्व का कार्य नहीं किया। २६ सितम्बर १९३९ से अप्रैल १९४० तक लार्ड ज़ेटलैंड ने कई वक्तव्य दिये। इन वक्तव्यों की ध्वनि

प्रतिक्रियापूर्ण और क्षोभ पैदा करने वाली थी। इनमें इस बात की तारीफ की गई थी कि भारत से सभी वर्गों ने सरकार को सहायता प्रदान की है। यह जिक्र खास तौर पर किया गया कि देशी नरेशों ने धन, सेवाएं और सैनिक देने को कहा है और देश के सभी भागों से लोगों ने सहानुभूति तथा समर्थन के संदेश भेजे हैं। इसके बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधियों द्वारा दिये गये वक्तव्य का उल्लेख किया गया और कहा गया कि कांग्रेस दोनों देशों के सम्बन्धों के बारे में पेश की गई शर्तें पूरी होने की अवस्था में ही सहयोग करने को तैयार है। लार्ड जेटलैंड ने लार्ड सभा की बहस के बीच लार्ड स्नेल के इन शब्दों को दोहराया कि "कांग्रेस के नेताओं ने स्वशासन के अधिकारपूर्ण स्वरूप के सम्बन्ध में अपने दावों को जो फिर से उपस्थित किया है वह स्वाभाविक तो अवश्य है, किन्तु साथ ही असामयिक भी है।" उन्होंने दावों पर जोर डालने के लिए कांग्रेस की भर्त्सना भी की। उन्होंने कहा कि ऐसे समय जब कि अंग्रेज जीवन-मरण के संग्राम में लगे हुए हैं, किसी आन्दोलन के छेड़ने से उनकी परेशानी बढ़ जायगी। इसके बजाय उपयुक्त समय आने पर यदि दावों को पेश किया गया तो अंग्रेज अधिक धैर्य से कांग्रेस की मांग सुन सकेंगे।

गांधीजी का उत्तर

गांधीजी ने २६ सितम्बर को वाइसराय से दूसरी मुलाकात की और फिर २८ सितम्बर को उन्होंने लार्ड ज़ेटलैंड को नीचे लिखा उत्तर दिया:—

"लार्ड-सभा में हुई बहस के अवसर पर कांग्रेस की निंदात्मक तुलनाएं करने में जो पुराना जोश दिखाया गया है, उसके लिए मैं तैयार न था। मैं तो यही मानता हूँ कि कांग्रेस में सभी आ गये हैं। किसी दूसरी संस्था की निंदा किये बिना यह कहा जा सकता है कि एकमात्र कांग्रेस ही ऐसी संस्था है, जो जाति और धर्म का भेद भुलाकर आधी शताब्दी तक सर्वसाधारण का प्रतिनिधित्व करती रही है। उसका कोई भी स्वार्थ ऐसा नहीं है, जिसका मुसलमानों अथवा रियासती प्रजा के स्वार्थों से विरोध हो। इसी संस्था ने अंग्रेजों से अपने इरादे स्पष्ट करने की मांग की है। यदि अंग्रेज सभी की स्वाधीनता के लिए लड़ रहे हैं तो उनके प्रतिनिधियों को साफ शब्दों में कह देना चाहिए कि भारत की स्वाधीनता भी उनके युद्ध-उद्देश्यों में सम्मिलित है। इस स्वाधीनता के स्वरूप का फैसला खुद भारतीय ही कर सकते हैं। लार्ड ज़ेटलैंड के लिए यह शिकायत करना कि जब ब्रिटेन जीवन-मरण के संग्राम में व्यस्त हो, कांग्रेस को अंग्रेजों के इरादों के स्पष्टीकरण की मांग न करनी चाहिए उचित नहीं है। कांग्रेस को यह जानने का अधिकार है कि वह जनता से यह कह सकती है या नहीं कि युद्ध के बाद भारत का पद स्वाधीन देश के रूप में होगा अथवा नहीं? इसीलिए अंग्रेजों के मित्र की हैसियत से मैं अंग्रेज

राजनीतिज्ञों से अपील करता हूं कि साम्राज्यवादियों की पुरानी भाषा भूल कर उन्हें उन सभी लोगों के लिए एक नये युग का आरम्भ करना चाहिए, जो अभी तक साम्राज्यवाद के शिकार रहे हैं।"

नेहरूजी का उत्तर

कांग्रेस-युद्ध-उप-समिति के अध्यक्ष एक कदम और बढ़ गये। उन्होंने कहा कि कार्यसमिति का वक्तव्य सिर्फ भारत की ही तरफ से नहीं, बल्कि संसार के पीड़ित लोगों की तरफ से दिया गया है ताकि निराश मानव-समाज को कुछ आशा बंध सके। उन्होंने ठीक ही कहा कि लार्ड ज़ेटलैंड उस कल की भाषा में बोल रहे हैं, जो मर चुका है, गुजर चुका है। ऐसा भाषण बीस बरस पहले दिया जा सकता था। उन्होंने यह भी अभिमानपूर्वक कहा कि हमने सौदा करने की भावना से अपनी मांगें नहीं रखी हैं। हमें संसार को स्वाधीनता मिलने और संसार की उस स्वाधीनता म भारत के स्थान का विश्वास होना चाहिए। तभी हमारे और हम से भी अधिक हमारे मस्तिष्क और हृदय के लिए युद्ध का कुछ अर्थ हो सकता है, क्योंकि तब हम ऐसे ध्येय की प्राप्ति के लिए लड़ सकेंगे, जो सिर्फ हमारे ही लिए नहीं, बल्कि संसार की जनता के लिए भी उपयुक्त होगा। चूंकि हम महसूस करते हैं कि बहुत से अंग्रेजों के वही आदर्श हैं, जो हमारे भारत में हैं, इसलिए हमने उन आदर्शों की प्राप्ति के लिए अपना सहयोग प्रदान किया है। लेकिन यदि ये आदर्श हैं ही नहीं तो हम लड़ते किसलिए हैं? जिन आदर्शों की खुले शब्दों में घोषणा की जा रही है और जिस पर अमल भी किया जा रहा है उनके लिए स्वाधीन और रजामंद हिन्दुस्तान ही लड़ सकता है। इसके बाद वाइसराय से कम-से-कम ५२ व्यक्ति मिले, जिनमें गांधीजी, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल, सुभाष बाबू, श्री जिन्ना तथा मुसलिम लीग के अन्य सदस्य, नरेन्द्रमंडल के अध्यक्ष और भारत के राजनैतिक जीवन के कुछ अन्य प्रमुख व्यक्ति थे।

प्रजा परिषद का वक्तव्य

अखिल भारतीय राज्य-प्रजा-परिषद का पिछला अधिवेशन फरवरी १९३९ में लुधियाना में हुआ था और पंडित जवाहरलाल नेहरू उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। इस प्रकार १९३९ के अक्टूबर में वह कांग्रेस की युद्ध उप-समिति तथा देशी राज्य प्रजा परिषद दोनों के अध्यक्ष थे। ११ अक्टूबर को परिषद की स्थायी समिति ने एक वक्तव्य निकाल कर कार्यसमिति के विचारों तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के युद्ध विषयक प्रस्ताव का समर्थन किया। वक्तव्य में स्थायी समिति ने कहा—"हम भारत की अखंडता तथा समस्त जनता की स्वा-

धीनता में विश्वास करते हैं। इस दृष्टि से समिति को संतोष है कि कांग्रेस ने इस संकट की घड़ी में भारतीय राष्ट्र की लोकतंत्रीय स्वाधीनता की मांग को अपनी जोरदार आवाज में उपस्थित किया है। इस मिलने वाली स्वाधीनता में रियासती प्रजा बराबरी की हिस्सेदार होनी चाहिए और उसे बराबरी की जिम्मेदारी भी उठाने को तैयार रहना चाहिए।" इसीलिए कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से ब्रिटेन के युद्ध और शान्ति के उद्देश्यों के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करने की जो मांग की है उसके प्रति समिति अपनी सहमति प्रकट करती है। वक्तव्य में यह भी कहा गया कि रियासतों के शासकों ने जहाँ यूरोप में लोकतंत्रवाद की रक्षा के लिए सहायता देने का वचन दिया है वहाँ उनकी अपनी रियासतों में नग्न निरंकुशता का बोलबाला है। इसलिए समिति ने नरेशों से अनुरोध किया कि वे अपने यहां पूर्ण उत्तरदायी शासन का लक्ष्य स्वीकार करने की घोषणा कर दें और निकट भविष्य में इस नीति को अधिक-से-अधिक अमल में लाने का वचन दें। अन्त में स्थायी समिति ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जब तक ये आधारभूत परिवर्तन नहीं किये जाते और रियासतों का शासन जनता की मर्जी और उसके प्रतिनिधियों की राय से नहीं किया जाता तब तक नरेश प्रजा से सहयोग की आशा नहीं कर सकते।

वाइसराय का वक्तव्य

अब भारत के भविष्य तथा उसकी वैधानिक उन्नति का सवाल हमारे सामने आता है। इसके उत्तर में वाइसराय ने मांटफोर्ड-शासन-सुधार, १९१९ के कानून की प्रस्तावना और लार्ड इर्विन द्वारा उस प्रस्तावना की व्याख्या से लेकर इस विषय के इतिहास पर प्रकाश डाला। लार्ड इर्विन ने साफ शब्दों में कहा था कि भारत की उन्नति का लक्ष्य औपनिवेशिक पद है। साथ ही आदेशपत्र का भी हवाला दिया गया, जिसमें कहा गया कि भारत और ब्रिटेन के बीच इस साझेदारी को इस सीमा तक बढ़ाया जाय, जिससे भारत स्वाधीन उपनिवेशों के बीच अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके। अन्त में वाइसराय ने यह भी कहा कि १९३५ का कानून उस समय प्राप्त होनेवाले अधिक-से-अधिक मतैक्य पर आधारित था, किन्तु अब भविष्य में जब कभी भी पार्लमेंट द्वारा दिये गये आश्वासनों को पूरा करने के लिए कोई योजना बनाई जायगी तो विचार किया जायगा कि १९३५ के कानून में विभिन्न विस्तार की बातें तत्कालीन परि-स्थिति के लिए कहां तक उपयुक्त हैं। वाइसराय ने यह वादा भी किया कि १९३५ के कानून में संशोधन करने से पूर्व विभिन्न सम्प्रदायों, दलों और स्वार्थों के प्रतिनिधियों तथा देशी नरेशों की सहायता प्राप्त करने के लिए उनसे सलाह-मशविरा कर लिया जायगा। संक्षेप में, युद्ध की समाप्ति पर सम्राट की सरकार

१९३५ के कानून में भारतीयों की सलाह से संशोधन करने को तैयार होगी।

इसके उपरान्त वाइसराय ने बताया कि युद्ध के संचालन से भारतीय लोकमत का सम्बन्ध क़ायम रखने के लिए सलाहकार संगठन स्थापित किये जायंगे। यहां यह बता देना आप्रसंगिक न होगा कि यह संगठन २० महीने बाद २२ जुलाई १९४१ को कायम किया गया था।

मंत्रिमंडलों के इस्तीफ़े

पार्लमेंटरी उप-समिति ने कार्यसमिति की अनुमति से मंत्रियों तथा प्रांतों के कांग्रेसी दलों के मार्ग-प्रदर्शन के लिये निम्न आदेश जारी किये:—

"कार्य-समिति के प्रस्ताव द्वारा प्रांतों की कांग्रेसी सरकारों से इस्तीफा देने के लिए कहा जाता है। ये इस्तीफे असेम्बलियों की उन बैठकों के बाद दिये जाने चाहिए, जो महत्वपूर्ण कार्य के लिए बुलाई गई हैं, किंतु ३१ अक्टूबर, १९३९ तक सभी इस्तीफे दे दिये जाने चाहिये।

"मध्य भारत तथा उड़ीसा की प्रांतीय असेम्बलियां नवम्बर के आरम्भ में बुलाई गई हैं और इन प्रांतों की सरकारें उनकी बैठक होने के बाद तक अपने पदों पर रह सकती हैं।

"असेम्बलियों के स्पीकर, डिप्टी स्पीकर, कौंसिलों के अध्यक्ष तथा सदस्य अपने पदों पर बने रहेंगे। इस अवसर पर सिर्फ मंत्रियों तथा पार्लमेंटरी सेक्रेटरियों ही से इस्तीफा देने की आशा की जाती है।

"असेम्बलियों में युद्ध-उद्देश्यों के संबंध में जो प्रस्ताव पेश किया जायगा उसमें नई परिस्थिति के कारण उपयुक्त संशोधन भी उपस्थित होने चाहिए।"

मद्रास, मध्यभारत, बिहार, उत्तर प्रदेश, बंबई, उड़ीसा और सीमा प्रांत की प्रांतीय असेम्बलियों में प्रधान मंत्रियों ने निम्न प्रस्ताव उपस्थित किया:—

"यह असेम्बली इस बात पर अफसोस जाहिर करती है कि ब्रिटेन और जर्मनी के बीच होनेवाली लड़ाई में ब्रिटिश सरकार ने भारत को उसकी जनता की इच्छा जाने बिना हिस्सेदार बना दिया है और उसने ऐसी कार्रवाई की है और ऐसे कानून पास किये हैं, जिनके कारण प्रांतीय सरकारों के अधिकारों तथा कार्यों में कमी होती है।

"असेम्बली को अफसोस है कि सम्राट की सरकार ने भारत के बारे में जो वक्तव्य प्रकाशित करने की इजाजत दी है ऐसा करते समय उसने भारत की परिस्थिति को ठीक़ तरह नहीं समझा है और चूंकि ब्रिटिश सरकार इस मांग को पूरा करने में असफल हुई है, यह असेम्बली मत प्रकट करती है कि सरकार ब्रिटिश सरकार की नीति से सहमत नहीं हो सकती।"

प्रधान मंत्रियों ने यूरोप में युद्ध छिड़ने और उसके परिणामस्वरूप भारत में

उत्पन्न हुए संकट के समय से कार्यसमिति द्वारा समय-समय पर पास हुए प्रस्तावों को मद्देनजर रखते हुए प्रस्तुत प्रस्ताव के महत्व पर प्रकाश डाला। असेम्बलियों में मुस्लिम लीग दल ने प्रस्ताव के संबंध में एक संशोधन उपस्थित किया, जिसे अस्वीकार कर दिया गया।

सात प्रांतों में प्रस्ताव अपने मूल रूप में भारी बहुमत से पास हो गया। उत्तर प्रदेश और मध्यप्रांत में प्रस्ताव थोड़े संशोधनों के साथ, जिन्हें कांग्रेस दल ने स्वीकार कर लिया, पास हुआ। इन आदेशों के अनुसार प्रांतीय मंत्रिमंडलों ने एक के बाद एक इस्तीफा दे दिया। पन्द्रह दिनों के भीतर सभी मंत्रिमंडलों ने इस्तीफे दे दिये। सबसे पहले इस्तीफा मद्रास के मंत्रिमंडल ने दिया था।

: १७ :

इस्तीफ़ा देने के बाद: १९४०

स्वाधीनता की प्रगति में कांग्रेस ने एक और महत्वपूर्ण मंजिल तय कर ली। आठों प्रान्तों में प्रान्तीय मंत्रिमंडलों ने एक साथ इस्तीफे दे दिये। पचास वर्ष की योजनाओं और तैयारियों के बाद जो कला-कृति तैयार हुई थी, वह एक ही धड़ाके में तहस-नहस हो गई। क्या इसे कांग्रेस फिर से बना सकेगी? क्या फिर कभी कांग्रेस शक्ति-सम्पन्न हो सकेगी और हो सकेगी तो कैसे? ये सवाल उस समय शत्रु-मित्र सभी की जबान पर थे। फिर भी कांग्रेस को ऐसी आशंकाएं न थीं। उसे आगे आने वाले कष्टों और कठिनाइयों का पूरा-पूरा ज्ञान था। ब्रिटिश-सरकार गांधीजी के लिए कोई समस्या न थी। अलबत्ता हमारे दो आन्तरिक शत्रु अवश्य थे: कांग्रेस अपने प्रति मुस्लिम लीग के रुख का मुकाबला कैसे करेगी और कांग्रेस किस हद तक लोगों को अहिंसा पर अमल करा सकेगी, जिसका पालन स्वयं कांग्रेसजनों की ओर से अनिश्चित-सा प्रतीत होता था।

वाइसराय का वक्तव्य

पहली नवम्बर को राजेन्द्र बाबू के साथ गांधीजी को तीसरी बार वाइसराय से मुलाकात करने के लिए आमंत्रित किया गया। श्री जिन्ना भी वाइसराय-भवन में उपस्थित थे। गांधीजी और श्री जिन्ना अलग-अलग भी एक दूसरे से मिले। यह बातचीत न सिर्फ नाकामयाब ही रही, बल्कि दोनों पार्टियों के साथ बातचीत करने से वाइसराय को इस समस्या के सम्बन्ध में ऐसे नये विषय उठाने में मदद मिली,

जो पहली बार ही उठाए गए थे और उनसे नई पेचीदगियां और परेशानियां पैदा हो गई थीं। वाइसराय ने अपने मिलने वालों के सामने ठोस और लिखित रूप में अपने प्रस्ताव रखे। अपने ५ नवम्बर के वक्तव्य में उन्होंने जो कुछ कहा वह संक्षेप में इस प्रकार है:—

"३ सितम्बर को युद्ध की घोषणा हुई थी। उसी रात के अपने एक ब्राडकास्ट में मैंने सभी दलों और सभी वर्गों से इसके संचालन में सहयोग प्रदान करने की अपील की थी। अगले दिन मैंने शिमला में गांधीजी तथा मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि श्री जिन्ना से तत्काल मुलाकात की। नरेन्द्र मंडल के चांसलर से भी मिला। इसके बाद समस्या विचार-विनिमय करने के लिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग की वर्किंग कमेटियों के सामने रखी गई। कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक १५ सितम्बर को हुई। उसने खुले शब्दों में नाजी आक्रमण की निन्दा की और ब्रिटिश सरकार से असंदिग्ध शब्दों में अपने युद्ध-उद्देश्य घोषित करने, उन्हें भारत पर लागू करने और तत्काल उन्हें कार्यान्वित करने की मांग की। इसी प्रकार मुस्लिम लीग की वर्किंग कमेटी ने भी १८ सितम्बर को ऐसा ही आश्वासन मांगते हुए कहा, "यदि मुसलमानों की ओर से पूर्ण, प्रभावशाली और सम्मानपूर्ण सहयोग अपेक्षित है तो उनमें 'सुरक्षा और संतोष' की भावना पैदा करनी होगी। इसके अलावा उसने कांग्रेस-प्रान्तों में मुसलमानों की परिस्थिति का विशेष रूप से उल्लेख किया। साथ ही उसने वर्तमान विधान में किसी भी परिवर्तन और उसकी स्वीकृति तथा समर्थन के लिए मुसलमानों से पूरा-पूरा सलाह-मशविरा लेने की आवश्यकता पर जोर दिया। इस पर मैंने पुनः गांधीजी, श्री जिन्ना और नरेन्द्र मंडल के चांसलर से संपर्क स्थापित किया। मैंने यह मानकर कि भारत के दो प्रमुख राजनैतिक दलों के दृष्टिकोणों में स्पष्टरूप से मतभेद है, फैसला किया कि मुझे यहां के लोगों की विचारधारा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर मैंने सभी दलों, संप्रदायों और हितों के ५० से ऊपर प्रतिनिधियों से मुलाकात की। अभी यह बात चल ही रही थी कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने १० अक्टूबर को एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें वर्किंग कमेटी की मांग को दोहराते हुए सम्राट् की सरकार से युद्ध और शान्ति के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए एक वक्तव्य देने का अनुरोध किया। कमेटी ने भारत को स्वाधीन घोषित कर देने की भी मांग की और यह भी कहा कि उसे तत्काल अधिक-से-अधिक सीमा तक यह पद दे दिया जाय।

"मैंने १८ अक्टूबर को सम्राट् की सरकार की ओर से एक घोषणा की। इसमे सबसे पहले इस बात पर जोर दिया गया कि भारत का लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना है। दूसरे, सम्राट् की सरकार लड़ाई के बाद भारतीय नेताओं के परामर्श से वर्तमान विधान की योजना पर पुनर्विचार करने के लिए तैयार है। तीसरे, सम्राट् की सरकार युद्ध-संचालन में भारतीय जनता के सहयोग को दृढ़त

महत्व देती है, और इसी उद्देश्य से उसका विचार एक सलाहकार समिति स्थापित करने का है, जिसकी विस्तृत बातों का फैसला विभिन्न दलों के नेताओं से सलाह-मशविरा कर लेने के बाद होगा। मेरे वक्तव्य के प्रकाशन के बाद कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने २२ अक्टूबर को एक प्रस्ताव पास कर मेरे वक्तव्य को पूर्णत: असंतोष-जनक बताते हुए प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों से पद-त्याग करने को कहा। उसी दिन मुस्लिम लीग ने भी कुछ आशंकाओं का निवारण करने और वक्तव्यों के सम्बन्ध में पूर्ण स्पष्टीकरण करने की मांग की। इसके बाद मैंने गांधीजी, डा० राजेन्द्रप्रसाद और श्री जिन्ना को १ नवम्बर को भेंट करने के लिए आमंत्रित किया और हमने सारी स्थिति पर खुले दिल से विचार-विनिमय किया। मैंने उन्हें बता दिया कि केन्द्र में सहयोग के मामले में यदि हम सलाहकार समिति की योजना से आगे नहीं बढ़ सके हैं तो इसका कारण यह है कि दोनों प्रमुख संप्रदायों में पहले से कोई ऐसा समझौता मौजूद न था, जिससे वे केन्द्र में मेलजोल के साथ काम कर सकते। मैंने यह भी कहा कि २२ अक्टूबर को कांग्रेस वर्किंग कमेटी और मुस्लिम लीग की ओर से जो घोषणाएं की गई हैं, उनसे साफ तौर पर यह पता चलता है कि इन दोनों बड़े दलों के बीच गहरा मतभेद है। इन परिस्थितियों में मैंने अपने मुलाकातियों से अनुरोध किया कि वे आपस में बैठकर एक अस्थायी आधार पर विचार-विनिमय कर लें जिससे कि बाद में एक दूसरे की सहमति से वे ऐसे प्रस्ताव रख सकें, जिनके परिणामस्वरूप केन्द्र में गवर्नर-जनरल की परिषद् में कुछ विस्तार हो सके।

"मैंने जिन बातों पर विचार करने का सुझाव रखा था उनपर विचार-विनिमय हो चुका है। परन्तु इसका परिणाम मेरे लिए अधिक निराशापूर्ण रहा है। दोनों प्रमुख दलों के प्रतिनिधियों में बुनियादी मामलों के बारे में अब भी पूर्ण मतभेद विद्यमान है। जब से मैं भारत में आया हूँ, मुझे सब से अधिक चिंता एकता स्थापित कराने की रही है। इसलिए मैं समस्त देशवासियों से, बड़े राजनैतिक दलों के नेताओं और उनके अनुयायियों से, अनुरोध करूँगा कि यदि हमें अपनी कठिनाइयों को पार करना है और अपने अभीष्ट परिणाम पर पहुँचना है तो आप मेरी मदद कीजिए। आपकी मदद की मुझे इस समय बड़ी आवश्यकता है।"

महात्मा गांधी का उत्तर

महात्मा गांधी ने वाइसराय के उक्त वक्तव्य के उत्तर में कहा—"मैं इसका स्वागत करता हूँ कि वाइसराय महोदय पराजय से हार नहीं मानते हैं। मैं उनके इस दृढ़ निश्चय का भी स्वागत करता हूँ कि वह एक ऐसी समस्या को सुलझाने के लिए कटिबद्ध हैं, जिसे सुलझाना असंभव-सा हो गया है। समस्या का हल ढूंढ़ निकालने के सम्बन्ध में वाइसराय महोदय की व्यग्रता में मैं पूरी तरह से भागीदार हूँ।

इसलिए सामान्य उद्देश्य में सहयोग प्रदान करने की प्रतीक्षा किये विना ही मैं यह सुझाव रखना चाहता हूँ कि जब तक भारत के बारे में युद्ध-उद्देश्यों की कोई ऐसी घोषणा नहीं की जाती, जो स्वीकार की जा सके तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकती। यदि इस बुनियादी सत्य को स्वीकार करने का समय अभी नहीं आया है तो मैं आग्रह करूँगा कि समस्या का हल ढूँढ़ने का प्रयत्न हमें फिलहाल मुल्तवी कर देना चाहिए। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि भारत की इच्छाओं का ख़याल किये बग़ैर ब्रिटेन अपनी भारतीय नीति के बारे में अपने इरादों की घोषणा कर दे। एक बार दासता के बंधनों से भारत के मुक्त और स्वतंत्र हो जाने की घोषणा कर देने के बाद अस्थायी हल भी आसानी से निकल आयेगा। उस हालत में अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संरक्षण का प्रश्न भी आसान हो जाएगा। अल्पसंख्यकों को संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार है, क्रमशः नहीं, बल्कि पूर्णरूप से और एकबारगी ही। स्वतंत्रता के किसी भी अधिकार-पत्र का कोई महत्व नहीं होगा यदि उससे अल्पसंख्यकों को भी उतनी ही स्वाधीनता नहीं मिलती जितनी कि बहुमत को। विधान-निर्माण में अल्पसंख्यक भी पूर्णरूप से भागीदार होंगे। यह बात उन प्रतिनिधियों के विवेक और सूझ-बूझ पर निर्भर करेगी, जिन्हें विधान तैयार करने का पवित्र कार्य सौंपा जाएगा। ब्रिटेन ने अब तक अपनी ताकत को अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के विरुद्ध खड़ा कर के बनाये रखा है। किसी भी साम्राज्यवादी पद्धति में ऐसा होना अनिवार्य है और इस प्रकार उनमें कोई समझौता हो जाना असंभव बना दिया गया है। अल्पसंख्यकों के संरक्षण का कोई हल निकालने की जिम्मेदारी स्वयं विभिन्न दलों पर होनी चाहिए। जब तक ब्रिटेन यह समझता है कि इसकी जिम्मेदारी उसके कन्धों पर है तब तक वह भारत को परतंत्र बनाए रखने की आवश्यकता भी अनुभव करता रहेगा।

"वाइसराय की ईमानदारी में विश्वास करते हुए, जैसा कि मैं करता हूँ, मैं अपने सहयोगियों से धैर्य रखने का आग्रह करूँगा। एक तो जब तक (१) वाइसराय समझौता कराने का प्रयत्न कर रहे हैं, (२) मुस्लिम लीग की ओर से मार्ग में रुकावट पैदा की जाती है और (३) कांग्रेसजनों में एकता और अनुशासन की कमी बनी है तब तक सविनय-कानून-भंग-आंदोलन नहीं शुरू किया जा सकता।"

राष्ट्र के प्रतिनिधियों की बैठक

गांधीजी के मैत्रीपूर्ण और आकर्षक वक्तव्य के साथ-साथ कांग्रेस और युद्ध-समितियों के अध्यक्षों ने भी अपने-अपने उत्तर दिये। राजेन्द्र बाबू ने इस प्रश्न को और भी स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में व्यक्त करते हुए ब्रिटिश सरकार पर यह दोषारोपण किया कि वह "किसी भी ऐसे विधान को, जिसे सभी भारतीय, जिनमें

अल्पसंख्यक भी शामिल हैं, तैयार करेंगे और जिसमें अल्पसंख्यकों के लिए संरक्षण भी रहेंगे, स्वीकार करने और उसे वैधानिक रूप में कार्यान्वित करने के लिए तैयार नहीं है।" इस संबंध में पंडित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य भी कम ठोस और निर्णयात्मक नहीं था। उन्होंने वाइसराय के वक्तव्य पर आश्चर्य प्रकट किया और बताया कि श्री जिन्ना और मेरे दरमियान यह समझौता हुआ था कि हम जल्दी ही किसी सुविधाजनक समय पर सांप्रदायिक प्रश्न पर पूरी तरह से सोच-विचार करेंगे। जब तक राजनैतिक कठिनाई दूर नहीं हो जाती तब तक इसका वाइसराय के प्रस्तावों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए इस सम्बन्ध में इस पर कोई विचार नहीं किया गया।

वास्तव में यह एक ऐसा प्रश्न था, जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी। इसलिए कांग्रेस वर्किंग कमेटी और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के रूप में राष्ट्र के प्रतिनिधि एक बार एकत्र हुए। इस बार यह बैठक १९ नवम्बर को इलाहाबाद में हुई। प्रतिनिधियों ने देश के सामने अपनी सुनिश्चित राय रखी। निर्णय में यह कहा गया कि युद्ध की गतिविधि, ब्रिटिश और फ्रेंच सरकार की नीति और खासतौर से वह घोषणा, जो ब्रिटिश सरकार की ओर से भारत के सम्बन्ध में की गई है, यह जाहिर करती है कि वर्तमान युद्ध सन् १९१४-१८ के महायुद्ध की भांति साम्राज्यवादी उद्देश्यों के लिए लड़ा जा रहा है और भारत में ब्रिटिश साम्राज्य इसी तरह कायम रहेगा। इसलिए ऐसी लड़ाई और नीति से कांग्रेस सहयोग नहीं कर सकती और न वह यह बात ही देख सकती है कि एक ऐसे उद्देश्य के लिए उसके साधनों का शोषण किया जाय। मुख्य प्रश्न के बारे में ब्रिटिश सरकार की ओर से उठाया गया सांप्रदायिक प्रश्न और देशी राज्यों की समस्या बिलकुल बेकार थे। स्पष्टत: एक नैतिक प्रश्न के बारे में ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने इरादों की घोषणा न करने और बेमतलब के प्रश्नों की आड़ लेने की उसकी नीति से यही ज़ाहिर होता था कि वह भारत में साम्राज्यशाही प्रभुत्व देश के प्रतिक्रियावादी तत्वों की सहायता से बनाए रखना चाहती है। इस सम्बन्ध में कांग्रेस के प्रधान ने ४ नवम्बर १९३९ को वाइसराय को जो जवाब दिया था, उसे स्वीकार किया गया और उसका समर्थन किया गया। साथ ही ब्रिटेन की नीति से साम्राज्यवाद का रंग हटा देने के लिए और कांग्रेस के लिए भविष्य में सहयोग प्रदान करने के सवाल तथा सांप्रदायिक एवं अन्य कठिनाइयों को दूर करने के उद्देश्य से विधान परिषद् का विचार और उसकी योजना को आवश्यक बताया गया। इसके बाद सविनय अवज्ञा के लिए तैयारियां करने की आवश्यकता पर पर्याप्त जोर दिया गया, जिसकी सच्ची कसौटी यह थी कि कांग्रेसजन स्वयं चरखा चलाएं, मिल के कपड़ों की जगह खादी को प्रोत्साहन दें और विभिन्न संस्थाओं में मेल-मिलाप स्थापित करना अपना कर्तव्य समझें।

कार्यसमिति का रुख

१९३९ के अन्त में वर्किंग कमेटी ने देश की राजनैतिक परिस्थिति का सिंहावलोकन किया। उस समय वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध था। अल्पसंख्यकों का प्रश्न सबसे आगे था और उनमें संतोष की भावना पैदा करना साफ तौर से कांग्रेस का कर्तव्य था। उनकी तबीयत में संदेह था और यह संदेह कांग्रेसी सरकारों के शासन के प्रति उनके आरोपों में से पैदा हुआ था। वास्तव में मुसलमानों के विशिष्ट स्वार्थों—धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक—के संरक्षण के लिए जो आश्वासन जरूरी था, कांग्रेस देने को तैयार थी, लेकिन क्या इस प्रकार की घोषणा से अवसरवादी अल्पसंख्यकों के हाथ मजबूत नहीं हो जायेंगे अथवा और नये अल्पसंख्यक नहीं पैदा हो जायेंगे और उनमें आन्दोलन करने की और भी दृढ़ भावना नहीं भर देंगे? कारण कि अपने आन्दोलन में उन्हें कुछ हद तक सफलता मिल चुकी थी। यदि आप किसी को कुछ रियायतें देंगे तो उनकी पिपासा और भी बढ़ जाएगी, जैसे कि खाने के साथ-साथ भूख भी बढ़ जाती है। यदि ऐसा नहीं होना चाहिए तो एक और उपाय यह हो सकता था कि सांप्रदायिक प्रश्नों का जिक्र ही न किया जाय—भले ही वह फिलहाल के लिए ही क्यों न हो। समय बड़ी तेजी से बदल रहा था और उसके साथ परिस्थितियां भी। जो हो, कांग्रेस के प्रस्तावों में अल्पसंख्यकों के धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हितों का उल्लेख किया गया था। राजनैतिक शब्द इसमें शामिल नहीं किया गया, क्योंकि विधान-परिषद् में भी हमें उन्हें सिर्फ ये ही संरक्षण देने थे—राजनैतिक नहीं। इस प्रकार का कोई समझौता करना हिन्दू-महासभा जैसी संस्था के उपयुक्त हो सकता था, लेकिन यदि कांग्रेस मंत्रिमंडलों अथवा नौकरियों में ऐसी राजनैतिक रियायतें देने लगी तो वह स्वराज्य की प्रगति में देश को गलत राह पर ले जाएगी। धारासभाओं में विभिन्न दलों का संयुक्त बहुमत होना चाहिये, जिनका निर्वाचन संयुक्त-निर्वाचन-पद्धति के आधार पर हुआ हो और जिनमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिक्ख और जैन सभी राष्ट्रवादियों के रूप में हों, वरना कांग्रेस एक भारी गलती करेगी और तब उसके लिए पीछे कदम हटाना असंभव हो जाएगा। यदि कांग्रेस का ऐसा विश्वास नहीं है तो बेहतर होगा कि वह बियाबान में चली जाय।

इस समस्या पर आंतरिक दृष्टि से विचार करने पर कांग्रेस ने अनुभव किया कि जिस सेनापति को उसका नेतृत्व करना है उसके सामने अभी कोई स्पष्ट योजना नहीं है। उसे इस बात का पूरा विश्वास था कि अंग्रेज़ गलती पर हैं और उसकी यह कोशिश थी कि वह अंग्रेज़ों की इस 'गलती' को मुसलमानों और सारे संसार के सामने खोलकर रख दे। गांधीजी का तरीका 'आज़ादी, आज़ादी' चिल्लाने का नहीं था। उनकी कार्य-पद्धति या कारीगरी यह थी कि उनके किये-कराये काम

से 'आज़ादी' का आभास होता था। हाँ, 'आजादी' शब्द की रट उसमें नहीं होती थी। तात्पर्य यह कि इस प्रकार कांग्रेस कमेटी जो प्रस्ताव पास करे उससे सविनय-भंग आन्दोलन की भूमि तैयार हो जानी चाहिये और यह प्रस्ताव ऐसा होना चाहिए, जिसमें लार्ड ज़ैटलैण्ड की उपेक्षा भी न की गई हो, क्योंकि देश में प्रचलित शासन-प्रणाली इन दोनों में ही मूर्तिमान् थी। जब गांधीजी ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स से लम्बी बातचीत की तब यह सब उनके दिमाग में था।

स्टैफर्ड की वर्धा-यात्रा

ब्रिटिश प्रजातंत्र में उसके कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण राजनैतिक पदों को प्रमुख वकीलों ने ही सुशोभित किया है। लार्ड रीडिंग, लार्ड बर्कन हेड, सर जॉन साइमन, श्री एस्क्विवथ, श्री लायड जार्ज (सालीसिटर), लार्ड सेंकी—ये सभी अपने समय के प्रमुख वकील थे। सर स्टैफर्ड-क्रिप्स भी उसी वर्ग के प्रख्यात वकीलों में से थे, और १९३९ के पतझड़ में जब वह वर्धा गए, उनकी गणना ब्रिटेन के प्रमुख वकीलों में होती थी। लन्दन से प्रस्थान करने से एक सप्ताह पहले उन्होंने वकालत छोड़ दी थी। उसी समय से वह अपना सारा समय सार्वजनिक जीवन में लगा रहे थे। उन्होंने बताया कि हाल में ब्रिटेन के लोगों की सहसा ऐसी धारणा हो गई है कि भारत से समझौता कर लिया जाय और भारतीयों की आकांक्षाओं को पूरा कर दिया जाय। ऐसे संकट के समय में ब्रिटेन भारत को अपना विरोधी नहीं बनाना चाहता। उन्होंने एक और दिलचस्प बात यह भी कही कि भारत की स्थिति का अध्ययन करने के लिए शीघ्र ही यहां एक सर्वदलीय प्रतिनिधि-मंडल आ रहा है। उनके इस कथन से क्या हम यह खयाल कर सकते थे कि यह प्रतिनिधि-मंडल एक जांच-पड़ताल करने वाले कमीशन के रूप में भेजा जा रहा था? वास्तव में कांग्रेस को ऐसे सर्वदलीय प्रतिनिधि-मंडलों के सम्बन्ध में काफी सन्देह और अविश्वास था। उसने स्टैफर्ड क्रिप्स का एक ऐसे व्यक्ति के रूप में स्वागत किया जिसमें सच को सच और झूठ को झूठ कहने की हिम्मत थी। सर्वदलीय प्रतिनिधि-मंडल तो सिर्फ लीपापोती का काम करेगा। साइमन कमीशन भी तो सभी दलों का एक ऐसा ही प्रतिनिधि-मंडल था। वास्तव में यह समय टालने की एक चाल थी। भारत की मांग थी कि तुरन्त ही युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा कर दी जाय और उन्हें ईमानदारी के साथ भारत पर लागू किया जाय। इसके विपरीत सर्वदलीय प्रतिनिधि-मंडल भेजने की योजना एक ऐसी चाल थी, जिसके जरिये ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को पार्लमेंट में सर सेम्युअल होर द्वारा अपनाई गई इस स्थिति को—जिसमें न तो साफ तौर पर 'ना' ही की गई थी और न प्रकट रूप से 'हां' ही की गई थी—एक व्यावहारिक रूप देना था। इंगलैण्ड दोनों में से एक भी बात नहीं कहना चाहता था; क्योंकि वह कोई बड़ी कीमत देकर

भारत की न तो सद्भावना हासिल करना चाहता था और न उसे खोना चाहता था।

स्टैफर्ड क्रिप्स ने गांधीजी, जवाहरलाल और सरदार पटेल के साथ काफी लम्बी बातचीत की और इंगलैण्ड वापस जाते हुए वह गांधीजी-द्वारा तैयार किया गया एक विस्तृत और लम्बा मसविदा भी अपने साथ लेते गये। इसके साथ ही सर स्टैफर्ड की छोटी-सी यह हवाई यात्रा भी ख़त्म हो गई।

कार्यसमिति की बैठक

गांधीजी का ऐसा ख़याल था कि यद्यपि हम समझौते से काम चला सकते हैं; तथापि यह समझौता अंग्रेज़ों और हिन्दुओं के दरमियान नहीं हो सकता। यह तो हिंसा होगी। यही वजह थी कि वह अपने ही तरीके की विधान-परिषद् की कल्पना कर रहे थे। जहां तक सविनय-अवज्ञा आन्दोलन का प्रश्न था उनका ख़याल था कि कांग्रेस जनों को देश की जनता को उनकी इच्छा से अपने साथ लेना होगा, मशीन के कल-पुर्जे की तरह नहीं। उनका तो यह भी ख़याल था कि कांग्रेसी सदस्यों को असेम्बली में जाना और उसके द्वारा काम करना चाहिए और कांग्रेस की सदस्यता के सम्बन्ध में सबकी एक राय होनी चाहिए। यह ठीक है कि कांग्रेस मंत्रिमंडल छोड़कर बाहर मैदान में आई थी; लेकिन इसकी वजह यह थी कि हमारी ताक़त घटती जा रही थी, कारण कि ब्रिटिश सरकार अपने उद्देश्यों के लिए हमें इस्तेमाल कर रही थी। केन्द्रीय असेम्बली से हम उसी हालत में बाहर आये जब हमने महसूस किया कि हम अपनी शक्ति बढ़ाने की बजाय उसे घटा रहे हैं। इसका मतलब यह नहीं था कि हम सभी चीज़ें निषिद्ध करार दे रहे थे। गांधीजी सब प्रकार की दोस्ती बनाए रखना चाहते थे। अगर दूसरा पक्ष शत्रु और विषाक्त बनता जा रहा था तो इसका मतलब यह था कि वह सविनय-भंग को निमंत्रण दे रहा था। उसके चाहते ही हम उसके लिए उद्यत थे। जो लोग १९३९ के अन्त में राष्ट्र की नौका को खे रहे थे, उनके मस्तिष्क में ऐसे ही विचार उठ रहे थे। १८ दिसम्बर को कार्यसमिति की बैठक हुई और उसने भारतमंत्री की उन घोषणाओं पर खेद प्रकट किया, जिनमें उन्होंने सांप्रदायिक प्रश्न को उठाकर प्रधान समस्या पर परदा डालने की कोशिश की थी और जनता का ध्यान इस वास्तविक तथ्य से हटाने का प्रयत्न किया था कि ब्रिटिश सरकार अपने युद्ध उद्देश्यों की घोषणा करने में असफल रही है, खासकर भारत की स्वतंत्रता के बारे में। जब तक विभिन्न दल तीसरे दल पर आश्रित थे तब तक सांप्रदायिक प्रश्न कभी भी सन्तोषजनक रूप से नहीं हल हो सकता था। ब्रिटिश सरकार चूंकि यहां से हटना नहीं चाहती थी अथवा शक्ति नहीं छोड़ना चाहती थी, इसलिए स्वाभाविक था कि वह विभिन्न दलों में परस्पर फूट डालने के उद्देश्य से सांप्रदायिक प्रश्न का सहारा ले। अतः सिर्फ विधान-परिषद् ही एकमात्र

ऐसा मार्ग रह गया था, जिसके जरिये कोई अन्तिम समझौता हो सकता था। कांग्रेस तो यह बात बहुत स्पष्ट रूप से कह चुकी थी कि संबद्ध अल्पसंख्यकों के अधिकारों की इस तरह से रक्षा होनी चाहिए कि उन्हें सन्तोष हो जाय और यदि इतने पर भी मतभेद रह जाएँ तो उनका निपटारा एक निष्पक्ष पंच द्वारा करा लिया जाय।

राष्ट्र के नाम कांग्रेस कार्यसमिति ने अन्तिम संदेश वर्ष के अन्त में संक्षिप्त और जोरदार शब्दों में दिया था। यह संदेश वास्तव में राष्ट्र को कमर कस लेने और आगामी लड़ाई के लिए कटिबद्ध हो जाने का था। यह लड़ाई की तैयारी का आह्वान था। यही आह्वान स्वतंत्रता-दिवस मनाने के अनुरोध और उस दिवस की प्रतिज्ञा में शामिल कर लिया गया था, जो २६ जनवरी के दिन नये सिरे से पढ़ी जानी थी। इसलिए इस आशय का प्रस्ताव पास किया गया:—

"कांग्रेस कार्यसमिति सब कांग्रेस कमेटियों, कांग्रेसजनों और मुल्क का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करती है कि २६ जनवरी, १९४० को व्यवस्थित रूप से संजीदगी के साथ आजादी का दिन मनाने की आवश्यकता है। १९३० से ही यह दिन देशभर में बराबर मनाया जा रहा है और हमारी स्वाधीनता के संग्राम में इसका खास स्थान बन गया है। चूँकि इस समय भारत और संसार एक संकटपूर्ण घड़ी में से गुजर रहे हैं और हमारी आजादी की लड़ाई और भी तीव्र रूप में जारी रहने की सम्भावना है; इसलिए इस बार इस दिन के मनाने का एक खास महत्व है। इसके कारण उसे इस तरह मनाना चाहिए कि न सिर्फ राष्ट्र का आजादी लेने का संकल्प ही उससे ज़ाहिर हो, बल्कि लड़ाई की तैयारी और अनुशासन में रहकर काम करने की प्रतिज्ञा की भी घोषणा हो जाय।"

स्वतंत्रता-दिवस की प्रतिज्ञा इस प्रकार थी:—

"हमारा विश्वास है कि संसार के दूसरे लोगों की भांति भारतीय जनता का भी यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि उसे आजादी मिले। वह अपनी मेहनत का फल भोगे और जीवन के लिए आवश्यक चीज़ें उसे इतनी मिलें, जिससे उसे अपने विकास की पूरी सुविधा हो जाय। हमारा विश्वास है कि कोई सरकार प्रजा के इन अधिकारों को छीने और उसे सताए तो प्रजा का भी यह हक हो जाता है कि वह उस सरकार को बदल दे या मिटा दे। हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी सरकार ने भारतीय प्रजा से उसकी आजादी ही नहीं छीनी है, बल्कि जनता के शोषण पर अपनी बुनियाद रक्खी है और हिन्दुस्तान को आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टियों से तबाह कर दिया है। इसलिए हमारा विश्वास है कि भारत को अंग्रेज़ों से नाता तोड़कर पूर्ण स्वराज्य हासिल करना ही चाहिए।

"हमारा यकीन है कि आमतौर पर किसी भी अहिंसात्मक कार्रवाई के लिए और खासकर अहिंसात्मक सविनय-भंग जैसी सीधी लड़ाई के लिए खादी, कौमी एकता और अस्पृश्यता निवारण के रचनात्मक कार्यक्रम का सफलतापूर्वक संचालन

आवश्यक है। हम जात-पांत या धर्म का भेदभाव छोड़कर अपने देशवासियों में सद्भाव फैलाने का कोई मौक़ा हाथ से नहीं जाने देंगे। हमारे धार्मिक विश्वास भले ही अलग-अलग हों, हम आपसी व्यवहार में भारतमाता की सन्तान की भांति काम करेंगे, क्योंकि हम सबका एक ही राष्ट्र है और सब के राजनैतिक तथा आर्थिक हित समान हैं।

"हम प्रतिज्ञा करते हैं कि कांग्रेस के सिद्धान्तों और नीतियों का कड़ाई के साथ पालन करेंगे और भारत की स्वतंत्रता के संग्राम के लिए जब कभी भी कांग्रेस हमें बुलाएगी, हम सदा उसकी आज्ञा को मानने के लिए तैयार रहेंगे।"

केन्द्रीय असेम्बली में शामिल होने के सवाल पर समिति ने फैसला किया कि जहां अपनी सीटों को कायम रखने के लिए उपस्थित होना ज़रूरी हो, वहां उपस्थित रहा जाय, अन्यथा अनुपस्थिति जारी रक्खी जाय।

वाइसराय का वक्तव्य

हर बार जब कभी कांग्रेस की कार्यसमिति ने कोई घोषणा की और अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण किया तब उसके बाद या तो वाइसराय ने अथवा भारतमंत्री ने या दोनों ही ने कोई-न-कोई घोषणा की। परन्तु किसी भी हालत में सरकारी घोषणा कांग्रेस द्वारा समय-समय पर पास किये गये प्रस्तावों या वक्तव्यों में उठाए गए प्रश्नों का उत्तर नहीं होता था। ब्रिटिश सरकार के इन प्रतिनिधियों की यह आदत-सी बन गई थी कि वे एक ही राग अलापते रहते थे। यह राग कभी तो कर्णकटु और तीक्ष्ण होता था और कभी उसमें से मधुर झंकार सुनाई देती थी। यह मानना पड़ेगा कि १० जनवरी १९४० को वाइसराय ने बम्बई के 'ओरियेण्ट क्लब' में जो भाषण दिया उसका स्वर अब तक के भाषणों की अपेक्षा कम कड़ा, कम तीक्ष्ण था। पिछले महीने की घटनाओं और उनके फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख करने के बाद वाइसराय ने यह विश्वास प्रकट किया कि प्रान्तीय स्वायत्त-शासन के संचालन में जो रुकावट या गतिरोध पैदा हो गया है, वह अस्थायी होगा और जल्दी ही विधान का संचालन संभव हो सकेगा। केन्द्र में मंत्रियों का सहयोग प्राप्त न कर सकने, सामान्य सरकार के रूप में रियासतों का सहयोग न पाने, सुनिश्चित आधार पर सभी अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व हासिल न कर पाने और भारत की एकता को बनाए रखने की असमर्थता पर खेद प्रकट करने के बाद वाइसराय ने कहा कि "भारत में उनका उद्देश्य वेस्टमिंस्टर के कानून के तरीके का औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना है।" आगे चलकर उन्होंने एक बार फिर मुस्लिम और अछूत अल्पसंख्यकों का रोना रोया। उन्होंने कहा कि विभिन्न दलों के प्रति न्याय होना चाहिए और सम्राट् की सरकार ऐसा करने पर कटिबद्ध है। लेकिन उन्होंने विभिन्न दलों के मित्रों

से अनुरोध किया कि वे यह विचार कर देखें कि क्या वे इकट्ठे नहीं हो सकते और आपस में कोई समझौता नहीं कर सकते। जहां तक उद्देश्य का सम्बन्ध है, उन्होंने आश्वासन दिया कि सम्राट् की और उनकी सरकारें वर्तमान परिस्थिति और औपनिवेशिक स्वराज्य मिलने की अवधि को कम-से-कम करने में कोई कसर नहीं उठा रखेंगी। वाइसराय के भाषण का अन्तिम पैरा न केवल आग्रहपूर्ण बल्कि करुणाजनक भी था। उन्होंने कहा कि प्रस्ताव आपके सामने हैं। राजनैतिक दलों और उनके नेताओं पर बहुत भारी जिम्मेदारी आ पड़ी है। उन्होंने भूतकाल में मेरी मदद की है और आज मैं उनसे फिर अपनी और भारत की सहायता करने की प्रार्थना करता हूँ।

यह जाहिर है कि मधुर और आकर्षक भाषा का प्रयोग करने पर भी वाइसराय के भाषण का भाव पहले जैसा ही कठोरतम था। उनके भाषण की मुख्य बातें थीं अल्पसंख्यक, मुस्लिम और परिगणित जातियां, सरकारी आश्वासन, विभिन्न दलों के बीच न्याय और आपसी समझौता, यहां तक कि इस राग की तर्ज भी वही पुरानी थी। यह स्मरण रखने योग्य बात है कि ओरियण्ट-क्लब के भाषण के तुरन्त बाद ही वाइसराय ने एक भाषण बड़ौदा में दिया, जिसमें उन्होंने लोगों का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया कि जल्द-से-जल्द औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करने का तरीका भारत-विधान की संघ-योजना थी, जो उस समय खटाई में पड़ी थी। उनका ख़याल था कि यदि सभी सम्बद्ध वर्ग उसे स्वीकार कर लें तो उससे बहुत-सी समस्याएं आसानी से सुलझ जाएंगी।

वाइसराय से गांधीजी की भेंट

कांग्रेस के प्रधान ने १४ जनवरी के अपने उत्तर में यह बात स्पष्ट कह दी कि हमारा ध्येय वेस्ट मिंस्टर के किस्म का औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं, विशुद्ध स्वाधीनता है। विभिन्न दलों के नेता देश की सारी आबादी के विश्वस्त प्रतिनिधि नहीं हैं और इन्हीं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कांग्रेस ने खूब सोच-विचार के बाद विधान-परिषद् को इस समस्या का एकमात्र मार्ग बताया है। निश्चय ही यह कोई 'निकटतर मार्ग' नहीं है; क्योंकि इसके अन्तर्गत जिस कार्यप्रणाली पर अमल होगा और उसके बारे में जैसी कार्रवाई की जायगी, उससे तो यह मार्ग विशेष रूप से लम्बा हो जाएगा। इसके बाद वाइसराय ने ५ फरवरी को गांधीजी को मुलाकात के लिए दिल्ली बुलाया। वाइसराय तथा गांधीजी की यह चौथी मुलाकात थी। उनमें ढाई घण्टे तक खुलकर बातचीत हुई जिसका आशय निम्नलिखित विज्ञप्ति से स्पष्ट हो जाता है:—

वाइसराय महोदय के निमंत्रण के जवाब में आज गांधीजी उनसे मिलने आए। बहुत देर तक दोनों में मित्रतापूर्ण बातचीत होती रही। इस बातचीत के

दौरान में दोनों ने सारी स्थिति की विस्तार से समीक्षा की। गांधीजी ने बातचीत के शुरू में ही यह स्पष्ट कर दिया था कि उन्हें कांग्रेस कार्यसमिति की ओर से कोई हिदायत नहीं मिली है और किसी तरह का कोई बन्धन अपने ऊपर लेने का उन्हें हक़ नहीं है। अपनी वैयक्तिक हैसियत से ही वह कुछ कह सकते हैं।

वाइसराय महोदय ने सम्राट् की सरकार के इरादों और प्रस्तावों पर कुछ विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने सब से पहले इस बात पर जोर दिया कि उनकी यह दिली ख्वाहिश है कि भारत यथाशीघ्र औपनिवेशिक स्वराज्य का दर्जा हासिल कर ले और वह चाहते हैं कि इसकी प्राप्ति में वह यथाशक्ति भारत की मदद करें। उन्होंने इस बारे में कुछ ऐसे विषयों की पेचीदगियों और मुश्किलों की तरफ गांधीजी का ध्यान आकृष्ट किया, जिनपर विचार-विनिमय करना जरूरी था—खासकर औपनिवेशिक स्वराज्य में रक्षा का प्रश्न। उन्होंने यह बात साफ तौर से बताई कि सम्राट् की सरकार समय आने पर सभी दलों और हितों के सलाह-मशविरे से इस सारे ही विषय की जांच-पड़ताल करने के लिए उत्सुक है। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि सम्राट् की सरकार इस संक्रमण काल को यथासंभव कम-से-कम करना चाहती है। उन्होंने बताया कि पिछले नवम्बर में उन्होंने जिस आधार पर और जिस तरीके पर गवर्नर-जनरल की शासन-परिषद् में विस्तार करने का प्रस्ताव रखा था—वह अब तक ज्यों-का-त्यों बना है और सम्राट् की सरकार उस पर तत्काल अमल करने को तैयार है। यदि सम्बद्ध दलों की सलाह हो तो सम्राट् की सरकार संघ-योजना पर भी फिर से विचार करने को तैयार है, जिससे कि भारत को शीघ्र ही औपनिवेशिक स्वराज्य मिल सके और लड़ाई के बाद युद्धकाल की समस्याओं पर आसानी से समझौता हो सके।

गांधीजी ने इन प्रस्तावों को पेश करने की भावना को पसन्द किया; परन्तु उन्होंने कहा कि मेरी राय में इस समय इनसे कांग्रेस दल की पूर्ण मांग पूरी नहीं होती। उन्होंने प्रस्ताव पेश किया कि अच्छा यह होगा कि फिलहाल हम इस सम्बन्ध में और बातचीत स्थगित कर दें, जिससे कि उन कठिनाइयों को सुलझाने में मदद मिल सके, जो इस समय पैदा हो गई हैं। वाइसराय महोदय ने इसे स्वीकार कर लिया।

ज्यों-ज्यों बातचीत आगे बढ़ी, इस समस्या पर बहुत गहराई से खोजबीन होने लगी। मानों सरकार और जनता साथ मिलकर एक कुआँ खोद रहे थे और ज्यों-ज्यों उसकी तहें खुलती जाती थीं, उनमें से आशाओं के झरने प्रवाहित हो रहे थे। इन झरनों से मानों लोगों को जीवन प्राप्त होने और उनकी स्वतंत्रता की पिपासा तृप्त हो जाने वाली थी, लेकिन बात वास्तव में ऐसी थी नहीं। इस सहयोग के प्रयास में एक ऐसी अवस्था आ गई, जब गांधीजी ने उस गुप्त स्रोत और झरने की असलियत खोलकर वाइसराय के सामने रख दी। ६ फरवरी, १९४०

के अपने एक वक्तव्य में गांधीजी ने बताया कि वाइसराय के प्रस्ताव का उद्देश्य भारत के भाग्य का अन्तिम निर्णय ब्रिटिश सरकार के हाथों में देना था, जबकि कांग्रेस का ध्येय आत्मनिर्णय के सिद्धान्त पर अमल करने का था। स्वतंत्रता की वास्तविक कसौटी यही थी, दोनों विचारधाराओं में यही मुख्य भेद था। गांधीजी के विचार से इसे दूर किये बिना कोई शान्तिपूर्ण तथा सम्मानपूर्ण समझौता संभव नहीं था। एक बार ऐसा हो जाने पर राष्ट्र की रक्षा, अल्पसंख्यकों, नरेशों और यूरोपियनों के स्वार्थों के प्रश्न अपने आप सुलझ जाएँगे। गांधीजी और वाइसराय ने इन सभी बातों पर मित्रों के रूप में विचार-विमर्श किया। लेकिन दोनों के दृष्टिकोणों में भारी अन्तर था। इतने पर भी उन दोनों ने बतौर दोस्तों के ही एक-दूसरे से विदा ली।

कार्यसमिति की बैठक

कांग्रेस का अगला अधिवेशन बिहार में रामगढ़ में होने वाला था। उसका समय बहुत निकट आ रहा था। एक पुरानी प्रथा के अनुसार—आगामी अधिवेशन से काफी समय पहले कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक बुलाई जाती थी। चुनाँचे इसके अनुसार इस बार भी २८ फरवरी १९४० को पटना में कांग्रेस कार्यसमिति की एक बैठक हुई। कुछ लोगों के खयाल के मुताबिक रामगढ़ कांग्रेस उस समय की यद्धकालीन चर्चाओं के दरमियान प्रायः एक महत्वपूर्ण घटना बन गई थी। लेकिन यह बात ऐसी नहीं थी। कांग्रेस ने बहुत-से विभाग खोल रखे थे, जैसे प्रचार, अल्पसंख्यक, हरिजन और चर्खा जिनके जरिये वह अपना पुनःसंगठन कर रही थी। इन विभागों का उद्देश्य सत्याग्रह के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए देश को तैयार करना था, क्योंकि सभी का खयाल था कि इस गतिरोध को खत्म करने का एकमात्र मार्ग सत्याग्रह ही था। गांधीजी अपने अहिंसात्मक सिद्धान्तों, और किस तरीके से उन्हें सामूहिक और बड़े पैमाने पर कार्यान्वित करके देश को मुक्ति दिलाई जा सकती है, के बारे में बहुत कुछ लिख चुके थे। पटना में उन्होंने अनुभव किया कि कांग्रेसजनों में इतना मतभेद और अनुशासन-हीनता है कि सविनय-अवज्ञा का परिणाम ठीक नहीं होगा। इसके विपरीत लोगों का कहना था कि अगर सिविल-नाफरमानी शुरू कर दी जाय तो ये सब मतभेद दूर हो जाएँगे। इन दोनों दलों के दरमियान एक दल और था, जिसका विचार था कि कांग्रेस को इस समय अपनी स्थिति स्पष्ट रूप से जनता के सामने रख देनी चाहिए और साफ-साफ कह देना चाहिए कि वह क्या करेगी। जनता को साफ साफ पता होना चाहिए कि अगर आसमान भी टूट पड़े तो हमारी स्थिति यह होगी; वरना जनता में अरक्षा की भावना पैदा हो जायगी जो स्वयं इस आन्दोलन के लिए घातक होगी। इस तरह की विचारधारा का मुख्य कारण यह था कि लोगों

को सन्देह होने लगा था कि क्या आज से तीन महीने पहले देश की अधिक तैयारी नहीं थी और क्या वे उस स्थिति से पीछे नहीं हटते जा रहे हैं। हो सकता है कि हम सविनय अवज्ञा आज प्रारम्भ न करें; हो सकता है कि इसे हम कल भी न करें; लेकिन हमें सन्देह की इस भावना की रोक-थाम करके कोई अन्तिम निर्णय अवश्य करना चाहिए। लड़ाई के कारण यह संकटपूर्ण स्थिति पैदा हुई थी और अंग्रेज़ों का उद्देश्य यथासंभव अपने साम्राज्य का विस्तार करना था। हर हालत में उसे सुदृढ़ तो करना था ही। हमारे रास्ते में सिर्फ एक बड़ी रुकावट साम्प्रदायिक समस्या खड़ी कर दी गई थी जिसका उद्देश्य कांग्रेस के रास्ते में रोड़े अटकाना था। ऐसी स्थिति में रामगढ़ अधिवेशन के लिए कार्यक्रम तैयार करने के उद्देश्य से जब कांग्रेस कार्य-समिति की पटना में बैठक हुई तब उसने केवल एक ही प्रस्ताव तैयार किया, जिसका सम्बन्ध भारत और युद्ध से था।

रामगढ़-कांग्रेस : १९४०

रामगढ़ में मार्च १९४० में होनेवाली कांग्रेस के ५३वें अधिवेशन के प्रधान के लिए सिर्फ मामूली-सा चुनाव हुआ। १५ फरवरी १९४० को सभी प्रान्तों में प्रतिनिधियों ने प्रधान के निर्वाचन के लिए अपने-अपने वोट डाले और मौलाना आजाद, श्री० एम० एन० राय के मुकाबले में १८६४ वोटों से कांग्रेस के प्रधान चुने गए। श्री राय को १८३ वोट मिले।

रामगढ़ का नाम मजहर नगर रखा गया था और सदा की भांति यहाँ भी सब उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाए जाने का आयोजन किया गया। खुले अधिवेशन को छोड़कर विषय-निर्वाचन समिति, प्रदर्शनी, सार्वजनिक सभाएँ इत्यादि का सारा कार्यक्रम निर्विघ्न संपन्न हुआ। लेकिन खुले अधिवेशन का आयोजन इस पठार की एक सुरम्य तराई में किया गया। प्रकृति क्रुद्ध हो गई, उसने रौद्र रूप धारण कर लिया और सारे मैदान में घुटनों तक पानी चढ़ आया। इसका कारण यह था कि ठीक उसी समय, जब कि कांग्रेस का अधिवेशन होना था, जोर का तूफान आया और वर्षा होने लगी। कांग्रेस के महारथियों ने इसका बहादुरी से मुकाबला किया। इसी प्रलय की घड़ी में स्वागत-समिति के प्रधान और अधिवेशन के प्रधान ने क्रमशः अपनी-अपनी कार्रवाइयां कीं। बेशक उनके अभिभाषण बिना पढ़े ही पढ़े हुए मान लिए गए। उस दिन का मुख्य प्रस्ताव पंडित जवाहरलाल ने पेश किया और उसे अगले दिन के लिए मुल्तवी कर दिया गया। अगले दिन कांग्रेस अधिक सौभाग्य-शालिनी रही और उसे अधिवेशन के लिए काफी समय मिल गया। अधिवेशन आसानी और धूमधाम से हो गया। अधिवेशन का आयोजन झण्डे वाले मैदान में किया गया था, जहां जमीन ऊँची और सूखी थी। कांग्रेस का यह ऐतिहासिक निर्णय, जिसका समर्थन गांधीजी ने अपने महत्वपूर्ण भाषण में

किया था, लोगों ने झण्डे के नीचे बैठकर पूरी गंभीरता और संजीदगी से किया। मजहर-नगर के सिंहद्वार के सामने ३० फुट ऊँचे एक स्तंभ पर यह झण्डा फहरा रहा था। इस स्तंभ का रंग भूरा और पीला था और इसके बनाने में अशोक-स्तंभ की नकल की गई थी।

राजेन्द्र बाबू का अभिभाषण

रामगढ़ का अधिवेशन रामगढ़ के राजा के एक जंगल की देहाती बस्तियों में किया गया था। और इस अवसर के सर्वथा उपयुक्त श्रीयुत राजेंद्र बाबू को कांग्रेस के प्रतिनिधियों के स्वागत के लिए चुना गया था। उनके अभिभाषण में युक्तियों और विभिन्न घटनाओं का वर्णन बड़े ही बढ़िया तथा मोहक ढंग से किया गया था। उन्होंने एक धर्मोपदेश का वर्णन करते हुए कहा:—

"कभी-कभी हम भूतकाल से शिक्षा लेकर बड़े प्रेरित और प्रभावित हो उठते हैं। यह प्रकरण समाप्त करने से पहले मैं ऐसी ही एक घटना आपके सामने रखूंगा। किसी जमाने में राजा अजातशत्रु दक्षिण बिहार में राज्य करते थे और उत्तर बिहार में वज्जियों का सुसमृद्ध प्रजातन्त्र था। अजातशत्रु वज्जियों को जीतकर उनका प्रदेश अपने राज्य में सम्मिलित कर लेने के लिए बड़े उत्सुक थे। एक बार गौतम बुद्ध अजातशत्रु की राजधानी राजगिर (राजगृह) आये और गिद्धकूट (गृद्धकूट) पर्वत पर ठहरे। अजातशत्रु ने अपने मंत्री बस्सकार को बुद्ध के पास यह जानने के लिए भेजा कि वज्जियों के विरुद्ध उनकी जो योजना और चाल है, उसके संबंध में उनकी क्या राय है। जब बुद्ध को अजातशत्रु के इरादों का पता चला तब उन्होंने अपने शिष्य आनन्द से सात प्रश्न किये और उनका उत्तर मिलने पर उन्होंने अजातशत्रु के प्रश्न का जवाब दे दिया। उन्होंने पूछा, "आनन्द! क्या तुमने सुना है कि बज्जी लोग अपनी सभाएँ अक्सर बुलाते हैं और लोग उनमें काफी संख्या में शामिल होते हैं?" आनन्द ने उत्तर दिया, "प्रभु! तथागत! मैंने सुना है कि वज्जियों की सभाएँ बहुधा होती हैं और उनमें लोग काफी संख्या में भाग लेते हैं।" बुद्ध ने कहा, "हे आनन्द! जब तक वज्जियों की सभाएँ बहुधा होती रहेंगी और उनमें लोग काफी संख्या में भाग लेते रहेंगे तब तक तुम यह आशा कर सकते हो कि केवल उनकी अभिवृद्धि ही होगी, विनाश नहीं।" उन्होंने इसी प्रकार के छः और प्रश्न किये और उनका संतोषजनक उत्तर मिलने पर कहा, "जब तक वज्जी एक जगह मिलकर बैठते रहेंगे, एक साथ मिलकर काम करते रहेंगे और अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का पालन एक साथ मिलकर करते रहेंगे, जब तक वे कानून बनाए बिना कोई मनमाने आदेश नहीं जारी करेंगे और न अपने कानूनों का अतिक्रमण करेंगे, जब तक वे अपने बनाए नियमों के अनुसार सामूहिक रूप से कार्य करते रहेंगे, जब तक वे अपने बड़ों का आदर-सम्मान करेंगे और उनकी मान्य राय को मानते

रहेंगे, जब तक अपनी स्त्रियों के प्रति कठोर अथवा उद्दण्डतापूर्ण बर्ताव नहीं करेंगे, जब तक वे अपने चैत्यों (धार्मिक और राष्ट्रीय मंदिरों) का आदर-सम्मान करते रहेंगे और धार्मिक प्रयोजन से दी गई उनकी संपत्ति उनसे नहीं छीनेंगे, जब तक वे अपने अर्हतों (आत्मत्यागी विद्वानों) की रक्षा करते रहेंगे और बाहर के अर्हतों को अपने देश में प्रवेश करने की आज्ञा देते रहेंगे, अपने राज्य के अर्हतों को आराम से जीवन व्यतीत करने देंगे, तब तक उनकी समृद्धि होती रहेगी, वे संपन्न होते रहेंगे। इसलिए तुम्हें उनकी किसी प्रकार की क्षति की आशा नहीं करनी चाहिए।" जब अजातशत्रु ने यह सुना तब उसे विश्वास हो गया कि उसके लिए अपनी सेनाओं के बल पर वज्जियों को जीतना असंभव है। आज भी ये सातों नियम, जिनके ऊपर राष्ट्रों का उत्थान-पतन निर्भर रहता है और जो आज से २,५०० वर्ष पूर्व लागू किये गये थे—कितने सच्चे और शाश्वत हैं। राजगिर की पहाड़ियों में गिद्धकूट का यह पर्वत आज भी हमें उनका स्मरण दिला रहा है। किसी भी जीवित समाज में मतभेद का होना सर्वथा स्वाभाविक ही होता है। क्या आज हम कांग्रेस के बारे में यह कह सकते हैं कि हम एक साथ मिलकर बैठते हैं, एक साथ मिलकर बात करते हैं और एक साथ मिलकर अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का पालन करते हैं? क्या हम यह कह सकते हैं कि हम अपने ही बनाए हुए नियमों का उल्लंघन नहीं करते? क्या हम अपने ही बनाए हुए नियमों के अनुसार सामूहिक रूप से कार्य करते हैं? क्या हम विश्वास और निश्चय के साथ यह कह सकते हैं कि हम अपने बड़ों का आदर-सत्कार करते हैं, उनकी मान्य सलाह पर ध्यान देते हैं और उसे स्वीकार करते हैं? वज्जियों की ताकत इन्हीं बुनियादों पर निर्भर थी। यदि हम भी इन प्रश्नों का उत्तर 'हां' में दे सकें तो हमारी शक्ति भी बढ़ेगी। एक बार बुद्ध ने भिक्षुओं को वज्जियों की सभाओं को दिखाते हुए कहा था, "तुम इस सभा को देखो। इससे तुम यह अनुमान लगा सकते हो कि देवताओं की सभा किस प्रकार की होगी।" क्या हमारे लिए इस प्रकार का संगठन करना और अपने इस राष्ट्रीय संगठन को इस प्रकार चलाना संभव नहीं है कि जिससे गांधीजी हममें अनुशासन की कमी और हिंसा की शिकायत करने के बजाय अपने आश्रम की कन्याओं को संबोधित करते हुए ऐसे ही उपदेश दें, जैसे कि भगवान बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को दिये थे?"

मौलाना आज़ाद का भाषण

राष्ट्रपति मौलाना आजाद का भाषण उच्चकोटि का था। उन्होंने कहा—"आज हमारा काफिला एक बड़ी नाजुक घड़ी में से गुजर रहा है। इस तरह की नाजुक घड़ी में कठिनाई यह रहती है कि उसमें परस्पर विरोधी संभावनाओं की आशंका बनी रहती है। बहुत संभव है कि यदि हम कोई ठीक कदम उठाएँ तो

अपने उद्देश्य के बहुत निकट तक पहुँच जाएँ और दूसरी ओर यदि हम कोई गलत कदम उठा बैठें तो उससे हम नई कठिनाइयों और उलझनों में फँस जायँ।" आगे उन्होंने विस्तार से कांग्रेस की मांग, उस पर ब्रिटिश सरकार के जवाब और अब तक कांग्रेस-द्वारा उठाए गए कदमों का जिक्र करते हुए कहा—"हमारी स्थिति बिल्कुल साफ है। हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद को विजयी और मजबूत होता हुआ नहीं देखना चाहते और इस तरह अपनी गुलामी की अवधि को भी नहीं बढ़ाना चाहते। १९३७ में हमने जो अस्थायी और आंशिक सहयोग का हाथ बढ़ाया था, उसे हमने युद्ध की घोषणा के बाद खींच लिया। स्पष्ट है कि हमारा इरादा असहयोग की दिशा में आगे कदम बढ़ाना है। जिस स्थिति में हम आज हैं, हमें यह फैसला करना है कि हमें इस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए या पीछे कदम लौटाना चाहिये? लेकिन एक दफा कदम उठा लेने पर उसे पीछे नहीं हटाया जा सकता। कदम रोकने का मतलब पीछे हटना है और हम पीछे हटने से इन्कार करते हैं। इसलिये हम सिर्फ आगे ही कदम बढ़ा सकते हैं। मुझे यकीन है कि जब मैं यह कहता हूँ कि हमें आगे कदम बढ़ाना चाहिए और हम आगे ही आगे चलेंगे तब आप सब मेरे साथ इसमें पूरी तरह से शरीक हैं।

गांधीजी की चेतावनी

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि इस अधिवेशन का मुख्य प्रस्ताव पहले से ही पटना में तैयार कर लिया गया था, रामगढ़ की गतिविधि इतनी शान्त न थी जितनी कि आशा की जाती थी। लेकिन इस थोड़े से दरमियानी अरसे में भी विचार-धारा बड़ी तेजी से प्रवाहित हो रही थी। श्री जिन्ना का दो राष्ट्रों का सिद्धांत उनके दिमाग में पनपने लगा था, जो अपने आपको पाकिस्तान की सूरत में प्रकट कर रहा था। साम्प्रदायिक झगड़े, जिनके पैदा हो जाने की आशंका सविनय भंग के कारण की जा रही थी, पहले ही शुरू हो चुके थे और सक्खर का दंगा अपने पूरे वेग से प्रारंभ हो चुका था, जिसमें ४०० आदमी मारे गए और हजारों घायल हुए थे। यह दंगा उस समय देश के इतिहास में पाशविकता, क्रूरता और रक्तपात में अपना सानी नहीं रखता था। जहां तक लड़ाई के जमाने में सविनय भंग आन्दोलन प्रारंभ करने का प्रश्न था, रामगढ़ अधिवेशन के समय प्रादेशिक और जातिगत सिद्धांत के आधार पर देश के विभाजन की मांग और साम्प्रदायिक कलह की समस्या ऐसी नहीं थी जिस पर शान्त चित्त से विचार किया जा सकता था। जबकि समस्याएँ ऐसी थीं तब घटनाओं के सिंहावलोकन से भी कोई आश्वासन नहीं मिल सकता था। गांधीजी को तो सभी ओर अनुशासन-हीनता ही दिखाई दे रही थी। उनकी मुख्य कठिनाई थी—संगठन। "मैं इस तरह के संगठन के बल पर कैसे लड़ सकूंगा?"—यही एक विचार था जिस पर वह अपने आत्मनिरीक्षण के समय

सोचते थे और विचार-विनिमय में बराबर इसी पर चर्चा करते थे। संगठन की ऐसी हालत देखते हुए उन्होंने अनुभव किया कि वह कांग्रेस-जनों से कह दें कि उन्हें बड़ा खतरा नजर आ रहा है और इस तरह के संगठन के बल पर किसी तरह की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। तो क्या फिर उन्हें कांग्रेस के बिना ही अकेले जूझ पड़ना चाहिए? उन्होंने गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया कि वह इस नेतृत्व से अलहदा हो जाने का प्रस्ताव करें। यह निश्चय ही एक नई बात थी; क्योंकि पटना में उनकी विचार-धारा इस प्रकार की नहीं थी। इस स्थिति को हम संक्षेप में इस प्रकार रख सकते हैं। लोग गांधीजी से पूछ रहे थे, "आप आन्दोलन कब करेंगे?" और गांधीजी इसके जवाब में उनसे कह रहे थे, "जब तुम तैयार हो जाओगे।" रामगढ़ से सिर्फ चार महीने पहले एक प्रस्ताव पेश किया गया था, जो प्रायः स्वीकार कर लिया गया था। इसमें सब कुछ गांधीजी पर छोड़ देने को कहा गया था। गांधीजी सिर्फ यह चाहते थे कि लोगों के अन्दर से यह धारणा दूर हो जाय कि वह शीघ्र ही आन्दोलन शुरू करने वाले हैं, क्योंकि वातावरण इसके अनुकूल न था, न उनके पास पर्याप्त सामग्री ही थी। यहां तक कि इस काम के लिए उनके पास आदमी भी नहीं थे। अन्त में रामगढ़ में पटना वाला प्रस्ताव ही पास हुआ।

विषय-निर्वाचन-समिति में और खुले अधिवेशन में गांधीजी ने जो बातें कहीं और उसके एक सप्ताह बाद उनकी ओर से देश को जो चेतावनी दी गई उसका सारांश इस प्रकार है:—

"मैं आप लोगों से मुलाकात करने और आपसे अपना परिचय ताजा करने आया हूँ। मैं आपसे सीधा सम्पर्क कायम करना चाहता हूँ और यह जानना चाहता हूँ कि मेरी और आपकी एक दूसरे के संबंध में क्या स्थिति है। आपने प्रस्ताव प्रायः सर्वसम्मति से पास किया है। बहस के दौरान में आपस में से कुछ लोगों ने जो बातें कही हैं उनका मैं उत्तर देना नहीं चाहता। लेकिन मैं यह ज़रूर कहना चाहता हूँ कि अब मैं बड़ी सख्ती से काम लूँगा। इसलिए नहीं कि सख्ती मुझे पसन्द है, बल्कि इसलिए कि एक सेनापति को, जिसे अपनी फ़ौज की रहनुमाई करनी है, पहले से ही सेना को अपनी शर्तें बता देनी चाहिए। इस बार मैं देखता हूँ कि पहले की अपेक्षा आज हम लोग चारों ओर से कठिनाइयों से कहीं ज्यादा घिरे हुए हैं। कठिनाइयाँ भीतरी और बाहरी दोनों तरह की हैं। ब्रिटिश सरकार विश्वव्यापी युद्ध में फँसी हुई है और अगर हम भी उससे लड़ाई ठान लें तो स्वाभाविक है कि हम काफ़ी कष्ट मोल ले लेंगे। यह हमारी पहली कठिनाई है; लेकिन मुझे जो चीज़ भयभीत कर रही है—वह है हमारी भीतरी कठिनाई। मैंने अक्सर कहा है कि अगर आन्दोलन ठीक आधार पर चले तो बाहरी मुश्किलों से सत्याग्रही को कभी डरने की ज़रूरत नहीं है। हमारी भीतरी कठिनाई यह है कि हमारी कांग्रेस के

रजिस्टर ऐसे सदस्यों से भरे पड़े हैं जो यह जानकर बड़ी संख्या में भरती हो गए हैं कि कांग्रेस में घुसने का अर्थ सत्ता हासिल करना है। इस कारण जो पहले कांग्रेस में शामिल होने का कभी विचार भी नहीं करते थे वे भी अब उसमें आ गए हैं और उसे नुक़सान पहुँचा रहे हैं। कांग्रेस में कोई अनुशासन नहीं है। लोग दलों में बँटे हुए हैं और उनमें लड़ाई झगड़े हैं। प्रजातंत्र तो मेरी कल्पना में ऐसे दलों का निर्माण नहीं है, जो आपस में इस हद तक लड़ते-झगड़ते रहें कि उससे संगठन ही नष्ट हो जाय। और फिर हमारी संस्था तो लोकवादी और लड़ाकू दोनों ही है। हमारी लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है। जब हम एक सेना के रूप में आगे बढ़ते हैं तब हम लोक-वादी नहीं रहते। बतौर सिपाही के तब हमें सेनापति से आदेश लेना पड़ता है और उसे बिना किसी हिचकिचाहट के मानना पड़ता है। सेना में तो जो कुछ सेनापति कहे, वही कानून होता है। मैं आपका सेनापति हूँ। इसका यह मतलब नहीं कि मैं आपको अपनी भावनाओं के बारे में अन्धकार में रखूँ। लेकिन मुझे अपने जैसे कमजोर सेनापति की मिसाल इतिहास में नहीं मिलती। मेरे पास कोई अधिकार नहीं है। मेरा एकमात्र बल आपका प्रेम है। एक प्रकार से यह बड़ी भारी चीज है; लेकिन दूसरी प्रकार से वह निरर्थक भी है। मैं कह सकता हूँ कि मेरे दिल में सबके लिए प्रेम है। शायद आप भी ऐसा ही कहते हों, लेकिन आपका प्रेम क्रियात्मक होना चाहिए। आपको आजादी की प्रतिज्ञा में बताई गई शर्तों को पूरा करना चाहिए। मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि अगर आप उन शर्तों को पूरा नहीं कर सकते तो मेरे लिए आन्दोलन शुरू करना संभव न होगा। आपको कोई और सेनापति तलाश करना होगा। आप मुझे मेरी मर्जी के ख़िलाफ़ अपना नेतृत्व करने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। जब आपने मुझे अपना सेनापति बनाया है तब आपको मेरे आदेश का पालन करना ही होगा। इसमें कोई तर्क नहीं चल सकता। चूँकि मेरी एकमात्र ताकत प्रेम है, इसलिए आपसे आग्रह करता हूँ कि आप धैर्य रखें। प्रेम के साथ धैर्य का होना अनिवार्य है। मैंने अपने मित्रों को चर्खे के संबंध में टीका-टिप्पणी करते सुना है। मुझे मालूम है कि आप सब जेल जाने को तैयार हैं; लेकिन इसके लिए पहले आपको अपना हक़ और योग्यता हासिल करनी होगी और जेल जाने की क़ीमत चुकानी होगी। आपको मुजरिम के तौर पर जेल नहीं जाना है।

"मैं १९१८ से ही बागी हूँ। लेकिन उससे पहले मैं साम्राज्य का इतना राजभक्त था कि मैंने लार्ड चेम्सफोर्ड को लिखा कि मैं साम्राज्य का उतना ही राजभक्त बनना चाहता हूँ, जितना कोई अंग्रेज हो सकता है। मैंने यह इसलिए लिखा, क्योंकि सत्य पर मेरा यकीन है। सत्य ही मेरा ईश्वर है और यदि मैं अपने प्रति सच्चा होना चाहता था तो मैं इससे भिन्न लिख ही कैसे सकता था। आपका मार्ग सत्य और अहिंसा से अलग हो सकता है, पर मेरा तो वही पुराना रास्ता है। आप लोगों

की तरह ही मनुष्य होने के नाते मुझसे भी गलतियाँ हो जाती हैं। मैंने कभी स्वप्न में भी ख़याल नहीं किया कि मैं महात्मा हूँ। ईश्वर की नज़रों में हम सब समान हैं। मेरे लिए हिन्दू, मुसलमान, पारसी और हरिजन सभी एक-से हैं। कायदे आजम जिन्ना के बारे में जब मैं चर्चा करता हूँ तब कोई हल्की बात कह नहीं सकता। वह भी तो मेरे भाई हैं। वास्तव में मुझे खुशी होगी अगर वह मुझे अपनी जेब में रख सकें। एक समय था, जब मैं यह कह सकता था कि एक भी मुसलमान ऐसा नहीं है, जिसका मुझ पर विश्वास न हो। लेकिन यह मेरा दुर्भाग्य है कि आज ऐसी बात नहीं है। उर्दू के पत्रों में जो कुछ छपता है वह सब मैं नहीं पढ़ता, लेकिन शायद उनमें मेरे लिए ज्यादातर गालियाँ ही रहती हैं। इसका मुझे दुःख नहीं है। मेरा अब भी यही विश्वास है कि हिन्दू-मसलमानों के समझौता के बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। शायद आप पूछेंगे, "तो ऐसी हालत में आप लड़ाई की बात क्यों करते हैं?" मैं ऐसा इसलिए कहता हूँ कि यह लड़ाई विधान-परिषद के लिए है। यदि मुसलमानों के वोट से विधान-परिषद में आने वाले मुसलमान यह घोषणा करते हैं कि हिन्दू-मुसलमानों में कोई बात सामान्य नहीं है तो मैं उस हालत में सब आशाएं छोड़ दूँगा। लेकिन फिर भी मैं उनसे आग्रह करूँगा; क्योंकि वे कुरान-शरीफ़ पढ़ते हैं और मैंने भी उसका थोड़ा-बहुत अध्ययन किया है। मैं उनसे कहूँगा कि ईश्वर हिन्दू-मुसलमानों में कोई भेद नहीं करता।

"किसी ने कहा है कि सविनय भंग से सम्बन्ध रखने वाले प्रस्ताव में 'सामूहिक' शब्द का जिक्र नहीं किया गया। यदि यह सामूहिक सविनय भंग नहीं होना है तो फिर मुझे आपके सामने आने की क्या पड़ी थी? यदि यह सविनय भंग सामूहिक न होगा तो क्या मुट्ठी भर लोगों का होगा? तब आप मुझे इस प्रकार आपसे तर्क करते नहीं पायेंगे। आप शायद इन बातों पर गंभीरता से विचार न करते हों, पर इस सविनय भंग के ख़याल में ही मेरा मन आठों पहर जाग्रत रहता है। मेरा मन तो आपकी मदद और सहयोग से इस महान् परीक्षा को ही कार्यान्वित करने की बात सोचा करता है; क्योंकि इससे न सिर्फ भारत का ही लाभ होगा, बल्कि सारी दुनिया का कल्याण होगा।

"अब हिदायतों की बात सुन लीजिए। हर कांग्रेस कमेटी को सत्याग्रह कमेटी बन जाना चाहिए और जिन लोगों का सबके प्रति सद्भाव पैदा करने में विश्वास हो, जिनमें किसी भी रूप में छुआछूत की भावना न हो, जो नियमित रूप से कातते हों और जो सब तरह का कपड़ा छोड़कर आदतन खादी पहनते हों, उन सबके नाम लिख लेने चाहिएँ। मैं आशा रखता हूँ कि जो लोग अपनी कमेटियों में इस तरह नाम लिखाएँगे वे अपना सारा फालतू समय रचनात्मक कार्यक्रम में लगाएँगे। अगर यह आशा सच्चाई के साथ पूरी की जाएगी तो ये सत्याग्रह कमेटियाँ कताई के घर बन जाएँगी और वहाँ काम-ही-काम दिखाई देगा। ये चर्खा-संघ की शाखाओं

के साथ मिलकर और उनकी सलाह के अनुसार इतने व्यावसायिक ढंग से काम करें कि कमेटियों के इलाके में एक भी कांग्रेसी ऐसा न बच रहे, जो खद्दर के सिवाय और कोई कपड़ा पहनता हो। मैं आशा रखूँगा कि प्रान्तीय दफ्तर अखिल भारतीय महासमिति के सत्याग्रह कमेटियों के काम की प्रगति के बारे में व्यवस्थित समाचार भेजते रहें। नाम लिखाने वाले सत्याग्रही रोजनामचा रखें और नित्य जो काम करें, उसमें लिखते जायं। अपनी कताई के अलावा उनका काम यह होगा कि चवन्नी—मेम्बरों के पास जायं और उन्हें खादी इस्तेमाल करने, कातने और अपने नाम लिखाने को समझाएँ। मेम्बर ऐसा करें या न करें, उनके साथ संपर्क ज़रूर बना रहना चाहिए। हरिजनों के घर भी जाते रहना चाहिए और जहाँ तक हो सके उनकी दिक्कतें मिटानी चाहिएँ। यह कहने की तो ज़रूरत ही नहीं कि नाम उन्हीं के लिखने चाहिएं, जो जेल के कष्ट उठाने को रजामन्द और समर्थ हों। सत्याग्रही कैदियों को अपने या अपने आश्रितों के लिए किसी तरह की आर्थिक सहायता की उम्मीद नहीं रखनी चाहिए।

"यह तो हुई बात सत्याग्रह में भाग लेने वालों की। लेकिन उनसे भी कहीं बड़ा वर्ग ऐसे स्त्री-पुरुषों का है, जो भले ही कातें नहीं या जेल न जायं, मगर उनका सत्याग्रह के दोनों मुख्य सिद्धान्तों पर विश्वास है और वे लड़ाई का स्वागत करते हैं और उसकी सफलता चाहते हैं। इन्हें मैं निष्क्रिय सत्याग्रही कहूँगा। अगर ये लोग खुद जेल न जाकर या मजदूरों या विद्यार्थियों की हड़तालों में मदद न देकर या जल्दबाजी न कर के लड़ाई के प्रवाह में दखल न दें तो उनकी मदद सक्रिय सत्याग्रहियों के बराबर ही गिनी जायगी। जो बहुत उत्साह या और किसी कारणवश इन हिदायतों के खिलाफ़ चलेंगे, वे लड़ाई को हानि पहुँचाएँगे और संभव है, उसे बीच में ही रोक देने को मुझे मजबूर कर दें।

"मेरे दिमाग में यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि यदि राजनैतिक विचार रखने वाले हिन्दुस्तानियों का सहयोग मिल जाय तो भारत को शुद्ध अहिंसा के जरिये आजादी हासिल होना पूरी तरह संभव है। हम जो अहिंसा का दंभ करते हैं उस पर दुनिया का विश्वास नहीं है। दुनिया की बात जाने दीजिए, मैं तो सेनापति बन बैठा हूँ। मैंने ही बार-बार स्वीकार किया है कि हमारे दिलों में हिंसा है और अक्सर आपस के व्यवहार में एक दूसरे के साथ हम हिंसक हो जाते हैं। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि जब तक हममें हिंसा है तब तक मैं नहीं लड़ सकूँगा। लेकिन जिस सूची के बनाने की मैंने तजवीज की है यदि वह सच्ची हुई और साहस कर के बाहर रहने वाले लोगों ने लड़ाई के सीधे प्रवाह में बाधा न डाली तो मैं जरूर लड़ूँगा।"

प्रतिक्रिया की भावना

गांधीजी की योजना निश्चित रूप से जिन सिद्धान्तों पर आधारित थी उनमें से

एक सिद्धान्त कातना था और दूसरा अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करना नहीं, बल्कि उनका हृदय-परिवर्तन करके उन्हें भारत का सेवक बनाना था। इसका अर्थ यह नहीं था कि वह साम्राज्यवाद के पक्ष में थे। उन्होंने स्वयं कहा, "यदि मेरा प्रेम गुलाब की पंखुड़ियों की तरह मुलायम है तो वह कांच के टुकड़े या पत्थर से ज्यादा कठोर भी हो सकता है।" उनकी पत्नी और सब से बड़े बेटे को कठोर प्रेम का आस्वादन करना पड़ा था। गांधीजी ने कहा, "मेरा ख़याल है कि मैंने सुभाष बाबू को हमेशा के लिए पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया है; लेकिन मुझे यह शिष्टता छोड़नी पड़ी। उनके ऊपर जो प्रतिबन्ध लगाया गया है उसके लिए मुझे दु:ख और खेद के साथ स्वीकृति देनी पड़ी।" इसी तरह से उन्होंने डा० खरे और वीर नरीमैन के विरुद्ध की गई अनुशासनात्मक कार्रवाई के सम्बन्ध में भी अपनी सहमति प्रदान करने के लिए खेद प्रकट किया। अंग्रेजों के प्रति भी उनका रवैया ऐसा ही था। चर्खा उनके प्रेम के कार्यक्रम का एक प्रधान अंग बन गया था। उनके विचार से यदि कोई हिंसा का मुकाबला हिंसा से करने की व्यवस्था करता है या सोचता है तो उसका परिणाम यही संभव है कि उसका जीवन संकटपूर्ण बना रहेगा और उसे अपनी रक्षा के लिए बड़े-बड़े शहर और शस्त्रागार बनाने पड़ेंगे। भारत का प्राचीन देहाती प्रजातंत्र अहिंसा पर आधारित सभ्यता का प्रतीक था। चर्खे का यही सिद्धान्त है। एक सप्ताह बाद गांधीजी ने फिर इसी विषय को उठाया और बताया कि किस प्रकार श्री जयप्रकाशनारायण और उत्तर प्रदेश के शिक्षामंत्री श्री संपूर्णानन्द ने प्रतिज्ञा-पत्र में किये गए संशोधनों का विरोध किया है। रामगढ़ अधिवेशन तक और उसके बाद भी सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करने के सम्बन्ध में उन्होंने जिस हिचकिचाहट और अन्यमनस्कता का परिचय दिया, उसका एक कारण यह भी था। स्वाधीनता-दिवस पर देश में कहीं-कहीं अनुशासन-भंग की घटनाएं देखने में आईं। सवाल यह नहीं था कि अनुशासन-भंग की ये घटनाएं कितनी थीं, बल्कि प्रश्न तो उसके पीछे काम करने वाली प्रचलित भावना का था। ज्यों-ज्यों रामगढ़ अधिवेशन करीब आ रहा था—विरोध-प्रदर्शन के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी अफवाहें सुनाई दे रही थीं और यहाँ तक कहा जा रहा था कि शायद कांग्रेस-नगर में बिस्फोट हो जाय। सौभाग्य से रामगढ़ अधिवेशन के समय ऐसी आशंकाएँ निर्मूल साबित हुईं। लेकिन रामगढ़ को अग्नि-वर्षा और बिस्फोट की बजाय वर्षा का सामना करना पड़ा।

कांग्रेस-विरोधी सम्मेलन

साम्यवादियों, समाजवादियों, राष्ट्रीय प्रजातंत्रवादियों, किसानों और अग्रगामी दल वालों के विरोध और मतभेदों का ऊपर जिक्र किया गया है। बाद के दोनों दल तो संयुक्त रूप से कांग्रेस का विरोध करने पर उतर आए और उन्होंने

किसान-नगर नामक स्थान पर सुभाष बाबू की अध्यक्षता में एक समान्तर सम्मेलन किया। उनका उद्देश्य कांग्रेस कार्यसमिति के पटना वाले प्रस्ताव का, जिसे रामगढ़ अधिवेशन में पेश किया जाना था, विरोध करना था। इससे वे यह साबित करना चाहते थे कि जिन लोगों का यह ख़याल था कि कांग्रेस ने समझौता न करने का रवैया अख़्तियार किया है, वे गलती पर हैं। उन्हें इस प्रस्ताव में खासकर उसके दूसरे भाग में बहुत-सी खामियां नज़र आईं, जिनके कारण उसका महत्व ही जाता रहा था। सुभाष बाबू ने बताया कि इस प्रस्ताव के पास होते ही गांधीजी यह कहने लगे हैं कि उन्होंने भविष्य के लिए समझौते का दरवाजा बन्द नहीं कर दिया हैं। सविनय भंग के बारे में गांधीजी के विचारों से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। सुभाष बाबू ने कहा, "अगर इस देश में साम्राज्यवाद के साथ समझौता होगा तो उसका परिणाम यह होगा कि भविष्य में भारतीय वामपक्षियों को न केवल साम्राज्यवाद से ही जूझना पड़ेगा, बल्कि उसके भारतीय सहयोगियों से भी टक्कर लेनी होगी। इसका परिणाम तो यही होगा कि साम्राज्यवाद के खिलाफ़ लड़ी जाने वाली राष्ट्रीय लड़ाई स्वयं भारतीयों की घरेलू लड़ाई में ही परिवर्तित हो जायगी।"

यह सम्मेलन कांग्रेस के अधिवेशन से पहले ही हुआ और इसमें बड़ी संख्या में लोग शामिल हुए और उन्होंने घोषणा की कि वे लड़ाई के लिए तैयार हैं।

सम्मेलन का उद्देश्य देश की उन सभी साम्राज्यवादी ताकतों का संगठन करना था, जो साम्राज्यवाद से सुलह न करने पर आमादा थीं। सुभाष बाबू ने एक ओर तो कांग्रेस के प्रस्तावों और कार्यसमिति के सदस्यों के वक्तव्यों और दूसरी ओर गांधीजी तथा वामपक्षी नेताओं के वक्तव्यों की परस्पर विरोधी बातों पर प्रकाश डाला। उन्होंने विधान-परिषद् की मांग को अनुचित बताते हुए इस बात पर प्रकाश डाला कि किस तरह से नरम दल वाले लोग पृथक् निर्वाचन और धारासभाओं के मौजूदा मताधिकार को ही विधान-परिषद् का आधार मानने को तैयार हैं। सम्मेलन ने एक प्रस्ताव पास करके इसके प्रधान और स्वागत-समिति से सीधी कार्रवाई शुरू करने के लिए एक अखिल भारतीय युद्ध-समिति बनाने को कहा और यह आन्दोलन अप्रैल में ही छेड़ देने को कहा। प्रस्ताव में चर्खा कातने और रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर देने की निन्दा की गई और भारतीय जनता को चेतावनी दी गई कि उसे विधान-परिषद् की उपहासास्पद मांग के भ्रमजाल में पड़कर गुमराह नहीं होना चाहिए। नागरिक अधिकारों की स्वतन्त्रता पर किये गए आक्रमणों के विरुद्ध एक जोरदार आन्दोलन आरम्भ करना चाहिए और स्वतंत्रता-प्रेमियों को देश की उस गरीब और जागरूक जनता—किसानों और मजदूरों—के साथ घनिष्ठ-संपर्क स्थापित करना चाहिए, जो आर्थिक स्वतंत्रता के लिए हमारी इस लड़ाई में शामिल हो रही है। इस काम में जितनी ही देर होगी

जनता में उतनी ही निराशा फैलेगी, उनका नैतिक बल उतना ही कम होता जायगा और वे उतना ही अधिक असमंजस में पड़ जाएँगे। स्थानीय संग्रामों को और जोरदार बना दिया जाना चाहिए और जहाँ-कहीं जरूरी समझा जाय और संभव हो, नये आन्दोलन छेड़ देने चाहिएँ। अन्त में सुभाष बाबू ने लोगों से आन्दोलन के लिए तैयार रहने की अपील की।

गांधी-सेवा-संघ का अधिवेशन

२० फरवरी, १९४० को ढाका में मलिकन्दा में गांधी-सेवा-संघ का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। गांधीजी ने ग्राम-उद्योग-प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया। उनके भाषण से पहले विरोधी नारे लगाए गए और बहुत से गांधी-विरोधी में परचे बांटे गए। इस घटना का जिक्र करते हुए गांधीजी ने कहा, "अभी मैंने कुछ लोगों को 'गांधी-वाद का विनाश हो' के नारे लगाते हुए सुना है। जो लोग गांधीवाद को ध्वंस करना चाहते हैं, उन्हें ऐसा करने का पूरा-पूरा हक है। आपको विरोधी नारों अथवा उसके विरुद्ध लगाए गए नारों से उत्तेजित नहीं होना चाहिए। आप उन्हें शान्ति से सहन करें। जो लोग गांधीवाद के खिलाफ कुछ कहना चाहते हैं, उन्हें ऐसा करने की पूरी आजादी दीजिए। मैं नहीं जानता गांधीवाद से उनका मतलब क्या है। मैंने कोई नई बात नहीं कही। मैंने तो सिर्फ जो कुछ पहले से मौजूद है, उसे नई शक्ल में पेश करने की कोशिश की है।" गांधीजी ने सेवासंघ के सदस्यों को सलाह दी कि वे 'राजनीति' को बिल्कुल भूल जाएँ और संघ के सदस्य के नाते उसमें भाग लेना बन्द कर दें। संघ का कोई भी सदस्य कांग्रेस का सदस्य नहीं बन सकता। सिर्फ डा० राजेन्द्र प्रसाद और सरदार वल्लभभाई पटेल को इस बारे में छूट दे दी गई। गांधीजी और उनके सहयोगी कलकत्ता होकर वापस लौटे और दूसरे ही स्टेशन पर किसी अज्ञात व्यक्ति ने उनके डिब्बे में एक जूता फेंका।

लार्ड जेटलैण्ड का वक्तव्य

रामगढ़ के बाद के जमाने में या यों कहिये कि कांग्रेस के नये साल के मौके पर भी पिछले सालों की तरह ही ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों ने वे ही बातें दोहराईं, जो वे पिछले कई महीनों से कहते चले आ रहे थे। श्री एमरी के भारतमंत्री बनने से पहले लार्ड जेटलैण्ड ने अपने पद से अवकाश लेने के पूर्व वही पुराना राग फिर अलापा कि हमारा उद्देश्य भारत पर जबरदस्ती कोई बात लादना नहीं है; बल्कि हम तो समझौते से ही आगे बढ़ना चाहते हैं। भारतीयों को अपने लिए उपयुक्त विधान स्वयं ही तैयार करना चाहिए, लेकिन पिछले दो सौ साल से ब्रिटन का भारत के साथ जो सम्बन्ध चला आ रहा है, उसे देखते हुए वह एकदम उससे अपना

नाता नहीं तोड़ सकता। देशी राजाओं, रक्षा के प्रश्न, अल्पसंख्यकों, ब्रिटिश हितों और आठ करोड़ मुसलमानों की दुहाई देने के बाद उन्होंने रामगढ़ में उठाये गए प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि अगर सत्याग्रह शुरू किया गया तो सरकार को विवश होकर उसका पूरी तरह से मुकाबला करना पड़ेगा। अन्त में उन्होंने सवाल किया कि क्या कांग्रेस देश की उस एकता के प्रश्न पर विचार करना बन्द कर देगी, जिसके लिए वे स्वयं इतने उत्सुक हैं? इस सवाल के जवाब पर ही भारत का भाग्य आश्रित है। लार्ड जेटलैण्ड ने यह वक्तव्य भारतीय विधान की धारा ९३ के अन्तर्गत स्थापित की गई सरकारों को जारी रखने के लिए पार्लमेण्ट की स्वीकृति के समय दिया।

हमारी स्थिति

ऐसी स्थिति में सत्याग्रह अनिवार्य होता जा रहा था। कांग्रेस ने रामगढ़ के बाद देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करने की आवश्यकता पर भी विचार किया। गांधीजी की हिदायतों के मुताबिक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों ने सत्याग्रह कमेटियों के रूप में अपना काम जोरों से शुरू कर दिया और वे सक्रिय तथा निष्क्रिय सत्याग्रहियों की भरती में जुट गईं। उन्हें यह हिदायत भी की गई कि वे अपने आन्तरिक मामलों और रचनात्मक कार्यक्रम की प्रगति का भी विवरण तैयार करती रहें। यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि कांग्रेस कमेटियों के जो सदस्य निर्धारित प्रतिज्ञा लेने में असमर्थ हों और कांग्रेस के अनुशासन में रहते हुए आन्दोलन की जिम्मेदारी अपने कन्धों पर न उठा सकते हों, उन्हें कांग्रेस में अपने पदों से हट जाना चाहिये। सविनय भंग शुरू होने से पहले इन शर्तों की पूर्ति अत्यावश्यक बताई गई थी।

अप्रैल, १९४० में जो स्थिति पैदा हो गई थी, निःसंदेह वह बड़ी विकट थी। देश की नैय्या अज्ञात दिशा में बही चली जा रही थी; क्योंकि उसके कर्णधार को अपने लक्ष्य का ज्ञान न था। राजनैतिक दल रक्षात्मक खेल खेल रहे थे। दोनों ही दल आक्रमण करने में आनाकानी कर रहे थे—इसका कारण डर, कायरता या कमजोरी नहीं थी; बल्कि दोनों ही दल वास्तव में लड़ना नहीं चाहते थे। वे इसके परिणामस्वरूप पैदा होने वाली कटुता, प्रतिशोध की भावना और स्थायी शत्रुता से बचना चाहते थे। जहाँ तक कांग्रेस का सवाल है, उसने साफ-साफ कह दिया था कि अगर अंग्रेज़ भारत के ऊपर से अपना साम्राज्यवादी पंजा उठा लें तो वह उनके प्रति मित्रता का हाथ बढ़ाने को तैयार है। इस बीच एक तरह से अग्रगामी दल ने अपना अल्टीमेटम देकर सरकार को कुछ करने के लिए मजबूर कर दिया था। सरकार इसके परिणामस्वरूप होने वाली जोरदार प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर सकती थी, लेकिन इसके विपरीत वह इस दल को कोई भी कार्रवाई नहीं करने देना चाहती थी। परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय सप्ताह में देश के एक दल को

अनिवार्य परिस्थितियों में संग्राम छेड़ देना पड़ा। देश के उन अधिकांश कांग्रेसजनों के सामने, जिन्हें कांग्रेस कार्यसमिति के आदेश-पालन में दृढ़ विश्वास था, यह समस्या थी कि ऐसे नाजुक मौक़े पर उन्हें क्या करना चाहिये। उनका नेता, उनका संगठन और उनके लिए आदेश मौजूद थे और इनके फलस्वरूप देश को गांधीजी की शर्तों के अन्तर्गत आगामी संग्राम के लिए स्त्री-पुरुषों को तैयार करना था। इस नाजुक घड़ी में जल्दबाजी करना तबाही को बुलावा देना था।

इस जमाने में ब्रिटिश साम्राज्य की शासन-व्यवस्था में बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुईं। ब्रिटेन के मंत्रिमंडल में परिवर्तन हुआ। १० मई १९४० को लार्ड जेटलैण्ड की जगह श्री एमरी नियुक्त किये गये। इससे पहले वे ब्रिटेन के मंत्रिमंडल में कई पदों पर रह चुके थे। १९३९ के पतझड़ में जब एडवर्ड टाम्सन वर्धा आये थे तब उन्होंने कहा था कि भविष्य में ब्रिटेन के छः राजनीतिज्ञ भारत की समस्या पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेंगे। इनमें से एक श्री एमरी और दूसरे श्री विंस्टन चर्चिल थे। श्री चर्चिल के बारे में कुछ अंग्रेज़ों का मत था कि वह भारतीय स्थिति पर काबू पा लेंगे। वह या तो भारतीयों को अपना विश्वासपात्र बना लेंगे और या फिर समझौते के सारे दरवाजे बन्द कर के कहेंगे, "मार्शल-ला"—और कोई बात नहीं सुनाई जाएगी। इसलिए यह कहा जा रहा था कि भारत की स्थिति अब त्रिशंकु की भांति बीच में ही लटकी नहीं रहेगी। उसके बारे में अच्छा या बुरा कोई भी निर्णय कर लिया जायगा। सात महीने से अंग्रेज़ आँखमिचौनी कर रहे थे; पर अब स्थिति बदल गई थी और सीधी-सादी बात करने वाला व्यक्ति रंगमंच पर विद्यमान था। इसलिए गतिरोध का भी अन्त होने वाला था।

सम्राट का संदेश

परन्तु भारत के भाग्य में तो सिवाय निराशा के और कुछ नहीं था। ब्रिटेन की सरकार में परिवर्तन होने के कुछ समय बाद ही दो उल्लेखनीय घोषणाएँ हुईं। एक घोषणा सम्राट् द्वारा की गई और दूसरी श्री एमरी द्वारा। महारानी विक्टोरिया की मृत्यु के बाद से २४ मई प्रतिवर्ष साम्राज्य-दिवस के रूप में मनाई जाती है। इसकी नींव अर्लमीथ ने डाली थी। पिछले चालीस बरस से यह दिन मनाया जा रहा था और १९४० का यह दिवस बहुत महत्वपूर्ण था। उस दिन ब्रिटेन के सम्राट् ने नीचे लिखा संदेश ब्राडकास्ट किया—

"आज मैं इस साम्राज्य के सम्बन्ध में एक बिल्कुल नई कल्पना पर प्रकाश डालने जा रहा हूँ। अब इसका महत्व अधिक स्पष्ट और असंदिग्ध नजर आता है। इस समय इसका संघर्ष एक दूषित और निन्दनीय व्यवस्था से हो रहा है, जिसके साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती। हमारे शत्रु हमारे खिलाफ़ एक शब्द—साम्राज्यवाद—का प्रयोग करते हैं। इससे उनका मतलब अधिकार और दूसरे

के प्रदेश पर कब्जा है। परन्तु हम जो इस साम्राज्य के स्वतन्त्र वासी हैं, इस शब्द का प्रयोग उन्हीं को मुँह तोड़ जवाब देने के लिए करते हैं। उनकी ही भावनाएँ दूषित हैं। हमारा उद्देश्य तो हमेशा से शान्ति रहा है।"

श्री एमरी का वक्तव्य

श्री एमरी ने घोषणा की : "पिछली सरकार की भांति हमारी नीति का उद्देश्य भी ब्रिटिश कामनवेल्थ (राष्ट्रमंडल) के अन्तर्गत भारत को स्वतन्त्र और बराबरी का दर्जा देना है।" आपने यह बात भी स्वीकार की कि भारतीय परिस्थितियों और भारतीय दृष्टिकोण के उपयुक्त कोई विधान तैयार करन की जिम्मेवारी स्वयं भारतीयों पर ही है। कामन सभा में, अप्रैल, १९४० में लार्ड जेटलैण्ड के शब्दों को दोहराते हुए श्री एमरी ने कहा कि ब्रिटिश सरकार का इरादा वर्ष के अन्त में वर्तमान योजना की अन्तर्निहित नीति और अन्य बातों के बारे में फिर से जांच-पड़ताल करने का है और हमारी नीति भारत के सिर पर कोई बात लादने के बजाय उससे समझौता करने की है। उन्होंने कहा, "मेरी राय में भारत के लिए सर्वोत्तम विधान परिषद् विभिन्न प्रान्तों के १० या १२ प्रतिनिधियों द्वारा तैयार की जानी चाहिये, जिसमें यूरोपियनों सहित सभी वर्गों के लोग हों। भारत की आन्तरिक, बाहरी और सामरिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थिति इस बात की इजाजत नहीं देती कि उसके लिए भी अन्य स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेशों-जैसी विधान परिषद् बनाई जाए। यह प्रश्न किये जाने पर कि इस नाजुक घड़ी में भारतीयों के लिए क्या सलाह दे सकते हैं, श्री एमरी ने कहा, "अगर कांग्रेस वाइसराय से सहयोग करके काम कर सके तो मुझे इससे बड़ी खुशी होगी। लेकिन अगर कांग्रेस ने वर्तमान परिस्थिति के प्रतिकूल कोई काम किया तो यह निस्संदेह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण होगा।"

स्टैफर्डक्रिप्स के विचार

यह स्पष्ट हो गया था कि लड़ाई के फलस्वरूप मिलने वाली आजादी में से भारत को कुछ नहीं मिलेगा, बल्कि उसे तो उसका पूरा वेग सहन करना पड़ेगा। उसे युद्ध के प्रहार ही सहन करने होंगे। सिर्फ सर स्टैफर्डक्रिप्स ही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने भारत से लौटने पर भारत के बारे में कुछ सहानुभूतिपूर्ण शब्द कहे। २६ अक्टूबर, १९३९ को कामन सभा में दिये गए उनके वक्तव्य का काफी महत्व था, क्योंकि उसमें उन्होंने भारत और उसकी समस्याओं के निराकरण का एक उपाय विधानपरिषद बताया था। उनका कहना था कि सभी श्रेणियों के भारतीयों में यह भावना जोर पकड़ रही है कि पार्लमेण्ट भारतीय समस्याओं पर बहुत कम ध्यान देती है। कांग्रेस की मांग वस्तुतः राष्ट्रीय मांग है। इसमें सभी विचारों

के लोग शामिल हैं और यह भारतीय जनता की घोषणा है, लेकिन इतने पर भी आशंका की जाती है कि शायद ब्रिटिश सरकार भी इसकी उपेक्षा कर दे। इसका परिणाम सविनय भंग आन्दोलन होगा, क्योंकि कांग्रेस का यकीन है कि इस प्रकार सारी जनता की नैतिक शक्ति इस मांग के पीछे होगी। कांग्रेस का अन्तिम हथियार सारे देश में एक व्यापक हड़ताल की घोषणा होगी। किसानों और मजदूरों का ऐसा विचार है कि कांग्रेस उन्हें जमीदारों और पूंजीपतियों के पंजे से नजात दिलाएगी और ठीक यही एक कारण है कि कांग्रेस का उनके ऊपर बड़ा असर है। आज अधिकांश भारतीय बड़ी आतुरता से कांग्रेस की ओर देख रहे हैं और इस प्रतीक्षा में हैं कि वह उन्हें क्या आदेश देती है। वे भारत के विभाजन के लिए श्री जिन्ना की योजना का विरोध करते हैं। गांधी जी को शान्तपूर्ण नीत पर पूरा यकीन है और उनका विचार है कि हिंसात्मक उपायों से नैतिक ताकत कमजोर पड़ती है और उससे सत्य की अजेय शक्ति में अविश्वास की भावना प्रकट होती है। मैं सरकार पर जोर दूंगा कि वह असंदिग्ध रूप में यह घोषणा कर दे कि लड़ाई समाप्त हो जाने के बाद एक साल के अन्दर उसे स्वराज्य दे दिया जायगा और 'मेरा विश्वास है कि अगर इस किस्म की कोई घोषणा की जाय तो उससे सांप्रदायिक समस्या भी सुलझ जाएगी और संभव है कि जब तक लड़ाई खत्म न हो जाय कांग्रेस भी शान्त होकर बैठ रहे।

लार्ड प्रिवीसील के कथन का प्रतिवाद करते हुए सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने कहा कि सांप्रदायिक प्रश्न की कठिनाई के कारण भारत के लिए केन्द्रीय सरकार की स्थापना का कोई सन्तोषजनक तरीका ढूंढ़ निकालना जटिल हो गया है। यही बात पोलैण्ड के बारे में भी कही जा सकती थी, जहाँ रूसी, यहूदी, जर्मन और पोल रहते हैं। यही बात चेकोस्लोवाकिया के लिए भी कही जा सकती थी, जहाँ सूडेटन, चेक, और स्लोवाक रहते हैं; और अगर यह दलील प्रजातंत्र की बिना पर पेश की जाय तो मैं इसे समझने में असमर्थ हूं, क्योंकि इस तरह से एक अल्पसंख्यक जाति को संरक्षण देने के लिए बहुसंख्यक जाति को उसके उचित अधिकारों से वंचित किया जाता है। यह आवश्यक हो सकता है कि बहुमत के कुछ अधिकारों में संशोधन किया जाय और उसे इस पर सहमत कर लिया जाय, जैसा कि कांग्रेस ने स्वेच्छा से किया है, लेकिन आपके लिए बहुमत से उसके अधिकार इसलिए छीनना न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता कि आप अल्पसंख्यकों के संरक्षण का दावा करते हैं। अगर आप ऐसा करते हैं तो वास्तव में बहुमत को अल्पमत में परिवर्तित करते हैं।

अगर आप प्रजातंत्रात्मक सरकार के समर्थक हैं तो अल्पमत के लिए जरूरी हो जाता है कि वह बहुमत का शासन स्वीकार करे और यही बात हम आये दिन इस देश में देख रहे हैं। अगर आप प्रजातंत्र को मानते हैं, अगर आप प्रजातंत्र-

पद्धति को अपनाना चाहते हैं, जिसका मतलब यह होता है कि आप यह जान सकें कि कौन-सा वर्ग, अथवा जाति या दल बहुमत में हैं, तो आपको इस पद्धति का परिणाम भी स्वीकार करना होगा। और इस वक्त, आप चाहें या न चाहें, कांग्रेस दल का ब्रिटिश भारत में बहुमत है।

यह बताने से पूर्व कि इस स्थिति को सुलझाने के लिए हमें कौन-से व्यावहारिक तरीकों को अपनाना चाहिये, मैं एक और विषय का जिक्र करना चाहता हूँ। अगर हम इस वक्त भारत को स्वराज्य देने से इन्कार करते हैं तो उसका यूरोप की परिस्थिति और यूरोप में हमारी कठिनाइयों पर क्या प्रभाव पड़ सकता है? मेरा खयाल है कि यह प्रभाव तीन तरीकों से पड़ सकता है। पहला तो यह कि स्वयं हमारे ही लोगों पर यह प्रभाव पड़ेगा कि हम आजादी और जमहूरियत के बारे में जो कुछ कहते हैं, उस पर यकीन नहीं किया जा सकता। इससे हमारे युद्ध-प्रयत्न की एकता और उसकी प्रगति कम हो जाएगी। दूसरा यह कि तटस्थ देशों में, खासकर अमरीका में, जहाँ बहुत से लोग भारत की समस्याओं में गहरी दिलचस्पी रखते हैं तटस्थता की नीति और ब्रिटिश-विरोधी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलेगा। तीसरा यह एक विरोधी और असहयोगी भारत। हमें यह न भूलना चाहिए कि भारत के इस रुख के परिणामस्वरूप संघर्ष के खतरे हैं। और इससे हमें अपनी कठिनाइयाँ सुलझाने में मदद मिलने के बजाय संभवत: रुकावटों का ही सामना करना पड़ेगा। इस बात का हमें उचित रूप से तथा ईमानदारी के साथ मुकाबला करना होगा।

...मेरा सुझाव यह था कि अगर हम यह दावा करते हैं कि हम लड़ाई प्रजातंत्र और आजादी के लिए लड़ रहे हैं और वही चीज हम ब्रिटिश साम्राज्य के एक हिस्से पर लागू नहीं करते तो भारतीय जनता कहेगी कि "यह एक और उदाहरण है जब ब्रिटेन ने कहा कुछ है और किया कुछ और ही है।" इसलिए मेरे खयाल से हमें यह फैसला करना है कि क्या हम वास्तव में भारत की जनता को स्वराज्य देना चाहते हैं—और मुझे यकीन है कि अगर हमने ऐसा ही किया तो वह देश हमारा एक शक्तिशाली सहयोगी राष्ट्र बन जाएगा और भविष्य में सदा के लिए दोस्ती का हाथ बटाएगा।

कांग्रेस ने हमसे अपने युद्ध-उद्देश्यों और भारत के बारे में अपने इरादों पर प्रकाश डालने को कहा है—ऐसी हालत में हमारा क्या जवाब होना चाहिए? मेरा सुझाव है कि हमें यह फैसला अवश्य करना चाहिए और अभी करना चाहिए।

फ्रांस के पतन का प्रभाव

इसके बाद ५ जून को यह घोषणा की गई कि ब्रिटिश-राजदूत ने मो० मोलोतोव को सूचित कर दिया है कि ब्रिटिश सरकार का इरादा सर विलियम सीड्स

की जगह सर स्टैफर्ड क्रिप्स को मास्को में ब्रिटिश-राजदूत नियुक्त करने का है और उनका पद साधारण राजदूत का होगा, जिसे को असाधारण कार्य न करना होगा। रूसी सरकार को इस पर कोई आपत्ति नहीं थी। सर स्टैफर्ड क्रिप्स की नियुक्ति ब्रिटिश राजनीति का एक महान् आश्चर्य था। ३९ की सर्दियों में वह कलकत्ता देखने गए और वहां से चुंगकिंग गए और हवाई जहाज से चीन का दौरा करके मास्को होते हुए इंगलैण्ड वापस पहुंचे। मई के अन्तिम सप्ताह और जून १९४० के पहले सप्ताह में भारत में जो बेचैनी और आन्दोलन देखने में आया उसका वास्तविक कारण उस समय फ्रांस में होने वाली घटनाओं और युद्ध की प्रगति की प्रतिक्रिया था। फ्रांस उस समय युद्ध का प्रधान केन्द्र बन चुका था। वहां कालचक्र बड़ी तेजी से चल रहा था। डेंजिग का पतन, चेकोस्लोवाकिया की पराजय, पोलैण्ड का विनाश, हालैण्ड, बेल्जियम और नार्वे का आक्रमण—ये सभी युद्ध की उस प्रगति की श्रृंखलाएँ थीं, जिसकी इतिश्री १४ जून को जाकर फ्रांस के पतन के रूप में हुई। १४ जून को कांग्रेस की कार्यसमिति का जलसा हो रहा था और फ्रांस के पतन की खबर १५ और १६ जून को रेडियो के जरिये जनता तक पहुंची। अब आगे क्या होगा? हिटलर को रोका नहीं जा सकता था? इंगलैंड पर आक्रमण उसके दिमाग में उस समय चक्कर लगा रहा था। फ्रांस के पतन से उसकी डींग और बन्दर-भभकियों को और भी प्रोत्साहन मिला। अगर इंगलैण्ड पर आक्रमण होता है तो भारत की स्थिति क्या होगी? पिछले १५० वर्षों से भारत इंगलैण्ड के साथ बंधा हुआ था। कांग्रेस के लिये अपनी स्थिति के बारे में इतना अधिक सोचने की आवश्यकता नहीं थी, जितना कि इस बात पर जोर देने की थी कि भारत का ध्येय पूर्ण स्वाधीनता है। एक सप्ताह तक के गहरे सोच-विचार के बाद कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमें बहुत से महत्वपूर्ण विषय उठाए गये।

कार्यसमिति के निश्चय

कांग्रेस कार्यसमिति ने फैसला किया कि उसकी बैठकें थोड़ी-थोड़ी देर बाद हुआ करेंगी। उसने अपने सदस्यों को हिदायत की कि वे शीघ्र बुलाए जाने के लिए हमेशा तैयार रहा करें। इसके अलावा कार्यसमिति ने जुलाई, १९४० के अन्त में अखिल भारतीय महासमिति की बैठक बुलाने का भी फैसला किया। इन बातों का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने स्थिति की गम्भीरता का अनुभव किया। इस बीच कांग्रेस अपनी अधीनस्थ सभी कमेटियों को संगठन का काम जोरों से चालू रखने और अपनी परीक्षा के समय के लिए प्रारम्भिक तैयारियाँ करने के लिए प्रोत्साहित करती रही। बड़ी संख्या में प्रतिज्ञापत्र जारी किये गये और कार्यसमिति ने अपनी ओर से श्री आर० एस० पण्डित को स्वयंसेवक-आन्दो-

लन की प्रगति के सम्बन्ध में पूरी-पूरी और वास्तविक जानकारी हासिल करने के लिए सभी प्रान्तों का दौरा करने का आदेश दिया। कांग्रेस-संगठन के अन्तर्गत अनुशासन बनाये रखने के सम्बन्ध में अधीनस्थ समितियों से पाक्षिक रिपोर्ट भेजने को कहा गया। खादी को प्रोत्साहन देने, हरिजनों और अल्पसंख्यकों के साथ घनिष्ठ संपर्क-स्थापन, कांग्रेस कमेटियों के दफ्तरों की कार्यकुशलता, सत्याग्रह की तैयारी के सम्बन्ध में कांग्रेस के सदस्यों और जनता की प्रतिक्रिया, इस दिशा में मातहत कमेटियों और स्थानीय संस्थाओं के सहयोग, प्रचार-कार्य और प्रान्तों के ट्रेनिंग कैम्पों (शिक्षण-शिविरों) के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए एक विस्तृत प्रश्नावली जारी की गई।

यूरोप की लड़ाई में जो आश्चर्यजनक घटनाएं घट रही थीं उन्हें देखते हुए कांग्रेस महासमिति की बैठक बुलाना आवश्यक हो गया था। इसके अलावा कांग्रेस कार्य-समिति ने जो नया कदम उठाया था उसकी भी उसे स्वीकृति लेनी थी और खास कर रामगढ़ के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए उसे इस समस्या के विभिन्न पहलुओं की फिर से जांच-पड़ताल करनी थी। इसलिए कार्यसमिति को अपनी बैठक ३ जुलाई को दिल्ली में बुलानी पड़ी।

दिल्ली में पुरानी कठिनाइयां फिर से नये रूप में और नये ज़ोर में प्रकट हुईं। गांधीजी अहिंसा के प्रश्न को फिर से सामने लाए। उन्होंने समिति का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि २१ जून को वर्धा में उसने जो वक्तव्य दिया था उससे कांग्रेसजनों में भ्रम फैला हुआ हैं। इसलिए गांधीजी चाहते थे कि कार्यसमिति फिर से यह ऐलान करे कि जहां तक अन्दरूनी फसाद का सवाल है उसका मुकाबला करने के लिए वह सिर्फ अहिंसा और कांग्रेस के अनुशासन में बँधे हुए कांग्रेस के स्वयंसेवकों पर ही आश्रित रहेगी और हमारे स्वयंसेवक सिविक गार्डों तथा अन्य ऐसे ही संगठनों से केवल अहिंसा के आधार पर ही सहयोग करेंगे। जहां तक बाहरी हमले के मुकाबले का सवाल है, गांधीजी का विचार था कि इससे पहले इस प्रश्न पर विचार करने का कांग्रेस को कभी मौका नहीं मिला था, परन्तु यह खयाल करके कि यूरोप के राष्ट्र हिंसा के बल पर अपनी रक्षा करने में असमर्थ साबित हुए हैं, कांग्रेस का फर्ज हो जाता है कि वह इस बारे में भी कोई फैसला करे। जब तक ऐसा मौका न आये कांग्रेस को सारी स्थिति पर खुले दिमाग से सोच-विचार करना चाहिये। इसका मतलब यह था कि कांग्रेसी सैनिक ट्रेनिंग या उन कार्रवाइयों में भाग न लें जिनका उद्देश्य भारत को लड़ाई के लिए तैयार करना था।

वर्धा की तरह दिल्ली में भी स्वयं गांधीजी ने एक प्रस्ताव का मसविदा तैयार किया, लेकिन इस बार भी उनके प्रस्ताव की जगह ७ जुलाई, १९४० को एक नया प्रस्ताव पास किया गया। कांग्रेस कार्यसमिति ने सारी स्थिति की फिर से

समीक्षा करते हुए अनुभव किया कि इस समय ब्रिटेन और भारत को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है उन्हें सुलझाने का एकमात्र उपाय ब्रिटेन-द्वारा भारत की पूर्ण स्वाधीनता की स्वीकृति है और इसे तत्काल कार्य-रूप में परिणत करने के लिए उसे केन्द्र में एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार कायम करनी चाहिये, जो यद्यपि एक अस्थायी साधन के रूप में बनाई जाए, तो भी वह इस तरह से स्थापित की जाय कि उसे केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सभी निर्वाचित वर्गों का विश्वास प्राप्त रहे और इसके अलावा प्रान्तों की ज़िम्मेदार सरकारों का सहयोग भी उसे मिलता रहे।" कार्यसमिति ने ऐलान किया कि अगर इन उपायों को अपनाया गया तो कांग्रेस देश की रक्षा के लिए प्रभावशाली संगठन में पूरा-पूरा सहयोग देने को तैयार हो जायगी। इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में जितनी बार गलत-फहमियाँ फैलीं और उसका गलत अर्थ किया गया, उतनी ही बार उनका फिर से विश्लेषण करना भी आवश्यक हो गया।

मौलाना आज़ाद और जिन्ना साहब

अब हम कुछ देर के लिए अपने मुख्य विषय को छोड़कर एक और विषय उठाना चाहते हैं। जुलाई के पहले सप्ताह से पूर्व दिल्ली में पंजाब और बंगाल के प्रधान मंत्रियों तथा कांग्रेसी नेताओं के बीच कुछ बातचीत हुई। स्वयं मौलाना आजाद सर सिकन्दर से मिल चुके थे। श्री जिन्ना ने इसका विरोध किया और यह कहा कि लीग की वर्किंग कमेटी के पीठ-पीछे प्रधानमंत्रियों को बातचीत करने या सुलह-सफाई करने का कोई अधिकार नहीं है और न उन्हें इसकी इजाज़त ही दी जा सकती है। इन परिस्थितियों में कांग्रेस के प्रधान की हैसियत से मौलाना साहब ने श्री जिन्ना को एक तार भेजने का साहस किया और उनसे प्रार्थना की कि वह इसे गोपनीय समझें। परन्तु श्री जिन्ना ने उसका तुरन्त उत्तर देकर दोनों तार अखबारों को प्रकाशनार्थ दे दिये। दोनों तार नीचे दिये जाते हैं।

श्री जिन्ना के नाम मौलाना आजाद का तार यह था—"मैंने आपका जुलाई का वक्तव्य पढ़ा है। दिल्ली के प्रस्ताव में कांग्रस ने जिस राष्ट्रीय सरकार का जिक्र किया है उससे उसकी मुराद निश्चित रूप से संयुक्त मंत्रिमण्डल है, किसी दल विशेष की सरकार नहीं। लेकिन क्या लीग की स्थिति यह है कि वह दो राष्ट्रों के सिद्धान्तों पर आश्रित सरकार को छोड़कर कोई और अस्थायी सरकार बनाना स्वीकार नहीं कर सकती? अगर यह बात ऐसी ही है तो कृपया तार द्वारा इसे स्पष्ट कर दीजिए।"

श्री जिन्ना ने यह उत्तर दिया—"मुझे आपका तार मिला। मैं इसे गोपनीय नहीं रख सकता। चूंकि आप पूरी तरह से मुस्लिम भारत का विश्वास खो बैठे हैं, इसलिए मैं आपसे पत्र-व्यवहार-द्वारा या किसी और तरीके से कोई बातचीत

करने को तैयार नहीं हूँ। क्या आप यह महसूस नहीं कर सकते कि आपको कांग्रेस का प्रधान महज़ एक दिखावे के रूप में बनाया गया है, जिससे कि कांग्रेस का स्वरूप राष्ट्रीय नजर आए और बाहरी मुल्कों को धोखा दिया जा सके? आप न तो मुसलमानों के प्रतिनिधि हैं और न हिन्दुओं के ही। आप दोनों में से किसी का भी प्रतिनिधित्व नहीं करते। कांग्रेस एक हिन्दू संस्था है। अगर आप में आत्मसम्मान की भावना है तो आप फौरन इस्तीफ़ा दे दें। अब तक आपने लीग के खिलाफ अपना पूरा ज़ोर लगाया है। आप जानते हैं कि आप इसमें बुरी तरह असफल रहे हैं। अब आप इसे छोड़ दीजिए।"

महासमिति की बैठक

पूना में कांग्रेस महासमिति ने केवल ७ जुलाई १९४० के दिल्ली-प्रस्ताव का ही समर्थन किया और यह स्पष्ट किया कि यद्यपि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के निमित्ति लड़ी जानेवाली लड़ाई में कांग्रेस अहिंसा के सिद्धान्त पर कड़ाई से अमल करती रहेगी, फिर भी मौजूदा हालतों में वह भारत की राष्ट्रीय रक्षा के मामले में इस सिद्धान्त को लागू नहीं कर सकती। महासमिति ने इस बात पर भी जोर दिया कि कांग्रेस का संगठन अहिंसा के आधार पर ही जारी रहना चाहिये और कांग्रेस के सभी स्वयंसेवक अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करते समय अहिंसा पर चलने को बाध्य हैं और इस सिद्धांत के अलावा किसी और सिद्धांत पर कांग्रेस का कोई भी स्वयंसेवक-संगठन नहीं कायम हो सकता। आत्मरक्षा के लिए और भी ऐसे जो स्वयंसेवक-संगठन होंगे और जिनके साथ कांग्रेस को सहयोग करना होगा—उन्हें भी अहिंसा पर दृढ़ रहना होगा। इस सम्बन्ध में कांग्रेस कार्यसमिति ने देश की राजनैतक स्थिति पर वर्धा में एक उपयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया था। जिसे पूना में कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन के समय सदस्यों में व्यापक रूप से प्रचारित किया गया था।

पूना में कार्यसमिति का प्रस्ताव कोई सुगमता से नहीं पास हो गया था। प्रस्ताव के हक में ९७ और उसके खिलाफ ६३ वोट पड़े। विरोधियों में कुछ उल्लेखनीय नाम ये हैं: बाबू राजेन्द्र प्रसाद, डा० प्रफुल्ल घोष, आचार्य कृपलानी श्री शंकरराव देव और श्री हरेकृष्ण मेहताब। राजेन्द्रबाबू ने प्रस्ताव के विरोध में भाषण दिया।

कार्यसमिति के मत-भेद के बारे में और जिस तरीके से यह प्रस्ताव महासमिति में पास हुआ था उसके सम्बन्ध में अनावश्यक रूप से कोई बात गुप्त नहीं रखी गई थी। विभिन्न दल खुले रूप में सामने आए। यदि रायवादियों का नारा बिना शर्त सहयोग का था तो श्री राजगोपालाचारी शर्त के साथ सहयोग देने के पक्ष में थे। यदि पंडित जवाहरलालजी कुछ शर्तों पर नैतिक सहयोग के पक्षपाती

थे तो गांधीजी बिना शर्त के नैतिक सहायता के। वह स्वयं पूना में नहीं आए थे। लेकिन पूना के बाद उन्होंने विशुद्ध अहिंसा के पक्षपातियों और शेष लोगों का अन्तर स्पष्ट रूप से बताया था।

गांधीजी का कांग्रेस से संबंध-विच्छेद

जब पूना में दिल्ली का प्रस्ताव पास हुआ तब देश भर में खलबली मच गई और आत्मनिरिक्षण किया जाने लगा। एक तरफ तो वे लोग थे जिन्हें इस बात का सन्तोष था कि अहिंसा की दुर्बोधता, उसकी आध्यात्मिकता और प्रतिदिन के जीवन की उसकी अवास्तविकता का अब देश की राजनीति में कोई महत्व नहीं रह गया है। लेकिन देश की अधिकांश जनता को इस पर खेद हुआ। गांधीजी पिछले २० साल से देश का नेतृत्व कर रहे थे और उनके नेतृत्व में देश ने दो ही दशकों में इतनी उन्नति करली थी जितनी दो शताब्दियों में की जा सकती थी। उन्होंने शक्तिशाली ब्रिटेन को भारतीय जनता से समझौता करने पर विवश कर दिया था। इसलिए अब इस नाजुक घड़ी में उनका कांग्रेस से अलग हो जाना देश को वहुत खेदजनक प्रतीत हुआ। लेकिन क्या वस्तुतः स्थिति ऐसी ही थी? नहीं। अब भी देश को उनका नेतृत्व प्राप्त था। लेकिन यह समय तो एक नए युग का संदेश लेकर आया था। गांधीजी को पराजित नहीं होना पड़ा था, बल्कि उन्हें तो संसार के सामने एक नये रूप से प्रकट होना था। महान् पुरुषों के जीवन में अक्सर ऐसे ही अवसर आया करते हैं, जब उन्हें कसौटी पर परखा जाता है। इस परिक्षा के साधन होते हैं बड़े-बड़े ख़तरे और महान् अवसर। स्थायी नेतृत्व का रहस्य इसमें है कि नेता यह जानता हो कि बीच का मार्ग कब अख्तियार किया जाना चाहिये। वह यह जानता हो कि संयम से कैसे काम लेना है। अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए ३१ जुलाई, १९४० को गांधीजी ने जो लेख लिखा उसमें उन्होंने कहा—"१९३४ में बम्बई में मैं कांग्रेस से इसलिए बाहर आया कि उसकी अधिक सेवा कर सकूँ। बाद कि घटनाओं ने साबित कर दिया कि मेरा कांग्रेस से पृथक् होना उचित था। इस समय भी मैं जो कांग्रेस से अलहदा हुआ हूँ, उसका भी यही मकसद है।"

जिस प्रकार प्रकृति का एक ही स्पर्श सारे संसार को एकता के सूत्र में पिरो देता है, उसी तरह ब्रिटिश नौकरशाही के एक ही स्पर्श ने सारे भारत को एक परिवार बना दिया था। ऐसे समय में जब कि कांग्रेस जैसी सुदृढ़ चट्टान में एक मामूली-सा छिद्र हो जाने पर ऐसा खतरा प्रतीत हो रहा था कि वह एक बड़ा भारी दरार बन जाएगी—अर्थात् कांग्रेस में बहुत भारी मतभेद पैदा हो जाएगा—श्री एमरी ने कामन-सभा में भारत की स्थिति के सम्बन्ध में श्री सोरेन्सेन के बहुत ही संगत प्रश्न का जो उत्तर दिया उससे सब की आँखें खुल गईं। श्री एमरी ने

भारत की परिस्थिति की गम्भीरता को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने उसकी कोई कद्र ही नहीं की। परन्तु गांधीजी ने श्री एमरी को चुनौती देते हुए उनके इस दृष्टिकोण को गलत बताया। गांधीजी ने स्वयं बताया कि कांग्रेस से अलग हो जाने पर भी मेरा खयाल है कि जनता का एक बड़ा हिस्सा अब भी मेरा मार्ग-दर्शन चाहता है और वह तब तक चाहता रहेगा, जब तक कि मेरे लिये यह समझा जायगा कि मैं हिन्दुस्तान के दूसरे किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा सत्याग्रह की भावना का अधिक प्रतिनिधित्व करता हूँ। गांधीजी ने बताया कि ब्रिटिश इतिहास की इस अत्यन्त नाजुक घड़ी में कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को परेशान न करने के खयाल से जिस संयम से काम लिया है उसका कम अन्दाजा लगाकर भारत-मंत्री ने बड़ी भारी भूल की है। उनका खयाल था कि अगर यह संयम न रहे तो मुमकिन है कि आग भड़क उठे और उसका कैसा असर पड़े, यह कोई नहीं जान सकता। सत्याग्रह का शस्त्र ऐसा है कि उसका उपयोग अन्दरूनी कमज़ोरियों के बावजूद किया जा सकता है। इसलिए सत्याग्रह को स्थगित करने का आखिरी उद्देश्य यह है कि ब्रिटिश सरकार को परेशान न किया जाय। लेकिन कांग्रेस के इस संयम की भी एक हद है। कांग्रेसियों में यह शक बढ़ता जा रहा है कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस के इस संयम का फायदा कांग्रेस को कुचलने के लिए उठा रही है। उदाहरण के तौर पर वे बड़ी संख्या में कांग्रेसियों की गिरफ्तारियों की बात कहते हैं। गांधीजी ने आगे चलकर कहा, "अगर यह साबित हुआ कि मेरा यह सन्देह दृढ़ आधार रखता है तो दुनिया की कोई भी ताकत मुझे किसी-न-किसी रूप में सत्याग्रह शुरू करने से नहीं रोक सकती। लेकिन यह मेरी प्रार्थना और कोशिश है कि उसे तब तक बचाऊँ जब तक ग्रेट ब्रिटन पर से विपदाओं के बादल न उठ जायँ।"

वाइसराय का वक्तव्य

खतरे की इस घण्टी पर अपने विचार प्रकट किये हुए गांधीजी को अभी मुश्किल से एक हफ्ता हुआ होगा कि वाइसराय महोदय ने ८ अगस्त का अपना प्रसिद्ध वक्तव्य प्रकाशित कर दिया। इसकी एक अग्रिम प्रति उन्होंने ४ अगस्त को उटकमंड से कांग्रेस-प्रधान को भेज दी थी और २० अगस्त के लगभग उन्हें मुलाकात करने का निमंत्रण दिया था। यह वक्तव्य बहुत बड़ा और विस्तृत था। इसमें विभिन्न राजनैतिक नेताओं से मुलाकात करने और सम्राट् की सरकार से सलाह-मशवरा करने के बाद कुछ प्रतिनिधिक भारतीयों को अपनी शासन-परिषद् में शामिल होने का निमंत्रण देने और एक युद्ध सलाहकार परिषद् की स्थापना करने की बात कहकर उन्होंने अल्पसंख्यकों और उचित समय आने पर ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल के अन्तर्गत नयी वैधानिक योजना बनाने के सम्बन्ध में की जाने वाली

व्यवस्था पर प्रकाश डाला। वाइसराय का वक्तव्य अप्रत्याशित था। इससे नरम और उदार दलवालों को सन्तोष हुआ, पर कांग्रेस को नहीं। अगर केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो, प्रांतों में फिर से मंत्रिमण्डल स्थापित हो जायं, विधान-परिषद् की मांग मान ली जाय, ब्रिटिश सरकार तुरन्त ही उसका आयोजन करे और अगर देश की प्रजातंत्रात्मक सरकार के संचालन में अल्पसंख्यकों और राजाओं को भारत की भावी प्रजातंत्रात्मक सरकार को रद करने का अधिकार न दिया जाय तो शायद कांग्रेस इन प्रस्तावों पर सोच-विचार कर सके। लेकिन कांग्रेस की यह स्थिति फ्रांस के पतन से पहले की थी। अब फ्रांस के पतन के बाद जब कि साम्राज्यवाद कमज़ोर हो चुका था और कांग्रेस स्पष्ट एवं असंदिग्ध शब्दों में पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा कर चुकी थी, वाइसराय महोदय एक ऐसी विधान-परिषद् का प्रस्ताव पेश करते हैं, जिसकी मांग सितम्बर, ४२ में की गई थी। जब उसकी मांग की गई थी तब उसे ठुकरा दिया गया था। अब जब कि कांग्रेस तत्काल पूर्ण स्वाधीनता की मांग कर रही है तब वाइसराय महोदय स्वतंत्र और बराबर की साझेदारी का राग अलापने लगे थे।

मौलाना आज़ाद और वाइसराय

वाइसराय ने मौलाना आजाद को इस बारे में जल्दी ही जवाब भेजने से पहले—और अगर संभव हो सके तो २१ अगस्त से पहले-पहले—मुलाक़ात के लिए बुलावा भेजा, जिससे वह यह जान सकें कि कांग्रेस के लिए उनकी केन्द्रीय सरकार और युद्ध सलाहकार परिषद् में शामिल होना संभव हो सकेगा अथवा नहीं। उन्होंने लिखा, "मेरा खयाल है कि कांग्रेस की ओर से कोई नियमित जवाब भेजने से पहले शायद आपके लिए इस सम्बन्ध में मुझसे और बातचीत करना सुविधाजनक हो।" वाइसराय चाहते थे कि जितनी जल्दी हो सके इन फैसलों को अमल में लाया जाय। उन्होंने बताया कि मेरा खयाल अगस्त के अन्त या सितम्बर के मध्य तक इन दोनों संस्थाओं में लिये जानेवाले व्यक्तियों के नामों की घोषणा कर देने का है। कांग्रेस के प्रधान ने वाइसराय से पूछा कि जब सरकार ने पहले से ही एक निश्चित योजना पर अमल करने का फैसला कर लिया है तब फिर उस हालत में और बातचीत करने से लाभ क्या होगा? इसके जवाब में वाइसराय ने लिखा—"सम्राट् की सरकार की नीति मेरे वक्तव्य में स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दी गई है। मुझे आशा है कि कांग्रेस के लिए इन शर्तों के अन्तर्गत मेरे साथ केन्द्रीय सरकार और युद्ध सलाहकार परिषद् में शामिल होना संभव हो सकेगा।" इसके साथ ही उन्होंने दुबारा उन्हें निमंत्रण देते हुए लिखा—"अगर अपना निश्चित जवाब भेजने से पहले आप इस विषय पर और बातचीत करना चाहें तो कर सकते हैं।" ८ अगस्त की घोषणा की शर्तों के अन्तर्गत कांग्रेस के

प्रधान न कोई और बातचीत करना लाभदायक नहीं समझा। चूंकि इस घोषणा में राष्ट्रीय सरकार का तो कोई उल्लेख तक भी न था, इसलिए मौलाना साहब ने यह निमंत्रण अस्वीकार कर दिया।

वाइसराय के वक्तव्य और कांग्रेस के प्रधान के बीच उनके पत्र-व्यवहार के कुछ देर बाद ही भारत-मंत्री ने १४ अगस्त को पार्लमेण्ट में एक घोषणा की। वाइसराय की ८ अगस्त वाली घोषणा और पार्लमेण्ट में भारत-मंत्री के वक्तव्य पर अगर एक साथ विचार किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि ये दोनों घोषणाएं भारत की राजनैतिक परिस्थिति, उसके वैधानिक पहलू और केन्द्रीय सरकार के तत्काल पुर्ननिर्माण के सम्बन्ध में एक अधिकृत निर्णय के रूप में थीं। पहली बार ब्रिटिश सरकार ने अपने ऊपर लगाया जानेवाला यह आरोप स्पष्ट कर दिया कि वह जबतक उसका बस चलेगा सत्ता हस्तान्तरित नहीं करेगी। इसका तो साफ मतलब यह हुआ कि मौजूदा नौकरशाही और गैर-जिम्मेवार हुकूमत तबतक जारी रहेगी जबतक कोई भी दल या राजे (अपनी प्रजा को छोड़कर) अथवा विदेशी स्वार्थ भी भारतीय जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा बनाए गए किसी भी विधान पर आपत्ति उठाते रहेंगे। १८ अगस्त, १९४० को वर्धा में कार्यसमिति की जो बैठक हुई उसके फैसले का यही तत्त्वमात्र था। एक बार फिर गांधीजी और कार्य-समिति को एक कड़ी परीक्षा में से गुज़रना पड़ा।

गांधीजी के नेतृत्व की मांग

पूना के बाद की परिस्थिति और सरकारी ऐलान वास्तव में इतने सरल न थे, जितने कि ऊपर से दिखाई देते थे। समय-समय पर पेचीदा और जटिल समस्याओं का खड़ा हो जाना अनिवार्य था। यह सच है कि भारतीय मांग को घृणापूर्वक ठुकरा दिया गया था और जिन लोगों ने यह मांग की थी और जिन्होंने इस पर आपत्ति उठाई थी, वे सभी व्यग्रता से गांधीजी की ओर देख रहे थे। इसलिए सर्वथा स्वाभाविक था कि इस सम्बन्ध में उनकी सलाह ली जाती। इसी प्रकार यह भी सर्वथा स्वाभाविक था कि गांधीजी यह महसूस करते कि उनके लिये नये वातावरण में ऐसी सलाह देना असंभव था।

आप पूना-प्रस्ताव की उपेक्षा कर सकते हैं। लेकिन जबतक यह प्रस्ताव क़ायम था, राष्ट्रीय संगठन को बढ़ाने की शक्ति का क़ायम रहना संभव न था। गांधीजी का दृढ़ विचार था कि उक्त प्रस्ताव वर्धा, दिल्ली और पूना में की गई भारी गलती या भूल का परिणाम था। वह जान-बूझकर पूना में कांग्रेस महा-समिति की बैठक में नहीं शामिल हुए; क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि उनके कारण उन लोगों पर किसी किस्म का दबाव पड़े। अतः पूना के प्रस्ताव में आवश्यक परिवर्तन किये बिना उनके लिए कार्यसमिति का मार्ग-प्रदर्शन करना कठिन था।

सारी स्थिति को ध्यान में रखते हुए हर एक ने यह महसूस किया कि गांधीजी को इस बारे में पूरी आज़ादी देनी चाहिये और इसके लिए शायद वे कार्यसमिति से अपने प्रस्ताव में संशोधन करने को कहें। लेकिन यह भी महसूस किया गया कि यह संशोधन नयी कार्यसमिति को करना चाहिये, क्योंकि वर्तमान कार्यसमिति के अधिकांश सदस्य पूना प्रस्ताव के समर्थक थे।

कमेटी के सामने कई रास्ते थे। एक रास्ता यह था कि कार्यसमिति को स्थगित करके सारा काम गांधीजी को सौंप दिया जाय, दूसरा यह कि जो लोग कार्यसमिति से पृथक् हो जाएं, उनकी जगह ऐसे नये सदस्य लिए जाएँ जिन्हें उनपर विश्वास हो। एक और कठिनाई यह थी कि सत्याग्रह किस बात को लेकर शुरू किया जाय? गांधीजी आजादी को इसका केन्द्र-बिन्दु नहीं बनाना चाहते थे। वह तो यह चाहते थे कि सारी बात उन्हीं पर छोड़ दी जाय और यह फैसला वही करें कि सत्याग्रह शुरू करने का तात्कालिक कारण क्या हो। वह किस बिना पर छेड़ा जाय। देश की स्थिति गम्भीर थी। जो नौजवान कांग्रेस के स्वयंसेवक होते और उसके कार्य में प्रमुख भाग लेते थे, उन्हें सैकड़ों की तादाद में जेल में ूसा जा रहा था। कोई दो हजार से ऊपर नवयुवक जेल में जा चुके थे। सभी जगह मज़दूर-संगठन का काम करनेवालों को पकड़ा जा रहा था। सम्मेलनों पर प्रतिबन्ध लगाए जा रहे थे। लोगों को घरों में नज़रबन्द रखना आम बात हो गई थी। इन आदेशों का कड़ाई से पालन किया जा रहा था। लोग धड़ाधड़ गिरफ्तार हो रहे थे और राजबन्दियों को बिना मुकदमा चलाए नज़रबन्द किया जा रहा था। जिलों में लोगों पर इस तरह के प्रतिबन्ध लगाए जा रहे थे—(१) उन्हें प्रति सोमवार कोतवाली में हाज़िरी देनी पड़ती थी, (२) उन्हें किसी राजद्रोहात्मक आन्दोलन या युद्ध-विरोधी प्रचार में भाग लेने की इजाज़त नहीं थी, (३) किसी स्कूल या कालेज के विद्यार्थियों से किसी तरह की बातचीत, पत्र-व्यवहार या संपर्क नहीं रख सकते थे; (४) किसी तरह की सभा में शरीक नहीं हो सकते थे, और (५) अगर एक जगह से दूसरी जगह जाना हो तो रवाना होने से कम-से-कम २४ घण्टे पहले उसकी इत्तला पुलिस-थाने में और इसके साथ ही समय की भी सूचना देनी पड़ती थी। २ जुलाई, १९४० को स्वयं सुभाषचन्द्र बोस को भारत-रक्षा कानून के मातहत कलकत्ता में एल्गिन रोड पर स्थित उनके घर से गिरफ्तार कर लिया गया था। इस तरह परिस्थिति को बरदाश्त करना मुश्किल हो गया था।

महासमिति की बैठक

इस गंभीर परिस्थिति पर सोच-विचार करने के लिए १५ सितम्बर को बम्बई में कांग्रेस महासमिति की एक बैठक बुलाई गई। १५ और १६ सितम्बर, १९४०

को बम्बई में कांग्रेस महासमिति ने पिछले दो महीनों में देश की जो हालत हो गई थी उस की समीक्षा की और यह घोषणा की कि दिल्ली का प्रस्ताव जिसकी स्वीकृति पूना में दी गई थी, अब अमल में नहीं रहा और वह खत्म हो गया। इसके साथ ही समिति ने यह भी कहा कि कांग्रेस ने अब तक स्वयं अपने ऊपर जो प्रतिबन्ध लगा रखा था—जिस संयम से वह चल रही थी, उसका मतलब यह नहीं था कि वह अपनी हस्ती ही मिटा देना चाहती है। कांग्रेस का यह इसरार है कि अहिंसा के अनुसार अपनी नीति पर चलने की उसे पूरी आज़ादी रहे, परन्तु कांग्रेस की यह मर्ज़ी नहीं है कि मजबूरी की हालत में भी वह अपना अहिंसात्मक विरोध उस हद के पार ले जाय जितनी आज़ादी की रक्षा के लिए आवश्यक है।

इस प्रकार सितम्बर के मध्य में भारत के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू हो रहा था। लड़ाई को शुरू हुए एक साल और १५ दिन हो चुके थे। हर संभव कोशिश की गई था कि ब्रिटेन की मुसीबत के दिनों में कोई संग्राम न शुरू किया जाय, यहां तक कि गांधीजी के नेतृत्व की भी उपेक्षा कर दी गई थी। आख़िर यह प्रतिज्ञा पूना में तोड़ दी गई; परन्तु उसका फल अभी सामने नहीं आया था। अब सिर्फ यह बाक़ी रह गया था कि फिज़ूलखर्च पुत्र अपने विवेक और अपनी क़ाबलियत का गर्व गंवाकर खाली हाथ और पछताता हुआ, विश्वसनीय होकर और मिन्नतें करता हुआ फिर से अपने पिता के पास वापस चला आए। दुनियावी विचारों में फंसी हुई सन्तान अपने पिता की चेतावनी या डांट-डपट को बहुत अधिक नैतिक समझ सकती है, लेकिन उनकी बेवकूफी या भूल जल्दी ही भुला दी जाती है। अगर इस बात की आम चर्चा न हुई होती कि गांधीजी फिर से सेनापति बन रहे हैं और जल्दी ही ब्रिटेन के खिलाफ लड़ाई शुरू हो जायगी तो बम्बई में बहुत अधिक खींचातानी हुई होती। अब सिर्फ राष्ट्र को अपने अटूट आज्ञापालन का परिचय देना होगा।

कार्यसमिति का निश्चय

उक्त परिस्थितियों में कार्यसमिति ने दो महत्वपूण प्रस्ताव पास किये, एक सविनय अवज्ञा के स्थगित करने के सम्बन्ध में और दूसरा केरल प्रान्त की परिस्थिति के बारे में। कार्यसमिति चाहती थी कि उसके सत्याग्रह शुरू करने से पहले देश में पूरी शान्ति और व्यवस्था कायम रहे और वातावरण अहिंसात्मक बना रहे। लेकिन १५ सितम्बर को केरल में पुलिस के एक सब-इंस्पेक्टर को पत्थरों से मार डाला गया था। इस घटना के कारण कांग्रेस बहुत अधिक परेशान थी। इसलिए उसने केरल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के ख़िलाफ़ अनुशासन-भंग की शिकायतों और १५ सितम्बर को सभाओं में जो गड़बड़ हुई थी, उसकी जांच-पड़ताल करने के लिए एक समिति वहाँ भेजनी आवश्यक समझी। आगे कार्य-समिति ने सभी कांग्रेस-संगठनों से आग्रह

किया कि वे "सविनय अवज्ञा"—चाहे वह व्यक्तिगत हो या किसी और क़िस्म की—तब तक के लिए बन्द कर दें जब तक कि उन्हें गांधीजी की ओर से कोई निश्चित हिदायत न दी जाय। गांधीजी वाइसराय के साथ अपनी आगामी मुलाकात की सफलता के लिए इसे आवश्यक समझते थे। रजिस्टरशुदा और गैर-रजिटरशुदा कांग्रेसजनों और कांग्रेस से प्रेम रखनेवाले सभी स्त्री-पुरुषों के अनुशासन की कसौटी के रूप में भी उन्हें यह आवश्यक प्रतीत होता था। वह मानते थे कि यदि सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करना पड़े तो उसकी सफलता के लिए थोड़े समय तक आज्ञा-पालन की शिक्षा लेना बहुत जरूरी और अनिवार्य है।

: १८ :

सत्याग्रह और उसकी प्रगति : १९४०-४१

गांधीजी का पत्र

ऐसे समय में जब कि दुनिया भारी संहार और सर्वनाश में जुटी हुई थी, सिर्फ़ भारत ही एकमात्र ऐसा देश था जो शान्ति और सद्भावना का युगों पुराना सन्देश लिए सभ्य मानवता के बीच अपना सिर ऊँचा किये खड़ा था। ऐसे ही सुअवसर पर गांधीजी की ७२ वीं शुभ वर्षगाँठ आई। ७१ वें जन्मदिन के अवसर पर गांधीजी ने लड़ाई छिड़ते ही हिटलर के नाम अपना प्रसिद्ध पत्र लिखा था। वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सालभर से भी अधिक समय तक कोशिश करते रहे और इस बीच उन्होंने 'प्रत्येक अंग्रेज के प्रति' अपना प्रसिद्ध पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा—"मेरा प्रत्येक अंग्रेज़ से, चाहे वह दुनिया के किसी भी हिस्से में क्यों न हो, निवेदन है कि वह राष्ट्रों के पारस्परिक संबंधों और दूसरे मामलों का फैसला करने के लिए युद्ध का मार्ग छोड़कर अहिंसा का मार्ग स्वीकार करे। आपके राजनीतिज्ञों ने यह घोषणा की है कि यह युद्ध प्रजातंत्र के सिद्धान्त की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है। परन्तु मैं आपसे यह कहता हूँ कि इस युद्ध के समाप्त होने पर जीत चाहे जिस पक्ष की हो, प्रजातन्त्र का कहीं नामोनिशान भी न मिलेगा। यह युद्ध मनुष्य-जाति पर एक अभिशाप और चेतावनी के रूप में उतरा है। यह शापरूप है। आज तक कभी इन्सान इन्सानियत को इस क़दर नहीं भूला था, जितना कि वह इस युद्ध के असर से भूल रहा है। आज

इन्सान की करतूतें हैवान को भी शर्मिन्दा कर रही हैं। मैं प्रकृति की इस चेतावनी का अर्थ युद्ध छिड़ते ही समझ गया था। मगर मेरी यह हिम्मत नहीं होती थी कि मैं आपसे कुछ कहूँ, किन्तु आज ईश्वर ने मुझे हिम्मत दे दी है और मौका भी अभी हाथ से निकल नहीं गया है। आप लोग नाज़ीवाद का विनाश करना चाहते हैं, मगर आप नाज़ीवाद की कच्ची-पक्की नकल करके उसका कभी नाश नहीं कर सकेंगे। मैं नहीं चाहता कि ब्रिटेन हारे। मगर मैं यह भी नहीं चाहता कि वह पाशविक बल की परीक्षा में जीते, भले ही वह पशुबल बाहुबल के रूप में प्रदर्शित किया जाय या बुद्धि-बल के रूप में। आपका बाहुबल तो जगत्प्रसिद्ध है। क्या आपको यह प्रदर्शन करने की ज़रूरत है कि आपका बुद्धिबल भी तबाही करने में सबसे ज्यादा शक्तिशाली है? मुझे आशा है कि आप लोग नाज़ियों के साथ इस किस्म के मुकाबले में उतरना अपनी बेइज्ज़ती समझेंगे।

"मैं दावा करता हूँ कि मैं ब्रिटेन का आजीवन और निःस्वार्थ मित्र रहा हूँ। एक वक्त ऐसा था कि मैं आपके साम्राज्य पर भी मुग्ध था। मैं समझता था कि आपका राज्य हिन्दुस्तान को फ़ायदा पहुँचा रहा है। मगर जब मैंने देखा कि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है, इस रास्ते से हिन्दुस्तान का भला नहीं हो सकता, तब मैंने अहिंसक तरीके से साम्राज्यवाद का सामना करना शुरू किया और आज भी कर रहा हूँ। मेरे देश की किस्मत में आखिर कुछ भी लिखा हो, आप लोगों के प्रति मेरा प्रेम वैसे ही क़ायम है और रहेगा। मेरी अहिंसा सार्वभौम है और वह सारे जगत् के प्रति प्रेम मांगती है और उस जगत का आप लोग कोई छोटा हिस्सा नहीं हैं। आप लोगों के प्रति अपने प्रेम के कारण ही मैंने यह निवेदन किया है।"

व्यक्तिगत सत्याग्रह का आरंभ

गांधीजी के उक्त पत्र का अंग्रेजों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने देखा कि लड़ाई की लपटें यूरोप में दूर-दूर तक फैलती जा रही थीं और इनके कारण ब्रिटेन का दिल भारत के प्रति नरम होने के बजाय और भी सख्त और कठोर होता जा रहा था। वह इतना निर्मम और निर्दय बनता जा रहा था, जिसकी कल्पना तक भी नहीं की जा सकती थी। ऐसी स्थिति में देश धीरे-धीरे सत्याग्रह-संग्राम की तीसरी मंजिल तक पहुँच गया और १७ अक्तूबर को सत्याग्रह-संग्राम की रणभेरी बज उठी। श्री विनोबा ने वर्धा से पांच मील दूर अपने निवास-स्थान पवनार गांव में १७ अक्तूबर को युद्ध-विरोधी एक भाषण देकर सत्याग्रह का श्रीगणेश कर दिया। न तो सभा पर ही कोई रोक लगाई गई और न श्री विनोबा को ही पकड़ा गया। हां, इतना अवश्य हुआ कि देशभर के अखबारों को चेतावनी दे दी गई कि वे उनके भाषण अथवा उनके कार्यक्रम के बारे में कोई समाचार न छापें। श्री विनोबा पैदल चलकर गांव-गांव में भाषण देते रहे। आखिरकार

२१ अक्तूबर को उन्हें गिरफ्तार करके तीन महीने की सादी क़ैद दी गई। सज़ा पानेवाले दूसरे व्यक्ति पंडित जवाहरलाल थे। जवाहरलाल ने प्रान्त के विभिन्न ज़िलों का दौरा अभी ख़त्म ही किया था। उन्होंने मौजूदा परिस्थिति पर सभी तरह के बहुत से भाषण दिये। उन्हें वर्धा आने को कहा गया था जहाँ की वापसी पर उन्हें ३१ अक्टूबर, १९४० को गिरफ्तार कर लिया गया। जिस मजिस्ट्रेट के यहाँ उन पर मुकदमा चलाया गया, उसने उन्हें ४ साल की सजा दी। १७ नवम्बर को सरदार पटेल भी हिरासत में ले लिये गये। उन पर कोई इलजाम नहीं लगाया गया और न मुकदमा ही चलाया गया। उन्हें गिरफ्तार करके अनिश्चित अवधि तक के लिए नजरबन्द कर दिया गया। देश के विभिन्न भागों में सत्याग्रह करने वाले लोगों की भरमार थी। गांधीजी ने एक वक्तव्य निकाला, जिसमें उन्होंने इस बात पर एक दफा फिर जोर दिया कि लोग नेताओं की गिरफ्तारी के बाद किसी किस्म का प्रदर्शन न करें। बाद के सप्ताह में देश के विभिन्न भागों में बहुत से प्रसिद्ध नेता गिरफ्तार कर लिये गये। बड़े बड़े शानदार प्रदर्शन कहीं भी नहीं हुए।

नवम्बर के अन्त तक अधिकांश मंत्री और पार्लमेंटरी सचिव तथा अखिल भारतीय महासमिति के बहुत से सदस्य जेलों में जा चुके थे। नये वर्ष के प्रारंभ में कांग्रेस के प्रधान पकड़ लिये गये। इसके अलावा इसी वर्ष जमीयत-उल-उलेमा ने भी सत्याग्रह आन्दोलन में शरीक होने का फैसला कर लिया। उधर उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत के प्रधान मंत्री डा० खान साहब सत्याग्रह करने के अपराध में गिरफ्तार कर लिये गये, पर बाद में रिहा कर दिये गये। मध्य-प्रांत में सरकार ने स्त्री सत्याग्रहियों को गिरफ्तार करना बन्द कर दिया।

आन्दोलन शुरू होने से पहले प्रत्येक सूबे में उसके संबंध में बड़ी सावधानी के साथ जांच-पड़ताल कर ली गई। ज्यों-ज्यों कार्यसमिति, व्यवस्थापिका सभाओं और अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति के सदस्य अपने को गिरफ्तारी के लिए पेश करते रहे त्यों-त्यों आन्दोलन जोर पकड़ता गया। कुछ प्रांतों में सरकार ने सदस्यों को सत्याग्रह करने से पहले ही नजरबन्द कर दिया। श्री वल्लभ भाई, श्री भूलाभाई, श्रीमती सरोजिनी और बम्बई के भूतपूर्व मंत्रियों, स्पीकर और बम्बई की कौंसिल के प्रधान—इन सभी व्यक्तियों को नजरबन्द कर दिया गया। मद्रास में वहाँ के मंत्रियों ने सत्याग्रह किया और उन्हें दण्ड दिया गया। सिर्फ स्पीकर, चीफ पार्लमेंटरी सेक्रेटरी और चार-पाँच दूसरे व्यक्ति नजरबन्द कर लिये गये। इसी प्रकार संयुक्त-प्रांत, मध्य-प्रांत और बिहार में भी कुछ मंत्रियों को नजरबन्द कर लिया गया। आसाम और उड़ीसा में उन्हें सजा दी गई, परन्तु उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत में न तो मंत्री और न कोई अन्य ही पकड़ा गया। राजेंद्र बाबू चूंकि बीमार थे, इसलिए उन्हें जेल जाने की इजाजत नहीं दी गई। जेल जाने के थोड़ी देर बाद

श्रीमती सरोजिनी देवी बीमार पड़ गईं, इसलिये उन्हें रिहा कर दिया। श्री कृपलानी कांग्रेस के दफ्तर का काम करते रहे और निरन्तर गांधीजी की मदद करते रहे। वह देश का दौरा करते रहे और सत्याग्रह का मुख्य भार अपने कंधों पर उठाते फिरे। उनकी पत्नी श्रीमती सुचिता देवी जेल चली गईं। सन् १९४१ की गर्मियों में श्री जमनालाल जी को सख्त बीमारी के कारण रिहा कर दिया गया। स्वयं राष्ट्रपति को अचानक गिरफ्तार करके सजा दे दी गई। बाकी का आन्दोलन विधिवत् चलता रहा और उसमें योजना के अनुसार प्रगति होती रही। स्वयं गांधीजी जेल नहीं गये।

सन् १९४० समाप्त हो रहा था। युद्ध को चलते हुए १६ महीने हो चुके थे। इस दौरान में यूरोप को महान् विनाश का सामना करना पड़ा। भारत अभी तक इस सर्वनाश से बचा हुआ था। युद्ध की भयंकरता अभी हिन्दुस्तान तक नहीं पहुँच पाई थी। फिर भी एक गुलाम देश को—जिसे कहने और करने की कोई आजादी नहीं थी—लड़ाई में उसकी मर्जी के खिलाफ ढकेल दिया गया। भारत में भरती का काम, धन-संग्रह और गोला-बारूद का उत्पादन पूरे वेग से होता रहा।

नरम दल - सम्मेलन

ब्रिटेन के खिलाफ कांग्रेस की ओर से लड़ी जानेवाली इस लड़ाई के बड़े नाटक के संबंध में हमें कुछ जरूरी घटनाओं का भी जिक्र करना है। इस नाटक के साथ हिन्दू-मुस्लिम समस्या का भी गहरा संबंध है। यह समस्या कांग्रेसी-मंत्रिमण्डलों के इस्तीफे के बाद सामने आई, परन्तु इसके बाद से यह ज्यादा जोर पकड़ गई। डा० सप्रू ने मार्च में इस संबंध में हस्तक्षेप करना शुरू किया। वह सरकार के विश्वस्त व्यक्ति थे। नमक-सत्याग्रह के समय जुलाई १९३० में भी श्री सप्रू और श्री जयकर ने सरकार और कांग्रेस में समझौता कराने की कोशिश की थी। उसके बाद फरवरी और मार्च १९३१ में गांधी-इरविन समझौते की बातचीत के समय भी आपने श्री जयकर और माननीय शास्त्रीजी के साथ मिलकर दोनों पक्षों में समझौता कराने में बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। इसलिए मार्च १९४१ में उनके द्वारा फिर से समझौते की कोशिश करना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। उन्होंने मार्च, १९४१ में बम्बई में नरमदल के नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया। इसके वह सभापति थे। सम्मेलन ने एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास करके गवर्नर जनरल की शासन-परिषद के पुनर्निर्माण की ज़ोरदार मांग की और आग्रह किया कि इसमें (१) सभी भारतीय सदस्य लिये जाएँ तथा अर्थ और रक्षा विभाग भी भारतीयों के हाथों में ही दे दिये जायँ, (२) युद्धकाल में यह परिषद सामूहिक रूप से सम्राट के प्रति ज़िम्मेदार हो और (३) इसका दरजा वही हो जो अन्य स्वाधीनता-प्राप्त उपनिवेशों की सरकारों का है अर्थात् ब्रिटिश सरकार

को घोषणा कर देनी चाहिये कि लड़ाई खत्म होने के बाद एक निश्चित अवधि के अन्दर हिन्दुस्तान को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायगा।

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या

उदार और नरमदली नेताओं के इस सम्मेलन के अलावा एक घटना और भी है जिसका जिक्र करना ज़रूरी हो जाता है। गांधीजी चूंकि स्वतंत्र थे और जेल नहीं गये थे—इसलिए सर तेजबहादुर सप्रू का उनसे और श्री जिन्ना से लिखा-पढ़ी करना स्वाभाविक और सरल था। इसके अलावा वह अपने बम्बई-सम्मेलन को निर्दल सम्मेलन का रूप देने के लिए भी व्यग्र थे। वह श्री जिन्ना को अपने पक्ष में ले लेना चाहते थे और ऐसा करना उनके लिए न्यायोचित भी था।

डा० सप्रू ने यह काम "ट्वेन्टीयथ सेंचुरी" नामक पत्रिका में एक लेख लिखकर शुरू किया। इसमें भारत की वैधानिक समस्या का विवेचन करते हुए डा० सप्रू ने बताया कि साम्प्रदायिक प्रश्न के सम्बन्ध में कोई समझौता करने की जिम्मेदारी स्वयं भारतीयों की है। यह लेख पढ़ने के बाद गांधीजी ने डा० सप्रू से कहा कि वह इस सम्बन्ध में श्री जिन्ना से मिलें। डा० सप्रू ने कहा कि यह अधिक अच्छा होगा अगर गांधीजी श्री जिन्ना से मिलें और अगर वह (गांधीजी) चाहें तो मैं इसका प्रबन्ध करने की कोशिश करूँ। परन्तु गांधीजी को आशंका थी कि इस तरह अगर वह श्री जिन्ना से मुलाकात करें भी तो शायद उसका कोई फल न निकले, क्योंकि श्री जिन्ना चाहेंगे कि वह (गांधीजी) उनसे एक हिन्दू नेता की हैसियत से ही कोई बातचीत करें। इस सम्बन्ध में श्री जिन्ना ने जो पत्र लिखा—उसकी बातें गांधीजी के लिए पहले से ही भांप लेना, निस्संदेह एक बड़ी बुद्धिमत्ता थी। कहने का मतलब यह है कि श्री जिन्ना ने (जैसी कि आशंका की गई थी) डा० सप्रू के पास इसी आशय का एक पत्र लिखा। इस तरह यह योजना वहीं ठप्प हो गई।

श्री एमरी का भाषण

२२ अप्रैल को श्री एमरी ने कामन-सभा में एक भाषण दिया जिसमें उन्होंने विगत मार्च के बम्बई के निर्दल नेता-सम्मेलन के प्रस्ताव पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। डा० सप्रू और उनके प्रस्तावों की प्रशंसा करने के बाद उन्होंने प्रस्तावों को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि उनके अनुसार वर्तमान सरकार में संशोधन की बात न कहकर उसकी जगह नयी सरकार बनाने की बात कही गई थी और यह लड़ाई के दौरान में संभव नहीं था। उनके फलस्वरूप आन्तरिक वैधानिक समस्याएं पैदा हो जायँगी और भावी विधान के सम्बन्ध में भी और नई समस्याएँ खड़ी हो जायँगी। आगे उन्होंने कहा कि "मैं यह बात बिना किसी प्रकार की अभद्रता के कहूँगा कि वाइसराय के प्रस्तावों पर अमल करना इसलिये मुल्तवी

नहीं किया गया कि उनकी निन्दा की गई है, बल्कि खास तौर पर इस वजह से कि मुसलमानों और हिन्दुओं के अपनी-अपनी स्थितियों के बारे में किये गये दावों में कोई सामंजस्य स्थापित करना कठिन है।" मार्च, १९४१ में निर्दल नेताओं के इस सम्मेलन की समाप्ति पर श्री जिन्ना ने इसकी तुलना डच सेना से करते हुए कहा कि, "इसमें सभी सेनापति हैं—सिपाही एक भी नहीं।"—अर्थात् सम्मेलन में सभी नेता हैं—लेकिन उनके पीछे चलनेवाला या उनकी बात मानने वाला एक भी व्यक्ति देश में नहीं है। उनके इस रुख से श्री एमरी को बड़ी मदद मिली और उन्होंने कहा कि मुझे मालूम नहीं कि वास्तव में बम्बई प्रस्ताव के समर्थक कौन लोग हैं।

श्री एमरी ने कामन-सभा को याद दिलाया कि बंगाल, आसाम, सिन्ध और पंजाब में प्रान्तीय सरकारें अपना-अपना काम करती हैं और इन चारों प्रान्तों में ब्रिटिश भारत की कुल जनसंख्या का तीसरा हिस्सा रहता है। बड़े खेद की बात है कि शेष सात प्रान्तों के २०,००,००,००० निवासियों को कांग्रेस के हाईकमाण्ड ने स्वायत्त शासन की परम्परा को जारी रखने की मनाही कर दी। भारत की वैधानिक प्रगति के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की नीति का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि सारे ही विधान में संशोधन किया जा सकता है, बशर्ते कि भारतीयों में आपस में यह समझौता हो जाय कि वे अपने लिए किस किस्म का विधान चाहते हैं। युद्धकाल में भारत-सरकार के ढांचें में कोई परिवर्तन करना संभव नहीं है, परन्तु भारतीय नेताओं-द्वारा इसी समय आपस में कोई प्रारम्भिक बातचीत शुरू करने में कोई रुकावट नहीं पैदा हो सकती। श्री एमरी ने कहा, "मुझे डर है कि कांग्रेस यह मानने को तैयार नहीं कि इस समय कोई और ऐसा विधान नहीं बन सकता जिसके अन्तर्गत समस्त भारत पर इतनी अधिक मात्रा में नियंत्रण रखा जा सके जितना कि भारत को वर्तमान विधान के अन्तर्गत प्राप्त है। इस दिशा में हम एक महत्त्वपूर्ण लक्षण यह देख रहे हैं कि श्री जिन्ना की यह मांग ज़ोर पकड़ती जा रही है कि भारत के उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी भागों को शेष भारत से पूर्णत: पृथक् करके वहां पूर्ण रूप से स्वतंत्र रियासतें कायम कर दी जायें जिन्हें रक्षा, विदेश और आर्थिक मामलों पर पूरा-पूरा नियंत्रण प्राप्त हो।

"तथाकथित पाकिस्तान योजना के मार्ग में जो बड़ी-बड़ी व्यावहारिक कठिनाइयां हैं उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है और न मैं १८ वीं सदी के भारतीय इतिहास के 'अन्धकारपूर्ण' पृष्ठों का उल्लेख ही करना चाहता हूँ। इसके अलावा आज हम अपनी आँखों के सामने देख रहे हैं कि बाल्कन राष्ट्रों की जनता को कितने भयंकर परीक्षण में से गुज़रना पड़ रहा है, और इससे हम जान सकते हैं कि भारत की एकता को भंग करने का कितना खतरनाक परिणाम हो सकता है।"

श्री एमरी ने खेद प्रकट किया कि नवम्बर में वाइसराय को शासन-परिषद् की स्थापना के सम्बन्ध में अपनी कोशिशें छोड़ देनी पड़ीं; क्योंकि मुस्लिम-लीग ने ख़ास तौर पर हिन्दुओं के मुक़ाबले में एक निश्चित प्रतिनिधित्व की मांग की और भविष्य के लिए भी यही शर्त रखी। परन्तु वाइसराय महोदय ने उसे स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

गांधीजी का वक्तव्य

कामन सभा में श्री एमरी के भाषण के सम्बन्ध में गांधीजी ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया :—

"भारत के सम्बन्ध में कामन-सभा की लम्बी बहस पढ़कर मुझे दुःख हुआ। कहा तो ऐसा जाता है कि मुसीबत से लोगों के दिल नरम पड़ जाते हैं और वे सचाई का महत्व समझने लग जाते हैं; परन्तु साफ़ ज़ाहिर है कि ब्रिटेन आज जिस भारी संकट में से गुज़र रहा है उसका श्री एमरी पर कोई प्रभाव नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका हृदय आज भी चिकनी-मिट्टी के घड़े-जैसा बना हुआ है। उनके कान पर जूं तक नहीं रेंगती। उनकी इस निर्भयता को देखकर मेरी यह धारणा और भी दृढ़ हो जाती है कि चाहे कांग्रेस को कितनी ही मुसीबतें क्यों न झेलनी पड़ें, उसे अहिंसा की नीति पर दृढ़ता से अमल करना चाहिए। भारत की मौजूदा परिस्थिति के प्रति श्री एमरी ने जो अवहेलना प्रदर्शित की है उससे उन्होंने ब्रिटेन की कोई मदद नहीं की। वह इस बात की बड़ी डींग हांक रहे हैं कि ब्रिटिश-राज ने भारत में शान्ति स्थापना की है। क्या उन्हें मालूम नहीं कि अहमदाबाद और ढाका में क्या हो रहा है? इन दोनों स्थानों पर शान्ति बनाये रखने की ज़िम्मेदारी किस पर है? मेरा ख़याल है कि वह मुझे यह कहकर टालने की कोशिश न करेंगे कि बंगाल में तो स्वायत्त-शासन क़ायम है। वह जानते हैं कि इस तरह की संकटपूर्ण परिस्थितियों में इन कठपुतली मंत्रिमंडलों के हाथ में कितनी ताकत रहती है, फिर चाहे ये मंत्रिमण्डल कांग्रेस के हों, लीग के हों अथवा किसी और दल के।

"श्री एमरी ने यह बात फिर दोहराकर भारतीय जनता का अपमान किया है कि भारत के राजनीतिक दलों के लिए आपस में समझौता करने के अलावा और कोई चारा ही नहीं है और ब्रिटेन तो सिर्फ संयुक्त भारत की ही बात सुनेगा। मैं बार-बार यह बात साबित कर चुका हूँ कि ब्रिटेन की यह परंपरागत नीति रही है कि भारतीय दलों में एकता न हो सके। ब्रिटेन का आदर्श सदा से यही रहा है कि लोगों में फूट डालकर अपना राज बनाये रखे। भारतीयों की पारस्परिक फूट की ज़िम्मेवारी ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की है और जब तक हिन्दुस्तान गुलाम रहेगा, यह भेदभाव और आपस की फूट भी बनी रहेगी। मैं वादा करता हूँ कि अगर अंग्रेज़ हिन्दुस्तान से चले जायँ तो कांग्रेस, लीग और अन्य दल अपने हितों के ख़याल

से एक-दूसरे से मिल जायँगे और खुद ही भारत के लिए अपने ढंग की कोई मुनासिब सरकार बना लेंगे। हो सकता है कि हमारी यह सरकार वैज्ञानिक ढंग की या पश्चिमी ढांचे की न हो; लेकिन यह निश्चित रूप से स्थायी होगी।

"मने जब भारत की समृद्धि के संबंध में उनका बयान पढ़ा तब मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। भारत की जनता धीरे-धीरे मुफलिसी की ओर बढ़ती जा रही है। उसे तन ढकने को कपड़ा और भरपेट खाना भी मयस्सर नहीं होता। इसकी वजह यह है कि देश पर एक ही आदमी की हुकूमत है और वह लाखों का बजट तैयार करता है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यह बात हिन्दुस्तान की भूखी जनता की समृद्धि की सूचक न होकर इस बात की सूचक है कि आज हिन्दुस्तान ब्रिटेन के पैरों तले रौंदा जा रहा है। हर हिन्दुस्तानी का, जो हमारे किसानों की मुसीबत को जानता है, फर्ज हो जाता है कि इस स्वेच्छाचारी-शासन के खिलाफ बगावत का झण्डा खड़ा करे। सौभाग्य से हिन्दुस्तान की मानवता शान्तिपूर्ण है और मैं उम्मीद करता हूँ कि इसी शान्तिपूर्ण तरीके से वह अपनी किस्मत का फसला करेगी और अपने पैदायशी हक़ को हासिल करेगी।"

शासन-परिषद का विस्तार

इसी बीच २२ जून को जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया। फलतः भारत की परिस्थिति का स्वरूप भी बदल गया। सरकार इस बात से बड़ी परेशान थी कि लड़ाई भारत के द्वार तक आ पहुँची थी। यद्यपि पार्लमेण्ट में प्रति सप्ताह मज़दूर-दलीय सदस्य, श्री एमरी को यह समझाने की कोशिश करते रहते थे कि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बदल गई है, इसलिए ब्रिटेन की भारतीय नीति में भी परिवर्तन होना आवश्यक है; परन्तु वह ऐसी बातें क्यों माननेवाले थे। २१ जुलाई को इन सात भारतीयों—सर सुलतान अहमद, सर होमी मोदी, सर अकबर हैदरी, श्री अणे, श्री एन० आर० सरकार, श्री राघवेन्द्र राव और सर फिरोजखां नून को वाइसराय की शासन-परिषद में नियुक्त किए जाने की घोषणा की गई। इनके अलावा श्री रामस्वामी मुदालियर को भी इसमें शामिल कर लिया गया। इस प्रकार वाइसराय की शासन-परिषद् में आठ भारतीय, तीन यूरोपियन सदस्य और प्रधान-मंत्री हो गये और यह दावा किया गया कि इस शासन-परिषद् के विस्तार का उद्देश्य युद्ध-रत राष्ट्र के लिए कार्यकुशल सरकार की स्थापना करना है तथा ये परिवर्तन मौजूदा विधान के अन्तर्गत किये गये हैं और इनके कारण भविष्य के वैधानिक निर्णय पर जो राजनैतिक दलों के पारस्परिक समझौते से किया जाएगा—किसी किस्म का प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

शासन-परिषद के इस विस्तार और राष्ट्रीय सुरक्षा-परिषद् की स्थापना के पीछे काम करनेवाली नीति का स्पष्टीकरण करते हुए यह कहा गया कि उक्त

दोनों बातें महज़ युद्धकालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए की गई हैं और इनका मकसद किसी राजनैतिक दल की मांग को पूरा करना नहीं है। इस कार्रवाई के परिणामस्वरूप किसी भी राजनैतिक मांग को न तो ओझल ही किया गया है और न उसके विरुद्ध कोई क़दम उठाया गया है। इसके साथ ही २२ जुलाई को भारत-मंत्री श्री एमरी ने भारत और युद्ध की परिस्थिति के बारे में पार्लमेण्ट में एक श्वेत-पत्र उपस्थित किया। यह श्वेत-पत्र न्यूनाधिक रूप में पिछले ग्यारह महीनों की घटनाओं का सिंहावलोकन और वाइसराय-द्वारा जारी की गई विज्ञप्ति की पुनरावृत्ति मात्र था।

विस्तार के प्रति प्रतिक्रिया

वाइसराय की शासन-परिषद् के विस्तार पर जो प्रतिक्रिया हुई वह बड़ी दिलचस्प थी। श्री जिन्ना इस बात से तिलमिला उठे कि वाइसराय ने स्वयं लीग के प्रधान और उनकी कार्य-समिति से सलाह-मशविरा लिये बगैर ही उनके आदमियों से बातचीत की। उन्होंने बंगाल, पंजाब और आसाम के प्रधान मंत्रियों के ख़िलाफ़ अनुशासन-सम्बन्धी कार्रवाई करने की धमकी दी।

भारत की दलित जातियों के नेता डा० अम्बेदकर पर इसकी प्रतिक्रिया बड़ी आश्चर्यजनक हुई। उन्होंने कहा—"मुसलमानों को लगभग हिन्दुओं जितना अर्थात् ४३ प्रतिशत प्रतिनिधित्व देकर ६ करोड़ दलितों का अपमान किया गया है। यह बहुत ही आश्चर्यजनक बात है। दलित वर्ग भारत के राष्ट्रीय जीवन का एक महत्त्वपूर्ण और प्रधान अंग है। किसी भी वैधानिक परिवर्तन के लिए उसकी सहमति आवश्यक है। महामाननीय श्रीनिवास शास्त्री जैसे अनुभवी और कुशल व्यक्ति का कथन था कि मुझे तो इस घोषणा से कोई लाभ होता नजर नहीं आ रहा है। सरकार ने न तो अपनी स्थिति ही सुदृढ़ बनाई और न किसी भी अंश में जनता की मांग ही पूरी करने का प्रयत्न किया। दूसरी ओर गांधीजी का विचार था कि इससे कांग्रेस की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और न उससे कांग्रेस की मांग ही पूरी होती है। सिक्खों ने इसे अपनी सारी जाति का अपमान समझा क्योंकि उनका एक भी आदमी केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डल में नहीं लिया गया और खासकर उस हालत में जबकि इस विस्तार का असली उद्देश्य सरकार के युद्ध-प्रयत्न को प्रोत्साहन देना था।

श्री चर्चिल का वक्तव्य

लड़ाई के तीसरे साल के शुरू में जबकि यूरोप की ताकतें पिछले सालों की परिस्थितियों के सिंहावलोकन में लगी हुई थीं, कांग्रेस को अपना आन्दोलन छेड़े अभी एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ था, क्योंकि उसने सत्याग्रह आन्दोलन का

सूत्रपात १७ अक्टूबर १९४० को किया था। गांधीजी के सामने पीछे कदम हटाने का कोई सवाल ही नहीं उत्पन्न होता था। समय और धैर्य इन दो मुख्य बातों को ध्यान में रखकर वह आगे बढ़ रहे थे। उन्होंने शत्रुओं की बदनामी या गाली-गलौज की परवाह नहीं की। लड़ाई शुरू हुए दो साल हो चुके थे, पर परिस्थिति वैसी ही बनी थी। सिर्फ पत्र-प्रतिनिधि ही ऐसे व्यक्ति थे जो ये भविष्यवाणियां कर रहे थे कि नयी शासन परिषद के पद संभाल लेने पर राजनीतिक कैदियों को रिहा कर दिया जायगा। यहां तक कहा गया था कि नये सदस्यों में इस सम्बन्ध में परस्पर पत्र-व्यवहार भी चल रहा है। लेकिन जेल के बन्दियों के लिए इन अफवाहों का कोई महत्व नहीं था। लगता है इन्हीं शंकाओं और भविष्य-वाणियों को खत्म कर देने के खयाल से श्री चर्चिल ने ९ सितम्बर को पार्लमेंट में एक बड़ा उल्लेखनीय भाषण दिया। सभी शंकाओं का विवरण करते हुए उन्होंने कहा:—

"हमारी इस संयुक्त घोषणा का उस नीति से सम्बन्ध रखनेवाले विभिन्न वक्तव्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है जो समय-समय पर भारत, बर्मा अथवा ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे हिस्सों में वैधानिक सरकार की उन्नति के बाद दिये गए हैं। हमने अगस्त १९४० की घोषणा में भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत स्वतंत्र और समान साझेदारी का पद प्राप्त करने में मदद देने का वादा किया है। हाँ, अलबत्ता ऐसा करते समय हमें भारत के साथ अपने पुराने सम्बन्धों के परिणामस्वरूप पैदा होने वाली जिम्मेदारियों और उसकी बहुतसी जातियों, स्वार्थों और धर्मों के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को ध्यान में अवश्य रखना होगा।

"उन इलाकों में जिनकी जनता ब्रिटिश सम्राट् के प्रति वफादार है, प्रगतिशील संस्थाओं के विकास से इस समस्या का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह समस्या उनसे बिलकुल अलग है। हमने इन विषयों पर जो स्वयंपूर्ण हैं, सर्वथा असंदिग्ध शब्दों में अपनी घोषणाएं कर दी हैं। इनका सम्बन्ध उन देशों और जनता के हालात से है जिन पर युद्ध का प्रभाव पड़ा है। इस संयुक्त घोषणा को आजादी और न्याय की जिस भावना से प्रेरणा मिली है, उसके साथ इनका पूर्ण मेल है।

"भारत पर अपना शासन और अधिकार बनाये रखना ब्रिटेन के पूंजीपतियों के हित में है।"

जब गांधीजी से कहा गया कि श्री चर्चिल के भाषण पर उनकी क्या राय है तब उन्होंने कुछ भी कहने से इन्कार कर दिया, क्योंकि उनके विचारों से उनका मौन रहना और उनके द्वारा चलाया गया आन्दोलन श्री चर्चिल के भाषण का स्पष्ट प्रत्युत्तर था।

सत्याग्रह-आंदोलन की वर्षगांठ

१९४०-४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन को शुरू करने और उसे

आगे चलाने के लिए गांधीजी के पास अपनी निश्चित योजना मौजूद थी। राष्ट्र के लिए बड़े सौभाग्य की बात थी कि गांधीजी जेल नहीं गए और वह स्वतंत्र रहकर इस आन्दोलन का नियंत्रण और संचालन करते रहे। वह अनेक बाधाओं और कठिनाइयों के रहते हुए भी प्रमुख कांग्रेसजनों के साथ अपना संपर्क और पत्र व्यवहार जारी रख सके। राजनीतिक नजरबन्दों की वजह से प्रारम्भ में ही जेलें भरने लगीं। शुरू शुरू में तो उन्हें १० रु० और ५ रु० के हिसाब से भत्ता भी दिया जाने लगा, किन्तु कुछ ससय बा : ही यह भत्ता बन्द कर दिया गया और सब से बड़ी बात यह हुई कि उन्हें दो श्रेणियों—'ए' और 'बी' में विभक्त कर दिया गया। पहली श्रेणी के आदमियों को ०-४-३ फी आदमी के हिसाब से स्थान मिलत था और दूसरी श्रेणी के कैदियों को ०-१-४ फी आदमी के हिसाब से। जब बार-बार अनुरोध करने का भी कुछ फल न निकला तब कहीं-कहीं भूख हड़ताल भी की गई। यह एक बड़ी असाधारण बात थी कि सीधे-साधे मामलों का निबटारा सीधे और सरल तरीकों से नहीं किया जाता था। जेलों में पत्र बहुत देर के बाद मिलते थे, कभी-कभी महीने के बाद और इसी प्रकार जेलों से बन्दियों के पत्र भी उनके घरवालों को बहुत देर से पहुँचते थे।

सत्याग्रहियों को दी जानेवाली सजाओं के मामले में सरकार ने विभिन्न समय पर विभिन्न नीति से काम लिया। शुरू-शुरू में सजाएं कड़ी दी गईं और भारी-भारी जुर्माने किये गए। इस आन्दोलन के प्रारंभ में ही दी गई सजाओं में भारी अन्तर था। उदाहरण के तौर पर पंडित जवाहरलाल नेहरू और श्री विनोबा भावे को दी गई सजाओं को ही देख लीजिए। पहले व्यक्ति को दूसरे के मुकाबले में सोलह गुना सज़ा दी गई। आंध्र जैसे प्रान्त में ही अकेले कुल मिलाकर १,१८,९६० रु० १२ आ० जुर्माना किया गया। सबसे अधिक गिरफ्तारियां उत्तर प्रदेश में हुईं। फरवरी के मध्य तक वहां, १,४९५ व्यक्ति गिरफ्तार किये गए। सबसे अधिक जुर्माना आंध्र प्रान्त में हुआ। वहां केवल सत्याग्रहियों पर कुल मिलाकर ७६,५३३ रु० जुर्माना किया गया।

मार्च के प्रारंभ तक सत्याग्रहियों को न पकड़ने की नीति काफी व्यापक रूप धारण कर चुकी थी। पहले तो गांधीजी ने गैर-गिरफ्तारशुदा सत्याग्रहियों को यह हिदायत दी कि वे मार्ग में युद्ध-विरोधी प्रचार करते हुए दिल्ली की ओर कूच करें, लेकिन बाद में उन्होंने हिदायत दी कि गिरफ्तार न होनेवाले को चाहिये कि दिल्ली रवाना होने से पहले वे अपने गांव के घर-घर में जाकर और प्रत्येक व्यक्ति के पास जाकर अपना प्रचार करें। उनकी योजना यह थी कि प्रत्येक जिले में एक ऐसा ताल्लुका चुन लिया जाय जहां तहसील के हर गांव में, हर घर में और हर नागरिक में जोरदार प्रचार किया जाय। उनकी सारी योजना का उद्देश्य वाणीस्वातंत्र्य का अधिकार प्राप्त करना था।

गांधीजी की हिदायतें हर समय उपलब्ध हो सकती थीं और वे प्रत्येक क्षण इस आन्दोलन की नब्ज़ देखते रहते थे। इतवार के दिन सत्याग्रह नहीं होता था। बड़े दिनों में २३ दिसम्बर से लेकर ४ जनवरी तक सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित रखा गया और ५ जनवरी को इतवार था। फरवरी के शुरू से ही ये अफवाहें सुनने में आ रही थीं कि शायद गांधीजी गिरफ्तार कर लिये जायं। परन्तु चाहे कुछ भी हो, जब तक गांधीजी स्वयं कुछ विरोधी कार्रवाई में भाग न लेते, सरकार उन्हें गिरफ्तार करने की मूर्खता नहीं कर सकती थी। जून १९४१ तक सत्याग्रह की दूसरी अवस्था खत्म हो गयी थी। इसलिए अखिल भारतीय कांग्रेस महा-समिति के जनरल सेक्रेटरी आचार्य जे० बी० कृपलानी ने महात्मा गांधी के परामर्श से १७ जून, १९४१ को सत्याग्रहियों और कांग्रेस कमेटियों के पथ-प्रदर्शन के लिए नीचे लिखी हिदायतें जारी कीं :—

(१) जेल से रिहा होकर आनेवाले सत्याग्रही को यथासंभव शीघ्र ही फिर दुबारा सत्याग्रह करना चाहिए। अगर किसी खास वजह से वह ऐसा नहीं कर सकता तो उसे चाहिये कि वह संबद्ध प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान के ज़रिये गांधीजी से इस बारे में छूट देने के निमित्त आवेदनपत्र भेज दे। इसमें उसे इस छूट की वजहें भी देनी चाहिये।

(२) जिस तारीख को संभावित सत्याग्रही का नाम गांधीजी के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाय उसी दिन से उसे अपना निजी काम स्थगित करके नीचे लिखे रचनात्मक-कार्यक्रम की १३ मदों में से किसी एक को या ज़्यादा को लेकर पूरी तरह से उसमें जुट जाना चाहिये :—

(क) हिन्दू-मुस्लिम अथवा सांप्रदायिक एकता, (ख) अस्पृश्यता-निवारण, (ग) मद्यनिषेध या शराबबन्दी, (घ) खादी, (च) दूसरे ग्रामोद्योग, (छ) गांव की सफाई, (ज) नयी या बुनियादी तालीम, (झ) प्रौढ़ शिक्षा, (ट) स्त्रियों की उन्नति, (ठ) स्वास्थ्य और सफाई की शिक्षा, (ड) राष्ट्र-भाषा का प्रचार, (ढ) स्वभाषा-प्रेम और (त) आर्थिक समानता का यत्न।

(३) प्रत्येक संभावित सत्याग्रही से यह आशा की जाती है कि वह अपने पास एक डायरी रखे जिसमें वह अपने प्रतिदिन के काम का ब्योरा लिखे और १५ दिन के बाद उसे संबद्ध प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के पास भेज दे।

(४) अगर कोई सत्याग्रही, जिसने अपना नाम पहली शर्तों और प्रतिबन्धों को ध्यान में रखकर सूची में लिखाया था—अब इन नयी शर्तों को मंजूर करने में अपने को असमर्थ समझता है तो उसे चाहिये कि वह अपना नाम वापस ले ले और अगर वह ऐसा करता है तो उसमें कोई अपमान-जनक बात नहीं है। वह यथाशक्ति किसी और तरीके से देश की सेवा का काम जारी रख सकता है।

(५) जिन सत्याग्रहियों ने अपने नाम दर्ज करा दिये हैं वे स्थानीय संस्थाओं

के चुनाव नहीं लड़ सकते। जो लोग सत्याग्रहियों की सूची में नाम दर्ज कराने से पहले इन चुनावों में उम्मीदवार खड़े हो गए थे उन्हें चाहिये कि या तो वे चुनाव से हट जाएं अथवा सत्याग्रह न करें। एक सत्याग्रही की हैसियत से वे दोनों जगहों पर नहीं रह सकते।

(६) जेल-मुक्त होनेवाला कोई भी सत्याग्रही जो किसी स्थानीय संस्था का सदस्य है तब तक उसकी बैठकों में भाग नहीं ले सकता, जबतक कि गांधीजी उसे इसके लिए विशेष रूप से अनुमति न दे दें।

(७) गिरफ्तार न किये जानेवाले सत्याग्रही जो अपने-अपने जिलों का दौरा कर रहे हैं तथा वे सत्याग्रही जिनका नाम स्वीकार कर लिया गया है—स्थानीय संस्थाओं की बैठकों में भाग नहीं ले सकते।

(८) वर्षा-ऋतु में, अगर कोई सत्याग्रही चाहे तो अपने गांव के अलावा किसी और गांव अथवा गांवों के समूह में ठहर सकता है और वहीं उसे सत्याग्रह और रचनात्मक-कार्य करते रहना चाहिये।

सत्याग्रह-जैसे महान् और व्यापक तथा राष्ट्रव्यापी आन्दोलन के दौरान में समय-समय पर थोड़ी-बहुत अनुचित परिस्थितियों का पैदा हो जाना सर्वथा स्वाभाविक ही था। एक ऐसी ही नई बात यह पैदा हो गई थी कि लोग धार्मिक उत्सवों के अवसर पर और मन्दिरों पर राष्ट्रीय झण्डा लहराना चाहते थे। 'राष्ट्रीय' झण्डा और 'हिन्दू' पताका के प्रश्न के सम्बन्ध में 'सिमोगा हिन्दू-महासभा' के सेक्रेटरी के नाम गांधीजी ने जो पत्र भेजा उसमें उन्होंने लिखा :—

"मुझे पता चला है कि गणपति-उत्सव के अवसर पर आयोजित जलूस में राष्ट्रीय झण्डे का प्रयोग किया गया है। मन्दिरों पर राष्ट्रीय झण्डा लगाना गलती है। कांग्रेस एक राष्ट्रीय संस्था है। कारण कि उसके द्वार सभी जातियों और धर्मों के लिए बिना किसी भेदभाव के खुले हैं। कांग्रेस का हिन्दू या दूसरे इसी किस्म के त्योहारों-उत्सवों से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

पत्रों में बार-बार यह घोषणा की जा रही थी कि गांधीजी सत्याग्रह आन्दोलन की निरन्तर प्रगति से संतुष्ट हैं। १७ अक्टूबर, १९४१ को इस व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन को शुरू हुए एक साल हो चुका था। इस आन्दोलन की प्रगति का दारोमदार इस बात पर नहीं था कि कितने अधिक आदमी जेल जाते हैं। संसार भलीभांति जानता है कि किस प्रकार १९२१ के सत्याग्रह में ३०,०००, १९३० में ६०,००० और १९३२-३३ में १,२०,००० व्यक्ति कृष्ण-मंदिर के अतिथि बने थे। यह आन्दोलन किसी शृङ्खला की कड़ी नहीं था। उसकी प्रगति का अन्दाज़ा गणित शास्त्र या ज्यामिति से नहीं लगाया जा सकता था। १२ अक्टूबर, १९४१ को सेवाग्राम में गांधीजी को जन्मदिन के उपलक्ष में लगभग ३ करोड़ गज़ सूत और १२,००० रु० भेंट किया गया। गांधीजी ने लगभग ४५

मिनट तक इस सभा में भाषण किया। अपने भाषण के दौरान में गांधीजी ने सत्याग्रह की प्रगति पर संतोष प्रकट करते हुए कहा :—

"अन्त में मैं लोगों पर फिर स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सत्याग्रह की लड़ाई कष्ट उठाने और त्याग करने की लड़ाई है। हिंसा-जैसी पैशाचिक युद्धकला में जैसा कि आजकल यूरोप में देखने में आ रहा है लोगों को मजबूरन कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं। परन्तु हमारे संघर्ष में इतने बड़े पैमाने पर कष्ट झेलने का सवाल नहीं पैदा होता। इसमें तो हमें सिर्फ बारम्बार जेल ही जाना है। अगर हम इस मामूली से कष्ट को भी बरदाश्त नहीं कर सकते तो हमारे लिए स्वराज्य की चर्चा करना बिलकुल बेकार है।"

विभिन्न दलों के मत

सत्याग्रह-आन्दोलन की इस वर्षगांठ का इसलिए इतना महत्व न था कि उसके परिणाम-स्वरूप लोगों में भावोद्रेक को प्रोत्साहन मिलेगा, बल्कि बहुत से महत्त्वपूर्ण नेता जेल से रिहा होकर आ रहे थे। १९ अक्टूबर तक कार्यसमिति के ग्यारह सदस्य मुक्त होकर वर्धा पहुँच चुके थे। उनके अलावा और भी नेता वहाँ मौजूद थे। यद्यपि कोई भी दल सरकार के रुख और उसकी कार्रवाई का समर्थक नहीं था, तथापि उनका दो बातों के बारे में आपसी मतभेद था : एक तो यह कि कांग्रेस के साधारण रुख का समर्थन वे अपने-अपने दृष्टिकोण से करते थे और दूसरे गतिरोध का अन्त करने के लिए उनके अपने-अपने सुझाव थे। कुछ दल तो पूर्णतः भारतीय शासन-परिषद् के हामी थे और कुछ दूसरे यह चाहते थे कि शासन-परिषद् का स्वरूप तो यही बना रहे, लेकिन वह सम्राट् और वाइसराय के प्रति सामूहिक रूप से ज़िम्मेवार होनी चाहिये। डा० सप्रू के नेतृत्व में निर्दल नेताओं की मांग यह थी कि उपर्युक्त आधार पर शासन-परिषद् के निर्माण के अलावा ब्रिटिश सरकार को युद्ध समाप्त होने के बाद एक निश्चित अवधि के भीतर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देन के सम्बन्ध में भी घोषणा कर देनी चाहिये। निर्दल नेता निरन्तर गांधीजी से यही कह रहे थे कि वे सत्याग्रह-आन्दोलन वापस ले लें। मुस्लिम-लीग का दृष्टिकोण बिल्कुल निराला ही था। उसने इस सिलसिले में पाकिस्तान का सवाल खड़ा कर दिया और यह फैसला किया कि जब तक इस प्रश्न का निपटारा न हो जाय तब तक शासन-परिषद् अथवा सुरक्षा-परिषद् से असहयोग किया जाय। २६ अक्टूबर से केन्द्रीय असेम्बली का अधिवेशन शुरू हो रहा था। इससम्बन्ध में लीग का रुख क्या होगा, इस बात की देश में बड़ी चर्चा थी।

नरम दलवालों की नीति यह थी कि वे पृथक् पृथक् घटनाओं के सम्बन्ध में अपने पवित्र और ज़ोरदार विचार प्रकट करके सन्तोष कर लेते थे। लेकिन समस्या को हल करने की कोई उपयुक्त योजना नहीं सुझाते थे। इनके अलावा देश में

साम्यवादी दल—साम्यवादी नेता अलग-अलग अपनी हैसियत से, उसके सदस्य की हैसियत से नहीं—समाजवादी दल, अग्रगामी दल और किसान सभा वाले अपने विचार सार्वजनिक रूप से नहीं जाहिर कर रहे थे। उन्हें ऐसा करने का मौका भी नहीं मिला था। लेकिन इनमें से कुछ कार्यकर्ता मुख्य रूप से अपना कार्य कर रहे थे और ये सभी दल ब्रिटेन के विरोधी थे। प्रश्न यह था कि उन्हें अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करना चाहिये या नहीं ? कुछ लोग यह कह रहे थे कि उन्हें अपनी नीति में आमूल परिवर्तन करके युद्ध-प्रयत्न में सक्रिय रूप से जोरदार मदद करनी चाहिये। दूसरा पक्ष यह कहता था कि रूस को तो पूरी मदद दी जाय, लेकिन ब्रिटेन को नहीं। अखिल भारतीय किसान-सभा ने यद्यपि अपने "पितृदेश" की यथासंभव मदद करने का समर्थन किया, तथापि इस बात पर खेद भी प्रकट किया कि भारत में उनकी स्थिति बड़ी शोचनीय है और इसलिए उनके लिए प्रत्यक्ष रूप से रूस की कोई मदद करना संभव नहीं है। सिक्खों और हिन्दू-महासभाइयों ने युद्ध-प्रयत्न में पूरी-पूरी मदद की। इधर तो ये विरोधी विचारधाराएँ, वाद-विवाद और विचार-विनिमय हो रहे थे, उधर कांग्रेस निश्चल भाव से अपना मस्तक ऊँचा किये अपने निर्धारित कार्यक्रम पर अग्रसर हो रही थी। उसे पूरा यकीन था कि लड़ाई में मदद न करते हुए या ब्रिटेन को परेशानी में न डालने की उसकी जो नीति है, वह सही और समयानुकूल है। सत्याग्रह-आन्दोलन में इस दूषित विचार के लिए कोई स्थान ही नहीं था कि दुश्मन की मुसीबत से फायदा उठाया जाय। गांधीजी को इस बात पर कोई यकीन नहीं था कि सामूहिक सत्याग्रह-द्वारा हम शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेंगे।

इसी बीच कुछ ऐसी शक्तियाँ जिन पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं था, सत्याग्रह के कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन करने को बाध्य कर रही थीं। अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में गांधीजी ने एक व्यापक और विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित किया जो उन लोगों की इस युक्ति का प्रत्युत्तर था कि कार्यक्रम में परिवर्तन किया जाय और आन्दोलन की पिछले साल की प्रगति-समीक्षा की जाय। गांधीजी ने अपने वक्तव्य में अपने शाश्वत सिद्धान्तों को दोहराते हुए कहा कि "सिविल नाफरमानी को छोड़ देना बेवकूफी होगी। सिविल नाफरमानी स्वयं पूर्ण रूप से एक अहिंसात्मक कार्रवाई है। हिंसा के मुकाबले में यह परम कर्तव्य बन जाता है, जिसकी मिसाल दुनिया में नहीं मिल सकती।"

जेल से रिहाइयाँ

अचानक २७ अक्टूबर, १९४१ को सारे भारत में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि वेलौर सेंट्रल जेल से कुछ नजरबन्द क़ैदी छोड़े जा रहे हैं जिनमें मद्रास की

व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष और छः अन्य सदस्य भी शामिल हैं। इस समाचार के तुरन्त बाद ही कैदियों को पहली नवम्बर को रिहा कर दिया गया। सरकार ने बहुत से साधारण सत्याग्रहियों को भी आमतौर पर पहली बार सत्याग्रह करने पर गिरफ्तार करना छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त किसी-किसी को दूसरी बार और किसी को तीसरी बार सत्याग्रह करने पर भी गिरफ्तार नहीं किया। मद्रास में इन रिहाइयों के बाद बम्बई के प्रधान मंत्री और एक-दो और आदमियों को तथा और जगह भी एकाध आदमियों को रिहा कर दिया। बात दरअसल यह थी कि सभी हल्कों के लोगों द्वारा जिनमें कामन सभा के कुछ सदस्य भी शामिल थे, यह मांग की जा रही थी कि पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा दूसरे क़ैदियों को रिहा कर दिया जाय जिससे कि देश में गतिरोध का अन्त करने के लिए नया प्रयत्न करने के अनुकूल वातावरण पैदा हो सके। इसी बीच भारत-सरकार ने अचानक नई दिल्ली से एक विज्ञप्ति प्रकाशित की जिसमें बताया गया कि भारत-सरकार को इस बात का यकीन है कि भारत के सभी ज़िम्मेवार व्यक्ति युद्ध में विजय प्राप्त होने तक युद्ध-प्रयत्न में सहायता करने का दृढ़ निश्चय किये हुए हैं। इसलिए वह इस नतीजे पर पहुँची है कि सविनय-भंग-आन्दोलन के उन कैदियों को जिनका अपराध सिर्फ रस्मी तौर पर अथवा सांकेतिक रूप में था, रिहा किया जा सकता है। इनमें पंडित जवाहरलाल नेहरू और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद भी शामिल हैं। इसके अनुसार उन्हें तत्काल ही रिहा कर दिया गया। जैसी कि आशा थी, गांधीजी ने अपनी स्थिति और स्पष्ट कर दी और कांग्रेस के अध्यक्ष की रिहाई को ध्यान में रखते हुए कहा कि कांग्रेस की भावी नीति का निर्णय अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति और कार्यसमिति ही करेगी। गांधीजी का नीचे दिया गया वक्तव्य ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व रखता है, क्योंकि आजतक उन्होंने यह नहीं कहा कि यह वक्तव्य कांग्रेस के सत्याग्रह-आन्दोलन के सम्बन्ध में अन्तिम घोषणा है।

गांधीजी का वक्तव्य

गांधीजी ने कहा—"मैं अपने विद्यार्थी-जीवन से अपने को ब्रिटिश जनता का मित्र समझता रहा हूँ और अभी तक समझता हूँ; लेकिन इस मित्रता का यह तात्पर्य नहीं कि मैं यह खयाल करना छोड़ दूं कि ब्रिटेन के प्रतिनिधि भारत को अपना क्रीतदास समझते हैं। भारत को आज जो आज़ादी मिली हुई है, वह गुलामों-जैसी आजादी है, बराबरी के दरजेवालों की वह आजादी नहीं, जिसे हम दूसरे शब्दों में मुकम्मिल आजादी कहते हैं।

"श्री एमरी की घोषणाओं से हमारे घाव और हरे होते हैं; क्योंकि वह उन

पर नमक छिड़कने की कोशिश करते हैं। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर मुझे रिहाइयों के प्रश्न की समीक्षा करनी है।

"अगर भारत-सरकार को ऐसा यकीन है कि देश के सभी उत्तरदायी लोग युद्ध-प्रयत्न में सहयोग देने का दृढ़ निश्चय किये हुए हैं तो उसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि सविनय-भंग के कैदियों को जेलों में बन्द रखा जाय, क्योंकि वे इस कथन के अपवाद हैं। मैं तो इन रिहाइयों का सिर्फ एक ही मतलब समझ सका हूँ और वह यह है कि सरकार यह उम्मीद करती है कि उनके विचार बदल जाएंगे। मुझे उम्मीद है कि इस बारे में सरकार को बहुत शीघ्र ही निराश होना पड़ेगा।

"सत्याग्रह-आन्दोलन खूब सोच-विचार करने के बाद ही शुरू किया गया था। यह बदला लेने की भावना से नहीं प्रारंभ किया गया था। यह इसलिए शुरू किया गया था और मुझे उम्मीद है कि आगे भी जारी रहेगा कि कांग्रेस ब्रिटिश जनता और संसार के सामने अपना यह दावा साबित कर देना चाहती है कि देश का एक बड़ा भाग जिसका कांग्रेस प्रतिनिधित्व करती है, लड़ाई का सर्वथा विरोधी है। वह निश्चित रूप से जानती है कि भारत को इस लड़ाई के फलस्वरूप आजादी नहीं मिलेगी।

"कांग्रेस का यह दावा है कि वह देश की करोड़ों मूक जनता का प्रतिनिधित्व करती है। उसने गत बीस वर्षों से अहिंसा पर चलते हुए ही भारत की आजादी हासिल करने की कोशिश की है और यही उसकी निरन्तर नीति भी रही है। इसलिए सत्याग्रह को, चाहे वह फिलहाल प्रतीक स्वरूप ही क्यों न हो, बन्द करने का मतलब यह होगा कि उसने नाजुक घड़ी में आकर अपनी नीति छोड़ दी।

"सरकार यह दावा करती है कि कांग्रेस के विरोध करने पर भी उसे भारत से यथेष्ट सैनिक और धन मिल रहा है। इसलिए कांग्रेस का विरोध सिर्फ एक नैतिक विरोध ही है। मैं तो इससे बिल्कुल संतुष्ट हूँ, क्योंकि मुझे यकीन है कि इसी नैतिक प्रदर्शन से समय आने पर हमें स्वाधीनता मिल जाएगी, फिर ब्रिटेन में चाहे किसी भी दल का प्रभुत्व क्यों न हो।"

नेहरूजी का संदेश

स्वाभाविक तौर पर यह आशा की जा रही थी कि मुक्त हुए नेता धुआंधार भाषण देंगे। इनमें से सर्वप्रथम पंडित जवाहरलाल नेहरू थे, जिन्हें ४ दिसम्बर, १९४१ को जेल से मुक्त किया गया। उन्होंने रिहा होने के बाद ही अपने सभी सहयोगियों और मित्रों का हार्दिक अभिवादन करते हुए उनके नाम निम्नलिखित अत्यधिक हृदयस्पर्शी, क्रान्तिकारी और ज़ोरदार संदेश भेजा :—

"एक विदेशी हुकूमत के कहने पर जेल जाने और उससे बाहर आने में मुझे

किसी किस्म की खुशी नहीं महसूस होती। जेल की तंग चहारदीवारी में से निकलकर भारत जैसे विशाल कैदखाने में आना कोई खुशी की बात नहीं है। निश्चय ही एक समय ऐसा आएगा जब हम गुलामी की इन बेड़ियों को तोड़कर आजादी के साथ सांस ले सकेंगे। परन्तु अभी वह दूर है और हमें इस तुच्छ-से परिवर्तन पर प्रसन्न नहीं होना चाहिये।

"इस संसार में जहाँ असीम दुखों, हिंसा, घृणा और सर्वनाश का साम्राज्य छाया हुआ है, हम आराम और चैन से क्यों कर बैठ सकते हैं। इस भारत में जहां विदेशी और स्वेच्छाचारी शासन हमें दबाकर और जकड़ कर रखता है, हमें शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिए स्वतंत्र भारत तथा स्वतंत्र संसार के हितों को अग्रसर करने का हमें निरंतर आह्वान करना है। जो व्यक्ति इस आह्वान को सुनना चाहते हैं, उनके लिए यह मौजूद है।"

गांधीजी का वक्तव्य

गांधीजी ने अपने वक्तव्य में कहा :—

"इस समय सत्याग्रहियों की शीघ्रता के साथ जो रिहाइयां हो रही हैं, उनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमें अखिल भारतीय महासमिति की बैठक अवश्य बुलानी चाहिये, क्योंकि सरकार का प्रत्यक्ष रूप से यह ख्याल है कि उसमें बम्बई के उस प्रस्ताव को वापस ले लिया जायगा जिसकी बिना पर मैंने सत्याग्रह-आन्दोलन चलाया है। इसलिए मैंने मौलाना साहब से कांग्रेस कार्यसमिति और अखिल भारतीय महासमिति की बैठक बुलाने को कहा है, लेकिन जब तक वह फैसला बदल नहीं दिया जाता, तब तक सत्याग्रह-आन्दोलन जारी ही रहना चाहिये। मैं यह मानता हूँ कि सरकार-द्वारा सत्याग्रही बन्दियों की मुक्ति के कारण सत्याग्रह का संचालन कठिन अवश्य हो गया है, लेकिन अगर हमें अपने मकसद तक पहुँचना है तो हमें हरेक मुश्किल का मुकाबला करना होगा। यह मुश्किल तो उस मुश्किल के मुकाबिले में कुछ भी नहीं है जिसका सामना शायद हमें अपनी स्थिति सुधर जाने पर करना होगा। अखिल भारतीय महासमिति की बैठक होने तक कांग्रेस-कार्यसमिति और भारतीय महासमिति के सदस्यों को तथा जो लोग बम्बई के प्रस्ताव को बदलना चाहते हैं, उन्हें किसी भी हालत में सत्याग्रह नहीं करना चाहिये। इसके अलावा सत्याग्रह-आन्दोलन निर्बाध रूप से चलता रहना चाहिये। सांकेतिक-सत्याग्रह का एक खास मतलब है; लेकिन सरकार अगर चाहे तो उन कांग्रेसजनों को भी भाषण देने पर पकड़ सकती है, जिनका इरादा सत्याग्रह में भाग लेने का नहीं है। औरों का तो क्या कहना, सरकार ने इसी तरह से मौलाना साहब और पंडित जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया था। मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मुझे किसी बाहरी कारण के आधार पर

सत्याग्रह-आन्दोलन मुल्तवी कर देने का कोई हक नहीं है। यह काम तो कांग्रेस का है।"

कार्यसमिति की बैठक

जैसा कि स्वयं गांधीजी ने संकेत किया था, सत्याग्रहियों की रिहाई के बाद पहला काम शीघ्र ही कार्यसमिति की बैठक बुलाने का था और इसके बाद अखिल भारतीय महासमिति की बैठक बुलाकर उसमें कांग्रेस की भरती-नीति पर सोच-विचार करके कोई फैसला कर लेना था। तदनुसार कार्यसमिति की बैठक २३ दिसम्बर, १९४१ को बुलाई गई। कार्यसमिति की बैठक बारदोली में गांधीजी के निवास-स्थान पर हुई। उसका निर्णय अप्रत्याशित परन्तु उचित ही था।

उसका मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार था :—

"समिति गांधीजी के नेतृत्व और राष्ट्र-द्वारा इस आन्दोलन में दिए गए सहयोग की सराहना करती है और उसकी कद्र करती है। उसकी राय है कि इससे जनता की शक्ति बढ़ी है। ब्रिटेन ने भारत की आजादी का विरोध किया है और वह भारत में यहां की जनता की आकांक्षाओं को ठुकराकर, पूर्णतः स्वेच्छाचारी शासन पर अमल करता रहा है। प्रजातन्त्र और स्वाधीनता के उद्देश्य और लड़ाई के फलस्वरूप वह जिस संकट में फंसा हुआ है, उसे ध्यान में रखते हुए भी उसकी नीति और मनोवृत्ति में किसी किस्म का परिवर्तन देखने में नहीं आया और जो परिवर्तन हुए भी हैं उनके कारण परिस्थिति बिगड़ी ही है, सुधरी नहीं है।

"हाल में राजनीतिक बन्दियों की जो रिहाई हुई है, वह महत्वहीन है, क्योंकि यह कार्रवाई जिन परिस्थितियों में की गई है और इस सम्बन्ध में सरकारी तौर पर जो घोषणा हुई है उससे साफ जाहिर है कि इसका सम्बन्ध नीति में किसी परिवर्तन से नहीं है, फिर भी कार्य-समिति उस नयी परिस्थिति पर पूरी तरह से ध्यान देना चाहती है, जो इस लड़ाई के विश्वव्यापी रूप धारण कर लेने तथा उसके भारत के द्वार तक आ पहुँचने के कारण पैदा हो गई है। भारत का सारा वातावरण अंग्रेजों के विरोध और उनके प्रति अविश्वास की भावना से ओतप्रोत है और बड़े-बड़े व्यापक वादों से भी इस परिस्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ सकता और न भारत स्वेच्छा से, अभिमानी साम्राज्यवाद की कोई मदद ही कर सकता है; क्योंकि उसकी दृष्टि में साम्राज्यवाद और तानाशाही में किसी किस्म का अन्तर नहीं है।

"इसलिए समिति की राय है कि १६ सितम्बर १९४० को अखिल भारतीय महासमिति ने बम्बई में जो प्रस्ताव पास किया था और उसमें कांग्रेस की जो नीति बताई गई थी, वह अभी तक कायम है।"

इसके अलावा कार्य-समिति ने और भी कई प्रस्ताव पास किये। राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल, श्री कृपलानी और डा० घोष ने एक वक्तव्य निकाल कर अखिल भारतीय महासमिति की आगामी बैठक में स्वतंत्र रूप से अपने-अपने विवेक के अनुसार कांग्रेस की भावी नीति पर विचार प्रकट करने का आग्रह किया।

बारदोली-प्रस्ताव का प्रभाव

तत्काल ही इस प्रस्ताव की ओर इंगलैण्ड के लोगों का ध्यान आकृष्ट हो गया; लेकिन प्रत्यक्ष रूप से इसकी कोई प्रतिक्रिया या प्रभाव देखने में नहीं आया। भारत-मंत्री ने ९ जनवरी, १९४२ को कामन सभा में भाषण देते हुए कहा, "दिसम्बर के अन्त में भारत के राजनीतिक दलों ने जो प्रस्ताव पास किये हैं और इस सम्बंध में राजनीतिक नेताओं ने जो विभिन्न वक्तव्य दिये हैं, उनकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट हुआ है, लेकिन मुझे खेद है कि हाल में वाइसराय ने समान संकट को देखते हुए भारतीय जनता से सहयोग और एकता की जो अपील की थी, उसके सम्बन्ध में इन दलों ने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया।

श्री चर्चिल अभी अमरीका में ही थे जब कि उन्हें बारदोली के प्रस्ताव का समाचार मिला और एक सवाल का जवाब देते हुए उन्होंने कहा कि मैं फिलहाल इस बारे में कुछ भी नहीं कह सकता; क्योंकि पिछले कुछ समय से मेरा भारत की घटनाओं से कोई संपर्क नहीं रह सका। २२ जनवरी, १९४२ को कामन सभा में एक सवाल का जवाब देते हुए श्री एमरी ने कहा कि मैं भारत की राजनीतिक स्थिति के बारे में कोई और वक्तव्य नहीं देना चाहता। २७ जनवरी १९४२ को कामन सभा की एक बहस में हिस्सा लेते हुए श्री पेथिक लारेंस ने कहा, कि मेरे विचार में भारतीय समस्या का कोई सन्तोषजनक हल ढूंढ़ निकालना युद्ध-प्रयत्न का एक महत्वपूर्ण अंग है और प्रधान मंत्री को भारतीय जनता तथा उसके राजनीतिक नेताओं को यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि देश के सभी लोगों की हार्दिक इच्छा यह है कि लड़ाई के बाद उन्हें औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जाय। श्री एडगर ग्रेनविल (उदार राष्ट्रवादी) ने यह आशा प्रकट की कि सरकार भारत के सभी साधनों का एकीकरण करने में सफल हो जाएगी और प्रधान मंत्री यह घोषणा कर देंगे कि दूसरे स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेशों की भांति भारत का प्रतिनिधि भी लन्दन के युद्ध-मंत्रिमण्डल में ले लिया जाएगा।

३ फरवरी को एक बार फिर लार्ड सभा में एक गरमागरम बहस हुई, जिसमें लार्ड फैरिंगटन (मज़दूर-दल) ने प्रमुख भाग लिया। उन्होंने सरकार का ध्यान उस वक्त की जरूरी समस्या की ओर आकृष्ट किया और यह शिकायत की कि सरकार में आत्म-संतुष्टि की भावना घर कर गई है और परिस्थिति हर रोज नाजुक होती जा रही है; लेकिन इतने पर भी उसका मुकाबला करने की

कोई कोशिश नहीं की जाती। मेरा सबसे पहला सुझाव यह है कि सरकार यह घोषणा कर दे कि वह भारत को भविष्य में नहीं, बल्कि इसी वक्त स्वराज्य दे देना चाहती है। उन्होंने कहा कि सरकार ने यह घोषणा की है कि अगर भारत के दोनों दलों में कोई समझौता हो जाय तो वह उसका समर्थन करेगी, लेकिन मेरे ख्याल से यह कुछ अनुचित रवैया है। मुस्लिम लीग ने, जो कि मुसलमानों का प्रतिनिधि होने का दावा करती है, कागज़ पर अपनी माँगें लिखकर रख दी हैं और स्पष्ट है कि कांग्रेस उन्हें किसी भी हालत में मंजूर नहीं कर सकती। लेकिन वास्तविकता यह है कि मुस्लिम लीग सभी मुसलमानों का प्रतिनिधि होने का दावा नहीं कर सकती और यह आवश्यक है कि ब्रिटेन के लोगों को भी यह बात आसानी से समझ लेनी चाहिए और उन्हें उग्र विचारोंवाले मुसलमानों के हाथ का खिलौना बनकर भारतीयों के समझौते के मार्ग में रुकावट नहीं पैदा करनी चाहिये।

लार्ड हेली ने कहा कि यह वक्त छोटी रस्मी बातों का नहीं है। हमें सीरिया की तरह ही भारत के बारे में भी कोई स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिए। लार्ड हेली ने पूछा कि भारतीय रियासतों की स्थिति क्या होगी? और क्या अब हमें मुसलमानों की यह बात मंजूर कर लेनी चाहिए कि संयुक्त भारत के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जायँ? उन्होंने कहा कि मेरे ख़याल से तो सम्राट् की सरकार को एक ऐसी संतोषजनक घोषणा कर देनी चाहिए जिसके अन्तर्गत या तो कोई तारीख निश्चित कर दी जाय अथवा कोई ऐसा तरीका बताया जाय जिससे कि भारत के दोनों दलों में कोई समझौता हो सके।

लार्ड सभा में भारत-विषयक बहस के दौरान में उप भारत-मंत्री ड्यूक आफ डीवनशायर ने जो भाषण दिया उससे साफ़ तौर पर यह ज़ाहिर हो जाता है कि साम्राज्य के लिए भारी खतरा पैदा हो जाने पर भी अपनी भारत-विषयक नीति के सम्बन्ध में ब्रिटेन की मनोवृत्ति में किसी किस्म का कोई फर्क नहीं आया है। उन्होंने कांग्रेस का असर घटाकर और मुस्लिम लीग का असर बढ़ाकर दिखाने की कोशिश की। उन्होंने कहा, "ऐसा मालूम होता है कि मुस्लिम लीग का असर और उसकी ताकत निश्चित रूप से बढ़ रही है और इस वक्त कांग्रेस की ताकत कम हो रही है। कांग्रेस के दावे को चुनौती दी जा रही है और महान् मुस्लिम जाति हमेशा ही उसके दावे को चुनौती देती रहेगी।"

श्री सिलवरमैन ने आग्रह किया कि युद्ध में भारतीय जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने के लिए हमें भारत को आजाद कर देना चाहिये। लेकिन श्री एमरी टस-से-मस न हुए और इस बारे में उन्होंने बिलकुल मौन ही धारण कर लिया। २० फरवरी को ब्रिटेन के मंत्रिमंडल में किये गए परिवर्तनों की घोषणा की गई; लेकिन भारत में उससे रत्तीभर भी आशा देखने में नहीं आई, क्योंकि दुनिया चाहे इधर-से-उधर हो जाती, पर विदूषक एमरी को अपने स्थान पर ही

बने रहना था। ब्रिटेन और अमरीका में होनेवाली प्रतिक्रियाओं और आलोचनाओं का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था। उधर अन्ध महासागर के पार न्यूयार्क का ध्यान गांधी और चांगकाई शेक के मिलन की ओर आकृष्ट हो गया और "न्यूयार्क टाइम्स" ने लिखा है कि भारतीय राष्ट्रवादी इस समय केवल समय की प्रतीक्षा में बैठे हैं। आग वह प्रश्न करता है कि "क्या भारत की जागृति का समय निकट आ गया है? इस बारे में हमें कुछ नहीं मालूम; लेकिन हम इतना अवश्य जानते हैं कि अब चीन और भारत अंग्रेज के घर पानी नहीं भरते, वे अब उसकी कठपुतली नहीं रहे।"

चांगकाई शेक का स्वागत

९ फरवरी, १९४२ को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की एक घटना हुई जब कि भारत ने जनरल चांगकाई शेक, मदाम चांगकाई शेक और उनके सैनिक अफसरों का भारत के वाइसराय के अतिथियों के रूप में स्वागत किया। एक विज्ञापन में बताया गया कि "जेनरलिस्सिमो चांगकाई शेक भारत और चीन से सम्बन्ध रखनेवाले समान विषयों के सम्बन्ध में भारत-सरकार और खासतौर पर भारत के प्रधान सेनापति से सलाह-मशविरा करने आए हैं। उन्हें आशा है कि भारत में अपने प्रवास की अवधि में उन्हें भारत के प्रमुख सार्वजनिक नेताओं से भेंट करने का अवसर प्राप्त हो सकेगा।"

आधुनिक चीन के उद्धारक के नाम भारत के विभिन्न भागों से उनका स्वागत करते हुए बहुत से सन्देश भेजे गए। ब्रिटेन और अमरीका के समाचारपत्रों ने इस अभूतपूर्व और अप्रत्याशित घटना पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उनके साथ कई बार भेंट की। पहले तो स्वयं अकेले, फिर कांग्रेस के प्रधान मौलाना आजाद के साथ और बाद में अपनी बहन और पुत्री के साथ। यह आशा की जाती थी कि जेनरलिस्सिमो गांधीजी से भी मुलाकात करेंगे, लेकिन ऐसा न हो सका।

१९ फरवरी, १९४२ को शान्तिनिकेतन में जनरलिस्सिमो चांगकाई शेक और मदाम चांगकाई शेक का खूब धूम-धाम से स्वागत किया गया। रथीन्द्रनाथ के स्वागत-भाषण का उत्तर देते हुए जेनरलिस्सिमो ने कहा :—

"इस अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में महाकवि के निवास-गृह पर आकर मुझे और मदाम चांगकाई शेक को बड़ी प्रसन्नता हुई है। आपने हमारा जो स्वागत किया है उसके लिए हम आपके आभारी हैं। हमने महाकवि के साक्षात् दर्शन तो नहीं किये हैं; लेकिन अपनी इस संस्था में जो जीवन वह डाल गए हैं; उसे देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है।

"हमें पूर्ण आशा है कि इस संस्था के अध्यापक और छात्रगण, जो यहाँ एकत्र

हैं, इस संस्था की परंपरा को बनाए रखने का प्रयत्न करेंगे और उस महान् कर्म को जारी रखेंगे जिसकी आधार-शिला आपके गुरुदेव रख गए हैं। जिस प्रकार हमारे सनयात सेन ने हममें विश्वव्यापी भ्रातृत्व का बीज बोया था और नवीन चीन के यश को बढ़ाया था उसी प्रकार आपके गुरुदेव ने आपके महान् देश के अध्यात्म को उन्नत करके एक नयी जागृति पैदा कर दी है।" आगे उन्होंने कहा—"अपनी सहृदयता और चीन-वासियों की शुभकामनाओं के अतिरिक्त मैं आपके लिए चीन से और कुछ नहीं लाया हूँ। भगवान् करे आप उस विशाल कार्य को पूरा कर सकें जिसे पूरा करने का भार आपके महान् नेताओं ने समस्त राष्ट्र के कन्धों पर छोड़ा है।"

जनरलिस्सिमो चांगकाई शेक और उनके साथी कलकत्ता से स्पेशल गाड़ी में शान्ति-निकेतन पहुँचे थे। उनके साथ पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी थे।

बोलपुर स्टेशन पर उनका स्वागत कवि की पौत्री श्रीमती प्रतिभा टैगोर, प्रिंसिपल क्षितिमोहन सेन और विश्वभारती के प्रधान सेक्रेटरी श्री अनिलचन्द्र ने किया। वहाँ से वे सब लोग सीधे मोटर-द्वारा उत्तरायण पहुँचे जहाँ श्री रथीन्द्र-नाथ टैगोर ने उनकी आवभगत की।

कवि के अन्तिम निवासस्थान "उदीची" में कुछ देर तक विश्राम करने के बाद मार्शल चांगकाई शेक और मदाम चांगकाई शेक ने शान्ति-निकेतन के कला-विभाग का निरीक्षण किया। मध्याह्नोत्तर उनका स्वागत सिंह-सदन में किया गया। जब सम्मानित अतिथि अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए, तब समारोह वैदिक मंत्रों से प्रारम्भ हुआ। इसके बाद उन्हें पुष्पमालाएँ पहनाई गईं और उनके मस्तक पर भारतीय विधि के अनुसार चंदन का तिलक लगाया गया। विश्व-भारती की ओर से जेनरलिस्सिमो को एक जोड़ा रेशमी धोती तथा एक चादर और श्रीमती चांगकाई शेक को एक सुन्दर रेशमी साड़ी भेंट की गई।

विश्व-भारती की ओर से मार्शल चांगकाई शेक और श्रीमती चांगकाई शेक का अभिनन्दन करते हुए श्री रथीन्द्रनाथ टैगोर ने चीन के प्रति महाकवि रवीन्द्र-नाथ की असीम सहानुभूति और प्रेम का उल्लेख किया और कहा कि अन्तिम समय तक कवि ने आपके देश की निर्जाति के सम्बन्ध में गहरी दिलचस्पी ली और वह आपकी जनता के महान् गुणों और जीवन मृत्यु के महान् संघर्ष में भी ज्ञान के प्रति उनके आराम की प्रशंसा करते नहीं थकते थे श्रीमती चांगकाई शेक ने पृथक् रूप से उत्तर देते हुए कहा—"जब से जापान ने चीन पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया है, हमारे हजारों छात्रों को बमों, टैंकों और तोपों का सामना करना पड़ा है। शत्रु ने उनके घरों और विश्वविद्यालयों को नष्ट कर दिया है। लेकिन जैसा आपको ज्ञात है, हमारे छात्र सैकड़ों मील पैदल चलकर सरकार द्वारा देश के भीतरी भागों में स्थापित नये शिक्षालयों में पढ़ने के लिए गए हैं। उन्होंने

चीन के मस्तिष्क को जागरूक बनाए रखा है और देश-भक्ति की ज्योति को अपूर्व द्युति के साथ प्रज्ज्वलित रखा है। इस शान्तिमय भूमि में जहाँ जापानी सैनिकवाद का कोई खतरा नहीं है, आपके लिए यह समझना कठिन होगा कि इसका क्या अभिप्राय है।"

शान्तिनिकेतन की छात्राओं ने केसरिया साड़ियों में मार्शल चांगकाई शेक को "गार्ड आव आनर" दी। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इस "गार्ड आव आनर" का निरीक्षण किया।

मार्शल चांगकाई शेक और श्रीमती चांगकाई शेक ने कला-भवन और श्री-भवन का निरीक्षण किया। चीन-भवन में दोपहर बाद चाय दी गई। भवन चीनी चित्रों से कलापूर्ण ढंग से सजाया गया था। बाद में वे उत्तरायण गए जहां उनके मनोरंजन का प्रबन्ध किया गया था।

मार्शल चांग का सन्देश

मार्शल चांग दो सप्ताह तक भारत में रहे। इस बीच उन्होंने सर्वोच्च सैनिक अधिकारियों तथा भारतीय मित्रों से बात-चीत की। चलते समय उन्होंने जो सन्देश दिया वह संक्षेप में इस प्रकार है—"वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण संसार दो भागों में विभक्त हो गया है। एक अत्याचारी दल और दूसरा अत्याचार-विरोधी दल। उन सब लोगों को अत्याचार-विरोधी दल में सम्मिलित होना चाहिये जो आतंकवाद के विरोधी हैं और अपने देश तथा मानव-समाज की स्वतंत्रता के लिए यत्न कर रहे हैं। बीच का कोई मार्ग नहीं है और न घटनाक्रम की प्रतीक्षा करने का अवसर है। मानव-समाज के भविष्य के लिए यह बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य है। हमारे सामने न तो किसी एक व्यक्ति या देश की स्वतंत्रता का प्रश्न है और न किन्हीं दो राष्ट्रों के निवासियों के बीच की किसी खास समस्या से इस प्रश्न का कोई संबंध है। इसलिए जो भी राष्ट्र आतंकविरोधी मोर्चे में सम्मिलित होगा वह किसी खास देश के साथ नहीं, बल्कि सारे मोर्चे के साथ ही सहयोग करेगा। इस प्रकार हम यह विश्वास कर सकते हैं कि राष्ट्रीयता के इतिहास में प्रशान्त सागर का युद्ध एक युगान्तकारी घटनाक्रम है। लेकिन जिन साधनों के द्वारा संसार के लोग अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं, वे अतीत में काम में लाए जानेवाले साधनों से भिन्न हो सकते हैं। आतंकवाद-विरोधी राष्ट्रों को आशा है कि नये युग में स्वतंत्र संसार की रक्षा के लिए, जिसमें भारत का अपना स्थान होगा, भारत के निवासी अपनी इच्छा से वर्तमान युद्ध में पूरी तरह सहयोग प्रदान करेंगे। संसार के लोगों का बहुत बड़ा भाग भारतीयों की स्वतंत्रता की मांग से पूर्ण सहानुभूति रखता है। यह सहानुभूति इतनी मूल्यवान है तथा इसे प्राप्त करना इतना कठिन है कि इसकी

कीमत धन या साज-सामान की दृष्टि से नहीं कूती जा सकती। इसलिए इस सहानुभूति को बनाए रखने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

"वर्तमान युद्ध स्वतंत्रता और गुलामी का, प्रकाश और अन्धकार का, अच्छाई और बुराई का तथा आतंकवाद और उसकी विरोधी शक्ति का युद्ध है। यदि आतंकवाद-विरोधी मोर्चा युद्ध में पराजित हो गया तो संसार की सभ्यता को सौ वर्ष पीछे ढकेल देनेवाला धक्का लग जाएगा और मनुष्य-समाज के कष्टों का पारावार नहीं रहेगा। "बर्बरता और पाशविक दल के इस युग में चीनियों और उनके आर्य भारतीयों को चाहिए कि अटलांटिक अधिकार-पत्र तथा २६ राष्ट्रों के संयुक्त घोषणापत्र में प्रतिपादित सिद्धांतों का वे एक होकर समर्थन करें और आतंक-विरोधी मोर्चे का साथ दें। मुझे आशा है कि भारत के निवासी पूर्ण रूप से मित्र-राष्ट्रों अर्थात् चीन, ब्रिटेन, अमरीका और रूस का साथ देंगे और स्वतंत्र संसार की रक्षा के लिये तब तक कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर लड़ते रहेंगे जब तक कि पूर्ण विजय न प्राप्त कर ली जाय और जब तक कि वे इस संकट-काल के अपने कर्तव्यों को अच्छी तरह पूरा न कर लें।

"अन्त में, मुझे पूरी आशा और दृढ़ विश्वास है कि हमारा महान् मित्र ब्रिटेन भारतीयों की मांग की प्रतीक्षा किये बिना ही उन्हें शीघ्र-से-शीघ्र वास्तविक राजनीतिक शक्ति प्रदान करेगा जिससे कि वे अपनी आत्मिक तथा भौतिक शक्तियों को और भी अधिक उन्नत कर सकें और इस प्रकार यह अनुभव कर सकें कि वे सिर्फ आतंकवाद के विरोधी राष्ट्रों की विजय के लिए ही युद्ध में सहयोग नहीं दे रहे हैं, बल्कि यह भी अनुभव करें कि उनका यह सहयोग भारतीय स्वतंत्रता के उनके संघर्ष में भी एक युगान्तकारी घटना है। क्रियात्मक दृष्टि से मेरे विचार में यह सब से अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण नीति होगी जो ब्रिटिश साम्राज्य के यश को चतुर्दिक प्रसारित कर देगी।"

हिज़ एक्सलेंसी जेनरलिस्सिमो चांगकाई शेक का भारतीयों के प्रति यह सन्देश मूल रूप से चीनी भाषा में था, परन्तु उसका अंग्रेजी में अनुवाद श्रीमती चांगकाई शेक ने किया जो अखिल भारतीय रेडियो के कलकत्ता स्टेशन से ब्राडकास्ट किया गया था।

गांधीजी से भेंट

चांगकाई शेक की भारत-यात्रा जितनी अप्रत्याशित थी उतनी ही गोपनीय थी। जहां तक गैर-सरकारी क्षेत्रों का सम्बन्ध है श्रीमती चांगकाई शेक ने सब से पहले पंडित जवाहरलाल नेहरू से उनकी गति-विधि के बारे में पूछताछ की। इसके बाद ही दूसरा समाचार पंडित नेहरू को कलकत्ता से यह मिला कि जेनरलिस्सिमो और उनकी पत्नी कलकत्ता पहुंच गए हैं। अब तक यह एक रहस्य

बना हुआ है कि क्या चीन के ये दोनों महान् नेता भारत-सरकार के आग्रह करने पर यहां आए थे अथवा स्वयं अपनी मर्ज़ी से ? संभवतः पहली बात ज्यादा ठीक हो। जो कुछ भी हो, हम यह बात कभी नहीं भूल सकते कि उन्हें गांधीजी से मुलाकात करने में कितनी कठिनाई अनुभव करनी पड़ी। आखिरकार उन्होंने पूछा कि क्या कलकत्ता में गांधीजी के लिए भेंट करना उपयुक्त रहेगा। गांधीजी ने डरते-डरते उन्हें पत्र लिखा। इस पर जेनरलिस्सिमो ने उत्तर दिया कि मेरे ऊपर आपके पत्र का इतना गहरा असर पड़ा है कि मैं हर हालत में आप से मुलाकात करने को उत्सुक हूँ। आखिर कलकत्ता में इस मुलाकात का प्रबन्ध किया गया। दोनों नेताओं ने एक-दूसरे से मुलाकात और लम्बी हार्दिक बातचीत की।

जैसा कि अब पता चला है कि चांगकाई शेक यह कहते थे कि भारत को बिना शर्त युद्ध में सहयोग देना चाहिये। दूसरी तरफ गांधीजी इस बात पर दृढ़ थे कि किसी भी हालत में हम लड़ाई में शामिल नहीं हो सकते। इसलिए दोनों के एक राय होने की गुंजाइश न थी। हां, इतना अवश्य था कि दोनों के बीच ऊँची संस्कृति की एक अटूट कड़ी थी, जो चीन और भारत को एक दूसरे से बांधे हुए थी। श्री जिन्ना भी चांगकाई शेक से मिले, परन्तु उनकी मुलाकात के वक्त गांधीजी की तरह श्रीमती चांगकाई शेक ने दुभाषिये का काम नहीं किया, बल्कि चांगकाई-शेक के एक कर्मचारी ने ही यह ज़िम्मेवारी निभायी।

२१ फरवरी, १९४२ को रात्रि के समय उक्त दोनों महानुभावों ने कलकत्ता रेडियो स्टेशन से भारतीयों के नाम अपना संदेश ब्राडकास्ट किया। जेनरलिस्सिमो ने भारतीयों के नाम जो सन्देश दिया वह सर्वथा समीचीन था। उन्होंने यह आशा प्रकट की कि ब्रिटेन भारत में आवश्यक राजनीतिक परिवर्तन कर देगा।

सन्देश का प्रभाव

निःसन्देह जेनरलिस्सिमो की यह भारत-यात्रा सामरिक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण थी। परन्तु इसके अलावा न केवल चीन और भारत के लिए ही उसका सांस्कृतिक महत्व था, बल्कि समस्त संसार के लिए था। ब्रिटेन के समाचारपत्रों ने इस अवसर से लाभ उठाते हुए यह प्रश्न किया कि "अगर ब्रिटेन चीन का सम्मान कर सकता है तो कोई वजह नहीं कि हम भारत के साथ समानता के आधार पर अपनी दोस्ती का हाथ न बढ़ाएं ?" लगभग इसी समय यह फैसला हुआ कि भारत-सरकार को ब्रिटेन के युद्ध-मन्त्रिमण्डल में अपना एक प्रतिनिधि भेजने का निमंत्रण दिया जाना चाहिये। भारत में इसकी प्रतिक्रिया मिश्रित-सी रही; क्योंकि यहां ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि यह प्रस्ताव महज़ एक पुरानी

प्रथा की पुनरावृत्ति मात्र है; क्योंकि इससे पहले पिछली लड़ाई में भी तात्कालिक प्रधान मंत्री लॉयड जॉर्ज ने शाही युद्ध-मंत्रिमंडल में उपनिवशों के प्रधान मन्त्रियों के साथ-साथ एक भारतीय प्रतिनिधि को भी ले लिया था। यह भी स्मरण रहे कि किस प्रकार लॉयड जॉर्ज ने राजकीय युद्ध-सम्मेलन में एक प्रस्ताव द्वारा भारतीय प्रतिनिधि को भी वही स्थान दिये जाने का फैसला किया था जैसा कि उपनिवेशों के प्रधान मंत्रियों को प्राप्त था। १९१४-१८ के युद्ध में भारत के प्रतिनिधि सर एस० पी० सिन्हा थे। यह साबित करने के लिए कि इस सम्बन्ध में क्या ब्रिटेन के इरादे सच्चे थे, श्री एमरी से पूछा गया कि क्या भारतीय प्रतिनिधि को भी वही दरजा हासिल रहेगा जो स्वाधीनता-प्राप्त उपनिवेशों के प्रधान मंत्रियों को प्राप्त है? इस पर श्री एमरी ने कहा 'हां'। उन्होंने इस सुझाव का समर्थन किया। "मैंचेस्टर गार्जियन" ने यह सुझाव दिया कि वाइसराय को इस अवसर से लाभ उठाकर एक ऐसे भारतीय को नामजद करना चाहिये, जिसे स्वयं भारत भी अपना प्रतिनिधि स्वीकार कर सके।

सेठ जमनालाल की मृत्यु

११ फरवरी, १९४२ को महान् दानवीर राजनीतिज्ञ और क्रियाशील व्यक्ति सेठ जमनालाल बजाज का सहसा देहावसान हो गया। वह वर्षों से कांग्रेस के कोषाध्यक्ष और एक अनुभवी तथा पुराने सार्वजनिक कार्यकर्त्ता थे। उनकी मृत्यु वर्धा में अपने निवास-स्थान पर हृदय की गति के बन्द हो जाने से हो गई।

अपने देशवासियों के लिए उनकी एक अमूल्य देन वर्धा में अछूतों के लिए श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर है, जिसकी स्थापना १९२८ में की गई थी। देश में अपने ढंग का यह एक ही मंदिर है। यदि इस नश्वर जगत् में जीवन की सफलता का मूल्यांकन जीवन की अवधि की बजाय व्यक्ति के नैसर्गिक गुणों के आधार पर किया जाता है तो केवल एक ही व्यक्ति ऐसा है जो अपने त्याग, आत्मोसर्ग, संयम, निर्मोही और विरक्त तथा विनम्र स्वभाव, सद्भाव और मनुष्यमात्र के प्रति अपने प्रेम-भाव के कारण अपने जीवन को सफल कह सकता है और वह व्यक्ति है—सेठ जमनालाल बजाज। वह यद्यपि ५२ वर्ष तक ही जीवित रहे, फिर भी इस थोड़े से समय में ही उन्होंने देश के जीवन में प्रमुख स्थान बना लिया था। भावी कई पीढ़ियों तक वह धनिक-वर्ग के लिए आदर्श बने रहेंगे।

: १९ :

खुला विद्रोह : १९४२

क्रिप्स-मिशन

१९४२ के प्रारम्भ से ही भारत और ब्रिटेन दोनों ही जगह काफ़ी राजनीतिक सरगर्मी देखने में आई। रूस से लौटने के बाद सर स्टैफर्ड क्रिप्स की शान में चार चाँद लग गये। सभी व्यक्ति उनकी ओर उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखने लगे। भारतीय समस्या के हल के लिए सभी व्यक्ति उनका मुंह ताकने लगे। आम लोगों का यह ख़याल था कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो भारतीय प्रश्न पर नये दृष्टिकोण से विचार कर सकते हैं। इससे ब्रिटेन के राजनीतिक क्षेत्र में उनका स्थान बहुत ऊँचा हो गया था। श्री एमरी, श्री ईडन, श्री लिटलटन और श्री एटली को वह अपने से बहुत पीछे छोड़ गए थे। वह भारत के गतिरोध के बारे में पहले ही एक वक्तव्य देकर उसके लिए आवश्यक परिवर्तनों का प्रस्ताव कर चुके थे। यह आशा की जा रही थी कि स्वयं प्रधान मंत्री श्री चर्चिल भारत के सम्बन्ध में कोई घोषणा करने वाले हैं। १० मार्च, १९४२ को सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने भी इसकी पुष्टि करते हुए घोषणा की कि सभा की अगली बैठक में प्रधान मन्त्री भारत के सम्बन्ध में एक वक्तव्य देंगे। इसके बाद ही यह घोषणा की गई कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स एक खास उद्देश्य को लेकर भारत जा रहे हैं। उनका भारत-आगमन इस दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त था कि वह इस बात की कोशिश करेंगे कि अल्पसंख्यक देश की राजनीतिक प्रगति में नाहक रुकावट न पैदा करते रहें और न बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों के हितों की उपेक्षा करें। निस्संदेह यह एक उच्च उद्देश्य था। ११ मार्च १९४२ को श्री चर्चिल ने कामन सभा में भाषण देते हुए जो बातें कहीं वे यहाँ संक्षेप में दी जा रही हैं।

प्रधान मन्त्री का वक्तव्य

श्रीचर्चिल ने कहा—

"जापानियों की प्रगति के कारण भारत के लिए जो खतरा पैदा हो गया है उसे देखते हुए हम यह आवश्यक समझते हैं कि शत्रु से देश की रक्षा करने के लिए हमें भारत के सभी वर्गों का संगठन करना चाहिये। अगस्त, १९४० में हमने भारत के सम्बन्ध में अपने उद्देश्यों और नीति के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से प्रकाश डालते हुए एक घोषणा की थी। संक्षेप में उसका आशय यह था कि लड़ाई खत्म होने के बाद यथासंभव जल्दी-से-जल्दी भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य दे

दिया जाएगा और उसका दरजा इस देश के तथा अन्य स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेशों के समान रहेगा। इसके अलावा स्वयं भारतीय पारस्परिक समझौते-द्वारा देश के लिए एक ऐसा विधान तैयार करेंगे जो देश के सभी मुख्य वर्गों को स्वीकृत होगा। परन्तु इस सम्बन्ध में हमें अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान रखना होगा, जिनमें दलित जातियां भी शामिल हैं। इसके अलावा रियासतों के साथ हमारी जो सन्धियां हैं उनका तथा भारत के साथ अपने पुरातन सम्बन्धों के कारण हमारी जो जिम्मेवारियां हैं उनका भी हमें खयाल रखना होगा।

"चुनांचे हमने युद्ध-मंत्रिमण्डल के एक सदस्य को भारत भेजने का फैसला किया है जिससे कि वह वहां जाकर भारतीय नेताओं के साथ निजी बातचीत द्वारा इस बात की तसल्ली कर लें कि हमने जो फैसला किया है और जो हमारे खयाल से न्यायोचित है तथा इस समस्या का अन्तिम हल है, सफल हो जाएगा। अर्थात् भारतीय उसे स्वीकार कर लेंगे। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि विश्व के स्वतंत्रता के संग्राम में भारत को प्रमुख भाग लेना है और उसे चिरकाल से युद्ध-रत बहादुर चीनी जनता का भी हाथ बँटाना है। भारत एक ऐसा अड्डा है जहाँ से हम अत्याचार और आतंक की प्रगति पर जोरदार प्रत्याक्रमण कर सकते हैं।"

क्रिप्स के प्रस्ताव

सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने ब्रिटिश सरकार की ओर से नीचे लिखे प्रस्ताव प्रकाशित किये :—

"भारत के भविष्य के सम्बन्ध में दिये गए वचनों के पूरे होने के विषय में जो चिन्ता प्रकट की गई है उस पर विचार करते हुए सम्राट् की सरकार स्पष्ट तथा निश्चित शब्दों में उन उपायों को बता देना आवश्यक समझती है, जो भारत में शीघ्रातिशीघ्र स्वायत्त शासन स्थापित करने के लिए वह करना चाहती है। ऐसा करने में उसका उद्देश्य एक नवीन भारतीय संघ को जन्म देना है। यह संघ एक स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेश होगा और ब्रिटेन तथा साम्राज्य के अन्य स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेशों से उसका सम्बन्ध सम्राट् के प्रति समान राजभक्ति-द्वारा कायम रहेगा। यह भारतीय संघ पद की दृष्टि से पूरी तौर पर ब्रिटेन तथा अन्य स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेशों के समान होगा और आन्तरिक शासन तथा वैदेशिक समस्याओं के सम्बन्ध में भी वह किसी प्रकार से भी पराधीन न होगा। इसलिए सम्राट् की सरकार निम्न घोषणा करती है :—

(क) युद्ध बन्द होने के बाद तुरन्त ही भारत के लिए नवीन शासन-विधान का निर्माण करने के उद्देश्य से बाद में वर्णित आधार पर एक निर्वाचित संस्था कायम की जाएगी।

(ख) विधान बनानेवाली संस्था में देशी रियासतों-द्वारा भाग लिये जाने की व्यवस्था जिस प्रकार से की जाएगी, उसका वर्णन नीचे किया गया है।

(ग) सम्राट् की सरकार इस प्रकार तैयार किये गए विधान को स्वीकार करके कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर केवल उसी अवस्था में लेती है जब कि निम्न शर्तें भी पूरी होती हैं—

(१) यदि ब्रिटिश भारत का कोई प्रान्त नये विधान को स्वीकार न करना चाहे तो उसे वर्तमान वैधानिक स्थिति को कायम रखने का अधिकार रहे, किन्तु साथ में यह व्यवस्था भी रहेगी कि यदि वह प्रान्त बाद में चाहे तो विधान में सम्मिलित कर लिया जाय।

"नये विधान में सम्मिलित न होनेवाले ऐसे प्रान्तों को, यदि वे चाहें, सम्राट् की सरकार नया विधान देना स्वीकार करेगी और उनका पद भी पूर्ण रूप से भारतीय संघ के ही समान होगा। यह विधान उस क्रम से मिलते-जुलते ढंग पर तैयार होगा, जिसका उल्लेख यहां किया गया है।

(२) सम्राट की सरकार तथा उस विधान-निर्मात्री संस्था के बीच एक संधि होगी। अंग्रेजों से भारतीयों के कन्धों पर पूर्ण उत्तरदायित्व हस्तान्तरित होने की सभी आवश्यक समस्याओं का पूर्ण समावेश इस संधि में रहेगा। सम्राट् की सरकार-द्वारा दिये गए आश्वासनों को ध्यान में रखते हुए संधि में जातीय तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए प्रबन्ध रहेगा, किन्तु उसमें ऐसा कोई प्रतिबन्ध न रखा जाएगा जिसके कारण भारतीय संघ के ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्य सदस्यों से अपने भावी संबंध निश्चित करने के अधिकार में कमी होने की संभावना हो।

"देशी रियासतें नये विधान के अनुसार चलना चाहें अथवा नहीं, नयी परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए उनकी सन्धियों की व्यवस्था में संशोधन करना आवश्यक होगा।

(घ) यदि प्रमुख संप्रदायों के नेताओं ने युद्ध समाप्त होने तक और किसी प्रणाली के विषय में मिलकर निश्चय न कर लिया, तो विधान-निर्मात्री संस्था का निर्माण इस प्रकार होगा—

"प्रान्तीय चुनावों के परिणाम ज्ञात होते ही (युद्ध समाप्त होने पर प्रान्तीय चुनावों की आवश्यकता पड़ेगी) प्रान्तों की निम्न धारा-सभाओं के संपूर्ण सदस्य मिलकर एक निर्वाचक मंडल की हैसियत से बैठेंगे और आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर विधान-निर्मात्री संस्था का चुनाव करेंगे। निर्वाचक मंडल में जितने व्यक्ति होंगे उसकी दशमांश संख्या इस विधान-निर्मात्री संस्था में होगी।

"ब्रिटिश-भारत की तरह देशी राज्यों से भी अपनी जन-संख्या के अनुपात से

प्रतिनिधि नियत करने को कहा जाएगा और इन प्रतिनिधियों के अधिकार ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों के समान रहेंगे।

(ङ) भारत के सम्मुख जो संकट-काल उपस्थित है उसके बीच में और जब तक कि नया विधान लागू नहीं होता तब तक सम्राट् की सरकार भारत की रक्षा, नियंत्रण और निर्देशन का उत्तरदायित्व संपूर्ण विश्वयुद्ध-प्रयत्नों के एक अंग के रूप में अपने हाथ में रखेगी। किन्तु भारतीय जनता के सहयोग से देश के संपूर्ण सैनिक, नैतिक तथा आर्थिक साधनों को संगठित करने की ज़िम्मेदारी भारत-सरकार पर रहेगी। सम्राट् की सरकार की इच्छा है, और वह भारतीय जनता के विविध वर्गों के नेताओं का आह्वान करती है कि वे अपने देश, ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल तथा मित्रराष्ट्रों के सलाह-मशविरे में तुरन्त और प्रभावोत्पादक ढंग से भाग लें। इस प्रकार एक महान् कार्य के सम्पादन में वे रचनात्मक और सक्रिय सहायता प्रदान कर सकेंगे, जो भारत की भावी स्वाधीनता के लिए बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है।"

क्रिप्स की नेताओं से भेंट

सर स्टैफर्ड क्रिप्स पहली बार भारत नहीं आ रहे थे। इससे पहले वे नवम्बर १९३९ में भी वर्धा आए थे। भारतीय क्षेत्रों में वे एक प्रमुख वकील के रूप में काफी प्रसिद्ध थे।

ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल के प्रस्तावों को यद्यपि बड़ी सतर्कता के साथ गुप्त रखा गया था, फिर भी २३ मार्च को उनके दिल्ली पधारने के कुछ दिन बाद ही लोगों को उनके बारे में पता चल गया था। कांग्रेस के प्रधान मौलाना आज़ाद उस समय लाहौर में थे। उनको २५ मार्च को सर स्टैफर्ड क्रिप्स से मुलाकात करने के लिए बुलावा भेजा गया। गांधीजी सर स्टैफर्ड क्रिप्स से मुलाकात करने के लिए अधिक उत्सुक नहीं थे। लड़ाई छिड़ने के कुछ समय बाद ही सर स्टैफर्ड क्रिप्स १९३९ में वर्धा गए थे। तभी से गांधीजी उन्हें काफी निकट से जान गए थे। इसके अलावा गांधीजी किसी भी शर्त पर लड़ाई में सहयोग देने के समर्थक नहीं थे, फिर भी गांधीजी ने शिष्टाचार के तौर पर दिल्ली में सर स्टैफर्ड से भेंट की, क्योंकि वह उनसे (गांधीजी) मिलने के लिए बहुत उत्सुक थे। उन्होंने वाइसराय की शासन-परिषद् के सदस्यों से भी शुरू में ही मुलाकात की। लेकिन उनके साथ उनकी मुलाकात बहुत संक्षिप्त-सी थी। कांग्रेस के प्रधान के साथ अपनी पहली मुलाकात के समय ही उन्होंने यह बात स्पष्ट रूप से कह दी कि राष्ट्रीय सरकार के साथ वाइसराय का सम्बन्ध वैसा ही होगा जैसा कि सम्राट् का ब्रिटेन के मंत्रि-मण्डल से होता है। यही एक बात थी जिससे प्रभावित होकर मौलाना आजाद ने कार्य-समिति की बैठक बुलाने का निश्चय किया था और इसी आधार पर कार्य-

समिति १० अप्रैल तक क्रिप्स-प्रस्तावों पर सोच-विचार करती रही। लेकिन १० अप्रैल को कांग्रेस के प्रधान की सर स्टैफर्ड क्रिप्स के साथ अन्तिम मुलाकात के बाद कांग्रेस का यह भ्रम दूर हो गया। निस्सन्देह यह एक बड़ी विचित्र-सी बात है कि जिस आधार को लेकर विभिन्न दलों में यह बातचीत शुरू हुई थी अन्त में वही आधार एक मृगमरीचिका साबित हो और सारी बातचीत उस पर आकर टूट जाय।

क्रिप्स योजना का अन्त

सर स्टैफर्ड क्रिप्स के प्रस्ताव ३० मार्च, १९४२ को प्रकाशित हुए। उस समय वह बड़े विचित्र और अनोखे प्रतीत हुए। उनमें प्रत्येक दल को खुश करनेवाली बातें थीं। कांग्रेस को प्रसन्न करने के लिए इन प्रस्तावों की पूर्व-भूमिका में औपनिवेशिक स्वराज्य, वेस्टमिंस्टर कानून, पृथक् होने का अधिकार और सर्वोपरि बात विधान-परिषद् का उल्लेख था जिसे प्रारंभ में ही ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल से पृथक् हो जाने की घोषणा कर देने का अधिकार दिया गया था। मुस्लिम-लीग के लिए सब से बड़ी बात यह थी कि किसी भी प्रान्त को भारतीय संघ से अलग हो जाने का हक़ था। नरेशों को न केवल इस बात की आजादी थी कि वे चाहें तो इस संघ में शामिल हों या न हों बल्कि विधान परिषद् में रियासतों के प्रतिनिधि भेजने का एकमात्र अधिकार भी उन्हें ही दिया गया था। रियासतों की जनता की बुरी तरह उपेक्षा की गई थी और यहां तक कि उन्हें यह हक़ भी नहीं था कि वे गुलामों की तरह अपने मालिकों के साथ भी वहां जा सकें। कार्यसमिति को ब्रिटेन की इस योजना का रहस्य समझने में बहुत देर नहीं लगी। इससे साफ़ ज़ाहिर था कि ब्रिटेन का इरादा सत्ता हस्तान्तरित करने का बिल्कुल नहीं था। आज़ादी के सवाल को टाल-मटोल कर खटाई में डालने की कोशिश की गई थी। इसके अलावा तीसरी बात यह थी कि रियासतों की जनता को विधान परिषद् में अपने प्रतिनिधि भेजने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। इससे रियासतों की जनता में बेचैनी और क्षोभ फैल जाना स्वाभाविक और अनिवार्य था। चुनांचे लोक-परिषद् के प्रधान पंडित जवाहरलाल ने सारी स्थिति पर प्रकाश डालते हुए इस सम्बन्ध में सर स्टैफर्ड क्रिप्स को लिखा और यह सुझाव पेश किया कि इस विषय पर और सोच-विचार करने के लिए उन्हें उक्त परिषद् के उपप्रधान से भेंट करनी चाहिये। फलतः ३१ मार्च को परिषद् के उप-प्रधान ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स से बातचीत की। उन्होंने बताया कि किस प्रकार ज्योंही एक बार ब्रिटिश सरकार के प्रस्तावों के सम्बन्ध में कोई समझौता हो जाएगा, देशी नरेश भी स्वतः वाइसराय और राजनीतिक विभाग के नैतिक प्रभाव में आ जाएंगे और वे स्वयमेव रियासतों की जनता के प्रतिनिधियों को विधान-परिषद् में भेज देंगे।

परन्तु देशी राज्यों की जनता के राजनीतिक कष्टों के निवारण के लिए यह एक अप्रत्याशित औषध थी जिसे जल्दी से प्रयोग में नहीं लाया जा सकता था। यह एक ऐसा प्रस्ताव था, जिसे आसानी से स्वीकार नहीं किया जा सकता था। सर स्टैफर्ड क्रिप्स का यह कहना था कि रियासतों के साथ ब्रिटिश सरकार ने जो संधियां कर रखी हैं, उनकी शर्तों के अन्तर्गत उसके लिए रियासतों को विधान-परिषद् में जनता के प्रतिनिधि भेजने की किसी खास प्रणाली पर अमल करने के लिए मजबूर करना संभव नहीं था। परन्तु उनके पास इस तर्क का कोई जवाब नहीं था कि ५६२ रियासतों में से केवल तीस-चालीस रियासतों को छोड़कर बाकी किसी भी रियासत के साथ ब्रिटिश सरकार की कोई संधि नहीं थी। शेष के साथ तो उसके सम्बन्ध केवल सनदों और समझौतों पर आधारित थे।

अब समझौते के प्रमुख और महत्त्वपूर्ण पहलू अर्थात् रक्षा के प्रश्न पर विचार कीजिए। ब्रिटिश मंत्रिमण्डल ने भारत के विभिन्न दलों की मंजूरी के लिए सर स्टैफर्ड क्रिप्स के जरिये जो प्रस्ताव यहाँ भेजे थे, उनमें रक्षा के प्रश्न को छुआ तक नहीं गया था। परन्तु बात यहीं तक सीमित नहीं थी। दिल्ली के अपने पहले ही पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन में सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने साफ-साफ शब्दों में यह कह दिया था कि अगर सभी दल एक साथ मिलकर रक्षा-विषय को भारतीयों के सुपुर्द करने की मांग करें तब भी उसे उन्हें हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार मामला बिल्कुल साफ था। इसीसे प्रभावित होकर कांग्रेस ने क्रिप्स-योजना को ठुकरा देने का फैसला किया। जब समाचारपत्रों की इस सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणियों का ज्ञान सर स्टैफर्ड क्रिप्स को हुआ तब उन्होंने पहली अप्रैल को विनम्रतापूर्वक कांग्रेस के प्रधान और पंडित जवाहरलाल को लिखा कि मेरी यह इच्छा है कि आप लोग इस प्रश्न पर प्रधान सेनापति से बातचीत करें। दूसरे दिन उन्होंने एक और पत्र लिखा जिसमें यह आग्रह किया कि यदि कांग्रेस कार्यसमिति ने इन प्रस्तावों को ठुकराने का ही फैसला कर लिया हो तो भी उसे अपना निर्णय तब तक नहीं प्रकाशित करना चाहिये, जब तक कि मैं कांग्रेस के प्रधान से मुलाकात न कर लूं। परन्तु इससे पूर्व सर स्टैफर्ड क्रिप्स ३० मार्च को कांग्रेस के प्रधान को लिख चुके थे कि न कांग्रेस के प्रधान और न पंडित जवाहरलाल नेहरू की प्रधान सेनापति से हुई मुलाकात का और न उनसे सर स्टैफर्ड क्रिप्स की मुलाकात का कोई ऐसा परिणाम निकला जिससे प्रभावित होकर कार्यसमिति अपना निर्णय बदल लेती। लेकिन उसने १० अप्रैल तक अपना प्रस्ताव प्रकाशित नहीं किया।

इसी बीच कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा क्रिप्स-प्रस्तावों को ठुकरा दिये जाने पर सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने रक्षा-व्यवस्था के विषय में एक और हल पेश किया जो काँग्रेस को सर्वथा अमान्य था, इसलिए उसने इस बार भी उसे ठुकरा दिया। इस सुझाव

का विस्तृत उल्लेख उस पत्र में किया गया है, जो उन्होंने ७ अप्रैल, १९४२ को कांग्रेस के प्रधान को लिखा था। इसके अनुसार प्रधान मंत्री युद्ध-सस्दय के रूप में वाइसराय की शासन-परिषद् में बने रहेंगे और युद्ध-सम्बन्धी सभी कार्रवाइयों का नियंत्रण उनके हाथ में रहेगा। वाइसराय की शासन-परिषद् में रक्षा-विभाग का सदस्य एक भारतीय भी रहेगा, जिसके अधीन ये विषय होंगे :—जनसंपर्क-विभाग, सैन्य-विघटन और युद्धोत्तर पुनर्निर्माण, पेट्रोल का नियंत्रण, पूर्वी देश-समूह परिषद् का प्रतिनिधित्व, सैनिकों की सुख-सुविधाओं की व्यवस्था, कैण्टीन (उपाहार-गृह) संगठन, कुछ गैर-टेकनिकल शिक्षण संस्थाएं, सेना के लिए स्टेशनरी और छपाई आदि की व्यवस्था, विदेश से आनेवाले सभी शिष्ट-मंडलों और अफसरों के लिए आवश्यक प्रबन्ध की देखरेख—यदि वह चाहे तो उनके आगमन पर आपत्ति भी उठा सकता है—खतरेवाले इलाकों से लोगों का स्थानान्तरण, सिगनल-व्यवस्था का एकीकरण तथा आर्थिक सुख-सुविधा की व्यवस्था।

इस प्रकार साफ जाहिर है कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने ७ अप्रैल के अपने सुझाव में जिस दुहरी शासन पद्धति की योजना का प्रस्ताव किया था उसकी जगह अब इस नये सुझाव के अनुसार, उन दायित्वों को छोड़कर जो प्रधान सेनापति शासन परिषद् के युद्ध-सदस्य के रूप में स्वयं उठाते हैं, रक्षा-विभाग के अन्तर्गत शेष सब विषय प्रतिनिधित्व-प्राप्त भारतीय को पूर्ण रूप से सौंप दिये जाएंगे। एक तरह से यह कार्यों का विभाजन न होकर उनके उत्तरदायित्व का बँटवारा था। १० अप्रैल को इसके स्पष्टीकरण के सम्बन्ध में सर स्टैफर्ड क्रिप्स से जो मुलाकात की गई उसके दौरान में उन्होंने कहा कि ये विषय युद्ध-विभाग के सदस्य के रूप में प्रधान सेनापात की अधिकार-सीमा में होंगे, परन्तु जब उनसे विषयों की तालिकाओं के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करने को कहा गया तब उन्होंने फिर १० अप्रैल वाली उन तालिकाओं का उल्लेख किया जो नामंजूर की जा चुकी थीं। जिन कारणों से अन्त में जाकर क्रिप्स-प्रस्ताव अस्वीकार किये गए उनमें से एक मुख्य बात यह भी थी। दूसरा कारण धारासभा के प्रति मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व का प्रश्न था। सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने इस बात से साफ इन्कार कर दिया कि उन्होंन २५ मार्च की अपनी मुलाकात के दौरान में मौलाना आजाद से बातचीत करते समय 'मंत्रिमंडल' शब्द का प्रयोग किया था और यदि कांग्रेस इस तरह का उत्तरदायित्व चाहती है तो उसे अपनी यह मांग वाइसराय के सामने रखनी चाहिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कार्य समिति तीन बार इन प्रस्तावों को ठुकरा चुकी थी; लेकिन सर स्टैफर्ड क्रिप्स इसे समाचारपत्रों में प्रकाशित नहीं होने देना चाहते थे। पहली बार उसने २ अप्रैल को इन प्रस्तावों को नामंजूर किया था। इसके बाद क्रिप्स ने कार्यसमिति के पास अपना रक्षा-व्यवस्था सम्बन्धी सुझाव

भेजा और उसे भी कांग्रेस ने ७ अप्रैल को रद कर दिया। लेकिन इस बार कर्नल जॉनसन ने इसे पत्रों में न प्रकाशित करने का आग्रह किया। इसके बाद रक्षा-व्यवस्था के सम्बन्ध में कर्नल जॉनसन ने एक और सुझाव पेश किया। उसके सम्बन्ध में कई संशोधन पेश किये गए। पर अन्त में १० अप्रैल को उसे भी कार्य-समिति ने नामंजूर कर दिया। उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि क्रिप्स-योजना रक्षा और मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व के प्रश्न पर आकर असफल हो गई।

लार्ड हेलीफैक्स का भाषण

भारत में क्रिप्स-योजना की बातचीत अभी चल ही रही थी कि ७ अप्रैल की रात्रि को न्यूयार्क के टाउनहाल में भाषण देते हुए भारत के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड इरविन और अमरीका के तत्कालीन ब्रिटिश राजदूत लार्ड हेलीफैक्स ने यह संभावना प्रकट करते हुए कि सम्भवतः भारतीय प्रवक्ता क्रिप्स प्रस्तावों को ठुकरा दें, कहा :—

"अगर हमारा प्रयत्न असफल रहा तो ब्रिटिश सरकार को बड़े-बड़े संगठित भारतीय दलों की सहायता अथवा सहयोग के बिना ही विवश होकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना पड़ेगा। भारत के सबसे बड़े सुसंगठित राजनीतिक दल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के सहयोग से हम वंचित रहे हैं। कांग्रेस समस्त भारत का एक छोटा-सा भाग है और भारत के अन्य दल और संस्थाएँ, उसका यह एकमात्र दावा कि वह सारे भारत का प्रतिनिधित्व करती है, मानने को तैयार नहीं हैं।"

यह भाषण ७ अप्रैल को दिया गया और यह निश्चित है कि ऐसा भाषण देने के लिए लार्ड हेलीफैक्स को आवश्यक हिदायतें लन्दन से ही प्राप्त हुई होंगी। लन्दन में ब्रिटिश सरकार ने क्रिप्स-योजना की असफलता को निश्चित समझ लिया था और इसकी सूचना उसने न्यूयार्क को भी दे दी। दूसरी बात यह है कि ब्रिटेन अमरीका को खुश करने की फिक्र में था। इसी उद्देश्य के लिए लार्ड हेलीफैक्स के उक्त भाषण की व्यवस्था भी की गई थी। इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति-पूर्ण न होगा कि मूल क्रिप्स-योजना का असली मक़सद भी अमरीका के जनमत को संतुष्ट करना ही था।

क्रिप्स का विरोधी रुख़

चाहे युद्ध की परिस्थिति में अथवा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में कोई परिवर्तन हुआ हो अथवा कोई और वजह हुई हो,लेकिन यह एक सचाई है कि १० अप्रैल की शाम को सर स्टैफर्ड क्रिप्स के रुख में पूर्ण परिवर्तन हो गया और वह इस बातचीत को बन्द कर देने के लिए व्यग्र और चिंतित-से दिखाई दिये। इधर इस बातचीत का खत्म होना था कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने विरोधी रुख अख्तियार कर लिया और

वह कांग्रेस पर इलज़ाम-पर-इलज़ाम लगाते चले गए। १० अप्रैल की शाम को ज्यों ही कांग्रेस के प्रधान और पंडित नेहरू सर स्टैफर्ड क्रिप्स के यहां से वापस लौटे त्यों ही सर स्टैफर्ड क्रिप्स फौरन श्री जिन्ना की कोठी पर दौड़ गए। अगले दिन कार्यसमिति को उनकी तरफ से एक कटु पत्र मिला जिसमें उन्होंने कांग्रेस पर यह दोष लगाया कि वह अल्पसंख्यकों पर शासन करना चाहती है और उन्हें दबाकर रखना चाहती है। यह बड़े आश्चर्य की बात थी कि उन्होंने ऐसा पत्र लिखा; क्योंकि कांग्रेस ने तो इस सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा था कि उसे या मुस्लिम लीग अथवा अन्य राजनीतिक दलों को कितने-कितने स्थान मिलने चाहिए। न कभी कांग्रेस ने यही सुझाव पेश किया था कि प्रधान सेनापति के अलावा राष्ट्रीय सरकार के १४ सदस्यों में से उसे बहुमत दिया जाना चाहिये। इंग्लैण्ड वापस पहुँचने पर सर स्टैफर्ड ने कांग्रेस पर एक और दोष यह लगाया कि वह लड़ाई के दौरान में ही विधान में परिवर्तन करना चाहती है, यद्यपि इस दिशा में कभी कोई कोशिश नहीं की गई थी।

क्रिप्स की वापसी

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल के प्रस्ताव अगस्त १९४० के प्रस्तावों का ही एक परिवर्द्धित संस्करणमात्र थे। हम इसे यों भी कह सकते हैं कि ये ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल के निर्जीव और मृत शिशु के समान थे और सर स्टैफर्ड क्रिप्स नयी दिल्ली में बीस दिन तक इस प्राणहीन शिशु में कृत्रिम उपायों से जीवन-संचार करने की चेष्टा कर रहे थे। उसमें जीवन फूंकने की उन्होंने लाख कोशिश की; पर सब बेकार गया। बीच-बीच में कभी उसमें थोड़ा स्पन्दन और गति का अनुभव होने लगता था। परन्तु कांग्रेस कार्यसमिति ने ३१ मार्च, १९४२ को इस शिशु के मरने की घोषणा कर दी थी—अर्थात् उन प्रस्तावों के प्रकाशित होने से पहले ही उसने उन्हें असफल कर दिया, केवल सर स्टैफर्ड क्रिप्स के अनुरोध और निवेदन करने पर उसने अपनी ओर से उनके ठुकराए जाने का समाचार प्रकाशित नहीं होने दिया। इसके बाद उसे अनेक तरह की छोटी-मोटी रिआयतें देकर फुसलाने की कोशिश की गई, लेकिन इसका परिणाम जले पर नमक छिड़कने-जैसा ही हुआ। दरअसल ईमानदारी से गलती को सुधारने की कोशिश ही नहीं की गई। ८ अप्रैल तक यही स्थिति रही। इसके बाद उन्हें फिर नामंजूर कर दिया गया और अब उनकी सफलता की कोई आशा न रही। उस शिशु के पुनर्जीवित होने की सब आशाओं पर पानी फिर गया। लेकिन इसी बीच एक अमरीकी डाक्टर कर्नल जॉनसन आ गया। पहले डाक्टर सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने उससे इस शिशु के बारे में सलाह-मशविरा किया। परन्तु इस नये डाक्टर का नुसखा भी बेकार रहा और अन्त में ११ अप्रैल को इस

शिशु को जमीन में दफ़ना दिया गया—अर्थात् ११ अप्रैल को क्रिप्स-प्रस्तावों के अन्तिम रूप से असफल हो जाने की घोषणा कर दी गई। सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने भी अपने प्रस्ताव ११ अप्रैल को वापस ले लिए और १२ अप्रैल को वह इंग्लैण्ड लौट गए। फिर भी श्री चर्चिल और श्री एमरी यही घोषणा करते रहे कि प्रस्ताव ज्यों-के-त्यों कायम हैं और उनमें किसी किस्म का परिवर्तन नहीं किया गया है।

विफलता के कारण

भारत के सभी प्रमुख दलों और सार्वजनिक संस्थाओं ने क्रिप्स-प्रस्तावों को नामंजूर कर दिया था। परन्तु प्रत्येक की वजह अलग-अलग थी। यह स्थिति बिलकुल साइमन-कमीशन-जैसी थी। उस समय भी १९२७-२९ में विभिन्न दलों और सार्वजनिक संस्थाओं ने अलग-अलग वजहों से उसका बहिष्कार किया था। कांग्रेस-द्वारा क्रिप्स-योजना को नामंजूर किये जाने की मुख्य वजह यह थी कि उनके अनुसार शासन-परिषद् धारासभा के प्रति जिम्मेदार नहीं थी। इसके अलावा ऐसा करने के दूसरे और गौण कारण ये थे—एक तो प्रान्तों को भारतीय संघ से अलग हो जाने की आज्ञा दे दी गयी थी, दूसरे भारतीय रियासतों की जनता को इस योजना के अन्तर्गत कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। उसके लिए उसमें कोई गुंजाइश नहीं थी। तीसरे, रक्षा और युद्ध-विभागों को सुरक्षित विषय मानकर उन्हें भारतीयों को देने से इन्कार कर दिया गया था। मुस्लिम लीग की स्थिति यह थी कि वह इस योजना को केवल उस हालत में स्वीकार करने को राजी थी जब कांग्रेस भी उसे स्वीकार कर लेती। उसने इन प्रस्तावों को इस वजह से नामंजूर कर दिया कि उनके अनुसार प्रान्तों को संघ से अलग होने का पूरा और साफ-साफ शब्दों में कोई अधिकार नहीं दिया गया था और न ही उनसे पाकिस्तान की माँग ही पूरी होती थी। हिन्दू-महासभा ने उसे इसलिए अस्वीकार कर दिया कि उनमें भारत के विभाजन की गुंजाइश रखी गई थी, हालाँकि इस बात की बड़ी अस्पष्ट-सी संभावना थी। दलित वर्ग का यह कहना था कि हमें काफी संरक्षण नहीं दिये गये। भारतीय ईसाइयों और मजदूरों ने उसे उसी बिना पर नामंजूर कर दिया जिस पर कांग्रेस ने किया था। सिर्फ रेडिकल डेमोक्रेटिक दल ही एक ऐसा दल था जिसने उसे स्वीकार किया। रियासतों को उससे कोई सरोकार नहीं था; क्योंकि चाहे वे भारतीय संघ में शामिल होतीं या न होतीं; उनके लिए तो नयी परिस्थिति में अपने संधिजन्य अधिकारों में संशोधन करना ही था। रही रियासतों की जनता, उसके लिए उसमें कोई गुंजाइश नहीं थी। इसलिए वह उसकी ओर देखना भी नहीं चाहती थी।

सामूहिक आन्दोलन का निश्चय

भारत से लन्दन लौटकर सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अमरीका के नाम जो भाषण ब्राडकास्ट किया उसकी बड़ी जोरदार प्रतिक्रिया हुई। इस भाषण में क्रिप्स ने कहा, "हमने प्रतिनिधित्वपूर्ण भारतीय राजनीतिक नेताओं को तत्काल वाइसराय की शासन-परिषद् में ऐसा प्रतिनिधित्व देने का प्रस्ताव किया जैसा कि आपके उन मंत्रियों को प्राप्त है जो आप (अमरीका) के राष्ट्रपति को परामर्श देत हैं।" उन्हें इतने से ही संतोष नहीं हुआ। उन्होंने यह भी कहा कि कांग्रेस अल्पसंख्यकों पर छा जाना चाहती है। उसने गांधीजी के इशारे पर ही इन प्रस्तावों को ठुकराया। गांधीजी ने इन प्रस्तावों को एक दिवालिए बैंक की गैर-मियादी हुँडी कहा है। राजनीतिज्ञों, पत्रकारों, लेखकों और प्रचारकों ने उन्हीं असत्य और बेबुनियादी बातों को लेकर झूठा प्रचार करना शुरू कर दिया।

परन्तु गांधीजी गिरे हुए राजनीतिज्ञ नहीं थे। उनका सिद्धान्त असत्य का मुकाबला सत्य और अन्धकार का मुकाबला प्रकाश तथा मृत्यु पर जीवन द्वारा विजय पाने का था। इसलिए उन्होंने अप्रैल, १९४२ के अन्त में अपना आन्दोलन शुरू कर दिया। उन्होंने कहा—"भारत के लिए चाहे इसका कैसा भी परिणाम क्यों न हो, उसकी और ब्रिटेन की भी वास्तविक सुरक्षा इसी में है कि अंग्रेज व्यवस्थापूर्वक और समय रहते भारत से चले जाएँ।" यह कोई पहला मौका नहीं था जब कि गांधीजी ने अंग्रेजों से भारत को छोड़ कर चले जाने को कहा हो। २२ अप्रैल १९४१ को श्री एमरी के उत्तेजनापूर्ण भाषण का प्रत्युत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा था, "आखिर ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ यह बात क्यों नहीं मान लेते कि यह भारत का घरेलू मामला है? वे भारत से एक बार हट जाएं, मैं वादा करता हूं कि कांग्रेस, लीग और देश के दूसरे सभी दल तब यह अनुभव करने लगेंगे कि सब का भला इसी में है कि हम सब आपस में मिल जाएँ।" गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि ब्रिटेन के इस देश में बने रहने से जापानियों को भारत पर आक्रमण करने का प्रोत्साहन मिलता है। "मुझे यक़ीन हो गया है कि अब वह वक्त आ गया है जब अंग्रेजों और भारतीयों को एक-दूसरे से सर्वथा किनारा कर लेना चाहिए। अगर अंग्रेज़ भारत से तत्काल और व्यवस्थित रूप में, पूर्णतः हट जाएं तो उससे मित्र-राष्ट्रों का लक्ष्य एकदम पूर्ण नैतिक आधार पर अधिष्ठित हो जाएगा।"

आगे चलकर गांधीजी ने इस बात को स्पष्ट किया कि किस प्रकार हमें जापानियों का विशुद्ध अहिंसात्मक असहयोग के आधार पर विरोध करना चाहिए। उन्होंने लोगों को सलाह दी कि उन्हें किसी भी तरीके से जापानियों की मदद नहीं करनी चाहिये। और न जापानियों के प्रति किसी प्रकार का दयालुतापूर्ण व्यवहार ही करना चाहिए, उन्हें तो करोड़ों प्राणियों की आहुति देने को तैयार रहना

चाहिये। उन्होंने कहा, "मेरा मन आज उसे यह मदद देने से इन्कार करता है। जब तक ब्रिटेन और अमरीका दोनों ही अपनी अन्तर्शुद्धि नहीं करते, तब तक उन्हें लोकतंत्रवाद की, सभ्यता की और मानव जाति की स्वतंत्रता की रक्षा का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है।"

परन्तु बड़ा सवाल अभी तक वैसे ही क़ायम रहा। ग़ुलामी से निजात पाने के लिए भारत को क्या करना चाहिए? क्रिप्स-मिशन असफल हो चुका था। भारत हाथ-पर-हाथ रख कर कैसे बैठ सकता था? उसकी चेतावनियों, विरोध-प्रदर्शनों अथवा प्रस्तावों से डर कर अंग्रेज भारत को सत्ता हस्तान्तरित करनेवाले नहीं थे। उसके पास ब्रिटेन के ख़िलाफ़ अपनी अहिंसात्मक लड़ाई और ज़ोरदार बना देने के अलावा और कोई चारा भी नहीं था। व्यक्तिगत सत्याग्रह की परीक्षा एक सीमित उद्देश्य के लिए और सीमित पैमाने पर पहले ही की जा चुकी थी। यद्यपि यह आंदोलन एक छोटे पैमाने पर शुरू किया गया था, फिर भी यह व्यवस्थित रहा और बड़ा प्रभावशाली साबित हुआ। इसके बाद तीन महीने से भी कम समय में ही सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने भारत की यात्रा की। अभी मुश्किल से तीन महीने और गुज़रे होंगे कि भारत के राजनीतिक क्षेत्र में बड़ी महत्वपूर्ण घटनाएँ देखने में आईं। जुलाई, १९४२ में कार्यसमिति की वर्धा में एक बैठक हुई, जिसमें उसने एक सामूहिक आन्दोलन के सम्बन्ध में अपनी योजनाएँ बनाईं।

श्री राजगोपालाचारी का इस्तीफ़ा

श्री राजगोपालाचारी गांधीजी के सिद्धान्तों में शत-प्रतिशत विश्वास नहीं रखत थे। उन्होंने अहिंसा की सर्वोच्च सत्ता को मानने से इन्कार कर दिया था और अब वह यह आग्रह करने लगे थे कि हमें मुस्लिम लीग की मांग स्वीकार कर लेनी चाहिए। उनका खयाल था कि इस प्रकार हम एक ऐसा संयुक्त और दृढ़ मोर्चा स्थापित कर लेंगे, जिसकी उपेक्षा या विरोध करना ब्रिटेन के लिए बहुत कठिन हो जायगा। उन्होंने बड़ी जल्दबाजी में २३ अप्रैल को मद्रास में प्रान्तीय धारासभा के कांग्रेसी दल की एक बैठक बुलाकर उसमें दो प्रस्ताव पास करवा लिये। एक प्रस्ताव में मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग मंजूर करने का आग्रह और दूसरे में मद्रास के कांग्रेसी मंत्रिमंडल में सुधार करने की मांग की गई थी। पहला प्रस्ताव उन्होंने स्वयं ही इलाहाबाद की अखिल भारतीय महासमिति की बैठक में पेश किया था। परन्तु वह बहुमत से रद हो गया। दूसरा प्रस्ताव उन्होंने वापस ले लिया। अपना प्रस्ताव रद हो जाने पर भी वह अडिग रहे और उन्होंने घोषणा की कि मैं इसी आधार पर अपना प्रचार करूंगा। १२ जुलाई, १९४२ तक उनका विद्रोह इस सीमा तक पहुंच गया था कि पार्लमेण्टरी बोर्ड के प्रधान सरदार वल्लभभाई पटेल के कहने पर गांधीजी ने श्री राजगोपालाचारी को सलाह दी कि वह मद्रास

की धारासभा और कांग्रेस की प्रारंभिक सदस्यता से भी इस्तीफा दे दें। १५ जुलाई को उन्होंने ऐसा ही किया भी।

कार्य समिति का प्रस्ताव

जुलाई, १९४२ में कार्यसमिति का एक लम्बा अधिवेशन हुआ जो ६ जुलाई से लेकर १४ जुलाई तक जारी रहा। उस समय संसार की सुरक्षा और नाजीवाद, फासिस्टवाद, सैनिकवाद तथा साम्राज्यवाद के अन्त के लिए भारत में तत्काल ब्रिटिश शासन का अन्त नितान्त आवश्यक समझा जा रहा था। सितम्बर १९३९ से लेकर अक्टूबर, १९४० तक कांग्रेस ने ब्रिटेन को परेशानी में न डालने की नीति अख़्त्यार की थी और फिर अक्टूबर, १९४० से लेकर अक्टूबर, १९४१ तक उसने व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन के जरिये अपना विरोध प्रकट करते हुए जान-बूझ कर संयम से काम लिया था। लेकिन ब्रिटेन पर इसका रत्ती भर भी असर नहीं हुआ। ब्रिटिश सरकार से भारत से हट जाने की जो मांग की जा रही थी उसके पीछे भी सद्भावना थी और उसके फलस्वरूप देश में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना में मदद मिलती। ब्रिटिश सरकार से इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का जोरदार आग्रह किया गया:—

"जो घटनाएं प्रतिदिन घट रही हैं और भारतवासियों को जो-जो अनुभव हो रहे हैं उनसे कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं की यह धारणा पुष्ट होती जा रही है कि भारत में ब्रिटिश शासन का अन्त अति शीघ्र होना चाहिये। यह केवल इसलिए नहीं कि विदेशी सत्ता अच्छी-से-अच्छी होते हुए भी स्वयं एक दूषण और परतंत्र जनता के लिए अनिष्ट का अबाध स्रोत है, बल्कि इसलिए कि दासत्व-शृङ्खला में जकड़ा हुआ भारत अपनी ही रक्षा के काम में, और मानवता का विध्वंस करने वाले युद्ध के भाग्य-चक्र को प्रभावित करने में, पूरा पूरा भाग नहीं ले सकता। इस प्रकार भारत की स्वतंत्रता न केवल भारत के हित में आवश्यक है, बल्कि संसार की सुरक्षा के लिए और नाजीवाद, फासिस्टवाद, सैनिकवाद और अन्य प्रकार के साम्राज्यवादों एवं एक राष्ट्र पर दूसरे राष्ट्र के आक्रमण का अन्त करने के लिए भी। संसारव्यापी युद्ध के छिड़ने के बाद से कांग्रेस ने यत्नपूर्वक परेशान न करने वाली नीति को ग्रहण किया है। सत्याग्रह के प्रभावहीन हो जाने का खतरा उठाते हुए भी कांग्रेस ने इसे जान बूझ कर सांकेतिक स्वरूप दिया और यह इस आशा से कि परेशान न करनेवाली इस नीति के यौक्तिक पराकाष्ठा तक पहुँचने पर इसका यथोचित समादर किया जायगा और वास्तविक सत्ता लोकप्रिय प्रतिनिधियों को सौंप दी जायगी जिससे कि राष्ट्र विश्व भर में मानव स्वतंत्रता, जिसके कुचल दिये जाने का खतरा उपस्थित है, प्राप्त करने के कार्य में अपना पूरा सहयोग देने में समर्थ हो सके। इसने यह आशा भी कर रखी थी कि ऐसा कोई भी

कार्य नहीं किया जायगा जिससे भारत पर ब्रिटेन के आधिपत्य के और भी दृढ़ होने की सम्भावना हो।

"किन्तु इन आशाओं को चकनाचूर कर डाला गया है। क्रिप्स की निष्फल योजना ने स्पष्ट रूप से दिखला दिया है कि भारत के प्रति ब्रिटिश सरकार की मनोवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सर स्टैफर्ड क्रिप्स के साथ वार्ता करने में कांग्रेस-प्रतिनिधियों ने राष्ट्रीय मांग के अनुरूप कम-से-कम अधिकार प्राप्त करने का जी-तोड़ प्रयत्न किया, पर सफलता न मिली। इस असफलता के परिणाम-स्वरूप ब्रिटेन के विरुद्ध विद्वेष-भावना में शीघ्रता के साथ और व्यापक रूप से वृद्धि हुई है और जापानियों को सैनिक सफलता से विशेष सन्तोष प्राप्त हुआ है।

"कार्यसमिति इस स्थिति को घोर आशंका की दृष्टि से देखती है, क्योंकि यदि इसका प्रतिरोध न किया गया तो, अनिवार्य रूप से इसका परिणाम आक्रमण को निष्क्रिय भाव से सहन करना होगा। समिति की धारणा है कि सब प्रकार के आक्रमणों का प्रतिरोध होना ही चाहिए, क्योंकि इसके आगे झुक जाने का अर्थ अवश्य ही भारतीयों का पतन और उनकी परतंत्रता का जारी रहना होगा। कांग्रेस नहीं चाहती कि मलाया, सिंगापुर और बर्मा पर जो बीती है वही भारत पर भी बीते। इसलिए वह चाहती है कि भारत पर जापान या किसी अन्य विदेशी सत्ता की चढ़ाई या आक्रमण के विरुद्ध प्रतिरोध शक्ति का संगठन करे। ब्रिटेन के विरुद्ध जो विद्वेष-भावना वर्तमान है उसे कांग्रेस सद्भावना के रूप में परिणत कर देगी और भारत को, संसार भर के राष्ट्रों और अधिवासियों के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करने के संयुक्त उद्योग और इसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाले कष्ट और क्लेशों में स्वेच्छापूर्वक भाग लेने को प्रेरित करेगी। यह केवल उसी अवस्था में सम्भव है जब भारत स्वतंत्रता के आलोक का अनुभव करे।

"कांग्रेस-प्रतिनिधियों ने साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने का शक्ति-भर प्रयत्न किया है, किन्तु विदेशी सत्ता की उपस्थिति में यह काम असम्भव हो गया है और वर्तमान अवास्तविकता के स्थान पर वास्तविकता की स्थापना तभी हो सकती है जब विदेशी प्रभुता और हस्तक्षेप का अन्त कर दिया जाय और भारतीय जन, जिनमें सब दलों और समुदाओं के व्यक्ति होंगे, भारतीय समस्याओं का सामना करें और पारस्परिक समझौते के आधार पर उनका हल ढूँढ़ निकालें।

"तब सम्भवत: वर्तमान राजनीतिक दल जो प्रधानत: ब्रिटिश-सत्ता को अपनी ओर आकृष्ट करने और उसे प्रभावित करने के उद्देश्य से संगठित हुए हैं, अपनी कार्रवाई बन्द कर देंगे। भारत के इतिहास में, फिर यह बात पहले-पहल अनुभव की जायगी कि भारतीय नरेश, जागीरदार, जमींदार और सम्पत्तिवान तथा धनिकवर्ग उन श्रमजीवियों से अपना धन और सम्पत्ति प्राप्त करते हैं, जो खेत-खलिहान, कारखानों और दूसरे स्थानों पर काम करते हैं और जो वास्तव में शक्ति

एवं सत्ता के अधिकारी हैं। भारत में ब्रिटिश शासन के हटा लिए जाने पर देश के जिम्मेदार स्त्री-पुरुष एक साथ मिलकर एक अस्थायी सरकार का निर्माण करेंगे जो भारत के समस्त महत्वपूर्ण वर्गों का प्रतिनिधित्व करेगी और बाद में ऐसी योजना को जन्म देगी जिससे विधान-निर्मात्री-परिषद् की रचना हो सकेगी जो राष्ट्र के सब वर्गों के स्वीकार करने योग्य भारतीय शासनविधान का निर्माण करेगी। स्वतंत्र भारत के प्रतिनिधि और ब्रिटेन के प्रतिनिधि दोनों देशों के सहयोग और भावी सम्बन्ध को स्थिर करने के लिए, आक्रमण का सामना करने के सामूहिक कार्य में सहयोगियों के रूप में, परस्पर वार्तालाप करेंगे।

"कांग्रेस की हार्दिक इच्छा है कि वह, जनता की सम्मिलित इच्छा और शक्ति के बल पर भारत को आक्रमण का सफल प्रतिरोध करने के योग्य बनाए। भारत से ब्रिटिश सत्ता के उठा लिए जाने का प्रस्ताव पेश करने में कांग्रेस की यह इच्छा नहीं है कि इससे ब्रिटेन अथवा मित्रराष्ट्रों के युद्ध-कार्यों में बाधा पहुंचे या इससे जापान या धुरी-समूह के किसी अन्य राष्ट्र को भारत पर आक्रमण करने या चीन पर दबाव बढ़ाने को प्रोत्साहन मिले। और न कांग्रेस मित्रराष्ट्रों की रक्षा-शक्ति को हानि पहुंचाने का इरादा रखती है।

"इसलिए जापानियों के या किसी और के आक्रमण को दूर रखने या उसका प्रतिरोध करने के लिए, तथा चीन की रक्षा और सहायता के लिए कांग्रेस भारत में मित्रराष्ट्रों की सशस्त्र सेनाओं को टिकाने के लिए, यदि उनकी ऐसी इच्छा हो, राज़ी है। भारत से ब्रिटिश सत्ता के हटा लिए जाने के प्रस्ताव का उद्देश्य यह कभी नहीं है कि भारत से सारे अंग्रेज़ और निश्चय ही वे अंग्रेज़ विदा हो जायं जो भारत को अपना घर बना कर वहां दूसरों के साथ नागरिक और समानाधिकारी बन कर रहना चाहते हैं। यदि इस प्रकार का हटना सद्भावनापूर्वक सम्पन्न हो तो इसके परिणामस्वरूप भारत में स्थायी शासन की स्थापना और आक्रमण का प्रतिरोध करने तथा चीन को सहायता देने में इस सरकार तथा संयुक्त राष्ट्रों के मध्य सहयोग हो सकता है। कांग्रेस इस बात को समझती है कि ऐसा मार्ग ग्रहण करने में खतरे भी उपस्थित हो सकते हैं। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए और खासकर वर्तमान संकटापन्न स्थिति में देश एवं संसार भर में कहीं अधिक खतरों और विपदाओं से घिरे हुए स्वतंत्रता के विशालतर आदर्श को बचाने के लिए, किसी भी देश को ऐसे खतरों का सामना करना ही पड़ता है। अस्तु, जब कि कांग्रेस राष्ट्रीय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अधीर है, वह जल्दबाजी में कोई काम करना नहीं चाहती और न ऐसा मार्ग ग्रहण करना चाहती है जिससे मित्रराष्ट्रों को परेशानी हो। इसलिए यदि ब्रिटिश सरकार इस अत्यन्त यौक्तिक और उचित प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी, जो न केवल भारत के, बल्कि ब्रिटेन के और उस स्वतंत्रता के हित में है जिससे मित्रराष्ट्र अपने को संश्लिष्ट घोषित करते हैं, तो कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार

के इस कार्य से प्रसन्नता होगी। अतएव, यदि यह अपील व्यर्थ गई तो कांग्रेस वर्तमान स्थिति के स्थायित्व को, जिससे परिस्थिति का धीरे-धीरे बिगड़ना और भारत की आक्रमण-विरोधी शक्ति और इच्छा का दुर्बल होना स्वाभाविक है, घोर आशंका की दृष्टि से देखेगी। उस स्थिति में कांग्रेस का अपनी समस्त अहिंसात्मक शक्ति का, जो सन् १९२०—जबकि इसने राजनीतिक अधिकारों और स्वाधीनता के समर्थन के लिए अहिंसा को अपनी नीति के एक अंग के रूप में स्वीकार किया था—के बाद संचित की गई है, अनिच्छापूर्वक उपयोग करने को बाध्य होना पड़ेगा। इस प्रकार के व्यापक संघर्ष का नेतृत्व अनिवार्य रूप से महात्मा गांधी करेंगे। चूँकि, जो प्रश्न यहां उठाए गए हैं वे भारतीय जनता एवं मित्रराष्ट्रों की जनता के लिए सुदूरव्यापी तथा अत्यन्त महत्व के हैं, इसलिए कार्यसमिति अन्तिम निर्णय के लिए इन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सुपुर्द करती है। इस कार्य के लिए ७ अगस्त १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक होगी।"

महासमिति का प्रस्ताव

इस प्रस्ताव को पास किए दो महीने गुजर चुके थे और इस अवधि में जो घटनाएं हुईं थीं उनके परिणामस्वरूप अखिल भारतीय महासमिति के पास इसके सिवा और कोई चारा ही नहीं था कि वह अपने बम्बई वाले अधिवेशन में कार्यसमिति के प्रस्ताव को पास करे। उसने यह प्रस्ताव कुछ साधारण हेर-फेर के साथ पास कर दिया। यह साधारण परिवर्तन भी उसमें इसलिए किया गया कि कुछ बातों पर अधिक जोर दिया जा सके और कुछ बातों को अधिक स्पष्ट किया जा सके। कार्यसमिति की सिफारिशों पर ७ और ८ अगस्त, १९४२ को अखिल भारतीय महासमिति द्वारा बम्बई में जो प्रस्ताव पास किया गया वह इस प्रकार था:—

"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने कार्यसमिति के १४ जुलाई १९४२ के प्रस्ताव के विषयों पर, जो कार्यसमिति द्वारा प्रस्तुत किये गये थे, और बाद की घटनाओं पर, जिनमें युद्ध की घटनावली, ब्रिटिश सरकार के जिम्मेदार वक्ताओं के भाषण और भारत तथा विदेशों में की गयी आलोचनाएं सम्मिलित हैं, अत्यन्त सावधानी के साथ विचार किया है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी उस प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए उसका समर्थन करती है और उसकी राय है कि बाद की घटनाओं ने इसे और भी औचित्य प्रदान कर दिया है और इस बात को स्पष्ट कर दिखाया है कि भारत में ब्रिटिश शासन का तात्कालिक अन्त, भारत के लिए और मित्रराष्ट्रों के आदर्श की पूर्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस शासन का स्थायित्व भारत की प्रतिष्ठा को घटाता और उसे दुर्बल बनाता है और अपनी रक्षा करने तथा विश्व-स्वातंत्र्य के आदर्श की पूर्ति में सहयोग देने की उसकी शक्ति में क्रमिक ह्रास उत्पन्न करता है।

"इसलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पूरे आग्रह के साथ भारत से ब्रिटिश सत्ता के हटा लेने की मांग को दुहराती है। भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा हो जाने पर एक अस्थायी सरकार स्थापित कर दी जायगी और स्वतन्त्र भारत मित्र-राष्ट्रों का मित्र बन जायगा और स्वातन्त्र्य-संग्राम के सम्मिलित प्रयत्न की परीक्षाओं और दुःख-सुख में हाथ बंटायेगा। अस्थायी सरकार देश के मुख्य दलों और वर्गों के सहयोग से ही बनायी जा सकती है। इस प्रकार यह एक मिली-जुली सरकार होगी जिसमें भारतीयों के समस्त महत्वपूर्ण वर्गों का प्रतिनिधित्व होगा। उसका प्रथम कर्त्तव्य अपनी समस्त सशस्त्र तथा अहिंसात्मक शक्तियों द्वारा मित्रराष्ट्रों से मिल कर भारत की रक्षा करना, आक्रमण का विरोध करना, और खेतों, कार-खानों तथा अन्य स्थानों में काम करनेवाले इन श्रमजीवियों का कल्याण और उन्नति करना होगा जो निश्चय ही समस्त शक्ति और अधिकार के वास्तविक पात्र हैं। अस्थायी सरकार एक विधान-निर्मात्री-परिषद की योजना बनायेगी और यह परिषद भारत-सरकार के लिए एक ऐसा विधान तैयार करेगी जो जनता के समस्त वर्गों को स्वीकार होगा। कांग्रेस के मत से यह विधान संघ-विषयक होना चाहिए जिसके अन्तर्गत संघ में सम्मिलित होने वाले प्रान्तों को शासन के अधिकतम अधिकार प्राप्त होंगे। अवशिष्ट अधिकार भी इन प्रान्तों को प्राप्त होंगे। भारत और मित्रराष्ट्रों के भावी सम्बन्ध इन समस्त स्वतन्त्र देशों के प्रतिनिधियों द्वारा निश्चित कर दिये जायंगे जो अपने पास्परिक लाभ तथा आक्रमण का प्रतिरोध करने के सामान्य कार्य में सहयोग देने के लिए परस्पर वार्तालाप करेंगे। स्वतन्त्रता भारत को अपनी जनता की सम्मिलित इच्छा और शक्ति के बल पर आक्रमण का कारगर ढंग से विरोध करने में समर्थ बना देगी।

"भारत की स्वतन्त्रता विदेशी आधिपत्य से अन्य एशियाई राष्ट्रों की मुक्ति का प्रतीक और प्रारम्भ होगी। बर्मा, मलाया, हिन्दचीन, डच द्वीप समूह, ईरान और ईराक को भी पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि इस समय जापानी नियन्त्रण में जो देश हैं उन्हें बाद को किसी औपनिवेशिक सत्ता के अधीन नहीं रखा जायगा।

"इस संकट-काल में यद्यपि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को प्रधानतः भारत की स्वाधीनता और रक्षा से सम्बन्ध रखना चाहिये तथापि कमेटी का मत है कि संसार की भावी शान्ति, सुरक्षा और व्यवस्थित उन्नति के लिये स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक विश्वसंघ बनाने की आवश्यकता है। अन्य किसी बात को आधार बना कर आधुनिक संसार की समस्याएं नहीं सुलझाई जा सकतीं। इस प्रकार के विश्वसंघ से उसमें सम्मिलित होनेवाले राष्ट्रों की स्वतंत्रता, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण और शोषण का रोकना, राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों का संरक्षण, पिछड़े हुए समस्त क्षेत्रों और लोगों की उन्नति और सब के सामान्य हित के लिए

विश्व-साधनों का एकत्रीकरण किया जाना निश्चित हो जायगा। इस प्रकार का विश्वसंघ स्थापित हो जाने पर समस्त देशों में निःशस्त्रीकरण हो सकेगा। राष्ट्रीय सेनाओं, नौसेनाओं और वायुसेनाओं की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी और विश्व-रक्षक सेना विश्व में शान्ति रखेगी और आक्रमण को रोकेगी।

"स्वतन्त्र भारत ऐसे विश्वसंघ में प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित होगा और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं सुलझाने में अन्य देशों के साथ समान आधार पर सहयोग करेगा।

"ऐसे संघ का द्वार उसके आधारभूत सिद्धान्तों का पालन करनेवाले समस्त राष्ट्रों के लिये खुला रहना चाहिये। युद्ध के कारण यह संघ आरम्भ में केवल मित्रराष्ट्रों तक ही सीमित रहेगा। यदि यह कार्य अभी प्रारम्भ कर दिया जाय तो युद्ध पर, धुरी राष्ट्रों की जनता पर और आगामी शान्ति पर इसका बहुत जोरदार प्रभाव पड़ेगा।

"परन्तु कमेटी खेदपूर्वक अनुभव करती है कि युद्ध की दुःखद और व्याकुल कर देने वाली शिक्षाएं प्राप्त कर लेने के पश्चात् और विश्व पर संकट के बादलों के घिरे होने पर भी कुछ ही देशों की सरकारें विश्वसंघ बनाने की ओर कदम उठाने को तैयार हैं। ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया और विदेशी पत्रों की भ्रमपूर्ण आलोचनाओं से स्पष्ट हो गया है कि भारतीय स्वतन्त्रता की स्पष्ट मांग का भी विरोध किया जा रहा है। ऐसी दशा में न तो नित्य बढ़ते जाने वाले खतरे का कोई प्रतिकार ही किया जा सकता है और न मित्रराष्ट्रों की जनता की कोई सेवा ही की जा सकती है। कार्यसमिति ने ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रों से जो सच्ची अपील की थी उसका अभी तक कोई उत्तर नहीं मिला है। बहुत से विदेशी क्षेत्रों में की गई आलोचनाओं से प्रकट हो गया है कि भारत और विश्व की आवश्यकताओं के विषय में अज्ञानता फैली हुई है। कभी-कभी तो आधिपत्य बनाये रखने की भावना और जातिगत ऊंच-नीच का प्रतीक वह विरोध भी दिखाया गया है जिसे अपनी शक्ति और अपने उद्देश्य के औचित्य का ज्ञान रखनेवाली कोई भी अभिमानी जाति सहन नहीं कर सकती।

"इस अन्तिम क्षण में विश्व-स्वातन्त्र्य का ध्यान रखते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी फिर ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रों से अपील करना चाहती है। परन्तु वह यह भी अनुभव करती है कि उसे अब राष्ट्र को एक ऐसी साम्राज्यवादी और शासनप्रिय सरकार के विरुद्ध अपनी इच्छा प्रदर्शित करने से रोकने का कोई अधिकार नहीं है जो उस पर आधिपत्य जमाती है और जो उसे अपने तथा मानव-समाज के हित का ध्यान रखते हुए काम करने से रोकती है। इसलिए कमेटी भारत के स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के अविच्छेद्य अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक प्रणाली से और अधिक-से-अधिक विस्तृत परिमाण पर एक विशाल संग्राम चालू करने की स्वीकृति देने का निश्चय करती है, जिससे देश गत २२ वर्षों

के शान्तिपूर्ण संग्राम में संचित की गई समस्त अहिंसात्मक शक्ति का प्रयोग कर सके। यह संग्राम निश्चय ही गांधीजी के नेतृत्व में होगा और कमेटी उनसे नेतृत्व करने और प्रस्तावित कार्रवाइयों में राष्ट्र का पथ-प्रदर्शन करने का निवेदन करती है।

"कमेटी भारतीयों से उन खतरों और कठिनाइयों का, जो उनके ऊपर आयेंगे, साहस और दृढ़तापूर्वक सामना करने तथा गांधीजी के नेतृत्व में एक बने रह कर भारतीय स्वतन्त्रता के अनुशासित सैनिकों के समान उनके निर्देशों का पालन करने की अपील करती है। उन्हें यह अवश्य याद रखना चाहिए कि अहिंसा इस आन्दोलन का आधार है। ऐसा समय आ सकता है जब निर्देश देना अथवा निर्देशों का हमारी जनता तक पहुंचना सम्भव न होगा और जब कोई भी कांग्रेस समिति कार्य नहीं कर सकेगी। ऐसा होने पर इस आन्दोलन में भाग लेने वाले प्रत्येक नर-नारी को सामान्य निर्देशों की सीमा में रहते हुए अपने-आप काम करना चाहिए। स्वतन्त्रता की कामना और उसके लिए प्रयत्न करनेवाले प्रत्येक भारतीय को स्वयं अपना पथ-प्रदर्शक बनकर उस कठिन मार्ग पर अग्रसर होते जाना चाहिए जहां विश्राम का कोई स्थान नहीं है और जो अन्त में भारत की स्वतन्त्रता और मुक्ति पर जाकर समाप्त होता है।

"अन्त में यह बताया जाता है कि यद्यपि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने स्वतन्त्र भारत की भावी सरकार के विषय में अपना विचार प्रकट कर दिया है, तथापि कमेटी समस्त संबद्ध लोगों के लिए यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहती है कि विशाल संग्राम आरम्भ करके वह कांग्रेस के लिए कोई सत्ता प्राप्त करने की इच्छुक नहीं है। सत्ता जब मिलेगी तब उस पर समस्त भारतीयों का अधिकार होगा।"

७ और ८ अगस्त को जब अखिल भारतीय महासमिति का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ तब उसके सदस्यों और जनता दोनों में ही बड़ी उत्तेजना पाई जाती थी। सभामंडप कमेटी की बैठक के बजाय कांग्रेस का एक छोटा-सा अधिवेशन प्रतीत हो रहा था, जिसमें करीब बीस हजार आदमी सम्मिलित हुए थे। उक्त प्रस्ताव पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पेश किया और सरदार पटेल ने उसका समर्थन किया और यह प्रस्ताव केवल १३ विरोधी मतों से पास हो गया। प्रस्ताव के विरोधियों में १२ साम्यवादी और तेरहवें व्यक्ति एक साम्यवादी के पिता थे।

गांधीजी का भाषण

प्रस्ताव पास हो जाने के बाद गांधीजी ने अपना भाषण दिया। उन्होंने कहा:—

"मैं इस लड़ाई में आपका नेतृत्व करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता हूं, सेनापति अथवा नियंत्रक के रूप में नहीं, बल्कि आपके तुच्छ सेवक के रूप में और जो कोई सर्वाधिक सेवा करेगा वही मुख्य सेवक माना जायगा। मैं तो राष्ट्र का

मुख्य सेवक हूँ। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि मुझे अकेले ही संसार से लोहा लेना पड़ेगा। वह मुझसे यह भी कहती है कि जबतक तुममें निश्शंक होकर संसार का सामना करने की ताकत है, तबतक तुम सुरक्षित हो, भले ही दुनिया तुम्हें किसी और नजर से देखे। गांधीजी ने सवाल किया—आखिर आज भारत की आजादी मांग कर कांग्रेस ने कौन-सा अपराध किया है? क्या ऐसी मांग करना गलती है; क्या उस संस्था पर सन्देह करना ठीक है? मुझे आशा है कि इंग्लैण्ड ऐसा नहीं करेगा। मुझे उम्मीद है कि अमरीका के राष्ट्रपति भी ऐसा नहीं सोचेंगे और चीन के सर्वोच्च प्रधान सेनापति मार्शल चांगकाई शेक भी, जो इस समय अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए जापानियों के साथ भीषण युद्ध कर रहे हैं, कांग्रस के बारे में ऐसा कोई बात नहीं सोचेंगे। अगर संसार के सभी राष्ट्र मेरा विरोध करें; यदि समस्त भारत भी मुझे समझाने की कोशिश करे तो भी मैं अपने मार्ग से विचलित नहीं हूँगा। मैं आगे ही क़दम बढ़ाता जाऊँगा—सिर्फ भारत के लिए नहीं, बल्कि सारे संसार के लिए।"

गांधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर भी विशद रूप से प्रकाश डालते हुए साफ़-साफ़ शब्दों में कहा, "पाकिस्तान के सवाल पर मेरे मन में कोई भ्रम नहीं है। चाहे कुछ भी हो, पाकिस्तान हिन्दुस्तान के बाहर नहीं बन सकता। हम सभी को एक-दूसरे के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर देश की आज़ादी की कोशिश करनी चाहिए। मैं बड़ा उतावला हूँ। आजादी सबके लिए है, किसी एक जाति या कौम के लिए नहीं। किसी भी कौम को हिन्दुस्तान की हुकूमत सौंप देने की जो मांग मौलाना साहब ने ब्रिटेन के सामने पेश की है, मैं उसका समर्थन करता हूँ। अगर मुसलमानोंको हुकूमत सौंप दी जाय तो उससे मुझे कोई रंज नहीं होगा। अब की जो लड़ाई छिड़ेगी, वह तो सामूहिक लड़ाई होगी। हमारी योजना में गुप्त कुछ भी नहीं है। हमारी तो खुली लड़ाई है। हम एक सल्तनत का मुकाबला करने जा रहे हैं और हमारी लड़ाई बिलकुल सीधी लड़ाई है। इस बारे में आप किसी भ्रम में न रहें। दिल में कोई उलझन न रखें। लुक-छिप कर कोई काम न करें। जो लुक-छिपकर काम करते हैं, उन्हें पछताना पड़ता है।"

गांधीजी की हिदायतें

गांधीजी ने सार्वजनिक रूप से यह घोषणा कर दी थी कि आन्दोलन शुरू करने के पूर्व वह वाइसराय को एक पत्र लिखकर उनके जवाब की प्रतीक्षा करना चाहते हैं। उनका खयाल था कि इसमें शायद दो-तीन सप्ताह लग जायँ। इस बीच उन्होंने देशवासियों को सलाह दी कि वे कांग्रेस के १३ सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम में अपनी शक्ति लगाएँ। इसके अलावा उन्होंने लोगों को नीचे लिखी हिदायतें भी दीं:—

१—अखबारों को स्वतंत्रतापूर्वक और निर्भीक होकर अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। उन्हें सरकार से डरना नहीं चाहिए और न किसी से रिश्वत लेनी चाहिए। अधिकारियों-द्वारा अपना दुरुपयोग किये जाने की अपेक्षा काम बन्द कर देना कहीं अधिक अच्छा होगा और तब उन्हें अपनी इमारतों, मशीनों और बड़े-बड़े कारोबार की कुरबानी देने को तैयार रहना चाहिये।

२—राजाओं को संबोधित करते हुए गांधीजी ने कहा—"राजाओं को स्थिति के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। उन्हें समय की गति को पहचान कर अपने शासन की बागडोर अपनी प्रजा को सौंप देनी चाहिये और इसकी सूचना सरकार के राजनीतिक विभाग को भी दे देनी चाहिये।"

३—आन्दोलन के स्वरूप और उसे किस ढंग से चलाना चाहिये, इस बारे में गांधीजी ने कहा "गुप्त रूप से कोई काम न कीजिये, यह पाप है। लुक-छिपकर कोई आन्दोलन न चलाइये।"

४—विद्यार्थियों और शिक्षकों को संबोधित करते हुए गांधीजी ने कहा कि 'वे अपने अन्दर आजादी की भावना को धारण करें,' कांग्रेस के साथ खड़े रहें, यह कहने की हिम्मत दिखायें कि वे कांग्रेस के हैं, और अगर ज़रूरत आ ही पड़े तो वे अपने धन्धे और 'कैरियर' को खुशी-खुशी छोड़ दें।

५—सरकारी नौकरों का ज़िक्र करते हुए गांधीजी ने उन्हें सलाह दी कि "उनके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि वे फौरन ही अपनी नौकरियों से इस्तीफे दे दें, लेकिन उन्हें सरकार को यह तो लिखकर दे ही देना चाहिए कि वे कांग्रेस के साथ हैं।"

नेताओं की गिरफ्तारी

इस बात के बावजूद कि एक-के-बाद-एक सभी कांग्रेसी प्रवक्ताओं ने पहले सरकार से समझौता करने पर जोर दिया; सरकार ने उनकी बातों पर कोई ध्यान न देकर उलटे जनता पर अपना जोरदार दमन-चक्र चलाने की तैयारी शुरू कर दी। उसने पौ फटने से पहले ही कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों और बम्बई के ४० प्रमुख नागरिकों को गिरफ्तार करके उन्हें विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन पर पहुँचा दिया, जहाँ उनके लिए एक स्पेशल ट्रेन तैयार खड़ी थी। यह सारी कार्रवाई उसने इतनी तेजी और अप्रत्याशित ढंग से की कि कुछ लोग अपने साथ अपनी ऐनक, बटुआ, कपड़े, पुस्तकें और इसी प्रकार का अन्य आवश्यक सामान भी ले जाना भूल गए। श्री प्यारेलाल और बा को भी गिरफ्तार करके गांधीजी के नजरबन्द कैम्प में भेज दिया गया। कार्यसमिति के सदस्य किस जेल में नजरबन्द किये जाएँगे, इस सम्बन्ध में सरकार ने बड़ी सतर्कता से काम लिया और इस खबर को प्रकाशित नहीं होने दिया। लेकिन अखबारों में यह छप गया

कि गांधीजी को पूना में आगा खां के महल में नजरबन्द किया जा रहा है। गांधी जी, उनके दल और श्रीमती सरोजिनी देवी को चिंचवाद नामक स्थान पर गाड़ी से उतार कर यरवडा जेल के पास एक बँगले में ले जाया गया। बम्बईवाले दल को किर्की में गाड़ी से उतार कर यरवदा भेज दिया गया और कार्यसमिति के सदस्यों को लेकर यह स्पेशल ट्रेन ढोंड पहुँची, जहाँ से उसने मद्रास-बम्बई वाली लाइन पर स्थित अहमदनगर का रुख किया। अहमदनगर में चाँदबीबी के किले में बड़े लम्बे-चौड़े हालवाले एक बड़े और अलग भवन में इन लोगों को लाकर नजरबन्द कर दिया गया।

गांधीजी का वक्तव्य

गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद प्रकाशित किया गया उनका लेख संक्षेप में इस प्रकार है :—

"हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय महासभा की कार्य-समिति ने पूर्ण स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास किया है उसके सम्वन्ध में अपनी स्थिति को स्पष्ट करना मेरे लिए आवश्यक हो गया है, क्योंकि यह माना जाता है कि वह मेरी ही प्रेरणा से पास किया गया है। आप मुझसे बिल्कुल अपरिचित नहीं हैं। पश्चिमी देशों में शायद अमरीका ही एक ऐसा देश है, जहां मेरे अधिक-से-अधिक मित्र हैं; और ग्रेट ब्रिटेन भी इसका अपवाद नहीं है। इसके सिवा, थोरो के रूप में आप ही ने मुझे एक ऐसा शिक्षक दिया, जिसके "सविनय अवज्ञा का कर्तव्य" (ड्यूटी आफ सिविल डिसओबीडियन्स) नामक निबन्ध के द्वारा मुझे अपने उस कार्य का वैज्ञानिक समर्थन प्राप्त हुआ था, जो मैं उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में कर रहा था। ग्रेट ब्रिटेन ने मुझे रस्किन जैसा गुरु दिया, जिसके "सर्वोदय" यानी "अनटू दि लास्ट" ग्रंथ ने मुझमें इतना परिवर्तन किया कि मैं एक ही रात में बिल्कुल बदल गया। मैंने वकालत छोड़ी, शहर में रहना छोड़ा, और मैं एक देहाती बनकर डरबन से दूर एक ऐसे चक पर रहने लगा जो नजदीक के रेलवे स्टेशन से भी तीन मील दूर था। रूस ने टाल्सटाय के रूप में मुझे वह गुरु दिया, जिससे मुझे अपनी अहिंसा का एक बुद्धिसम्मत और तर्क-शुद्ध आधार प्राप्त हुआ। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के मेरे उस आन्दोलन को, जो उस वक्त शुरू ही हुआ था, और जिसकी अद्भुत सम्भावनाओं को उस समय तक मैं जान भी नहीं पाया था अपना आशीर्वाद दिया था। इसलिए आप यह समझ सकेंगे कि इस वक्त जो कदम मैंने उठाया है, उसमें ग्रेट ब्रिटेन के और पश्चिमी देशों के खिलाफ दुश्मनी का कोई भाव नहीं है। "अनटू दि लास्ट" में दिये गए "सर्वोदय" के सन्देश को अच्छी तरह पचाने और आत्मसात् करने के बाद मैं उस फासिस्टवाद या नाजीवाद के

अनुमोदन के समर्थन का दोषी नहीं बन सकता, जिसका ध्येय व्यक्ति का और उसकी स्वतन्त्रता का दमन करना है।

"मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप मेरे निर्माण की इस पार्श्वभूमिका को ध्यान में रखकर हिन्दुस्तान से हट जाने के मेरे उस सूत्र को पढ़ेंगे, जो आमतौर पर "क्विट इंडिया" यानी "भारत छोड़ो" के नाम से पुकारा जाता है। इस सूत्र के पूर्वापर सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए इसका जो अर्थ निकल सकता है, उतना ही अर्थ आप इससे निकालिये—उससे ज्यादा नहीं। मेरा दावा है कि मैं अपने बचपन से ही सत्य का पुजारी रहा हूँ। मेरे लिये यह अत्यन्त स्वाभाविक वस्तु थी। मेरी भक्ति-भाव युक्त खोज के कारण "ईश्वर सत्य है" के प्रचलित वचन के बदले यह दिव्य अर्थवाला वचन प्राप्त हुआ कि "सत्य ही ईश्वर है।" इस वचन के कारण मैं मानो ईश्वर को अपने सामने साक्षात् खड़ा पाता हूँ। मैं अनुभव करता हूँ कि वह मेरे रोम-रोम में व्याप्त है। अपने और आपके बीच इसी सत्य को साक्षी रखकर मैं बलपूर्वक यह कहता हूँ कि अगर मुझे अचानक यह बोध न हुआ होता कि ग्रेट ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रों के हित के लिये यह ज़रूरी है कि ब्रिटेन हिन्दुस्तान को बन्धन से मुक्त करने के अपने कर्तव्य का साहसपूर्वक पालन करे तो मैंने अपने देशवासियों को यह सलाह कभी न दी होती कि वे ग्रेट ब्रिटेन को हिन्दुस्तान से अपनी हुकूमत उठा लेने को कहें और इसके खिलाफ पेश की जानेवाली किसी भी मांग की परवाह न करें।

"अगर ब्रिटेन ने इस सर्वोत्तम न्याय से काम लिया तो आज हिन्दुस्तान में उसके खिलाफ जितना भी असंतोष बढ़ रहा है, वह सब मिट जायगा। अपने इस एक कार्य-द्वारा वह बढ़ते हुए दुर्भाव को सद्भाव में बदल डालेगा। इस पर आप विचार कीजिए। बिना किसी शर्त के हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता को मान लेने की जो मांग कांग्रेस कर रही है, उसमें अनुचित क्या है? कहा जाता है कि 'यह उसका वक्त नहीं है।' हम कहते हैं, 'हिन्दुस्तान की आज़ादी को मान लेने का यही मनोवैज्ञानिक मुहूर्त है,' क्योंकि उसी एक हालत में जापानी हमलों का अचूक प्रतिकार किया जा सकता है।"

श्री एडगर स्नो का मत

श्री एडगर स्नो की यह राय थी कि अमरीकी जनता ने अभीतक यह महसूस नहीं किया कि भारत का विरोध हमारे लिए कितना निर्णायक और घातक साबित हो सकता है। अब तक जर्मनी ने जितने भी देशों पर अधिकार किया है, उन सब की अपेक्षा यह देश कहीं बड़ा है। इसकी जन-शक्ति नाजी साम्राज्य की तुलना में दुगुनी है। इसके साधन अपार हैं। ब्रिटेन, रूस और आस्ट्रेलिया को छोड़कर यह देश मित्रराष्ट्रों का सब से बड़ा औद्योगिक अड्डा है। पश्चिमी गोलार्द्ध से बाहर होने

के कारण यह दक्षिण-पूर्वी एशिया में हमारा अन्तिम मजबूत अड्डा है। ऐसे महान् देश और जाति के सबसे बड़े नेता गांधीजी हैं। पिछले बीस वर्षों में यदि 'कांग्रेस भारतीय राष्ट्रवाद का प्रतीक' बन गई है तो इस पर हमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। परन्तु वाइसराय महोदय मेरे इस विचार से सहमत नहीं हैं। यह सत्य है कि गांधीजी के वचन सूत्रबद्ध होते हैं। उनके विचारों में जो पारस्परिक विरोध प्रतीत होता है, उसे भारतीय जनता अपनी प्रेरणा-शक्ति से समझ लेती है, क्योंकि गांधीजी में, आपको रहस्यवाद, आध्यात्मवाद और परंपरागत भावनाओं के साथ 'राजनीतिक यथार्थवाद' का सुन्दर सम्मिश्रण मिलेगा। वास्तव में उनके 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के सिद्धान्त पर हमें इसी दृष्टिकोण से सोच-विचार करना चाहिए। 'साम्राज्य छोड़िए और भारत को अपने पक्ष में कीजिए' इस विषय का प्रतिपादन करते हुए आपने लिखा कि एक मुख्य बात जिसे हमें समझ लेना चाहिए यह है कि गांधीजी के कुछ विचार और वक्तव्य हमें चाहे कितने ही अनोखे क्यों न प्रतीत होते हों, परन्तु उनका भारत के राष्ट्रीय नेता होने की उनकी स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। बल्कि उसके विपरीत उन विचारों के कारण भारतीय जनता में उनकी स्थिति और भी अधिक सुदृढ़ हो जाती है। वे ही आत्मा हैं और वे ही विचार-शक्ति। वे एक महान् आत्मा हैं, जिसकी अधिकांश भारतीय पूजा करत हैं। गांधीजी में भारतीय जनता को अन्धविश्वास है।

सरकार का दमन-चक्र

परन्तु ब्रिटेन पर इनमें से किसी बात का भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसके अभिमान और प्रतिष्ठा को इस बात से ठेस पहुंचती थी कि एक परतंत्र राष्ट्र अपनी स्वाभाविक गुलामी और परवशता को छोड़कर युद्ध के नगाड़े बजा रहा है। एक ऐसे संगठन के शान्तिदूत का, जो उन्हें युद्ध की धमकियां देता रहा हो—भला वह क्योंकर स्वागत कर सकता था। इससे उसके बड़प्पन को धक्का लगता था। सरकारी आदेश था कि तीन बजने से पहले-पहले "सब" को गिरफ्तार करके जेलों में ठूंस दिया जाय। इसलिए पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार जो कुछ बम्बई में हुआ वही देश के सभी भागों—देशी राज्यों और प्रान्तों, शहरों और कस्बों में हुआ। कांग्रेस कमेटियां गैर-कानूनी घोषित कर दी गईं। कांग्रेस के दफ्तरों पर कब्जा करके उनमें ताले डाल दिये गए। कांग्रेस की कार्रवाइयों पर पाबंदियां लगा दी गईं। अखिल भारतीय महासमिति के जो सदस्य अपने घरों को वापस लौट रहे थे, उन्हें गाड़ियों में मार्ग में ही गिरफ्तार कर लिया गया। बम्बई में पुलिस ने कांग्रेस-भवन, अखिल भारतीय महासमिति के भव्य और विशाल पंडाल तथा ग्वालिया तालाब के क्रीड़ा-मैदान पर कब्जा कर लिया। सभी प्रकार के जुलूस और सभाएँ निषिद्ध घोषित कर दी गईं और शहर की सारी पुलिस, रिजर्व

पुलिस और सैनिक दस्तों को एकत्र कर लिया गया। कांग्रेस के स्वयंसेवकों और देशसेविकाओं ने निर्धारित सम। पर अपना उत्सव मनाया, परन्तु पुलिस ने अश्रु-गैस छोड़कर और लाठी-चार्ज करके उन्हें तितर-बितर करने की चेष्टा की। पंडाल पर लहराते हुए राष्ट्रीय झंडे को नीचे गिरा दिया गया और जो स्वयंसेवक उसकी रक्षा के लिए आगे बढ़े उन पर मार-पीट की गई। कांग्रेस कार्यसमिति, अखिल भारतीय महासमिति और बम्बई प्रांत में बम्बई, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियां अवैध घोषित कर दी गईं। इसी प्रकार उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के अलावा शेष सभी प्रान्तों की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियां गैर-कानूनी करार दे दी गईं। शायद इतना ही काफी नहीं था। केन्द्रीय सरकार ने नयी दिल्ली से ८ अगस्त के अपने एक आदेश के अन्तर्गत अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की ओर से चलाए गए सार्वजनिक आन्दोलन अथवा इस आन्दोलन के विरुद्ध सरकार-द्वारा अपनाए गए उपायों से सम्बन्ध रखनेवाले किसी वास्तविक समाचार का (जिनमें सदस्यों द्वारा दिये गए भाषणों अथवा वक्तव्यों के विवरण सम्मिलित हैं) किसी भी मुद्रक, प्रकाशक अथवा संपादक-द्वारा मुद्रण अथवा प्रकाशन वर्जित कर दिया।

सरकार ने कांग्रस के प्रस्ताव के सम्बन्ध में अपना खेद, क्षोभ और प्रस्ताव में निहित चुनौती का मुकावला करने का अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करने में विलंब नहीं होने दिया। वस्तुतः देखा जाय तो सरकार ने अपनी तैयारियां उसी समय से शुरू कर दी थीं, जब उसने देश के राजनीतिक-जीवन में उथल-पुथल के प्रारंभिक चिह्न देखे थे, क्योंकि १४ जुलाई, १९४२ के वर्धा-प्रस्ताव के थोड़ी देर बाद ही उसने १७ जुलाई १९४२ को एक गश्ती चिट्ठी जारी की जो बाद में "पकल गश्ती चिट्ठी" के नाम से प्रसिद्ध हुई। यहां हम उस चिट्ठी का संक्षेप में उल्लेख करना उचित समझते हैं।

पकल की गश्ती चिट्ठी

यह स्मरण रहे कि बम्बई में अखिल भारतीय महासमिति के अधिवेशन से कुछ ही समय पहले अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति के कार्यालय की तलाशी लेकर गांधीजी-द्वारा भेजे गए प्रस्ताव के मसविदे की प्रतियों पर कब्जा करके सरकार ने उन्हें छाप दिया था। इसके अलावा उसने इस सम्बन्ध में, इलाहाबाद की बैठक में कांग्रेस-कार्यसमिति के सदस्यों के भाषणों का अपूर्ण और अनियमित विवरण भी प्रकाशित किया था। इस संबंध में भारत-सरकार के सेक्रेटरी सर फ्रेडरिक पकल की एक गोपनीय और महत्वपूर्ण गश्ती चिट्ठी गांधीजी के हाथों में पड़ गई और उन्होंने इसके साथ भूमिका के रूप में अपनी एक टिप्पणी जोड़कर

बम्बई में उसे विस्तृत रूप से प्रचारित कर दिया। इस गश्ती चिट्ठी का सारांश इस प्रकार है :—

१—७ अगस्त को बम्बई में होनेवाले अखिल भारतीय महासमिति के अधिवेशन में अभी तीन सप्ताह और हैं। इस बीच मुख्य समस्या कांग्रेस के प्रस्ताव में वर्णित ठोस सुझावों के विरुद्ध प्रचार और उस प्रस्ताव के अन्त में गांधीजी के शब्दों में 'खुले विद्रोह' की जो धमकी दी गई है उसके विरुद्ध लोकमत तैयार करना है। हमें (१) उन लोगों को प्रोत्साहन देना है जिनके सहयोग पर हम यकीन कर सकते हैं, (२) जो लोग अभी तक दुविधा में पड़े हैं, उन्हें अपने साथ मिला लें, और (३) कांग्रेसजनों में दृढ़ निश्चय की भावना को रोकें। ऐसा करने में हमारा एक उद्देश्य तो यह है कि कांग्रेस पर दबाव डाला जाय कि वह अपना कदम पीछे हटा ले और दूसरा उद्देश्य यह है कि अगर हमें कांग्रेस के खिलाफ कोई कार्रवाई करनी ही पड़े तो हमें देश के अन्दर और बाहर से जनता का समर्थन प्राप्त हो सके। कृपया आप लोग सभी उपलब्ध साधनों द्वारा जोरदार प्रचार करें जिससे कि प्रभावशाली व्यक्ति और प्रमुख गैर-कांग्रेसी संगठन कांग्रेस के प्रस्ताव के अन्तर्गत वर्णित योजना का खुले रूप में और तर्क के आधार पर विरोध करें। आजकल धुरीराष्ट्रों के रेडियो-स्टेशन से जो प्रचार हो रहा है, उसके मुख्य पात्र कांग्रेस के नेता होते हैं। इससे साफ जाहिर है कि भारत के दुश्मन कांग्रेस के प्रस्तावों में अपना हित-साधन समझते हैं। मित्रराष्ट्रों की विजय के अलावा भारत के पास अपने उद्देश्य-प्राप्ति का कोई और साधन ही नहीं है। गुलामों की दुनिया में आजाद भारत का होना असम्भव है।

२—कांग्रेस प्रस्ताव एक दल का घोषणापत्र है। यह कांग्रेस की आवाज है; भारत की नहीं। इसमें कांग्रेस के अलावा सभी दलों और लोगों की अवहेलना की गई है। जहाँ तक युद्ध का प्रश्न है, मुसलमान, सिक्ख, साम्यवादी, रायवादी, संगठित मजदूर, किसान सभाएँ और विद्यार्थियों के प्रमुख संगठन कांग्रेस के विरोधी हैं। लोग स्वेच्छा से सेना में भरती हो रहे हैं। इससे साबित हो जाता है कि युद्ध के प्रश्न पर कांग्रेस भारत का प्रतिनिधित्व नहीं करती। क्रिप्स-प्रस्तावों की जो गलत व्याख्या की गई है, उसे भी ध्यान में रखिए, क्योंकि उनके अनुसार लड़ाई खत्म हो जाने के बाद हिन्दुस्तान को औपनिवेशिक स्वराज्य अथवा आजादी देने का वादा किया गया है। इस बात पर भी जोर दीजिए कि कांग्रेस जो स्वयं तो विशुद्ध रूप से एक स्वेच्छाचारी संस्था है और जिस पर बड़े-बड़े उद्योगपतियों और मध्य वित्तवाले लोगों का कब्जा है—मजदूरों को सत्ता हस्तान्तरित करने का स्वांग रचती है। इस समय मजदूरों को मताधिकार प्राप्त नहीं है और अस्थायी युद्ध-सरकार पर प्रभाव डालने के लिए उन्हें इसी समय मताधिकार नहीं दिया जा सकता।

३—प्रस्ताव के अन्तर्गत जिस ठोस रूप में ये सुझाव पेश किए गये हैं, वे एकदम अस्पष्ट और अव्यावहारिक हैं। कांग्रेस के प्रस्तावों में ऐसी कोई भी बात नहीं पाई जाती जो प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के अनुकूल हो। उसका उद्देश्य अस्थायी कांग्रेसी सरकार के हाथों में सत्ता सौंप देना है और उसके बाद यह सरकार खुद फैसला करेगी कि भविष्य के लिये कौन-सी व्यवस्था आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखिए कि पहले तो ब्रिटिश राज के यहाँ से हट जाने को कहा गया है और उसके बाद अस्थायी सरकार बनाई जाने की। इस संक्रान्ति-काल में क्या होगा? अस्थायी सरकार किस तरह से और कौन बनाएगा और वह किस विधान के अन्तर्गत अपना काम करेगी? कांग्रेस ने अन्य महत्त्वपूर्ण तत्वों की सहायता प्राप्त करने की कोशिश नहीं की और ये तत्व इस बात को कभी बरदाश्त नहीं करेंगे कि अस्थायी रूप से भी कांग्रेस को सत्ता सौंप दी जाय।

४—इस प्रस्ताव में एक और उल्लेखनीय बात यह है कि यद्यपि इसमें आक्रमण का प्रतिरोध करने की बड़ी लम्बी-चौड़ी डींग हांकी गई है, फिर भी इसमें इसका ज़िक्र तक भी नहीं किया गया कि इस प्रतिरोध का स्वरूप क्या होगा और सारे प्रस्ताव में जान-बूझ कर हिंसा या अहिंसा का उल्लेख नहीं किया गया। प्रस्ताव में 'आक्रमण के निष्क्रिय प्रतिरोध' की निन्दा की गई है; लेकिन पिछले कई वर्षों से गांधीजी इसी बात का ही तो प्रचार करते रहे हैं। वर्धा में निराशावाद और पराजय की जो भावना पाई जाती थी और जो अधिकांश कांग्रेसियों में अब भी पाई जाती है—उस पर १२ जुलाई के 'हरिजन' में श्री महादेव देसाई ने एक उल्लेखनीय लेख में काफ़ी प्रकाश डाला है। इसका उल्लेख आपको अँग्रेजी 'हरिजन' के २२६वें पृष्ठ पर "निराशा का खेल" नामक शीर्षक-पैरे में मिलेगा। पढ़े-लिखे लोगों के साथ बातचीत करते समय इस लेख का उल्लेख करना उपयोगी साबित होगा।

५—प्रस्ताव के अन्त में जो धमकी दी गई है वह अस्पष्ट है। बाद में गांधीजी और मौलाना आजाद ने उसका खुलासा करते हुए यह कहा है कि उसका मतलब व्यापक पैमाने पर एक सार्वजनिक आन्दोलन से है। अगर कांग्रेस की बात न मानी गई तो वह सन्तोष करके नहीं बैठ रहेगी और दूसरों को अपना काम नहीं करने देगी, बल्कि वह भारत को जापान और जर्मनी के हवाले कर देगी।

६—राष्ट्रीय युद्ध-मोर्चे से हमें पूरा-पूरा लाभ उठाकर इन प्रस्तावों का विरोध करना चाहिए, जिनसे केवल युद्ध-प्रयत्न को ही नुकसान पहुँच सकता है। स्थानीय प्रचार-कार्य के लिए हम भाषणों, स्थानीय-पत्रों के नाम पत्रों, परचों, व्यंग्यचित्रों, पोस्टरों और लोगों में जाकर बातचीत करने के साधनों से काम ले सकते हैं। इस सम्बन्ध में केंद्रीय सरकार द्वारा अखिल भारतीय रेडियो स्टेशनों को आवश्यक हिदायतें दे दी जायेंगी।

कांग्रेस ने अपने आन्दोलन के सम्बन्ध में वास्तव में अभी विस्तृत बातों का कोई फैसला नहीं किया था। गांधीजी ने केवल इतना कहा था कि अहिंसा और सत्य के आधार पर अबतक के व्यक्तिगत और सार्वजनिक आन्दोलनों में जिस कार्यक्रम को अपनाया गया है, उसकी सब बातें इस आन्दोलन में भी रहेंगी। परन्तु सरकार इतनी उत्तेजनापूर्ण कार्रवाइयां कर रही थी कि उनसे जनता को हिंसा और तोड़-फोड़ की उन सभी कार्रवाइयों के करने का प्रोत्साहन मिलता था, जिनकी उसे आशंका थी और जिन्हें आधार बनाकर वह अपनी कार्रवाई का औचित्य सिद्ध कर रही थी। तात्पर्य यह है कि सरकार ने जनता को अराजकता और अव्यवस्था फैलाने के लिए प्रोत्साहित किया और उसे यकीन था कि वह अहिंसात्मक सार्वजनिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन की अपेक्षा जनता की अराजकता को अपने बल-प्रयोग से सुगमता से दबा लेगी।

कांग्रेस पर दोषारोपण

इसके बाद ही इस बारे में भारत-सरकार ने ८ अगस्त को अपना प्रस्ताव प्रकाशित किया जिसमें कहा गया कि पिछले कुछ दिनों से सपरिषद् गवर्नर-जनरल को मालूम रहा है कि कांग्रेस ने अवैध और कुछ दिशाओं में हिंसक कार्यों के लिए खतरनाक तैयारियाँ की हैं, जिनका उद्देश्य और बातों के अलावा यह भी है कि यातायात और सार्वजनिक उपयोग के साधनों में विघ्न डाला जाय, हड़तालों का संगठन किया जाय, सरकारी कर्मचारियों को राजभक्ति से विमुख किया जाय और रक्षा के उपायों में, जिनमें रंगरूटों की भरती भी शामिल है, बाधा पहुँचायी जाय। वास्तव में तथ्य तो यह है कि कांग्रेस कार्यसमिति ने आन्दोलन का कोई भी कार्यक्रम तैयार ही नहीं किया था। सरकार ने अपनी सूचना की अधिकार-सीमा के बाहर जाकर कांग्रेस पर उस समय ऐसा दोषारोपण किया जिस समय देश में कोई भी ऐसा उत्तरदायित्वपूर्ण कांग्रेसजन बाहर नहीं था जो सरकार के इन इलजामों का प्रत्युत्तर देता।

आगे चलकर सरकार ने अपने इसी प्रस्ताव में कांग्रेस की मांग का जिक्र करते हुए यह भी कहा कि उस पर सोच-विचार ही नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसकी स्वीकृति से भारत में अव्यवस्था और अराजकता फैल जायगी और मानव-स्वतन्त्रता के सार्वजनिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जो उद्यम वह कर रही है वह बिल्कुल ही ठण्डा पड़ जायगा। सरकार का यह एक अनोखा तर्क था, क्योंकि मानव-स्वतन्त्रता के सार्वजनिक उद्देश्य में भारत की अपनी स्वतन्त्रता भी तो सम्मिलित थी। वास्तविकता यह थी कि सरकार ने कांग्रेस की स्थिति बड़ी डाँवाडोल बना रखी थी। कांग्रेस के जिम्मेदार नेताओं ने यह स्पष्ट कर दिया था कि 'भारत छोड़ो' नारे का अर्थ वह नहीं है जो सरकार ले रही है।

सरकार के उक्त प्रस्ताव के अलावा कांग्रेस और उसके नेता गान्धीजी पर अर्द्ध-सरकारी हल्कों की ओर से यह दोष भी लगाया गया कि कांग्रेस ने हाल में अपनी पिछले बाईस वर्ष की नीति परिवर्तन करके यह कहना शुरू कर दिया है कि आजादी मिलने के बाद साम्प्रदायिक ऐक्य स्वयं ही स्थापित हो जायगा, जबकि इससे पहले वह यह कहा करती थी कि स्वाधीनता की प्राप्ति से पहले साम्प्रदायिक ऐक्य अत्यावश्यक है। यह भी कहा गया कि लड़ाई के जमाने में कोई वैधानिक परिवर्तन सम्भव नहीं है। परन्तु इन तर्कों में हमें कोई जान नहीं दिखाई देती। इनसे केवल यही प्रकट होता है कि ब्रिटेन सत्ता हस्तान्तरित करने को तैयार नहीं थी। ऐसी स्थिति में कांग्रेस ने जो कदम उठाया वह बिल्कुल ठीक और उचित था। जिस दिन गान्धीजी और उनके साथी गिरफ्तार किए गये थे और सरकार ने अपना दमन-चक्र चलाया था—उसी दिन से देश के विभिन्न वर्ग उनकी रिहाई और फिर से समझौते की बातचीत शुरू करने की माँग करने लगे थे। यह माँग भारत के प्रमुख उद्योगपतियों या व्यापारियों की ओर से नहीं की जा रही थी, बल्कि साम्य-वादियों की ओर से की जा रही थी—जो युद्ध-प्रयत्न में सक्रिय भाग लेने के समर्थक थे। इसके अलावा यह माँग ट्रेड यूनियन कांग्रेस, नरम दल, मिल-मालिकों और लखपतियों, सिक्खों, भारतीय ईसाइयों, एंग्लो-इण्डियन एसोसिएशन, स्थानीय बोर्डों, म्युनिसिपैलिटियों, धार्मिक संस्थाओं, हिन्दू महासभा, विशेष प्रयोजन के लिए आयोजित सभाओं, प्रमुख व्यक्तियों तथा डा० सप्रू और श्री जयकर सरीखे निर्बल नेताओं की ओर से की जा रही थी। लेकिन सरकार ने इन माँगों, सुझावों और अनुरोधों की कोई परवाह नहीं की और वह मदान्ध होकर दमन-चक्र चलाती रही।

दमन-चक्र का प्रभाव

९ अगस्त को नेताओं की गिरफ़्तारी के बाद सरकार ने पहला हमला कांग्रेस के स्वयंसेवकों की रैली पर किया। उसने राष्ट्रीय झण्डे को नीचे गिरा दिया और लोगों को चेतावनी दी कि वे उस मैदान में एकत्र न हों। इस झण्डे का उद्‌घाटन उसी दिन प्रातः पण्डित नेहरू द्वारा किया जाना था। पुलिस की चेतावनी के बाव-जूद श्रीमती आसफअली ने झण्डा फहराया और इन गिरफ्तारियों की घोषणा की। प्रान्त भर में और बम्बई नगर में सार्वजनिक सभाओं, जमघटों और जुलूसों पर प्रति-बन्ध लगा दिये गये और इनके लिए अधिकारियों से पहले से अनुमति प्राप्त कर लेना आवश्यक घोषित किया गया। शस्त्रास्त्रों को लेकर चलना निषिद्ध कर दिया गया और एक पखवारे के लिए कुछ इलाकों में लोगों को शाम के ७–३० बजे के बाद और सुबह ६–० बजे से पहले अपने घरों से बाहर निकलने की मनाही कर दी गई। पहले ही दिन पुलिस और सेना ने लोगों पर लाठी-चार्ज किया, उनपर अश्रु-

गैस छोड़ी और उन्हें गोलियों का शिकार बनाया। बम्बई-जैसे निषेधात्मक आदेश एक-साथ ही सभी प्रान्तों में लागू किये गये। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने अपने यहाँ कांग्रेस कार्यसमिति, अखिल भारतीय महासमिति तथा सभी प्रान्तीय, जिला, नगर, तहसील, वार्ड और मण्डल कांग्रेस कमेटियों को अवैध घोषित कर दिया और १९३२ के संयुक्त प्रान्तीय विशेषाधिकार कानून को प्रान्त के सभी जिलों पर लागू कर दिया। इलाहाबाद में स्वराज्य-भवन पर कब्जा कर लिया गया। मध्यप्रान्त में नागपुर कांग्रेस समाजवादी दल, नागपुर हिन्दुस्तान लाल सेना और हिन्दुस्तान लाल सेना को भी गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। उड़ीसा की सरकार ने न केवल कांग्रेस कमेटियों को ही गैर-कानूनी घोषित किया, बल्कि उनके दफ्तरों और अन्य सम्बद्ध संस्थाओं को भी, जिनकी संख्या ३८ थी, घोषित क्षेत्र करार दिया। यही हाल लाहौर, नयी दिल्ली और कराँची में भी हुआ। मद्रास में भी तीनों प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ और उनकी संस्थाएँ गैर-कानूनी घोषित कर दी गईं। बंगाल, आसाम और पटना में भी इसी तरह के प्रतिबन्ध लगा दिये गये और पटना का 'सदाकत-आश्रम' भी एक घोषित क्षेत्र करार दिया गया।

खुला विद्रोह

इस प्रकार वास्तविकता यह थी कि कांग्रेस पर एक-तरफा हमला कर दिया गया, नेता और उनके अनुयायी युद्ध की घोषणा होने से पहले ही युद्ध-बन्दी बना लिये गये। ऐसी स्थिति में आप यह आशा कैसे कर सकते हैं कि सैनिक इस युद्ध-कला के सिद्धान्तों पर उचित रूप से अमल करेंगे। जनता ने समझा कि उन्हें ऐसा मौका जीवन में शायद फिर कभी न मिल सके, इसलिए वह काबू से बाहर हो गई। सभाओं, जुलूसों, प्रदर्शनों, मिलने-जुलने की स्वतन्त्रता और वाणी स्वातन्त्र्य पर लगाये गये प्रतिबन्धों की तनिक भी अवज्ञा करने पर जब अधिकारियों-द्वारा जनता पर न केवल लाठी-चार्ज द्वारा, बल्कि राइफलों, रिवाल्वरों, मशीनगनों की मार और बमवर्षा की गयी तब वह गुस्से से पागल हो उठी। नेताओं की गिरफ्तारी को मुश्किल से १२ घण्टे भी नहीं हुए थे कि सरकार ने ईंट-पत्थरों और गोलियों की बौछार की वही पुरानी कहानी दुहरानी शुरू कर दी। इस तरह एक विषाक्त और दूषित चक्र चल पड़ा जिसे देखकर नागरिक न तो चुप ही बैठ सकते और न उसे रोक सकते थे। जनता की भीड़ चलती हुई रेलों पर पत्थर बरसाने लगी, गाड़ियों और कारों को रोकने लगी, रेलवे स्टेशनों को नुकसान पहुँचाने लगी, उनमें अथवा उनकी सम्पत्ति को अग्नि की भेंट करने लगी, अनाज की दूकानें लूटी जाने लगीं, टेलीफोन के तार काटे जाने लगे, कारों के टायरों को खोल दिया गया और उन्हें बेकार कर दिया गया तथा विक्टोरिया, बैलगाड़ी तथा ताँगेवालों को परेशान किया जाने लगा। आम जनता की इन ज्यादतियों को आर्डिनेन्स-द्वारा निषिद्ध घोषित किये

जाने पर भी देशभर में हड़तालें हुईं, जिनमें स्कूल, कालेजों और विश्वविद्यालय के छात्रों ने विशेष रूप से भाग लिया। विद्यार्थियों ने पिकेटिंग करने में भी प्रमुख भाग लिया। शिक्षण संस्थाएँ और यूनिवर्सिटियाँ बहुत शीघ्र ही खाली हो गईं और देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक अर्थात् अलीगढ़ को छोड़कर ढाका से दिल्ली तक और लाहौर से मद्रास तक सभी शिक्षा-संस्थाएँ बन्द हो गईं। बनारस विश्वविद्यालय पर सेना ने आन्दोलन के शुरू में ही कब्जा कर लिया था। इस आन्दोलन के शुरू में रेल की पटरियों और फिश-प्लेटों को उखाड़ने की घटनाएँ भी देखने में आईं, जिनके कारण रेलवे-यातायात पंगु बना दिया गया। उदाहरण के तौर पर कई दिन तक मद्रास मेल नहीं चल सकी और बाद में कुछ समय तक रात्रि के समय वह बन्द कर दी गई। बित्रगुन्ता से लेकर बेजवाड़ा तक का १३० मील का रेल-मार्ग बुरी तरह से छिन्न-भिन्न हो गया। बिहार में लगभग दो सप्ताह तक मुंगेर का बाहरी दुनिया के साथ सब प्रकार का सम्पर्क कटा रहा। जहाँ तक रेलों की अव्यवस्था का प्रश्न है, सबसे अधिक गड़बड़ बिहार में रही। अहमदाबाद में सभी मिलें बन्द रहीं, लेकिन बम्बई में केवल तीन-चार मिलें ही बन्द रहीं। म्युनिसिपैलिटियों के असंख्य बिजली के बल्व, आग बुझाने के केन्द्र और म्युनिसिपैलिटियों के छकड़े चकनाचूर कर दिये गये। बी० बी० एण्ड सी० आई० के दादर रेलवे स्टेशन के पास ९ अगस्त को एक कार को अग्नि की भेंट कर दिया गया। ९ अगस्त को बी० बी० एण्ड सी० आई० और जी० आई० पी० रेलों की सभी गाड़ियां लगभग एक घण्टे तक पूरी तरह बन्द रहीं। सरकार ने इस गड़बड़ का डट कर मुकाबला किया। गड़बड़ शुरू होने के दूसरे दिन १० अगस्त को बम्बई में पुलिस और सेना को सुबह १० बजे से लेकर शाम के ४ बजे तक लगभग १० बार भीड़ पर गोली चलानी पड़ी। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ९ अगस्त, रविवार के दिन बम्बई-नगर के उपद्रवों में ९ व्यक्ति मारे गए और १६९ घायल हुन जिनमें २७ पुलिस के सिपाही भी थे। ११ अगस्त मंगलवार के दिन पुलिस ने सुबह से लेकर दोपहर के २-३० बजे तक बम्बई में लगभग १३ बार गोली चलाई। इसी प्रकार १० अगस्त तक पुलिस ने पूना, अहमदाबाद, लखनऊ और कानपुर में भी गोली चलाई। उत्तर प्रदेश की सरकार ने एक आर्डिनेन्स लागू किया जिसके अन्तर्गत यह ऐलान किया गया कि आग लगाने या किसी विस्फोटक द्वारा शरारत फैलाने पर किसी भी व्यक्ति को अपराधी घोषित किया जा सकेगा और उसे ताजीरात हिन्द के अन्तर्गत दी जाने वाली साधारण सजा के अलावा कोड़े लगाए जाने की भी सजा दी जा सकेगी। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति ऐसी किसी इमारत, मोटर-गाड़ी, मशीन इत्यादि को नुकसान पहुँचाएगा, जो सरकारी कार्य के लिए इस्तेमाल की गई हो अथवा की जाने वाली हो, अथवा किसी रेलवे स्टेशन, ट्राम, सड़क, पुल, नहर इत्यादि को नुकसान पहुंचाएगा अथवा बलात्कार करेगा,

किसी इमारत में चोरी करेगा या डाकेजनी करेगा तो उसे भी अपराधी घोषित कर दण्ड दिया जा सकेगा। मध्य-प्रान्त में स्थानीय संस्थाओं को कांग्रेस के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए भंग कर दिया गया और इसी आधार पर दूसरे प्रान्तों में भी ऐसा किया गया। पुलिस ने पूना, नयी दिल्ली और नासिक में भी गोली चलाई। रेलवे स्टेशनों, इन्कमटैक्स के दफ्तरों, स्कूल और कालेज की इमारतों, डाकखानों और रेल के मालगोदामों में आमतौर पर आग लगाई गई। बिहार में एक भीड़ ने सेक्रेटेरियट पर हमला करने की कोशिश की। इस पर गोरखा सैनिकों ने गोली चलाई, जिससे पांच आदमी मारे गए और १९ घायल हुए। सरकार की अराजकता के विरोध स्वरूप बिहार और बम्बई के एडवोकेट जनरलों तथा बम्बई के सरकारी वकील ने अपने पदों से इस्तीफ़ा दे दिया।

बम्बई-शहर में यतायात रोक दिया गया। यहां तक कि प्राइवेट कारों को भी तब तक नहीं गुजरने दिया गया जब तक कि उसमें बैठी हुई सवारियों में कम-से-कम किसी एक ने गांधी टोपी न पहनी हो। ट्राम-पटरियों को बारीक पत्थरों से पाट दिया गया, जिन्हें आसानी से नहीं हटाया जा सकता था। सड़कों के जंकशनों पर लटकी हुई जंजीरों को खोल कर उनके साथ ट्रामों को बाँध दिया गया और उनके मार्ग में कहीं से लाकर बड़े-बड़े दरवाजे गाड़ दिये गए, जिनके कारण ट्रामों का चलना और भी कठिन हो गया। यह भी पता चला कि रेल की पटरियों पर तेल आदि लगा कर उन्हें पूरी तरह से चिकना कर दिया गया।

सी० पी० रामस्वामी का इस्तीफा

अभी इन घटनाओं को हुए तीन सप्ताह भी पूरे नहीं हुए थे कि भारत में और भी घटनाएं हुईं, जिनपर हम विचार करना आवश्यक समझते हैं। इस सम्बन्ध में सब से अधिक उल्लेखनीय घटना वाइसराय की शासन-परिषद् से सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर का इस्तीफा था। उन्होंने ५ सितम्बर को अपना पद संभाला था। शासन-परिषद् की बैठक में जब वह पहली बार ही शामिल हुए तब उन्हें गांधीजी और कार्यसमिति की गिरफ्तारी से सम्बन्ध रखने वाली इस नीति पर सोच-विचार करना पड़ा कि क्या इन लोगों को अखिल भारतीय महासमिति की बैठक से पहले गिरफ्तार कर लिया जाय अथवा बाद में? उस समय परिषद् के सम्मुख एकमात्र विचारणीय विषय यही था। सरकार ने आन्दोलन को कुचल देने के सम्बन्ध में पहले से ही कानून और आर्डिनेन्स तैयार कर लिए थे। सर सी० पी० ने स्वेच्छा से सूचना विभाग को चुना था और अपना पद संभालने से पहले उन्होंने अपने कर्तव्यों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला था। उन्होंने यह आशा भी प्रकट की थी कि मैं गांधीजी से मिल कर समझौता करने की चेष्टा करूँगा। लेकिन यह सब निष्फल रहा। गृह-विभाग ने सर सी० पी० के विचारों को पहले ही

भाँप लिया था और उसने उनके पद सँभालने से पहले ही सूचना-विभाग के कार्य-क्षेत्र को संकुचित और सीमित बनाकर अपने फैसले कर लिए थे। इसलिए सर सी० पी० आते ही दुविधा में पड़ गए। परन्तु शिष्टाचार का तकाजा था कि वह जल्दबाजी से काम न लें। फलतः १५ दिन के बाद यह बहाना बनाया गया कि रियासतों के हितों को देखते हुए उनका सरकारी पद पर बने रहना उचित और लाभकारी प्रतीत नहीं होता। हिमालय की चोटी पर बैठने की बजाय उनकी आवश्यकता कुमारी अन्तरीप में अधिक है। इसलिए उन्होंने ट्रावन्कोर वापस चले जाने का फैसला किया, परन्तु इसके लिए कोई वजह भी तो चाहिए थी। इसलिए इस सम्बन्ध में उन्होंने अपनी ओर से जो वक्तव्य दिया और सरकार ने अपनी ओर से जो विज्ञप्ति प्रकाशित की, उन दोनों में ही वास्तविकता पर पर्दा डालने की कोशिश की गई।

महादेव देसाई की मृत्यु

जहां एक तरफ सरकार की मनमानी और हिंसात्मक कार्रवाइयों के कारण समाज के परेशान करने वाले तत्व प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की भावना से प्रेरित हो कर उसका मुकाबला कर रहे थे और सार्वजनिक सुरक्षा-व्यवस्था के लिए खतरा पैदा कर रहे थे, वहां दूसरी तरफ आगा ख़ाँ महल में नजरबन्द गांधीजी तथा उनके सहयोगियों और कार्यसमिति के सदस्यों के, जिन्हें किसी अज्ञात स्थान में नजरबन्द रखा गया था, स्वास्थ्य के बारे में गहरी चिन्ता प्रकट की जा रही थी। इसके अलावा जनता को इस बात से भी गहरी चिन्ता हो रही थी कि क्या गांधीजी अनशन करेंगे, जैसा कि उन्होंने अपनी गिरफ्तारी से पहले ऐसा करने की घोषणा की थी। और अगर कहीं उन्होंने अनशन किया तो उसका क्या परिणाम होगा? इस प्रकार जब कि देश भर में इस संबंध में गहरी चिन्ता प्रकट की जा रही थी, श्री महादेव देसाई के अचानक निधन का समाचार प्राप्त हुआ। इन गिरफ्तारियों को हुए अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि देश पर ऐसा गहरा वज्रपात हुआ।

अमरीका में प्रतिक्रिया

यदि अगस्त १९४२ का आन्दोलन और गांधीजी तथा कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी लड़ाई के शुरू में हुई होती तो निस्संदेह अमरीका में उसकी प्रतिक्रिया उस प्रतिक्रिया से सर्वथा विभिन्न होती जो वास्तव में हुई। कारण यह है कि ज्यों-ज्यों लड़ाई ने ज़ोर पकड़ा, अमरीका ने ब्रिटेन के साथ अपने आर्थिक सम्बन्ध फिर से स्थापित किए। लेकिन वह अभी तक पहली लड़ाई के अनुभव को नहीं भूला था। उसे मालूम था कि उस वक्त ब्रिटेन के और उसके आर्थिक सम्बन्ध कैसे थे और ब्रिटेन उसे उसका कर्ज अदा नहीं कर सका था। इसलिए इस बार उसने ब्रिटेन को

बड़ी कड़ी शर्तों पर माल देना मंजूर किया। पहले तो वह उसे "नक़द चुकाओ और माल उठाओ" के सिद्धांत पर माल देता रहा। लेकिन बाद में जब ब्रिटेन की अमरीका में लगाई हुई सिक्योरिटियां भी ख़त्म हो गईं तब उसने उधार-पट्टे की एक नयी प्रणाली निकाली। इस प्रणाली के परिणामस्वरूप ब्रिटेन और अमरीका में घनिष्ठ व्यापारिक और आर्थिक संपर्क स्थापित हो गया और पर्लहार्बर पर जापानी आक्रमण होने (७ सितम्बर, १९४१) तक उन दोनों की यह घनिष्ठता निरन्तर बढ़ती ही गई। परन्तु इस घटना के बाद से इन दोनों राष्ट्रों में न केवल ख़रीद और बिक्री और उधार-पट्टे की व्यवस्था ही चलती रही, बल्कि उनके उद्देश्यों, आदर्शों, हितों और कार्यक्रम में भी एकता और तारतम्य स्थापित हो गया। तात्पर्य यह कि १९३९-४० से १९४१ तक अमरीका कुछ हद तक ब्रिटेन पर अपना प्रभाव डालता रहा। यह प्रभाव ऐसा ही था जैसा कि एक दुकानदार का अपने गाहक, अथवा साहूकार का अपने कर्ज़दार या जमींदार का किसान पर होता है। लेकिन जब अमरीका लड़ाई के अखाड़े में कूद पड़ा तब उसकी भी गिनती बहुत से युद्धलिप्त राष्ट्रों में होने लगी। और लड़ाई से उसका भी उतना ही सम्बन्ध हो गया जितना ब्रिटेन का, क्योंकि जापान ने फिलिपाइंस पर अपना कब्जा कर लिया था और वह प्रशांत में विशेषकर न्यूब्रिटेन और न्यूगिनी तथा आस्ट्रेलिया के आस-पास के टापुओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर अमरीका पर आक्रमण करने की योजनाएं बना रहा था। इसलिए ऐसी हालत में यह सवाल ही नहीं उठ सकता था कि अमरीका भारत की वैधानिक प्रगति अथवा उसकी स्वतंत्रता के बारे में ब्रिटेन पर प्रभाव डालेगा, यद्यपि ब्रिटेन के विवेकशील व्यक्ति और भारत-स्थित अमरीका के पत्रकार यह आशा कर रहे थे। चाहे कुछ भी हो, कांग्रेस अपने इरादों और निर्णयों के बारे में अमरीका और चीन दोनों को ही सूचित कर देना अपना परम कर्तव्य समझती थी। यही वजह है कि बम्बई में अखिल भारतीय महासमिति की बैठक में गांधीजी, कांग्रेस के प्रधान और पंडित जवाहरलाल ने इन राष्ट्रों के अध्यक्षों को इस सम्बन्ध में पत्र लिखने की बात पर इतना जोर दिया था।

जहां तक सवाल ब्रिटिश सरकार का है वह अच्छी तरह जानती थी कि भारतीय समस्या का केन्द्र जहां एक ओर लन्दन के बजाय दिल्ली बनता जा रहा था, वहां दूसरी तरफ न्यूयार्क भी बन रहा था। इसी वजह से उसने अमरीका में आई० सी० एस० के एक योग्य व्यक्ति श्री बाजपेयी को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करना आवश्यक समझा। इस प्रकार लार्ड हेलीफेक्स अमरीका में ब्रिटेन के राजदूत और सर गिरजाशंकर बाजपेयी भारत-सरकार के हाई कमिश्नर नियुक्त हुए। लार्ड हेलीफेक्स ने अमरीकी जनता के सामने कांग्रेस को बदनाम करने की कोशिश की और ब्रिटेन तथा उसके एजेण्ट क्रिप्स के पक्ष का समर्थन किया। प्रत्यक्ष है कि ब्रिटेन इसी नीति पर आचरण करना चाहता था। परन्तु कांग्रेस को अपना

संदेश अमरीकन जनता तक पहुंचाने के लिए ब्रिटेन की उदारता, अमरीका की रियासतों में काम करने वाले कार्यकर्ताओं और भारत-स्थित अमरीकी संवाददाताओं की सद्भावना पर निर्भर रहना पड़ता था। पता चला है कि जब अमरीकी संवाददाता भी बम्बई-प्रस्ताव के सम्बन्ध में अपने संदेश और समाचार अमरीका न भेज सके तब उनमें से एक संवाददाता वायुयान-द्वारा चीन पहुंचा और वहां से उसने अपना संदेश अमरीका भेजा।

जिस प्रकार ब्रिटिश और भारत सरकार ने अपने-अपने प्रतिनिधि अमरीका भेजे—उसी प्रकार समय-समय पर उसके प्रतिनिधि भी भारत आते रहे। बम्बई-प्रस्ताव के पास होने के अगले दिन ही प्रधान रूजवेल्ट के एक और प्रतिनिधि श्री लौचलिन क्यूरी नयी दिल्ली में पधारे (९ अगस्त, १९४२) और पता चला कि उन्होंने वाइसराय के साथ बड़ी देर तक बातचीत भी की। उनके बाद श्री विलियम फिलिप्स आए। १९४२ की गर्मियों के प्रारम्भ में भारत-स्थित अमरीकी पत्र-प्रतिनिधियों में एक उल्लेखनीय व्यक्ति लुई फिशर भी थे, जो भारत में यद्यपि काफी देर तक रहे, फिर भी उन्होंने यहां रहते हुए अपने विचारों के सम्बन्ध में कोई बात प्रकट नहीं होने दी। लेकिन अमरीका पहुंच कर उन्होंने भारत के पक्ष में जोरदार आन्दोलन किया और भारत की समस्या को तर्क-संगत और निष्पक्ष भाव से अमरीकी जनता के समक्ष उपस्थित किया। जुलाई १९४२ में जब वह भारत से अमरीका के लिए रवाना हुए तब अपने साथ प्रधान रूजवेल्ट के लिए गांधीजी का एक संदेश भी लेते गए और उसे अमरीका के राष्ट्रपति के पास पहुंचा दिया। इसमें गांधीजी ने प्रधान रूजवेल्ट से प्रार्थना की थी कि भारत की स्वतंत्रता की मांग के सम्बन्ध में जो गतिरोध पैदा हो गया है उसे दूर करने के लिए आपको मध्यस्थ बनना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्यवश वह १३ अप्रैल, १९४५ को अपनी इहलीला समाप्त कर परलोक सिधार गए।

इसके बाद से नौ महीने से भी अधिक समय तक एक तरफ ब्रिटिश सरकार और भारत-सरकार और दूसरी ओर प्रमुख पत्रकारों और प्रचारकों में भारतीय समस्या के बारे में अमरीकी जनमत को शिथिल करने और अमरीका के प्रधान को प्रभावित करने की जोरदार होड़ लगी रही। भारत से इंगलैण्ड वापस जाने के कुछ समय बाद ही सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने 'न्यूयार्क टाइम्स' में एक लेख लिखा और इसी प्रकार एक और प्रसिद्ध अमरीकी संवाददाता श्री एडगर स्नो ने भी भारत के पक्ष में बहुत से लेख लिखे। दिसम्बर १९४२ के प्रारम्भ में श्री लुई फिशर ने भारत के बारे में स्वयं अमरीका में जो भाषण दिये उनके कारण उस देश में ब्रिटेन के एजेण्टों और उसके राजदूत ने जो भ्रमजाल फैलाया था उसका सारा रहस्य खुल गया और जनता के सामने भारत की वास्तविक स्थिति उपस्थित हो गयी। अमरीका की प्रसिद्ध पत्रिका 'एटलांटिक मैगजीन' ने लिखा—"भारतीय समस्या

को हल करने का एक रचनात्मक तरीका यह है कि मित्रराष्ट्र संयुक्त रूप से यह घोषणा कर दें कि यदि लड़ाई में उनकी जीत हुई तो उनका उद्देश्य क्या होगा। भारत की समस्या साधारण समझौते का ही एक अंग होना चाहिए।"

सिर्फ अमरीका में ही ऐसे विचार नहीं प्रकट किये गए बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य के स्वाधीनता-प्राप्त उपनिवेश कैनेडा के एक प्रमुख राजनीतिक दल 'कोआपरेटिव कामनवेल्थ फेडरेशन' ने भी अपने यहां के प्रधान मंत्री श्री मेकेंजी किंग से आग्रह किया कि वह मित्रराष्ट्रों के द्वारा "इस समय और युद्ध के बाद भारत में स्वायत्त सरकार की स्थापना" के लिए फिर से समझौते की बातचीत शुरू करने पर जोर दें। इस प्रकार बम्बई-प्रस्ताव के बाद नेताओं की गिरफ्तारी को अभी मुश्किल से दो ही महीने हुए होंगे कि अक्टूबर, १९४२ में अमरीका में भारत के पक्ष में एक जोरदार लहर दौड़ गई। नोबेल-पारितोषिक-विजेता श्रीमती पर्ल बक और प्रसिद्ध चीनी लेखक लिन युतांग ने भी भारत के पक्ष में अपनी जोरदार लेखनी उठाई। इनके अलावा जगह-जगह पर श्री वेंडेल विल्की ने ब्रिटेन और अमरीका दोनों की ही टीका-टिप्पणी की। इन आलोचनाओं का सभ्य संसार पर बहुत अधिक असर पड़ा। इन्हीं दिनों न्यूयार्क में 'फ्री वर्ल्ड एसोसियेशन' के तत्वावधान में 'फ्री वर्ल्ड कांग्रेस' का एक अधिवेशन हुआ। एसोसियेशन की ओर से एक भोज दिया गया। इस अवसर पर अमरीका के उप-प्रधान श्री वालेस ने एक अत्यन्त विवेकयुक्त और दूरदर्शितापूर्ण भाषण दिया, जिसका मुख्य विषय, "जन क्रांति" अथवा "साधारण व्यक्ति का देश" था। कहा जाता है कि इस भाषण के परिणामस्वरूप अमरीका और विदेशों में न केवल संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्यों के प्रति बल्कि साधारण मानव के अधिकारों के प्रति भी गहरी दिलचस्पी और जाग्रति पैदा हो गई।

अमरीका की विभिन्न रियासतों के भूतपूर्व गवर्नरों, राष्ट्रपति-पद के उम्मीदवारों और उस महान् प्रजातंत्र के उप-प्रधानों ने ही भारत और प्रशान्त के देशों के पक्ष का समर्थन नहीं किया, बल्कि अमरीका के मजदूरों ने भी उन्हें सामयिक सहायता प्रदान की। अमरीका के शक्तिशाली मजदूर संगठन—औद्योगिक संघ कांग्रेस ने बोस्टन में अपने वार्षिक सम्मेलन में एकमत से भारत की आजादी की मांग का समर्थन करते हुए एक प्रस्ताव पास किया। बोस्टन, शिकागो, न्यूयार्क, वाशिंगटन, मेक्सिको और कैनेडा सभी जगह भारतीय प्रश्न की चर्चा हुई। फिलिपाइंस राष्ट्र-मण्डल में नवम्बर, १९४२ में वार्षिकोत्सव के अवसर पर प्रधान रूजवेल्ट ने पहली बार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घोषणा की जिससे अटलांटिक अधिकार-पत्र की कुछ अस्पष्ट धाराओं के सम्बन्ध में अमरीका के इरादों पर प्रकाश पड़ा।

इस प्रकार इन बड़े-बड़े प्रश्नों को अपने गर्भ में लिए १९४२ समाप्त हुआ और

१९४३ का श्रीगणेश हुआ। नये वर्ष के प्रारंभ में २६ जनवरी को अमरीका के कई शहरों में भारतीय-स्वाधीनता-दिवस मनाया गया। इस साल न्यूयार्क और वाशिंगटन दोनों ही शहरों में इस अवसर पर प्रदर्शन किये गये। इस अवसर पर कुछ बड़े-बड़े प्रोफ़सरों ने भारतीय समस्या के बारे में अपने स्वतन्त्र और निर्भीक विचार जनता के सामने रखे। प्रोफ़ेसर फ्रेडरिक समन ने 'दि टाइम' नामक पत्रिका में "भारत को बचाने के लिए" शीर्षक से एक लेख में लिखा—"भारत इस बात की कसौटी है कि क्या हममें जीवित रहने की सामर्थ्य है।" हारवर्ड यूनिवर्सिटी के एक प्रोफ़ेसर और हारवर्ड-रक्षा-दल के प्रधान श्री राल्फ बार्टन पेरी ने अमरीका के स्थायी असिस्टेण्ट सेक्रेटरी श्री सुमनर वेल्स को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने भारतीय गतिरोध को दूर करने में अमरीका की असफलता और हस्तक्षेप न करने की नीति की आलोचना की। प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर वाल्टर फेल्पो हाल ने 'करेण्ट हिस्ट्री' पत्रिका में अपने एक लेख में इस बात पर जोर दिया कि भारत में जो-कुछ हो रहा है उससे केवल अकेले ब्रिटेन ही नहीं, बल्कि सभी संयुक्त राष्ट्रों का घनिष्ट संपर्क है। उन्होंने लिखा कि "उनके नाम पर एक तरफ ब्रिटेन को अपना वाइसराय भारत से बुला लेना चाहिए, कांग्रेस-दल के साथ फिर से समझौता करना चाहिए और अमरीका तथा चीन के एक पंचायती बोर्ड की सहायता से इस समस्या का हल ढूँढ़ना चाहिए और दूसरी तरफ भारत से कहना चाहिए कि वह अपने असहयोग-आन्दोलन को बन्द कर दे, युद्धकाल तक के लिए उपर्युक्त पंचायती-बोर्ड का फैसला मान ले और सैनिक और गैर-सैनिक सभी तरीकों से जापानियों को वर्मा और चीन से मार भगाने में कोई कसर न उठा रखे।" आगे आपने कहा कि "भारतीय लोग प्रतिदिन अधिकाधिक ब्रिटिश-विरोधी बनते जा रहे हैं, लेकिन उसका मतलब यह नहीं कि वे जापानियों के हामी या पक्षपाती भी बनते जा रहे हैं। उन्हें ब्रिटेन की सद्‌भावना में जो थोड़ा-बहुत विश्वास था, उसे भी वे अब खोते जा रहे हैं। भारत की इस उदासीनता और बेरुखी से युद्ध-प्रयत्न में बाधा पहुँचती है।"

भारत में रूज़वेल्ट के निजी दूत श्री फिलिप्स ने मुस्लिम लीग के मन्त्री और बाद में उसके अध्यक्ष, हिन्दू महासभा के कुछ व्यक्तियों, कुछ बड़े-बड़े सार्वजनिक व्यक्तियों, कुछ निर्दलीय नेताओं तथा सिखों, हरिजनों और भारतीय ईसाइयों के प्रतिनिधियों से मुलाकात की। वह निस्संदेह एक कूटनीतिज्ञ थे। भारतीय समस्या के बारे में वह अपने विचारों को संकेतमात्र भी प्रकट नहीं होने देते थे। केवल एक ही बार उन्होंने अपने इस नियन्त्रण को कुछ ढीला किया। गांधीजी के उपवास के शुरू में ही (१० फरवरी, १९४३ को) उन्होंने अपना निर्धारित दौरा स्थगित कर दिया और इसी उपवास के दौरान में जो ३ मार्च को समाप्त हुआ, श्री फिलिप्स ने इसके फलस्वरूप पैदा होनेवाली स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न किये जाने पर कहा कि

"भारतीय स्थिति के विभिन्न पहलुओं पर अमरीका और ब्रिटेन के बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी सोच-विचार कर रहे हैं।"

प्रशान्त-सम्मेलन में प्रतिक्रिया

इस प्रकार ज्यों-ज्यों समय गुजरता गया, भारत के सम्बन्ध में अमरीका की दिलचस्पी घटने के बजाय बढ़ती ही गई और १९४२ में भारत के सम्बन्ध में अमरीका में 'अमेरिकन राउण्ड टेबल' नाम से एक नये राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई। इस संगठन ने २९ अक्टूबर, १९४३ को प्रधान रूजवेल्ट से आग्रह किया कि वह भारत और ब्रिटेन में समझौता कराने की कोशिश करें।

चीन में प्रतिक्रिया

दूसरे महायुद्ध का एक प्रत्यक्ष और तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि भारत और चीन एक-दूसरे के बहुत निकट-संपर्क में आ गए। सितम्बर, १९३८ में पंडित जवाहरलाल नेहरू की चुंगकिंग-यात्रा और १९४२ में मार्शल और श्रीमती चांगकाई शेक की भारत-यात्रा के फलस्वरूप विश्व के दो बड़े-बड़े एशियाई राष्ट्रों की संस्कृति और अकांक्षाओं को एकता के सूत्र में नये सिरे से बांधने में बड़ी सहायता मिली। चीनियों ने भारत की मांग का समर्थन किया। गांधीजी की गिरफ्तारी के तीन दिन बाद १२ अगस्त को चुंगकिंग के एक सन्देश में कहा गया—"गांधीजी की गिरफ्तारी, उपद्रवों और रक्तपात का समाचार जानकर यहां बहुत शोक हुआ है। मौजूदा लड़ाई के पीछे तो यह भावना काम कर रही है कि आजादी के लिए लड़ी जानेवाली लड़ाई पर किये गए आक्रमण का डट कर प्रतिरोध किया जाए। इसके बिना मौजूदा लड़ाई एक बेमानी चीज है। भारत की आजादी की लड़ाई संयुक्त-राष्ट्रों के युद्ध-उद्देश्यों के सर्वथा अनुरूप है और इसलिए कोई वजह नहीं कि हम भारत के प्रति सहानुभूति क्यों न प्रकट करें।"

दक्षिण अफ्रीका में प्रतिक्रिया

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी ने सत्य और अहिंसा संबंधी अपने प्रारम्भिक परीक्षण किय थे, और बाद में उन्होंने इन्हीं परीक्षणों को राष्ट्रीयता और विश्व-जातीयता की बड़ी-बड़ी समस्याओं को हल करने के लिए भारत में एक विशाल पैमाने पर कार्यान्वित किया था। जनरल स्मट्स उनसे परिचित थे। लन्दन के एक पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन में भारतीय पत्रकारों को जवाब देते हुए उन्होंने कहा, "गांधीजी को 'पंचमांगी' कहना महज एक बेवकूफी है। वह एक महान् व्यक्ति हैं। वह संसार के एक महापुरुष हैं और उन्हें इस तरह की श्रेणी में किसी सूरत में भी नहीं रखा जा सकता। वह आध्यात्मिकता के आदर्शों में रंगे हुए हैं।

यह सन्देहास्पद हो सकता है कि क्या हमारी इस कठिन दुनिया में उन आदर्शों पर हमेशा अमल किया जा सकता है; लेकिन इसमें तो किसी को कोई सन्देह हो ही नहीं सकता कि गांधीजी एक महान् देशभक्त, महापुरुष और एक महान् आध्यात्मिक नेता हैं।"

ब्रिटेन में प्रतिक्रिया

भारत-मन्त्री श्री एमरी ने लन्दन में तुरन्त ही दो ब्राडकास्ट-भाषण दिये। एक भाषण उन्होंने ९ अगस्त, १९४२ को ब्रिटेन के लोगों के नाम और दूसरा १० अगस्त को अमरीका के लोगों के नाम ब्राडकास्ट किया। अपने पहले ब्राडकास्ट में श्री एमरी ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स के मिशन का हवाला देते हुए कहा कि भारत के उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रबन्ध और युद्ध-प्रयत्न में भाग लेने की बातचीत मुख्यत: कांग्रेस-नेताओं के दुराग्रह अथवा "सब कुछ दीजिए या कुछ भी नहीं" वाले रुख के कारण असफल हो गई। आगे आपने कहा कि ब्रिटेन के प्रस्तावों को ठुकरा देने का परिणाम यह हुआ है कि उससे भारतीय लोकमत अत्यधिक निराश हुआ है और कांग्रेस के नेतृत्व में उसका विश्वास बुरी तरह से उठ गया है।

भारत की घटनाओं के बारे में ब्रिटेन की जनता और विभिन्न हलकों की प्रतिक्रियाएं भिन्न-भिन्न थीं। वहां के न केवल सरकारी और गैर-सरकारी हलकों की प्रतिक्रियाएं ही एक-दूसरे के विपरीत थीं, बल्कि समाचार-पत्रों में भी मतैक्य न था। इस युग के प्रारंभिक-काल में लन्दन के सुप्रसिद्ध पत्र 'टाइम्स' का रुख बिल्कुल असाधारण रहा। उसने अपनी परंपरा को तिलांजलि देकर सत्य की खोज और इस मामले के पक्ष-विपक्ष के सम्बन्ध में निष्पक्ष जांच-पड़ताल करने पर जोर दिया। 'मांचेस्टर गार्जियन' की भांति उसने भी तत्कालीन सरकार की सर्वतोमुखी दमन-नीति का समर्थन न कर युगों से चली आने वाली दमन और समझौते की दुहरी नीति का प्रतिपादन किया। उसने लिखा कि "किसी रचनात्मक नीति के बिना दमन-नीति युद्ध और शान्ति दोनों ही में असफल और बेकार साबित होगी। इतना ही नहीं, वह उससे कहीं अधिक खतरनाक भी साबित हो सकती है। 'मांचेस्टर गार्जियन' ने ब्रिटेन, गैर-कांग्रेसी भारतीयों और मित्रराष्ट्रों से भी अनुरोध किया कि आप हमें इस झगड़े को निबटाने में मदद दें जिसकी वजह से हम सभी को नुकसान पहुंच रहा है। ब्रेलसफोर्ड-जैसे सुप्रसिद्ध लेखक ने 'रेनाल्ड्स न्यूज' और श्री लियोनल फील्डन ने 'आब्ज़र्वर' में लिखे गए अपने लेखों में यह सुझाव रखा कि "गांधीजी को विंडसर अथवा चेकर्स में अतिथि के रूप में आमंत्रित कर सरकार को उनसे समझौता कर लेना चाहिए।" इनके अलावा कलकत्ता के बिशप और भारत के लाट-पादरी डा० फौस वेस्टकॉट ने भी ब्रिटिश सरकार से कांग्रेस के साथ समझौता कर लेने का जोरदार आग्रह किया। लाट-पादरी ने इस

बात पर ज़ोर दिया कि कांग्रेस के नेताओं के अन्तिम वक्तव्यों में अब भी समझौता करने की 'दृढ़ भावना' पाई जाती है । आपने आगे कहा कि "दमन-नीति के परिणामस्वरूप सरकार को समझौते की कोशिशों को नहीं छोड़ देना चाहिए । स्वयं कांग्रेस के भीतर ऐसे शक्तिशाली तत्व मौजूद हैं जो युद्ध-प्रयत्न में सक्रिय रूप से भाग लेने और मित्रराष्ट्रों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम करने के पक्ष ही हैं। इस वक्त सभी को समान रूप से युद्ध-प्रयत्न के लिए संगठित करने का एक में तरीका है कि देश के राजनीतिक दलों के वास्तविक नेताओं को एक ऐसी शासन-परिषद् स्थापित करने के लिए कहा जाय जिसे वास्तविक अधिकार प्राप्त हों ।" १२ अगस्त, १९४२ को ब्रिटेन के मज़दूर-दल ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें उसने कहा—बरसों लेबर-पार्टी का यह सुनिश्चित मत और दृढ़ धारणा है कि भारतीयों को स्वभाग्य-निर्णय का पूर्ण अधिकार है । अब ब्रिटिश सरकार और पार्लमेण्ट ने भी स्पष्ट रूप से भारतीयों के इस अधिकार को मान लिया है । मज़दूर दल को यक़ीन है कि युद्धोत्तर-कालीन संसार में स्वतंत्र भारत की स्थापना निश्चित है और इस सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार-द्वारा किसी प्रकार के विलम्ब या टालमटोल की नीति की सम्भावना नहीं है ।

एबरडीन में ७ सितम्बर को श्री एटली ने अपने एक भाषण में कहा कि भारतीय समस्या के समाधान में हमने बहुत-सी गलतियां की हैं, लेकिन हमने एक शताब्दी से भी अधिक समय तक भारत में आन्तरिक शांति और अच्छे शासन-प्रबन्ध को बनाए रखा है और पिछले पचीस साल में भारत ने स्वराज्य की प्राप्ति के लिए बड़ी भारी प्रगति की है । इस दिशा में और प्रगति इसलिए नहीं हो सकी कि एक तो भारतीयों में आपस में कोई समझौता नहीं हो पाया और दूसरे ३० करोड़ की आबादीवाले देश में प्रजातंत्र की स्थापना में काफी कठिनाइयां हैं।

सितम्बर में जब पार्लमेण्ट का अधिवेशन हुआ तब श्री चर्चिल ने भारत के बारे में एक वक्तव्य दिया जो उनके पिछले सभी वक्तव्यों से बाजी ले गया। उन्हें भारत, कांग्रेस अथवा गांधीजी से कोई विशेष प्रेम नहीं था। उनका एकमात्र उद्देश्य गांधीवाद को धराशायी कर पैरों-तले कुचल देना था । १० सितम्बर १९४२ को उन्होंने कहा—"कांग्रेस पार्टी के सिवा और जिन लोगों का उससे बुनियादी मतभेद है वे ब्रिटिश-भारत के ९ करोड़ मुसलमान हैं (इस अवसर पर एक सदस्य ने कहा, 'यह एक बेहूदा बात है' और इस पर 'शान्ति, शान्ति' की आवाजें सुनाई दीं) जिन्हें आत्मनिर्णय का पूरा-पूरा हक है। इसके अलावा दलितवर्ग अथवा ५ करोड़ 'अछूत'—जिन्हें अछूत इसलिए समझा जाता है कि उनके स्पर्शमात्र से उनके धर्म-बन्धु हिन्दुओं का धर्म भ्रष्ट हो जाता है, और देशी नरेशों की ९।। करोड़ जनता, जिनके साथ हमने संधियां कर रखी हैं, कांग्रेस की विरोधी हैं और उनका उससे किसी किस्म का कोई संबंध नहीं है। इस प्रकार

भारत की कुल ३९ करोड़ की आबादी में से केवल इन तीन वर्गों की २३ करोड़ ५० लाख जनता ही उसके विरुद्ध है। इसके अलावा इसमें ब्रिटिश भारत के हिन्दुओं, सिक्खों और ईसाइयों के बहुत-से वे वर्ग शामिल नहीं हैं, जिनका कांग्रेस की वर्तमान नीति से विरोध है। यह जरूरी है कि हमें ब्रिटेन में और दूसरे देशों में इन मुख्य तथ्यों की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इस आधार-भूत तथ्य के बिना भारतीय समस्या अथवा ब्रिटेन और भारत के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करना संभव नहीं है। अब कांग्रेस बहुत-सी बातों में गांधीजी की अहिंसा को तिलांजलि देकर खुले रूप में एक क्रान्तिकारी आन्दोलन की शक्ल में प्रकट हुई है। उसके इस आन्दोलन का उद्देश्य यातायात के साधनों—रेल और तार आदि को पंगु बना देना और साधारणतः अव्यवस्था फैलाना, दुकानें लूटना तथा पुलिस पर हमले और क्रूरता पूर्ण अत्याचार करना है। इस सारे कार्यक्रम का मकसद अथवा उसका परिणाम भारत पर जापान के आक्रमण के खिलाफ देश की रक्षा-व्यवस्था के मार्ग में अड़चन पैदा करना है।

"अतः गांधीजी और दूसरे बड़े-बड़े नेताओं को नजरबन्द कर लिया गया है और उन्हें हर किस्म की सहूलियतें और आराम पहुँचाने की कोशिश की गई है। जब तक यह संकट दूर नहीं हो जाता उन्हें जेल में ही रखा जाएगा। वास्तव में यह बड़े सौभाग्य की बात है कि लड़ाकू जातियों के ऊपर कांग्रस का कोई प्रभाव नहीं है, क्योंकि ब्रिटिश फौजों के अलावा हिन्दुस्तान के बचाव की मुख्य जिम्मेदारी इन्हीं जातियों पर है। इनमें से बहुत-सी जातियों का हिन्दू-कांग्रेस से गहरा मत-भेद है और वे यह कभी भी गवारा नहीं करेंगी कि कांग्रेस उन पर हुकूमत करे अथवा उन्हें उनकी मर्जी के खिलाफ इस तरह से गुलाम बनाया जाय।"

आगे श्री चर्चिल ने कहा—"भारत में अनिवार्य सैनिक सेवा अथवा भर्ती नहीं है, लेकिन फिर भी दस लाख से भी ज्यादा भारतीय इस विश्व-युद्ध में संयुक्त-राष्ट्रों की मदद के लिए स्वेच्छा से शामिल हुए हैं। भारतीय सैनिकों ने लड़ाई के विभिन्न अखाड़ों में अपनी बहादुरी के जौहर दिखाए हैं और यह बड़े संतोष की बात है कि इन पिछले दो महीनों में, जब कि कांग्रेस भारत-सरकार के खिलाफ अपनी शक्ति का संगठन करती रही है, १,४०,००० से भी अधिक नये रंगरूट स्वेच्छा से सेना में भरती हुए हैं और उन्होंने सम्राट् के प्रति वफादारी की शपथ ली है। इस तरह अपने देश की रक्षा के लिए उन्होंने पिछले सब रेकार्ड तोड़ दिये हैं। अब तक जो कुछ भी हुआ है उससे तो यही साबित होता है कि कांग्रेस भारतीय सेना को उसके कर्तव्य-पथ से विमुख करने में असफल रही है। वह उसे अपने मायाजाल से प्रभावित नहीं कर सकी है। इतना ही नहीं, भारतीय सरकारी अफसरों अथवा स्वयं भारतीय जनता को प्रभावित करने में भी वह बुरी तरह अस-फल रही है।

"३९ करोड़ जनता का संपूर्ण शासन-प्रबन्ध स्वयं भारतीयों के ही हाथों में है और भारतीय सिविल सर्विस में अंग्रेजों की संख्या ६०० से भी कम है। सभी सार्वजनिक सर्विसें इस समय अपना काम कर रही हैं। पांच प्रान्तों में, जिनमें दो सबसे बड़े प्रान्त भी शामिल हैं और जिनकी आबादी ११ करोड़ है, धारासभाओं के प्रति उत्तरदायी प्रान्तीय मंत्रिमंडल काम कर रहे हैं। शहरों और देहातों के बहुत-से स्थानों में जनता ने नागरिक अधिकारियों का हाथ बँटाया है।

"यातायात के साधनों को काट देने से संबंध रखनेवाला कांग्रेस का विद्रोह अब असफल होता जा रहा है। आग लगाने और लूटमार की कार्रवाइयों को दबाया जा रहा है और जानमाल का बहुत ही कम नुकसान हुआ है। इतने विशाल और विस्तृत देश में ५०० से भी कम जानें गई हैं और नागरिक अधिकारियों की सहायता के लिए ब्रिटिश-सेना के केवल थोड़े से ब्रिगेड ही इधर-उधर भेजने पड़े हैं। अधिकांश जगह भारतीय जनता ने बलवाइयों की खूब खबर ली है और उन पर काबू पा लिया है।

"मुझे पूरा यकीन है कि यह सभा चाहेगी कि मैं बहादुर भारतीय पुलिस और भारतीय सरकारी वर्ग के प्रति, जिनका व्यवहार साधारणतः बड़ा प्रशंसनीय रहा है, उनकी दृढ़ता और राजभक्ति के लिए आभार प्रकट करूं। संक्षेप में, सबसे बड़ी और उल्लेखनीय बात, जोकि कांग्रेस के इस हिंसात्मक आन्दोलन से स्पष्ट हुई है, यह है कि कांग्रेस देश का प्रतिनिधित्व नहीं करती; वह एक कमजोर जमात है और वह देश के साधारण जीवन को व्यवस्थित करने में नाकामयाब रही है।

"इस सम्बन्ध में मैं आपको यह बता दूं कि बहुत-सी सेनाएं भारत पहुंच गई हैं और इस वक्त उस देश में श्वेत सैनिक इतनी बड़ी संख्या में मौजूद हैं, जितने पहले कभी नहीं रहे, यद्यपि देश की विशालता और भारी जनसंख्या को देखते हुए वे अब भी बहुत थोड़े हैं। इसलिए मैं इस सभा को सूचित कर देना चाहता हूं कि भारत की मौजूदा स्थिति से हमें अनुचित रूप से घबराना या निराश होना नहीं चाहिए।"

२९ सितम्बर को लन्दन में युद्ध की परिस्थिति का सिंहावलोकन करते हुए श्री एमरी ने कहा, "किसी भी दल-द्वारा लादा गया विधान कभी टिक नहीं सकता, लेकिन गांधीजी और कांग्रेस के संगठन का नियंत्रण करनेवाले उनके मुट्ठीभर साथियों का असली मकसद यही है। इसी मकसद को हासिल करने के लिए उन्होंने हाल में बड़े पैमाने पर तोड़-फोड़ का आन्दोलन शुरू करने का फैसला किया था और इस तरह वे भारत-सरकार से घुटने टिकवा लेना चाहते थे। उससे न केवल तात्कालिक युद्ध-प्रयत्न के लिए भारी खतरा पैदा हो जायगा, बल्कि भारत की भावी स्वतन्त्रता और एकता भी खतरे में पड़ जायगी।"

इंग्लैण्ड और भारत में ही नहीं, बल्कि अमरीका और दूसरे मुल्कों में भी श्री चर्चिल के उक्त भाषण पर गहरा खेद प्रकट किया गया। पार्लमेण्ट के सदस्य श्री ऐलन और विरोधी-दल के नेता और भूतपूर्व मंत्री ग्रीनवुड ने प्रधान मंत्री के भाषण की आलोचना करते हुए उसे एक तरह से "उत्तेजनात्मक और विरोध-मूलक" बताया जिससे 'लाखों ही लोगों को धक्का' पहुँचेगा। चर्चिल के उक्त भाषण के सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए 'टाइम्स' ने अपने एक अग्रलेख में लिखा—"कांग्रेस सभी विवेकशील भारतीयों अथवा शायद उनके बहुमत का भी प्रतिनिधित्व नहीं करती। यद्यपि यह ठीक है कि केवल कांग्रेस के दृष्टिकोण का ख्याल करते हुए ही कोई समझौता करना संभव नहीं है तथापि यह भी उतना ही सही है कि उसकी उपेक्षा करके कोई समझौता नहीं हो सकता।" 'मांचेस्टर गार्जियन' ने लिखा कि "उन्होंने भारतीय स्थिति की कुछ ऐसी सहल बातों का, जिसका प्रचार अमरीका में हो चुका है, खण्डन किया है। यदि चर्चिल के वक्तव्य को अन्तिम वाक्य मान लिया जाय तो उससे न केवल ब्रिटेन, बल्कि मित्रराष्ट्रों को भी गहरी निराशा होगी।" इसी विषय को लेकर २८ सितम्बर को उसने फिर लिखा, "भारत के मामले में ब्रिटिश राजनीतिज्ञता की साख को धीरे-धीरे बट्टा लग रहा है। हम अमरीका और चीन को यह यकीन दिलाने में असफल रहे हैं कि हम अब तक अपने उदार विचारों पर दृढ़ बने हुए हैं। भारत में तो श्री चर्चिल के भाषण ने केवल घाव पर नमक छिड़कने का काम किया।" सायंकाल के समय प्रकाशित होने वाले दैनिक मुस्लिम पत्र 'स्टार आफ इंडिया' ने लिखा कि भारत में श्री चर्चिल के भाषण से इतना अधिक क्षोभ फैलेगा जितना कि उनके यह कहने पर भी नहीं फैला था कि अटलांटिक अधिकार-पत्र भारत पर लागू नहीं होगा, क्योंकि वह एक ऐसे कट्टर साम्राज्यवादी हैं, जिन्हें दूसरे देशों को स्वाधीन करने की अपेक्षा साम्राज्य में शामिल करने की अधिक लालसा और उत्सुकता रहती है।" 'अमृत बाजार पत्रिका' ने लिखा—"यह भाषण आदि से लेकर अन्त तक उत्तेजनापूर्ण है। इससे अराजकता को प्रोत्साहन मिलता है और यह भारत की प्रगतिशील शक्तियों को चुनौती है।" 'सिविल ऐन्ड मिलिटरी गजट' ने लिखा—"प्रत्येक वास्तविक राष्ट्रवादी और देशभक्त भारतीय यह कह सकता है और उचित रूप से कह सकता है कि भारत ने तो रोटी मांगी थी लेकिन उसके बदले में उसे मिला पत्थर। साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बहुत से राष्ट्रवादी भारतीयों के दिलों में ब्रिटेन के लिए अत्यधिक सम्मान और प्रेम है और वे मित्रराष्ट्रों की असंदिग्ध रूप से हार्दिक सहायता करना चाहते हैं। यह कहकर कांग्रेस को बदनाम करने या उसकी मान-प्रतिष्ठा घटाने की कोशिश करना कि केवल थोड़े से लोग ही उसके समर्थक हैं, सिवाय मूर्खता के और कुछ नहीं है।"

श्री चर्चिल ने गैर-कांग्रेसियों में ९ करोड़ मुसलमानों, ५ करोड़ अछूतों और

९।। करोड़ रियासती जनता की गिनती की थी। बेहतर होता, अगर इसमें वह उन १० करोड़ लोगों को भी शुमार कर लेते जो राजनीतिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं और इस तरह उन्हें तसल्ली हो जाती कि कांग्रेस के साथ केवल ५ करोड़ लोग हैं और इस प्रकार भारत के बारे में उनके दृष्टिकोण की निरर्थकता प्रमाणित हो जाती।

अक्तूबर १९४२ के अन्त में पार्लमेण्ट में भारत-विषयक बहस होने से पहले ही १० अक्तूबर को 'न्यू स्टेट्समैन ऐण्ड नेशन' ने भारतीय समस्या को सुलझाने के लिए वास्तविक कोशिश करने पर जोर देते हुए लिखा कि क्या भारत में गतिरोध को दूर करने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता? हमारी राय में अमरीका की मध्यस्थता के जरिये भारतीय समस्या को सुलझाने का प्रस्ताव ठुकरा कर हमने गलती की है। 'टाइम्स' ने लिखा कि ब्रिटिश सरकार को अपना प्रयास नहीं छोड़ना चाहिए और वाइसराय की शासन-परिषद् के उन पांच स्थानों पर भी जिन पर इस समय अंग्रेज हैं—भारतीयों को ही नियुक्त कर देना चाहिए। कठिनाई तो यह है कि कोई भी भारतीय जिसे अपने देशवासियों का विश्वास प्राप्त नहीं है अथवा जिसे किसी दल का समर्थन प्राप्त नहीं है, वाइसराय की शासन-परिषद में नहीं शामिल हो सकता और उसमें ऐसे भारतीयों को लेने से कोई लाभ नहीं जो सिवाय अपने किसी का भी प्रतिनिधित्व नहीं करते। इस दिशा में एकमात्र उचित तरीका यह होगा कि श्री राजगोपालाचारी, सर तेजबहादुर सप्रू अथवा सर सिकन्दर हयात खां जैसे किसी योग्य भारतीय राजनीतिज्ञ से राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए कहा जाय। भारतीयों को शक है कि हम उन्हें सत्ता सौंपने को तैयार नहीं हैं, इसलिए जब तक हम उपर्युक्त कार्रवाई नहीं करेंगे तब तक हम नहीं जान सकेंगे कि भारत के विभिन्न दल देश की रक्षा के लिए संगठित होकर कोई कार्रवाई करना चाहते हैं या नहीं।

पहली अक्तूबर को श्री एमरी से कामन-सभा में यह सवाल पूछा गया कि भारत के कितने प्रभावशाली व्यक्तियों अथवा संगठनों ने कांग्रेसी बन्दियों के साथ समझौते की बातचीत करने के बारे में मुनासिब सहूलियतें देने को लिखा है। उनसे यह भी पूछा गया कि पंडित नेहरू इस वक्त कहां हैं और क्या उनके साथ लिखा-पढ़ी की जा सकती है? इसके जवाब में श्री एमरी ने कहा कि मुझे इस बारे में किसी ने नहीं लिखा, पंडित नेहरू को घरेलू मामलों के बारे में अपने परिवार-वालों से पत्र-व्यवहार करने की इजाजत है, लेकिन मैं यह बताने को तैयार नहीं कि वह कहां हैं। जब उनसे यह पूछा गया कि भारत में उपद्रव फैलानेवाली भीड़ पर वायुयानों द्वारा जो बम-वर्षा की गई है उसके बारे में वह पूरा हाल बताएं और भविष्य में इन तरीकों से काम न लें तब श्री एमरी ने कहा, "पिछले सप्ताह भारत की केन्द्रीय असेम्बली में सराकरी तौर पर जो वक्तव्य दिया गया है और जो यहां

के पत्रों में भी प्रकाशित हो चुका है, मैं उससे अधिक और कुछ नहीं कह सकता। इसमें बताया गया है कि हाल के उपद्रवों में पांच दफा भीड़ पर वायुयान से मशीन-गन-द्वारा गोली-वर्षा करनी पड़ी है और यह गोली उस वक्त चलाई गई जबकि बिहार में १८ सितम्बर को एक वायुयान दुर्घटना में चालक के मर जाने पर उस वायुयान के कर्मचारियों को भीड़ ने मौत के घाट उतार दिया। जिन इलाकों में व्यापक रूप से रेलमार्गों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और जहां बाढ़ के कारण फौजों के यातायात में कठिनाइयां पैदा हुईं वहां तोड़-फोड़ के काम को रोकनें के लिए वायुयानों की सहायता लेना आवश्यक समझा गया।" भारत की वर्तमान और निकट-भविष्य की परिस्थिति के बारे में ब्रिटिश सरकार और भारत-सरकार की नीति का जिक्र करते हुए श्री एमरी ने कहा कि जहाँ तक कांग्रेस का सवाल है उसके नेताओं ने स्वयं अपनी नीति से साबित कर दिया है कि उनके साथ कोई बात-चीत नहीं हो सकती।

२९ अक्टूबर को 'मांचेस्टर गार्जियन' में बर्टरैण्ड रसल और उनकी पत्नी ने लिखा कि अंग्रेज पूरी तरह से यह अनुभव नहीं कर रहे कि अमरीका में भारतीय गति-रोध के बारे में कितनी बेचैनी और उत्तेजना पाई जाती है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि न केवल भारत, बल्कि अमरीका और दूसरे मित्र-राष्ट्रों को यकीन दिलाने के लिए भी ब्रिटेन को इस मामले में कुछ-न-कुछ अवश्य करना चाहिये। उसी दिन श्री बर्नन बार्टलेट ने भारतीय गतिरोध के निराकरण के लिए 'न्यूज क्रानिकल' में लिखा—"श्री एटली और श्री एमरी दोनों ने ही पिछले महीने यह स्पष्ट कर दिया है कि ब्रिटिश सरकार अब तक क्रिप्स-योजना पर कायम है। लेकिन उन्हें अपने इन आश्वासनों के समर्थन में ऐसा कोई वैधानिक कदम उठाना चाहिए या शाही घोषणा कर देनी चाहिए कि लड़ाई के बाद यथासंभव जल्दी-से-जल्दी भारत को आजादी दे दी जायेगी। यही नहीं, इस अन्तर्कालीन अवधि में उन्हें ऐसी कोई व्यवस्था करनी चाहिए जिससे भारत समान-शत्रु के विरुद्ध अपना पूरा सहयोग प्रदान कर सके।" १५ नवम्बर को "दमन के बाद—अब क्या?" शीर्षक से हेरल्ड लास्की ने अपने एक लेख में लिखा—"यह कहा जा सकता है कि कांग्रेसी नेता इस समय नजरबन्द हैं। इसलिए यह साबित करने के लिए कि हम वस्तुतः समझौता करना चाहते हैं और सम्मेलन को सफल बनाने के इच्छुक हैं, हमें उन्हें रिहा कर देना चाहिये। अगर यह तर्क और युक्ति दी जाय, जैसी कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स दे रहे हैं कि यदि इस वक्त सत्ता एक भारतीय सरकार को सौंप दी जाय तो उससे देश में अव्यवस्था और अराजकता फैल जायगी, तो क्या यह नहीं हो सकता कि हम किसी भारतीय को वाइसराय नियुक्त कर दें! अगर हिन्दू वाइसराय की नियुक्ति पर कोई एतराज उठाया जाता है तो आप समझौते से किसी सुप्रसिद्ध मुसलमान को वाइसराय बना दें। अगर यह कहा जाय कि लड़ाई

के खत्म होने तक अन्तर्कालीन मंत्रिमंडल की अवधि अनिश्चित प्रतीत होती है तो आप यह कर सकते हैं कि दो-दो साल के लिए बारी-बारी से दोनों जातियों की सरकार स्थापित कर दें। यह सम्मेलन ही इस बात का फैसला कर ले कि प्रधान-मन्त्री किसे बनाया जाय और रक्षा-मन्त्री उससे भिन्न संप्रदाय से लिया जाय। इसके अलावा रक्षा-विभाग पर व्यापक रूप से मंत्री का अधिकार रहे और उसके बारे में क्रिप्स-प्रस्तावों की तरह तू-तू मैं-मैं न की जाय।"

लन्दन में इंडिया लीग की एक बैठक में एक प्रस्ताव-द्वारा भारत को आजाद करने, वहां एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना और उसके साथ तत्काल समझौते की बातचीत शुरू करने की मांग की गई। यह प्रस्ताव पार्लमेण्ट के प्रसिद्ध मजदूरदलीय सदस्य श्री आर० डब्लू सोरेन्सन ने पेश किया था। इसी समय कामन-सभा में श्री एमरी से पूछा गया कि अब तक क्यों वाइसराय की शासन-परिषद् के उन तीन स्थानों पर, जहां इस समय यूरोपियन सदस्य आसीन हैं, भारतीयों को नियुक्त करके उसका पूर्णतः भारतीयकरण नहीं किया गया? इस पर उन्होंने जवाब दिया कि युद्धकालीन परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए और कार्य-कुशलता के विचार से वाइसराय ने अपनी शासन-परिषद् में विस्तार कर लिया है। उन्हें सन्तोष है कि वाइसराय की शासन-परिषद् के मौजूदा सदस्य अपने काम के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति हैं। मौजूदा यूरोपियन सदस्य इसलिए अब तक बने हुए हैं कि इन जगहों के लिए योग्य भारतीय नहीं मिल रहे हैं।

सत्य के बारे में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के अपने मापदंड हैं जिन्हें समझना बहुत कठिन है। बहुत अरसा हुआ, लार्ड लिटन ने कहा था कि "राजनीति सत्य को छिपाने का विज्ञान और कला है।" लेकिन उसके बाद से वह झूठ को सत्य साबित करने का विज्ञान और कला बन गई है। अन्यथा हमारे लिए श्री एमरी के वे उत्तर समझने कठिन हो जाते हैं, जो उन्होंने अक्तूबर में एक अमरीकी रेडियो आलोचक के प्रश्नों के सिलसिले में दिये थे। यह पूछे जाने पर कि क्या श्री चर्चिल ने भारत को अटलांटिक अधिकार-पत्र से वंचित करने की घोषणा की है, श्री एमरी ने कहा कि "इस प्रकार की कोई बात नहीं कही गई।" उन्होंने कहा कि ब्रिटिश नीति उक्त चार्टर की धारा ३ के अन्तर्गत निहित सिद्धान्तों के सर्वथा अनुरूप है और "इस नीति का सूत्रपात हमने पचीस वर्ष पूर्व किया था, जिसे क्रमशः उन्नत किया जाना था।" उनसे पूछा गया कि "क्या आप जो कुछ कह रहे हैं भारतीयों को उस पर यकीन है?" उन्होंने जवाब दिया, "हां, उन्हें यकीन है।" 'मांचेस्टर गार्जियन' ने इस विषय को फिर उठाया और इस बात पर जोर दिया कि अधिकार पत्र भारत पर भी लागू किया जाना चाहिए। उसने लिखा—"जब कि सरकार भारत की सहायता करने का उपाय ढूंढ़ रही है—जैसा कि उसके

लिए सर्वथा उचित है—उसे चाहिए कि वह अटलांटिक अधिकार-पत्र के इस पेचीदा सवाल का भी फैसला कर दे।"

नवम्बर में बहुत-सी आश्चर्यजनक और परस्पर विरोधी बातें देखने में आईं। श्री सी० राजगोपालाचार्य ने समझौते के लिए अपना आन्दोलन जारी रखने के उद्देश्य से जुलाई में मद्रास असेम्बली और कांग्रेस की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया था। अक्तूबर में उन्होंने पासपोर्ट और वायुयान से लन्दन जाने की इजाजत मांगी जिससे कि वे समझौते के बारे में अपनी शर्तें अधिकारियों के सामने रख सकें और उन्हें यकीन दिला सकें कि उन पर अमल करना संभव है। लेकिन उन्हें ये सहूलियतें देने से इन्कार कर दिया गया। पर इससे पूर्व भी सरकार, भारत के लाट पादरी, डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, भारत में राष्ट्रपति रूजवेल्ट के विशेष दूत श्री विलियम फिलिप्स और स्वयं श्री राजगोपालाचार्य को गांधीजी से मिलने की इजाजत देने से इन्कार कर चुकी थी। श्री राजगोपालाचार्य के साथ उसने जो सलूक किया वह उसी नीति का एक अंग था। राजाजी को इंगलैण्ड आने के लिए सुविधाएँ प्रदान करने के सम्बन्ध में ब्रिटेन के चालीस से अधिक प्रमुख व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से एक पत्र श्री एमरी को भेजा गया। इन लोगों में लार्ड मॉर्ले और स्ट्राबोल्गी, जी० डी० एच० कोल, हेरल्ड लास्की, जुलियन हक्सले, ब्रेल्सफोर्ड, प्रोफेसर जोड और मैडम एलिजाबेथ कैडबरी और लेडी लिटन-जैसी प्रमुख महिलाएं भी शामिल थीं। परन्तु ब्रिटिश सरकार की नीति का आभास तो हमें प्रधान मंत्री चर्चिल की उस घोषणा से मिलता है जो उन्होंने लार्ड मेयर के वार्षिक भोज के अवसर पर दिये गए अपने भाषण में की थी। उन्होंने कहा कि उत्तर अफ्रीका अथवा दुनिया के किसी भी हिस्से में ब्रिटेन किसी प्रदेश पर कब्जा नहीं करना चाहता।

श्री चर्चिल ने कहा, "हम इस लड़ाई में लाभ अथवा प्रभुता-विस्तार की दृष्टि से नहीं, बल्कि केवल प्रतिष्ठा और न्याय की रक्षा के लिए अपने कर्तव्य-पालन के उद्देश्य से लगे हुए हैं। परन्तु मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ और इस बारे में कोई संदेह नहीं रहना चाहिए कि हम अपना साम्राज्य बनाए रखना चाहते हैं। मैं सम्राट् का प्रधान मंत्री ब्रिटिश साम्राज्य का दिवाला निकालने के लिए नहीं बना। अगर कभी ऐसा होता है तो उसके लिए किसी और आदमी को जन्म लेना होगा और प्रजातंत्रात्मक पद्धति के अन्तर्गत इस काम के लिए राष्ट्र से परामर्श लेना पड़ेगा। मैं इसे अपने लिए बड़े गौरव की बात समझता हूँ कि मैं इस विस्तृत राष्ट्रमण्डल तथा उन राष्ट्रों और विभिन्न जातियों के समूह का सदस्य हूँ जो ब्रिटेन के प्राचीन राजतंत्रवाद से सम्बद्ध हैं और जिसके बिना शायद पृथ्वी पर अच्छाई का लोप हो जाता। इस डगमगाते हुए संसार के बीच हम मुक्ति की एक दृढ़ चट्टान की तरह खड़े हैं।"

श्री चर्चिल का भाषण १० नवम्बर को हुआ था और उसी दिन सम्राट् ने पार्लमेण्ट को स्थगित करते हुए निम्न भाषण दिया :—

"मेरी प्रजा और हमारे सहयोगियों का उद्देश्य जहां-कहीं भी स्वाधीनता पर आक्रमण हो उसकी रक्षा करना और शत्रु के प्रदेश पर आक्रमण करना है जिससे कि हम यथा-शक्ति शीघ्र-से-शीघ्र उन देशों और शक्तियों को, जो इस समय शत्रु के कब्जे में हैं, स्वतंत्र करा सकें।

"ब्रिटेन में मेरी सरकार ने भारत के नरेशों और जनता से साफ तौर पर कह दिया है कि वह लड़ाई समाप्त हो जाने के तत्काल बाद ही स्वयं भारतीयों-द्वारा तैयार किए गए विधान के आधार पर ब्रिटिश-राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत भारत को पूर्ण स्वाधीन देखना चाहती है। इस बीच भारत के राजनीतिक दलों के नेताओं को अपने देश के शासनसूत्र और युद्ध के संचालन में पूर्णरूप से भाग लेने का निमंत्रण दिया गया था। मुझे अत्यन्त खेद है कि अभी तक उन्होंने हमारा यह निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। मेरी हार्दिक आशा है कि वे बुद्धिमत्ता से काम लेकर स्वयं आपस में कोई समझौता करके जल्दी ही इन कठिनाइयों पर काबू पा लेंगे।"

प्रधानमंत्री के भाषण के कारण सोया हुआ ब्रिटेन एक बार फिर सजग हो उठा। इसके कुछ दिनों बाद ही ब्रिटेन के गृह-मन्त्री हर्बर्ट मौरीसन ने भी भारत के लोगों के लिए 'ब्रिटेन की देन' का ज़िक्र किया, लेकिन उससे भी भारत का घाव भरने में मदद नहीं मिली। उन्होंने कहा कि ब्रिटेन ने भारत के लोगों को स्वयं अपना विधान बनाने की पूरी आज़ादी दे दी है, चाहे उसका परिणाम पूर्ण स्वाधीनता ही क्यों न हो। लड़ाई के बाद उन्हें अपने देश के भाग्य का निर्णय करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है, बशर्ते कि लड़ाई के दौरान में वे संयुक्त-राष्ट्रों की विजय-प्राप्ति में कोई अड़चन न पैदा करें। क्या आप मुझे इतिहास में कोई और ऐसा उदाहरण दे सकते हैं जब कि किसी शासक ने अपनी गुलाम प्रजा को इस तरह की आज़ादी देने की बात कही हो? आप इसका क्या मतलब लेते हैं? मैं तो कम-से-कम इसका मतलब यह लेता हूँ कि इस तरह से ब्रिटेन ने अपने उन उद्देश्यों का एक और सबूत पेश किया है जिनसे प्रेरित होकर वह इस लड़ाई में शामिल हुआ है।

समय-समय पर गांधीजी और वर्किंग कमेटी के सदस्यों के साथ बाहर के लोगों का संपर्क स्थापित करने के प्रयत्न किये गए। नवम्बर के अंत में कामन-सभा में श्री एमरी से यह सवाल किया गया कि क्या इस देश के किसी गैर-सरकारी व्यक्ति को इस समय नजरबन्द कांग्रेसी नेताओं के साथ पत्र-व्यवहार करने की इजाजत दी जाएगी, क्या ये नेता इस देश के किसी गैर-सरकारी आदमी से लिखा-पढ़ी कर सकते हैं अथवा उन्हें ऐसा करने की इजाजत दी जा सकेगी और क्या उन्हें कोई सार्वजनिक घोषणा करने की भी आज़ादी होगी? इनके जवाब में श्री एमरी ने कहा, "मुझे पता चला है कि इन नज़रबन्द भारतीय नेताओं को केवल अपने

परिवारवालों के साथ पत्र-व्यवहार करने की आज्ञा है और वह भी केवल घरेलू मामलों पर ही। मैं फिलहाल कुछ नहीं कह सकता कि उन पर से ये प्रतिबन्ध कब तक हटाए जा सकेंगे। क्या भारतीय नेताओं को कोई सार्वजनिक घोषणा करने की इज़ाजत दी जा सकेगी या नहीं—यह इस पर निर्भर करेगा कि वह घोषणा किस तरह की है।"

इस आपत्काल में भी भारत को उसके पुराने शुभचिंतकों—अर्थात् इंगलैण्ड के सुहृद् संघ ने नहीं भुलाया। संघ के वयोवृद्ध कर्णधार श्री कार्ल हीथ ने भारतीय स्थिति के बारे में 'स्पेक्टेटर' में एक जोरदार पत्र लिखकर अपना क्षोभ प्रकट करते हुए भारतीय समस्या को सुलझाने की हार्दिक अपील की। श्री वेंडलविल्की ने प्रधान मंत्री चर्चिल की ब्रिटिश साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखनेवाली घोषणा का मुंहतोड़ जवाब दिया। इसके अलावा लार्ड क्रेनबोर्न ने ब्रिटेन की युगों पुरानी औपनिवेशिक नीति के बारे में जो कुछ कहा, उसकी भी कड़ी प्रतिक्रिया हुई। उधर अमरीका के समाचार-पत्रों ने भी ब्रिटेन की खूब खबर ली। 'टाइम्स' ने औपनिवेशिक व्यवस्था के भविष्य के सम्बन्ध में अपने एक लेख में 'अतीत की मनोवृत्तियों को छोड़ देने' की जोरदार अपील की। ब्रिटिश साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के सम्बन्ध में श्री चर्चिल की घोषणा की न केवल भारत में ही बल्कि सारे पूर्व में अर्थात् सुदूर-पूर्व, निकट-पूर्व और मध्य-पूर्व में कड़ी आलोचना हुई और उससे इन देशों में गहरी बेचैनी पैदा हो गई।

इस प्रकार नवम्बर भी बीत गया और बड़े दिन आ गए। पर भारत को इससे क्या, उसके दिन तो अभी नहीं फिरे थे। लार्ड लिनलिथगो का कार्य-काल और छः महीने तक अर्थात् अक्तूबर १९४३ के अन्त तक के लिए बढ़ा दिया गया। ब्रिटिश सरकार-द्वारा 'वाइसराय के कार्यकाल की अवधि' का बढ़ाना, पार्लमेंट में श्री चर्चिल और श्री एमरी के प्रतिक्रियावादी और दुराग्रहपूर्ण भाषण, श्री राजगोपालाचर्य को गांधीजी से मिलने की इजाजत न देना और भारतीय जनमत की तनिक भी परवाह न करके फेडरल-कोर्ट (संघ-न्यायालय) में प्रधान न्यायाधीश के पद पर एक अंगरेज की नियुक्ति—इन सभी बातों से 'न्यूज क्रानिकल'-जैसे गंभीर और शान्तिप्रिय पत्र को भी यह लिखना पड़ा कि "भारत-द्वारा क्रिप्स-योजना को ठुकरा देन के परिणामस्वरूप निराश होकर ब्रिटिश सरकार ने इस दिशा में और कोई रचनात्मक प्रयत्न करने की कोशिश नहीं की । प्रोफेसर वुड ने जिनकी ऐसी दृढ़ धारणा थी, लिखा कि, "जब गांधीजी के मित्र और प्रशंसक भारत-सरकार से उनसे (गांधीजी) बातचीत करने का अनुरोध करते हैं, तब उससे यह जाहिर होता है कि वे यह आग्रह इसलिए नहीं कर रहे कि गांधीजी की साख को बनाए रखें, बल्कि इसलिए कि वे गांधीजी की नैतिक प्रतिष्ठा से कितना अधिक प्रभावित हुए हैं। मेरी दृष्टि में गांधीजी एक महान् आध्यात्मिक और

नैतिक नेता हैं और इसीलिए मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत के वर्तमान गतिरोध को दूर करने का प्रयत्न उन्हीं की ओर से होना चाहिए।"

कांग्रेस की दृष्टि से प्रत्येक नये वर्ष की महत्वपूर्ण और पवित्र घटनाओं में 'स्वाधीनता-दिवस' विशेष महत्व रखता है। पिछले सालों की भांति १९४३ में भी यह दिवस २६ जनवरी को लन्दन के स्वराज्य-भवन में डा० एस० वी० वार्डन की अध्यक्षता में बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। इसके दो दिन बाद श्री सोरेन्सन ने कामन-सभा में श्री एमरी से गैर-कांग्रेसी प्रतिनिधियों पर से कांग्रेस नेताओं से मुलाकात करने के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध उठा लेने का आग्रह किया जिससे कि वे सम्भावित राजनीतिक परिस्थिति पर सोच-विचार कर सकें।

प्रथम महायुद्ध की भांति इस बार दूसरे महायुद्ध में भी ब्रिटिश-सरकार ने दिखावे के तौर पर भारत के दो प्रतिनिधि अपने युद्ध-मन्त्रि-मण्डल में लिए। ये प्रतिनिधि वाइसराय की शासन-परिषद् के सदस्य सर रामस्वामी मुदालियर और जामनगर के जामसाहब थे। इंग्लैण्ड में भारत के ये दोनों प्रतिनिधि वहाँ की विभिन्न औद्योगिक संस्थाओं और युद्धकेन्द्रों का निरीक्षण करने में व्यस्त रहे। हिज हाईनेस जामसाहब तो जनवरी १९४३ में स्वदेश लौट आए। इंग्लैण्ड के लिए इन महानुभावों के प्रस्थान करने से पूर्व यह कहा जा रहा था कि सर राम-स्वामी मुदालियर वहां जाकर भारतीय गतिरोध को दूर करने का प्रयत्न करेंगे। इसलिए इंग्लैण्ड में उन्होंने इस बारे में जो कुछ भी किया हो, भारत को उसकी कोई सूचना न होना स्वाभाविक ही था। लेकिन जामसाहब ने इंगलैण्ड पहुँचते ही एक भाषण दिया जिसमें आपने वाइसराय की शासन-परिषद् के पूर्ण भारतीय-करण पर जोर दिया। प्रत्यक्ष था कि वह पत्थर की दीवार से अपना सिर टकरा रहे थे। अपने चाचा की मृत्यु के कारण उन्हें शीघ्र ही भारत वापस आना पड़ा। भारत लौटने पर उन्होंने ८ फरवरी, १९४३ को नयी दिल्ली के एक पत्र-प्रतिनिधि सम्मेलन में स्पष्ट रूप से बताया कि युद्ध-मन्त्रि-मण्डल की बैठकों में किसी राजनीतिक अथवा वैधानिक समस्या पर सोच-विचार नहीं किया गया, क्योंकि उसका मुख्य काम तो केवल युद्ध जीतना है।

फरवरी का महीना सारे संसार के लिए सनसनीपूर्ण और बेचैनी का रहा, क्योंकि १० फरवरी को गांधीजी ने सामर्थ्य के अनुसार, यथाशक्ति उपवास प्रारंभ किया और वे तीन सप्ताह की कठोर तपस्या के बाद ३ मार्च को इसमें सफलता-पूर्वक उत्तीर्ण हुए।

कांग्रेस-विरोधी पुस्तिका

इस प्रकार एक महीने तक वातावरण पूर्णतः शान्त बना रहा। केवल २२ फरवरी १९४३ को यह शान्ति भंग हुई जब कि सरकार ने भारत में 'भारत के

उपद्रवों के लिए कांग्रेस का उत्तरदायित्व' शीर्षक से एक पुस्तिका प्रकाशित की और उसके कुछ सप्ताह बाद ही इस बारे में ब्रिटेन में एक श्वेतपत्र भी छपा। सरकार के दृष्टिकोण से यह प्रकाशन सर्वथा सामयिक था, क्योंकि अप्रैल में पार्लमेंट में होनेवाली भारत-विषयक बहस के लिए वह पार्लमेंट के सदस्यों के हाथों में यह सामग्री पहुँचा देना चाहती थी। उक्त पुस्तिका में कहा गया कि अब तक जानी गई और प्रमाणित संपूर्ण घटनाओं को दृष्टि में रखकर केवल यही बात युक्तिसंगत मालूम पड़ती है कि ९ अगस्त की गिरफ्तारियों के बाद व्यापक रूप से फैलनेवाले ऐसे उपद्रवों को कांग्रेस ने पैदा किया और उनका पथ-प्रदर्शन किया, जो कुछ क्षेत्रों में खुले विद्रोह के सिवा और कुछ न थे। इस पुस्तिका की टीका टिप्पणी करते हुए 'न्यू स्टेट्समैन ऐंड नेशन' ने अपने एक अग्रलेख में लिखा कि "भारत-सरकार ने यह श्वेत-पत्र छापकर कोई अच्छा काम नहीं किया, जिसमें शुरू से लेकर आखिर तक गांधीजी पर व्यक्तिगत रूप से अभियोग लगाने की कोशिश की गई है और इसके अलावा वह केवल एक प्रचार-सम्बन्धी पुस्तिका है।"

'टाइम्स' सहित ब्रिटेन के शेष पत्रों ने प्रत्यक्ष रूप से गांधीजी और कांग्रेस के खिलाफ ज़हर उगला। 'उपद्रवों के लिए कांग्रेस का उत्तरदायित्व' शीर्षक पुस्तिका ऐन उस मौके पर प्रकाशित की गई जब कि २१ दिन के दौरान में गांधीजी का भाग्य पलड़े में झूल रहा था और ठीक उसके एक महीने बाद उक्त श्वेत-पत्र प्रकाशित किया गया। इसके प्रकाशन से लगभग पन्द्रह दिन पहले बम्बई में निर्दल नेताओं का एक सम्मेलन हुआ। उन्होंने समझौते की कोशिश की और इस काम में उन्हें कुछ सफलता भी मिली। वाइसराय ने उनसे मिलने का वादा कर लिया और उन नेताओं से कहा गया कि वे अपना मामला एक विचार-पत्र के रूप में पेश करें। लेकिन इस श्वेत-पत्र के कारण उनकी सब कोशिशों पर पानी फिर गया। उक्त पुस्तिका छापने का उद्देश्य गांधीजी की रिहाई के लिए की जाने वाली व्यापक मांग और उनके प्रति प्रकट की गई सहानुभूति पर तुषारापात करना था। इसके बारे में यदि हम किसी कांग्रेसी की प्रतिक्रिया प्रकट करें तो उसे पक्षपात पूर्ण समझा जायगा, लेकिन यहाँ हम 'स्टेट्समैन' में 'हमारे भारतीय प्रेक्षक' द्वारा प्रकाशित 'राजनीतिक आलोचना' को उद्धृत करना उचित समझते हैं, क्योंकि उसे अधिक निष्पक्ष खयाल किया जा सकता है :—

"लन्दन में प्रकाशित किया गया श्वेत-पत्र सर्वथा असामयिक है। यह एक ऐसे अवसर पर छापा गया है जब कि जेल के बाहर के हल्कों में कांग्रेस और सरकार में समझौते की बातचीत का आग्रह ही नहीं, बल्कि प्रार्थना भी की जा रही है। इसके अलावा जो लोग गांधीजी से मिल कर आये हैं, उनका भी

यही कहना है कि गांधीजी सारी स्थिति पर नये सिरे से सोच-विचार करने को तैयार हैं और उनका उद्देश्य संघर्ष के बजाय शांति ही है।"

पार्लमेंट में विचार

३० मार्च १९४३ को पार्लमेंट में भारतीय स्थिति पर पुनः सोच-विचार प्रारम्भ हुआ। सभा के सामने जो प्रस्ताव पेश किया गया उसका सम्बन्ध भारत के ग्यारह प्रांतों में से केवल छः के साथ था। इस प्रस्ताव में यह मांग की गई थी कि १९३५ के विधान के अन्तर्गत इन प्रांतों में लागू की गई धारा ९३ की सामयिक समीक्षा पार्लमेंट द्वारा की जाय। अक्तूबर १९३९ के बाद से कांग्रेस को इन प्रांतों के मंत्रिमंडलों से इस्तीफा दिये हुये साढ़े तीन बरस हो चुके थे और उसके बाद वहां जो संकटकालीन धाराएं लागू की गई थीं, उन्हें पुनः जारी करने के प्रश्न पर फिर से सोच-विचार करना आवश्यक हो गया था। श्री एमरी ने १९३७ के निर्वाचनों की समीक्षा करते हुए बताया कि किस प्रकार कांग्रेस ने ७११ सीटों पर कब्जा कर लिया था। इस प्रकार यद्यपि कांग्रेस को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ था, फिर भी पांच प्रांतों में उसका स्पष्ट बहुमत था और शेष तीन भी उसके नियंत्रण में थे। उन्होंने बताया कि किस प्रकार कांग्रेसजनों द्वारा केन्द्रीय असेम्बली के बहिष्कार के बाद उस सभा ने और बंगाल, पंजाब और सिन्ध के मंत्रिमंडलों, हिन्दू महासभा, उदार-दल और नरेशों ने सम्राट और देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए दृढ़ निश्चय की घोषना की थी। आगे आपने कहा कि "इन बातों में से हमें उस मिथ्या भ्रम का अकाट्य उत्तर मिल जाता है जिसके अनुसार यह प्रचार किया गया है कि भारत को बिना उसकी इच्छा के ऐसे युद्ध में घसीटा गया है जिसमें उसकी कोई आवाज नहीं है और जिसके परिणाम में उसे कोई रुचि नहीं है।"

गतिरोध का अन्त करने के तरीके का जिक्र करते हुए श्री एमरी ने यह सुझाव पेश किया कि भारत के लिए एक ऐसा विधान तैयार किया जाना चाहिए जो ब्रिटेन के विधान से भिन्न हो और जो एक संबद्ध देश के अनुरूप हो जैसे कि स्विट्जरलैण्ड है, जहां तीन विभिन्न जातियां हैं। श्री एमरी के वक्तव्य की टीका-टिप्पणी करते हुए २ अप्रैल को 'मांचेस्टर गार्जियन' ने लिखा—"बारम्बार क्रिप्स-योजना पर जोर देने से काम नहीं चलेगा, क्योंकि कम-से-कम फिलहाल तो वह असफल हो गई है और इस समय एक बिल्कुल नयी स्थिति पैदा हो गई है, जिसका हमें यथार्थवादियों के रूप में फैसला करना है।" डेली हेरल्ड ने लिखा—"कल श्री एमरी ने जो भाषण दिया वह उनके पिछले तीन साल के बहुत से वक्तव्यों की पुनरावृत्ति-मात्र था। हमारा सुझाव है कि इन असामयिक विषयों की पीठ ठोकने के बजाय श्री एमरी को कामनसभा में

साफ तौर पर केवल यह कह देना चाहिए कि मेरी नीति का आधार अब तक डा० डूलिटिल और डा० बर्नाडो के सिद्धान्त हैं।" उप-प्रधान मन्त्री श्री एटली ने अपना भाषण समाप्त करते हुए कहा कि "मैं समझता हूँ श्री गोखले, श्री राजगोपालाचार्य, पंडित नेहरू और श्री जिन्ना आदि जो वास्तव में प्रजा-तन्त्र वादी हैं, इस प्रकार के परिवर्तन को अमल में ला सकते हैं।" श्री गोखले १९ फरवरी, १९१५ को परलोक सिधार चुके थे, किन्तु श्री एटली-द्वारा उनके उल्लेख से पता चल जाता है कि भारत की राजनीतिक स्थिति के बारे में विशाल ब्रिटिश साम्राज्य के उप-प्रधान-मंत्री कितना ज्ञान रखते हैं।

लार्ड सभा में विचार

लार्ड सभा की बहस यद्यपि अधिक दिलचस्प रही, लेकिन उससे कोई लाभ नहीं पहुँचा। इस सम्बन्ध में हम दो भाषणों का उल्लेख करना चाहते हैं। लार्ड फेरिंगडन (मजदूर-दल) ने कहा कि उन कांग्रसी नेताओं के साथ समझौता करने का आधार प्रस्तुत है जिनमें से बहुतों के उद्देश्य ब्रिटिश सरकार-जैसे ही हैं। उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया कि गांधीजी डिक्टेटर हैं अथवा कांग्रेस एक वर्गवादी संस्था है। श्री राजगोपालाचारी तथा अन्य भारतीय नेताओं के गांधीजी से मिलने के लिए वाइसराय की अनुमति न मिलने की उन्होंने अलोचना की। उन्होंने यह सुझाव रखा कि ब्रिटिश सरकार समस्त दलों के नेताओं को लन्दन में निमंत्रित करे जिससे यह मालूम किया जा सके कि कोई उपाय निकल सकता है या नहीं। यदि संभव हो तो इसमें मित्रराष्ट्रों की सरकारों का भी सहयोग ले लेना चाहिए।

लार्ड सेम्युएल ने कहा, "भारतीय-विधान के अनुसार जब प्रजातन्त्र पर आधारित उन व्यवस्थापिका सभाओं का निर्वाचन हुआ, जिनके प्रति विभिन्न प्रान्तीय सरकारें उत्तरदायी हैं तब उदार दल ने इस पर अत्यधिक संतोष प्रकट किया था। हमने इसे वैधानिक प्रजातन्त्र-प्रणाली की सब से बड़ी विजय कहा था, जैसी कि अब तक किसी भी पूर्वी देश में नहीं देखने में आई। जब मैं भारत गया था तब मेरा यह खयाल नहीं था कि प्रान्तीय विधान इतनी आश्चर्यजनक सफलता के साथ अपना काम कर रहे होंगे।"

लार्ड सभा में ६ अप्रैल १९४३ को लार्ड सेमुएल ने जो भाषण दिया था, उसका उत्तर देते हुए गांधीजी ने १९ मई, १९४३ को उन्हें एक पत्र लिखा जिसे सरकार ने लार्ड सेम्युएल तक नहीं पहुँचने दिया।

भारत-सरकार की प्रतिक्रिया

कांग्रेस-नेताओं की गिरफ्तारी के पाँच सप्ताह बाद १५ सितम्बर को केन्द्रीय असेम्बली का अधिवेशन शुरू हुआ और इसके एक सप्ताह बाद राज-परिषद् का।

वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि पार्लमेण्ट और केन्द्रीय असेम्बली के अधिवेशन किसी पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार साथ-साथ ही शुरू हुए। कहन का तात्पर्य यह है कि पार्लमेण्ट का अधिवेशन भारत की केन्द्रीय धारासभाओं के शुरू होने से ठीक कुछ समय पूर्व आरम्भ हुआ। भारत के गृह-सदस्य सर रेजिनाल्ड का अनुमान था कि इन दंगों के कारण कुल मिलाकर हानि एक करोड़ रुपयों से भी अधिक होगी और उन्होंने इन उपद्रवों के कुछ खास पहलुओं का जिक्र करते हुए यह बात मानन से इन्कार किया कि ये दंगे कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी के कारण यकायक स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में हुए हैं। उन्होंने ऐसी बातें गिनाईं जो उनकी राय में यह साबित करती थीं कि इन उपद्रवों के पीछे अत्यन्त दुर्भावना के साथ पहले से ही कोई संगठन अवश्य था। उन्होंने कहा, "अभी मैं यह नहीं बता सकता कि इस संगठन को प्रेरणा कहां से प्राप्त हुई। अभी हमें ऐसी कितनी ही बातों की जानकारी प्राप्त करना शेष है, जिनके सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं हुआ है। किन्तु इन उपद्रवों से कांग्रेस का सम्बन्ध रहने के विषय में जो सन्देह शेष रह गया हो उसे कांग्रेसियों, विशेषकर बिहार के कांग्रेसियों के उन भाषणों से असंख्य उदाहरण दे कर निर्मूल सिद्ध किया जा सकता है, जिनमें साधारण जनता को हिंसा और विध्वंस करने के लिए खुलेआम उकसाया गया था। इसके अतिरिक्त बम्बई की बैठक के तत्काल बाद कितने ही कांग्रेसी नेता लापता हो गए और वे किन्हीं ऐसे कारणों से लापता हैं, जिनका स्वयं उन्हीं को पता है। इसलिए अभी जो जानकारी प्राप्त हुई है, उसके आधार पर इन गम्भीर घटनाओं के लिए हम कांग्रेस को उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं कर सकते।" आगे चल कर उन्होंने कहा कि अगर कांग्रेस को थोड़ा और समय मिल जाता तो उससे हालत और भी ज्यादा बिगड़ जाती और अपरिमित क्षति होती। उन्होंने विनाश के इस नग्न नृत्य तथा भारत-वासियों के जीवन और धन की इस हानि पर गहरा खेद प्रकट किया। फिर उन्होंने कहा कि ऐसी बातों से स्वयं भारतवासियों की हानि होगी और उन्हीं की कठिनाइयां बढ़ेंगी। उन्होंने यह भी बताया कि सम्पूर्ण मुस्लिम-समुदाय और परिगणित जातियां इनसे बिल्कुल अलग रही हैं। साथ ही इस बात पर भी प्रसन्नता प्रकट की कि न केवल पुलिस, वरन् समस्त सरकारी कर्मचारियों ने उन्हें आतंकित करने के समस्त प्रयत्नों के बावजूद दृढ़ता के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया है। बहुतेरों ने तो अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अपने प्राण तक दे दिये हैं।

बहस की बहुत-सी बातों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी। यह एक तरफा चीज थी, इसलिए इसमें विवेकहीनता का होना अनिवार्य था और एक तरह से यह अभियुक्त की अनुपस्थिति में धारासभा के सामने उस पर दोषारोपण करना और मुकदमा चलाना था। कांग्रेस-सदस्यों की अनुपस्थिति से लाभ उठाकर सरकार ने ऐसे वक्तव्य दिये, जिन्हें चुनौती नहीं दी जा सकती थी।

यह एक बड़ी उल्लेखनीय बात है कि एक ओर जब पार्लमेंट में भारतीय स्थिति के सम्बन्ध में कितनी ही बहसें हो रही थीं और कितने ही सवाल पूछे जा रहे थे तथा भारत-मंत्री और उप-भारत-मंत्री को वक्तव्य देने पड़ रहे थे और घोषणाएं करनी पड़ रही थीं, दूसरी ओर वाइसराय महोदय बिल्कुल मौन धारण किए हुए थे और उन्होंने उपद्रवों के बारे में सार्वजनिक रूप से कुछ नहीं कहा। अन्त में १७ दिसम्बर १९४२ को उनका मौन भंग हुआ जब कि उन्होंने व्यापारमंडल-संघ के वार्षिक अधिवेशन में भाषण दिया। फेडरेशन के सम्मुख अपने लम्बे भाषण में वाइसराय महोदय ने देश की राजनीतिक, औद्योगिक और सैनिक स्थिति का पर्यवेक्षण करते हुए अपनी उन असफल कोशिशों का जिक्र किया जो उन्होंने भारत के विभिन्न समूहों और दलों के दरमियान समझौता कराने के लिए की थीं। उन्होंने यह भी कहा कि उनका कार्यकाल दस महीने तक के लिए यद्यपि बढ़ा दिया गया है, तथापि वह समझौता कराने के लिए अपनी कोशिशों में कोई शिथिलता नहीं आने देंगे। उन्होंने भारत से यह यकीन करने का अनुरोध किया कि अगर अपने शासन काल के इन अगले दस महीनों में वह भारत के विभिन्न दलों की मौजूदा खाई को पाटने में सफल हो गए तो उनसे अधिक भाग्यशाली व्यक्ति और कोई नहीं होगा। आगे चल कर उन्होंने यह भी कहा—"लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि देश के सभी सम्बद्ध वर्गों और दलों में वास्तविक समझौता हुए बिना केवल कृत्रिम एकता से काम नहीं चल सकता। उससे तो लाभ के बजाय हानि हो सकती है। किसी बाहरी दबाव के परिणामस्वरूप पैदा होने वाले मतभेद उन मतभेदों की अपेक्षा अधिक खतरनाक होते हैं, जो सर्वविदित हैं और जिन्हें दूर करने की व्यवस्था आसानी से हो सकती है। केवल विभिन्न दलों और विभिन्न समुदायों के पारस्परिक समझौते-द्वारा ही हम अपना वांछित उद्देश्य हासिल कर सकते हैं और इस समझौते का आधार पारस्परिक विश्वास, एक-दूसरे की ऐतिहासिक प्रथाओं के प्रति सम्मान और उदारता का बर्ताव और भावी योजनाओं में एक-दूसरे के न्यायोचित दावों की पूर्ति होनी चाहिए। क्या हमें इस उद्देश्य की प्राप्ति की कोशिश नहीं करनी चाहिए? अगर हमें उसे हासिल करने के लिए किसी कुर्बानी की ज़रूरत पड़े तो क्या हमें वह कुर्बानी नहीं करनी चाहिए?"

किसी व्यक्ति के कथन की परीक्षा हमेशा उसके व्यवहार और आचरण से होती है। वाइसराय महोदय ने भारत की एकता पर जोर दिया है। क्या यह एकता कोरा सिद्धान्तवाद या कोई काल्पनिक चीज है जिसके लिए उन्हें इतनी लम्बी-चौड़ी बातें करनी पड़ीं और इतनी वाक्यपटुता दिखानी पड़ी अथवा क्या यह सुलह-सफाई, समझौते और आदान-प्रदान की भावना के लिए विभिन्न दलों से आग्रह था? क्या यह उपदेश विभिन्न दलों से तत्काल अपने निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचने का अनुरोध था? जो लोग गतिरोध के हल के लिए वाइसराय पर आशा लगाए बैठे

थे उन्हें निराश होना पड़ा, क्योंकि उन (वाइसराय) के कथन और व्यवहार, पवित्र प्रार्थना और व्यावहारिक कार्यक्रम में कोई सामंजस्य नहीं था। फरवरी, १९४३ में केन्द्रीय असेम्बली में श्री नियोगी के उस प्रस्ताव पर बहस शुरू हुई जो उन्होंने उसके पिछले अधिवेशन में पुलिस द्वारा 'हाल के उपद्रवों' को शान्त करने के लिए की गई 'ज्यादतियों' की जांच-पड़ताल के सम्बन्ध में सभा के सदस्यों की एक समिति स्थापित करने के बारे में पेश किया था। बहस का उत्तर देते हुए गृह-सदस्य ने कहा कि अपने कर्मचारियों पर प्रतिबन्ध लगाए जाने की सभी कोशिशों का सरकार विरोध करेगी। उन्होंने कहा कि हमें सार्वजनिक कर्मचारियों की सभी न्यायोचित कार्रवाइयों का समर्थन करना चाहिए और सभी प्रकार के उपद्रवों को हर संभव तरीके से दबाना चाहिए। अगर सरकारी कर्मचारियों के सम्बन्ध में ऐसी जांच-पड़ताल की गई जिसका प्रस्ताव किया गया है तो कानून और व्यवस्था को सुरक्षित रखना असंभव हो जायगा। दृढ़ निश्चय और राजभक्त पुलिस और सरकारी कर्मचारियों के बिना इस सभा अथवा ऐसी ही अन्य संस्थाओं के किसी आदेश को कार्यान्वित करना असम्भव हो जायगा।

भारत-सरकार-द्वारा उपद्रवों के सम्बन्ध में प्रकाशित की गई पुस्तिका की पृष्ठ-भूमि में एक विशेष इतिहास छिपा हुआ था। गांधीजी का उपवास १० फरवरी १९४३ को शुरू हुआ। एक ओर गांधीजी और वाइस ाय और दूसरी ओर गांधीजी और भारत-सरकार के सेक्रेटरी के दरमियान जो लिखा-पढ़ी हुई वह बड़ी महत्वपूर्ण और सनसनी-भरी थी। उपवास के दरमियान गांधीजी की हालत काफी खराब हो गई थी और एक समय तो ऐसा आया जब कि उनके जीवन के लिए भारी खतरा पैदा हो गया था। इस अवसर पर २२ फरवरी, १९४३ को भारत-सरकार ने उपद्रवों के सम्बन्ध में अपनी उक्त पुस्तिका प्रकाशित की। यद्यपि सरकार स्थिति अच्छी हो जाने की आशा कर रही थी, तथापि प्रत्यक्ष रूप से वह देश को बुरी-से-बुरी स्थिति का सामना करने के लिए तैयार कर रही थी। गांधीजी को रिहा न करने के लिए वह कोई उचित कारण चाहती थी और यह पुस्तिका उस औचित्य को सिद्ध करने के लिए ही प्रकाशित की गई थी। सरकार का उद्देश्य मानो यह था कि "गांधीजी ने शुरू में हिंसा को प्रोत्साहन दिया और अन्त में वे स्वयं ही उसके शिकार हो गए।" पुस्तिका के प्रकाशन के अगले ही दिन केन्द्रीय असेम्बली में इस पर सोच-विचार करने के लिए सरदार संतसिंह ने एक स्थगित प्रस्ताव पेश किया जिसे अनियमित ठहराते हुए प्रधान ने कहा, "पुस्तिका में उल्लिखित आंकड़ों और तथ्यों का हवाला देते हुए इसी सभा में भाषण दिये जा चुके हैं। इसलिए उसका प्रकाशन कोई अत्यावश्यक विषय नहीं है, जिसके लिए सभा की कार्रवाई स्थगित की जाय।"

केन्द्रीय असेम्बली में २५ मार्च, १९४३ को श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें राजनीतिक बन्दियों और नजरबन्दों के प्रति सरकार के

व्यवहार में व्यापक संशोधन करने की सिफारिश और केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों को जेलों में जाकर राजनीतिक बन्दियों से मुलाकात करने के लिए इजाजत देने का आग्रह किया गया था, ताकि उन पर लगाए गए प्रतिबन्ध कम किये जा सकें और उन्हें आवश्यक सुविधाएं प्रदान की जा सकें। इस प्रस्ताव के बारे में सरकार के रुख का स्पष्टीकरण करते हुए गृह-सदस्य सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल ने कहा, "मौजूदा आन्दोलन के सिलसिले में नजरबन्द किये गए सुरक्षा-बंदियों पर लगाए गए प्रतिबन्धों में फिलहाल किसी किस्म की नरमी नहीं की जा सकती, क्योंकि अभी तक लड़ाई जारी है।"

यह प्रसंग समाप्त करने के पूर्व भारत की राजनीतिक परिस्थिति के सम्बन्ध में वाइसराय की शासन-परिषद् के कतिपय भारतीय सदस्यों के विचारों का संक्षेप में उल्लेख करना सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है। राजपरिषद् में २४ सितम्बर १९४२ को भाषण देते हुए माननीय सर जोगेन्द्रसिंह ने कहा:—

"हमें कांग्रेस और लीग को भुला देना चाहिए। हमें उन सिद्धांतों के पीछे पड़ कर अपना और समय नहीं गंवाना चाहिए, जिनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। राजाओं और जनता के प्रतिनिधियों को एक साथ मिलकर आगे बढ़ना चाहिए और वर्तमान गतिरोध को दूर कर के एक संयुक्त मांग पेश करनी चाहिए।"

दिसम्बर में, बम्बई के भारतीय व्यापार-मंडल द्वारा पेश किये गए मानपत्र का उत्तर देते हुए माननीय श्री एन० आर० सरकार ने कहा:—

"आदर्शवाद की बात एक ओर रहने दीजिए, केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों ही सरकारों के शासन-संचालन में, और अपने जीवन के सर्वोत्तम भाग में देश के व्यापारिक-क्षेत्र में मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उससे मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण उन्नति करने के उद्देश्य से भारत के लिए अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।"

ओटावा में २२ दिसम्बर को भाषण देते हुए ब्रिटेन के युद्ध-मन्त्रिमंडल में भारत के प्रतिनिधि सर ए० रामस्वामी मुदालियर ने कहा, "भारत की जनता अपने राजनीतिक पद के निर्धारण के लिए अत्यधिक व्यग्र है और उसमें पाए जानेवाले मतभेद का आधार उस उद्देश्य के सम्बन्ध में न होकर उसे प्राप्त करने के विभिन्न साधनों के सम्बन्ध में है।"

गैर-सरकारी प्रतिक्रिया

किसी भी अवसर पर जनता ने कांग्रेस के प्रति इतनी गहरी सहानुभूति प्रकट नहीं की थी, जितनी इस बार, जबकि कांग्रेस-द्वारा अपना आन्दोलन शुरू करने से पहले सरकार ने उस पर एक जोरदार आक्रमण कर देश में हिंसा और दमन का साम्राज्य स्थापित कर दिया था। यह केवल पीड़ित लोगों के प्रति सहानुभूति ही

नहीं थी, बल्कि सरकार से एक जोरदार मांग थी कि वह स्वयं अपने पैदा किये हुए गतिरोध का निराकरण करे और यह मांग ऐसे प्रमुख व्यक्तियों और बड़ी-बड़ी संस्थाओं की ओर से की जा रही थी जो कुछ समय पूर्व तक भारत में ब्रिटिश सरकार की ढाल बने हुए थे। सर शादीलाल, सर चिमनलाल सीतलवाड, सर तेजबहादुर सप्रू, सर ए० दलाल, सर मिर्जा इस्माइल, सर एस० राधाकृष्णन्, राइट आनरेबल वी० श्रीनिवास शास्त्री और राइट आनरेबल श्री एम० आर० जयकर जैसे बड़े-बड़े व्यक्तियों, व्यापारमंडलों, व्यापारमण्डल-संघों, ट्रेड यूनियनों, पारसी-संघों, बंगाल और पंजाब के यूरोपियन एसोसियेशनों, बिहार और बम्बई के एडवोकेट जनरलों, श्री विश्वास सरीखे हाईकोर्ट के जजों, कलकत्ता के लाट-पादरी जैसे प्रमुख धार्मिक नेताओं, ईसाई और साम्यवादी नेताओं, निर्दल नेता-सम्मेलन और महिला सम्मेलन प्रभृति देश की प्रमुख संस्थाओं के एकस्वर होकर सरकार से स्थिति पर पुनः विचार करने और गतिरोध को शीघ्र ही दूर करने का आग्रह करने पर भी यदि सरकार के कान पर जूं तक नहीं रेंगती तो साफ जाहिर है कि उसके दिमाग में कोई ऐसा बड़ा विकार या खराबी आ गई थी कि वह स्वयं अपने भूतपूर्व समर्थकों की भी बात मानने को तैयार नहीं थी।

किसी को भी यह खयाल नहीं गुजरा था कि सर शादीलाल-जैसा वयोवृद्ध व्यक्ति जो सक्रिय जीवन से अवकाश ग्रहण कर चुका हो १४ अगस्त १९४२ को ही सरकार के खिलाफ आंदोलन शुरू कर देगा। उन्होंने सरकार को चेतावनी दी कि उसने गांधीजी और वर्किंग कमेटी के सदस्यों को गिरफ्तार करते वक्त यह नहीं खयाल किया कि इसके कितने गम्भीर परिणाम होंगे और उससे राजनीतिक परिस्थिति में रत्ती भर भी सुधार नहीं होगा। श्री नरीमान ने सरकार से अपील की कि वह गांधीजी को उससे पत्र-व्यवहार करने की इजाजत दे और गांधीजी ने सरकार से पत्र-व्यवहार अवश्य किया जैसा कि उपवास से पहले उनके और सरकार के दरमियान हुए पत्र-व्यवहार से प्रकट है। श्री राजगोपालाचार्य ने उपद्रवों की निन्दा करते हुए गतिरोध को दूर करने का अनुरोध किया। भारत के लाट-पादरी ने भी शुरू में ही इस मामले में हस्तक्षेप करते हुए कहा:—"स्वयं कांग्रेस के भीतर ऐसे तत्व विद्यमान् हैं जो मित्रराष्ट्रों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर युद्ध-प्रयत्न में सक्रिय सहयोग प्रदान करने को प्रस्तुत हैं। मेरा यकीन है कि यदि इस समय भारत के वास्तविक राजनीतिक नेताओं की एक ऐसी परिषद् स्थापित कर दी जाय जिसे शासन-व्यवस्था-सम्बन्धी वास्तविक अधिकार प्राप्त हों, तो उससे सभी लोगों को समान-युद्ध-मोर्चे के लिए संगठित किया जा सकेगा।"

इस आंदोलन के सिलसिले में भारतीय सिविल सर्विस के एक सदस्य श्री आर० के० पाटिल, दो एडवोकेट-जनरलों और एक सरकारी वकील ने अपने-अपने पदों से इस्तीफा दे दिया। सरकारी वकील का नाम श्री आर० ए० जागीरदार

और एडवोकेट जनरल का नाम मोतीलाल सी० सीतलवाड था, जो सर चिमनलाल सीतलवाड के पुत्र थे और जो पांच साल तक इस पद पर काम कर चुके थे। दूसरे एडवोकेट बिहार के श्री बलदेवसहाय थे, जिन्होंने अपने इस्तीफे के थोड़ी देर बाद ही सुलह-सफाई के सम्बन्ध में जोरदार अपील की।

इस सम्बन्ध में महाराजा होल्कर ने भी एक अत्यन्त रोचक और दिलचस्प वक्तव्य दिया। भारतीय व्यापार-मण्डल के प्रधान श्री जे० सी० सीतलवाड ने गांधीजी और नेहरूजी जैसे नेताओं को जेल में बन्द कर दिये जाने की निन्दा करते हुए उन लोगों के रुख पर खेद प्रकट किया जो इस आन्दोलन के लिए इन नेताओं को बदनाम कर रहे थे और इसकी सारी जिम्मेदारी उन्हीं पर डाल रहे थे। १५ दिसम्बर १९४२ को निर्दल सम्मेलन की स्थायी समिति ने भी एक जोरदार वक्तव्य प्रकाशित किया। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की जनरल कौंसिल ने ब्रिटेन की ट्रेड यूनियनों और मजदूर दल से महात्मा गांधी, मौलाना आजाद और दूसरे कांग्रेसी नेताओं को तत्काल रिहा करने और भारतीय जनता को तत्काल सत्ता सौंपने की भारतीय मांग को स्वीकार करने के लिए ब्रिटेन की सरकार से अनुरोध करने की अपील की, क्योंकि नेताओं के जेल में रहते हुए किसी किस्म का समझौता सम्भव नहीं था। बम्बई के रहनेवाले ६०० से भी ऊपर पारसियों ने अपने हस्ताक्षरों से एक वक्तव्य जारी किया जिसमें उन्होंने यह घोषणा की कि भारत के नये विधान में उन्हें किसी किस्म के भी संरक्षण नहीं चाहिए। यह वक्तव्य कामन-सभा में दिए गए श्री सी० आर० एटली के उस वक्तव्य के जवाब में था, जो कि उन्होंने भारतीय स्वाधीनता के बारे में दिया था जिसमें उन्होंने कहा था—"भारत में सिक्खों, पारसियों, नरेशों और रियासती जनता जैसे बहुत से बड़े प्रभावशाली अल्पसंख्यक मौजूद हैं, जिनके हितों की ओर हमें खास तौर पर ध्यान देना है।" नवम्बर में एक पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन के सम्मुख सर तेजबहादुर सप्रू ने यह सुझाव रखा कि वाइसराय को चाहिए कि वह राष्ट्रीय आंदोलन के अध्यक्ष के रूप में सभी दलों का एक सम्मेलन बुलाएं, जिसमें कांग्रेस भी शामिल हो। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर सर एस० राधाकृष्णन ने २९ नवम्बर को विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह पर अभिभाषण देते हुए कहा—"हमें सदियों की अपनी निद्रा का त्याग कर अपना मस्तक ऊँचा उठाना चाहिए।" बंगाल चेम्बर की वार्षिक साधारण बैठक के अध्यक्षपद से भाषण देते हुए श्री आर० आर० हैडाऊ ने कहा, "भारत-द्वारा पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करने के सम्बन्ध में हमारा उससे कोई झगड़ा नहीं है, लेकिन उसी प्रकार हम यह बात भी रहस्य के गर्भ में छिपाकर नहीं रखना चाहते कि हमने भारत की उन्नति में जो महान् भाग लिया है और अब तक ले रहे हैं, उसके लिए हमें पूर्ण आश्वासन और संरक्षण दिया जाय।" नवम्बर के मध्य में 'हिन्दू' के बम्बई-स्थित संवाददाता

से अपनी एक भेंट में डा० अम्बेडकर ने यह राय प्रकट की कि इस वक्त भारत में कोई राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, वर्तमान राजनीतिक गतिरोध की वजह इस देश के बहुसंख्यक और अल्पसंख्यकों का पारस्परिक अविश्वास है और भारत की भावी स्थिति को सुलझाने के लिए हमें युद्ध समाप्त होने तक प्रतीक्षा करना बेहतर है। बाद में डा० अम्बेडकर ने गांधीजी और श्री जिन्ना की तुलना करते हुए कहा कि इन दोनों ही नेताओं को भारतीय राजनीति से अलग हो जाना चाहिए। डा० अम्बेडकर के इस वक्तव्य का जवाब देते हुए प्रोफेसर अब्दुल मजीद खाँ ने कहा:—"गांधीजी की श्री जिन्ना से तुलना करते समय डा० अम्बेडकर स्वयं अपनी ही वाक्पटुता के चक्कर में फँसकर अपने को भूल गए। वास्तव में इन दोनों में किसी तरह की तुलना हो ही नहीं सकती। दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है और दोनों एक-दूसरे से सर्वथा विभिन्न हैं। कितने अफसोस और दुर्भाग्य की बात है कि डा० अम्बेडकर दूध और पानी में भी भेद न कर सके।"

अब हम सिन्ध की सब से अधिक महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख करना चाहते हैं। २६ सितम्बर, १९४२ को सिन्ध के प्रधान मन्त्री खान बहादुर अल्लाहबख्श ने ब्रिटिश सरकार की नीति के विरोध स्वरूप वाइसराय को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अपनी 'खान बहादुर' और 'ओ० बी० ई०' की उपाधियों के परित्याग करने की घोषणा की थी। २६ सितम्बर को एक पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन में अपने इस निर्णय की घोषणा करते हुए सिन्ध के बड़े वजीर ने कहा कि ब्रिटेन की नीति, "भारत में अपने साम्राज्य को कायम रखने, और इस देश को परतंत्र बनाए रखने, उसके राजनीतिक और साम्प्रदायिक मतभेदों को अपने प्रचार के लिए इस्तेमाल करने और राष्ट्रीय ताकतों को कुचल कर अपने ही स्वार्थों को पूरा करने की है।" इस सम्मेलन में उन्होंने वाइसराय के नाम भेजे गए अपने पत्र को भी पढ़कर सुनाया। एक सवाल के जवाब में उन्होंने कहा कि उन्होंने एक ओर साम्राज्यवाद और दूसरी ओर नाजीवाद और फासिस्टवाद से दुहरा युद्ध करने की ठान ली है। उन्होंने इस बात पर खास तौर से जोर दिया कि साम्राज्यवाद के खिलाफ युद्ध करना उनका जन्म-सिद्ध अधिकार है और प्रत्येक भारतीय का परम कर्तव्य है कि वह अपने देश पर आक्रमण करने वाली किसी भी शक्ति का डटकर मुकाबला करते हुए देश की रक्षा करे।

मुस्लिम नेताओं की प्रतिक्रिया

जैसी कि आशा थी, कांग्रेस के प्रस्तावित आन्दोलन के सम्बन्ध में लीग की प्रतिक्रिया अनुकूल अथवा तटस्थ नहीं हो सकती थी। लीग कांग्रेस का खुला विरोध ही नहीं कर रही थी, बल्कि वह कांग्रेस-द्वारा आजादी प्राप्त करने के प्रत्येक व्यावहारिक प्रयास का भी विरोध करती थी, जब कांग्रेस के प्रति उसे अपने इतने विरोध

से ही संतोष न हो सका, तब १९४१ में मद्रास में होने वाले अपने वार्षिक अधिवेशन में उसने अपने ध्येय में भारत में पाकिस्तान की स्थापना अथवा मुस्लिम-बहुल प्रान्तों का एक पृथक् स्वायत्त-शासन प्राप्त संघ बनाना भी शामिल कर लिया। दिन-प्रति-दिन, सप्ताह-प्रति-सप्ताह और मास-प्रति-मास लीग का सारा प्रयत्न और ध्यान पाकिस्तान की ओर लगने लगा और बहुत सी घटनाओं के कारण लीग का प्रभाव बढ़ गया। पांच प्रान्तों में स्वायत्त-शासन-प्रणाली के अन्तर्गत मंत्रि-मंडल बनाने के फलस्वरूप कुछ सीमा तक उसकी शक्ति और भी बढ़ गई।

मुस्लिम लीग की वर्किंग कमेटी ने २२ अगस्त, १९४२ को एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें उसने ब्रिटिश सरकार से मुसलमानों के लिए आत्म-निर्णय का अधिकार प्रदान करने और पाकिस्तान की स्थापना के हक में मुसलमानों के मतदान के बाद तुरन्त ही उसे कार्यान्वित करने की मांग करते हुए दूसरी किसी भी पार्टी से देश में एक अस्थायी सरकार स्थापित करने की इच्छा प्रकट की जिससे कि देश की रक्षा और युद्ध के सफल संचालन के लिए भारत के सभी साधनों का संगठन किया जा सके। इसके कुछ समय बाद ही २५ अगस्त को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के छात्र-संघ के सम्मुख भाषण देते हुए वाइसराय की शासन-परिषद् के रक्षा-सदस्य सर फीरोज खां नून ने भारत को पांच स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेशों में विभाजित कर देने की एक योजना प्रस्तुत की। उन्होंने कहा:—

"मैं चाहता हूँ कि ब्रिटिश भारत पांच स्वाधीनता-प्राप्त उपनिवेशों में विभक्त कर दिया जाय:—(१) बंगाल और आसाम, (२) मध्यप्रान्त, उत्तर प्रदेश और बिहार, (३) मद्रास अर्थात् द्राविड़ी, (४) बम्बई अर्थात् महाराष्ट्र और (५) पंजाब, बिलोचिस्तान, सिन्ध और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त। ये पांचों उपनिवेश न्यूजीलैण्ड, जिसकी जनसंख्या १५ लाख है, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका जिनमें से प्रत्येक की जन-संख्या ७० या ८० लाख है, की भांति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो सकते हैं। किन्तु कुछ ऐसी भी बातें हैं, जिनके लिए एक केन्द्रीय सत्ता और सब उपनिवेशों की तरफ से सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता है। ये विषय, मेरे विचार से रक्षा, कस्टम (आयात-निर्यात-कर), पर-राष्ट्र सम्बन्ध और मुद्रा हैं। इन चारों विषयों के प्रबन्ध के लिए मैं एक केन्द्रीय सरकार की रचना का पक्षपाती हूँ, जिसमें पांचों उपनिवेश-सरकारों-द्वारा नामजद किए हुए प्रतिनिधि सम्मिलित हों। ये प्रतिनिधि तब तक अपने पदों पर बने रहेंगे जब तक कि नियुक्त करने वाले अधिकारी अपने उपनिवेशों में शासनारूढ़ रहेंगे। परन्तु यह बात इस महत्वपूर्ण शर्त के साथ लागू होगी कि यदि किसी समय किसी उपनिवेश को केन्द्रीय शासन के संचालन से असंतोष होगा तो उस उपनिवेश को यह अधिकार होगा कि वह केन्द्र से पृथक् हो जाय, किन्तु साथ ही यह व्यवस्था भी रहेगी कि इस

प्रकार पृथक् होने वाला उपनिवेश मतभेद दूर हो जाने पर फिर केन्द्र में प्रविष्ट हो सके।"

बम्बई-प्रस्ताव के सम्बन्ध में श्री जिन्ना ने कहा:—

"मुझे अत्यंत खेद है कि आखिरकार कांग्रेस ने रणभेरी छेड़ ही दी और उसने देश के विभिन्न व्यक्तियों, दलों और संगठनों-द्वारा दी गई चेतावनियों की तनिक भी परवाह न कर एक अत्यन्त खतरनाक सामूहिक आन्दोलन शुरू कर दिया। यह यकीन करना असम्भव है कि कांग्रेस के नेता यह बात न जानते थे कि इस तरह के आन्दोलन का परिणाम हिंसा, रक्तपात और बेगुनाह लोगों का विनाश होगा। यह और भी अधिक खेदजनक है कि यह आन्दोलन इस संकटपूर्ण घड़ी में शुरू किया जा रहा है और इसका वास्तविक उद्देश्य संगीनों का भय दिखा कर जबरदस्ती अपनी मांगें मनवाना है और अगर कांग्रेस के इस धृष्ठतापूर्ण रुख और उसकी मनमानी एवं उत्तरदायित्वविहीन चुनौती से डर कर उसे खुश करने की कोशिश की गई तो उसका परिणाम पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण और दूसरे सभी प्रकार के हितों का विशेषकर मुस्लिम भारत के स्वार्थों का बलिदान होगा।" सितम्बर में एक भेंट में उन्होंने कहा:—

"अखिल-भारतीय महासमिति की अन्तिम बैठक के अन्तिम अधिवेशन में गांधीजी ने यह बात बहुत जोर देकर कही थी कि केवल कांग्रेस ही भारत की एकमात्र प्रतिनिधि-संस्था है। यही बात पण्डित नेहरू ने भी कही, लेकिन वह उनसे भी आगे बढ़ गए और कहा कि मुस्लिम-लीग एक प्रतिक्रियावादी संस्था है और मुस्लिम जनता उसके साथ है तथा कांग्रेस ही समस्त देश का प्रतिनिधित्व करने वाली एकमात्र संस्था है। यह बात केवल भारत में ही नहीं कही गई, बल्कि इसका ढिंढोरा सारी दुनिया में पीटा गया और चूँकि उन देशों की जनता भारत की वास्तविक परिस्थिति से परिचित नहीं है, इसलिए वह इस पर यकीन कर लेती है। यह दूषित और संगठित प्रोपेगैंडा जनता को धोखे में रखने की गरज से किया जाता है और अगर आप श्री चर्चिल का भाषण पढ़ कर देखें तो आप जान जाएंगे कि उन्होंने कांग्रेस के इस दावे का खण्डन किया है।"

युद्ध-प्रयत्न के सम्बन्ध में एक अमरीकी संवाददाता के प्रश्न के जवाब में श्री जिन्ना ने निम्न वक्तव्य दिया:—"मुस्लिम-लीग युद्ध-प्रयत्न में सहयोग नहीं दे रही है। इसकी वजह यह नहीं है कि वह इसका विरोध करती है, बल्कि यह है कि वह तब तक युद्ध-संचालन में हार्दिक सहयोग और सहायता प्रदान करने को तैयार नहीं है जब तक कि जनता यह न अनुभव करने लग जाय कि देश के शासन-संचालन में उसका वास्तविक हाथ है। परन्तु हम ब्रिटिश सरकार की नीति की चाहे कितनी ही निन्दा क्यों न करें अथवा उस पर कितना ही खेद क्यों न प्रकट करें, पिछले तीन साल में हमारी हालत एक खरबूजे जैसी रही है। चाहे खरबूजा छुरी पर रहे अथवा

छुरी खरबूजे पर रहे—दोनों ही तरह से नुकसान तो बेचारे खरबूजे का ही है। गला तो उसीका कटेगा। मान लीजिए कि ब्रिटिश सरकार की नीति से तंग आ कर मैं गुस्से में कल से यह कहने लगूं कि 'ब्रिटिश सरकार को परेशान करो और उसके साथ असहयोग करो'—तो आप यकीन रखिए कि इसकी वजह से आज की अपेक्षा हमें पांच सौ गुना अधिक मुसीबतें झेलनी पड़ेंगी। यह सवाल कोई बन्दूकों का नहीं है, इस तरह से तो मुसलमानों के पास पांच सौ गुना ज्यादा बन्दूकें हैं। मैं यद्यपि हिन्दुओं को भला-बुरा नहीं कहना चाहता, लेकिन भारत में कोई भी विवेकशील व्यक्ति आपको यह बता देगा कि यह तो उन (हिन्दुओं) का स्वभाव ही है और उन्हें इसी वातावरण में पाला-पोसा गया है। लेकिन मैं स्वयं अपने से ही पूछता हूं कि क्या यह ठीक है कि हम पांच सौ गुना अधिक तकलीफें दे सकते हैं, पर सवाल तो यह है कि आखिर इसका नतीजा क्या निकलेग्रा? मुझे तो इसके केवल दो ही परिणाम दिखाई देते हैं—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अथवा उत्तर किसी भी दिशा से विदेशी आक्रान्ता इस देश पर छा जायगा। अगर ऐसा हुआ तो फिर भला मेरी कुर्बानियों से क्या लाभ होगा? और अगर दूसरे दल मेरे साथ नहीं हैं तो इसका परिणाम गृह युद्ध होगा। दूसरा परिणाम मुझे यह दिखाई देता है कि अगर मुसलमान इस विद्रोह की आग लगाते हैं और वे ब्रिटिश सत्ता को पंगु बना देने के काम में सफल भी हो जाते हैं, तब भी मेरा खयाल है कि उसके परिणामस्वरूप भारत के टुकड़े-टुकड़े हो जायंगे। चाहे मैं ब्रिटेन की नीति की कितनी ही निन्दा क्यों न करूँ और इस बारे में जोरदार विचार प्रकट करूँ, फिर भी जब मैं इन परिणामों की बात सोचता हूँ तब मैं इसी नतीजे पर पहुँचता हूँ कि मेरी स्थिति खरबूजे से भिन्न नहीं है।"

श्री जिन्ना का सब से अधिक अनोखा रुख उस वक्त प्रकट हुआ जब कि उन्होंने 'न्यूज क्रानिकल' के संवाददाता से एक भेंट में १३ अक्टूबर को जोरदार शब्दों में यह कहा कि "भारत कभी भी अपनी समस्याओं का हल ढूंढ़ने में सफल नहीं हो सका है, और अतीत में सदैव ब्रिटेन ने अपना हल भारत के ऊपर लादा है। इस समय वह ब्रिटेन से यह पक्का वादा ले लेना चाहते हैं कि लड़ाई के बाद उन्हें पाकिस्तान मिल जायगा और इसके बदले में वह एक अस्थायी सरकार में इस शर्त पर शामिल होने को तैयार होंगे कि उन्हें भी हिन्दुओं जितनी ही सीटें मिलें।" आगे उन्होंने कहा, "अगर ब्रिटिश सरकार कल ही ऐसा कोई आश्वासन दे दे तो मेरा खयाल है कि हिन्दू-भारत इस प्रत्यक्ष और अनिवार्य परिणाम को स्वीकार कर लेगा।"

इस समय सर सिकन्दर हयात खां ने पंजाब की अन्तःसांप्रदायिक समस्या को सुलझाने के लिए एक हल निकाला। उनकी योजना के अन्तर्गत पंजाब को दो हिस्सों में बाँट देने की बात कही गई थी—पूर्वी और पश्चिमी भाग। परन्तु यह

विभाजन उसी हालत में किया जाना था जब वर्तमान मताधिकार के आधार पर निर्वाचित आगामी प्रान्तीय धारासभा के ७५ प्रतिशत सदस्य यह फैसला करें कि पंजाब प्रस्तावित संघ में शामिल नहीं होगा। उस अवस्था में धारासभा के मुसलमान और गैर-मुसलमान सदस्य ६० प्रतिशत बहुमत से यह फैसला कर लें कि क्या उन्हें अपने-अपने सम्प्रदाय के लिए पृथक्-पृथक् राष्ट्र स्थापित करने चाहिए या नहीं। परन्तु इसका फैसला जनता की मतगणना के जरिये ही किया जाय और केवल वही लोग इसके लिए वोट दें जिन्हें ऐसा करने का हक़ हासिल हो। यदि मुस्लिम-बहुल आबादी वाला पश्चिमी प्रदेश प्रस्तावित संघ से अलग रहने का फैसला करे तो पूर्वी पंजाब के हिन्दू और सिक्ख बहुल इलाके को भी हक़ हो कि वह अपनी इच्छा से भारतीय संघ में शामिल हो जाय। लेकिन इतने पर भी सर सिकन्दर ने एक ही राष्ट्र का प्रतिपादन करते हुए गुरु नानक के जन्म-दिवस पर दिसम्बर १९४२ में कहा कि, "हम एक ही राष्ट्र हैं और हमारा एक ही देश है।" दिसम्बर में भारत और इंग्लैण्ड दोनों ही जगह मुगल सम्राट् अकबर की ४०० वीं सालगिरह मनाई गई। लन्दन के समारोह में श्री एमरी ने भी भाग लिया। इस अवसर पर उन्होंने भारतीयों को अकबर की नीति पर चलने की सलाह दी।

इन्हीं दिनों सर मोहम्मद ज़फ़रुल्ला ख़ां प्रशान्त संघ के सम्मेलन में भाग लेने अमरीका गए हुए थे। न्यूयार्क से केनेडा जाते हुए उन्होंने भारतीय समस्या को सुलझाने के लिये दो तरीके बताए। उन्होंने कहा कि पहला तरीक़ा यह है कि कांग्रेस उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम के इलाक़ों में पाकिस्तान की स्थापना के सम्बन्ध में श्री जिन्ना की मांग स्वीकार कर ले। दूसरा यह कि अंग्रेजों को भारत छोड़ कर चले जाने की मांग करने से पूर्व महात्मा गांधी, पंडित नेहरू और उनके अन्य सहयोगियों को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि "मुसलमानों का डर उचित है और इसलिए उन्हें एक ऐसा समझौता कर लेना चाहिए जिसके अन्तर्गत मुसलमानों और दूसरे अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संरक्षण की उचित व्यवस्था कर दी गई हो।"

लीग के सभी अनुयायी उसके दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे। एक विचारपत्र में मुसलमानों की ओर से भारत में ब्रिटिश हुकूमत खत्म किये जाने, नेताओं की रिहाई और जिन्ना से कांग्रेस के साथ फिर समझौते की बातचीत शुरू करने की मांग की गई। इसके अलावा इसमें तत्काल कांग्रेस और लीग में समझौते और एकता की आवश्यकता और इस संकटपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में विदेशी आक्रमण के विरुद्ध भारत की रक्षा के लिए एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की भी ज़ोरदार मांग की गई।

नवम्बर १९४२ के मध्य में दिल्ली में श्री जिन्ना ने भारत के मुसलमानों से पाकिस्तान हासिल करने के लिए कटिबद्ध रहने की अपील करते हुए कहा कि

या तो हम पाकिस्तान लेकर रहेंगे और या फिर अपना अस्तित्व ही मिटा देंगे। १९१७ में श्री जिन्ना एक संयुक्त भारत के ज़बरदस्त हामी थे, लेकिन १९४२ में हम देखते हैं कि वह अपने इस उच्च आदर्श से कितना नीचे गिर गये थे। १९४२ (दिसम्बर) में कलकत्ता के फेडरेशन आफ (यूरोपियन) चैम्बर्स आफ कामर्स के सम्मुख भाषण देते हुए वाइसराय ने भारत की 'भौगोलिक एकता' पर जोर देकर मुस्लिम लीग की मांग पर पानी फेर दिया था। इसके बाद भारत से प्रस्थान करने से पूर्व नरेन्द्र मण्डल के सम्मुख दिए गए अपने भाषण में भी लार्ड लिनलिथगो ने भारत के लिए संघ-योजना का ज़ोरदार समर्थन कर लीग के इस आदर्श पर अपना अन्तिम प्रहार किया था। इसी बीच सिन्ध में श्री अब्दुल मजीद और सिन्ध असेम्बली के दो और सदस्यों ने मुस्लिम लीग से इस्तीफा दे दिया।

आजाद मुस्लिम कान्फ्रेंस ने दिल्ली में हुई अपनी एक बैठक में निम्न प्रस्ताव पास किया—"आजाद मुस्लिम बोर्ड की यह सभा भारत के लोगों से अपील करती है कि वे इस महान् संकट के अवसर पर देश और जाति के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अन्तर्सांप्रदायिक एकता और विश्वास की दृढ़ भावना पैदा करने के लिए अपनी कोई कसर न उठा रखें। सांप्रदायिक समस्या के निवटारे के सिलसिले में कांग्रेस इतना आगे बढ़ चुकी है कि उसके नेताओं के साथ और समझौता करके युद्धोत्तरकालीन वैधानिक फैसले में किसी भी संप्रदाय के हितों और अधिकारों को नुकसान पहुंचाए बिना ही युद्धकाल तक के लिए एक अस्थायी संयुक्त सरकार की स्थापना की जा सकती है।"

भारत की भावी स्थिति से सम्बन्ध रखनेवाली संपूर्ण समस्या के प्रति श्री जिन्ना के रुख का उनके धर्मावलंबियों की एक बड़ी संख्या समर्थन नहीं कर रही थी और इसकी पुष्टि इस बात से हो जाती है कि पाकिस्तान की योजना के खिलाफ़ लड़ने के लिए जून १९४३ के मध्य में शेख मुहम्मद एम० एल० सी० की अध्यक्षता में 'मुस्लिम मजलिस' नाम से एक नये मुस्लिम संगठन की नींव रखी गई जिसका प्रधान कार्यालय कलकत्ता में था। अखबारों के नाम जारी किये गए अपने एक वक्तव्य में उन्होंने कहा—"पिछले दो वर्षों से श्री जिन्ना ने बारंबार कोई-न-कोई बहाना करके कांग्रेस के नेताओं से मुलाकात करने में अपनी असमर्थता प्रकट की है और उन्हें यह बताने की कोशिश भी नहीं की कि पाकिस्तान की योजना या मुसलमानों के लिए आत्मनिर्णय के अधिकार से उनका वास्तविक अर्थ क्या है। कांग्रेस से बिना शर्त आत्मसमर्पण करने की उनकी मांग के कारण उनके कट्टर समर्थकों को भी यकीन हो गया है कि श्री जिन्ना को न तो भारत की आजादी की परवाह है और न पाकिस्तान की ही। उन्हें तो केवल इस बात की परवाह है कि भारत की आजादी और पाकिस्तान को खो देने का खतरा उठा कर भी किसी-न-किसी प्रकार उनकी मौजूदा अनुचित स्थिति बनी रहे। इस मजलिस के तीन

उद्देश्य हैं। इसका पहला उद्देश्य भारतीय-समस्या का हल ढूंढ़ने के लिए अन्य दलों के साथ मिलकर देश के वर्तमान गतिरोध को दूर करना है, दूसरा उद्देश्य भारत के लिए राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति और तीसरा न केवल भारत के मुसलमानों की जन-संख्या को देखते हुए ही, बल्कि भारत में मुसलमानों की विशिष्ट परिस्थिति और इस उप-महाद्वीप में उसके महत्व का खयाल रखते हुए उनके अधिकारों का संरक्षण करने की व्यवस्था है। इसके अलावा मजलिस का एक और उद्देश्य भारत के विभाजन का विरोध करना है, क्योंकि यह न केवल अव्यावहारिक और भारत की आजादी को नुकसान पहुंचाने वाला है, बल्कि उससे भारतीय मुसलमानों के हितों को नुकसान पहुंचेगा।

हिन्दू-सभा की प्रतिक्रिया

समय-समय पर भारतीय राजनीतिक आकाश में विभिन्न राजनीतिक अथवा सामाजिकता-युक्त राजनीतिक संस्थाओं ने जन्म लिया है। इनमें से पुरानी राष्ट्रीय महासभा और सब से छोटी एवं नवीनतम संस्था हिन्दू महासभा है। २९ दिसम्बर १९४२ को कानपुर में उसका २४ वां अधिवेशन हुआ था। जिस प्रकार कांग्रेस और लीग को भारत-सरकार ने सदा से अधिकृत संस्थाओं के रूप में स्वीकारकर लिया था, उसी प्रकार उसने ८ अगस्त १९४० वाले वक्तव्य में पहली बार हिन्दू महासभा को भी एक अधिकृत संस्था मान लिया था। गांधीजी और उनके साथियों की गिरफ्तारी के अवसर पर श्री सावरकर ने हिन्दुओं को सलाह दी कि वे "कांग्रेस-आन्दोलन में किसी प्रकार की भी मदद न करें।" इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी, क्योंकि वह भारतीय राष्ट्रवाद के स्थान पर हिन्दुत्व और हिन्दू सांप्रदायिकता का प्रचार करते रहे थे। कांग्रेस के जेल जाने के बाद मुस्लिम-बहुल प्रान्तों में मंत्रिमंडल बनाने में उन्होंने विभिन्न प्रान्तों में अलग-अलग कारणों से हिन्दुओं को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया, लेकिन इन सभी मामलों में वास्तव में वह मुस्लिम लीग की नीति का अनुसरण कर रहे थे। लीग की भांति उन्हें भविष्य के बजाय अपने तात्कालिक उद्देश्य की अधिक परवाह थी, भारतीय आजादी के बजाय सांप्रदायिक लाभ का अधिक ध्यान था और ब्रिटेन के विरुद्ध लड़ने के बजाय उसके साथ मिल कर काम करने की नीति अधिक पसन्द थी।

भारतीय ईसाइयों की प्रतिक्रिया

जैसी कि आशा की जाती थी, अगस्त-प्रस्ताव के सम्बन्ध में भारतीय ईसाइयों की प्रतिक्रिया अच्छी और संतोषजनक रही। मार्च में दिल्ली में होनेवाले अखिल भारतीय ईसाई सम्मेलन के २५ वें अधिवेशन के नाम अपने स्वागत-सन्देश में सर फ्रेडरिक जेम्स ने कहा कि यह सम्मेलन भारत में सुलह-सफाई कराने के लिए एक

सर्वथा उचित साधन सिद्ध हो सकता है। कांफ्रेंस के सम्मुख भाषण देते हुए पण्डित कुंजरू ने कहा कि एक ऐसे समय में जब कि देश के विभाजन का खतरा बढ़ता जा रहा है, केवल यही एकमात्र संस्था है जो देश की एकता का प्रतिपादन करती हुई साम्प्रदायिक हितों का खयाल न कर के देश के हितों को सर्वोपरि स्थान देने को तैयार है। इसके अलावा भारतीय ईसाई स्वयं भी चूंकि एक अल्पसंख्यक हैं, इसलिए वे साधारणतः दूसरे अल्पमतों की कठिनाइयों और दृष्टिकोण को अच्छी तरह समझ सकते हैं। सर महाराजसिंह ने अध्यक्षपद से भाषण देते हुए सांप्रदायिक समस्या को सुलझाने, गांधीजी को रिहा करने, भारतीय राजनीतिक समस्या को हल करने के लिए सभी प्रमुख दलों की एक गोलमेज-परिषद् बुलाने और लड़ाई के समाप्त होने तक पाकिस्तान के बारे में अन्तिम निर्णय स्थगित करने की जोरदार अपील की। इसके अलावा सम्मेलन ने यह सुझाव भी पेश किया कि अगर विभिन्न सम्प्रदायों में कोई समझौता न हो सके तो 'इस समस्या का फैसला एक अन्तर्राष्ट्रीय पंच से करा लिया जाय।' सांप्रदायिक समस्या को सुलझाने के अलावा सम्मेलन ने ब्रिटिश सरकार से लड़ाई ख़त्म हो जाने के बाद दो साल के भीतर भारत को पूर्ण आजादी देने की स्पष्ट घोषणा करने के लिए भी कहा।

: २० :

उपवास और उसके बाद : १९४३

उपवास का आरंभ

गांधीजी और उनके सहयोगियों को जेल में गए हुए लगभग छः महीने होने को आए थे। बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में उन्होंने अपने मित्र वाइसराय को पत्र लिखने की घोषणा की थी। स्वतंत्र रहते हुए उन्हें जो बात लिखने की इजाज़त नहीं दी गई थी, उसे उन्होंने आगाखां महल से एक नजरबन्द कैदी की हैसियत से लिखने का साहस किया। उसी वक्त किसी तरह यह खबर समाचार-पत्रों को भी लग गयी, लेकिन किसी को नहीं मालूम था कि उन्होंने क्या लिखा है और न कोई यही कह सकता था कि जो कुछ उन्होंने सितम्बर १९४२ में लिखा है, वह वही है जो वह जेल से बाहर रहने पर ९ अगस्त को लिखते। इस दौरान में गांधीजी और उनके अनुयायियों पर अनेक तरह के लांछन और दोष लगाए गए। उन्हें झूठा कहा गया। उनके इरादों और मकसदों के बारे में सन्देह प्रकट किया गया। जनता को बताया गया कि वह

चुपचाप आंदोलन की तैयारियां कर रहे थे और उसके लिए उन्होंने जरूरी हिदायतें भी जारी की हैं। उन्होंने अनैतिकता से काम लिया, इत्यादि इत्यादि। इसलिए इन सब बातों का खण्डन करना उनका आवश्यक कर्तव्य हो गया था। लेकिन वह ऐसा करने में स्वतन्त्र नहीं थे, यद्यपि सरकार की ओर से यह कहा जा रहा था कि उन्हें अपने विचारों का खण्डन-मंडन करने की पूरी स्वतन्त्रता है, तथापि सिद्धांत-प्रिय और सत्य, अहिंसा एवं प्रेम के पुजारी व्यक्ति के पास एक उच्च शक्ति का सहारा लेने के सिवाय और कोई चारा ही नहीं था। इस उच्च शक्ति का सहारा उन्होंने उपवास के रूप में लिया।

गांधीजी के उपवास का समाचार पहले-पहल जनता को केवल १० फरवरी और वर्किंग-कमेटी के सदस्यों को अहमदनगर किले में ११ फरवरी को मिला। यदि उनकी गिरफ्तारी के बाद एक सप्ताह के भीतर ही उनके सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई की अचानक मृत्यु न हो गई होती तो वह यह उपवास बहुत पहले ही शुरू कर देते। इस संबंध में ५ फरवरी १९४३ को लार्ड लिनलिथगो ने गांधीजी को जो पत्र लिखा उसके निम्न अंश से उन (लिनलिथगो) की निर्भयता और निर्दयता पर प्रकाश पड़ता है:—

"आप इस बात का यकीन रखिए कि कांग्रेस के ऊपर जो इलजाम लगाए गए हैं, उनका उसे एक-न-एक दिन जवाब देना ही होगा और उस समय आपको और आपके साथियों को, अगर हो सके तो, दुनिया के सामने अपनी सफाई देनी पड़ेगी। और यदि इस दौरान में किसी ऐसी कार्रवाई के जरिये, जिसकी आप इस समय कल्पना कर रहे प्रतीत होते हैं, अपने आपको इस तरह से आसानी से बचा लेना चाहते हैं तो मैं आपको स्पष्ट बतादूं कि फैसला आपके खिलाफ जायगा।" परन्तु इस निन्दनीय आरोप के बावजूद भी गांधीजी ने अनशन आरम्भ किया।

उपवास की प्रगति

गांधीजी के उपवास की सूचना जनता को जल्दी-से-जल्दी उसके दूसरे दिन और साधारणतः तीसरे दिन मिली। सौभाग्यवश श्रीमती कस्तूरबा गांधी और मीराबेन के अतिरिक्त श्रीमती सरोजिनी नायडू भी इस अवसर पर गांधीजी के पास थीं। आगाखां महल से कुछ ही दूर यरवड़ा जेल में डा० गिल्डर भी नजरबन्द थे। इस मौके पर उन्हें ११ फरवरी को आगाखां महल जाने की इजाजत दे दी गई और इस प्रकार डा० गिल्डर भी गांधीजी के पास पहुँच गए। गांधीजी को केवल दो घण्टे के लिए हर रोज बाहर बरामदे में लाया जाता था। उपवास के चौथे दिन से उनका जी मचलाने लगा और उन्हें नींद न आने की वजह से बड़ी बेचैनी होने लगी। जी मचलने और नींद न आने के कारण १५ फरवरी को उनकी हालत १४ फरवरी की तरह सन्तोषजनक नहीं थी। बेचैनी रहने

और पानी पीने में कठिनाई होने के कारण धीरे-धीरे गांधीजी की हालत बिगड़ने लगी। १५ फरवरी को डा० विधानचन्द्र राय भी पूना पहुँच गए और वह ३ मार्च तक वहीं रहे। कान, नाक और गले के एक विशेषज्ञ डा० मांडलिक ने भी गांधीजी की परीक्षा की। उपवास के दूसरे सप्ताह में गांधीजी की आम हालत के बारे में चिन्ता होने लगी। १६ फरवरी के बाद से नित्य प्रति उनकी मालिश की जाने लगी। अगले दिन हृदय-गति मन्द पड़ने लगी। १९ फरवरी के बाद से छः डाक्टरों—श्री एम० डी० डी० गिल्डर, मेजर-जनरल कैण्डी, बम्बई के सर्जन-जनरल, डा० बी० सी० राय, लेफ्टिनेन्ट-कर्नल भण्डारी, आई० जी० पी०, डा० सुशीला नायर और लेफ्टिनेन्ट-कर्नल बी० जे० शाह के हस्ताक्षरों से बम्बई-सरकार की ओर से गांधीजी के स्वास्थ्य के बारे में बुलेटिन प्रकाशित होने लगे। गांधीजी बोलना नहीं चाहते थे और न वह अपने दर्शकों से मिलना चाहते थे। यह देखकर डाक्टरों को बड़ी चिन्ता होने लगी।

१९ तारीख को गांधीजी को श्री मोदी, श्री सरकार और श्री अणे के इस्तीफे की सूचना दी गई। इससे वह कुछ मुस्कराए। २० फरवरी के बुलेटिन में बताया गया कि गांधीजी की हालत खराब होगई है और बहुत गम्भीर है। २१ फरवरी को अर्थात् उपवास के बारहवें दिन बताया गया कि वे दिन भर बहुत बेचैन रहे। दोपहर को ४ बजे उनकी हालत ख़तरनाक हो गई और वह प्रायः बेहोश हो गए। उनकी नब्ज़ इतनी हल्की होगई कि उसे प्रायः पहचानना कठिन हो गया। बाद में वह नींबू के मीठे रस के साथ पानी पी सकने में समर्थ हो सके। उस दिन वह खतरे से बाहर हो गए और रात को ५।। घण्टे सोए। २२ फरवरी को गांधीजी का मौन दिवस था। वह आराम अनुभव कर रहे थे और अधिक प्रसन्न दिखाई देते थे, लेकिन हृदय कमज़ोर था। तीसरे सप्ताह का प्रारंभ होने पर पेशाब की शिकायत धीरे-धीरे दूर होने लगी और वह अधिक खुश नज़र आने लगे। २५ फरवरी को गांधीजी बहुत प्रसन्न थे। उस दिन प्रातःकाल उन्होंने स्पंज स्नान किया और मालिश की। दो दिन तक नींबू का मीठा रस और पानी पीने के बाद गांधीजी ने इसकी मिकदार कम करदी। २७ तारीख के बुलेटिन में बताया गया कि गांधीजी आज उदासीन-से दिखाई देते थे, लेकिन अगले दिन वह सजग और अधिक खुश थे। पहली मार्च को सोमवार था। यद्यपि वह खुश दिखाई देते थे तथापि मुलाकात करनेवालों के कारण वह थकावट महसूस कर रहे थे। ३ मार्च को सुबह ९ बजे गांधीजी ने अपना उपवास खोला। लेकिन सरकार यह सहन नहीं कर सकती थी कि उस दिन खुशियां मनाई जायँ। इसलिए उसने दर्शकों को उनसे मिलने की इजाज़त नहीं दी। दर्शकों की संख्या कम होने के कारण इस समारोह में अधिक गम्भीरता आ गई, लेकिन गांधीजी से मिलनेवालों ने शहर में अन्यत्र एक सभा की जिसमें गांधीजी की दीर्घायु के लिए कामना की

गई। इस सभा में श्री अणे भी उपस्थित थे। इसके बाद गांधीजी के स्वास्थ्य में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई।

इंग्लैण्ड में उपवास की प्रतिक्रिया

मार्च के पहले सप्ताह में गांधीजी के उपवास समाप्त होने के परिणामस्वरूप ब्रिटेन की जनता का ध्यान पुनः भारतीय गतिरोध को दूर करने की ओर आकृष्ट हुआ। 'मांचेस्टर गार्जियन' ने अपने एक संपादकीय लेख में लिखा:—

"यह सौभाग्य की बात है कि हमारे और भारत के दरम्यान अन्तिम मैत्री स्थापित होने की आशा से गांधीजी जीवित रहे। परन्तु यह सत्य है कि भारत की राजनैतिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ।"

गांधीजी ने हाल के उपद्रवों की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने से साफ इन्कार कर दिया था, इस पर टिप्पणी करते हुए उसने लिखा—"कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी के बाद से सरकार ने ऐसी कोई भी कार्रवाई नहीं की जिससे देश के विद्यमान् खिंचाव में कमी हो जाती। स्थिति को सुधारने के लिए न तो कुछ किया गया है और न किया जा रहा है और अब गांधीजी जो उपवास करने जा रहे हैं भले ही भारत-सरकार उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर न ले, परन्तु हो सकता है कि भारत पर उसका व्यापक प्रभाव पड़े।" पार्ल्यामेंट के बहुत से मजदूरदली सदस्यों ने भारत की परिस्थिति, विशेष कर उपवास के समय गांधीजी को नजरबन्द रखने के सम्बन्ध में गहरी चिन्ता प्रकट की। वाइसराय की शासन-परिषद् के तीन सदस्यों के इस्तीफे का समाचार मिलने के बाद इनमें से लगभग १५ सदस्यों ने १७ फरवरी को कामन-सभा के कमेटी रूम में एक बैठक की। लन्दन में इंडिया लीग द्वारा आयोजित एक सभा में भाषण देते हुए लार्ड स्ट्रैबोल्गी ने कहा कि अगर कहीं उपवास के परिणाम स्वरूप गांधीजी की जान जाती रही तो उन्हें आशंका है कि हिन्दुओं के साथ ब्रिटेन के भावी सम्बन्ध बहुत कटु और खतरनाक हो जाएंगे।

२५ फरवरी को एक शिष्ट मण्डल ने, जिसमें श्री कैनन हालैण्ड और पार्ल्यामेंट के मजदूर-दल के बहुत-से सदस्य भी शामिल थे, श्री एमरी से भेंट की और उनसे गांधीजी को रिहा करने और गांधीजी तथा कांग्रेसी नेताओं में पारस्परिक संपर्क स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर दिया। कामन-सभा में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री एमरी ने कहा कि ब्रिटिश-सरकार भारत-सरकार के इस फैसले से पूर्णतः सहमत है कि इस प्रकार गांधीजी-द्वारा बिना शर्त अपनी रिहाई की कोशिश के आगे घुटने न टेके जायँ।

उपवास की समाप्ति पर बहुत कम ब्रिटिश-पत्रों ने कोई राय जाहिर की। 'डेलीमेल' और 'डेली टेलिग्राफ' ने इसे ब्रिटिश-सरकार की विजय बताया।

उदार-दली पत्र 'स्टार' ने कहा कि उपवास के परिणामस्वरूप भारतीयों की मनोकामना पूरी नहीं हो सकी। इंडिया लीग-द्वारा आयोजित एक सभा में ३ मार्च को भाषण देते हुए लार्ड स्ट्रैबोल्गी ने कहा कि अब जबकि गांधीजी का उपवास खत्म हो गया है, कांग्रेस के नेताओं और भारत के अन्य समुदायों के साथ तुरन्त ही नये सिरे से समझौते की बात-चीत शुरू कर देनी चाहिए और गांधीजी की रिहाई इस दिशा में पहला कदम हो सकता है। प्रोफेसर लास्की ने ९ मार्च, १९४३ के 'रेनाल्ड्स न्यूज़' में लिखा : "ब्रिटिश सरकार निस्सन्देह सौभाग्यशालिनी है कि उपवास के दौरान में गांधीजी की मृत्यु नहीं हुई, अगर कहीं ऐसा हो जाता तो हमारे इन दोनों देशों के दरम्यान बहुत भारी गलतफहमी पैदा हो जाती जिसे दूर करना असम्भव हो जाता।" लार्ड हेरिंगडन, श्री एडवर्ड थामसन, श्री लारेंस हाउसमैन और कैण्टरबरी के डीन ने गांधीजी को तत्काल रिहा कर देने की आवश्यकता पर जोर देते हुए संदेश भेजे।

अमरीका में उपवास की प्रतिक्रिया

अमरीका में उपवास की विभिन्न प्रतिक्रिया हुई। अमरीका के सभी प्रमुख पत्रों में गांधीजी के उपवास और वायसराय के साथ उनके पत्र-व्यवहार का विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ। १२ फरवरी तक न्यूयार्क और वाशिंगटन के किसी भी पत्र ने इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं की। अमरीका की प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों ने कहा कि उनके पास गांधीजी की कारंवाइयों के अध्ययन करने का समय नहीं है और इसलिए वे इस सम्बन्ध में कोई राय प्रकट करने को तैयार नहीं हैं।

गांधीजी के उपवास के सम्बन्ध में २२ फरवरी को अपने संपादकीय लेख में टिप्पणी करते हुए 'न्यूयार्क टाइम्स' ने लिखा, "भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जिस व्यक्ति ने अपना सारा जीवन लगा दिया है, उसकी चरम सीमा अब उपवास में जाकर समाप्त हो रही प्रतीत होती है। पिछले सप्ताह गांधीजी की गम्भीर अवस्था के कारण एक बड़ा संकट पैदा हो गया है।" २० फरवरी को अमरीका के स्वराष्ट्र-मंत्री श्री कार्डल हल और ब्रिटेन के राजदूत लार्ड हेलीफेक्स ने एक-दूसरे से बातचीत की, और श्री हल ने गांधीजी के उपवास से पैदा होनेवाली परिस्थिति के सम्बन्ध में गहरी चिन्ता प्रकट की।

भारत में उपवास की प्रतिक्रिया

उपवास की महत्वपूर्ण और सर्वप्रथम प्रतिक्रिया भारत में यह हुई कि १७ फरवरी १९४३ को श्री एच० पी० मोदी, श्री एस० एस० अणे और श्री एन० आर० सरकार ने सरकार-द्वारा गांधीजी को रिहा न करने के विरोध में वाइसराय की शासन-परिषद् से इस्तीफा दे दिया। इस नयी परिस्थिति पर सोच-

विचार करने के लिए १९ फरवरी को नयी दिल्ली में नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया गया। इसमें भाग लेने के लिए विभिन्न दृष्टिकोण रखनेवाले लगभग १५० प्रमुख नेताओं को, जिनमें श्री जिन्ना भी शामिल थे, बुलाया गया। लेकिन श्री जिन्ना ने यह कहकर इसमें भाग लेने से इन्कार कर दिया कि "गांधीजी के उपवास के कारण पैदा होनेवाली परिस्थिति पर सोच-विचार करने का काम वास्तव में हिन्दू-नेताओं का है।"

इस सम्बन्ध में सब से पहले अपने विचार प्रकट करनेवाले सार्वजनिक नेता हिन्दू-महासभा के कार्यवाहक अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी थे। उन्होंने एक वक्तव्य में कहा—"महात्मा गांधी के बिना भारतीय समस्या कभी नहीं सुलझ सकती।" भारतीय व्यापार और उद्योग-संघ के प्रधान श्री जी०एल०मेहता ने वाइसराय के नाम अपने तार में कहा—"उपवास करने के बारे में यदि गांधीजी के फैसले में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता था, तो कम-से-कम सरकार को उन्हें बिना शर्त रिहा कर देना चाहिए था।" पण्डित मदनमोहन मालवीय ने २० फरवरी को ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री चर्चिल को इस आशय का एक तार भेजा कि भारत और इंग्लैण्ड के भले के लिए मैं आप से गांधीजी को मुक्त कर देने की यह अंतिम क्षण अपील करता हूँ।...यदि कहीं गांधीजी का जीवन जाता रहा तो भारत और इंग्लैण्ड के पारस्परिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के लिए भारी खतरा पैदा हो जायगा। श्री आर्थर मूर ने भी एक वक्तव्य में कहा कि इस समय, जब कि गांधीजी का जीवन खतरे में है, सरकार उन्हें छोड़कर कोई खतरा नहीं उठाएगी और न उसकी प्रतिष्ठा पर ही कोई आंच आएगी।

परन्तु इन प्रार्थनाओं के बावजूद भी भारत-सरकार ने एकदम अप्रत्याशित रुख धारण कर लिया। उसने आदेश जारी कर दिया कि उपवास तोड़ने के समय गांधीजी के पुत्रों को छोड़कर और कोई भी व्यक्ति उनके पास नहीं रह सकता और गांधीजी का अथवा ऐसे दूसरे किसी भी व्यक्ति का, जिसकी उन तक पहुंच है कोई भी वक्तव्य तब तक प्रकाशित नहीं किया जा सकता जब तक कि उसे पहले से प्रांतीय प्रेस-सलाहकार को न दिखला लिया गया हो। यह प्रतिबन्ध छः महीने और २१ दिन तक जारी रहा।

गांधीजी के उपवास के बाद फिर वही पुराना सवाल जिसके कारण उन्होंने उपवास किया था, सामने आया। प्रत्येक व्यक्ति यह जानने को उत्सुक और चिंतित था कि अगला कदम क्या होगा? क्या सरकार अब कुछ झुक जायगी और नरम पड़ जायगी? क्या वह अपने किए पर पश्चात्ताप करेगी? क्या उसके कठोर हृदय में परिवर्तन हो सकेगा? क्या वह अपना दुराग्रह छोड़ देगी? इस प्रसंग में हम जार्ज बर्नार्ड शा का एक वक्तव्य उद्धृत करना उचित समझते हैं जो उन्होंने मई १९४३ के अन्त में दिया था। उन्होंने कहा—"आप मेरा हवाला

देकर यह कह सकते हैं कि ब्रिटिश सरकार ने दक्षिण पक्ष (टोरी) के प्रतिक्रियावादी और दुस्साध्य लोगों के कहने में आकर गांधीजी को जेल में बन्द करके एक मूर्खतापूर्ण और भारी भूल की है। उसने ब्रिटेन के धनिकवर्ग के साथ मिलकर हिटलर के खिलाफ इस देश की नैतिक स्थिति बिल्कुल खत्म कर दी है। सम्राट् को चाहिए कि वह गांधीजी को बिना शर्त मुक्त करके उनसे अपने मंत्रिमंडल के मानसिक विकार के लिए क्षमा-याचना करें। इस तरह जहां तक हो सकेगा भारतीय स्थिति को सुलझाया जा सकेगा।" निस्संदेह ये बड़े महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। लेकिन यूरोपीय महाद्वीप पर राजनीतिज्ञता यदि खत्म नहीं हो चुकी थी तो कम-से-कम उसका दिवाला अवश्य निकल चुका था।

निर्दलीय नेताओं का प्रयत्न विफल

भारत में गांधीजी की प्राण-रक्षा से जितनी खुशी हुई थी उससे अधिक नहीं तो कम-से-कम उतनी ही खुशी ब्रिटेन में इस बात से हुई कि अनशन असफल रहा। भारत के लिए यह जिन्दगी और मौत का सवाल था और ब्रिटेन के लिए सफलता या असफलता का। इस बात के यकीन से कि अनशन असफल रहा, अंग्रेजों की अभिमान-भावना तुष्ट हुई, उन्हें संतोष हुआ और ब्रिटेन और साम्राज्य के शत्रु की दुर्गति से उन्हें अमिश्रित हर्ष हुआ।

अनशन के बाद २० मार्च को दिल्ली में नेताओं का जो सम्मेलन हुआ था उसके अध्यक्ष के रूप में डा० सप्रू को उत्तर देते हुए वाइसराय ने सरकार की नीति स्पष्ट करते हुए कहा :—

"यदि दूसरी तरफ गांधीजी पिछले अगस्तवाले कांग्रेस के प्रस्ताव को रद करने और हिंसा के लिए उत्तेजक अपने शब्दों-जैसे 'खुला विद्रोह' आदि की, कांग्रेस अनुयायियों को दी गयी 'करो या मरो' सलाह की और अपने इस कथन की कि नेताओं के हट जाने पर साधारण व्यक्ति स्वयं ही निर्णय करें, निन्दा करने को तैयार हों और साथ ही कांग्रेस और वह भविष्य के लिए ऐसा आश्वासन देने को तैयार हों, जो सरकार को मंजूर हो, तो इस विषय पर आगे विचार किया जा सकता है। परन्तु जब तक ऐसा नहीं होता और कांग्रेस अपने रुख पर कायम रहती है, तब तक सरकार का पहला फर्ज हिन्दुस्तान की जनता के प्रति है और अपने इस फर्ज को वह पूरी तरह से अदा करना चाहती है। यह कहा गया है कि इस तरह फर्ज अदा करने से कटुता और दुर्भावना में वृद्धि होगी। सरकार इस सुझाव को निराधार मानती है और यदि इसमें कुछ आधार हो भी तो सरकार अपनी जिम्मेदारी निबाहने के लिए वह मूल्य चुकाने के लिए भी तैयार है।"

फिर भी अखिल भारतीय नेताओं ने हिम्मत करके ९ मार्च १९४३ को एक सम्मेलन किया और निम्न वक्तव्य निकाला :—

"हमारा मत है कि पिछले कुछ महीने की घटनाओं को ध्यान में रखते हुए सरकार और कांग्रेस को अपनी नीति पर फिर से विचार करना चाहिए। हममें से कुछेक को गांधीजी से हाल ही में जो बातचीत करने का मौका मिला है उसके कारण हमारा विश्वास है कि इस समय सुलह की बातें जरूर कामयाब होंगी। हमारी तरफ से वाइसराय से अनुरोध किया जाना चाहिए कि वह हमारे कुछ प्रतिनिधियों को गांधीजी से मिलने की अनुमति प्रदान करें ताकि हाल की घटनाओं के सम्बन्ध में वह उनकी प्रतिक्रिया का प्रमाणित विवरण प्राप्त कर समझौता कराने का प्रयत्न कर सकें।" इस वक्तव्य पर ३५ नेताओं के हस्ताक्षर थे जिन में सर तेजबहादुर सप्रू, श्री एम० आर० जयकर, श्री भूलाभाई देसाई, श्री सी० राजगोपालाचारी और सर जगदीशप्रसाद के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इससे आशा की जाती थी कि आवश्यक अनुमति मिल जायगी। परन्तु उसकी जगह वाइसराय का एक लम्बा उत्तर मिला, जिसमें अनुमति देने से इंकार कर दिया गया। तब वाइसराय के पास एक डेपुटेशन ले जाने का फैसला किया गया। वाइसराय ने १ अप्रैल को चार प्रतिनिधियों के एक डेपुटेशन से मिलना स्वीकार कर लिया, लेकिन साथ ही उन्होंने एक आवेदनपत्र भी भेजने का अनुरोध किया। डेपुटेशन को सूचित किया गया कि डेपुटेशन से अपना आवेदनपत्र पढ़ने को कहा जायगा और फिर वाइसराय अपना उत्तर पढ देंगे। दूसरे शब्दों में, इस प्रश्न पर कोई बातचीत न होगी। यह सूचना मिलने पर डेपुटेशन ने स्वयं उपस्थित होने की आवश्यकता न समझी और वाइसराय को सूचित भी कर दिया। वाइसराय ने पहली अप्रैल को आवेदनपत्र का उत्तर दिया।

नेताओं के आवेदनपत्र का उत्तर देते हुए वाइसराय ने कहा :—

"...मैं पहले ही बता चुका हूं कि गांधीजी या कांग्रेस की तरफ से मस्तिष्क या हृदय के परिवर्तन का कोई सबूत अभी या पहले नहीं मिला है। अपनी नीति त्यागने का अवसर उन्हें पहले भी था और अब भी है। आपके अच्छे इरादों तथा समस्या के सफल निबटारे के लिए आप की चिन्ता की क़द्र करते हुए भी गांधीजी तथा कांग्रेसी नेताओं से मिलने की विशेष सुविधा मैं आपको तब तक नहीं दे सकता जब तक परिस्थिति वैसी ही बनी हुई है जैसी ऊपर बतायी जा चुकी है।"

इस प्रकार अखिल भारतीय निर्दलीय नेताओं-द्वारा गांधीजी से सम्बन्ध स्थापित करने के सभी प्रयत्न बेकार सिद्ध हुए।

राजाजी और पाकिस्तान

यह कोई नहीं कह सकता कि श्री राजगोपालाचार्य ने श्री जिन्ना से दो बार बातें करने के बाद जब समझौता होने की आशा दिलाई उस समय उनके पास क्या गुप्त योजना थी। नेता-सम्मेलन के समय समझौते की जो आशा उठी थी,

उस पर वाइसराय ने बाहरी नेताओं को गांधीजी से मिलने की अनुमति न देकर पहले ही तुषारपात कर दया था। किन्तु राजाजी का उत्साह इतने पर भी कम न हुआ और उन्होंने १० मार्च को सर्वदल नेता-सम्मेलन का आयोजन किया। पर इस बार भी नेताओं को गांधाजी से मुलाकात करने की अनुमति नहीं प्राप्त हुई। इसमें कोई शक नहीं कि यह सब किसी भ्रम के कारण हो रहा था। राजाजी शायद यही खयाल करते थे कि समस्या का हल पाकिस्तान की गुत्थी को सहानुभूति-पूर्वक सुलझाने से हो सकता है। पाकिस्तान के विचार को मि० जिन्ना ने कोई शक्ल नहीं दी थी, पर राजाजी कुछ अधिक स्पष्टता से सोचने लगे थे। पाकिस्तान का आधार 'दो राष्ट्रवाला सिद्धांत' था, जिसे राजाजी ने मंजूर कर लिया था। राजाजी का खयाल था कि पाकिस्तान को जैसे ही माना गया वैसे ही बाकी परि-णाम अपने आप निकल आएँगे। १२ अप्रैल को बंगलौर में मुहम्मद साहब के जन्म-दिवस पर राजाजी ने पाकिस्तान के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा कि राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने का तरीका पाकिस्तान को मान लेना है और यह भी कहा कि पाकिस्तान हिन्दुओं के सामने उसकी इतनी डरावनी शक्ल में रखा गया है कि वे उससे अनावश्यक रूप से भयभीत हो गये हैं। उन्होंने यह भी कहा :—

"मैं पाकिस्तान का इसलिए समर्थक हूं कि मैं ऐसे राज्य की स्थापना नहीं चाहता जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही का सम्मान न किया जाता हो। मुसलमानों को पाकिस्तान ले लेने दो। यदि हिन्दू-मुसलमानों में समझौता हो जाता है तो देश की रक्षा हो जायगी। . . . यदि अंग्रेजों ने और कोई कठिनाई उठाई तो हम उस पर भी विजय कर लेंगे। . . . मैं पाकिस्तान का समर्थक हूँ, किन्तु मेरे खयाल में कांग्रेस पाकिस्तान को नहीं मानेगी। . . . कांग्रेस के बाग में फूल लगे हुए हैं, किन्तु बाग के फाटक बंद हैं और मुझे निकट जाकर उन्हें चुनने नहीं दिया जाता।"

जिन्ना साहब का मत

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का २४ वां अधिवेशन दिल्ली में १९४३ के ईस्टर-सप्ताह में हुआ था और श्री जिन्ना उसके अध्यक्ष थे। श्री जिन्ना ने अपने भाषण में गांधीजी से अपने को पत्र लिखने का अनुरोध किया था। उन्होंने अपने भाषण में कहा था :—

"ब्रिटिश सरकार सभी की उपेक्षा करने की जो नीति बर्त रही है उससे लड़ाई में कामयाबी हासिल नहीं की जा सकती। यह बात जितनी ही जल्द मह-सूस कर ली जाय उतनी ही जल्द इससे सभी का लाभ होगा। यदि लड़ाई में हमारी हार होती है तो वह इस देश में सरकार की गलत नीति के कारण होगी। भारत

की खाद्य-स्थिति, आर्थिक अवस्था तथा मुद्रा-प्रबंध बड़ी संकटपूर्ण स्थिति में पहुंच चुके हैं और इस विषय में सरकार की हाथ-पर-हाथ रख कर बैठ रहने की नीति से उस युद्ध-प्रयत्न को हानि पहुंच सकती है, जो लड़ाई में जीत हासिल करने के लिए अत्यावश्यक है।"

भाषण का पूरा विवरण दिल्ली के एक अंग्रेजी दैनिक "डॉन" ने, जिससे स्वयं मि० जिन्ना का सम्बन्ध था, प्रकाशित किया था। जहां तक गांधीजी से किये गये अनुरोध का सम्बन्ध है, पूरे विवरण में भी वह उसी तरह दिया हुआ है, जिस तरह वह संक्षिप्त विवरणों में दिया हुआ है। मि० जिन्ना ने कहा था:—

"इसलिए कांग्रेस की स्थिति वैसी ही है, जैसी पहले थी। सिर्फ यह दूसरे शब्दों और दूसरी भाषा में बताई गई है, किन्तु इसका मतलब है अखंड हिन्दुस्तान के आधार पर हिन्दू-राज और इस स्थिति को हम कभी स्वीकार न करेंगे। यदि गांधीजी पाकिस्तान के आधार पर मुसलिम लीग से समझौता करने को तैयार हो जायँ तो मुझसे अधिक और किसी को खुशी न होगी। मैं आपसे कहता हूं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही के लिए वह बड़ा शुभ दिन होगा। यदि गांधीजी इसका फैसला कर चुके हैं तो उन्हें मुझे सीधा लिखने में दिक्कत ही क्या है? (हर्षध्वनि) वह वाइसराय को पत्र लिख रहे हैं। वह मुझे सीधा क्यों नहीं लिखते? वाइसराय के पास जाने, डेपुटेशन भेजने और उनसे पत्र-व्यवहार करने से लाभ ही क्या है? आज गांधीजी को रोकनेवाला कौन है? मैं एक क्षण भी विश्वास नहीं कर सकता—इस देश में यह सरकार चाहे जितनी शक्तिशाली क्यों न हो और हम उसके विरुद्ध चाहे कुछ क्यों न कहें, मैं नहीं मान सकता कि यदि मेरे नाम ऐसा पत्र भेजा जाय तो सरकार उसे रोकने का साहस करेगी। (जोरों की हर्ष-ध्वनि)

"यदि सरकार ने ऐसा कार्य किया तो यह सचमुच बहुत ही गम्भीर बात होगी। परन्तु गांधीजी, कांग्रेस या हिन्दू नेताओं की नीति में परिवर्तन होने का कोई लक्षण मुझे नहीं दिखाई देता।"

गांधीजी के पत्र पर रोक

पाठकों को स्मरण होगा कि जब मि० जिन्ना से गांधीजी के अनशन के दिनों में नेता-सम्मेलन में भाग लेने का अनुरोध किया गया था तब उन्होंने यह कहकर सम्मेलन में भाग लेने से इंकार कर दिया था कि गांधीजी ने यह खतरनाक अनशन कांग्रेस की मांग पूरी कराने के लिए किया है और यदि दबाव में आकर इस मांग को स्वीकार कर लिया गया तो इसके परिणामस्वरूप मुसलमानों की मांग नष्ट हो जायगी और इस प्रकार सम्मेलन में भाग लेने से भारतीय मुसलमानों के हितों की हानि होगी। गांधीजी ने मि० जिन्ना के भाषण का विवरण समाचारपत्रों

में पढ़ते ही उन्हें पत्र लिखने की अनुमति के लिए भारत-सरकार को लिखा। पत्र को बाकायदा पूना से बम्बई-सरकार के पास और उसके पास से भारत-सरकार तक पहुंचने में तीन सप्ताह का समय लग गया होगा। मई के अंतिम दिनों में अखबारों में भारत-सरकार की एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई। इससे जनता में बड़ी सनसनी फैल गयी। विज्ञप्ति में यह नहीं बताया गया कि गांधीजी-द्वारा मि० जिन्ना को लिखे गये पत्र में क्या था। उसमें सिर्फ यही कहा गया था कि गांधीजी मि० जिन्ना से मिल कर बड़े प्रसन्न होंगे। भारत-सरकार ने बड़ा निराला और पेचीदा रास्ता अख्तियार किया। उसे या तो गांधीजी का पत्र मि० जिन्ना के पास भेज देना चाहिए था या उसे रोक लेना चाहिए था। परन्तु सरकार ने इसमें से कुछ भी नहीं किया। सरकार ने यही कहा कि गांधीजी ने इस आशय का अनुरोध किया है, किन्तु दूसरी विज्ञप्ति में बताये गये कारणों से सरकार उस पत्र को मि० जिन्ना के पास भेजने में असमर्थ है। सरकार ने विज्ञप्ति की एक प्रतिलिपि मि० जिन्ना के पास भेज दी।

भारत में प्रतिक्रिया

गांधीजी के लिखे पत्र को मि० जिन्ना के पास भेजने से इन्कार करने से लन्दन के सरकारी हल्कों में जो प्रतिक्रिया हुई उस पर 'रायटर' के राजनीतिक संवाददाता ने प्रकाश डाला था। उसने लिखा कि "भारत में हुए इस निश्चय का बिटिश-सरकार पूरी तरह समर्थन करेगी। सरकारी तौर पर यह कहा गया कि भारत की हिफाजत और युद्ध को सफलतापूर्वक चलाये जाने का महत्व सबसे अधिक होने के कारण गांधीजी या किसी दूसरे नजरबन्द कांग्रेसी नेता को युद्धकाल के दरमियान राजनीतिक बातचीत में भाग लेने की सुविधा तब तक नहीं दी जा सकती जब तक वे युद्ध-प्रयत्न के प्रति असहयोग करने और उसके खिलाफ आन्दोलन करने की नीति का त्याग नहीं करते, या विज्ञप्ति के शब्दों में, जब तक उनके देश के सार्वजनिक जीवन में भाग लेने से हानि का खतरा बना हुआ है।" 'मांचेस्टर गार्जियन' ने लिखा—"भारत-सरकार का यह निश्चय अपनी पहले की नीति के अनुसार हो सकता है, लेकिन शासन-कार्य में अपरिवर्तनशीलता ही एकमात्र गुण नहीं होता और न्याय का तकाजा तो यह कहता है कि भारत-सरकार कितनी ही बार अपने वचन से टल गयी है।...सरकार दूसरे नेताओं को गांधीजी से मिलने की इजाजत क्यों नहीं देती, जिससे देखा जा सके कि क्या परिणाम निकलता है।"

गांधीजी का पत्र भेजने से भारत-सरकार के इन्कार करने पर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मि० एम० ए० जिन्ना ने 'टाइम्स आफ इण्डिया' पत्र को एक वक्तव्य देते हुए कहा—"गांधीजी का यह पत्र मुसलिम लीग को ब्रिटिश

सरकार से भिड़ा देने की एक चाल है, ताकि उनकी रिहाई हो सके और उसके बाद वह जैसा चाहें कर सकें।" उन्होंने यह भी कहा कि "मैंने अखिल भारतीय मुसलिम लीग के दिल्लीवाले अधिवेशन में जो सुझाव रखे थे उन्हें मंजूर करने या अपनी नीति में परिवर्तन करने की कोई इच्छा गांधीजी की नहीं जान पड़ती।" आगे उन्होंने यह भी कहा कि "उस भाषण में मैंने कहा था कि अगर गांधीजी मुझे पत्र लिखने, ८ अगस्त को कांग्रेस के प्रस्ताव में बताये कार्यक्रम को समाप्त करने और इस प्रकार कदम पीछे हटाकर अपनी नीति में परिवर्तन करने और पाकिस्तान के आधार पर समझौता करने को तैयार हों तो हम पिछली बातों को भूलने को तैयार हैं। मेरा अब भी विश्वास है गांधीजी के ऐसे पत्र को रोकने की हिम्मत सरकार नहीं कर सकती।

"गांधीजी या किसी भी दूसरे हिन्दू नेता से मिलने के लिए मैं खुशी से तैयार रहा हूँ और आगे भी रहूँगा, लेकिन सिर्फ मिलने की इच्छा प्रकट करने के लिए ही पत्र लिखने से मेरा मतलब न था और अब सरकार ने गांधीजी के एक ऐसे ही पत्र को रोक लिया है। मुझे भारत-सरकार के गृह-विभाग के सेक्रेटरी से २४ मई को सूचना मिली है, जिसमें लिखा है कि गांधीजी ने अपने पत्र में सिर्फ मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की है और सरकार ने यह पत्र मेरे पास न भेजने का निश्चय किया है।"

दिल्ली के 'डॉन' में प्रकाशित मि० जिन्ना के भाषण के विवरण तथा खुद जिन्ना साहब द्वारा दिए गए संक्षेप में एक बड़ा भारी फर्क है। पहले विवरण में मि० जिन्ना की मांग सिर्फ यही थी कि गांधीजी पाकिस्तान के आधार पर उन्हें लिखें। इसका मतलब यही हो सकता था कि गांधीजी को पाकिस्तान के सिद्धान्त तथा नीति के सम्बन्ध में बातचीत करने को रजामन्द होना चाहिए। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि जबतक मि० जिन्ना ने लफ्ज पाकिस्तान को दोहराने के सिवा उसके अर्थ या विस्तार के विषय में कुछ भी नहीं कहा था। इसके अलावा, उन्होंने बम्बई-प्रस्ताव वापस लेने और हृदय-परिवर्तन का सबूत देने की बात कहाँ कही थी? शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार गांधीजी से हृदय-परिवर्तन को कहती थी और उससे भी अधिक शक्तिशाली मि० जिन्ना उसे दोहराते थे। प्रतिहिंसाशील ब्रिटिश सरकार आश्वासन और गारण्टियाँ माँगती है और अधिक प्रतिहिंसाशील मि० जिन्ना कहते थे कि गांधीजी को कदम पीछे हटाने और बम्बई-वाले प्रस्ताव के कार्यक्रम तथा नीति में परिवर्तन करने के लिए तैयार रहना चाहिये। क्या उन्होंने मूल भाषण में यह सुझाव पेश किया था? सच तो यह है कि मि० जिन्ना अपने वक्तव्य में कुछ जरूरत से ज्यादा बढ़ गये थे। गांधीजी के पत्र को सरकार ने जिस हिकारत की नजर से देखा था उसकी अंग्रेजी और उर्दू के पत्रों में एक समान निन्दा की गयी थी। परन्तु मि० जिन्ना के तर्कों का सब से सम्मान-

पूर्ण और जोरदार उत्तर भारत-सरकार के अवकाशप्राप्त आई० सी० एस० सदस्य सर जगदीश प्रसाद ने दिया। उन्होंने कहा :—

"भारत-सरकार-द्वारा महात्मा गांधी को मि० जिन्ना के लिए पत्र लिखने की अनुमति न देने पर मि० जिन्ना ने जो वक्तव्य दिया है वह इस अस्वीकृति से भी अधिक विचारणीय है। कभी-कभी मि० जिन्ना का अनर्गल प्रलाप उन्हें परेशान करनेवाली हालत में डाल देता है। अभी हाल में अपने दिल्लीवाले भाषण में उन्होंने यह असर पैदा करने की कोशिश की थी कि अब वे इतने ताकतवर हो गये हैं कि खुद ब्रिटिश-सरकार भी उन्हें नाराज करने की हिम्मत नहीं कर सकती। कायदे-आजम ने महात्मा गांधी को सीधा उन्हीं को लिखने की दावत दी थी और कुछ शान के साथ फरमाया था कि सरकार में इस चिट्ठी को रोकने की जुर्रत नहीं है। चिट्ठी लिखी गयी और उसे रोक लिया गया। अब मि० जिन्ना एक चतुर खिलाड़ी की तरह इस अप्रिय परिस्थिति से बचने के लिए उस पत्र के लेखक की ही निन्दा कर रहे हैं। वह जानते हैं कि वह बिना किसी दिक्कत के ऐसा कर सकते हैं, क्योंकि गांधीजी को जवाब देने का अवसर नहीं मिलेगा।"

४ जून को करांची से मि० जिन्ना ने पत्रकारों के बीच कहा कि हिन्दू-पत्रों ने उन्हें गलत समझा है, उनके भाषण से गलत उद्धरण दिये हैं और जान-बूझकर भ्रम फैलाने का प्रयत्न किया है। परन्तु वे ब्रेलवी, शौकत अंसारी, हैदराबाद के डा० लतीफ और इनायतुल्ला खां मशरिकी-जैसे आलोचकों से अपनी रक्षा न कर सके। अल्लामा मशरिकी ने तो यहाँ तक कहा कि अगर कांग्रेस पाकिस्तान मानने को तैयार है तो फिर उस समझौते की कोई जरूरत नहीं है, जिसकी मांग मि० जिन्ना ने की है। मशरिकी ने यह भी कहा कि मि० जिन्ना को अपने मूल प्रस्ताव पर ही जमना चाहिए, जिसमें पाकिस्तान की बात तो कही गयी थी, पर बम्बईवाले प्रस्ताव को वापस लेने को नहीं कहा गया था। उर्दू-पत्रों ने एक स्वर से गांधीजी के पत्र के सम्बन्ध में सरकार के रुख की निन्दा की और फिर मि० जिन्ना के भी वक्तव्य की छीछालेदर की।

इंग्लैण्ड में प्रतिक्रिया

१९४३ की गर्मियों से इंग्लैंड में विभिन्न राजनीतिक दलों के सालाना जलसे हुए। भारत में हुई हलचलों तथा ट्यूनीशिया की विजय में चौथे भारतीय डिवीजन के हिस्से की वजह से भारत का सवाल महत्वपूर्ण बन गया और उस पर इन जलसों में विचार हुआ।

भारत के प्रति जो व्यवहार हुआ उसके लिए मजदूर-दल को नहीं—मजदूरों को दुख हुआ। १४ से अधिक श्रमजीवी संस्थाओं ने विटसन टाइड सम्मेलन (१३ जून) में प्रस्ताव पेश करने के लिए सूचनाएं भेजीं। एक भी प्रस्ताव में दल के

नेताओं की, जो मंत्रिमंडल के सदस्य थे, प्रशंसा नहीं की गयी, बल्कि हिन्दुस्तान का सवाल हल न करने के लिए उनकी निंदा की गई। उन सभी ने एक स्वर से भारत में फिर से बातचीत शुरू करने का अनुरोध किया और सबसे अधिक इस आवश्यकता पर जोर दिया कि कांग्रेसजनों को छोड़ दिया जाय।

जुलाई, १९४३ में इंग्लैंड की कितनी ही संस्थाओं ने, जिनमें इंडिया लीग, ब्रिटिश कम्यूनिस्ट पार्टी और इंजीनियरों की सम्मिलित यूनियन भी थी, जोरदार शब्दों में भारतीय नेताओं से बातचीत शुरू करने की मांग की और कहा कि उनमें से जो अभी जेलों में हों उन्हें रिहा कर दिया जाय। मेसर्स लिंडसे ड्रमंड ने महात्मा गांधी के उन लेखों, भाषणों तथा वक्तव्यों के चुने हुए अंश एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किये, जो उन्होंने अगस्त १९४२ में अपनी गिरफ्तारी से पहिले दिये थे। पुस्तिका में प्रकाशक ने साथ में कोई टिप्पणी या भूमिका तक नहीं दी थी और उसका उद्देश्य सिर्फ जनता का ज्ञान-वर्द्धन था।

सर रिचार्ड आकलैंड के नेतृत्व में जो नई कामनवेल्थ पार्टी संगठित हुई वह भी भारत के सवाल में दिलचस्पी रखनेवाली संस्थाओं के साथ मिल गई। जुलाई के पहिले सप्ताह में प्रधानमंत्री चर्चिल ने गिल्ड हाल में एक भाषण दिया। यह भारत के सम्बन्ध में उनका पहला भाषण था, जिसमें उन्होंने प्रतिक्रियावादी रुख नहीं प्रकट किया था। बाद में ब्रिटिश कौंसिल आफ चर्चेज ने भी भारत को सहायता का वचन दिया। प्रोफेसर जोड, प्रोफेसर हेरल्ड लास्की, मि० क्लीमेंट डेवीज, आर्क डीकन आफ वेस्टमिनिस्टर, सर रिचार्ड ग्रेगरी, सर अर्नेस्ट बेनेस्ट, प्रोफेसर नारसन वेनविच तथा बरमिंघम और ब्रेडफोर्ड के बिशप एवं दूसरे कितने ही प्रमुख व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से ६ अगस्त को एक अपील निकाली गयी कि नेताओं की गिरफ्तारी की पहली साल-गिरह के अवसर पर भारत-सम्बंधी नीति में संशोधन किया जाय। सर आलफ्रेड वाटसन-जैसे कट्टरपंथी ने भी भारत के साथ समानता का व्यवहार किये जाने का अनुरोध किया और कहा कि अब अंग्रेजों को चाहिए कि वे अपने को भारत में "मेहमान" मानें और बड़प्पन की भावना त्याग दें।

मंत्रिमंडलों की स्थिति

कांग्रेसी नेताओं के जेलों में बन्द होने के बाद देश में मंत्रिमंडलों की क्या स्थिति थी, इस पर भी हमें लगे हाथों विचार कर लेना चाहिए। जिन सूबों में लीग की हुकूमत थी उनमें बंगाल की अहमियत सबसे ज्यादा थी। दिसम्बर, १९४१ में फजलुल हक ने प्रधानमंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया था और गवर्नर ने उनसे अपनी वजारत नये सिरे से कायम करने को कहा था। नयी वजारत बनाते समय फजलुल हक ने कुछ लीगी वजीरों से अपना पीछा छुड़ाया था। लीग वाले इसे आसानी से नहीं सह सके। उन्होंने डेढ़ साल तक इन्तजार किया और

इस अरसे में बहुत-कुछ हो गया। लड़ाई बंगाल की पूर्वी सरहद तक आ गई। फेनी और चटगांव जापानी बटमारों के निशाने बन गये। अन्न के मसले की वजह से मुल्क के दूर-से-दूर के हिस्से भी लड़ाई की दिक्कत महसूस करने लगे। अन्न की वेहद कमी के अलावा वजीरों के काम में गवर्नर की रोजमर्रा की दस्तन्दाजी ने भी उनके धीरज का खातमा कर दिया। मिदनापुर के अत्याचारों तथा ढाका के गोलीकाण्ड के लिये सार्वजनिक जांच की मांग की गई, जिसे प्रधानमंत्री ने तो मंजूर कर लिया, पर गवर्नर ने मंजूरी नहीं दी। इसी बीच मियां फजलुल हक की स्थिति पुनः सन्दिग्ध हो गयी। कुछ तो भीतरी हमलों की वजह से और कुछ शासन-सम्बन्धी ऐसे कार्यों के कारण, जो उन्हें करने ही चाहिए थे, दिसम्बर, १९४२ का संकट उत्पन्न हुआ। लीग पार्टी उनके शासन-प्रबन्ध पर जोरदार हमले करने लगी। फिर भी फजलुल हक अपनी जगह पर कायम रहे। फरवरी, १९४३ में मियां हक को दोतरफे हमलों का सामना करना पड़ा। गवर्नर उनके अधिकारों में जो हस्तक्षेप करते जा रहे थे वह उनके लिए असहनीय होता जा रहा था और दूसरी तरफ वह असेम्बली में इस पर रोशनी भी नहीं डाल सकते थे। आखिर-कार विवश होकर ३० मार्च, १९४३ को उन्होंने इस्तीफा दे दिया और इसके २९ दिन बाद २८ अप्रैल, १९४३ को सर नजीमुद्दीन की सरकार कायम हुई। प्रान्तीय असेम्बली की बैठक जुलाई के पहले सप्ताह में हुई। उसमें जिन दो महत्व-पूर्ण घटनाओं ने सनसनी पैदा कर दी थी उनमें बजट की समस्या पहली थी। दूसरी घटना मि० फजलुल हक द्वारा गवर्नर की इस स्वेच्छाचारितापूर्ण कार्रवाई का रहस्योद्घाटन थी। इससे प्रकट हो गया कि किस तरह उन्होंने कानून और विधान को उठा कर ताक पर रख दिया था और सेक्रेटरियेट की सहायता से निरंकुश शासक की तरह कार्य किया था। सब से बुरी बात तो यह थी कि मंत्रियों के अधीन कर्मचारी गवर्नर के कहने पर मंत्रियों की मर्जी के खिलाफ आदेश निका-लते थे। नये प्रधानमंत्री को भी १९४४ के फरवरी तथा मार्च महीनों में वैसे ही संकट से गुजरना पड़ा। इसी बीच सर जान हर्बर्ट की मृत्यु हो गयी और मि० केसी गवर्नर नियुक्त हुए। उन्होंने चुपचाप असेम्बली को स्थगित कर दिया।

युद्ध छिड़ने के समय से सिंध की राजनीति बड़ी ढुलमुल थी। इस प्रान्त में दूसरे किसी प्रान्त के मुकाबले में मंत्रि-मंडल जल्दी-जल्दी बदले गये। पहले बंदे-अली खां का, फिर हिदायतुल्ला का, फिर अल्लाहबख्श का, फिर हिदायतुल्ला का दूसरा और फिर तीसरा—इस तरह कितने ही मंत्रि-मंडल कायम हुए और भंग हुए। सिंध की इस पेचीदी राजनीति का एक परिणाम यह भी हुआ कि सीमा-प्रान्त में खान अब्दुल गफ्फार खां की रिहाई के बाद सिंध के छः प्रमुख कांग्रेसी जेलों से छोड़ दिये गये।

मुस्लिम लीग ने अगली वजारत सीमाप्रान्त में बनायी थी। प्रान्तीय असेम्बली

में उसका बहुमत होने या न होने का सवाल नहीं था, किन्तु प्रान्तीय लीग ने अचानक ही यह कार्य कर डाला और सरदार औरंगजेब को अपना प्रधानमंत्री बनाया। औरंगजेब की वजारत कायम होने पर प्रान्तीय असेम्बली के जो कई उप-चुनाव हुए थे उनमें से एक असेम्बली के एक सिख-सदस्य की मृत्यु से खाली हुई सीट के लिए हुआ था। कुछ अज्ञात कारणों से यह उप-चुनाव हिन्दू तथा मुस्लिम सीटों के उप-चुनावों के साथ नहीं हुआ। गोकि सार्वजनिक रूप से इसका कोई कारण नहीं बताया गया, फिर भी उस पर प्रकाश पड़ ही गया। चुनाव २५ फरवरी, १९४४ को हुआ जिसमें कांग्रेसी उम्मीदवार ने अपने विरोधी सरदार अजीतसिंह के उम्मीदवार को ८१ वोट से हरा दिया। इस घटना के एक वर्ष बाद १२ मार्च १९४५ को सीमाप्रान्तीय असेम्बली में औरंगजेब खां की वजारत के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव १८ के विरुद्ध २४ वोटों से पास हो गया। मार्च के महीने में भारत में कांग्रेस की नीति में पहली बार परिवर्तन दिखाई दिया। औरंगजेब खां की वजारत की हार का वही परिणाम हुआ, जो वैधानिक दृष्टि से होना चाहिए था। गवर्नर को प्रान्त के भूतपूर्व प्रधान मंत्री डा० खान साहब को बुलाना पड़ा, जिनके अविश्वास के प्रस्ताव के कारण औरंगजेब खां के मंत्रिमंडल का पतन हुआ था डा० खानसाहब इस परिस्थिति के लिए पहले से ही तैयार थे। उन्होंने १६ मार्च को पद ग्रहण करने के बाद बताया कि उन्होंने प्रान्त की जनता की इच्छा के ही अनुसार कार्य किया है।

सीमाप्रांत में कांग्रेस के शक्ति-ग्रहण करते ही जनता में प्रतिक्रिया आरम्भ हो गयी। जनता के मस्तिष्क में प्रश्न उठा कि सीमाप्रान्त के 'अच्छे' उदाहरण का अनुसरण अन्य प्रांतों को करना चाहिए या नहीं, और इस सवाल को गोपीनाथ बारदोलोई तथा रोहिणी दत्त-द्वारा आसाम के प्रधान मंत्री सर मुहम्मद सादुल्ला को दी गयी चुनौती के कारण और भी बल प्राप्त हुआ। इस प्रकार १५-६-४५ को कांग्रेस कार्य-समिति की रिहाई से पूर्व ही परिस्थिति ठीक होने लगी

पंजाब में सर सिकन्दरहयात खां की अचानक मृत्यु हो जाने के कारण जो स्थान खाली हुआ उसकी पूर्ति कर्नल खिज्रहयात खां ने की। इससे लीग और यूनियनिस्ट पार्टी की शक्तियों में संघर्ष आरम्भ हो गया। इसी समय पंजाब में मि० जिन्ना ने एक विजेता के रूप में प्रवेश किया। वह देखना चाहते थे कि पंजाब की वजारत दरअसल एक लीगी वजारत है या नहीं। कर्नल खिज्रहयात खां को वजारत के रंगढंग में तब्दीली करने के लिए तीन महीने का वक्त दिया गया। लेकिन सर छोटूराम पंजाब-वजारत को लीगी वजारत का नाम देने के खिलाफ थे और उन्होंने धमकी दी कि अगर ऐसी कोशिश की गयी तो वह वजारत का साथ देना छोड़ देंगे। कर्नल खिज्र के एक तरफ कुआँ था तो दूसरी तरफ थी खाई।

गोकि खिज्रहयात खां ने मुसलिम लीग के मंच पर आकर पाकिस्तान का

समर्थन पहली बार किया, फिर भी मंत्रिमंडल का पुनर्निर्माण करने या कम-से-कम उसे लीग के पथ पर लाने का मि० जिन्ना का प्रयत्न असफल हो गया। जिन्ना साहब की न्यूनतम मांग यही थी कि मंत्रिमंडल का नाम यूनियनिस्ट से लीगी कर दिया जाय; किन्तु पंजाब का मुस्लिम-लोकमत यूनियनिस्ट पार्टी भंग करने या सर छोटूराम वगैरह से ताल्लुक तोड़ने के खिलाफ था। ऐसी स्थिति में कायदे-आजम ने पंजाब की वजारत तथा असेम्बली को अल्टीमेटम दिया कि २० अप्रैल को लाहौर वापिस आने तक उन्हें इस सवाल का आखिरी फैसला कर लेना चाहिए। किन्तु दुर्गपति कर्नल खिज्रहयात खां तिवाना ने, जो अनावश्यक बातों की अपेक्षा कार्य में अधिक विश्वास रखते थे, दुश्मन को गहरी शिकस्त दी और लाहौर के किले को अछूता रखा।

पहले **उड़ीसा** में कांग्रेस का बहुमत था। कांग्रेस के कुछ सदस्य जेल में रहने के समय पार्लेकामेडी के महाराज के नेतृत्व में अल्पसंख्यक दल ने एक मंत्रिमंडल कायम किया। यह मंत्रिमंडल थोड़े ही समय तक चला।

अब हम **आसाम** को लेते हैं। आसाम उन प्रान्तों में नहीं है, जिनमें १९३७ में कांग्रेस का बहुमत था। परन्तु सर सादुल्ला के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर जब उनके मंत्रिमंडल का पतन हो गया तब बार्दोलोई मंत्रिमंडल उसकी जगह कायम हुआ, जिसमें प्रधानमन्त्री बार्दोलोई तथा एक अन्य मंत्री ही कांग्रेसजन थे। कुछ अन्य मंत्री कांग्रेस में सम्मिलित हो गये थे। जब बार्दोलोई ने अन्य कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के साथ १९३९ में इस्तीफा दिया तब सादुल्ला-मन्त्रि-मण्डल फिर कायम हुआ और उसने अपनी शक्ति बढ़ा ली। १२ मार्च, १९४५ को आसाम-मन्त्रिमण्डल प्रान्तीय असेम्बली में हार गया और उसे इस्तीफा देना पड़ा। फिर सरकारी पक्ष ने मिली-जुली वजारत बनाने के लिए कांग्रेसी दल की शर्तें स्वीकार कर लीं। निश्चय हुआ कि नयी वजारत को सभी दलों का समर्थन तथा विश्वास प्राप्त हो। सरकारी दल ने सर सादुल्ला को विरोधी दल से अन्य विषय तय करने का भी अधिकार दे दिया। जिन शर्तों को स्वीकार किया गया उनमें राजनीतिक कैदियों की रिहाई, सार्वजनिक सभाओं तथा जुलूसों से रोक हटाया जाना तथा सरकार की नाज वसूल करने तथा उसे उपलब्ध करने की नीति में परिवर्तन मुख्य थीं। भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री गोपीनाथ बार्दोलोई ने सर मुहम्मद सादुल्ला से तय कर लिया था कि यदि उपर्युक्त शर्तें मान ली जायँ तो कांग्रेस पद-ग्रहण न करके भी मौजूदा वजारत का नैतिक समर्थन करने को तैयार हो जायगी। बाद में यह समझौता भंग हो गया और शिमला-सम्मेलन के समय आशा की जाने लगी कि आसाम में मिली-जुली कांग्रेसी वजारत कायम हो सकेगी।

१९४३ और १९४४ में स्पष्ट हो गया कि राजनैतिक अड़ंगा दूर करने के जिन प्रयत्नों को सरकार से प्रोत्साहन मिल रहा था उनका मुख्य उद्देश्य प्रान्तों

में वजारतें कायम करना था। इरादा यह था कि सूबों में वजारतें कायम होने के बाद कहा जायगा कि राजनीतिक अड़ंगा समाप्त हो गया। **मध्यप्रान्त** में वार्ता लीगी तथा गैर-लीगी मुसलमानों के एक ही वजारत में शामिल करने में कठिनाई होने के कारण भंग हो गयी। इसके अलावा लीग किसी ऐसी वजारत में भी शामिल नहीं होना चाहती थी, जिसमें कांग्रेस और हिन्दू-महासभा का सहयोग प्राप्त न हो। **मध्यप्रान्त**, **बिहार**, **उत्तर प्रदेश** और **मद्रास** में मंत्रिमंडल कायम करने का कोई बाकायदा प्रयत्न नहीं किया गया। वजारत बनाने में बिहार को कोई अधिक सफलता नहीं हुई।

प्रान्तीय असेम्बलियों के कांग्रेसी सदस्यों तथा कांग्रेसी नेताओं के जेल में बंद होने के कारण अन्य राजनीतिक दलों को मंत्रिमंडलों के निर्माण के लिए खुला मैदान मिल गया। इसी कारण हिन्दू महासभा और मुसलिम लीग में एक विरोधी सहयोग भी स्थापित हो गया। १९३७ के आम चुनाव में ७३, १९, ४४५ मुस्लिम वोटों में लीग को केवल ३,२१,७७२ वोट यानी कुल डाले गये मुस्लिम वोटों में से उसे सिर्फ ४·४ प्रतिशत वोट ही मिले थे। ९२ प्रतिशत मुस्लिम आबादीवाले सीमाप्रान्त में लीग को कुल मुस्लिम वोटों में से सिर्फ ५ प्रतिशत ही प्राप्त हुए थे। फिर भी सरकार की कृपा से सीमा के प्रान्तों में लीगी प्रधान मंत्रियों या लीगी विचार-वाले प्रधान मंत्रियों के नेतृत्व में मंत्रिमंडल बनने के लिए खिचड़ी पकने लगी। यह दृश्य हिन्दू-महासभा के लिए असहनीय था। इसलिए चुनाव में लीग से अधिक असफल होने के बावजूद हिन्दू महासभा के नेता हिन्दू-बहुमतवाले प्रान्तों मे मीठे सपने देखने लगे।

'सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी'-जैसी नर्म तथा संयत विचारवाली संस्था ने जून, १९४४ के दूसरे सप्ताह में होनेवाली अपनी वार्षिक बैठक में राजनीतिक परिस्थिति, तत्कालीन गति-अवरोध, नयी वजारतें कायम करने और समाचार-पत्रों में इस सम्बन्ध में होनेवाले आन्दोलन पर विचार किया। सोसाइटी ने अपने प्रस्ताव में धारा ९३ के अनुसार शासित कुछ प्रान्तों में बहुमत प्राप्त किये बिना ऐसे मंत्रिमंडल कायम करने के प्रयत्नों की निंदा की, जो गवर्नरों की सहायता से और कांग्रेसजनों की अनुपस्थिति में ही कायम रह सकते थे। ऐसी वजारतों में मंत्री गैर-सरकारी सलाहकार से अधिक और कुछ न होते, क्योंकि वे अपने पदों पर बहुमत की जगह सरकारी समर्थन के बल पर कायम रहते। इन मंत्रिमंडलों की स्थापना से अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भ्रम फैलता और ऐसा लगता जैसे प्रान्त में लोकतंत्रवादी शासन चल रहा हो।

जबकि तटस्थ दलों का मत इस प्रकार प्रकट हो रहा था, कांग्रेसी मत बिहार तथा मध्यप्रांत में ऐसे अनियमित मंत्रिमंडल स्थापित करने के विरुद्ध प्रकट हुआ। अब सभी कांग्रेसी सदस्य जेलों में नहीं थे। कुछ अपनी मियाद खतम कर चुके थे,

कुछ नजरबंदी से छूट चुके थे, कुछ जेल गये नहीं थे और कुछ को सरकार ही ने गिरफ्तार नहीं किया था। बिहार तथा मध्यप्रांत में जो कांग्रेसी एम० एल० ए० जेलों के बाहर थे उन्हें चेतावनी मिल चुकी थी कि उन्हें व्यक्तिगत रूप से कुछ न करके मिलकर और सलाह करके ही कोई कार्य करना चाहिए। जून के मध्य में बिहार असेम्बली के कांग्रेसी सदस्यों का एक सम्मेलन हुआ और उसमें मंत्रिमंडल बनाने से इन्कार कर दिया गया। इसी प्रकार नागपुर से श्री कालप्पा ने एक वक्तव्य प्रकाशित करके वजारत कायम करने से इन्कार कर दिया।

लार्ड वेवल की नियुक्ति

विदेशी सरकार मुसीबत के वक्त एक दिमागी चाल यह चलती है कि वह जनता का ध्यान नाराजी की वजह से हटा कर किसी ऐसी बात की ओर खींचती है, जिसकी ओर वह सहज ही में आकर्षित हो जाय। ऐसे वक्त जब कि सब का रोष एक ऐसे वाइसराय के व्यक्तित्व में केन्द्रित था, जो अपने कार्यकाल का डचोढ़ा समय पूरा कर चुका हो, अखबारों में उसके उत्तराधिकारी के चुनाव की चर्चा बार-बार होने लगी। कम-से-कम लोग इस सोच-विचार में तो पड़ ही गये कि शायद नया वाइसराय इससे अच्छा हो या वह नयी नीति पर ही अमल करने लगे। उस समय लार्ड लिनलिथगो के उत्तराधिकारी के लिए जितने नाम लिये जा रहे थे उनमें से आर्किवाल्ड वेवल चुने गये।

सर आर्किवाल्ड वेवल अवकाश ग्रहण करनेवाले वाइसराय की अधीनता में प्रधान सेनापति के रूप में काम कर चुके थे। पर नागरिक वेवल ने सैनिक वेवल को गलत साबित कर दिया। अब सवाल था कि यह लेखक और चरितकार, यह योद्धा और रणनीति-विशारद, यह बहुभाषा-भाषी, जो स्टालिन से रूसी भाषा में बात चीत कर चुका है और रूसी भाषा में ही रूस में व्याख्यान दे चुका है, और यह फील्ड-मार्शल, जो सिंगापुर के पतन से ३६ घंटे पहले टूटी पसली लिये जान बचा कर भाग चुका है——भारत को निराशा के उस गड्ढे से निकालने के लिए क्या करेगा, जिसमें उसके अब तक के अभिमानी शासकों ने उसे डाल रखा था।

देश की स्थिति

जिस समय लार्ड लिनलिथगो अपने पद से अवकाश लेकर अपने साढ़े सात वर्ष के कार्य का सिंहावलोकन करते हुए विदाई ले रहे थे उस समय देश के राष्ट्रीय जीवन या उसके अभाव की ये विशेषताएं दिखायी दे रही थीं। ज्यादातर सूबों में दफा ९३ का शासन चल रहा था और जिन सूबों में वजारतें काम कर रही थीं उनमें भी शासन प्रायः गवर्नरों का ही था। केन्द्रीय असेम्बली की बैठक के समय भी आर्डिनेंस निकाले जाते थे। अन्न का प्रबन्ध बहुत बुरा था। इसी

तरह कपड़े का भी कुप्रबन्ध रहा। कलकत्ते की स्वास्थ्य तथा सफाई-सम्बन्धी हालत असहनीय थी। पूर्वी बंगाल में सेना ने किसानों की नावें छीन ली थीं और वे नदियों के पार जाने में असमर्थ थे। बंगाल में चावल का मूल्य ३५ रु० मन तक पहुंच चुका था, जबकि बेजवाड़ा में सिर्फ ८ रु० मन ही था। देश में सभी तरफ अकाल और बाढ़ का दौरदौरा था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि सरकार तथा जनता में विरोध की भावना लगातार बढ़ती जाती थी। जहां तक वैधानिक समस्या का सम्बन्ध है, गति-अवरोध पहले ही के समान बना हुआ था। नवीनता सिर्फ मि० चर्चिल का एक भाषण था, जिसमें उन्होंने अपने हमेशा के रुख को एक क्षण के लिए त्याग कर भारत के बारे में फरमाया था कि "इस विशाल महाद्वीप को हाल ही में ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल में पूर्ण सन्तोष प्राप्त होगा।" इस घोषणा से कुछ ही पूर्व लार्ड वेवल ने, जो उस समय सिर्फ सर आर्किबाल्ड वेवल थे, कहा था कि भारत की राजनीतिक उन्नति में युद्ध के कारण बाधा नहीं पड़ी है और मुझपर भारत का जो ऋण है, उसे चुका सकने की मुझे पूरी आशा है। इस कथन से लोगों को उम्मीद हो चली थी कि शायद नये वाइसराय सुलह के युग का श्रीगणेश करें।

इस स्थल पर यह बता देना लाभकर होगा कि हमारी राष्ट्रीय मांग क्या थी और इस मांग तक ऊपर बताये गये प्रस्ताव या निर्दल-नेताओं की योजना नहीं पहुंचती थी। हमारी राष्ट्रीय मांग तो यह थी कि ब्रिटेन पहले तो भारत की स्वाधीनता की घोषणा करे और फिर भारत तथा इंग्लैंड के बीच एक सन्धि हो, जिसमें वर्तमान परिस्थिति तथा स्वतन्त्र भारत के बीच के परिवर्तन-काल की सब बातें निश्चित की जायँ। इस बीच के काल में एक अस्थायी सरकार रहे, जो युद्ध-संचालन में बाधा खड़ी न करने का वचन दे और युद्ध-संचालन का कार्य पहले की व्यवस्था के अनुसार प्रधान सेनापति की देख-रेख में और बाद में हुई व्यवस्था के अनुसार पूर्वी एशिया कमान की देख-रेख में होता रहे।

गांधीजी की गिरफ्तारी की वर्षगांठ

८ अगस्त को गांधीजी की गिरफ्तारी को एक साल समाप्त होनेवाला था। इस अवसर पर अगर भारत में नहीं, तो कम-से-कम इंग्लैंड में कुछ हलचल हुई। ब्रिटिश पत्रों में वर्ष समाप्त होने और वाइसराय के भाषण पर कुछ महत्वपूर्ण टिप्पणियां लिखी गयीं। गांधीजी की गिरफ्तारी की साल-गिरह के मौके पर सरकार को भय होने लगा कि कहीं पिछले साल की ही तरह इस साल भी उपद्रव न छिड़ जाय। इसलिए सरकार को जिन व्यक्तियों से गड़बड़ होने की उम्मीद थी उन्हें हजारों की तादाद में गिरफ्तार कर लिया गया। साल-गिरह से दो दिन पहले बम्बई में ३०० व्यक्ति गिरफ्तार किए गए और फिर प्रायः सब के सब छोड़ भी दिये गये। भारत में जहां-जहां सभा करने की मुनादी न थी, वहां-वहां सभाएँ

हुई, और इन सभाओं में राजनीतिक बंदियों और विशेषकर गांधीजी तथा कांग्रेस-नेताओं की रिहाई की मांग की गयी। लंदन में भी कितनी सभाएँ हुई, जिनमें से एक में स्वाधीनता के अनन्य प्रेमी सोरेंसन ने कहा, कि भारत की परिस्थिति का सामना करने के लिए आध्यात्मिक साहस की जरूरत है। सालगिरह के मौके पर श्रीमती सरोजनी नायडू ने भी समाचारपत्रों में वक्तव्य दिया।

प्रशान्त-सम्मेलन और भारत

इस समय छोटे-बड़े, अंग्रेज, भारतीय, इंग्लैंड, हिन्दुस्तान तथा अमरीका—सभी तरफ से भारत की राजनीतिक परिस्थिति के सम्बन्ध में विचार प्रकट किए जाने लगे थे। आन्दोलन वापस लेने तथा वाइसराय के सिंहासन तक नतमस्तक होकर पहुँचनेवाले लोगों ने यह कहना शुरू कर दिया था कि गांधीजी ने अपने साथियों की सलाह के खिलाफ खिलाफत का पक्ष लेकर तथा सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन छेड़कर बड़ी भारी भूल की है। परन्तु यह भारत के लिए सौभाग्य की बात थी कि ऐसे विचार रखनेवाले भारतीय महानुभावों की तुलना में 'स्टेट्समैन' के भूतपूर्व संपादक आर्थर मूर-जैसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के लोग भी थे जिन्होंने अपनी अन्तर्भेदिनी दृष्टि-द्वारा समस्या का विश्लेषण कर उसे हल करने का रास्ता निकाल लिया था। लाहौर के 'ट्रिब्यून' में एक विशेष लेख लिखकर उन्होंने कहा कि भविष्य की तुलना में वर्तमान का महत्व ही अधिक है। उन्होंने कांग्रेस के इस रुख का समर्थन किया कि उसकी तात्कालिक उत्तरदायित्व की मांग पूरी करने से साम्प्रदायिक प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है, परन्तु भावी वैधानिक योजना की जो बात वाइसराय ने उठायी है उससे देश में आपसी झगड़े फैलने की सम्भावना है। इन्हीं दिनों (अगस्त १९४३) महामाननीय शास्त्रीजी ने प्रशान्त-सम्मेलन में गांधीजी के उपस्थित होने पर जोर दिया।

प्रशान्त-सम्मेलन की रिपोर्ट को देखने से पता लगता है कि उसकी सिफारिशों तथा उसके फैसलों का हवाला देकर मंत्रिमंडल अपनी स्थिति मजबूत करना चाहता था। इसीलिए प्रशान्त-सम्मेलन को गैर-सरकारी संस्था भी बताया जा रहा था, गोकि उसमें सरकारी प्रतिनिधि उपस्थित थे। सर रामस्वामी मुदालियर और सर मुहम्मद जफरुल्ला खां को सरकारी प्रतिनिधि माना गया या नहीं, यह तो स्पष्ट नहीं है; किन्तु एक 'भारतीय प्रतिनिधि' द्वारा सम्मेलन की कार्रवाई तथा भारतीय गोलमेज बैठक में प्रकट किए गए प्रतिक्रियावादी विचार इन्हीं दो महानुभावों में से किसी एक के थे। पूर्ण अधिवेशन में जो निश्चय हुए वे इसी भारतीय प्रतिनिधि के प्रतिक्रियावादी विचारों के परिणाम थे। सुदूर क्वेबेक जाने के लिए भारतीय प्रतिनिधियों का चुनाव जिस प्रकार किया गया था उसे देखते हुए उनसे यही आशा की जा सकता थी। वाइसराय की शासन-परिषद्

का भारतीयकरण प्रगतिशील कदम तो जरूर जान पड़ा होगा; लेकिन उसकी असली अहमियत भी किसी की नजर से छिपी न होगी। एक जांच-कमीशन की नियुक्ति और उसका मार्ग-प्रदर्शन करने के लिए संयुक्त-राष्ट्र-संघ की एक सलाहकार-समिति की सिफारिशें उन लोगों के लिए भले ही पर्याप्त हों, जिन्हें भारत के हाल के इतिहास का कुछ ज्ञान न हो; किन्तु उन लोगों के लिए जो साइमन कमीशन, चारों गोलमेज परिषदों, शिक्षा-सम्बन्धी हर्टजोग-समिति, आर्थिक-व्यवस्था सम्बन्धी ओटो राथफील्ड-समिति, देशी राज्यों-सम्बन्धी बटलर-समिति, लोथियन मताधिकार समिति, संयुक्त पार्लीमेंटरी समिति वगैरह के काम को १९२७ से १९३५ तक देख चुके हैं, प्रशान्त-सम्मेलन की यह नयी समिति भी निरुद्देश्य ही थी। फलतः प्रशान्त-सम्मेलन की सिफारिशों का असर कुछ भी नहीं हुआ। भारत की राजनीतिक समस्या वहीं रही, जहां वह पहले थी।

लार्ड वेवल का रुख़

मनोनीत वाइसराय ने १६ सितम्बर को अपने सम्मान में पिलग्रिमों के द्वारा दिए गए एक भोज के अवसर पर अपने भावी कार्यक्रम की एक झलक दी। इसके उपरान्त ईस्ट इंडिया एसोसियेशन में भी लार्ड वेवल के सम्मान में एक समारोह हुआ। लार्ड महोदय ने सामने आनेवाली कठिनाइयों तथा खतरों का जिक्र किया और साथ ही इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि इंग्लैंड की सभी वर्ग की जनता में भारत के प्रति सद्भावना वर्तमान है। उन्होंने यह भी कहा कि इस समय भारत के सामने एक बड़ा अवसर है। यदि मैं भारत को सन्मार्ग पर लाने में उसकी कुछ सहायता कर सकूँ तो इससे अधिक अभिमान और प्रसन्नता की बात मेरे लिए और कोई न होगी।

लार्ड वेवल को अपनी उपाधि जिस विंचेस्टर के लिए मिली उसके बारे में उन्होंने एक नयी बात भी कही—"भारत में हमने व्यवहार करने और एक या दो बार निर्णय करने में गलतियां की हैं, किन्तु ये गलतियां हमने लोभ या भय से प्रेरित होकर नहीं की हैं। दूसरी तरफ भारत को शान्ति प्रदान कर, उसमें राष्ट्रीयता की भावना प्रोत्साहित कर और उसे स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता के पथ पर ले जाकर हमने उसका जो कल्याण किया है, इसे अच्छे शासन व सुप्रबंध का एक सर्वोत्तम नमूना कहा जा सकता है।"

मज़दूर-दल का रुख़

दिल्ली में नये वाइसराय की नियुक्ति से ब्रिटेन में मजदूर दल एक बड़ी कठिनाई में पड़ गया। अनुदार-दलवाले तो स्पष्ट रूप से अपरिवर्तनवादी, प्रतिक्रियावादी और पिछड़े हुए थे और मि० चर्चिल के नेतृत्व में घोषित कर ही चुके थे कि

वे साम्राज्य का दिवाला निकालने के पक्ष में किसी भी तरह नहीं हैं। उदारदल-वाले सिर्फ नाम के ही उदार थे और उनकी संख्या भी पर्याप्त न थी। जिस मजदूर-दल ने दो बार हकूमत संभाली थी वह अपने को अनुदार-दल के बीच घिरा और कमजोर पा रहा था। दल में तीन वर्ग थे। सबसे प्रभावशाली वर्ग नर्म विचार-वालों का था और उसके नेता एटली, मारीसन, बेविन, ग्रीनवुड और रिडले थे। मध्यवर्ग के नेता सोरेंसन और बायें या उग्र वर्ग के नेता श्री कोवे थे। मजदूर-दल में पहले वर्ग का ही जोर अधिक था और वह हिन्दुस्तान के सवाल पर सरकार को किसी परेशानी में नहीं डालना चाहता था। इसीलिए इस वर्ग का एक डेपु-टेशन लार्ड वेवल से मिला और उसने उन्हें बताया कि राजनीतिक अड़ंगा दूर करने का जो भी प्रयत्न वह करेंगे उसका पूरा समर्थन मजदूर-दल करेगा। इसलिए मजदूर-दल वालों ने और कुछ नहीं तो कम-से-कम यह जाहिर तो कर ही दिया कि नकारात्मक प्रतिक्रियावाद ब्रिटेन के विचारों का सच्चा प्रतीक नहीं है, इसलिए आगे कदम उठाकर वे विरोधी दलवालों को खुश ही करेंगे। इसके विपरीत मध्यम वर्ग नकारात्मक नीति से संतुष्ट होनेवाला न था। वह ब्रिटेन की यह नैतिक जिम्मेदारी महसूस करता था कि परिस्थिति को विषम बनानेवाले कारणों को हटाना और भारत की आकांक्षाओं तथा मांगों को पूरी करने के लिए प्रयत्न-शील होना उसी का काम है। यह वह भी कहता था कि परिस्थिति बदल जाने और सुदूरपूर्व के युद्ध के रुख में परिवर्तन के कारण कांग्रेसी नेता भी अपनी नीति में रद्दोबदल करने की जरूरत महसूस कर सकते हैं। मजदूर-दल का मध्यम वर्ग नया विधान लागू होने तक ऐसी अस्थायी सरकार की स्थापना पर जोर देना चाहता था, जिसके प्रति वाइसराय अपना नकारात्मक अधिकार काम में न ला सकें। मि० कोवे का दृष्टिकोण कांग्रेस के प्रति रिआयत करने का नहीं, बल्कि उनके अधिकारों का था। वह भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा करने, राष्ट्रीय-सरकार की तुरंत स्थापना तथा राजनीतिक बंदियों की रिहाई और सद्भावना बढ़ाने के अन्य उपाय करने के पक्ष में थे।

जब कि एक तरफ मजदूर-दल की कार्यसमिति तथा पार्लीमेंटरी समिति की भारत-सम्बन्धी उप-समिति में विचार हो रहा था, दूसरी तरफ ट्रेड यूनियन-दल इसके मुकाबले में अच्छे दृष्टिकोण का परिचय दे रहा था। ट्रेड यूनियन-दल के नेता मि० डॉबी ने भारत-सम्बन्धी नीति में परिवर्तन की मांग जोरदार शब्दों में उप-स्थित की और कहा कि भारत का दुर्भिक्ष बहुत कुछ शासन-सम्बन्धी अव्यवस्था तथा जनता का सहयोग प्राप्त न करने के कारण हुआ है। इस बार पादरियों की उत्सुकता विशेष रूप से उल्लेखनीय थी। भारत की मिशनरियों-द्वारा भेजी गयी सूचना के आधार पर मेथडिस्ट गिरजा की एक जिला शाखा-द्वारा पास किया गया एक प्रस्ताव मि० एमरी के पास भेज दिया गया।

लार्ड लिनलिथगो का कार्य-काल

भारत से लार्ड लिनलिथगो की विदाई-द्वारा १८५७ के गदर के समय से अब-तक की वाइसरायी का सब से लम्बा काल समाप्त हो गया। दरअसल उनका कार्य-काल दूसरे किसी भी वाइसराय की तुलना में अधिक था। वह भारत में लार्ड कर्जन की अपेक्षा छः महीने ज्यादा रहे थे। लार्ड लिनलिथगो के कार्य-काल का दूसरा महत्व यह था कि दूसरे वाइसरायों की अपेक्षा उनका कार्य-काल सबसे नाटकीय था। नाटक जिस तरह सुखांत हो सकता है उसी तरह दुःखान्त भी हो सकता है। लार्ड लिनलिथगो जिस नाटक के नायक थे वह दुखांत ही था। वह देखने में हृष्ट-पुष्ट, स्वभाव से अज्ञानी, राजनीति में कट्टरपंथी, दृष्टिकोण में साम्राज्यवादी, कुछ अभिमानी और रीति-रिवाज को बहुत माननेवाले व्यक्ति थे। उन तक पहुँचना कठिन था। उनके व्यवहार में शिष्टाचार की मात्रा अधिक होती थी और वह दूसरों से मिलना-जुलना कम पसंद करते थे। बात को संक्षेप में कहना पसंद करने पर भी वह उसे घुमा-फिराकर ही कह पाते थे। कभी-कभी उनके कार्य निरुद्देश्य तथा प्रभावहीन भी हुआ करते थे। यदाकदा उनसे हृदय-हीनता भी टपकती थी। स्पष्टवादिता के अभाव के कारण लोग उनके इरादों पर संदेह करने लगे थे। यह शक यहां तक बढ़ा कि जब वह भारत की भौगोलिक और आर्थिक एकता पर जोर देते थे और देश में संघ-विधान स्थापित करने का आग्रह करते थे तब लोग आश्चर्य करते थे, क्योंकि उन्होंने अपनी नीति के द्वारा देश में हिन्दू-मुसलमानों के बीच, प्रांतों और रियासतों के बीच, सवर्ण हिन्दुओं और परिगणित जातियों के बीच और प्रांतों व परिगणित प्रदेशों के बीच जिस भेदभाव को प्रोत्साहन दिया था उससे उनके एकता स्थापित करने के आग्रह का समर्थन नहीं होता था। लार्ड लिनलिथगो ने नरेशों को बढ़ावा देकर उनका कांग्रेस के ही नहीं, बल्कि लोकतंत्रवाद के भी विरुद्ध उपयोग किया था। उन्होंने अपनी शासन-परिषद् में ऐसे व्यक्तियों को रखा जो कांग्रेस के कट्टर विरोधी थे या उसे छोड़ चुके थे। उन्होंने मि० एमरी के शब्दों में "देश के सब से महत्वपूर्ण राजनीतिक दल के नेताओं को जेल में ठूँस दिया था और फिर यह शिकायत भी की थी कि वह मुस्लिम लीग से समझौता नहीं करते।" उन्होंने कांग्रेसी नेताओं और लीगी नेताओं के बीच चिट्ठी-पत्री तक बंद कर दी थी और फिर आरोप लगाया था कि वे मेल-मिलाप नहीं करते। उन्होंने अगस्त १९४२ में महात्मा गांधी को मुलाकात करने की इजाजत नहीं दी और उनकी सरकार ने सेना तथा पुलिस की हिंसा के कारण देश में असाधारण उपद्रव फैलाने दिये थे। बंगाल और उड़ीसा में जब लाखों व्यक्ति भुखमरी के शिकार हो रहे थे तब उन्होंने उनकी सहानुभूति में न तो एक शब्द कहा और न कोई अपील ही निकाली। अपने कार्य-काल के अंतिम

दिनों में लाट साहब १६ अक्टूबर को 'सबवर्सिव एक्टिविटीज आर्डिनेन्स' के रूप में हिन्दुस्तान को अपना आखिरी तोहफा दिया।

इस प्रकार भारत की आर्थिक व्यवस्था तथा राजनीति से पिछला सम्बन्ध होने के कारण लार्ड लिनलिथगो से वाइसराय का पद संभालने के समय जो आशा की गई थी वह पूरी नहीं हुई। महात्मा गांधी से मैत्री का जो दावा उन्होंने किया था उसके पीछे शत्रुता की भावना छिपी हुई थी। उन्होंने भारत को एक ऐसे युद्ध में, जो उसका अपना युद्ध न था, व्यस्थापिका सभा को सूचित किये बिना ही फँसा दिया। उनके इस कार्य की लंदन के 'टाइम्स' तक ने निंदा की। उन्होंने २१ दिन के अनशन के अवसर पर गांधीजी को आगाखां महल में उनके भाग्य के भरोसे छोड़ दिया। गांधीजी ने जब सद्भावना प्रकट करने के लिए एक पत्र मि० जिन्ना को लिखा तब लार्ड लिनलिथगो ने उसे रोक दिया। सब से बड़ा विरोधाभास तो यह है कि जिस वाइसराय का कृषि से इतना सम्बन्ध रहा उसी के काल में बहुत दिनों से भूली हुई दुर्भिक्ष की विभीषिका का सामना देश को करना पड़ा। तात्पर्य यह कि वह अपने पीछे इतिहासकार के लिए निराशाओं तथा निरर्थक प्रयत्नों का लेखा और उत्तराधिकारी के लिए असुविधापूर्ण विरासत छोड़ गये और इस तरह उन्होंने भारतीय समुद्रतट से नहीं--बल्कि दिल्ली की कब्रों से विदाई ली। उनका न किसी ने सम्मान किया, न किसी ने उनके लिए आँसू बहाये और न किसी ने उनके गुणानुवाद ही गाये।

: २१ :

अगला कदम : १९४४

वेवल का व्यक्तित्व

दिल्ली में लार्ड लुई माउंटबेटन के अक्टूबर के दूसरे सप्ताह में अचानक पहुंचने के बाद १७ अक्टूबर, १९४३ को लार्ड वेवल भी पहुंच गये। लार्ड वेवल का आगमन अप्रत्याशित न था, किन्तु इस पद का कार्य-भार संभालने के लिए वायुयान-द्वारा भारत पहुँचनेवाले पहले वाइसराय थे। लंदन से रवाना होते समय उन्होंने पत्र-प्रतिनिधियों से कहा था—"मेरे सामने इस वक्त एक बहुत बड़ा सवाल है।" इससे जाहिर होता है कि भारत के वाइसराय का पद-ग्रहण करते समय लार्ड वेवल अपनी जिम्मेदारी कितनी अधिक महसूस कर रहे थे। इस सवाल की एक झलक मि० एमरी ने उस समय पार्लमेंट में दी थी, जब उन्होंने

आशा प्रकट की थी कि नये वाइसराय विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य सद्-भावना स्थापित करने के लिए अधिक-से-अधिक प्रयत्न करेंगे। यह जाहिर था कि सवाल बहुत टेढ़ा और नाजुक था। यह कठिनाई पिछले वाइसराय ने उत्पन्न करदी थी। यह भाव प्रकट किये बिना ही कि पुरानी नीति में परिवर्तन किया जा रहा है, नयी नीति आरम्भ करने के लिए असाधारण राजनीतिज्ञता अपेक्षित थी—खासकर एक ऐसे व्यक्ति के लिए जो पिछले वाइसराय की अधीनता में काम कर चुका हो। यह कार्य सहल न था, किन्तु उसे करने के लिए जिस आत्म-विश्वास, विवेक और दृष्टिकोण की आवश्यकता थी, वह उनमें भरपूर था। भारत में आते ही उन्होंने गवर्नमेंट हाउस के उस राजकीय शिष्टाचार को कम कर दिया, जिसका लार्ड लिनलिथगो को इतना चाव था।

एमरी का वक्तव्य

जिस दिन लार्ड वेवल भारत पहुंचे उसी दिन मि० एमरी ने कांग्रेस के विरुद्ध अपने आरोपों को दोहराया ताकि लार्ड वेवल उन्हें भूल न जायं। अपने आरोपों में उन्होंने सारी जिम्मेदारी कांग्रेस पर लाद दी। उनके आरोप इस प्रकार थे :—

"(१) कांग्रेस योजना के संघवाले हिस्से का आरम्भ से ही विरोध करती आयी है, (२) कांग्रेस ने रियासतों में असंतोष पैदा करके नरेशों की हिचकिचाहट बढ़ा दी है और (३) मुसलमान अब तक संघ-योजना के विरुद्ध नहीं थे, किन्तु प्रांतों में कांग्रेस के तानाशाही रंगढंग देखकर वे भी उसके कट्टर-विरोधी हो गये हैं।" मि० एमरी ने यह भी कहा कि इस आशंका के कारण कि केन्द्र में कांग्रेसी मंत्री केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के प्रति जिम्मेदार मंत्रियों के रूप में काम न करके कांग्रेस-कार्यसमिति और गांधीजी के आदेशों के अनुसार कार्य करेंगे, मुस्लिम लीग तथा नरेश दोनों ही १९३५ के विधान की संघ योजना के विरुद्ध हो गये हैं।

साथ ही मि० एमरी ने पहली बार स्वीकार किया कि देश के सब से महत्व-पूर्ण राजनीतिक दल के जेल में बंद होने के कारण उसका दूसरे दल से बातचीत चलाना असम्भव हो गया है। उन्होंने यह भी कहा—"लार्ड लिनलिथीगो का विचार ठीक है कि जो लोग युद्ध के समय खुलेआम विद्रोह को प्रोत्साहन देने के लिए तैयार थे उन्हें यह सुविधा नहीं मिल सकती।" इसके उपरांत उन्होंने लार्ड लिनलिथिगो के साथ किया गया निर्णय सुनाया और कहा कि "उन्हें अपने पिछले कार्यों के लिए पश्चात्ताप करना चाहिए। इसके बाद ही उन्हें भारत के भावी विधान के निर्माण में हिस्सा लेने की अनुमति दी जा सकती है।" इसके बाद उन्होंने भविष्य के बारे में कहा, "अब यह देखना शेष है कि विदेश में हमारी विजय के साथ ही भारत की आंतरिक स्थिति में ऐसा सुधार होता है या नहीं, जिससे कि भारतीय नेताओं को आपस में समझौता करने के लिए राजी किया जा सके, क्योंकि

इसी आधार पर शासन की स्थायी व्यवस्था खड़ी की जा सकती है। यदि ऐसी प्रगति हुई तो निस्संदेह वाइसराय, सम्राट की सरकार और भारतीय जनता उसमें प्रोत्साहन प्रदान करेगी।"

वेवल की कठिनाइयां

ऊपर जो उद्धरण दिये गये हैं, उनसे स्पष्ट है कि 'नेताओं' से भारत-मंत्री का तात्पर्य उन लोगों से नहीं था, जो बाहर थे, किन्तु उनसे था जो जेलों में थे। परन्तु इस पहेली का कुछ उत्तर नये वाइसराय को नहीं मिला कि जेल से बाहर आये बिना कांग्रेसी नेता अन्य लोगों से समझौता कैसे कर पायेंगे?

यदि सच पूछा जाय तो भारतमंत्री का यह वक्तव्य लार्ड वेवल के नाम एक आदेश-पत्र था, जिसमें लार्ड वेवल को कांग्रेस के विरुद्ध चेतावनी दी गयी थी और गांधीजी तथा दूसरे कांग्रेसी नेताओं के क्षमा-प्रार्थना करने और अगस्तवाले प्रस्ताव को वापस लेने तक वाइसराय को अपने विशेषाधिकारों से काम लेने को कहा गया था।

इस सम्बन्ध में महामाननीय वी० एस० शास्त्री ने मि० एमरी, लार्ड वेवल तथा गांधीजी के नाम तीन खुले पत्र लिखे। इन पत्रों को उन्होंने स्याही की जगह अपने रक्त से लिखा था। इनमें उन्होंने अपनी आत्मा निकाल कर रख दी थी और अनुरोध किया था कि इन तीनों व्यक्तियों को अपने अवसर तथा अधिकारों का उपयोग भारत तथा ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की गौरव-वृद्धि के लिए करना चाहिए। उन्होंने एमरी को वर्साई की संधि का स्मरण दिलाया और कहा कि मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी को जिस प्रकार अपमानित किया उसका परिणाम प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोध की नीति के रूप में दिखाई दिया। लार्ड वेवल से उन्होंने मि० एमरी की सलाह न मानने तथा गतिरोध समाप्त करने का उपाय शीघ्र करने का अनुरोध किया। इसके साथ ही उन्होंने गांधीजी से "एक योजना तथा एक नीति" पर जमे रहने के सिद्धांत को त्यागने तथा समय के अनुसार नीति में परिवर्तन करने का अनुरोध किया।

इस प्रकार लार्ड वेवल-द्वारा वाइसराय का पद संभालते ही लोगों ने अनेक सुझाव तथा अनुरोध उपस्थित करने आरम्भ कर दिए, जिनमें कहा गया कि उन्हें अपने तात्कालिक कार्यक्रम में क्या शामिल करना चाहिए और क्या नहीं। यदि एक आवाज गतिरोध समाप्त करने के प्रयत्नों के विरुद्ध आई तो कितनी ही आवाजें ऐसे प्रयत्न आरम्भ किये जाने के पक्ष में उठीं। पृथ्वी पर शांति और मनुष्य-जाति में सद्भावना की वृद्धि के लिए भी बहुत-कुछ कहा गया।

वेवल का कार्य

बिना मांगे, परम्परावश या शिष्टाचार के कारण जो सलाह दी जाती है

उससे लोग बहुत कम प्रभावित होते हैं। लार्ड वेवल इसके अपवाद नहीं थे। उनके अपने विचार, अपने सिद्धांत, कर्तव्य के सम्बन्ध में अपनी निजी भावना और अपनी रुचि थी। सब से पहले उनका ध्यान बंगाल की भुखमरी की तरफ गया। इसलिए सब से पहले उन्होंने इसी समस्या को हाथ में लिया। उन्होंने स्वास्थ्य-जांच तथा २६ अक्तूबर, १९४३ को शुरू होने वाली उन्नति समिति की बैठक के लिए जो संदेश दिया उसमें उन्होंने गन्दी बस्तियों तथा उनमें रहनेवालों को नये सिरे से बसाने की समस्या, जल का प्रबंध, सफाई की व्यवस्था, मलेरिया-निवारण के लिए देशी कीटाणुनाशक दवाओं का प्रयोग, मच्छरदानियों का अधिक उपयोग, स्कूलों में दवाखाने खोलने, अधिक डाक्टर-उपलब्ध करने, गांवों में डाक्टरों तथा नर्सों का प्रबन्ध करने, देशी दवाओं को प्रोत्साहन देने और अनुसंधान-संगठनों की चर्चा की। इसके अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण बात बंगाल के पीड़ितों के लिए दी गयी रकमों की व्यवस्था के लिए एक विशेष कोष का खोला जाना था। लंका की सरकार ने वाइसराय को इस कोष के लिए २७ लाख रुपये भेजे थे। दूसरा अच्छा कार्य २४ अक्तूबर को लार्ड वेवल की अविज्ञापित कलकत्ता-यात्रा थी। इसकी सभी तरफ़ कद्र की गयी—खासतौर पर जेल में बन्द उन कांग्रेसी बंदियों द्वारा जो सीखचों के भीतर रहकर बंगाल की बरबादी का दृश्य दीनतापूर्वक देख रहे थे और जिसकी तरफ शासन-व्यवस्था का प्रधान होते हुए भी युद्ध-प्रयत्न में व्यस्त भूतपूर्व वाइसराय ने कुछ ध्यान नहीं दिया था। नये वाइसराय ने प्रधान सेनापति को सब से बुरी तरह प्रभावित जिलों के लिए सेना के साधन, विशेषकर अन्न के यातायात के लिए, उपलब्ध करने, सहायता के केन्द्र खोलने और इन केन्द्रों के लिए अन्न का संकलन करने का आदेश दिया। इन उपायों की सूचना २८ अक्तूबर को पत्र-प्रतिनिधियों के एक सम्मेलन में दी गयी और इसी में योजना को कार्यान्वित करने के कार्यक्रम पर विचार किया गया।

लार्ड वेवल के कार्य-काल की एक विशेष घटना गवर्नरों का वाइसराय से परामर्श के लिए एकत्र होना भी थी। पिछले दस वर्षों में वाइसराय के लिए गवर्नरों को परामर्श के लिए बुला भेजना एक साधारण घटना हो गयी थी। ऐसा उस समय विशेष रूप से किया जाता था जब दमनकारी उपाय करना होता था या उन्हें हटाना होता था। परन्तु उन दिनों गवर्नर वाइसराय से दो-दो या तीन-तीन की टोलियों में मिलते थे। नवम्बर, १९४३ के गवर्नर-सम्मेलन की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि ग्यारह-के-ग्यारह गवर्नर दिल्ली में उपस्थित हुए और ऐसे सम्मेलन बीस महीनों में तीन हुए।

यह सच है कि वाइसराय ने गवर्नरों का सम्मेलन जल्दी ही बुलाया, पर उसका कुछ भी परिणाम न निकला। लोकमत में अशान्ति के लक्षण दिखाई देने

लगे। लोग सोचने लगे कि वाइसराय के विचारों में कोई ऐसी बात नहीं है, जिस से राष्ट्र के राजनीतिक आदर्शों की तुष्टि हो सके। बंगाल के लिए अन्न उपलब्ध करने की समस्या की बहुत समय से उपेक्षा की गयी थी। नए वाइसराय ने उसकी तरफ ध्यान देकर सिर्फ अपने साधारण कर्तव्य का ही पालन किया था। लेकिन लार्ड वेवल के सार्वजनिक आचरण में एक परिवर्तन दिखाई दिया। उन्होंने अखिल-भारतीय समाचारपत्र-सम्पादक-सम्मेलन की स्थायी समिति को एक भोज दिया। यह समाचारपत्रों के लिए सद्भावनापूर्ण संकेत था। वाइसराय ने समिति के एक सदस्य को बताया कि उन्हें इंग्लैंड तथा भारत से परामर्श के कितने ही पत्र मिले थे। उन्होंने यह भी कहा कि अपनी तरफ से कुछ कहने से पहले मैं इन विचारों का अध्ययन करना चाहता हूँ।

मुस्लिम लीग की स्थिति

एक बार फिर १९४३ के नवम्बर महीने में मुस्लिम लीग की कौंसिल तथा कार्यसमिति की बैठकें दिल्ली में हुईं। अप्रैल के महीने में लीग के पूरे अधिवेशन में जैसी चुनौतियां और धमकियां दी गयी थीं वैसी इस बार नहीं दी गयीं। पिछले १२ महीनों में जो लाभ हुए थे उनकी हिफाजत की ही तरफ इस बार अधिक ध्यान दिया गया था। कहा गया कि लीग के प्रभाव में पांच वजारतें काम कर रही हैं। पांचों प्रधान मंत्रियों को लीग के अध्यक्ष तथा कार्य-समिति के सदस्यों से मिलने के लिए बुलाया गया। जनता यह भी नहीं जानती थी कि पांचों प्रान्तों के लिए राजनीतिक और आर्थिक सुधार के क्या कार्यक्रम तैयार किये गये हैं। फिर भी यह जाना जा सकता था कि दल के संगठन को सब से अधिक महत्व दिया गया। लीग अब तक कांग्रेस के संगठन की निन्दा करती थी, लेकिन अब उसने अपना भी संगठन कांग्रेस के ढंग पर किया। लीग की कार्यसमिति को समाचारपत्र 'हाई कमांड' कहने लगे। कहा गया कि सभी लीगी प्रान्तों को एक नीति, एक कार्य-क्रम और एक ही अनुशासन का पालन करना चाहिए।

जहां तक वजारतों का सवाल है वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि पंजाब, सिंध, सीमाप्रान्त, बंगाल और आसाम में से किसी एक भी प्रान्त की असेम्बली में मूल लीगी सदस्यों का बहुमत नहीं था। पांचों वजारतें ब्रिटिश सरकार के कृपापूर्ण प्रभाव से कायम हुई थीं। सरकार ने युद्धकाल में वजारतें कायम करके राजनीतिक अड़ंगा भंग करने और कांग्रेस का सफाया करने की सोची थी। इन पांच प्रान्तों से बाहर और कहीं भी ब्रिटिश सरकार का यह षड्यंत्र सफल नहीं हो सका। ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान के सवाल को जो ताक पर रख दिया था उस पर मुसलमानों में आम असंतोष फैलने लगा था। यह लीग की कौंसिल तथा कार्यसमिति के सदस्यों के रुख से स्पष्ट था। यही मुस्लिम एस० एल० ए०

के आचारण तथा पत्रकारों के लेखों से जाहिर होता था। इतना ही नहीं, मुस्लिम समाज में वास्तविक राष्ट्रीय जागृति के स्पष्ट लक्षण दिखायी देने लगे थे।

एमरी से इस्तीफा देने की मांग

लार्ड वेवल के भारत पहुंचने के कुछ सप्ताह के अंदर ही साम्राज्य के इतिहास की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं होने लगीं। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन की जो अफवाहें उड़ रही थीं उनमें मि० एमरी, सर जेम्स ग्रिग और लार्ड साइमन के नाम भी लिए जा रहे थे। ब्रिटेन भर की राजनीतिक तथा औद्योगिक संस्थाएं मि० एमरी की भारत-सम्बन्धी नीति—विशेषकर उनके अकाल-सम्बन्धी कुप्रबंध के विरोध में प्रस्ताव पास कर रही थीं। हाल ही में जिन संस्थाओं ने मि० एमरी को अपदस्थ करने का अनुरोध करते हुए प्रस्ताव पास किये थे उनमें मांचेस्टर नगर-मजदूर-दल, ग्रीनफर्ड की सम्मिलित इंजीनियर्स यूनियन, ट्रांसपोर्ट जनरल वर्कर्स की नम्बर १ हल्के की समिति, म्यूनिसिल कर्मचारी यूनियन की बर्नले शाखा, राज-मजूरों की सम्मिलित यूनियन की सेंट ऑलबंस शाखा और लेनार्क खनक यूनियन की केस्टन शाखा मुख्य थीं। बरमिंघम अनुदार संघ की तरफ से होनेवाली एक सभा में जब मि० एमरी व्याख्यान देने गये तब उन पर बेहद आवाजकशी की गयी। यहाँ तक कि पुलिस न होती तो गम्भीर उपद्रव हो जाता। अंत में मि० एमरी को भाषण दिये बिना ही सभा से उठकर चले जाना पड़ा। कई मिनट तक भारतमंत्री ने सभा से शान्त हो जाने की प्रार्थना की, लेकिन लोग चुप न हुए और अन्त में सभा भंग हो गयी। ट्रांसपोर्ट ऐंड जनरल वर्कर्स यूनियन ने, जिसे संसार की सबसे बड़ी ट्रेड यूनियन कहा जा सकता है, सर्वसम्मति से मि० एमरी के इस्तीफे की मांग की।

वेवल का भाषण

लार्ड वेवल के शासन के पहले छः महीने भारत के लिए और खुद लार्ड वेवल के लिए परीक्षा के दिन थे। राजनीतिक परिस्थिति में सुधार के लिए लोकमत की मांग दिन-प्रतिदिन जोर पकड़ती जा रही थी, परन्तु उन्होंने अभी तक इस दिशा में कुछ भी नहीं किया था। श्री राजगोपालाचार्य का प्रस्ताव था कि क्रिप्स-योजना पर फिर से विचार किया जाय। श्री एन० आर० सरकार ने क्रिप्स-प्रस्तावों के ही आधार पर कांग्रेस को नयी नीति ग्रहण करने की सलाह दी। महामाननीय शास्त्रीजी ने भारत को स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेश माने जाने का अनुरोध किया।

इन्हीं दिनों ब्रिटिश समाचार-पत्रों में एक खबर छपी कि चांगकाई शेक ने चुंगकिंग से महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू को पत्र लिखकर जापान को पराजित करने के लिए युद्ध में सहयोग करने के लिए कहा है। च्यांगकाई शेक

के पत्रों का संवाद छपा ही था कि वाइसराय उड़ीसा और आसाम का दौरा समाप्त करके कलकत्ता आये और उन्होंने २० दिसम्बर को असोशियेटेड चेम्बर्स आफ कामर्स के वार्षिक अधिवेशन में भाषण दिया :—

"मैंने भारत की वैधानिक तथा राजनीतिक समस्याओं के बारे में कुछ नहीं कहा है—इसलिए नहीं कि ये समस्याएं हमेशा मेरे दिमाग में नहीं रहतीं, इसलिए भी नहीं कि भारत की स्वशासन-सम्बन्धी आकांक्षाओं के प्रति मेरी सहानुभूति न हो और इसलिए भी नहीं कि मेरे विचार में युद्ध के दरमियान राजनीतिक प्रगति होना असम्भव है उसी तरह जिस तरह मैं यह नहीं सोच सकता कि युद्ध के खत्म होने से ही राजनीतिक अड़ंगे का कोई हल निकल आएगा, बल्कि इसलिए कि मेरा विश्वास है कि उनके सम्बन्ध में कुछ कहकर मैं उनके निबटारे का रास्ता साफ नहीं कर सकता। अभी तो मैं अपनी शक्ति उस काम में ही लगाना चाहता हूं जो मेरे सामने है। इस समय भारत के पास संकल्प-शक्ति और बुद्धिमत्ता का जो खजाना है उसका उपयोग उसे युद्ध में विजय प्राप्त करने, घरेलू आर्थिक मोर्चे का संगठन करने और शान्ति की तैयारी करने में ही लगा देना चाहिए।

"भारत का भविष्य इन महान समस्याओं पर ही निर्भर है और इन समस्याओं को निबटाने के लिए मुझे प्रत्येक इच्छुक व्यकित के सहयोग की जरूरत है। यह तो मेरा विश्वास नहीं है कि शासन-सम्बन्धी कार्यों से राजनीतिक मतभेदों का निबटारा होना सम्भव है, किन्तु यह विश्वास अवश्य है कि शासन-सम्बन्धी महान् लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यदि हम अभी ऐसे समय सहयोग करेंगे, जबकि देश के लिये संकट उपस्थित है, और उन लक्ष्यों के सम्बन्ध में सहयोग करेंगे जिनके बारे में विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच कोई मतभेद नहीं है, तो हम ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए बहुत-कुछ कर सकेंगे, जिसमें राजनीतिक गतिरोध का हल हो सकेगा। सरकार के प्रधान और भारत के पुराने और सच्चे दोस्त के नाते मैं अपने कार्यकाल में देश को उसके उज्ज्वल की ओर ले जाने के लिए भरपूर प्रयत्न करूंगा। हमारा रास्ता न तो सरल है और न उसे छोटा करने के लिए पगडंडियां ही हैं। फिर भी यदि हम अपनी समस्याओं के निबटारे के लिए मिलकर प्रयत्न करें तो उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में हम निश्चिन्त हो सकते हैं।"

ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का विरोधी रुख़

इस भाषण की भारतीय पत्रों तथा जनता ने बड़ी ही कटु आलोचना की। वाइसराय ने जो यह कहा कि 'अभी राजनीतिक समस्याओं के निबटारे के सम्बन्ध में कुछ कहकर उनका हल आसान नहीं बनाया जा सकता," इससे उनका मतलब क्या था? कुछ ने 'कहने' तथा दूसरों ने 'अभी' पर ज्यादा जोर दिया। यदि 'कहना' ठीक न था तो कम-से-कम कुछ 'करना' तो चाहिए था। यदि अभी कुछ नहीं

होना था तो 'भविष्य' का इंतजार किया जा सकता था। इस प्रकार अगले वर्ष (१९४४) की १५ फरवरी तक राष्ट्र को इंतजार में रखा गया। इस दिन वाइस-राय को केन्द्रीय धारासभाओं के संयुक्त अधिवेशन में भाषण देना था। हरेक को यही आशा थी कि इस भाषण में वह राजनीतिक परिस्थिति के विषय में कोई महत्वपूर्ण घोषणा करेंगे। राजनीतिक गतिरोध अभी बना हुआ था और कलकत्ते में वह कह चुके थे कि अभी कुछ कहने से परिस्थिति के हल को आसान नहीं बनाया जा सकता। यह भी सम्भव था कि मि० एमरी ने समस्या को हल करने की कोई योजना भेज दी हो, जिसे अब वाइसराय थोड़ी-थोड़ी करके अमल में लाने जा रहे हों। परन्तु उच्च अंग्रेज कर्मचारियों में घबराहट फैली हुई थी—न जाने वेवल क्या करने जा रहे हैं! जिस तरह भारतीयों के मन में योजना के खोखलेपन का भय लगा हुआ था उसी तरह उच्च अंग्रेज कर्मचारी उसके ठोस होने की सम्भावना से भयभीत थे। ब्रिटेन में कितने ही शक्तिशाली गुट प्रगतिशील उपायों को निष्फल करने के लिए षड्यंत्र कर रहे थे। उनके उर्वर मस्तिष्क एक ऐसे राजनीतिक संगठन की कल्पना कर रहे थे, जिसकी सहायता से साम्राज्य को कायम रखते हुए भारत की स्वाधीनता के मार्ग में रोड़े अटकाए जा सकें। प्रांतों में नये प्रदेश सम्मिलित करने की योजना प्रोफेसर कूपलैंड की थी। लार्ड हेली प्रादेशिक गुट संगठित किये जाने की बात कह रहे थे। भारतमंत्री मि० एमरी ऐसे शासन-परिषदों की बात सोच रहे थे, जिन्हें हटाया न जा सकेगा। दूसरे शब्दों में ब्रिटेन को भारत में एक अनिश्चित समय तक रहना चाहिए ताकि यहां के विभिन्न दल एक-दूसरे को हड़प न जायं। इनके अतिरिक्त श्री प्रो० एव० एडवर्ड-जैसे पत्रकार-जगत् में काम करनेवाले राजनीतिज्ञ भी बोले, जिन्होंने 'वर्ल्ड रिव्यू' में लेख लिखकर सुझाव उपस्थित किया था कि ब्रिटेन को दिल्ली अपने अधिकार में रखना चाहिए और वहां से हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच शांति बनाए रखनी चाहिए और देश भर की रक्षा का भार भी उसे अपने ही कंधों पर बनाये रखना चाहिए। ब्रिटिश पत्रों में इन प्रतिक्रियापूर्ण वक्तव्यों को तो प्रमुख स्थाग दिया गया, किन्तु भारत की आर्थिक तथा कृषि-सम्बन्धी परिस्थिति पर थोड़ा भी प्रकाश न डाला गया। अमरीका का लोकमत कुछ तटस्थ लेखकों की पुस्तकों-द्वारा प्रकट हुआ, किन्तु इन लेखकों का राजनीतिक प्रभाव अधिक न था।

स्वाधीनता-दिवस : १९४४

अन्य वर्षों की तरह १९४४ में भी स्वाधीनता-दिवस आया। श्रीमती सरोजिनी नायडू स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण २१ मार्च, १९४३ को जेल से छूटी थीं। करीब १० महीने बाद ७ जनवरी, १९४४ को श्रीमती नायडू ने अपना मुँह खोला।

पिछले साल की तरह इस वर्ष भी स्वाधीनता-दिवस के अवसर पर देश भर में गिरफ्तारियां हुईं, किन्तु इनकी संख्या पिछले साल से कम थी। स्वाधीनता-दिवस-समारोह के सिलसिले में सिर्फ बम्बई में लगभग ६० गिरफ्तारियां हुईं, जिनमें १७ महिलाएं, १ बालिका व १ बालक था। दूसरी जगहों में भी लोगों को पकड़ा गया।

स्वाधीनता-दिवस की प्रतिज्ञा में समय-समय पर रद्दोबदल होता रहा है। गोकि भाषा में परिवर्तन कर दिया गया था, फिर भी विदेशी चंगुल से छुटकारा पाकर स्वाधीनता की प्राप्ति करने के राष्ट्र के दृढ़ संकल्प में कोई कमी नहीं हुई थी। यह संकल्प बराबर हमारे सामने उस प्रकाश-स्तम्भ के समान रहा, जो अंधकार, तूफान, समुद्री चट्टानों व बर्फीले पहाड़ों के बीच है। यद्यपि कार्य-समिति के सदस्य स्वाधीनता-समारोह में भाग लेने के लिए जनता के मध्य उपस्थित न थे; फिर भी साधारण कांग्रेसजन ने झंडे को ऊंचा रखा। जहां दिवस मनाने पर पाबंदी नहीं थी, वहां सार्वजनिक रूप से और जहां पाबंदी थी वहां अपने घरों में सदा ही इस पवित्र त्यौहार को मनाया गया, क्योंकि घरों में कड़े-से-कड़े कानून और अत्याचारी से अत्याचारी शासक की पहुंच नहीं हो सकती थी। नौकरशाही ने मद्रास, बम्बई, दिल्ली, आसाम, बिहार और उत्तर प्रदेश में स्वाधीनता समारोह पर रोक लगा रखी थी। किन्तु एक लोकप्रिय सरकार को यह पाबंदी लगाने का गर्व सिर्फ सिंध में ही हासिल हुआ था। सिंध सरकार ने जनता के लिए यह आदेश निकाला :—

"प्रतिज्ञा को पढ़ना, या प्रकाशित करना या स्वाधीनता-दिवस मनाने के लिए अपील करना क्रिमिनल ला एमेंडमेंट ऐक्ट के अंतर्गत जुर्म माना जायगा और यह जुर्म करनवाले पर मुकदमा चलाया जायगा।" २६ जनवरी को लाहौर स्टेशन पर पहुंचने के समय पंजाब सरकार ने श्रीमती सरोजिनी नायडू के खिलाफ एक आदेश जारी किया। यह आदेश चीफ सेक्रेटरी की तरफ से आना चाहिए था, किन्तु इस पर पंजाब पुलिस के सी० आई० डी० विभाग के डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल की तरफ से घसीटाराम नामक व्यक्ति के हस्ताक्षर थे। कहा जाता है कि घसीटाराम डिप्टी इंस्पेक्टर-जनरल सी० आई० डी० के दफ्तर में एक कर्मचारी था। जब यह आदेश श्रीमती नायडू को पढ़कर सुनाया गया तब उन्होंने उसकी पीठ पर लिख दिया कि अपने डाक्टर की हिदायत के मुताबिक मेरा इरादा पहले ही से किसी सभा में भाषण करने या जुलूस में भाग लेने का नहीं है और इसलिए जहां तक मेरा सम्बन्ध है मेरे लिए आदेश का अस्तित्व न होने के समान है। आदेश पर हस्ताक्षर करने के बाद जब वह अपने डिब्बे से बाहर निकलीं तब उनके मुँह से सहसा निकल पड़ा—"पंजाब बड़ा दिलचस्प सूबा है और यहां की पुलिस तो और भी दिलचस्प है।"

गतिरोध दूर करने की लालसा

वेवल आये; वेवल ने देखा; पर वेवल परिस्थिति पर विजयी नहीं हुए। इसके लिए हम लार्ड वेवल को दोष नहीं दे सकते; किन्तु हमें खेद तो सिर्फ इतना ही है कि उनके भाषणों को देखते हुए परिणाम अधिक नहीं निकला। वाइसराय के रूप में लार्ड लिनलिथगो कुछ दुःखी और निराश होकर ही भारत से बिदा हुए थे। कम-से-कम उन्हें इस बात से तो धीरज मिल सकता था कि नाकामयाबी ने उनका पल्ला मीयाद खत्म होने के दिनों में ही पकड़ा था। परन्तु लार्ड वेवल के साथ यह बात न थी। उन्होंने अपने पूर्वाधिकारी से यह दुर्भाग्य प्राप्त किया था। इसलिए उन्होंने सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रयत्न तो आरम्भ कर दिया था, किन्तु वह सहयोग की कीमत चुकाने के लिए तैयार न थे। वह तो अपनी ही शर्तों पर सहयोग चाहते थे। या कम-से-कम बदनामी के कारण को मिटाने के लिए उत्सुक थे। परन्तु कांग्रेस सिर्फ अपनी शर्तों पर ही सहयोग करना चाहती थी। इसलिए उनको सहयोग के सम्बन्ध में काफी निराशा हुई।

यदि अंग्रेजों में गतिरोध दूर करने की इच्छा होती तो इसमें कठिनाई कुछ भी न थी। भारत में तथा इंग्लैंड और अमरीका के विवेकशील हलकों में यह बात समान रूप से अनुभव की जाती थी। भारत में सर जगदीशप्रसाद, डा० सप्रू और प्रोफेसर वाडिया-जैसे व्यक्तियों के स्पष्ट वक्तव्य मौजूद थे। सभी तरफ धीरज का अंत होने लगा था और अधैर्य नहीं तो कम-से-कम लोगों में आश्चर्य फैलने लगा था। नेताओं की जेल से रिहाई के बारे में सरकार की घोषणाएं खास तौर पर क्षुब्ध कर देनेवाली जान पड़ती थीं। जो लोग नेताओं की रिहाई के विरुद्ध थे उन्हें जेल से बाहरवाले नेताओं के साथ जेल के भीतरवाले नेताओं का सम्मेलन करने का प्रस्ताव मूर्खतापूर्ण लगता था। उधर भारत में नरम-से-नरम विचारवाले नेता देश में बढ़ती हुई राजनीतिक कटुता को देख रहे थे और महसूस कर रहे थे कि यदि वाइसराय ने राजनीतिक विचारों से भरे हुए भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए कुछ न किया तो यह असंतोष और भी बढ़ जायगा। उधर इंग्लैंड में पादरी लोग इस आशंका से चिन्तित हो रहे थे कि कहीं भारत में नाराजी इतनी अधिक न फैल जाय कि बाद में अनेक प्रयत्न करने पर भी उसे दूर न किया जा सके।

जिन्ना साहब का मत

केन्द्रीय धारासभाओं के समक्ष लार्ड वेवल का भाषण हुए एक पखवारा बीत चुका था, पर अभी देश को उसके सम्बन्ध में मि० जिन्ना की प्रतिक्रिया का कुछ पता नहीं चला था। अपनी आदत के मुताबिक मि० जिन्ना कहीं एक महीने बाद वाइसराय या भारतमंत्री के भाषण पर मत प्रकट किया करते थे। परन्तु

'न्यूज क्रानिकल' के दिल्ली के प्रतिनिधि के मि० जिन्ना से मुलाकात करने की वजह से इस बार लोगों को अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी। यह मुलाकात २९ फरवरी को हुई और इसमें मि० जिन्ना स्पष्ट और जोरदार शब्दों में बोले। मि० जिन्ना के पिछले वक्तव्यों और मुलाकातों के बावजूद पाकिस्तान-योजना पर अभी तक अस्पष्टता और रहस्य का पर्दा पड़ा हुआ था, किन्तु इस मुलाकात में यह पर्दा हट गया। उन्होंने देश की राजनीतिक अवस्था पर विचार प्रकट करते हुए 'न्यूज क्रानिकल' लंदन के प्रतिनिधि को जो वक्तव्य दिया, वह इस प्रकार है :—

मि० जिन्ना ने कहा—"सरकार वर्तमान परिस्थिति से संतुष्ट जान पड़ती है और वह कोई कदम नहीं उठाना चाहती। कांग्रेस गैर-कानूनी घोषित कर दी गयी है और उसने अपनी तरफ से किसी हृदय-परिवर्तन का परिचय नहीं दिया है।"

प्रश्न—"सरकार कांग्रेस से बातचीत क्यों नहीं शुरू करती? या वह श्री राजगोपालाचार्य-जैसे किसी व्यक्ति को, जिसने आपकी पाकिस्तान की मांग के सिद्धांत को—हिन्दू और मुसलमानों के दो पृथक् राज्यों को मान लिया है, गांधीजी से मिलकर उन्हें अपने मत में परिवर्तन करने के लिए राजी करने का मौका क्यों नहीं देती?"

मि० जिन्ना—"इसका मतलब यह हुआ कि जब तक गांधीजी को राजी नहीं किया जाता तबतक सरकार हमारी उचित मांग को स्वीकार न करेगी। यह तर्क हम नहीं मान सकते। जहां तक सरकार का सम्बन्ध है, मैं नहीं कह सकता कि उसकी नीति क्या है; किन्तु यदि सरकार आपके सुझाव को मान ले तो इसका मतलब यह होगा कि जीत कांग्रेस की हुई है और सरकार कांग्रेस के बिना आगे नहीं बढ़ सकती।"

प्रश्न—"किया क्या जाय?"

मि० जिन्ना—"यदि ब्रिटिश सरकार सच्चे हृदय से भारत में शान्ति स्थापित करने को उत्सुक है तो उसे भारत को दो स्वाधीन राष्ट्रों में बांट देना चाहिए—पाकिस्तान मुसलमानों के लिए, जिसमें देश का एक चौथाई भाग शरीक होगा, और हिन्दुस्तान हिन्दुओं के लिए जिसमें समस्त भारत का तीन-चौथाई भाग होगा।

प्रश्न—"परन्तु भारत को दो देशों में बांटकर कमजोर बनाना या शत्रु के आक्रमण का शिकार बना देना कभी वांछनीय नहीं हो सकता।"

मि० जिन्ना—"मैं नहीं मानता कि भारत को जबर्दस्ती एक रखकर उसे अधिक सुरक्षित बनाया जा सकता है। सच तो यह है कि इस हालत में उस पर आक्रमण का खतरा ज्यादा होगा, क्योंकि हिन्दू और मुसलमानों में कभी सद्भावना नहीं हो सकती। हिन्दू और मुसलमानों के लिए एक ही देश में रहना या शासन संघ में सहयोग करना असम्भव है। ब्रिटेन वर्षों से हिन्दुस्तान को एक राष्ट्र का

रूप देने के लिए प्रयत्नशील रहा है, किन्तु उसे असफलता ही मिली है। अब उसे भारत में दो राष्ट्रों का अस्तित्व मान लेना चाहिए।"

प्रश्न—"पर आप जानते हैं कि कांग्रेस और हिन्दू इसे कभी न मानेंगे। यदि सरकार इस प्रकार की कोई योजना अमल में लाती है तो हिन्दू और कांग्रेस सत्याग्रह शुरू कर देते हैं और तब हिंसा और गृह-युद्ध की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है।"

मि० जिन्ना—"नहीं, ऐसा कुछ नहीं होगा। यदि ब्रिटिश सरकार पाकिस्तान और हिन्दुस्तान अलग-अलग कायम कर दे तो कांग्रेस और हिन्दू उसे तीन महीने के भीतर स्वीकार कर लेंगे। दूसरे लफ्जों में सरकार चाहे तो कांग्रेस की शेखी कुछ ही समय में भुला सकती है। सच तो यह है कि मुस्लिम बहुमतवाले पांच प्रान्तों में पाकिस्तान के सिद्धान्त के अनुसार पहले ही कार्य हो रहा है। इसके मुस्लिम लीगी मंत्रिमंडलों में हिन्दू मंत्री भी कार्य कर रहे हैं। पाकिस्तान से सभी का लाभ है। निश्चय ही हिन्दुओं को इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि तीन-चौथाई भारत पर उनका अधिकार रहेगा। उनका देश, भूमि और जनसंख्या के विचार से, रूस और चीन को छोड़ कर संसार में सबसे विशाल होगा।"

प्रश्न—"परन्तु गृह-युद्ध छिड़ने में कोई कसर न रहेगी। आप एक भारतीय अलसटर को जन्म देंगे, जिस पर हिन्दू अखंड भारत का नारा उठाकर आक्रमण कर सकते हैं।"

मि० जिन्ना—"इससे मैं सहमत नहीं हूं। परन्तु नये विधान के अंतर्गत एक परिवर्तनकाल भी होगा और इस काल में, जहां तक सशस्त्र सेना और विदेशी सम्बन्धों का ताल्लुक है, ब्रिटिश सत्ता सर्वोपरि रहेगी। परिवर्तन-काल की लम्बाई इस बात पर निर्भर रहेगी कि दोनों राष्ट्र ब्रिटेन के साथ अपने सम्बन्ध तय करने में कितना समय लगाते हैं। अन्त में दोनों भारतीय राष्ट्र ब्रिटेन से उसी प्रकार संधि करेंगे, जिस प्रकार मिस्र ने स्वाधीनता प्राप्त करते समय की थी।"

प्रश्न—"यदि उस समय ब्रिटेन ने तर्क उपस्थित किया कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान पड़ोसियों के रूप में नहीं रह सकते और भारत से अपना अधिकार न हटाया जाय तब क्या होगा?"

मि० जिन्ना—"यह हो सकता है, पर इसकी सम्भावना नहीं जान पड़ती। यदि ऐसा हुआ भी तो हमें वह आंतरिक स्वाधीनता मिली होगी, जिससे आजकल हम वंचित हैं। एक पृथक् राष्ट्र और स्वाधीन उपनिवेश के रूप में हम ब्रिटिश सरकार से समझौता करने की उत्तम स्थिति में रहेंगे जो कम-से-कम वर्तमान गतिरोध से तो अच्छी ही होगी।"

प्रश्न—"जब ब्रिटेन यह कहता है कि वह भारत को जल्दी-से-जल्दी स्वाधीनता देना चाहता है तब क्या आप उस पर विश्वास करते हैं?"

मि० जिन्ना—"मैं ब्रिटेन की नेकनीयती पर उस वक्त यकीन करूंगा जब वह भारत का बंटवारा करके हिन्दू और मुसलमान दोनों को आजादी देगा। १८५८ में जान ब्राइट ने कहा था—इग्लैंड कब तक हिन्दुस्तान पर हुकूमत करना चाहता है? क्या साधारण बुद्धि रखनेवाला कोई व्यक्ति विश्वास कर सकता है कि भारत-जैसा विशाल देश, जिसमें बीस विभिन्न राष्ट्र और बीसियों विभिन्न भाषाएं हैं, कभी एक, अखंड साम्राज्य के रूप में रह सकता है?"

प्रश्न—"क्या आप दिल्ली में वाइसराय से मिलेंगे?"

मि० जिन्ना—"यदि वाइसराय मुझसे मिलना चाहेंगे तो मैं उनसे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक मिलूँगा। किन्तु अभी जो कुछ कह चुका हूं उससे अधिक मैं और कुछ नहीं कह सकता।"

जिन्ना साहब के मत की आलोचना

मि० जिन्ना से जो प्रश्न किए गए थे वे ऐसे थे कि उनका वही उत्तर दिया जा सकता था, जो मि० जिन्ना ने वास्तव में दिया था। ये उत्तर निश्चित और स्पष्ट थे, जबकि मि० जिन्ना के पिछले कथन अस्पष्ट तथा अनिश्चित हुआ करते थे। १७ फरवरी, १९४४ को मि० जिन्ना ने मांग की थी कि अंग्रेजों को भारत का बंटवारा करके चले जाना चाहिए और लार्ड वेवल का भाषण एक प्रकार से मि० जिन्ना की उस मांग का जवाब था। लार्ड वेवल ने अपने इस भाषण में "भौगोलिक एकता" कायम रखने का अनुरोध किया था। मि० जिन्ना ने 'न्यूज क्रानिकल' के प्रतिनिधि को जो वक्तव्य दिया उसमें उन्होंने अपना विचार बदलकर यह कर दिया कि "देश का बँटवारा करके यहीं बने रहो।" यह नारा लीग के स्वाधीनता के ध्येय की सबसे बड़ी आलोचना है। जरूरत पड़ने पर अंग्रेज भारत में ही रह जायंगे और हिन्दुस्तान से पाकिस्तान की रक्षा करेंगे। मि० जिन्ना को यह भी विश्वास था कि यदि पाकिस्तान की स्थापना की गयी तो कांग्रेस और हिन्दू न तो सत्याग्रह करेंगे और न गृह-युद्ध ही छेड़ेंगे। मि० जिन्ना का मतलब दूसरे शब्दों में यही था कि अल्पसंख्यक बहुसंख्यक को जबर्दस्ती अपनी बात मानने के लिए विवश करेंगे। उनके इस मत से स्पष्ट था कि वह भारत में अंग्रेजों के इशारे पर चल रहे थे और लीग ब्रिटेन की दोस्ती का पार्ट अदा कर रही थी। यदि लीग ने एकता की जगह बँटवारे को पसंद किया तो इसके समर्थन में कुछ कह सकने की गुँजाइश है, किन्तु जब उसने स्वाधीनता और स्वतंत्रता की तुलना में पराधीनता और दासत्व को पसंद किया—गोकि लीग का ध्येय स्वाधीनता घोषित किया जा चुका है—तो कांग्रेस के विरुद्ध यह शिकायत करने का कुछ भी आधार नहीं रह जाता कि उसका बम्बईवाला प्रस्ताव लीग के विरुद्ध था। कांग्रेस ने सर स्टेफर्ड क्रिप्स के आगमन के समय दिल्ली में एक प्रस्ताव पास करके अपना यह निश्चय जाहिर

किया था कि "वह किसी प्रदेश की जनता को उसकी मर्जी के खिलाफ भारतीय संघ में सम्मिलित करने की स्थिति की कल्पना नहीं कर सकती।" परन्तु मि० जिन्ना इससे संतुष्ट नहीं हुए। इस स्थिति की तुलना फिलिस्तीन की बेलिंग वाली घटना से की जा सकती है। उसमें न तो यहूदी अरबों की अप्रत्यक्ष स्वीकृति को मानते थे और न अरब ही खुले शब्दों में स्वीकृति देते थे। इसी तरह न तो मुस्लिम लीग ही कांग्रेस-द्वारा सिद्धांत की अप्रत्यक्ष स्वीकृति को मानने को तैयार हुई और न कांग्रेस ने ही साफ लफ़्ज़ों में स्वीकृति प्रदान की।

सहयोग की भावना

राजनीति में कभी-कभी ऐसे लोगों को मिलकर काम करना पड़ता है, जिन्हें मामूली तौर पर एक-दूसरे के विरुद्ध ही कहा जायगा। इन विरोधी दलों में विचारों या सिद्धांतों का मेल नहीं होता, बल्कि किसी तीसरे दल के विरोधी होने के कारण उनका हित एक-दूसरे से मिल जाता है। ऐसी घटनाएं बजट के ही समय दिखायी देती हैं। इस दृष्टि से १९४४ का बजट विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस अवसर पर कांग्रेस तथा लीग के एक-दूसरे के निकट आने के लक्षण दिखायी देने लगे। लाहौर में कायदे-आजम ने भी अपने ढंग से इसका पूर्वाभास दिया। २३ मार्च को लीग के मन्त्री सर यामीन खां ने केन्द्रीय असेम्बली में भारत-रक्षा-नियमों में संशोधन प्रस्तुत करते समय कांग्रेस तथा लीग की एकता के सम्बन्ध में एक वक्तव्य दिया। इसका उद्देश्य दुनिया को यही दिखाना था कि कांग्रेस अथवा लीग में से एक को भी सरकार पर विश्वास नहीं है। सर यामीन खां ने ऐसा कह कर सिर्फ अर्थ-सदस्य या ब्रिटिश सरकार को ही ताना नहीं दिया, उन्होंने अंग्रेजों के दिमाग में एक तथ्य भरने का प्रयत्न भी किया। कई सप्ताह की जबानी लड़ाई के बाद जब केन्द्रीय असेम्बली में बजट पर वोट लेने का दिन आया तब उसके पक्ष में ५५ और विपक्ष में ५६ वोट आये।

बजट की नामंजूरी में एक उल्लेखनीय बात यह थी कि मि० जिन्ना न तो असेम्बली में आये और न उन्होंने भाषण अथवा वोट ही दिया था। इस प्रकार असेम्बली का यह अधिवेशन प्रसन्नतापूर्वक समाप्त हुआ। कांग्रेस और लीग ने सिर्फ मिलकर दुश्मन को ही शिकस्त नहीं दी थी, बल्कि कांग्रेस की तरफ से भूलाभाई देसाई ने लीगी व स्वतंत्र सदस्यों को जो दावतें दीं और नवाबजादा लियाकत अली खां ने कांग्रेसियों एवं स्वतंत्र सदस्यों को जो दावतें दीं उनमें भी मेल-मिलाप के दृश्य दिखाई दिये। साथीपन की यह भावना बढ़ना अच्छा ही था, क्योंकि सद्भावना के बढ़ने से विभिन्न दलों के मनमुटाव दूर होने का रास्ता खुल सकता था। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने इस मेल-मिलाप में आगे बढ़कर भाग लिया। कई अखबारों में तो यहां तक छप गया था कि दोनों दलों में कितनी ही महत्वपूर्ण

बातों के सम्बन्ध में समझौता हो गया है। उधर वाइसराय ने ६९ दिनों में भारत के ग्यारहों प्रांतों का दौरा कर लिया था। इस दौरे का मुख्य उद्देश्य खाद्य-स्थिति का अध्ययन करना और साथ ही देश के विभिन्न भागों में सैनिक स्थिति को देखना भी था। इस दौरे में लार्ड वेवल ने राजनीतिक समस्या पर न तो कुछ कहा और न मद्रास में श्री राजगोपालाचार्य से हुई बातचीत के अतिरिक्त किसी राजनीतिक वार्ता में ही भाग लिया।

गांधीजी की रिहाई की मांग

लार्ड वेवल को भारत आये हुए छः महीने और वाइसराय के पद पर उनकी नियुक्ति की घोषणा हुए एक साल का समय बीत चुका था। उन्हें भारतीय राजनीति का अनुभव भी कम न था, क्योंकि इंग्लैंड में भारतमंत्री के कार्यालय में रहकर उन्हें साम्राज्यवाद के रहस्यों का ज्ञान पूरी तरह हो चुका था। इस प्रकार लार्ड वेवल अपने कार्यकाल का दसवां हिस्सा इन छः महीनों में समाप्त कर चुके थे। देश की आर्थिक, सामाजिक, सैनिक और राजनीतिक समस्याओं का निकट से अध्ययन करने के लिए उन्होंने कोई प्रयत्न बाकी न छोड़ा था। गोकि सैनिक क्षेत्र में ख्याति प्राप्त करने का समय नहीं रहा था, फिर भी सैनिक विषयों में लार्ड वेवल की दिलचस्पी बनी रही। अगर्चे वह फील्डमार्शल की वर्दी छोड़ने की बात कह चुके थे फिर भी दौरों के मध्य वह सैनिक मामलों में विशेष दिलचस्पी लेते थे। परन्तु राजनीतिक गतिरोध के सम्बन्ध में लार्ड वेवल का दृष्टिकोण मानने के लिए भारत, इंग्लैंड या अमरीका का लोकमत तैयार न था। हिन्दुस्तान के वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ अपने शांतिपूर्ण जीवन को त्यागकर सोई हुई ताकतों को जगाने और कुछ न करने की नीति के खतरे से आगाह करने के लिए मैदान में आ गये थे। महामाननीय शास्त्रीजी का मकसद सिर्फ गांधीजी की रिहाई या राजनीतिक अड़ंगे को दूर करना न होकर कुछ आगे की बातों का खयाल करना था। इसके उपरांत भारत के वयोवृद्ध मनीषी महामना पंडित मदनमोहन मालवीय ने भी गांधीजी और उनके साथियों की रिहाई की विवेकपूर्ण मांग उपस्थित की थी। उन्होंने अपनी मांग उस उत्तर पर आधारित की थी जो सरकार-द्वारा लगाये गये आरोपों के सम्बन्ध में गांधीजी ने दिया था। जब कि एक तरफ इस प्रकार की संस्थाएं अपनी आवाज शासकों के कानों तक पहुंचाने का प्रयत्न कर रही थीं, जेल के बाहर के कांग्रेसियों—विशेषकर उत्तर प्रदेश के कांग्रेसियों ने मिलकर महात्मा गांधी के नेतृत्व में विश्वास प्रकट किया और रचनात्मक कार्यक्रम को आगे बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर दिया।

गांधीजी की रिहाई

आखिरकार चमत्कार हुआ; लेकिन उसका एक दुःखद पहलू भी था। दूसरी

परिस्थितियों में गांधीजी की रिहाई एक खुशी की घटना ही मानी जाती और कहा जाता कि ब्रिटेन के युद्ध-मन्त्रिमंडल ने एक बुद्धिमत्तापूर्ण काम किया। परन्तु उनकी रिहाई उनकी बीमारी और आसन्न-संकट के कारण हुई। एक सप्ताह पहले उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़ने के बारे में जो समाचार छपे उनके कारण देश भर में घबराहट फैल गयी और वाइसराय के पास रिहाई के लिए तार-पर-तार पहुंचने लगे। ब्रिटेन और अमरीका के दूरदर्शी लोग भी अशान्त हो गये। गांधीजी १४ अप्रैल को बीमार पड़े। उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जो पहला बुलेटिन निकला उसमें डरानेवाली कोई बात न थी, पर उसी दिन उनकी हालत एकाएक बिगड़ने की सूचना भी मिली। पार्ल्यामेंट में उनके स्वास्थ्य के बारे में एक सवाल भी किया गया, जिसके जवाब में मि० एमरी ने कहा कि गांधीजी की बीमारी ऐसी संगीन नहीं है कि उन्हें फौरन रिहा किया जाय। इसमें कोई शक नहीं कि चर्चिल, एमरी और वेवल किसी-न-किसी तरह राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने के लिए उत्सुक थे, पर उनकी एक भी मांग पूरी नहीं हो रही थी। दूसरे तरीकों के नाकामयाब होने पर वाइसराय के रुख में भी कुछ परिवर्तन होने लगा था और वह इस पर उतर आये थे कि कांग्रेसजनों को खुद ही फैसला करके व्यक्तिगत रूप से बम्बईवाले प्रस्ताव के विरुद्ध मत प्रकट करना चाहिये। परन्तु कांग्रेसजन जितना ही विचार करते थे उतना ही प्रस्ताव पर कायम रहने का उनका इरादा पक्का होता था। इतना ही नहीं, एक आर्डिनेंस के अंतर्गत कांग्रेसजनों पर कुछ आरोप लगाये गये, किन्तु उनका कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। तब क्या होना चाहिये? १५ जनवरी से ६ महीने के लिए नजरबंदी के जो आदेश दिये गये थे वे समाप्त हो रहे थे और बन्दियों को आदेशों की अवधि बढ़ाये बिना जेलों में नहीं रखा जा सकता था। इस कठिनाई को हल करने के लिए प्रकृति या ईश्वर का वरद हस्त आगे बढ़ा। पहले जो बुलेटिन जल्दबाजी में प्रकाशित किया गया उसमें "चिन्ता की कोई बात नहीं" और "सब ठीक है" की ध्वनि थी। इसके बाद जो सूचना प्रकाशित हुई उसमें घबराहट थी और एकाएक आगाखां महल का फाटक खोल दिया गया। ६ मई, १९४४ के दिन गांधीजी को उनके दल के साथ आजाद करके पर्णकुटी पहुंचा दिया गया, जो पूना में लेडी ठाकरसी का प्रसिद्ध निवास-स्थान है।

रिहाई के बाद

अब क्या हो? गांधीजी की रिहाई के बाद भारत में ही नहीं, इंग्लैंड और अमरीका में भी यही सवाल उठाया जा रहा था। न्यूयार्क के 'ईवनिंग टाइम्स' ने साफ लफ्जों में मंजूर किया कि सेंसर की कड़ाई के कारण अमरीकावालों को गांधीजी की गिरफ्तारी के समय की असली हालत मालूम नहीं हो सकी। रिहाई

सिर्फ 'डाक्टरी कारणों' से हुई है, इस बहाने को किसी ने महत्व न दिया और एक-एक करके सभी पत्रों ने यही मत प्रकट किया कि अधिकारी अवसर मिलते ही इस कटु जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहते थे। जो भी हो, कम-से-कम सभी इस विषय में एकमत थे कि कार्य-समिति के सभी सदस्यों को तुरंत रिहा किया जाय और इस तरह समझौता का एक और प्रयत्न किया जाय। जापान के विरुद्ध सर्वांगीण युद्ध चलाने के लिए सिर्फ सेना में भर्ती करना ही काफी न था। यह बात भी ध्यान देने की थी कि इस बार जापान का हमला सीमा की मुठभेड़ न होकर भारत का पूरा आक्रमण ही था। वे आसाम और बंगाल के हिस्सों में घुस आये थे और स्थिति पहले के मुकाबले में कहीं ज्यादा संगीन थी। प्रश्न यह था कि अब इसका मुकाबला कैसे किया जाय?

गांधीजी की तंदुरुस्ती सुधर चली थी—या कम-से-कम ऐसी हो गयी थी कि वह मामूली कामकाज कर सकें। अब उस राजनीतिक वार्ता को फिर से चलाना, जो ९ अगस्त १९४२ को एकाएक भंग कर दी गयी थी, ब्रिटिश सरकार का ही काम था। साधारण तौर पर यह विश्वास किया जाता था कि जिस तरह महात्मा गांधी ने गांधी-अरविन-वार्ता और समझौते से पूर्व १४ फरवरी, १९३१ को लार्ड अरविन को पत्र लिखकर बातचीत शुरू की थी, उसी तरह इस बार भी वह वाइसराय को निजी तौर पर पत्र लिखकर उस जगह से वार्ता आरम्भ करेंगे, जहां से वह भंग हुई थी। जहां तक गांधीजी का सम्बन्ध था, उनके रुख का अंदाज ९ अगस्त १९४२ से पहले की उनकी मनोवृत्ति से लगाया जा सकता है। यदि वह और उनके साथी गिरफ्तार न कर लिये जाते तो निश्चय है कि वह वाइसराय को पत्र लिखते। परन्तु गिरफ्तार हो जाने के कारण वे ऐसा न कर सके। इस तरह ६ मई, १९४४ को उन्होंने अपने को एक ऐसी लड़ाई के सेनापति की स्थिति में पाया, जो कभी शुरू ही नहीं हुई। अब रक्त और आँसुओं से सने इन इक्कीस महीनों का कोई अस्तित्व ही न था और गांधीजी वाइसराय के आगे अपने विचार विना किसी बाधा के जाहिर कर सकते थे। सच बात तो यह थी कि उनकी रिहाई उनकी शारीरिक अवस्था के कारण नहीं, बल्कि भारत की बदली हुई परिस्थिति की वजह से हुई थी और लार्ड हैलिफेक्स ने भी यही मत प्रकट किया था। हिन्दुस्तान की हालत में जो तब्दीली आ गयी थी वह तो इतनी साफ थी कि उसे बताने के लिए लार्ड हैलिफेक्स के कुछ कहने की जरूरत न थी। यह बदली हुई परिस्थिति ही तो थी, जिसमें जापानी, जिन्हें भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा से एक सप्ताह में निकाल दिया जाना चाहिए था, नौ महीने तक बने रहे। इस बदली हुई परिस्थिति में वाइसराय से कुछ कहने का गांधीजी का अधिकार था—उनका कर्तव्य था। दूसरी तरफ उनसे मि० जिन्ना से मिलने का अनुरोध भी किया जा रहा था। इस संबंध में अल्लामा मशरिकी ने जब तार-द्वारा गांधीजी से अनुरोध

किया तब गांधीजी ने कहा कि मि० जिन्ना के लिए मेरा पिछले वर्ष का निमंत्रण कायम है और मैं उनसे मिलने के लिए हमेशा तैयार हूं। परन्तु मैं अपने जेल जीवन तथा राजनीतिक परिस्थिति के बारे में तब तक कोई वक्तव्य न दूँगा जब तक यह विश्वास न हो जाय कि वक्तव्य में कोई काट-छांट न की जायगी। यह ठीक है कि यह प्रतिबंध गांधीजी के वक्तयों के खिलाफ न था, किन्तु उन्हें इस बात का कोई आश्वासन नहीं दिया गया कि सेंसर के साधारण नियमों के अन्तर्गत देश से बाहर जानेवाले उनके वक्तव्यों में कोई काट-छांट न की जायगी। स्थिति यह थी कि भारत से बाहर जानेवाले सभी तारों और पत्रों के सेंसर होने का नियम था और सरकार गांधीजी के साथ भी इस सम्बन्ध में कोई रियायत करने को तैयार न थी।

गांधीजी की रिहाई को तीन हफ्ते से अधिक समय बीत चुका था। उनके अगले कदम के बारे में इन तीन हफ्तों में तरह-तरह की अटकलबाजियां लगायी गयीं। एक अनुमान यह भी था कि मई के आखिर में वह एक ऐसा वक्तव्य देंगे, जिसके परिणामस्वरूप सब कांग्रेसी नेता छोड़ दिये जायेंगे। कुछ तो यहां तक सोचने लगे थे कि गांधीजी बम्बईवाला प्रस्ताव वापस ले लेंगे। परन्तु गांधीजी चट्टान के समान अडिग थे और १३ मई को उन्होंने डाक्टर जयकर के नाम लिखा अपना निम्न पत्र प्रकाशित कर दिया :—

जुहू, २० मई, १९४४

प्रिय डा० जयकर,

देश मुझसे बहुत कुछ आशा करता है। मैं नहीं जानता कि मेरी इस रिहाई के बारे में आपकी क्या राय है। सच यह है कि इससे मुझे खुशी नहीं हुई है। मैं तो इसके कारण लज्जित हूँ। मुझे बीमार न पड़ना चाहिए था। मेरा खयाल है कि मौजूदा कमजोरी दूर होते ही सरकार मुझे फिर जेल भेज देगी। और अगर वह मुझे गिरफ्तार न करे तो मैं क्या करूँ?

मैं अगस्तवाला प्रस्ताव वापस नहीं ले सकता? जैसा कि आप कह चुके हैं, वह दोषहीन है। उसके समर्थन के बारे में शायद आपका मत मुझसे न मिले, लेकिन मुझे तो वह प्राणों के समान प्रिय है। मैं २९ तारीख तक चुप हूँ। इस बीच क्या मैं आपके पास प्यारेलाल को भेजूँ? यह भी आपके स्वास्थ्य पर निर्भर रहेगा, क्योंकि मैं जानता हूं कि आपकी भी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं है।

आपका शुभचिंतक
एम० के० गांधी

यह पत्र प्रकाशित होते ही जनता का ध्यान उसकी तरफ केन्द्रित हो गया, क्योंकि उसमें उन दिनों की सबसे महत्वपूर्ण समस्या के विषय में मत प्रकट किया

गया था। गांधीजी की रिहाई से यह आशा नहीं की गयी थी कि प्रस्ताव वापस लेकर या आत्म-समर्पण करके राजनीतिक कैदियों को छुटकारा दिलाया जायगा, बल्कि यह सोचा गया था कि गांधीजी कोई ऐसा रास्ता जरूर निकाल लेंगे, जिससे किसी पक्ष के घुटने टेके बिना ही कांग्रेसी नेताओं की रिहाई हो सकेगी और राजनीतिक अड़ंगे को दूर किया जा सकेगा।

गांधीजी जब-कभी भी कैद से छोड़े गये हैं तभी उन्होंने राजनीतिक अंड़गे को समाप्त करने की चेष्टा की है। इसलिए जब इस बार छूटे तब उन्होंने १७ जून को लार्ड वेवल के पास पत्र लिख कर कार्य-समिति के सदस्यों से मिलने की इजाजत मांगी और लिखा कि यदि यह न हो सके तो कोई फैसला करने से पहले आप ही मुझ से मिल लें। पत्र इस प्रकार है:—

नेचर क्योर क्लिनिक,
६, टोडीवाला रोड, पूना
१७ जून, १९४४

प्रिय मित्र,

यदि यह पत्र एक ऐसे काम के सम्बन्ध में न होता, जिसमें आप व्यस्त हैं, तो मैं आपको पत्र लिखकर कभी कष्ट न देता।

गोकि इसकी कोई वजह नहीं है, फिर भी देश भर और शायद बाहरवाले भी सर्वसाधारण के लिए मुझसे कोई ठोस कार्य करने की उम्मीद रखते हैं। खेद है कि मुझे स्वास्थ्य-लाभ करने में इतना समय लग रहा है। लेकिन, बिल्कुल अच्छा होने पर भी मैं कांग्रेस की कार्य-समिति के विचार जाने बिना क्या कर सकता था? कैदी की हैसियत से मैंने उनसे मिलने की इजाजत मांगी थी। अब एक आजाद व्यक्ति की हैसियत से फिर मैं उनसे मिलने की इजाजत मांगता हूं। यदि इस विषय में कोई फैसला करने से पहले आप मुझसे मिलना मंजूर करलें तो डाक्टरों के लम्बी सफर की इजाजत देते ही जहां भी आप चाहेंगे आने के लिए मैं खुशी से तैयार हो जाऊँगा।

नजरबन्दी की हालत में मेरे और आपके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था उसे मैंने कुछ मित्रों के बीच निजी उपयोग के लिए वितरित कर दिया है। परन्तु मैं महसूस करता हूँ और यही इंसाफ का तकाजा है कि सरकार उन पत्रों को प्रकाशित करने की इजाजत दे दे।

३० तारीख तक मेरा पता वही होगा, जैसा कि ऊपर लिखा है।

आपका शुभचिन्तक
मो० क० गांधी

इस पत्र का लार्ड वेवल ने २२ जून, १९४४ वाले अपने पत्र में उत्तर दिया। वाइसराय का पत्र यह है :—

वाइसराय भवन,
नई दिल्ली,
२२ जून, १९४४

प्रिय गांधीजी,

आपका १७ जून का पत्र मिला। पिछले पत्र-व्यवहार में हम दोनों के दृष्टि-कोण में जो उग्र मतभेद प्रकट हुआ है उसे देखते हुए मैं महसूस करता हूं कि अभी हमारे मिलने से कोई लाभ न होगा और उससे केवल ऐसी आशाएं ही उत्पन्न होंगी, जो पूरी नहीं हो सकतीं।

यही बात आपके द्वारा कार्यसमिति से मिलने के सम्बन्ध में कही जा सकती है। आप 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के प्रति सार्वजनिक रूप से अपनी सहमति प्रकट कर चुके हैं, जिसे मैं भविष्य के लिए संगत तर्क या व्यावहारिक नीति नहीं मानता।

यदि स्वास्थ्य-लाभ और सोच-विचार करने के बाद आप भारत के हित के लिए निश्चित और रचनात्मक नीति का सुझाव पेश कर सकें तो मैं खुशी से उस पर विचार करूंगा।

चूँकि आप मुझसे पूछे बिना अपने और मेरे बीच हुए पत्र-व्यवहार को वितरित कर चुके और वह समाचार-पत्रों में भी प्रकाशित हो चुका है इसलिए मैंने आपकी नजरबंदी के समय लिखे गये सभी राजनीतिक-पत्रों को प्रकाशित करने का आदेश दे दिया है।

आपका शुभचिन्तक
वेवल

यदि लार्ड वेवल के पत्रों और भाषणों से उनके स्वभाव का पता लगाया जाय तो प्रकट होता है कि वह किसी निश्चय पर तो जल्दी पहुँच जाते हैं, किन्तु आगे जाकर अपने मस्तिष्क को प्रभावित होने से नहीं बचा सकते। १७ फरवरी, १९४४ को केन्द्रीय धारा सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में भाषण करते हुए उन्होंने कहा कि मैंने जो भी विचार प्रकट किये हैं वे मेरे पहले उठनेवाले विचार हैं और इनमें परिवर्तन हो सकता है। गांधीजी को लिखे इस पत्र में उन्होंने शुरू में अपने और गांधीजी के बीच "उग्र मतभेद" की चर्चा की है और कहा है कि उसके कारण मिलने से कोई लाभ न होगा; किन्तु पत्र के अंत में उन्होंने उदारतापूर्वक गांधीजी के स्वास्थ्य लाभ का जिक्र किया है और कहा है कि गांधीजी "सोच-विचार करने के बाद" किसी निश्चित और रचनात्मक नीति का सुझाव उपस्थित करें। गांधीजी को सोच-विचार करने में अधिक समय नहीं लगा। उन्हें न तो कोई

गुत्थी सुलझानी थी और न राजनीति की पेचीदगियों में ही पड़ना था, क्योंकि गांधीजी सत्य के जिस पथ का अनुसरण करते थे वह सीधा है और अहिंसा की रणनीति भी सरल ही है।

गांधीजी की रिहाई से भारत और कांग्रेस के इतिहास में एक नये अध्याय का श्रीगणेश हुआ था। जनता और सरकार दोनों ही को उनसे बहुत कुछ आशाएं थीं। जनता चाहती थी कि गांधीजी जादू की छड़ी घुमाकर निराशा की परिस्थिति का अन्त कर उसके स्थान पर आशा और विश्वास का संचार करदें। सरकार चाहती थी कि वह व्यक्तिगत और राष्ट्रीय आत्म-सम्मान को त्याग कर सत्य और अहिंसा के अपने चिर-सिद्धांतों की बलि चढ़ाईं और पराजित पक्ष की भांति राजनीति के अलावा अन्य राष्ट्रीय कल्याणकारी क्षेत्रों में अपना सहयोग प्रदान करें। गांधीजी ने जनता से कहा कि उनके पास ऐसा कोई पारस पत्थर नहीं है जो जनता की शिथिल मानसिक स्थिति के लोहे को सोने में बदल सके और न कोई ऐसा जीवनदायी अमृत ही है, जो उदास मन में स्फूर्ति और उत्साह का संचार कर सके। इसी तरह सरकार से भी गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया। आपने अपने जीवन का आधारभूत सिद्धांत बताया—उसी जीवन का जो सत्य और अहिंसा पर आधारित रहा है और जिसकी अभिव्यक्ति सत्याग्रह तथा अहिंसात्मक असहयोग द्वारा हुई है।

गांधीजी का वक्तव्य

गांधीजी की रिहाई को पांच सप्ताह हो चुके थे। संसार यह जानने को उत्सुक था कि गांधीजी राजनीतिक अड़ंगे को दूर करने की क्या तरकीब निकालते ह या वह ऐसी क्या बात कहते हैं, जिससे सुलह की बातें शुरू होने का रास्ता साफ हो। ९ जुलाई १९४४ को यही हुआ। उन्होंने 'न्यूज क्रानिकल' के प्रतिनिधि मि० गेल्डर को एक वक्तव्य प्रकाशित होने के लिए नहीं बल्कि वाइसराय तक पहुंचाने के लिए दिया। अपनी इस मुलाकात में, तथा इसका विवरण प्रकाशित होने के सम्बन्ध में गांधीजी ने जो कुछ कहा उसका सार यह है:—

(१) वह कांग्रेस-कार्य-समिति की सलाह के बिना कुछ नहीं कर सकते।

(२) यदि वह वाइसराय से मिलेंगे तो उनसे कहेंगे कि इस मुलाकात का उद्देश्य मित्रराष्ट्रों के युद्ध-प्रयत्न में बाधा डालना न होकर उसमें सहायता पहुँचाना ही होगा।

(३) उनका सत्याग्रह शुरू करने का इरादा बिल्कुल नहीं है। इतिहास कभी दुहराया नहीं जा सकता और वह देश को फिर १९४२ की स्थिति में नहीं रख सकते।

(४) पिछले दो वर्ष में दुनिया आगे बढ़ी है, इसलिए परिस्थिति की फिर से समीक्षा करनी पड़ेगी।

(५) नयी परिस्थिति में गांधीजी गैर-सैनिक शासन पर पूरा नियंत्रण रखनेवाली राष्ट्रीय सरकार से ही संतुष्ट हो जायँगे।

(६) यदि राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई तो गांधीजी उसमें भाग लेने के लिए कांग्रेस को सलाह देंगे।

(७) स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद वह कांग्रेस को सलाह देना बंद कर देंगे।

गांधीजी का अगला कार्य तोड़-फोड़ तथा गुप्त कार्रवाई की निन्दा करना था। उन्होंने समाचार-पत्रों में वक्तव्य प्रकाशित करके तोड़-फोड़ की निन्दा की और कहा कि यह हिंसा है और इसने कांग्रेस के आन्दोलन को हानि पहुँचायी है। उन्होंने कार्यकर्ताओं को रचनात्मक कार्यक्रम पूरा करने की सलाह दी और इस सिलसिले में १४ बातों का हवाला दिया।

इस तरह गांधीजी ने स्पष्ट कर दिया कि यदि ब्रिटेन भारत की स्वाधीनता की घोषणा कर दे तो वह कार्य-समिति को बम्बईवाले प्रस्ताव के उस भाग को वापस लेने की सलाह देंगे, जिसमें दंडात्मक कार्रवाई का हवाला है, और साथ ही उससे युद्ध-प्रयत्नों में नैतिक तथा आर्थिक सहायता करने का भी अनुरोध करेंगे। गांधीजी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह खुद युद्ध-प्रयत्न में किसी प्रकार की बाधा न डालेंगे। इसके बाद उन्होंने बताया कि यदि युद्ध-क्षेत्र में २००० टन गोलो-गोले भेजने और दुर्भिक्ष पीड़ित क्षेत्र में २००० टन भोजन भेजने का सवाल उठा तो वह इनमें से किसे तरजीह देंगे और ऐसी परिस्थिति उठने पर कार्य-समिति को क्या सलाह देंगे?

महान् घटनाओं और महान् व्यक्तियों का जन्म एक साथ होता है। गांधीजी ने फरवरी-मार्च, १९४३ के अनशन के दिनों में जब साम्प्रदायिक समस्या के बारे में लीग के कुछ सुझावों पर अपनी मंजूरी दी थी तब उन्हें इस बात का गुमान भी न था कि इन सुझावों में से एक कुछ नयी बातों के साथ स्टुअर्ट गेल्डर की मुलाकात के साथ ही प्रकाशित होगा। गांधीजी ने कहा कि दोनों घटनाएं एक साथ सिर्फ संयोगवश हुईं, और यह उन्होंने ठीक ही कहा था। परन्तु ये दोनों ही घटनाएं एक साथ जिस रूप में हुईं उसे ऐतिहासिक आवश्यकता कहा जा सकता है। इधर श्री राजगोपालाचारी गांधीजी की रिहाई के बाद जून, १९४४ में कुछ देरी से उनसे मिलने पहुंचे थे, उधर स्टुअर्ट गेल्डर उतने ही अप्रत्याशित रूप से जुलाई के प्रथम सप्ताह में पंचगनी पहुंचे थे। फिर भी वे प्रायः एक साथ ही गांधीजी के सम्पर्क में आये थे। जहां एक ने साम्प्रदायिक समस्या के निबटारे के प्रस्तावों की सूचना जनता को दी थी वहां दूसरे ने राजनीतिक गतिरोध दूर करने के प्रस्तावों को अधिकारियों तक पहुंचाया था। ये दो पृथक् घटनाएं जान पड़ती हैं, किन्तु वे प्रकृति के निर्जीव करिश्मे के समान न होकर जीवित तथ्य के ही समान थीं। वे समुद्र में जल और मछली की तरह या व्यक्ति में उसके मस्तिष्क और प्राणों

की तरह एक साथ हुईं और एक साथ ही आगे बढ़ीं। वे चाहे असम्बद्ध घटनाएं ही जान पड़ती हों, किन्तु एक साथ घटित होने के कारण ही वे भविष्य और इतिहास का निर्माण कर सकीं।

गांधी-जिन्ना-वार्ता

गांधीजी अपनी रिहाई के बाद जो लार्ड वेवल से सीधी बात-चीत करने लगे, इसका यह मतलब न था कि वह मि० जिन्ना की उपेक्षा करके अंग्रेजों से समझौता करना चाहते थे। एक मान्य संस्था को छोड़कर विदेशियों के साथ मिलकर उन्नति की बात सोचना बुद्धिमत्तापूर्ण अथवा उचित कुछ भी न था। इसीलिए अपने अनशन के समय ही आगाखां महल में गांधीजी ने आत्म-निर्णय के सिद्धांत के आधार पर समझौता का एक गुर निकाला था। यह योजना १ साल २ महीने तक श्री राजगोपालाचार्य की देख-रेख में अंतिम रूप ग्रहण करती रही। ८ अप्रैल १९४४ को यह मि० जिन्ना के आगे उपस्थित की गयी, उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। १७ अप्रैल को श्री राजगोपालाचार्य ने एक पत्र लिखकर श्री जिन्ना से उस योजना पर फिर से विचार करने का अनुरोध किया। यह सब गांधीजी की रिहाई अर्थात् ६ मई से पूर्व हुआ। गांधीजी की रिहाई के बाद श्री राजगोपालाचार्य ने ३० जून को मि० जिन्ना के पास एक तार भेजा और उन्हें यह भी सूचित कर दिया कि गांधीजी योजना से पूरी तरह सहमत हैं।

श्री राजगोपालाचार्य ठीक वक्त पर पंचगनी पहुँचे और तार-द्वारा उन्होंने मि० जिन्ना से अपनी बातें जारी रखीं और ऐसा करते समय गांधीजी की भी सहमति प्राप्त कर ली।

पाठकों को शायद आश्चर्य होगा कि ८ अप्रैल, १९४४ को दिल्ली में प्रस्ताव उपस्थित करने की गलती के बाद श्री राजगोपालाचार्य ने उनके सम्बन्ध में पंचगनी से तार क्यों दिया? कारण स्पष्ट है। राजाजी ने गांधीजी से सब कुछ बताया होगा और गांधीजी ने जो कुछ हुआ उसे उसकी अवस्था तक पहुँचाने का अनुरोध राजाजी से किया होगा। तारों के आदान-प्रदान के बाद प्रस्तावों को प्रकाशित कर दिया गया। योजना इस प्रकार थी :—

(१) स्वाधीन भारत के लिए नये विधान की निम्न शर्तें पूरी होने की हालत में मुस्लिम-लीग स्वाधीनता के लिए भारत की मांग का समर्थन करेगी और संक्रान्ति काल के लिए अस्थायी अंतःकालीन सरकार स्थापित करने में कांग्रेस के साथ सहयोग करेगी।

(२) युद्ध समाप्त होने पर भारत के उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व में उन मिले हुए जिलों को निर्दिष्ट करने के लिए, जिनमें मुसलमानों का स्पष्ट बहुमत है, एक कमीशन की नियुक्ति की जायगी। इस प्रकार निर्दिष्ट क्षेत्रों में वहां के

सभी निवासियों का बालिग मताधिकार अथवा अन्य व्यावहारिक मताधिकार के आधार पर मत-संग्रह होना चाहिए और इसी तरह हिन्दुस्तान से उन क्षेत्रों के अलग होने का फैसला होना चाहिए। यदि बहुसंख्यक जनता हिन्दुस्तान से पृथक एक सत्तासंपन्न राज्य की स्थापना का फैसला करे तो इस फैसले को कार्यान्वित किया जाय, किन्तु सीमा के जिलों को किसी भी राज्य में सम्मिलित होने की आजादी रहनी चाहिए।

(३) मत-संग्रह से पहले प्रत्येक पक्ष को अपने मत का प्रचार करने की पूरी आजादी रहनी चाहिए।

(४) पृथक्करण के बाद रक्षा, व्यापार, यातायात के साधन तथा अन्य विषयों की रक्षा के लिए एक समझौता होना चाहिए।

(५) जनसंख्या का आदान-प्रदान सिर्फ जनता की इच्छा से ही होना चाहिए।

(६) ये शर्तें सिर्फ उसी हालत में लागू होंगी जबकि ब्रिटेन भारत के शासन की पूरी जिम्मेदारी का त्याग करना चाहेगा।

गांधीजी और मि० जिन्ना १० दिन तक सितम्बर में मिले। गांधीजी के विचारों के अनुसार एक केन्द्र का रहना भी आवश्यक था, जो रक्षा, व्यापार तथा यातायात-साधनों की व्यवस्था करेगा। यह मि० जिन्ना को अच्छा न लगा और वह लगातार किन्तु व्यर्थ ही दो राष्ट्रों के सिद्धान्त और सम्पूर्ण जनता के आम मत संग्रह के बिना ही देश के बँटवारे के सिद्धांत मानने की जिद गांधीजी से करते रहे। इस तरह परिणाम कुछ भी न निकला।

: २२ :

स्वतंत्रता की ओर : १९४५

नेताओं की रिहाई की मांग

नये वर्ष—१९४५ में भी कांग्रेस या सरकार, एक को भी राहत न मिली। कांग्रेस की विचार-धारा यही थी कि "उसके नेता जेल में हैं।" और वे "कारागारों या किलों में नजरबन्द बने रहकर," गांधीजी के शब्दों में, अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। जहां तक सरकार का सम्बन्ध है, उसे उस दबाव के कारण राहत नहीं मिल रही थी, जो उस पर नेताओं की रिहाई के लिए भारत और इंग्लैंड में डाला जा रहा था। जब कि बाहर यह सब हो रहा था, अहमदनगर किले में जो लोग थे उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में प्रकाशित होनेवाले

समाचारों तथा केन्द्रीय असेम्बली में होनेवाले सवाल-जवाबों से चिंता तथा परेशानी की भावना फैलती जा रही थी। १९४५ के मार्च और अप्रैल तक सब नेता अपने-अपने प्रांतों के जेलों में भेज दिये गये। सिर्फ श्री कृपलानी को ही अपने जन्म के प्रांत को भेजा गया, जिसे वे बीस साल पहले छोड़ चुके थे।

इसी समय २० अप्रैल, १९४५ के लगभग कामन-सभा में भारत की चर्चा छिड़ी और श्री एमरी ने वैधानिक व्यवस्था भंग होने के सम्बन्ध में भारत-सम्बन्धी आदेशों को स्वीकृति के लिए उपस्थित किया। ऐसा करने का यह अंतिम अवसर था। इन आदेशों का सम्बन्ध मद्रास, बम्बई, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बरार और बिहार से था। श्री एमरी ने कहा कि इन आदेशों का उद्देश्य प्रांतों में कामन-सभा के शासन-सम्बन्धी अधिकार में एक वर्ष के लिए और वृद्धि करना है। यह व्यवस्था अस्थायी तथा असाधारण है। यदि इनमें से किसी प्रांत में राजनैतिक नेता मन्त्रि-मण्डल स्थापित करके युद्ध प्रयत्नों का समर्थन करना स्वीकार कर लेंगे और साथ ही उनके मंत्रिमंडल के पर्याप्त समय तक स्थिर रहने और धारा-सभा का समर्थन प्राप्त कर सकने की सम्भावना दिखाई देगी तो गवर्नरों का कर्तव्य ऐसे मन्त्रिमंडल को कायम करना होगा।

भूलाभाई-लियाकतअली-समझौता

दो दिन बाद २२ अप्रैल, १९४५ को श्री भूलाभाई देसाई ने पेशावर के सीमा-प्रांतीय राजनैतिक सम्मेलन में अपनी योजना के सम्बन्ध में रहस्योद्घाटन किया। अगस्त, १९४२ के बाद भारत के किसी भी प्रांत में होनेवाला यह पहला राजनैतिक सम्मेलन था। सम्मेलन में उपस्थित किये गये मुख्य प्रस्ताव में कांग्रेस के नेताओं की रिहाई तथा केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना का अनुरोध किया गया था। प्रस्ताव पर भाषण करते हुए श्री भूलाभाई देसाई ने कहा कि केन्द्र में अंतर्कालीन-सरकार स्थापित करने के प्रस्ताव पहले से ही ब्रिटिश-सरकार के सम्मुख उपस्थित हैं। उन्होंने मांग उपस्थित की कि ब्रिटेन को घोषणा कर देनी चाहिए कि भारतीय-सरकार और उसके प्रतिनिधियों का पद अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अन्य सरकारों तथा उनके प्रतिनिधियों के समान होगा। ११ जनवरी, १९४५ को होनेवाले भूलाभाई-लियाकतअली-समझौते की शर्तें अगस्त, १९४५ से पूर्व प्रकाशित नहीं हुई थीं, किन्तु अप्रैल में ही उन पर प्रकाश पड़ चुका था। उसकी मुख्य शर्तें इस प्रकार थीं :—

(क) केन्द्रीय शासन परिषद् में कांग्रेस तथा लीग के सदस्यों की संख्या बराबर रहेगी। सरकार से नामजद हुए व्यक्तियों का केन्द्रीय धारासभा का सदस्य होना आवश्यक नहीं है।

(ख) अल्पसंख्यकों (विशेषकर परिगणित जातियों और सिखों) के प्रतिनिधि भी रहेंगे।

(ग) प्रधान सेनापति भी होंगे।

"इस प्रकार की स्थापना मौजूदा भारतीय शासन के अन्तर्गत होगी और वह वर्तमान व्यवस्था के भीतर रह कर कार्य करेगी। परन्तु यह मान लिया जायगा कि यदि मंत्रिमंडल अपना कोई प्रस्ताव धारासभा से पास नहीं करा पायगा तो इसके लिए वह गवर्नर-जनरल या वाइसराय के विशेषाधिकारों के प्रयोग का आश्रय न लेगा। इसके परिणामस्वरूप मंत्रिमंडल काफी हद तक गवर्नर-जनरल के अधिकारों से स्वतंत्र हो जायगा।

"कांग्रेस और लीग इस विषय में सहमत हैं कि यदि इस प्रकार की अंतर्कालीन सरकार की स्थापना हुई तो उस का पहला कार्य कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों की रिहाई होगा।"

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जिन उपायों को बर्ता जायगा उन पर भी नीचे प्रकाश डाला जाता है:—

उपर्युक्त समझौते के आधार पर ऐसा कोई रास्ता निकाला जाय जिससे गवर्नर-जनरल यह प्रस्ताव या सुझाव करने के लिए तैयार हो जायं कि वह खुद कांग्रेस तथा लीग के समझौते के आधार पर केन्द्र में, एक अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना करना चाहते हैं और जब गवर्नर-जनरल मि० जिन्ना और श्री देसाई को संयुक्त रूप से अथवा अलग बुलाएँ तब उपर्युक्त प्रस्ताव उनके सामने इस उद्देश्य से रख दिये जायं कि इन्हें नयी सरकार में भाग लेने के लिए तैयार किया गया है।

अगला कदम प्रान्तों में धारा ९३ का हटाया जाना और केन्द्र के ही समान वहां मिलीजुली सरकारों की स्थापना होगा।

जबकि भारतमंत्री तथा वाइसराय के प्रतिक्रियावादी रुख के बावजूद भारत में घटनाचक्र इस दिशा में चल रहा था तभी ७ मई को यूरोपीय युद्ध समाप्त होने का सुसम्वाद भारत में ९ मई को पहुँचा। यह समाचार पाकर सभी को प्रसन्नता हुई, किन्तु भारतीय जनता को इसके कारण कोई तसल्ली नहीं हुई। भारत के नेता जेल के सीखचों में बंद थे और वह खुद गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। इसलिए वह खुशियां कैसे मनाता!

वेवल की लंदन-यात्रा

२१ मार्च, १९४५ को लार्ड वेवल की लंदन-यात्रा से पूर्व उसके सम्बन्ध में बहुत विज्ञापन किया गया और समाचार-पत्रों में उसकी बारम्बार चर्चा भी की गई। परन्तु वह एकाएक वायुयान-द्वारा रवाना हो गये। श्री एमरी ने वेवल के आगमन के सम्बन्ध में कहा कि इस अवसर से लाभ उठा कर वैधानिक स्थिति

पर विचार तो अवश्य किया जायगा; किन्तु इससे अधिक आशा न करनी चाहिए। सच तो यह था कि लार्ड वेवल को स्वयं श्री एमरी ने ही सलाह-मशविरे के लिए आमंत्रित किया था। हर तरफ से परिस्थिति गम्भीर थी। ब्रिटिश लोकमत इस बात पर जोर दे रहा था कि भारत के राजनैतिक अड़ंगे को दूर करने में भारत और इंग्लैण्ड दोनों ही का समान रूप से लाभ है। यह घोषणा हो चुकी थी कि लंदन में लार्ड वेवल कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई के सम्बन्ध में भारत-मंत्री श्री एमरी से सलाह करेंगे और इस बातचीत में राजनीतिक परिस्थिति तथा भारत की वैधानिक स्थिति पर विचार होगा। भारत से रवाना होने से पूर्व लार्ड वेवल के सामने एक रचनात्मक सुझाव भी पेश हो चुका था। यह उपर्युक्त देसाई-लियाकतअली-सुझाव था।

जब कि लार्ड वेवल अभी लंदन में ही थे और उनके कार्य के सम्बन्ध में सनसनी-पूर्ण तारों की झड़ी लगी हुई थी, ब्रिटिश मंत्रियों का मतभेद अपनी चरम सीमा को पहुँच गया, जिस के परिणामस्वरूप २३ मई, १९४६ को प्रधान मंत्री चर्चिल ने इस्तीफा दे दिया। मि० चर्चिल १० मई, १९४० को मि० चेम्बरलेन के स्थान पर प्रधान मंत्री बने थे। जापान के साथ होनेवाला युद्ध समाप्त होने तक संयुक्त मंत्रिमंडल में रहने से मजदूर दलवाले मंत्रियों के इनकार करने पर वर्तमान राज-नैतिक संकट उत्पन्न हुआ था। मजदूर दल के प्रमुख नेता मि० मारीसन, मि० बेविन और मि० डाल्टन थे। मि० बेविन ने घोषणा की कि यदि अगले चुनाव में शासनसूत्र मजदूर दल के हाथ में आया तो भारत मंत्री का कार्यालय तोड़ दिया जायगा और भारत से डोमीनियन कार्यालय का सम्बन्ध रहेगा। जहां तक भारत को स्वराज्य देने का सम्बन्ध है, मि० बेविन ने साफ कह दिया कि वह उसे क्रमशः ही मिलेगा।

एमरी का वक्तव्य

४ जून, १९४५ के दिन वेवल भारत वापस आये और दस सप्ताह की अनु-पस्थिति के बाद उन्होंने अपना कार्य-भार संभाला। इंग्लैंड में वह जितने समय रहे, वह बिल्कुल असाधारण समय था। वह उस देश के इतिहास का एक ऐसा सयय था, जिसमें पुरानी व्यवस्था विदाई लेती है और नवीन की आशा जाग्रत हो उठती है। इसी बीच श्री एमरी ने ६ जून को लंदन के रोटरी क्लब में भाषण देते हुए कहा—तीन साल से अधिक समय गुजरा कि हमने इच्छा प्रकट की थी कि युद्ध के बाद हम भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अंदर—और यदि वह चाहे तो बाहर भी—पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करें; किन्तु शर्त यह है कि भारत के मुख्य दल देश के भावी विधान के सम्बन्ध में कोई समझौता करलें। अन्त में उन्होंने यह भी कहा :—

"अगर इस समस्या का कोई पूर्ण या तर्कसंगत जवाब नहीं मिलता (यानी अगर सत्ता हस्तांतरित करने के लिए स्वीकृत उत्तराधिकारी नहीं मिलते) तो कोई कारण नहीं कि भारत तथा ब्रिटेन दोनों ही जिस गतिरोध को समाप्त करना चाहते हैं उससे बाहर निकलने का कोई-न-कोई मार्ग उन्हें प्राप्त न हो जाय। जरूरत इस बात की है कि हम फिर से कोशिश करें।"

वेवल-योजना

१४ जून, १९४५ को लार्ड वेवल ने भारत की जनता के लिए रेडियो से एक भाषण ब्राडकास्ट किया और साथ ही प्रायः उसी समय भारत-मंत्री श्री एमरी ने भी पार्लमेंट में एक वक्तव्य दिया। इन दोनों वक्तव्यों में एक ही प्रकार के विचार तथा भाव प्रकट किये गये और एक ही योजना उपस्थित की गयी। योजना की मुख्य बात यह थी कि वाइसराय चुने हुए व्यक्तियों का एक सम्मेलन बुलाएँ जिससे कि नई शासन-परिषद् के सदस्यों की एक सूची तैयार की जा सके। इस सूची में ऐसे व्यक्ति सम्मिलित किये जायं,जो सार्वजनिक रूप से तीन बातें स्वीकार करने को तैयार हों और इन तीन बातों में सब से महत्त्वपूर्ण जापानियों के विरुद्ध युद्ध करके उन्हें हराना हो। वाइसराय ने अपने ब्राडकास्ट में कहा, "विभिन्न दल ऐसे योग्य तथा प्रभावशाली व्यक्तियों के नामों की सिफारिश करें, जो विदेश विषय को मिलाकर सभी विभागों के प्रबंध तथा उनके विषय में निश्चय करने की जिम्मेदारी उठाने को तैयार हों।" वाइसराय ने यह भी कहा कि हिन्दुओं (अछूतों को छोड़कर) और मुसलमानों की संख्या बराबर रहेगी और कार्य का संचालन तत्कालीन विधान के अनुसार होगा यानी "भारत मंत्री और गवर्नर जनरल के नियंत्रण में।" उन्होंने अन्त में कहा, "मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि ये प्रस्ताव सिर्फ ब्रिटिश भारत के ही सम्बन्ध में हैं और इनका प्रभाव सम्राट् के प्रतिनिधि से नरेशों के सम्बन्धों पर बिलकुल नहीं पड़ता। जहां तक रियासतों का सम्बन्ध है, यह स्वीकार किया जाता है कि दर्मियानी वक्त में सम्राट् के प्रतिनिधि के अधिकार जारी रहेंगे, फिर भी यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय सरकार को कितने ही ऐसे विषय हाथ में लेने पड़ेंगे जिनका रियासतों से सम्बन्ध होगा, जैसे, व्यापार, उद्योग, श्रम आदि। इसके अतिरिक्त एक तरफ रियासती प्रजा तथा नरेश और दूसरी तरफ राष्ट्रीय सरकार के सदस्यों के मध्य की दीवार हटनी चाहिए जिससे समान समस्याओं को परस्पर वाद-विवाद और सलाह-मशविरे के द्वारा हल किया जा सके। . . .यदि सम्मेलन सफल हुआ तो मुझे केन्द्रीय शासन-परिषद् स्थापित करने के विषय में सहमत होने की आशा है। ऐसी अवस्था में धारा ९३ वाले प्रांतों में मन्त्रिमण्डल फिर से काम करने लगेंगे। ये प्रान्तीय मंत्रिमंडल मिलेजुले होंगे।. . .यदि सम्मेलन दुर्भाग्यवश असफल हुआ तो विभिन्न

राजनैतिक दलों में कोई समझौता होने तक हमें वर्तमान अवस्था में रहना पड़ेगा।"

शिमला-सम्मेलन

वेवल-योजना के अनुसार शिमला में जून के महीने में सम्मेलन हुआ। वाइसराय ने सम्मेलन के सम्मुख पदों तथा उनमें मिलाए जाने वाले विषयों की सूची उपस्थित की। सम्मेलन में जो बहस तथा प्रश्नोत्तर हुए, उनका यहां उल्लेख करना ठीक न होगा; किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जब नेताओं के लिए मिल-जुलकर एक संयुक्त सूची उपस्थित करना असम्भव हो गया तब प्रत्येक दल तथा व्यक्ति से अपनी-अपनी सूची उपस्थित करने को कहा गया। फिर भी बड़ी विचित्र बातें हुईं। २८ जून से दो बैठकें हो चुकने के बाद सम्मेलन की १४ जुलाई वाली बैठक में सफलता मिलने की आशा की जा रही थी। बहुत सोच-विचार के बाद उसमें दो सूचियां उपस्थित की गईं। यह बड़े दुःख की बात थी कि अबतक कोई संयुक्त सूची नहीं बन पाई थी। यदि ऐसा होता तो देश की उन्नति का मार्ग खुल जाता। भाग्य में तो यही था कि मुल्क की गुलामी जिस आपसी फूट के कारण हुई थी वह हमारे बीच बनी रहे। संयुक्त सूची उपस्थित न कर सकने का मतलब यह हुआ कि भारत के एक कोने की आवाज धीमी पड़ गई।

११ जुलाई को मुस्लिम लीग के नेता ने सिर्फ १५ मिनट तक वाइसराय से मुलाकात की और इस मुलाकात में उन्होंने कहा कि वाइसराय की सूची में जो गैर-लीगी नाम हैं उन्हें वे स्वीकार नहीं कर सकते; क्योंकि लीग भारत के मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा करती है और उन्होंने जो सूची दी है उसमें वे अपने दल के अतिरिक्त किसी बाहरी नाम को शामिल करने के लिए तैयार नहीं हैं। वाइसराय ने इससे अपना मतभेद प्रकट किया। कुछ ही समय बाद गांधीजी वाइसराय से मिले और अगले दिन कांग्रेस के अध्यक्ष को मिलने के लिए बुलाया गया। वाइसराय ने सिर्फ इतना ही कहा कि मैंने मुस्लिम प्रतिनिधियों की जो सूची बनाई है मि० जिन्ना उससे सहमत नहीं हैं। इससे अधिक वाइसराय ने नेताओं को कुछ नहीं बताया। वाइसराय के कार्य की विचित्र प्रणाली थी। वह दलों में समझौता कराने का तो प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु उन्होंने नेतृत्व अपने हाथ में सुरक्षित रखा था और अपने इसी अधिकार के कारण वह अपनी सूची तैयार कर रहे थे। वाइसराय ने नेताओं से सूचियां तो सिर्फ इसलिए मांगी थीं कि उनमें से शासन-परिषद् के लिए वह नामों का चुनाव करलें। परन्तु वाइसराय कोई सूची तैयार नहीं कर सके। उचित कार्य-पद्धति तो यह होती कि वह अपनी सूची कांग्रेसी नेताओं को दिखाते और वे उसे स्वीकृति के लिए कार्य-समिति

के आगे उपस्थित करते। १४ जुलाई को वाइसराय ने सम्मेलन यह कहते हुए समाप्त कर दिया कि उन्हें अपने प्रयत्नों में असफलता मिली है और इसीलिए सम्मेलन को अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया जाता है।

वेवल का भाषण

इस प्रकार १४ जून से २५ अगस्त तक का काल सुस्ती का था जो देखने में तो थोड़ा जान पड़ता है; किन्तु भारत में वैधानिक परिवर्तन देखने को उत्सुक लोगों के लिए वह बहुत लम्बा काल था। मध्यवर्ती काल में ब्रिटिश आम चुनाव का परिणाम प्रकट हुआ और १० जुलाई, १९४५ को मजदूर-सरकार की स्थापना हुई। चुनाव में श्री एमरी हार गये और उनके स्थान पर लार्ड पैथिक लारेंस भारत-मंत्री बनाये गये। इसके कुछ ही समय बाद लार्ड वेवल को इंग्लैण्ड बुलाया गया। वह लंदन २५ अगस्त को पहुंचे और उनकी वापसी से पहले ही भारत में केंद्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओं के आम चुनावों की घोषणा की गई।

वेवल स्वयं १८ सितम्बर को वापस आये। आते ही उन्होंने अगले ही दिन एक भाषण ब्राडकास्ट किया, जो संक्षेप में इस प्रकार है:—

"हाल ही में लंदन में सम्राट् की सरकार के साथ मेरा वार्तालाप समाप्त होने पर उसने मुझे निम्न घोषणा करने का अधिकार प्रदान किया है:—

"जैसा कि पार्लमेंट के उद्घाटन के अवसर पर सम्राट् ने अपने भाषण में कहा था, सम्राट् की सरकार, भारतीय नेताओं के सहयोग से, भारत में शीघ्र ही पूर्ण स्वायत्त शासन की स्थापना में सहायता प्रदान करने के लिए यथाशक्ति सब कुछ करने के लिए दृढ़ संकल्प है। मेरी लंदन-यात्रा के अवसर पर उसने मेरे साथ उन उपायों पर सोच-विचार किया है जो इस दिशा में किये जायंगे।

"इस आशय की घोषणा पहले ही की जा चुकी है कि केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओं के निर्वाचन, जो अब तक युद्ध के कारण स्थगित थे, आगामी शीत ऋतु में किये जायंगे। सम्राट् की सरकार को पूरी आशा है कि उसके बाद प्रान्तों में राजनैतिक नेता मन्त्रि-पद का दायित्व ग्रहण कर लेंगे।

"सम्राट् की सरकार का इरादा है कि यथाशीघ्र एक विधान-निर्मात्री-परिषद् का आयोजन किया जाय और फलतः प्रारम्भिक प्रयत्न के रूप में उसने मुझे यह अधिकार दिया है कि मैं निर्वाचन समाप्त होते ही, यह जानने के लिए प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के प्रतिनिधियों से वार्तालाप करूं कि १९४२ की घोषणा में जो प्रस्ताव निहित हैं वे उन्हें मान्य हैं या किसी वैकल्पिक अथवा संशोधित योजना को वे तरजीह देते हैं। देशी राज्यों के प्रतिनिधियों से भी, यह जानने के लिए वार्तालाप किया जायगा कि वे किस विधि से, विधान-निर्मात्री-परिषद् में पूरी तरह से सम्मिलित हो सकते हैं।

"सम्राट् की सरकार उस सन्धि के विषयों पर विचार करने जा रही है जो ब्रिटेन और भारत के मध्य आवश्यक होगी।

"इन प्रारंभिक अवस्थाओं में, भारत की शासन-व्यवस्था जारी रहनी चाहिए और तात्कालिक आर्थिक एवं समाजिक समस्याओं का निबटारा भी अवश्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त भारत को नवीन-व्यवस्था की रचना में पूरा-पूरा भाग लेना है। फलतः सम्राट् की सरकार ने मुझे यह भी अधिकार दिया है कि ज्योंही प्रान्तीय निर्वाचनों के परिणाम ज्ञात हो जायं मैं एक ऐसी शासन-परिषद् को अस्तित्व में लाने का प्रयत्न करूं जिसे मुख्य-मुख्य भारतीय दलों का समर्थन प्राप्त हो।

एटली का भाषण

प्रधान मंत्री मि० क्लीमेंट एटली ने १९ सितम्बर के दिन ब्राडकास्ट करते हुए कहा कि ब्रिटिश सरकार भारतीय-विधान-परिषद् संस्था के साथ एक संधि करेगी, जिसका प्रस्ताव १९४२ में की गई घोषणा में किया गया था। श्री एटली ने यह भी कहा कि इस संधि में ऐसी कोई बात न रखी जायगी, जो भारत के हितों के विरुद्ध होगी। आगे उन्होंने कहा कि भारत के प्रति ब्रिटिश नीति की वही व्याख्या, जो १९४२ की घोषणा में निहित है और जिसे इस देश के सभी दलों का समर्थन प्राप्त है, अपने उद्देश्य और पूर्णता की दृष्टि से पूर्ववत् वर्तमान है। उस घोषणा में ब्रिटिश सरकार तथा विधान-परिषद के मध्य एक संधि की जाने का विचार प्रकट किया गया था। सरकार तुरन्त ही संधि के मसविदे की रूपरेखा तैयार कर रही है। यह कहा जा सकता है कि उस संधि में भारत के हित के विरुद्ध कोई भी बात नहीं रखी जायगी। भारत में विधान-निर्मात्री-संस्था की स्थापना तथा उसके संचालन में जो कठिनाइयां आयंगी और जिन पर विजय प्राप्त करना आवश्यक होगा उन्हें भारतीय मामलों की जानकारी रखनेवाला कोई आदमी नजरंदाज नहीं कर सकता। इससे भी अधिक कठिनाई का सामना भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों को करना पड़ेगा, जिन्हें चालीस करोड़ प्राणियों वाले महान भू-खंड के लिए विधान तैयार करना है।

कांग्रेस कमेटी का मत

लार्ड वेवल का भाषण भारतीय लोकमत के सभी वर्गों के लिए और विशेष कर कांग्रेस के लिए निराशाजनक तथा असंतोषजनक सिद्ध हुआ। इसका कारण यह था कि भारत की स्वाधीनता की घोषणा नहीं की गई थी। छः महीनों के लिए न तो प्रान्तों में मंत्रिमंडल ही कायम होंगे और न केन्द्र में शासन-परिषद् का

ही पुनस्संगठन किया जायगा। इसके अतिरिक्त गोकि यथासम्भव उत्तम निर्वाचन सूची के आधार पर चुनाव करने को कहा गया था फिर भी यह सत्य था कि देश में इस निर्वाचक सूची के विरुद्ध गहरा असंतोष फैला हुआ था। वाइसराय का प्रस्ताव, जिसके उद्देश्य की व्याख्या प्रधानमंत्री एटली ने की थी, वस्तुतः १९४२ के क्रिप्स प्रस्तावों की ही पुनरावृत्ति थी। परन्तु क्रिप्स-प्रस्तावों की तुलना में नये प्रस्ताव में एक भेद भी था। जहाँ क्रिप्स-योजना में युद्ध समाप्त होते ही प्रान्तों में मंत्रि-मंडलों के फिर से काम जारी करने और केन्द्रीय शासन-परिषद् के पुनस्संगठन की बात थी वहां सितम्बर वाली घोषणा में न तो ऐसी कोई व्यवस्था की गई थी और न प्रान्तों में मंत्रिमंडलों की स्थापना का ही कोई समय निर्धारित किया गया था। सितम्बर वाले वक्तव्य के अनुसार जनता को १९४२ में बताई नई क्रिप्स-योजना या घोषित नीति के अनुसार उसको किसी संशोधित रूप के मध्य चुनाव करना था। समस्या की पेचीदगियों तथा अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान रखते हुए एक नई बात यह जारी की गई कि नव-निर्वाचित धारासभाएं भी मत प्रकट करें कि क्रिप्स-योजना उन्हें स्वीकार है अथवा कोई नई योजना जारी की जाय। जहां तक विधान-परिषद् में रियासतों के प्रतिनिधित्व का सवाल था, एक बिलकुल नई बात जोड़ी गई थी। घोषणा में कहा गया था कि रियासतों के प्रतिनिधियों के साथ भी बातचीत करके यह जानने का प्रयत्न किया जायगा कि विधान-निर्मात्री-संस्था में वे किस रूप में काम करना चाहते हैं। यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि विधान परिषद् में केवल नरेशों के प्रतिनिधि रखे जायंगे अथवा रियासतों की जनता के प्रतिनिधि रखे जायंगे और यदि ऐसा किया जायगा तो रियासती प्रजा के प्रतिनिधि धारासभाएं चुनेंगी या अखिल भारतीय देशी-राज्य-प्रजा-परिषद्-द्वारा चुनाव किया जायगा।

इस घोषणा में किसी प्रान्त को पृथक् होने का अधिकार नहीं दिया गया था; किन्तु एटली के वक्तव्यों में यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया गया था कि यदि क्रिप्स-योजना को मंजूर करना है तो वह पूरी-की-पूरी ही मानी जानी चाहिए। सितम्बर की घोषणा के बाद जनता को यह बिलकुल स्पष्ट हो गया था कि शिमला की वार्ता केवल ब्रिटेन के चुनाव के सम्बन्ध में ही थी और उस चुनाव के समाप्त होते ही उस सम्मेलन को भी समाप्त हो जाने दिया गया। इसमें भी कोई संदेह न था कि सितम्बर वाला प्रस्ताव केवल छः महीने का समय प्राप्त करने के लिए एक चाल मात्र थी; क्योंकि प्रान्तीय चुनाव मार्च १९४६ से पूर्व समाप्त न होते और इस प्रकार भारतीय समस्या का हल छः महीने के लिए और टाल देने की चेष्टा की गई। इन सब बातों पर विचार करने के बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने बम्बई में इन दोनों वक्तव्यों पर विचार किया और मत प्रकट किया कि सरकार के प्रस्ताव अपर्याप्त तथा अस्पष्ट हैं।

भारत-मंत्री का मत

तब भारत-मंत्री लार्ड पेथिक लारेंस ने २३ सितम्बर के दिन उन प्रस्तावों के स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा, "मुझे नई नीति की प्रतिक्रिया से कुछ भी निराशा नहीं हुई है। यह घोषणा स्वयं भारत की राजनैतिक समस्या का हल नहीं है। परिस्थिति को देखते हुए ऐसा हल नहीं किया जा सकता था।

"इस घोषणा से सिर्फ वह रास्ता खुल गया है जिस पर चल कर भारतीय स्वशासन की मंजिल पर पहुँच सकते हैं। इस मंजिल तक पहुंचने से पहले उन्हें जिस भी सहायता या प्रोत्साहन की जरूरत होगी, उसे मैं उन्हें सम्राट् की सरकार की तरफ से देने को तैयार हूं।

"ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के भीतर स्वशासन का जो अधिकार मिलता है उसके अंतर्गत राष्ट्रमंडल के भीतर रहने या न रहने की स्वतंत्रता पहले ही दे दी जाती है। राष्ट्रमंडल के सदस्यों को जो बंधन बांधे रहता है वह सहमति के अलावा और कोई बंधन नहीं होता। यही बात भारत पर भी लागू होती है, किन्तु हमें आशा और विश्वास है कि जब भारतीयों को राष्ट्रमंडल में रहने या न रहने की स्वतंत्रता दे दी जायगी तब वे अपनी इच्छा से और अपने हितों का ध्यान रखते हुए राष्ट्रमंडल में ही रहना चाहेंगे।" अपने भाषण के प्रारम्भिक भाग में उन्होंने बताया कि "मेरा आदर्श तो यह है कि भारत और ब्रिटेन बराबरी के पद-द्वारा साझेदारी की भावना से बंध जायं। अधिकांश ब्रिटिश राष्ट्र भी इसी साझेदारी के आदर्श की प्राप्ति के लिए उत्सुक हैं।"

चुनाव की तैयारी

लार्ड वेवल के इंग्लैंड से दूसरी बार वापस आते ही देश में आम चुनाव का शोरगुल मच गया। गोकि इंग्लैंड में लार्ड वेवल ने जो कुछ किया था उससे कमेटी खुश न थी, यह साफ था कि तत्कालीन अवस्था में चुनाव का निष्पक्षता से होना असम्भव था। कमेटी सभी अयोग्यताओं तथा प्रतिबंधों से भी परिचित थी। परन्तु चुनाव में भाग लेने के विषय में उसका एकमात्र उद्देश्य राष्ट्र की इच्छा को प्रकट करना और उसके लिए सत्ता प्राप्त करना था। इसलिए चुनाव सम्बन्धी व्यवस्था करने के लिए चुनाव-उप-समिति नियुक्त की गई। समिति में ये व्यक्ति रखे गये:—(१) मौ० अबुल कलाम आजाद, (२) सरदार वल्लभभाई पटेल, (३) डा० राजेन्द्र प्रसाद, (४) पं० गोविंद वल्लभ पंत, (५) श्री आसफ अली, (६) डा० पट्टाभि सीतारामैय्या और (७) श्री शंकर राव देव।

कुछ ही समय बाद चुनाव के सम्बन्ध में केन्द्र तथा प्रान्तों से ताल्लुक रखनेवाला एक घोषणा-पत्र निकाल दिया गया।

आजाद हिन्द फौज

इस समय तक आजाद हिंद फौज के मुकदमों से भारत भर में बड़ी सनसनी फैल गई थी। सबसे पहले कर्नल शाह नवाज, कप्तान सहगल तथा लेफ्टिनेंट ढिल्लन पर मामले चलाए गये। सच तो यह है कि उन्हींके कारण आजाद हिंद फौज की स्थापना के इतिहास पर प्रकाश पड़ा। भारत में ऐसा शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसका दिल फौज के रोमांचकारी अनुभवों तथा साहसिक कार्यों को जानकर हिल न उठा हो। जज-एडवोकेट की अदालत में जिन घटनाओं का बयान किया जाता था उन्हें भारत की साक्षर जनता बड़ी उत्कंठा से नित्य ही पढ़ती थी और निरक्षर जनता बड़ी उत्सुकता से उसे सुनती थी। इन मुकदमों का विवरण सुनने के लिए निजी तथा सार्वजनिक रेडियो के आस-पास भीड़ लगी रहती थी। इस सिलसिले में श्री भूलाभाई देसाई तथा उनके दूसरे साथियों की सेवाएं अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध हुईं। अदालत में स्वच्छन्दतापूर्वक विचार प्रकट करने की जो सुविधा दी गई उसके कारण पराधीन राष्ट्र के अपनी स्वाधीनता के लिए लड़ने के अधिकार-सम्बन्धी उदार तथा लोकतन्त्रात्मक सिद्धांतों का विकास हुआ। मुकदमे रोकने और बंदियों को मुक्त करने के लिए व्यापक आंदोलन हुआ। मुकदमों की सुनवाई समाप्त होने पर तीनों अभियुक्तों को आजन्म कारावास का दंड दिया गया; किन्तु प्रधान सेनापति ने उन्हें इस दंड से मुक्त कर दिया। उनके छोड़े जाने पर देशभर में खुशियां मनाई गईं और देश भर में अपने दौरे के बीच "जय हिंद" कह कर उनका स्वागत किया गया।

यहां यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि १९४५ के जाड़ों में आजाद हिंद फौज के अभियुक्तों को मुक्त कराने के आन्दोलन के सिलसिले में देश भर में जो प्रदर्शन हुए उनके कारण कलकत्ते में गोली चली, जिसमें ४० आदमी मारे गये और ३०० से अधिक घायल हुए। इसी प्रकार बंबई में भी गोली चली जिस में २३ व्यक्ति मारे गये और लगभग २०० घायल हुए। आजाद हिंद फौज के दूसरे मुकदमे में जब कप्तान रशीद को आजन्म कैद की सजा दी गई और प्रधान सेनापति ने उसे घटा कर सात वर्ष का कठोर कारावास कर दिया तो फिर राष्ट्रव्यापी प्रदर्शन हुए, जिनमें मुसलमानों ने भी भाग लिया। इस सिलसिले में जो प्रदर्शन कलकत्ते में हुआ उस में ४३ व्यक्ति मारे गये और ४०० के लगभग घायल हुए। यह फरवरी १९४६ की बात है।

: २३ :

पराधीनता के बंधन टूटे : १९४६-४७

केन्द्र में चुनाव समाप्त हो चुके थे, किन्तु प्रान्तों में उम्मीदवारों का चुनाव और नामज़दगी का कार्य जारी था और इस कार्य में नेता और अनुयायी दोनों ही व्यस्त थे। इस बीच कभी-कभी आजाद हिंद फौज के सस्दयों के मामलों की सनसनी भरी खबरें सुनायी दे जाती थीं। एक समय तो ऐसा जान पड़ता था कि कर्नल शाह नवाज़, कर्नल सहगल और कर्नल ढिल्लों की ख्यति राष्ट्रीय नेताओं की कीर्ति को भी ढक लेगी। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे आजाद हिंद फौज कांग्रेस की लोक-प्रियता छीन लेगी और विदेश में युद्ध तथा हिंसा से लड़ी जानेवाली लड़ाइयां अहिंसात्मक लड़ाइयों की याद धुंधली बना देंगी। परन्तु कालेपानी की सजा पाये हुए तीनों अफसरों को वाइसराय ने जो क्षमा-प्रदान किया इससे आजाद-हिंद फौज के लिए उठने वाले जोश में कमी हुई।

कांग्रेस की शक्ति दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगी। ८ जनवरी, १९४६ को श्री विलियम फिलिप्स की राष्ट्रपति रूजवेल्ट के सम्मुख उपस्थित रिपोर्ट का सारांश प्रकाशित हो गया। यह रिपोर्ट श्री फिलिप्स ने भारत से अमेरिका लौटने पर राष्ट्रपति रूजवेल्ट को दी थी। इससे कांग्रेस की शक्ति में और भी वृद्धि हुई। यह रिपोर्ट एक उर्दू दैनिक "मिलाप" में ८ जनवरी, १९४६ को प्रकाशित हुई थी, किन्तु ८ जनवरी, १९४६ तक उसे सरकारी तौर पर प्रकाशित नहीं किया गया था।

फिलिप्स की रिपोर्ट

"कांग्रेस का उद्देश्य अपने को एक फासिस्ट सरकार के रूप में स्थापित करना न हो कर स्वाधीनता के लक्ष्य की, तथा भारतीयों-द्वारा अपना विधान आप तैयार करने के अधिकार की प्राप्ति के लिए भारत में एकता कायम करना है।" मुस्लिम लीग की मांग के सम्बन्ध में रिपोर्ट में कहा गया—"मुस्लिम नेता यह प्रमाणित करने में सफल नहीं हुए हैं कि कांग्रेस के शासन में मुसलमानों के हितों की हानि हुई है। प्रान्तीय शासन की समीक्षा से सिर्फ यही जाहिर हुआ है कि एक राजनीतिक दल के रूप में मुस्लिम लीग कभी शासन-व्यवस्था पर नियंत्रण नहीं जमा सकेगी और कतिपय प्रान्तों को छोड़ कर धारा-सभाओं में अल्पमत में ही रहेगी। वह केन्द्रीय असेम्बली में भी अधिकांश स्थानों पर अधिकार करने में सफल नहीं हो सकती। मुस्लिम लीग की शिकायत दरअसल यही है। कांग्रेस ने रियासतों के सम्बन्ध में जो रूप ग्रहण किया है उसके सम्बन्ध में श्री जिन्ना तथा दूसरे मुस्लिम नेताओं की चिन्ता तथा उनकी पाकिस्तान की मांग का भी इससे स्पष्टीकरण

हो जाता है।" आगे कहा गया—"मुसलमानों ने भारत को स्वराज्य देने के सम्बन्ध में जो यह आपत्ति की थी कि राजनैतिक क्षेत्र पर कांग्रेस का प्रभुत्व रहेगा, वह अब नहीं मानी जा सकती। इसके अलावा यह मानने के काफी कारण हैं कि अन्य राजनीतिक संगठनों में हुए परिवर्तनों का खुद मुस्लिम लीग पर असर पड़ेगा।"

नवाब भूपाल की घोषणा

भारत की समस्या के सदा से दो भाग रहे हैं—प्रान्त और रियासत। नया वर्ष आरम्भ होते ही रियासतों की प्रजा को नवाब भोपाल की घोषणा के कारण आशा की किरण दिखायी देने लगी। नवाब साहब नरेन्द्रमंडल के चांसलर थे। १८ जनवरी, १९४६ को उन्होंने निम्न घोषणा की :—

"नरेन्द्र-मंडल ने मंत्रियों की समिति से परामर्श करने के उपरान्त रियासतों में वैधानिक उन्नति के प्रश्न पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और वह (समिति) सिफारिश करती है कि नरेन्द्र-मंडल इस सम्बन्ध में अपनी नीति की घोषणा करे और जिन रियासतों में अभी तक इस सम्बन्ध में कोई कार्रवाई नहीं की गई है उनमें तुरन्त उचित उपाय किये जायँ। परन्तु ठीक वैधानिक स्थिति पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा, जिसके सम्बन्ध में सम्राट् की सरकार की तरफ से घोषणा की जा चुकी है और जिसे श्री वाइसराय भी दुहरा चुके हैं। कहा जा चुका है कि किसी रियासत और उसकी प्रजा के लिए कैसा विधान उपयुक्त होगा—इसका निर्णय स्वय शासक के ही हाथ में रहेगा।

"अस्तु, नरेन्द्र-मंडल की तरफ से उसके चांसलर को निम्न घोषणा करने का अधिकार दिया जाता है—

"हमारा उद्देश्य ऐसे विधान का निर्माण करना है, जिसमें नरेशों की सत्ता का उपयोग नियमित वैध मार्गों से होता रहे, किन्तु इससे इन रियासतों के राजवंश तथा उनकी स्वतंत्रता पर कोई प्रभाव न पड़ना चाहिए। प्रत्येक रियासत में निर्वाचित बहुमतवाली लोकप्रिय संस्थाएं रहें, जिस से रियासत के शासन-प्रबंध से जनता का सम्बन्ध रह सके। प्रत्येक रियासत का विस्तृत विधान तैयार करते समय उस रियासत की विशेष परिस्थितियों का भी ध्यान रखा जाय।"

वेवल का भाषण

केन्द्रीय-असेम्बली में वाइसराय ने २८ जनवरी, १९४६ को निम्न भाषण दिया :—

"मैं कोई नई या चित्ताकर्षक राजनीतिक घोषणा करने के लिए यहां नहीं आया हूँ। मैं केवल भारत के नव-निर्वाचित प्रतिनिधियों से मिलने तथा उनका स्वागत करने और उनसे प्रोत्साहन की कुछ बातें कहने के लिए ही आया हूँ।

"मैं समझता हूं कि सम्राट् की सरकार के मन्तव्य यथेष्ट रूप से स्पष्ट कर दिये गये हैं। राजनीतिक नेताओं-द्वारा संघठित नई शासन-परिषद् स्थापित करने और शासन-विधान बनानेवाली सभा या सम्मेलन यथासम्भव शीघ्र-से-शीघ्र जुटाने का उसका दृढ़ निश्चय है।

"मैं यह चाहता हूं कि आप इस अधिवेशन के दौरान में इस सभा की बहसों में ऐसी कोई बात न कहें, जिससे मुझे राजनीतिक आधार पर अपनी शासन-परिषद् को बनाने में कठिनाई पेश आये अथवा मुख्य वैधानिक समस्याओं के समझौते की सम्भावना पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़े अथवा देश में पहले से ही विद्यमान कटुता और अधिक बढ़ जाय।

"केन्द्रीय असेम्बली के चुनावों के समय काफी से अधिक वैमनस्य पैदा हो गया है और यह सम्भावना है कि प्रान्तीय चुनावों के समय भी ऐसा ही होगा। यदि इस अधिवेशन के दौरान में सभी भाषणों में संयम से काम लिया जाय तो उससे मुझे और मेरा ख्याल है कि आपके दलों के नेताओं को भी बड़ी मदद मिलेगी।

"मुझे आशा है और मैं विश्वास करता हूं कि असेम्बली-द्वारा विनाश-मूलक कार्यों के अन्त का समय निकट है। यदि मुख्य दलों-द्वारा समर्थन प्राप्त नई शासन-परिषद् मनोनीत करने में मैं सफल हुआ, तो अगले अधिवेशन में आप लोगों के सम्मुख अत्यधिक महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्य उपस्थित किया जायगा।"

सरकारी विज्ञप्ति

इस बात की काफी चर्चा थी कि जुलाई, १९४५ में शिमला में जैसा लज्जाजनक नाटक हुआ था उसकी पुनरावृत्ति इस बार न हो। २९ जनवरी, १९४६ को प्रकाशित एक विज्ञप्ति में उससे बचने का एक तरीका निकाला गया :—

"प्रान्तों में चुनाव समाप्त हो जाने और प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल स्थापित हो चुकने पर वाइसराय प्रान्तीय सरकारों से कार्यकारिणी परिषद् के लिए कुछ नाम मांगेंगे। ये नाम अधिक नहीं सिर्फ दो या तीन होंगे।

"नाम प्राप्त हो जाने पर वाइसराय एक कामचलाऊ सरकार के सदस्यों का चुनाव कर लेंगे और यदि किसी प्रान्तीय सरकार ने नाम भेजने से इन्कार कर दिया तब भी वाइसराय की योजना पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ेगा।

"यदि कोई प्रान्तीय सरकार नाम भेजने से इन्कार करेगी तो वाइसराय प्रान्तीय असेम्बली के दलों के नेताओं से सम्पर्क करेंगे और फिर कार्य-कारिणी परिषद् में उन व्यक्तियों को रख लेंगे, जिन्हें वे प्रतिनिधि समझेंगे।"

इस विज्ञप्ति में सदाशयता की एक झलक दिखायी देती थी। लार्ड वेवेल से भारत के भविष्य के सम्बन्ध में कलकत्ता में प्रश्न किये जाने पर उन्होंने कहा कि वर्तमान राजनीतिक अड़ंगा अधिक समय तक न रहने दिया जायगा और

यदि दुर्भाग्यवश भारतीयों के मतभेद मिट न सके तो ब्रिटिश सरकार को कुछ न कुछ घोषणा करनी ही पड़ेगी। यदि किसी दल ने सम्राट्-सरकार की योजना से सहयोग करने से इन्कार कर दिया तो सरकार विरोध के बावजूद योजना को अमल में लायेगी।

मन्त्रि-मिशन की नियुक्ति

सन् १९४५ में इंग्लैंड की मजदूर-सरकार ने भारत के लिये एक पार्लियामेण्टरी शिष्ट-मण्डल भेजने की जो एक योजना बनाई थी उससे राजनीतिक घटनाओं की प्रतीक्षा करनेवाली भारतीय जनता का ध्यान बँट गया। पहले कहा जाता था कि शिष्ट-मण्डल एम्पायर पार्लियामेंटरी एसोसिएशन की तरफ से जायगा, किन्तु इस खबर से सभी लोगों में नाराजी फैल गई। तब पार्लियामेंट ने यह दायित्व अपने कंधों पर लिया और शिष्ट मण्डल में सभी दलों के प्रतिनिधि रखे गये। यह शिष्ट-मण्डल एक अनियमित कमीशन से अधिक और कुछ न था। १९३५ के कानून को पास हुए १९४६ में दस से भी अधिक वर्ष बीत चुके थे। इसलिये पार्लियामेंटरी शिष्ट-मण्डल भेजकर शाही कमीशन नियुक्त करने की अप्रिय बात से बचा गया। ब्रिटिश सरकार की यह एक चाल थी, जो चल गयी और छोटे-बड़े सब कांग्रेसजन इस चाल में आ गये। उसमें लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स तथा श्री एच० वी० अलेग्जैंडर थे।

२५ फरवरी, १९४६ को लार्ड पैथिक-लारेंस के सम्मान में एक भोज दिया गया, जिसमें कहा गया कि वे जैसे साथियों के साथ जा रहे हैं उससे उन्हें अपने मिशन में सफलता अवश्य ही मिलनी चाहिए। उन्होंने कहा, "समस्या बहुत ही पेचीदा है। हमें जिस पथ से चल कर स्वाधीन भारत के आधार के लक्ष्य तक पहुंचना है वह अभी साफ नहीं है। परन्तु हमें स्वाधीन भारत का नजारा दिखायी देने लगा है और इस नजारे से उत्साहित होकर भारतीय प्रतिनिधियों के साथ प्रयत्न करते हुए स्वाधीनता के मार्ग को हमें खोज निकालना है। हम भारत का संरक्षण बड़े सम्मान और गौरव से उसके नेताओं को सौंप सकते हैं।

मंत्रि-मिशन का आगमन और कार्य

लार्ड पैथिक लारेंस २३ मार्च १९४६ को भारत पहुचे। उन्होंने अपने एक वक्तव्य में कहा :—"ब्रिटिश सरकार तथा ब्रिटिश राष्ट्र अपने उन वायदों तथा वचनों को पूरा करना चाहते हैं जो दिये गये हैं और हम विश्वास दिलाते हैं कि अपनी बातचीत के बीच हम ऐसी कोई शर्त उपस्थित न करेंगे, जो भारत के स्वाधीन अस्तित्व से मेल न खाता हो।" सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने कहा कि वह हिन्दुस्तान में विरोधी दावों का फैसला करने नहीं आये हैं, बल्कि भारतीयों के हाथ में सत्ता सौंपने का उपाय खोज निकालने आये हैं।

मंत्रि-मिशन का भारत में अच्छा स्वागत हुआ। वह भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञों से मिला और इस देश की राजनीतिक परिस्थिति से अवगत हुआ। मुलाकातें लम्बी हुईं। कांग्रेस की कार्यसमिति १२ अप्रैल को बुलायी गयी। मंत्रि-मिशन ने वाइसराय को भी अपना एक सदस्य बना लिया। यह १९४२ की तुलना में नवीनता थी, क्योंकि तब सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अकेले ही जिम्मेदारी उठा रखी थी। मिशन ने बातचीत चलाने के लिए कांग्रेस तथा लीग से अपने चार-चार प्रतिनिधि चुनने का अनुरोध किया। इन प्रतिनिधियों को मिशन से शिमला में मिलना था। कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने निर्धारित समय स्वीकार कर लिया, किन्तु श्री जिन्ना ने तीन दिन बाद अपना समय दिया। त्रिदल-सम्मेलन दस दिन तक पहाड़ पर चलता रहा। फिर मिशन दिल्ली आ गया। निमंत्रण के साथ विचार के लिए कतिपय प्रस्ताव उपस्थित किये गये।

यहाँ प्रस्तावों का संक्षेप दे देना अनुचित न होगा—"जिस बालिग मताधिकार पर कांग्रेस जोर दे रही थी उसे सिर्फ इसीलिए रोक लिया गया कि उसे जारी करने में देरी अवश्यम्भावी है। ठीक प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए प्रान्तों की मौजूदा निम्न धारासभाओं को चुनाव-समितियां मान लिया गया। परन्तु स्थानों का सम्बन्ध जनसंख्या से स्थापित करके यानी १० लाख के पीछे एक प्रतिनिधि के हिसाब से कुल स्थानों की संख्या दुगनी कर दी गयी। अल्पसंख्यकों को जो अतिरिक्त-प्रतिनिधित्व दिया गया था उसका अंत कर दिया गया। मुसलमानों, सिखों तथा अन्यों के लिए स्थान निर्धारित किये गये, किन्तु अन्तिम वर्ग में से भारतीय ईसाइयों तथा ऐंग्लो-इंडियनों को छोड़ दिया गया। इसीलिए अल्पसंख्यकों, फिरके-वालों और अलग किये गये क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक विशेष समिति बनायी गयी और कहा गया कि उनके अधिकारों का समावेश प्रान्तों, समूहों अथवा संघ के विधानों में कर लिया जायगा। इसकी पद्धति नीचे दी जाती है :—

"प्रान्त निम्न तीन समूहों (ग्रुपों) में रखे जायँगे :—'ए'—मद्रास, बम्बई, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रान्त, उड़ीसा; 'बी'—पंजाब, सीमाप्रान्त, सिंध; 'सी'—बंगाल, आसाम। 'ए' में १६७ आम और २० मुस्लिम प्रतिनिधि रहेंगे। 'बी' में ९ आम, २२ मुस्लिम और ४ सिक्ख प्रतिनिधि रहेंगे। 'सी' में ३४ आम और ३६ मुस्लिम प्रतिनिधि होंगे। रियासतें ९२ प्रतिनिधि भेजेंगी, किन्तु चुनाव का तरीका अभी निश्चित होना बाकी है। इन कुल ३८५ प्रतिनिधियों में दिल्ली, अजमेर-मारवाड़, कुर्ग और ब्रिटिश बिलोचिस्तान के एक-एक प्रतिनिधि को जोड़ना चाहिए। ये ३८९ प्रतिनिधि शीघ्र ही नयी दिल्ली में एकत्र होकर अपने अध्यक्ष तथा अन्य पदाधिकारियों का चुनाव करेंगे और एक सलाहकार समिति भी नियुक्त करेंगे। इसके बाद वे नवीन भारत की नींव रखने का कार्य हाथ में लेंगे।

"प्रारम्भिक कार्यवाही के लिए एकत्र होने के बाद प्रतिनिधि तीन भागों (सेक्शनों) में बँट जायँगे जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। वे अपने समूह के प्रान्तों के लिए विधान तैयार करेंगे। वे यह भी निश्चय करेंगे कि इन प्रान्तों के लिए समूह (ग्रूप) विधान की व्यवस्था की जाय अथवा नहीं और अगर ऐसा किया जाय तो समूह को किन विषयों का प्रबंध सौंपा जाय। इसके बाद सब सदस्य फिर एकत्र होकर भारतीय संघ का विधान तैयार करेंगे। चुनाव की पद्धति आनुपातिक प्रतिनिधित्व की रहेगी, जिसमें एकाकी हस्तांतरित मत प्रणाली को आधार माना जायगा। उद्देश्य यह है कि प्रतिनिधि अधिक से अधिक मतों के आधार पर नहीं बल्कि कम से कम मतों के आधार पर चुने जायँ।

कांग्रेस का मत

मंत्रि-मिशन हिन्दुस्तान में करीब तीन महीने ठहरा। उसने शुरू से ही वाइसराय से मिल कर काम किया। पहले चुने हुए नेताओं से बातचीत से उसकी सरगर्मी आरम्भ हुई। पहले दो हफ्ते तक एक-एक व्यक्ति से मिलने की वही पुरानी चाल दुहराई गई। इस तरह विभिन्न दलों के नेताओं, राजनीतिज्ञों, महात्माओं, विद्वानों, शासन-परिषद के सदस्यों, उद्योगपतियों, व्यापारियों तथा वैधानिक कानून के अध्यापकों से मुलाकातें हुईं। यह गतिरोध की अवस्था थी जैसी उस समय होती है जब इंजन के बॉयलर में भाप रुकी होती है या कार के सेल्फ-स्टार्टर में विस्फोट होने को होता है। साथ ही यह उस शक्ति के संचय का वक्त भी था, जो वायुयान में आपके कदम रखने और उसके आकाश में उठ जाने के दर्मियान आवश्यक होती है। इस बार मिशनरूपी वायुयान के चालक स्वयं गवर्नर-जनरल थे और पहले-जैसी गलती नहीं की गयी थी। मिशन का वायुयान उठा और उचित ऊंचाई पर पहुंचकर शान से मंडराने लगा। मिशन के पहले वक्तव्य का ही देश में अच्छा प्रभाव पड़ा। परन्तु इस वक्तव्य का विश्लेषण भारत-जब पूर्वी राष्ट्र के मेघावी मस्तिष्कों ने किया तो प्रकट हुआ कि उसमें जिस व्यवस्था को उपस्थित किया गया है उसमें सजीव शरीर के अंग-प्रत्यंग तो सभी हैं, किन्तु जीवन के लक्षणों का पूर्णतः अभाव है। इस योजना में उस जीवनदायिनी शक्ति और लचीलेपन का अभाव था, जिससे किसी विधान की उन्नति सम्भव होती है। वक्तव्य को देखकर पहले जो हर्ष और आशा की लहर दौड़ गयी थी उसका स्थान अब उसकी परस्पर-विरोधिनी बातों को देखकर उदासीनता ने ले लिया। फिर जिन बातों के सम्बन्ध में संदेह उठा उनके स्पष्टीकरण का प्रयत्न जब किया गया तब इन स्पष्टीकरणों से वह उदासीनता निराशा में बदल गयी।

कांग्रेस भारत को वैधानिक दृष्टि से स्वाधीन देखने की अधिक इच्छुक नहीं थी—वह सिर्फ वास्तविक स्वाधीनता से ही संतुष्ट हो सकती थी। परन्तु वक्तव्य

द्वारा यह वास्तविक स्वाधीनता भी हमें नहीं मिलनी थी। मिशन ने कहा कि विधान-परिषद् का निश्चय होने से पूर्व स्वाधीनता नहीं मिल सकती। विधान-परिषद् थी तो, किन्तु उसे तीन भागों में काम करना था और फिर फैसला करना था कि समूहों (ग्रुपों) का निर्माण किया जाय अथवा नहीं। समूहों को यह भी निर्णय करना था कि उनकी धारासभाएं और सरकारें अलग रहेंगी अथवा नहीं। वक्तव्य का जो स्पष्टीकरण बाद में माँगा गया उस से उस की स्वाभाविक तथा नियमित व्याख्या को चुनौती मिली, क्योंकि कांग्रेस के शब्दों में खुद मिशन ने ही अपने इरादे उस से भिन्न बताये। पहले कहा गया था कि प्रान्त समूह में जाने के लिये स्वतंत्र है, फिर लार्ड पैथिक लारेंस ने व्याख्या की कि किसी प्रान्त के लिये 'ए', 'बी' या 'सी' में से उस समूह में जाना अनिवार्य है, जिस में उसका नमा रखा गया है। सदस्यों के अलग भागों में बँटने के बाद ही निर्णय होगा कि वे कोई विशेष समूह बनाना चाहते हैं या नहीं और उस समूह के लिये अलग धारासभा और सरकार स्थापित करना चाहते हैं या नहीं। कांग्रेस की तरफ से कहा गया कि प्रान्तों को किसी भाग के साथ बांधा न जाय, क्योंकि इससे प्रान्तीय स्वतंत्रता के सिद्धान्त की हत्या होती है। परन्तु मंत्रि-मिशन के हठ और वाइसराय के इस उत्तर के लिए क्या कहा जाता कि समूहीकरण योजना का आवश्यक अंग है। इस प्रकार वक्तव्य के इस अंश को विकृत कर दिया गया। कांग्रेस जिस कील को ढीली करके उखाड़ना चाहती थी उसे २५ मई १९४६ के वक्तव्य-द्वारा ठोंक-ठोंक कर और गहरा गाड़ दिया गया। वक्तव्य में कहा गया था कि प्रभुता-शक्ति न तो ब्रिटेन में रहेगी और न वह अंतरिम सरकार को ही मिलेगी। यह ठीक ही था कि प्रभुता-शक्ति लंदन से चल चुकी थी, किन्तु दिल्ली पहुँचने के स्थान पर उसे स्वेज नहर पर ही मंडराते रहना था। अन्त में सत्य प्रकट हुआ कि प्रभु-शक्ति नरेशों को प्राप्त होगी। ब्रिटिश सरकार कलम की एक सतर से भारत में एक नहीं, बल्कि ५६२ छोटे-बड़े अल्स्टर कायम करने जा रही थी। इस प्रकार ब्रिटेन हमारे लिए अच्छी विरासत छोड़े जा रहा था!

१३ जून को वाइसराय ने पंडित जवाहरलाल नेहरू के सामने १३ सदस्यों की एक योजना रखी और व्यक्तियों के चुनाव तथा अनुपात के सम्बन्ध में कितने ही भ्रमों को दूर कर दिया। परन्तु कांग्रेस ने शासन-परिषद् में १५ सदस्य रखने पर जोर दिया और कहा कि इनमें मुसलमानों की संख्या ५ से अधिक न होनी चाहिये। ब्रिटिश भारत में मुसलमानों का अनुपात २६ प्रतिशत है, किन्तु प्रतिनिधित्व उन्हें ३३⅓ प्रतिशत दिया जा रहा है। १५ जून को यही स्थिति थी। यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि यदि यह नहीं स्वीकार किया गया तो कांग्रेस सहयोग नहीं प्रदान कर सकेगी। इस प्रकार मिशन के प्रस्तावों को फिलहाल नामंजूर कर दिया गया था। कांग्रेस यह भी तय कर चुकी थी कि अंतरिम सरकार

में भाग लेनेवाले वाइसराय के निमंत्रण पर और उनके यहां एकत्र नहीं होंगे। सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अक्टूबर, १९४२ में कहा था कि जहां वह समझौता कराने ७००० मील की दूरी तय करके गये थे वहां कांग्रेस, लीग से मिलने के लिये एक सड़क पार करने को तैयार नहीं थी। १९४२ की भी बात जाने दीजिये। १९४६ में क्या हुआ? क्या श्री जिन्ना ने वाइसराय भवन में पंडित नेहरू से मिलने के लिए—मौलाना आजाद की तो बात ही जाने दीजिये—आना ठीक समझा; और वह भी तब जब खुद वाइसराय ही ने उन्हें आमंत्रित किया था? श्री जिन्ना तो एक गली तक तय करने को तैयार नहीं थे। १५ जून के दिन जब वाइसराय को विश्वास हो गया कि अब वार्ता भंग होनेवाली है तब उन्होंने एक और पत्र लिखा। इस पत्र में बहुत ही नर्म शब्दों का प्रयोग किया गया था और अंत में आशा प्रकट की गयी थी कि अब भी कांग्रेस अंतरिम सरकार में सम्मिलित होना स्वीकार कर लेगी। वाइसराय ने तर्क उपस्थित किया कि ५+६+२ के गुर में समान-प्रतिनिधित्व का प्रश्न नहीं उठता। वस्तुतः वाइसराय पिछले प्रस्ताव को ही दुहरा रहे थे और इससे कांग्रेस की स्थिति में कुछ भी सुधार नहीं होता था। इसलिए कार्यसमिति ने वाइसराय को सूचित कर दिया कि वह जो कुछ कह चुकी है वही उसका अंतिम निर्णय है, और १६ जून के दिन वह मंत्रिमिशन और वाइसराय के फैसले का इंतजार करने लगी।

राष्ट्रीय सरकार की घोषणा

१६ जून आयी और गयी। १६ अक्टूबर, १९०५ को बंगाल का विभाजन लागू किया गया था। बाद में १६ मई, १९४६ को भारत के विभाजन की प्रथम रूपरेखा तैयार हुई। १६ जून, १९४६, को अस्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने की घोषणा वाइसराय के पिछले पत्र के अनुसार की गयी। १४ व्यक्ति चुने गये। मुस्लिम लीग ने जो पांच नाम सुझाये थे वे सूची में ज्यों-के-त्यो थे; किन्तु कांग्रेस की तरफ से कांग्रेसियों के ६ नामों में एक ऐसा नाम (उड़ीसा के प्रधान मंत्री) था, जो उस की प्रस्तावित सूची में नहीं था। लीग-द्वारा उपस्थित किये गये पांच नामों में से कांग्रेस ने एक, यानी अब्दुर्रब निश्तर के नाम पर आपत्ति की, किन्तु इस आपत्ति को नहीं माना गया और कांग्रेस की जानकारी के बिना ही श्री शरत्चन्द्र बोस के स्थान पर उड़ीसा के प्रधानमंत्री श्री हरेकृष्ण मेहताब का नाम रख दिया गया। कांग्रेस ने श्रीमती अमृतकौर, डा० जाकिर हुसैन और मुनिस्वामी पिल्ले के जो नाम प्रस्तावित किये थे, उन्हें भी अस्वीकार कर दिया गया। स्पष्ट था कि वाइसराय अंतरिम सरकार को अपनी पुरानी शासन-परिषद् ही समझते थे।

कांग्रेस की आपत्तियाँ

कांग्रेस की आपत्तियां तीन थीं—(१) जनाब निश्तर का चुनाव; क्योंकि सीमाप्रान्त के चुनाव में उन्हें कांग्रेसी उम्मीदवार के विरोध में सफलता नहीं मिली थी और औरंगजेब मंत्रिमंडल के एक सदस्य के रूप में उनके विरुद्ध एक अविश्वास का प्रस्ताव पेश हो चुका था, (२) अंतरिम सरकार में कोई राष्ट्रवादी मुसलमान नहीं रखा गया था और (३) ये परिवर्तन कांग्रेस की सलाह के बिना ही किये गये थे।

अस्तु, वाइसराय की सूची प्रकाशित होने पर जान पड़ा कि उसे एकाएक स्वीकार नहीं किया जा सकता। सरदार बलदेवसिंह के नाम के सम्बन्ध में सिखों से सलाह लेनी बाकी थी। इसी तरह सीमाप्रान्त के नेताओं से भी परामर्श करना था। इसके अलावा श्री हरेकृष्ण मेहताब की जगह शरत बाबू का नाम रखने का सवाल था। श्री मेहताब से वाइसराय के पत्र का उत्तर देने को कहा गया कि प्रान्त के प्रधानमंत्री तथा कांग्रेसजन के रूप में वह पूरी तरह कार्यसमिति के नियंत्रण में हैं। सवाल था कि क्या इनमें से प्रत्येक आपत्ति को इस सीमा तक बढ़ाया जाय कि उससे गतिरोध उत्पन्न हो जाय? क्या कोई मुसलमान ऐसा स्थान स्वीकार करेगा जो किसी कांग्रेसी हिन्दू का नाम वापस ले कर बनाया गया हो? इसके अलावा, कांग्रेस ने श्रीमती अमृतकौर का जो नाम उपस्थित किया, उसे भी अस्वीकार कर दिया गया। इस में कांग्रेस की मर्यादा का भी प्रश्न उठता था। कांग्रेस बड़ी पेचीदी स्थिति में थी। १८ जून को अंतरिम सरकार की योजना स्वीकार करने का निश्चय कर लिया गया। उस रात प्रस्ताव का मसविदा तैयार कर लिया गया और दूसरे दिन पंडित जवाहरलाल नेहरू काश्मीर चले गये तथा कुछ अन्य सदस्य दिल्ली के बाहर चले गये।

इसके बाद परिस्थिति एकाएक गम्भीर हो गयी। खान अब्दुल गफ्फार खाँ से परामर्श करने के बाद जनाब निश्तर-सम्बन्धी समस्या प्रथम कोटि की नहीं समझी गई। मेहताब-सम्बन्धी मामला इस तरह हल हुआ कि शरत् बाबू को नियुक्त करने की बात मान ली गई। लेकिन अगर कांग्रेस राष्ट्रवादी मुसलमान को न रखने की गुस्ताखी को पी जाती तो उसका राष्ट्रीय स्वरूप नहीं रह जाता। इसी अवसर पर श्री जिन्ना ने अंतरिम सरकार में राष्ट्रवादी मुसलमान को रखने के विरुद्ध चेतावनी दे कर इस प्रश्न पर और भी ध्यान आकृष्ट कर दिया और साथ ही इससे श्री इंजीनियर के चुने जाने को भी महत्व प्रदान कर दिया। इन्हीं दिनों 'स्टेट्समैन' ने वाइसराय तथा श्री जिन्ना के मध्य हुए पत्र-व्यवहार का रहस्योद्घाटन किया। लोकमत का झुकाव कुछ यह हुआ कि श्री जिन्ना अपनी हठधर्मी द्वारा कांग्रेस से एक-के-बाद एक रियायत प्राप्त कर रहे हैं। तब कांग्रेसी मुसलमान

के सम्मिलित न करने और एक सरकारी अफसर का नाम सूची में सम्मिलित करने के प्रश्नों पर अधिक गौर किया गया और उन्होंने पहले की अपेक्षा अधिक महत्व धारण कर लिया। अनुपस्थित सदस्यों को फिर बुलाया गया, क्योंकि दोनों ही बातों पर फिर से विचार करना अनिवार्य हो गया था। कार्य-समिति के कंधों पर राष्ट्र की जिम्मेदारी थी और वह किसी समस्या का फैसला खीझकर या निराशा के वशीभूत होकर कर सकती थी। सूची में निश्तर के सम्मिलित करने, मेहताब तथा इंजीनियर को बिना सलाह किये रख लेने और राष्ट्रवादी मुसलमान और एक कांग्रेसी महिला को न रखने के सम्बन्ध में गांधीजी के दृढ़ विचार स्पष्ट थे। कुछ सोच-विचार के बाद कार्य-समिति भी गांधीजी के ही मत पर आ गयी।

वाइसराय की हठधर्मी

२१ जून को कांग्रेस के अध्यक्ष ने वाइसराय से श्री जिन्ना-द्वारा उन्हें लिखे गये पत्रों और उन पत्रों के वाइसराय-द्वारा लिखे उत्तरों की प्रतिलिपि मांगी। ये पत्र अंतरिम सरकार में एक कांग्रेसी हिन्दू सदस्य के स्थान पर एक मुस्लिम सदस्य नामजद करने के कांग्रेस के अधिकार के सम्बन्ध में थे। वाइसराय ने पत्रों की प्रतिलिपि नहीं दी। समाचारपत्रों में छपा था कि श्री जिन्ना ने वाइसराय से कुछ प्रश्न किये हैं। वाइसराय ने इन कथित प्रश्नों के उत्तरों के उद्धरण दिये। उनसे इस बात की पुष्टि होती थी कि वाइसराय इस समस्या के सम्बन्ध में पूर्णतः श्री जिन्ना के साथ हैं। वाइसराय का यह रुख उनके उस दृष्टिकोण से बिलकुल भिन्न था, जिस का परिचय उन्होंने श्री निश्तर के अंतरिम सरकार में सम्मिलित करने की समस्या को लेकर मौलाना आजाद को लिखे गये अपने पत्र में दिया था। इस पत्र में वाइसराय ने लिखा था कि जिस प्रकार लीग कांग्रेस-द्वारा नामजद किसी व्यक्ति का विरोध नहीं कर सकती, उसी प्रकार कांग्रेस भी लीग-द्वारा नामजद किसी व्यक्ति के अंतरिम सरकार में सम्मिलित किये जाने पर आपत्ति नहीं कर सकती। यदि १४ जून तक यह स्थिति थी तो समझ में नहीं आता कि २१ जून या २२ जून को वाइसराय यह कैसे कह सकते थे कि कांग्रेस अंतरिम सरकार के लिये किसी मुसलमान का नाम उपस्थित करने के लिये स्वतंत्र नहीं है। वाइसराय का यह कथन इसलिए और भी आपत्तिजनक था कि ऐसा वे श्री जिन्ना के आपत्ति करने पर कह रहे थे। इसके अलावा वाइसराय ने पहले कांग्रेस को यह भी आश्वासन दे दिया था कि यदि कांग्रेस जाकिर हुसेन का नाम पेश करेगी तो उस पर आपत्ति न की जायगी। यह कहने के बावजूद भी वाइसराय ने अपने २२ जून के पत्र में कांग्रेस के अध्यक्ष के अनुरोध को अस्वीकार कर लिया।

सिर्फ यही नहीं, श्री जिन्ना के प्रश्नों से कुछ नयी बातें भी उठती थीं। यदि एक तरफ वाइसराय समान-प्रतिनिधित्व की बात से इन्कार कर रहे थे तो दूसरी तरफ श्री जिन्ना परिगणित जातियों का प्रतिनिधित्व कांग्रेस से अलग चाहते थे और अल्पसंख्यकों के चार प्रतिनिधियों में एक स्थान उसे भी देना चाहते थे। इस तरह कांग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या सिर्फ ५ कर दी गयी थी और कांग्रेस को हिन्दू-संस्था घोषित कर दिया गया था। इससे यह भी जाहिर होता था कि परिगणित जातियों का कांग्रेस या हिन्दुओं से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। परन्तु अंतरिम सरकार में अल्पसंख्यकों के स्थानों में से कोई स्थान रिक्त होने पर निषेधात्मक अधिकार श्री जिन्ना को सौंप दिया जायगा। इसके अलावा शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में अंतरिम सरकार में सामूहिक बहुमत का नियम लागू होगा। इस तरह अंतरिम सरकार की स्थिति वाइसराय की शासन-परिषद् से भी बुरी हो गयी थी। सच तो यह है कि १६ मई के वक्तव्य से पूर्व जो भी बातें कही गयी थीं अब उनका कुछ भी महत्व नहीं था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे प्रत्येक विषय में वाइसराय श्री जिन्ना के साथ हों।

मंत्रि-मिशन का कार्य

समिति ने साहस करके २३ जून को विधान-परिषद् में जाने का फैसला कर ही लिया। फिर भी जब मिशन और वाइसराय को कांग्रेस का निर्णय बताया गया तब प्रत्येक क्षेत्र में हर्ष की लहर दौड़ गई। कांग्रेसी हलकों में सन्तोष इस बात पर था कि लीग ने 'अल्पसंख्यकों' और 'समान प्रतिनिधित्व' के सवाल उठा कर कांग्रेस के लिए जो बेड़ियां तैयार की थीं उनसे वह बच गई। सरकारी अधिकारियों को यह खुशी थी कि आखिर कांग्रेस को विधान-परिषद् में लाने पर उन्हें सफलता मिल ही गई। लीगी हलकों की प्रसन्नता का कारण यह था कि ऐसी अन्तरिम सरकार बन रही थी, जिसमें कांग्रेस नहीं होगी। परन्तु लीग की आंखों पर पड़ा पर्दा शीघ्र ही उठ गया। सरकार की तरफ से २७ जून का वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसमें बातचीत स्थगित करने की घोषणा की गई थी। दूसरे लफ्जों में इसका यही अर्थ हुआ कि १६ जून का वक्तव्य रद्द किया जाता है, क्योंकि कांग्रेस १६ मई का वक्तव्य स्वीकार कर चुकी थी। तब श्री जिन्ना ने १६ जून के वक्तव्य की आठवीं धारा पूरी करने पर जोर दिया, जिसमें कहा गया था कि यदि अन्तरिम सरकार में कोई अथवा दोनों दल जाने से इन्कार करेंगे तब परिषद् में रिक्त स्थानों को उन दलों के प्रतिनिधियों से भर दिया जायगा, जो १६ मई के वक्तव्य को स्वीकार करेंगे। कांग्रेस इस वक्तव्य को तो स्वीकार करती थी, किन्तु उसने अन्तरिम सरकार में जाने से इन्कार कर दिया था। मिशन ने ऐसी स्थिति का अनुमान नहीं किया था और इसीलिए उसने ब्रिटिश मन्त्रि-मंडल से परामर्श किया।

तब मिशन ने २७ जून का वक्तव्य प्रकाशित किया और वह २९ जून को इंग्लैंड के लिए रवाना हो गया। परन्तु जाने से पूर्व मिशन की श्री जिन्ना से बातचीत हुई। श्री जिन्ना ने विधान-परिषद् स्थगित करने का अनुरोध किया, क्योंकि परिषद् और अन्तरिम सरकार की योजनाएँ परस्पर सम्बद्ध थीं। परन्तु मिशन ने परिषद् को स्थगित करना अस्वीकार कर दिया। वाइसराय ने कहा कि वह धारा ८ के अनुसार कार्य करेंगे। इससे सम्भवतः कुछ समय बीतने पर अन्तरिम सरकार स्थापित होने की पृष्ठभूमि तैयार हो जायगी।

कार्य-समिति की बैठक

अब बातचीत में व्यस्त सभी प्रतिनिधियों के अपने दलों को सूचित करने का समय आया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक ६ और ७ जुलाई को बम्बई में हुई। उसके सामने एक पंक्ति का प्रस्ताव रखा गया, जिसमें ब्रिटिश सरकार से हुए समझौते की पुष्टि की गई। प्रस्ताव में संशोधन के लिए स्थान नहीं था, क्योंकि प्रतिनिधि समझौता कर चुके थे और कांग्रेस को उस समझौते की सिर्फ पुष्टि ही करनी थी। समझौते को स्वीकार अथवा अस्वीकार ही किया जा सकता था। कमेटी ने ५१ के विरुद्ध २०५ वोटों से प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इसी अवस्था में धारा-सभाओं ने विधान-परिषद के सदस्यों के चुनाव शुरू कर दिये और जुलाई १९४६ तक चुनाव समाप्त भी हो गये।

लीग की प्रत्यक्ष कार्रवाई

जुलाई के अंत में प्रतिक्रिया यह हुई कि लीग ने अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन योजनाओं में भाग लेने से इन्कार कर दिया। लीग ने १६ अगस्त 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' (डाइरेक्ट ऐक्शन) का दिवस घोषित किया और ऐसा जान पड़ने लगा कि सरकारी कार्रवाई भी आरम्भ हो गयी। ६ अगस्त को वाइसराय ने कांग्रेस के अध्यक्ष से अंतरिम सरकार के निर्माण में सहयोग करने का अनुरोध किया। वाइसराय ने कहा कि ऐसा निर्णय सम्राट् की सरकार की सहमति से हुआ है। कार्यसमिति की बैठक ने वर्धा में इस प्रस्ताव पर विचार किया और १२ अगस्त क सायंकाल ७ बजे वाइसराय के प्रस्ताव और कांग्रेस-अध्यक्ष-द्वारा उसकी स्वीकृति की घोषणा कर दी गयी। इसके बाद घटना-चक्र बड़ी तेजी से घूमा। कार्यसमिति ने प्रस्ताव पास किया, जिसमें लीग से मधुर शब्दों में अंतरिम सरकार के निर्माण में सहयोग की अपील की गयी। राष्ट्रपति ने तुरंत लीग के अध्यक्ष को इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखा। कार्यसमिति के प्रस्ताव की श्री जिन्ना पर जो प्रतिक्रिया हुई, वह अप्रत्याशित न थी। उसमें उन्हें नये गुम्बद में पुराना चिराग ही दिखायी दिया। वाइसराय ने इस बार श्री जिन्ना को जो सीधे नहीं लिखा उसका कारण

श्री जिन्ना का प्रत्यक्ष 'कार्रवाई' की धमकी ही थी। बंगाली सरकार ने प्रत्यक्ष कार्रवाई' मनाने के लिए १६ अगस्त को सार्वजनिक छुट्टी कर दी। कलकत्ता और सिलहट में गम्भीर उपद्रव हुए। कलकत्ता की सड़कों पर रक्त की नदियां बह गईं। मोटे हिसाब से ७००० के लगभग व्यक्ति मारे गये और बहुसंख्यक घायल हुए। कलकत्ता की तुलना में अन्य स्थानों की घटनाओं की तरफ किसी का ध्यान ही नहीं गया। सिलहट और ढाका में भी लोग हताहत हुए। प्रतिशोध बहुत उग्र था और मूल उपद्रव की तुलना में वह कहीं अधिक भयानक था। "एक के बदले तीन" की इस नीति से नोआखाली और टिपरा में जनता उत्तेजित हो उठी। इन दोनों ही जिलों में मुसलमान बहुसंख्यक और हिन्दू अल्पसंख्यक हैं। नोआखाली में उनका अनुपात १८ लाख और ४ लाख का है। पूर्वी बंगाल के इन दोनों जिलों में अपराध जितनी भयानकता से हुए थे उसे देखते हुए हताहतों की संख्या अधिक न थी। नारी-निर्यातन, बलपूर्वक विवाह, जबरन धर्म-परिवर्तन, घरों को आग लगा देने, उन पर सामूहिक हमले और प्रसिद्ध परिवारों के इन हमलों में शिकार होने से पूर्वी बंगाल में जो अविश्वास फैल गया था वह तीन वर्ष पूर्व अकाल में हुई सामूहिक मृत्युओं से भी कहीं अधिक भीषण था। पूर्वी बंगाल से कितने ही हिन्दू भाग कर बिहार आये और वहां अत्याचारों की अनेक कहानियां फैल गयीं। इस से बिहारी जनता प्रतिशोध के लिए पागल हो उठी। इस अप्रत्याशित और भीषण परिस्थिति से कांग्रेस तथा प्रत्येक समझदार कांग्रेसजन का अंतःकरण चीत्कार कर उठा और जब कि गांधीजी पूर्वी बंगाल की जनता में धैर्य की भावना भरने और बाहर गये लोगों को उनके घरों में फिर वापस बुलाने के लिए गये तो दूसरी तरफ शासन-परिषद् के उपाध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू बिहार की परिस्थिति का नियंत्रण करने गये। किन्तु श्री जिन्ना ने कलकत्ता और पूर्वी बंगाल की घटनाओं के लिए कहीं भी खद नहीं प्रकट किया। गांधीजी और उनके साथी हिन्दू जनता से अपने मुसलमान पड़ोसियों की रक्षा की अपील कर रहे थे, किन्तु श्री जिन्ना ने अपने मुस्लिम अनुयायियों से हिन्दुओं की रक्षा के लिए ५ दिसम्बर, १९४६ तक एक शब्द भी नहीं कहा। समझा जा सकता ह कि १६ अगस्त से ६ दिसम्बर तक का अरसा कितना अधिक होता है। यह उस समय की बात है जब श्री जिन्ना अंतरिम सरकार में सहयोगपूर्वक कार्य करने और विधान-परिषद् में हिस्सा लेने की समस्या पर बातचीत करने के लिए लंदन गये थे। वे बार-बार 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' का नारा दुहरा देते थे और उसका परिणाम बुरा होता था। इसकी लहर शीघ्र उत्तर प्रदेश पहुंची। गढ़मुक्तेश्वर में उपद्रव हुआ, जिसकी प्रतिक्रिया डासना में हुई। मेरठ शहर में, जहां कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था, कांग्रेस के पंडाल को किसी ने आग लगा दी, जिसके परिणाम-स्वरूप अधिवेशन डेलीगेटों तक सीमित कर दिया गया। मेरठ शहर में कुछ ऐसी घटनाएं हुई,

जैसी पहले कभी नहीं सुनी गई थीं। इसकी गूँज जिलों में भी सुनायी देने लगी। दिसम्बर, १९४६ के प्रथम सप्ताह में जब वाइसराय तथा कांग्रेस और लीग के प्रतिनिधि लंदन में थे, अहमदाबाद में ३७ घंटे का कर्फ्यू लगा था, बम्बई में छुरों के वारों का अंत होता नहीं दिखायी देता था और ढाका में साम्प्रदायिक उपद्रवों ने पुरानी बीमारी का रूप धारण कर रखा था। इन घटनाओं के कारण आगे की प्रगति रुकने की आशंका हो चली थी और इसीलिए लंदन में बातचीत की जरूरत पड़ी थी। पहले तो कांग्रेस ने इस बातचीत में भाग लेने से इन्कार कर दिया, किन्तु ब्रिटिश प्रधानमंत्री से आश्वासन मिलने पर पंडित जवाहरलाल अकेले ही गये और फिर ९ दिसम्बर को विधान-परिषद में सम्मिलित होने के समय तक वापस आ गये।

गांधीजी की नोआखाली-यात्रा

दुःख और दर्द की घटनाओं, परिवारों के समाप्त हो जाने, स्त्रियों के जबरन भगाये और बलात्कार किये जाने के इस दुःखद कांड के मध्य, हमें आशा की केवल एक ही किरण दिखायी देती थी। हमें बंगाल की दलदल से भरी भूमि में एक व्यक्ति 'अकेला, मित्रहीन और उदास' आगे बढ़ता हुआ दिखायी देता था, जो हजारों परिवारों-द्वारा छोड़े हुए घरों को देखता हुआ आगे बढ़ता जाता था। इस व्यक्ति के हाथ में आशा और शान्ति की ज्योति थी। वह जनता से भय का त्याग करने और हृदय में विश्वास बनाये रखने का उपदेश करते थे। उन्होंने कहा कि अपना विश्वास या उत्साह खोने से तो अच्छा पूर्वी बंगाल की दलदलों पर मर-खप जाना है। उनके हाथ में जगी हुई अहिंसा की ज्योति का प्रकाश दूर-दूर तक फैल रहा था, किन्तु वह कायरता से हिंसा को अच्छा मानते थ। गांधीजी पूर्वी बंगाल में चट्टान की तरह अचल थे। उनके मित्र उनके उद्देश्य पर सन्देह करते थे और शत्रु उन्हें ताने देते थे, लेकिन वह हमेशा शहीद बनने के लिये तैयार होकर मनुष्यमात्र में भाई-चारे और सद्भावना का उपदेश देते थे।

अंतरिम सरकार की स्थापना

१७ अगस्त को पंडित जवाहरलाल वाइसराय से मिले और वापस आकर उन्होंने अपने तीनों साथियों से परामर्श किया। इस प्रकार अंतरिम सरकार के सदस्यों की प्रस्तावित सूची तैयार हो गयी। अब आवश्यकता सिर्फ एन० वी० इंजीनियर के स्थान पर नया नाम चुनने और लीगियों की जगह पांच राष्ट्रीय मुसलमान चुनने की थी। जब वाइसराय को यह सूची दे दी गई तब शनिवार २४ अगस्त को उन्होंने नामों की घोषणा कर दी और २ सितम्बर से नयी सरकार ने शपथ ले ली। २४ अगस्त की सायंकाल के समय भाषण करते हुए वाइस-

राय ने एक बार मुस्लिम लीग को अंतिरिम सरकार में सम्मिलित होने का फिर निमंत्रण दिया।

२४ अगस्त को भाषण देने के उपरान्त वाइसराय अपनी आंखों से परिस्थिति का निरीक्षण करने कलकत्ता गये। वह 'साम्राज्य के इस दूसरे नगर' में हुए अत्याचारों से ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने कांग्रेस से परिस्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने का अनुरोध किया। उन्होंने कांग्रेस से अपने वर्धा के निश्चय में परिवर्तन करने का अनुरोध किया और कहा कि प्रान्तों-द्वारा समूह में सम्मिलित होने के सम्बन्ध में कांग्रेस को मिशन की व्याख्या स्वीकार कर लेनी चाहिए कि एकबार समूह बन जाने पर कोई प्रान्त उससे तब तक पृथक् न हो सकेगा जब तक कि नये विधान के अन्तर्गत उस प्रान्त की निर्वाचित धारासभा ऐसा निश्चय न करे। यही नहीं, बल्कि वाइसराय ने कुछ कड़ा रुख भी ग्रहण किया और कहा कि यदि ऐसी बात नहीं की जाती तो वह विधान परिषद् ही न बुलायेंगे। परन्तु, बाद में वाइसराय संभल गये और २ सितम्बर को अंतरिम सरकार की स्थापना हो गई।

जिस दिन अंतरिम सरकार, जिसे अस्थायी राष्ट्रीय सरकार कहना अधिक उचित होगा, स्थापित हुई उस दिन सभी विचार करने लगे कि भारत को स्वाधीनता प्रदान करने का जो वचन दिया था उसकी पूर्ति किस सीमा तक हुई। अठारहवीं शताब्दी में मेकाले ने भारत को स्वशासन मिलने के दिन को ब्रिटिश साम्राज्य का सब से गौरवपूर्ण दिन कहा था और उसके लिए भूमि तैयार की थी। इसके उपरान्त १८८५ में देश के विभिन्न वर्गों को एक ही झंडे के नीचे लाकर स्वाधीनता का बीजारोपण श्री डब्लयू० सी० बनर्जी ने किया। १८९८ में मद्रास में श्री आनंदमोहन बोस ने 'प्रेम और सेवा' द्वारा पौधे को सींचा। १९०६ में दादाभाई नवरोजी ने कलकत्ता में उस वृक्ष को स्वराज्य का नाम दिया। १९१७ में वह वृक्ष फूला। १९२९ में उसमें पूर्ण स्वराज्य का फल लगा। इस अवसर पर बागवां जवाहरलाल थे। ये सभी राष्ट्रीय सरकार के लक्ष्य तक पहुंचने की विभिन्न अवस्थाएं थीं। निस्संदेह फल लग चुका था, किन्तु उसे प्राप्त करना बाकी था। स्वराज्य का फल उसे प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले की गोद में स्वयं गिर नहीं पड़ता, उसे पकाने के लिए चतुर मालियों की आवश्यकता होती है। स्वराज्य के फल को पकाने के लिए १४ माली अंतरिम सरकार के सदस्य के रूप में नियुक्त किये गये।

मेरठ-कांग्रेस : १९४६

इसी बीच मेरठ-कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। यद्यपि १६ जून, १९४५ को कार्य-समिति के सदस्य अहमदनगर किले से छोड़ दिए गये थे तथापि मेरठ का अधिवेशन

२३ नवम्बर, १९४६ को ही हो सका। इस बीच अध्यक्ष ने, अपना कार्यभार संभाल लिया और नई कार्य-समिति की भी नियुक्ति कर दी। परन्तु केन्द्र की अन्तर्कालीन सरकार में उनके पद-ग्रहण के कारण कांग्रेस के विधान के अनुसार बाकायादा नये चुनाव की आवश्यकता पड़ी और श्री जे० बी० कृपलानी नये अध्यक्ष चुन लिये गये। उन्होंने अपना भाषण हिन्दुस्तानी में दिया और विषय समिति तथा पूर्ण अधिवेशन दोनों ही अवसरों पर कांग्रेस की कार्यवाही का संचालन बड़ी योग्यता तथा सफलतापूर्वक किया। अधिवेशन के अन्त में उन्होंने अंग्रेजी में जो भाषण दिया वह एक आश्चर्यजनक वक्तृता थी। उसमें जहां एक तरफ यह बताया गया था कि अहिंसा को कहां तक सफलता मिली है अथवा सफलता नहीं मिली है वहां दूसरी तरफ यह कहा गया था कि लोगों से कितनी अहिंसा की आशा की जाती थी। आध घंटे तक जनता मंत्र-मुग्ध-सी उनकी गर्जना सुनती रही और उस पर इस भाषण का अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा।

मेरठ-अधिवेशन में कोई नई या ठोस बात नहीं हुई। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने दिल्ली की सितम्बर वाली बैठक में जो-कुछ किया था उसी की पुष्टि मेरठ के अधिवेशन में हुई। उसमें अंतर्कालीन सरकार में कांग्रेस के पद-ग्रहण को स्वीकार किया गया। परन्तु अधिवेशन की वास्तविक सफलता विधान-परिषद्वाला प्रस्ताव था, जिसमें कहा गया कि कांग्रेस 'स्वतंत्र एवं पूर्ण सत्ता-सम्पन्न राज्य' की समर्थक है। इससे प्रकट कर दिया गया कि भारत का भविष्य साम्राज्य के बाहर रहकर ही सुधर सकता है। अधिवेशन का सब से महत्वपूर्ण प्रस्ताव रियासतों के सम्बन्ध में था, जिसका भाव यह था :—

"कांग्रेस हमेशा से हिन्दुस्तान की रियासतों के सवाल को भारतीय स्वाधीनता के सवाल का एक हिस्सा मानती आई है। स्वाधीनता प्राप्त करने का समय निकट आने की वजह से यह सवाल और भी जरूरी हो गया है और उसका हल स्वाधीनता की पृष्ठभूमि का ध्यान रखते हुए होना चाहिए। परन्तु कांग्रेस को यह देखकर खेद हुआ है कि भारत की कुछ बड़ी रियासतें, जिन्हें शेष रियासतों के लिए उदाहरण उपस्थित करना चाहिए था, विशेष रूप से प्रतिक्रियापूर्ण तथा दमनकारी कार्यों की अपराधिनी रही हैं। ऐसी स्थिति में रियासतों की स्थिति गम्भीर होने के कारण कांग्रेस घोषणा करती है कि वह रियासतों में होनेवाले स्वाधीनता के संग्राम को भारत के व्यापक संघर्ष का अंग मानती है। रियासतों के लोग अपने यहां नागरिक स्वतंत्रता तथा उत्तरदायी शासन कायम करने के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं उनके प्रति कांग्रेस की सहानुभूति है।"

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि कांग्रेस ने रियासतों के प्रश्न को हरिपुरा के बाद पहली बार उठाया था। इस बार कांग्रेस ने नरेशों की निरंकुशता के स्थान पर राजनीतिक विभाग के षड्यंत्रों पर जोर दिया था और वह जो कार्य गुप्त रूप

से कर रहा था उस पर पहली बार विचार किया था। जहां तक रचनात्मक क्षेत्र का सम्बन्ध है, कांग्रेस के सामने बड़ा कठिन तथा महान् कार्य पड़ा था। हाल में हिंसा, हत्याकांड, आगजनी, नारी-निर्यातन तथा बलात्कार की जो घटनायें हुई थीं उनसे हुई हानि की पूर्ति कांग्रेस को करनी थी। भाषणकर्ताओं ने इस विषय पर अपना मत गम्भीरतापूर्वक प्रकट किया ताकि लोगों में जोश न फैले। इस तरह प्रत्येक दृष्टिकोण से मेरठवाले अधिवेशन को सिर्फ सफल ही नहीं कहा जा सकता, बल्कि उसे आगामी अधिवेशनों के लिए उदाहरण-स्वरूप भी कहा जा सकता है। विधान-समिति ने अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी के विचार के लिए जो प्रस्ताव उपस्थित किये थे उनमें अधिवेशन की तड़क-भड़क बन्द करने तथा उसमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के ही उपस्थित होने की बात थी और इस सम्बन्ध में कुछ असन्तोष भी था। मेरठ-अधिवेशन एक प्रकार से मध्य का मार्ग था। इसमें प्रतिनिधि तो आये थे; किन्तु दर्शकों को बाहर निकाल दिया गया था। पुराने विधान के अन्तर्गत मेरठ का अधिवेशन अन्तिम था। मेरठ भारत के इतिहास में एक स्मरणीय नाम है। विद्रोह की चिनगारी पहले-पहल मेरठ में उठी थी, और मेरठ में ही भारत के 'स्वतन्त्र एवं पूर्ण सत्ता-सम्पन्न प्रजातन्त्र' की घोषणा की गयी। भारतीय राज-क्रान्ति की पहली हिंसापूर्ण लड़ाई (१८५७) के बाद गवर्नर-जनरल वायसराय बना था, दूसरी (अहिंसापूर्ण) लड़ाई के बाद भारत से वायसराय का नाम-निशान मिट गया।

लीग का मत

अब हम फिर अंतरिम सरकार की ओर आते हैं। अंतरिम सरकार पहले लीग के प्रतिनिधियों के बिना और फिर उन्हें सम्मिलित करके स्थापित हुई। लीग के सम्मिलित होने के समय विश्वास किया जाता था कि वह मिशन की दीर्घ-कालीन योजना से भी सहमत है और विधान-परिषद् में बिना हिचक के सम्मिलित हो जायगी। ऐसा अंतरिम सरकार में सम्मिलित होने की मूल शर्तों के कारण नहीं, बल्कि लीग की तरफ से लार्ड वेवल-द्वारा दिये गये आश्वासन के कारण समझा जाता था। परन्तु अंतरिम सरकार में सम्मिलित होने के कुछ ही समय बाद लीग के नेता ने घोषणा की कि लीग विधान-परिषद् में सम्मिलित नहीं होगी और वह अभी तक पाकिस्तान तथा दो विधान-परिषदों की अपनी मूल मांग पर कायम है।

प्रतिनिधियों की लंदन-यात्रा

यही स्थिति थी कि एकाएक ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने कांग्रेस तथा लीग के दो-प्रतिनिधियों तथा अंतरिम सरकार के सिख-प्रतिनिधि को विधान-परिषद् के

सम्बन्ध में बातचीत के लिए लंदन बुलाया। कांग्रेस की पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि इस निमंत्रण को स्वीकार न किया जाय, क्योंकि उसका मत था कि विधान-परिषद् का सम्बन्ध भारत के लिये विधान-निर्माण करने से है—इसलिये परिषद् सम्बन्धी प्रत्येक बात का फैसला लंदन में न होकर भारत में और भारतीयों-द्वारा होना चाहिये। इसी कारण भारत में मंत्रि-मिशन भेजने के विचार का स्वागत किया गया था। कांग्रेस की तरफ से कहा गया कि यदि ब्रिटिश मंत्री इस विषय पर फिर कोई बात करना चाहते हैं तो उन्हें भारत आ जाना चाहिए। परन्तु प्रधानमंत्री श्री एटली के आश्वासन देने पर पंडित जवाहरलाल ने इस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। २९ नवम्बर को वह लन्दन गये। पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार बलदेवसिंह इंग्लैंड में थोड़े ही दिनों रहे। भारत से आये मेहमानों से अलग और एक साथ मिलने के उपरान्त ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने सभी भारतीय मेहमानों को आमंत्रित किया और उनके मध्य अपना ६ सितम्बर का प्रसिद्ध वक्तव्य पढ़कर सुनाया, जिसने भारतीय राजनीति में फूट का एक बीज बो दिया। इस घोषणा के सम्बन्ध में भारतीय नेताओं से पहले कोई परामर्श नहीं किया गया और कांग्रेस तथा सिखों के प्रतिनिधि तुरन्त वापिस आ गये, क्योंकि ९ दिसम्बर को विधान-परिषद् का अधिवेशन आरम्भ हो रहा था।

वक्तव्य का उद्देश्य

ब्रिटिश मंत्रिमंडल के मतानुसार लंदन में हुई बातचीत का उद्देश्य विधान-परिषद् में सम्मिलित होने के लिए विभिन्न दलों का सहयोग प्राप्त करना था। साथ ही यह भी माना गया था कि भारतीय प्रतिनिधि अपने साथियों से सलाह किये बिना किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सकते थे। मुख्य कठिनाई मंत्रि-मिशन के १६ मई के वक्तव्य पैरा १९ (५) और (८) के सम्बन्ध में थी। पहले पैरे का सम्बन्ध समूह बनाने और दूसरे का समूह से प्रान्तों के पृथक् होने से था। वक्तव्य में बताया गया कि समूह बनाने के लिए बहुमत के सम्बन्ध में मंत्रि-मिशन का क्या मत था। इस में इस बहुमत को भाग (सेक्शन) का बहुमत कहा गया। दूसरे शब्दों में वोट प्रान्तों के अलग-अलग नहीं होंगे, बल्कि व्यक्तियों के होंगे। मंत्रि-मिशन ने लंदन में प्राप्त कानूनी सलाह-द्वारा अपने मत की पुष्टि भी प्राप्त कर ली थी। फिर वक्तव्य में कहा गया था कि "वक्तव्य के इस अंश को इसी अर्थ के साथ १६ मई की योजना का एक आवश्यक अंग समझा जाना चाहिए, जिससे भारतीय राष्ट्र एक ऐसा विधान तैयार कर सके, जिसे सम्राट् की सरकार पार्लमेंट में पेश करने में तत्पर हो सके।" इसलिए विधान-परिषद् के सभी दलों को उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। मंत्रिमंडल ने कांग्रस से मंत्रि-मिशन का यह मत स्वीकार करने का अनुरोध किया, जिससे मुस्लिम-लीग अपने रुख पर फिर से विचार

कर सके। साथ ही मंत्रिमंडल ने यह भी सिफारिश की कि यदि इस आधारभूत तथ्य के सम्बन्ध में संघ-अदालत को निर्णय के लिए कहा जाय तो ऐसा तुरन्त होना चाहिए और निर्णय होने तक परिषद् के समूहों की बैठक स्थगित रखी जाय।

कांग्रेस का मत

जिस समय लन्दन से कांग्रेस तथा सिखों के प्रतिनिधि लौटे उस समय ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल का वक्तव्य प्रकाशित हो गया था। लेकिन कांग्रेस को इस सम्बन्ध में निश्चय करने में कुछ समय लग गया। मन्त्रिमण्डल ने कांग्रेस से वक्तव्य को स्वीकार करने का अनुरोध उचित परिस्थिति में नहीं किया। यदि दो दल किसी विशेष परिस्थिति में कोई समझौता करते हैं और इस समझौते का मसविदा तैयार किया जाता है तो एक दल द्वारा उस समझौते की शर्त में परिवर्तन करना और फिर दूसरे दल से उसे स्वीकार करने का अनुरोध करना अनुचित ही कहा जायगा। ब्रिटिश सरकार ने वक्तव्य का मनमाना अर्थ लगाया और इस अर्थ को समझौते का आवश्यक अंग बना दिया और फिर कांग्रेस को धमकी दी कि यदि वह इस अर्थ को स्वीकार नहीं करती तो ब्रिटिश सरकार विधान-परिषद्-द्वारा तैयार किया गया विधान पार्लमेण्ट के आगे उपस्थित ही नहीं करेगी। ब्रिटिश सरकार की यह धमकी नियम-विरुद्ध ही नहीं, बल्कि नैतिक दृष्टि से विश्वासघात ही था।

इस त्रिदलीय झगड़े में अन्य दो दल चाहे जो करते, लेकिन कांग्रेस का कर्तव्य बिल्कुल स्पष्ट था। सवाल था कि ६ दिसम्बरवाले वक्तव्य में झगड़ा संघ-अदालत के सुपुर्द करने का जो सुझाव किया गया था वैसा किया जाय या नहीं? पहली इच्छा यही होती थी कि ऐसा न किया जाय। परन्तु कांग्रेस कार्यसमिति ने ऐसा करने का निश्चय किया। लंदन के पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन में श्री जिन्ना ने मामला संघ-अदालत के सुपुर्द किये जाने की अवस्था में उसका निर्णय मानने से इन्कार कर दिया, क्योंकि वह इसे वक्तव्य का महत्वपूर्ण अंश समझते थे। फिर भी कार्य-समिति अपने निश्चय से हटी नहीं। कहा गया कि विधान-परिषद् के अध्यक्ष इस सम्बन्ध में पहले एक घोषणा करेंगे, फिर परिषद् एक प्रस्ताव पास करेगी और अंत में परिषद् के अध्यक्ष संघ-अदालत के समक्ष एक अर्जी पेश करेंगे।

पैथिक लारेंस का वक्तव्य

यह निश्चय ही था कि १७ दिसम्बर के दिन लार्ड पैथिक-लारेंस ने लार्ड-सभा में भाषण करते हुए निम्न शब्द कहे:—"मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि यह सवाल ऐसा नहीं है, जो ब्रिटिश सरकार की राय में संघ-अदालत के समक्ष उपस्थित करने योग्य हो। ६ दिसम्बर के वक्तव्य में यह स्पष्ट कर दिया गया था और ब्रिटिश सरकार जो अर्थ ठीक समझती है वह भी बता दिया गया था। सरकार

का मत है कि सभी दलों को यह अर्थ स्वीकार कर लेना चाहिए। सरकार संघ-अदालत की चर्चा सिर्फ इसीलिए करती है कि विधान-परिषद इस विषय को संघ-अदालत के सुपुर्द करना चाहती है। कांग्रेस ने यही मत प्रकट किया था। ऐसा तुरंत होना चाहिए। मैं यह बिल्कुल स्पष्ट करना चाहता हूं कि सम्राट् की सरकार १६ मई के वक्तव्य के सम्बन्ध में अपनी व्याख्या पर कायम है और संघ-अदालत से अपील करने पर भी उसका इरादा इस अर्थ से हटने का नहीं है। मुझे आशा है कि ऐसा समझौता हो जायगा, जिससे दोनों दलों की आशंका मिट सके।"

कार्य-समिति का वक्तव्य

अब कांग्रेस बड़ी दुविधा में पड़ गयी। विधान-परिषद् के कांग्रेसी दल ने यह मामला कार्य-समिति के विचार के लिए छोड़ दिया और कार्य-समिति ने कई दिन और रात इस समस्या पर सोच-विचार करने में बिताये। यदि ६ दिसम्बर का वक्तव्य नहीं माना जाता तो समूहों के लिए पृथक् विधान-परिषद् बन जाती और आसाम तथा सीमाप्रान्त के उस परिषद् में सम्मिलित होने या न होने का भी कोई प्रभाव न पड़ता। इस तरह लीग का मनचीता ही होता। कार्य-समिति को इन सब बातों पर विचार करना था। मेरठ में कांग्रेस का अधिवेशन हुए अभी एक महीना भी नहीं हुआ था। इसमें कार्य-समिति तथा सम्राट् की सरकार के मध्य हुई सम्पूर्ण व्यवस्था को कांग्रेस स्वीकार कर चुकी थी, किन्तु अब अनेक पेचीदगियों से भरी नयी परिस्थिति उपस्थित थी। कांग्रेस-अधिवेशन में हुए निश्चयों पर केवल अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ही विचार कर सकती थी। अतः कार्य-समिति ने यह मामला उसी के सुपुर्द कर दिया। ५ जनवरी १९४७ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। कार्य-समिति ने २२ दिसम्बर, १९४६ को एक विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें १६ मई से अब तक की घटनाओं पर विचार करते हुए यह कहा गया कि कार्य-समिति को खेद है कि ब्रिटिश सरकार ने ऐसा आचरण किया है, जो उसके अपने आश्वासनों के विरुद्ध है और जिससे भारत की बहुसंख्यक जनता के मन में संदेह उत्पन्न हो गया है। इधर कुछ समय से ब्रिटिश सरकार तथा उनके भारत-स्थित प्रतिनिधियों का रुख ऐसा रहा है, जिससे देश की परिस्थिति की कठिनाइयां और पेचीदगियां बढ़ गयी हैं। विधान-परिषद् के सदस्यों के चुनाव के इतने समय बाद उन्होंने जो हस्तक्षेप किया है इससे भविष्य में संकट उत्पन्न हो सकता है। उसमें यह भी कहा गया कि समिति विधान-परिषद् को भारत की जनता की पूर्ण प्रतिनिधि बनाने के लिए अपने प्रयत्न जारी रखेगी और उसे विश्वास है कि मुसलिम लीग के सदस्य उसे इस विषय में सहयोग प्रदान करेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समिति ने परिषद् के कांग्रेसी प्रतिनिधियों को महत्वपूर्ण विषयों पर सोच-विचार के लिए अगली बैठक के लिए स्थगित करने की

सलाह दी है। उसका अब भी यही मत है कि भागों (सेक्सनों) में मत लिए जाने के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार ने जो अर्थ लगाया है वह प्रान्तीय स्वशासन के अधिकारों के विरुद्ध है—उसी प्रान्तीय स्वशासन के, जो १६ मई के वक्तव्य में प्रस्तावित योजना का मूल सिद्धान्त है। समिति कोई ऐसी बात नहीं करना चाहती, जिससे विधान-परिषद् का कार्य सफलतापूर्वक चलने में बाधा पड़ने की सम्भावना हो। देश के सामने उपस्थित समस्याओं के महत्व को ध्यान में रखते हुए और होनेवाले निर्णयों के जो परिणाम हो सकते ह उनका अनुमान करते हुए समिति जनवरी में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक दिल्ली में बुला रही है जिससे उचित निर्देश प्राप्त किया जा सके।

कांग्रेस-कमेटी का निर्णय

१९४७ का नया साल कांग्रेस और देश के लिए महान् घटनाएं लेकर शुरू हुआ। ५ जनवरी को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन यह विचार करने के लिए हुआ कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल का ६ दिसम्बर का वक्तव्य स्वीकार किया जाय या नहीं। यदि वक्तव्य को अस्वीकार किया जाता है तो इसका मतलब यह हुआ कि कांग्रेस १६ मई के वक्तव्य से भी सम्बन्ध त्यागती है और इस प्रकार मुस्लिम लीग को विधान-परिषद् में सम्मिलित होने का अवसर नहीं दे सकती। मुस्लिम लीग को समूह 'बी' और 'सी' का विधान तैयार करने और उनके लिए एक केन्द्र स्थापित करने में कठिनाई होती और इसीलिए वह ब्रिटेन से नयी योजना मांगती, जो ब्रिटेन उसे सहर्ष दे देता। परन्तु यदि वक्तव्य को स्वीकार करना था तब भी उतने ही बुरे खतरों का सामना होना था। उस हालत में श्री जिन्ना की हेकड़ी उठकर आसमान से छू जाती और वह कुछ और भी शर्तें मंजूर करा लेते। इनमें एक शर्त समूह की सेना रखना होती और यदि कोई विदेशी सेना आक्रमण करती तो यह उसके साथ मिलकर देश की सेना को पराजित करने की चेष्टा करती। यही नहीं, जिन्ना साहब धारा-सभा, सेना और नौकरियों में आधे स्थान अपने लिए मांगते। इन सभी परिस्थितियों को मद्दनजर रखते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने बहुमत से कार्य-समिति के सुझाव को स्वीकार कर लिया और यह यहीं समाप्त होगया। कमेटी का प्रस्ताव इस प्रकार है:—

"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पिछले नवम्बर के मेरठ-अधिवेशन से अब तक होनेवाली घटनाओं, ब्रिटिश मंत्रिमंडल के ६ दिसम्बर के वक्तव्य और कार्य-समिति के २२ दिसम्बर, १९४६ वाले वक्तव्य पर विचार करने के बाद कांग्रेस को निम्न सलाह देती है:—

(१) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कार्यसमिति के २२ दिसम्बर, १९४६ के वक्तव्य की पुष्टि करती है और उसमें प्रकट किये विचारों से सहमति प्रकट करती है।

(२) यद्यपि कांग्रेस विवादास्पद प्रश्न की व्याख्या का मामला संघ-अदालत केषपुर्द करने के पक्ष में हमेशा से रही है; तथापि ब्रिटिश सरकार की हाल की घोज्ञणाओं को मद्देनजर रखते हुए अब ऐसा करना बिलकुल निरुद्देश्य और अवांछनीय समझती है। यदि सम्बन्धित दल निर्णय को स्वीकार करने को तैयार हों और यह आधार मानने को तैयार हों तभी यह मामला संघ-अदालत के सुपुर्द किया जा सकता है।

(३) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का यह दृढ़ मत है कि स्वतंत्र भारत के विधान का निर्माण भारतीय जनता-द्वारा और अधिक से अधिक विस्तृत मतैक्य के आधार पर होना चाहिए। इस कार्य में किसी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए और किसी प्रान्त-द्वारा दूसरे प्रान्त अथवा प्रान्त के भाग पर दबाव न डालना चाहिए। अखिल भारतीय कांग्रेस महसूस करती है कि कुछ सूबों में जैसे आसाम, बलोचिस्तान, सीमाप्रान्त, और पंजाब के सिखों के मार्ग में ब्रिटिश मिशन के १६ मई, १९४६ वाले वक्तव्य से, और खासकर ६ दिसम्बर, १९४६ वाले वक्तव्य की व्याख्या-द्वारा, कठिनाइयां उपस्थित की गयी हैं। जिन लोगों के साथ यह जबर्दस्ती की जा रही है उन पर दबाव डालने में कांग्रेस हिस्सा नहीं ले सकती। यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसे खुद ब्रिटिश सरकार ने मंजूर किया है।

(४) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी इस बात के लिए उत्सुक है कि विधान-परिषद् स्वाधीन भारत के लिए विधान बनाने का कार्य सभी सम्बन्धित दलों की सद्भावना से करे, जिससे व्याख्या की विभिन्नता से उठनेवाली कठिनाइयों को दूर किया जासके, और परिषद् सेक्शनों में अनुसरण की जानेवाली कार्य-पद्धति के विषय में भी ब्रिटिश सरकार की व्याख्या को स्वीकार कर ले। परन्तु यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि इसके कारण किसी प्रान्त पर अनुचित दबाव न पड़ना चाहिए और साथ ही पंजाब में सिखों के अधिकार भी सुरक्षित रहने चाहिए।

लीग का निर्णय

यद्यपि आशा यह की जाती थी कि मुस्लिम लीग ६ जनवरी को पास किये गये कांग्रेस के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए अपनी बैठक कुछ पहले बुलायेगी, तो भी लीग की बैठक विधान-परिषद् होने की तारीख के ९ दिन बाद २९ जनवरी को बुलायी गयी। इससे स्पष्ट था कि लीग का इरादा विधान-परिषद् में सम्मिलित होने का नहीं था।

लीग की कार्य-समिति ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के ६ जनवरी के प्रस्ताव को बेईमानी से भरी चाल और शब्दाडम्बर बताया, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार, मुस्लिम लीग और लोकमत को धोखा देना था। आरोप यह था कि सिद्धांतों तथा कार्य-पद्धति के विषय में जो निश्चय किये गये हैं वे १६ मई, १९४६ के वक्तव्य के क्षेत्र से परे हैं और कांग्रेस ने विधान-परिषद् को जैसा रूप दिया है वैसा देने का मंत्रि-मिशन का उद्देश्य कदापि न था। लीग की कार्य-समिति ने सम्राट् की सरकार से यह घोषणा करने को कहा कि मंत्रि-मिशन की योजना असफल हुई है। लीग ने यह भी मत प्रकट किया कि विधान-परिषद् के लिए जो चुनाव हुए हैं वे अनियमित हैं और परिषद् में हुई कार्यवाही और निश्चय भी अनियमित ही हैं।

एटली का वक्तव्य

२० फरवरी १९४७ को हाउस आफ कामन्स में बोलते हुए ब्रिटिश प्रधान-मंत्री श्री क्लेमेंट एटली ने जो कुछ कहा वह संक्षेप में इस प्रकार है :—

"बहुत समय से ब्रिटिश सरकार की नीति रही है कि भारत में स्वायत्त शासन की स्थापना कर दी जाय। इसी नीति के अनुसार भारतीयों को अधिकाधिक दायित्व सौंपा जाता रहा है और आज नागरिक शासन तथा सेनाओं की बागडोर बहुत हद तक भारतीय असैनिक तथा सैनिक अफसरों के ही हाथ है। सम्राट् की सरकार की धारणा है कि यही नीति उचित है। मंत्रि-मिशन के उद्देश्य तथा उसके कार्य का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि सम्राट् की सरकार के लिये यह खेद का विषय है कि अभी तक भारतीय दलों में मतभेद है जिसके कारण विधान-परिषद् का कार्य सुचारु रूप से चलने में बाधाएं उपस्थित हो रही हैं। सम्राट् की सरकार की यह इच्छा है कि मंत्रि-मिशन की योजना के अनुसार, भारत के विभिन्न दलों की स्वीकृति से बनाये गये विधान-द्वारा निश्चित अधिकारियों को अपना दायित्व सौंप दिया जाय। किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसे विधान तथा अधिकारियों का अस्तित्व इस समय सम्भव नहीं मालूम होता। वर्तमान अनिश्चित स्थिति विपद की आशंकाओं से परे नहीं है और ऐसी स्थिति अनिश्चित समय तक रहने भी नहीं दी जा सकती। सम्राट् की सरकार स्पष्ट रूप से अपने इस निश्चय को सूचित कर देना चाहती है कि वह जून १९४८ तक जिम्मेदार भारतीयों के हाथ में शक्ति सौंप देने के कार्य को सम्पन्न कर देगी। इसलिये यह आवश्यक है कि सब दल आपसी मतभेदों को भुलाकर अगले वर्ष आनेवाले भारी उत्तरदायित्व को सँभालने के लिये तैयार हो जायँ।"

आगे उन्होंने कहा कि यदि निश्चित की गयी तिथि तक सब प्रकार से प्रतिनिधित्वपूर्ण परिषद्-द्वारा ऐसा विधान न बनाया जा सका तो सम्राट् की सरकार

को यह विचार करना पड़ेगा कि ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय सरकार का दायित्व पूरे का पूरा, ब्रिटिश भारत की किसी केन्द्रीय सरकार को या विभक्त करके वर्तमान प्रान्तीय सरकारों को, अथवा किसी ऐसे ढंग से जो सर्वोचित तथा भारतीयों के लिए सर्वाधिक लाभपूर्ण हो, सौंपा जाय। किन्तु यह निश्चित है कि ज्यों-ज्यों दायित्व सौंपने का कार्य आगे बढ़ता जायगा, भारत-सरकार के १९३५ के कानून की शर्तों को निभाना अधिकाधिक कठिन होता जायगा। निश्चित समय पर पूर्ण रूप से दायित्व सौंपने का विधान लागू हो जायगा।

भारतीय रियासतों के बारे में उन्होंने कहा कि सम्राट् की सरकार अपनी सार्वभौमसत्ता (प्रभुसत्ता) के अंतर्गत भारतीय रियासतों को ब्रिटिश भारत की किसी भी सरकार के सुपुर्द नहीं करना चाहती। अंतिम रूप से दायित्व सौंपने से पहले सम्राट् की सार्वभौम सत्ता का अन्त कर देने की कोई इच्छा नहीं है; किन्तु यह विचार किया जा रहा है कि इस अन्तर्काल में व्यक्तिगत रूप से सम्राट् हर देशी रियासत से पारस्परिक परामर्श-द्वारा अपने सम्बन्ध स्थिर कर लें।

नए वाइसराय की नियुक्ति के संबंध में उन्होंने कहा कि फील्ड-मार्शल माननीय वाइकाउन्ट वेवल को १९४३ में वाइसराय नियुक्त किया गया था। यह स्वीकार किया गया था कि यह नियुक्ति युद्धकाल के लिये होगी। ऐसे कठिन समय में लार्ड वेवल ने इस उच्च पद का कार्य बड़ी लगन तथा निष्ठा से निभाया है। जब भारत नवीन तथा अंतिम स्थिति को प्राप्त होने जा रहा है, यह सोचा गया है कि यह समय इस युद्धकाल की नियुक्ति को समाप्त करने के लिये उपयुक्त है। सम्राट् ने एडमिरल वाइकाउन्ट माउंटबेटन की नियुक्ति लार्ड वेवल के स्थान पर प्रसन्नता-पूर्वक की है जिनको भारत की भावी समृद्धि तथा सम्पन्नता को दृष्टिकोण में रखते हुए भारत-सरकार का दायित्व भारतीय हाथों में सौंपने का भार दिया जायगा। यह परिवर्तन मार्च मास में सम्पन्न होगा। सभा को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि सम्राट् ने प्रसन्नतापूर्वक वाइकाउन्ट वेवल को अर्ल की पदवी देना स्वीकार किया है।"

वक्तव्य की आलोचना

यह वक्तव्य भी सदा की तरह अस्पष्ट था। इसमें अनेक विकल्प इस तरह रखे गये थे, जिससे जिन व्यक्तियों को सत्ता हस्तांतरित की जाय वे विकल्पों के अनेक अर्थ लगा सकें। कांग्रेस आशा कर सकती थी कि देश की सबसे बड़ी राज-नीतिक संस्था के रूप में, और एक ऐसी संस्था के रूप में जिसका अल्पसंख्यक समुदायों से (जिनमें मुसलमान भी थे) गहरा सम्बन्ध था, उसे विशेष महत्व मिलेगा। उधर लीग 'पूर्ण प्रतिनिधित्व' शब्दों के महत्व पर निर्भर थी और उसको आशा थी कि जब तक वह विधान-परिषद् में भाग नहीं लेगी तब तक परिषद् को

"पूर्ण-प्रतिनिधित्व" नहीं कहा जा सकेगा और इस तरह लीग के दावे को पूरी तरह माना जायगा। इसके अतिरिक्त रियासतों का प्रोत्साहन यह कह कर बढ़ाया गया कि सत्ता अंतिम रूप से हस्तांतरित करने तक प्रभु-शक्ति की प्रणाली का अन्त नहीं किया जायगा और दरमियानी काल में रियासतों की शासक-शक्ति से नये सम्बन्ध कायम किये जायंगे। इस प्रकार वक्तव्य के कुछ भाग अस्पष्ट थे, फिर भी कांग्रेस को वह बुद्धिमत्तापूर्ण और साहसिक जान पड़ा। जो भी हो, विधान-परिषद् को अब अधिक तेजी से काम करना था। सत्ता-हस्तांतरण के लिए आवश्यक कार्रवाई तुरन्त आरम्भ हो जानी थी। उस समय यह सब बड़ा ही आकर्षक जान पड़ा।

झगड़े और रक्तपात

इंग्लैंड के कठोर नीतिज्ञों तथा सीधे-सादे हिन्दुस्तानियों की यह आशा बलवती थी कि यह काम इतने सुचारु रूप से किया जायगा कि दोनों पक्षों को सम्पूर्ण संतोष प्राप्त होगा, परन्तु यह आशा पूरी न हो सकी। भारत में खींचा-तानी क्या, आपस की मार-काट से खून की नदियां बह गईं और लूट तथा आग से वह तबाही हुई कि बयान नहीं किया जा सकता। मुस्लिम लीग की तरफ से पंजाब, सिंध तथा सीमाप्रांत में अपना शासन जमाने की चेष्टा, खुल्लम-खुला निर्लज्जता से अपनी ताकतों को सजाना, मानो युद्ध-क्षेत्र में मौजूद हों, आसाम की सरहद पर तीन ओर से आक्रमण आदि इस संस्था की नई रण-कला के प्रत्यक्ष प्रमाण थे, और इस बात के परिचायक थे कि पाकिस्तान बलपूर्वक कायम किया जायगा।

सीमाप्रान्त के दंगों में जानों का भारी नुकसान, और हिन्दुओं-सिखों का बलात् मुसलमान बनाया जाना, उस समय दिखलाया गया जबकि वाइसराय आने ही वाले थे। श्री मेहरचन्द खन्ना, मन्त्री इन्फार्मेशन ने पत्रकारों की कान्फरेंस में बतलाया, कि दिसम्बर से अप्रैल तक, प्रांत भर के दंगों में ४०० हिन्दू और सिख मारे गये, १५० घायल हुए और १६०० घरों तथा ५० हिन्दू या सिख धर्मस्थानों को जलाया गया। ३०० से अधिक को जबरन मुसलमान बनाया गया और ५० को भगा ले जाया गया। उन्होंने बतलाया कि मुस्लिम नेशनल गार्ड्स ने बिहार से लौट कर, फ्रण्टियर के मुसलमानों को कुरान के फटे पन्ने और इन्सानी खोपड़ियां दिखला कर, तथा "बिहार का बदला फ्रण्टियर लेगा" और "खून का बदला खून" के नारे लगा कर मुसलमानों को भड़काया।

हिन्दुस्तान के लिए, पाकिस्तान कुछ नई चीज नहीं थी। १९०६ से शुरू करके, हर वह कदम जो कि मुस्लिम अधिकारों के लिए उठाया गया, उन्हें देश से दूर ही ले गया और इससे एकता की सम्भावना नष्ट हो गई। किन्तु अन्तिम कदम, जिससे कि तख्ता पलट जाय, विचाराधीन रहा। दुःख से कहना पड़ता है

कि बल का प्रयोग किया गया। दिल्ली में बड़ी भयानक खबरें गश्त लगा रही थीं और फ्रण्टियर तथा पंजाब से छुपे-छुपे आनेवाली खबरें चौंकानेवाली थीं। १९४२ में, जैसे हिन्दुस्तान पर जापानी हमले का आतंक छाया था, वैसे ही उत्तर से हर समयआक्रमण की आशंका थी।

गांधीजी का वक्तव्य

किन्तु यह तनातनी महात्मा गांधी के उस प्रार्थना के बादवाले भाषण से, जो उन्होंने नये वाइसराय से मिलने के बाद ४ मई १९४७ को दिया था, कुछ हद तक कम हो गई। भंगी कालोनी नई दिल्ली में प्रार्थना के बाद बोलते हुए उन्होंने कहा कि वाइसराय ने उन्हें यकीन दिलाया है कि वह हिन्दुस्तान में इसलिए आये हैं कि शान्तिपूर्वक सब शासन हिन्दुस्तानियों के हाथों में सौंप दें। गांधीजी ने यह भी कहा, कि उनकी यह दिली ख्वाहिश है, कि हिन्दुस्तान एक रहे और सब लोग चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों, प्रेमपूर्वक मिलकर रहें। यदि, वाइसराय की कोशिशों के बावजूद, इस बीच झगड़े बंद न हुए तो वह फौजी ताकत का प्रयोग करने में भी नहीं चूकेंगे। उनकी इच्छा है कि हिन्दुस्तानी बीती को भूल जायँ और अंग्रेजों की नीयत में विश्वास रखें कि वे, यदि हो सका तो, जाने से पहले, हिन्दू-मुसलमानों में समझौता करवा देंगे। ऐसी स्थिति में जबतक वाइसराय पर विश्वासघात का इलजाम साबित न हो जाय, जनता को उनकी नेकनीयती पर भरोसा करना चाहिये। यदि हिन्दू और मुसलमान लड़ते ही रहे तो इसका यह मतलब होगा कि वे अंग्रेजों को यहाँ से नहीं भेजना चाहते। अंग्रेज जून १९४८ तक जरूर चले जायँगे। बेहतर होगा, यदि परस्पर-दोषारोपण बंद किया जाय।

पंजाब और बंगाल का विभाजन

पंजाब और सीमाप्रांत में, मार्च-अप्रैल १९४७ में हिंसा की जो आंधी उठी और तीव्र हुई, उसका उद्देश्य मौजूदा मंत्रि-मंडलों को, वैध और कानूनी विधि के बजाय बलपूर्वक उखाड़ फेंकना था, किन्तु मनसूबे पूरे न हुए। तिस पर भी, लूट-मार, कत्ल और खून की वारदातों ने सारे देश को हिला दिया और अंत में कांग्रेस की कार्यकारिणी ने पंजाब के दो प्रान्त बनाये जाने का प्रस्ताव पास कर दिया ताकि हिन्दू-बहुसंख्यक विभाग को विरोधियों के अन्याय से सुरक्षित बनाया जाय। ज्योंही यह प्रस्ताव मार्च १९४७ के मध्य में पास हुआ, त्योंही बंगाल में इसकी प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष हो गई और बंगाल को बाँट देने की माँग की गई। बंगालियों ने यह अनुभव किया कि ६३० लाख की आबादी में मुसलमानों की कुल मिलाकर ७० लाख की अधिक संख्या होने से सारे प्रान्त को सदा के लिए मुस्लिम लीग के अधीन नहीं छोड़ा जा सकता। कुदरती तौर पर यह सवाल उठा, कि पच्छिमी

बंगाल के हिन्दू, पूरबी बंगाल के हिन्दुओं की अवस्था को, जो कि अत्यधिक मुस्लिम बहुमत के रहम पर रह जायँगे, किस तरह शान्ति और धीरज से सहन करेंगे ? तो इसका उत्तर मिला कि पच्छिमी बंगाल के मुस्लिम अल्पसंख्यक जिस तरह दिन गुजारेंगे, उसी तरह पूरबी बंगाल की हिन्दू अल्पसंख्या रहेगी।

भारत छोड़ने की तैयारी

इन घटनाओं से फिर यह शक होने लगा कि ब्रिटेन ने जो भारत छोड़ जाने की घोषणा की है उसमें सचाई कहाँ तक है। अगर वे सच्चे हैं तो फिर इस देश के टुकड़े कर जाने का इरादा क्यों रखते हैं ? फिर भी पिछले तीन महीनों में जो परिवर्तन हुए उनसे यही प्रतीत होता था कि अंग्रेजों की यह घोषणा सच्ची और गम्भीर है। और यही तथ्य, कि हिन्दुस्तान भर के अंग्रेजों की गणना की जा रही है ताकि उन्हें वापस भेजने का प्रबन्ध किया जाय, जनता के मन से संदेह दूर करने को काफी था। सिविल, मेडिकल तथा पुलिस विभागों को समेट देने की योजना को, जो कि हिन्दुस्तान को ह्वाइट हाल से मालूम हुई है, यों ही नहीं उड़ाया जा सकता। इसे चालाकी की चाल नहीं कही जा सकती। १५० साल में, प्रथम बार हिन्दुस्तानी फौज का बनाया जाना कुछ मजाक नहीं है। रियासतों में, एजण्ट-जनरल का ओहदा हटाये जाने के साथ-साथ पोलिटिकल डिपार्टमेंट का समेटा जाना, और रेजीडेंटों के अधिकारों का ह्रास इत्यादि, ऐसे लक्षण हैं, जिनसे अंग्रेजी दुकान के उठाये जाने का निश्चय ज़ाहिर होता है। रुपये का पिंड स्टर्लिंग से बहुत पहले छुटाया जाना चाहिये था, किन्तु यह ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिकूल होने से नहीं हो सका था। शिलिंग कमेटी तथा कोल कमेटियों ने बड़ी प्रबल रिपोर्टें पेश की हैं, जिनसे अब हिन्दुस्तान को इंग्लैंड का पुछलग्गा नहीं बना रहना होगा।

कांग्रेस-समिति की बैठक

जब कि परिस्थिति ऐसी थी, तब यह घोषणा की गई कि वाइसराय ने २ मई को लार्ड इस्मे के हाथ ब्रिटिश मंत्रिमंडल को अपनी रिपोर्ट भेज दी है। इस प्रकार कैबिनेट-द्वारा हिन्दुस्तान को अधिकार हस्तांतरित करने का ऐलान फिर वही १६ मई को किया गया जैसा कि ठीक एक वर्ष पूर्व किया गया था। किन्तु पार्ल्यामेंट के अवकाश के कारण, यह महत्वपूर्ण काम २ जून १९४७ तक मुल्तवी किया गया।

जब निश्चित तिथि आई तब २ जून को वाइसराय ने थोड़े-से नेताओं को दावत दी और ३ जून को माउण्टबेटन-योजना घोषित हुई। इसके बाद पं० नेहरू, मि० जिन्ना तथा सरदार बलदेवसिंह के रेडियो-भाषण हुए।

३ जून १९४७ के अंग्रेजी सरकार के वक्तव्य पर विचार करने के लिए, विधान-परिषद्, करजन रोड नई दिल्ली में, आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का एक विशेष अधिवेशन १४-१५ जून १९४७ को दिन के २ बजे हुआ। सभापति आचार्य कृपलानी और २१८ सदस्य उपस्थित थे।

कांग्रेस कार्यकारिणी-द्वारा सिफारिश किये गये प्रस्ताव का मसविदा श्री गोविंदवल्लभ पंत ने पेश किया और मौलाना अबुलकलाम आजाद ने उसका अनुमोदन किया। इस प्रस्ताव के संबंध में बहस समाप्त होने पर, मत लिया गया। असली प्रस्ताव २९ के विरुद्ध १५३ के बहुमत से पास हुआ। कुछ सदस्य तटस्थ रहे। प्रस्ताव यह था :—

आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने, जनवरी की पिछली बैठक के बाद की घटनाओं पर पूरा-पूरा ध्यान दिया है। खासकर, ब्रिटिश सरकार के २० फरवरी तथा ३ जून १९४७ के वक्तव्यों पर गहरा विचार किया है। इस बीच, कार्यकारिणी द्वारा पास किए गए प्रस्तावों का, यह कमेटी अनुमोदन तथा समर्थन करती है।

कमेटी, ब्रिटिश सरकार के इस निश्चय का स्वागत करती है कि आगामी अगस्त तक, सारे अधिकार पूर्णतया हिन्दुस्तानियों को सौंप दिय जायँगे।

ब्रिटिश कैबिनट-मिशन के १६ मई १९४६ के वक्तव्य तथा बाद में ६ दिसम्बर १९४६ की उस पर की गयी व्याख्याओं को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया है और मिशन की योजना के अनुसार विधान-परिषद् कायम करके, उस पर अमल कर रही है। विधान-परिषद ६ मास से अधिक समय से अपना काम कर रही है। परिषद् ने, अपना ध्येय हिन्दुस्तान के लिए स्वतंत्र लोकतंत्र राज घोषित किया है। इसके अलावा, प्रत्येक हिन्दुस्तानी के लिए, समान बुनियादी अधिकारों और सुअवसरों के आधार पर, आजाद हिन्दुस्तान संघ का विधान बनाने में भी विधान-परिषद् ने काफी उन्नति कर ली है।

१६ मई की योजना को मुस्लिम लीग ने अस्वीकार किया था और विधान-सभा में शामिल होने से भी उसने इन्कार किया था। इसको दृष्टि में रखते हुए तथा कांग्रेस की इस नीति के अनुसार कि, "यह किसी प्रदेश के लोगों को हिन्दुस्तानी संघ में शामिल हो जाने पर बाधित नहीं करेगी," आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने, ३ जून की घोषणा में लिखो तजवीज़ों को मंजूर कर लिया है, जिसमें जनता का मत जानने की विधि भी लिखी है।

३ जून, १९४७ की तजवीजों के अनुसार सम्भवतः हिन्दुस्तान के कुछ भाग इससे अलहदा हो जायँ। बड़े खेद के साथ, मौजूदा हालात में आल इडिया कांग्रेस कमेटी इस सम्भावना को मान रही है।

गो आजादी निकट है, मगर समय भी विकट है। आजादी के दीवानों से, आज के हिन्दुस्तान की परिस्थिति, सतर्क तथा संगठित रहने की मांग कर रही

है। आज के संकट-समय में, जबकि देशद्रोही तथा विच्छेद करनेवाली शक्तियां हिन्दुस्तान और इसकी जनता के हितों को आहत करने की चेष्टा कर रही हैं, आल इंडिया कांग्रेस कमेटी, आम जनता और विशेषकर प्रत्येक कांग्रेसी से तकाजा करती है, कि वह अपने छोटे-मोटे झगड़े भूलकर सतर्क और संगठित हो तथा हिन्दुस्तान की आजादी को, हर उस व्यक्ति से जो इसे हानि पहुँचाना चाहता है, अपनी पूरी ताकत लगाकर सुरक्षित रखने के लिए तत्पर हो जाय।

इसके बाद हिन्दुस्तानी रियासतों-विषयक प्रस्ताव जिसकी सिफारिश कार्यकारिणी ने की थी, श्री पट्टाभि सीतारामय्या द्वारा पेश किया गया और शंकरराव देव ने उसका समर्थन किया। प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ। प्रस्ताव संक्षेप में इस प्रकार है :—

"आल इंडिया कांग्रेस कमेटी, विधान-परिषद् में बहुत-सी रियासतों के शामिल होने का स्वागत करती है। कमेटी आशा करती है कि शेष सभी रियासतें भी, आजाद हिन्दुस्तान के विधान-निर्माण में, जिसके अनुसार रियासती इकाइयां संघ में सम्मिलित होनेवाली दूसरी इकाइयों की तरह बराबर की भागीदार होंगी, अपना-अपना सहयोग देंगी।

"जो वैधानिक तब्दीलियां की जा रही हैं उनमें रियासतों की स्थिति, कैबिनट मिशन के मेमोरेंडम ता० १२ मई, १९४६ के वक्तव्य में निर्धारित कर दी गयी है। ३ जून १९४७ के वक्तव्य ने इस स्थिति में कोई तब्दीली नहीं की। इन दस्तावेजों के अनुसार हिन्दुस्तानी संघ में ब्रिटिश भारत और रियासतें दोनों शामिल होंगी। सर्वोपरि सत्ता, अधिकार हस्तांरित होने पर समाप्त हो जायगी, और यदि कोई रियासत संघ में सम्मिलित नहीं होती, तो वह किसी अन्य प्रकार के राजनीतिक नाते से बँध जायगी।

"आल इंडिया कांग्रेस कमेटी, हिन्दुस्तान की किसी रियासत के स्वतंत्र हो जाने का हक तस्लीम नहीं करती, जिससे कि वह शेष भारत से अलग-थलग रह सके। इसका मतलब हिन्दुस्तानी इतिहास की गति तथा आज के हिन्दुस्तानियों की वास्तविक स्थिति से इन्कार करना होगा।

"आल इंडिया कांग्रेस कमेटी को भरोसा है कि राजा लोग, आज की स्थिति को भलीभांति समझकर, अपनी प्रजा तथा समस्त भारत के हितार्थ, अपनी प्रजा के हमराह प्रजातंत्र की इकाइयां बनकर हिन्दुस्तानी संघ में सम्मिलित होंगे।"

कृपलानीजी का भाषण

इसके बाद कांग्रेस के प्रधान ने अपना भाषण दिया। नीचे हम उनके भाषण के अन्तिम भाग का सारांश देते हैं :—

"जब मैं इस संस्था का प्रधान बना था तब गांधीजी ने अपने एक प्रार्थना-

भाषण में कहा था कि मुझे न केवल काँटों का ताज सिर पर धारण करना होगा बल्कि काँटों की सेज पर भी लेटना पड़ेगा। मैंने तब यह अनुभव नहीं किया था कि सचमुच वही होगा। १६ अक्टूबर को मेरे प्रधान चुने जाने की घोषणा हुई और १७ ता० को मुझे विमान द्वारा नोआखली जाना पड़ा। इसके बाद मुझे बिहार जाना पड़ा और अभी-अभी पंजाब भी गया था। दोनों सम्प्रदाय वाले बदबदा कर हिंसा और मारकाट कर रहे हैं और हाल की भिड़न्त में जिस प्रकार की संगदिली और जुल्म की वारदातें हुई हैं उनकी मिसाल पहले कहीं नहीं मिलती। मैंने एक कुआँ देखा है जिसमें १०७ स्त्री-बच्चों ने अपनी आबरू बचाने के लिए छलाँग लगाकर जान दे दी। एक दूसरी जगह, एक धर्मस्थान में पुरुषों ने ५० स्त्रियों का इसी कारण अपने हाथों वध कर डाला। मैंने एक घर में हड्डियों के ढेर देखे हैं, जिसमें ३०७ व्यक्तियों—अधिकांश स्त्री-बच्चों को—आक्रमणकारियों ने बंद कर जिन्दा जला डाला था। इन भयानक दृश्यों को देखकर इस समस्या के विषय में मेरे विचारों पर बहुत प्रभाव पड़ा है। कुछ सदस्यों ने हम पर इलजाम लगाया है कि हमने भयभीत होकर ही यह निश्चय किया है। मैं इस आरोप के तथ्य को कबूल करता हूँ, मगर उस मतलब में नहीं जिसके अधीन कि यह आरोप किया गया है। हमें जानों की क्षति या विधवाओं के विलाप या अनाथों के क्रन्दन या अनेक घरों के जलाये जाने का भय नहीं है, बल्कि भय इस बात का है कि यदि हम इस प्रकार एक-दूसरे से बदला लेने के लिए वार करते रहे तो अन्त में हम नर-भक्षी राक्षस या उससे भी ज्यादा पतित हो जायँगे।

मैं पिछले ३० साल से गांधी जी की संगति में रहा हूँ। उनके प्रति मेरी वफादारी और श्रद्धा कभी डाँवाँडोल नहीं हुई। यह निजी नहीं वरन् राजनीतिक वफादारी है। जब-जब उनसे मेरा मतभेद भी हुआ तब तब मेरी विशाल तर्कसंगत युक्तियों से उनका राजनीतिक सहज-ज्ञान मुझे अधिक ठीक प्रतीत हुआ। आज भी, मैं समझता हूँ कि गांधीजी अपनी श्रेष्ठतम निर्भीकता के साथ ठीक हैं और मेरा मत दोषयुक्त है। तो फिर मैं उनके साथ क्यों नहीं हूं? इसका कारण यह है, कि मैं अनुभव करता हूं, कि गांधीजी ने अभी तक इस समस्या का ऐसा हल नहीं निकाला कि जिसका प्रयोग जनसाधारण पर किया जा सके। तब उन्होंने हमें अहिंसापूर्ण असहयोग सिखलाया था तो हमें एक निश्चित तरीका समझाया था जिसपर हम मशीन की तरह अमल करते रहे। आज तो वह खुद अंधेरे में टटोल रहे हैं। वह नोआखली गये थे। परिस्थिति सुधर गई थी। अब वह बिहार गये हैं। वहाँ भी शान्ति हो रही है। किन्तु इससे पंजाब की भड़कती आग तो नहीं बुझती। वह कहते हैं कि बिहार में वह समस्त भारत के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या का हल निकाल रहे हैं। होगा! किन्तु हमें तो नजर नहीं आ रहा है

कि यह हो रहा है। अहिंसापूर्ण असहयोग की तरह, कोई निश्चित पथ नहीं है कि जिसपर चलकर हम अपनी मंजिल पर पहुंच जायँ।

इस हृदय-विदारक हालात में, मैंने हिन्दुस्तान का विभाजन स्वीकार कर लिया है। आप जानते होंगे कि मेरा जन्मस्थान, परिवार और घर-बार पाकिस्तान में है। मेरे बन्धु-बांधव सभी वहीं रह रहे हैं। सन् १६०६ में जब मैंने राजनीतिक क्षेत्र में कदम रक्खा था तब मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं हिन्दुस्तान के किसी भाग-विशेष की आजादी की खातिर काम कर रहा हूँ। मैं तो समस्त भारत के लिए काम कर रहा था। इस देश का प्रत्येक नदी-नाला, कोना-कोना मेरे लिए पवित्र है और इस कृत्रिम बँटवारे के बाद भी वह मेरे लिए वैसा ही बना रहेगा।

कहा जाता है कि इस फैसले से साम्प्रदायिक दंगे-फिसाद बंद नहीं होंगे और न हो सकेंगे। हाँ, इस समय तो ऐसा ही प्रतीत हो रहा है कि शैतान की गुड्डी चढ़ी है। तो फिर भविष्य में ये दंगे क्योंकर सँभाले जायँगे? क्या यह जहरीला चक्र और भी वेग पकड़ लेगा जैसा कि अभी-अभी बदला लेने से बढ़ा है? इस प्रश्न का उत्तर मैं अपने मेरठ के सभापति के भाषण में दे चुका हूं। मैंने तभी कहा था कि केन्द्र ढीला पड़ जाने से प्रान्तों में मन-मानी होने लगी है। बिहार-सरकार को चाहिए था कि बंगाल-सरकार को चेतावनी दे दे कि यदि बंगाल के हिन्दुओं पर अत्याचार होते रहे तो बिहार-सरकार अपनी नेकनीयती के बावजूद बिहारी मुसलमानों की जान-माल की रक्षा नहीं कर सकेगी। इसका मतलब यह होता कि मामला ऊँचे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पहुँच जाता जहां सुव्यवस्थित सरकार इस-पर एक दूसरे से बातचीत करती। तब यह मामला उत्तेजित बलवाइयों के हाथों से, जिनके नजदीक नैतिकता या कानून या संयम तुच्छ होता है, निकल जाता। दंगाइयों का जोश अन्धा होता है। अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा भी किसी विधि से की जाती है। मुझे यकीन है कि १६ अगस्त के बाद हिन्दुस्तान की बाग-डोर जिनके हाथों में होगी वे देखेंगे कि पाकिस्तान के अल्पसंख्यक हिन्दुओं के साथ अन्याय नहीं होता। यदि मेरे इन शब्दों का हिन्दुस्तान के पाकिस्तान विभाग पर कुछ भी असर हो सकता है तो मैं जरूर कहूँगा कि "दोनों विधान परिषदों को एक संयुक्त कमेटी नियुक्त करनी चाहिये जो कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों का निर्णय करे।" इस प्रकार व्यक्तियों और दंगाइयों के जन-समूह और उसके बदले की आग से इसकी रक्षा हो सकेगी।

हमने देशी राज्यों के सम्बन्ध में अभी-अभी प्रस्ताव पास किया है। इस सिल-सिले में मैं एक बात सुझाना चाहूंगा। जिन रियासतों ने अभी तक अपने प्रतिनिधि विधान-परिषद् में नहीं भेजे हैं उनकी प्रजा ऐसे प्रतिनिधियों को स्वयं भेज दे। जहां-जहां व्यवस्थापिका सभाओं का अस्तित्व है वहां-वहां वे एसेम्बलियां ब्रिटिश भारत की एसेम्बलियों की ही भाँति एकाकी हस्तांतरण-मत पद्धति-द्वारा प्रति-

निधियों का चुनाव करलें। जहां ऐसी एसेम्बलियां नहीं हैं वहां प्रतिनिधियों के चुनने के लिए अन्य उपाय काम में लाए जा सकते हैं। बुनियादी अधिकारों की कमेटी में हमने सारे देश के लिये एक ही सामान्य नागरिकता मान ली है। प्रत्येक रियासत का नागरिक हिन्दुस्तान का नागरिक है और उसे भारतीय विधान-परिषद् में प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है। रियासत के बाहर से आया हुआ दीवान नागरिकों का यह अधिकार सीमित नहीं कर सकता। हमें भारत का विधान बनाने में रियासती प्रजाजन के परामर्श की जरूरत है।

फैसले के रूप में मैं कहूँगा कि हमें उस आजादी से ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये जो शीघ्र ही मिलनेवाली है। हमें उस एकता के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए जिसे हमने शीघ्र स्वतंत्रता प्राप्त करने के प्रयत्न में खो दिया है। यह काम केवल भारत को सुदृढ़, सुखी, गणतंत्रात्मक और समाजसत्तावादी राज्य बनाकर किया जा सकता है। इस प्रकार का भारत अपने बिछुड़े बच्चों को फिर अपनी गोद में बिठा सकता है। इस काम में उन सभी सच्ची सेनाओं और बलिदानों की आवश्यकता होगी जिनकी हमें आजादी की लड़ाई में जरूरत थी। हमें सभी शक्ति की भूखी राजनीति का परित्याग कर देना चाहिए। हां, उस त्याग, कठिनाई और स्वेच्छापूर्ण अकिंचन की गौरवपूर्ण परम्परा का परित्याग नहीं करना चाहिए जिसका निर्माण हमने जेल जाकर, लाठी-प्रहार सहकर और गोलियाँ खाकर किया है। हमें फिर अपने को उस नए कार्य में लगा देना चाहिए जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के समान ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि हमने जो आजादी हासिल की है वह तबतक पूरी नहीं हो सकती जब तक भारत की एकता न स्थापित हो जाय। विभाजित भारत तो गुलाम बन जायगा। इसलिए हम दूसरी गुलामी से जहां तक शीघ्र हो सके दूर हो जायँ। हमें स्वभाग्य-निर्णय के जो सुअवसर प्राप्त हैं उन्हें अब हमारे भारत में एकता कायम करने के उत्कृष्ट ध्येय में लगा देना चाहिए। इस कार्य में ईश्वर हमारी मदद करे।"